44

जयधवलासहितं

क सा य पा हु डं

भाग ८

[बंधगो १]

भारतीय दिगम्बर जैन संघ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भा॰दि॰जैनसंघग्रन्थमालायाः प्रथमपुष्पस्य अष्टमोदलः

श्रीयतिवृषभाचार्यरचितचूर्णिसूत्रसमन्वितम्
श्रीभगवद्गुणधराचार्यप्रणीतम्

क सा य पा हु डं

तयोश्च
श्रीवीरसेनाचार्यविरचिता जयधवला टीका
[षष्ठोऽधिकारः बन्धकः १]

संपादकौ

पं॰ फूलचन्द्र
सिद्धान्तशास्त्री
सम्पादक महाबन्ध, सहसम्पादक
धवला

पं॰ कैलाशचन्द्र
सिद्धान्तरत्न, सिद्धान्तशास्त्री, न्यायतीर्थ
प्रधानाचार्य स्याद्वाद महाविद्यालय
काशी

प्रकाशक
मन्त्री साहित्य विभाग
भा॰ दि॰ जैन संघ, चौरासी, मथुरा,

वि॰ सं॰ २०१७] वीरनिर्वाणाब्द २४८७ [ई॰ सं॰ १९६१
मूल्यं रूप्यकद्वादशकम्

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भा० दि० जैनसंघ-ग्रन्थमाला

इस ग्रन्थमालाका उद्देश्य
प्राकृत संस्कृत आदि भाषाओंमें निबद्ध दि० जैनागम,
दर्शन, साहित्य, पुराण आदिका यथासम्भव
हिन्दी अनुवाद सहित प्रकाशित करना

सञ्चालक
भा० दि० जैनसंघ

ग्रन्थाङ्क १–८

प्राप्तिस्थान
मैनेजर
भा० दि० जैनसंघ
चौरासी, मथुरा

मुद्रक—पं० शिवनारायण उपाध्याय, बी० ए०
नया संसार प्रेस भदैनी, वाराणसी।

स्थापनाब्द] प्रति ८०० [वी० नि० सं० २४६८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Sri Dig. Jain Sangha Granthamala No 1-VIII

KASAYA-PAHUDAM
VIII
BANDHAK

BY

GUNADHARACHARYA

WITH

CHURNI SUTRA OF YATIVRASHABHACHARYA

AND

THE JAYADHAVALA COMMENTARY OF
VIRASENACHARYA THERE-UPON

EDITED BY

Pandit Phulachandra Siddhantashastri
EDITOR MAHABANDHA
JOINT EDITOR DHAVALA.

Pandit Kailashachandra Siddhantashastri
Nyayatirtha, Siddhantaratna,
Pradhanadhyapak, Syadvada Digambara Jain
Vidyalaya, Varanasi.

PUBLISHED BY

THE SECRETARY PUBLICATION DEPARTMENT.
THE ALL-INDIA DIGAMBAR JAIN SANGHA
CHAURASI, MATHURA

VIRA-SAMVAT 2487 VIKRAMA S. 2017 1961 A. C.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Sri Dig. JaiN Sangha Granthamala

Foundation year—] [—Vira Niravan Samvat 2468

Aim of the Series:—

Publication of Digambara Jain Siddhanta, Darsana. Purana, Sahitya and other works in Prakrit Sanskrit etc, possibly with Hindi Commentary and Translation

DIRECTOR:—

SRI BHARATA VARSHIYA DIGAMBARA JAIN SANGHA

NO. 1. VOL. VIII.

To be had from:—

THE MANAGER
SRI DIG. JAIN SANGHA,
CHAURASI. MATHURA,
U. P. (INDIA)

Printed by
PT. S. N. UPADHYAYA B. A
Naya Sansar Press, Bhadaini Varanasi.

800 Copies, **Price Rs. Twelve only**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशककी ओरसे

कसायपाहुडका आठवाँ भाग पाठकोंके करकमलोंमें अर्पित है। यह भाग कुछ विलम्बसे प्रकाशित होनेका कारण गत वर्षमें उत्पन्न हुई कागजकी कठिनाई है। उसीके कारण इस भागके प्रकाशनमें एक वर्षका विलम्ब हो गया। इस बातकी संभावना हमने सातवें भागके अपने वक्तव्यमें व्यक्त भी कर दी थी।

किन्तु आगेके दो भागोंके लिये कागजकी व्यवस्था कर ली गई है और एक उदारदाता महोदयसे उनके प्रकाशनके लिये आवश्यक साहाय्य भी मिल गया है, अतः आशा है आगेके भाग जल्द ही प्रकाशित हो सकेंगे।

इस भागका प्रकाशन भी भा० दि० जैन संघके अध्यक्ष दानवीर सेठ भागचन्द जी डोंगरगढ़ तथा उनकी दानशीला धर्मपत्नी श्रीमती नर्वदाबाईजीके द्वारा प्रदत्त द्रव्यसे हुआ है। सेठ साहबने कुण्डलपुरमें संघके अधिवेशनके अवसर पर इस कार्यके लिये ग्यारह हजार रुपया प्रदान किया था। उसके पश्चात् बामौरामें संघके अधिवेशन पर पुनः पाँच हजार रुपया इस कार्यके लिये प्रदान किया। इसीसे यह प्रकाशन कार्य चालू है। सेठ साहब तथा उनकी धर्मपत्नीकी जिनवाणीके प्रति यह भक्ति तथा दानशीलता अनुकरणीय है।

सेठ साहबकी दानशीलतामें प्रेरणात्मक सहयोग देनेका श्रेय पं० फूलचन्द जी सिद्धान्तशास्त्रीको है। आप ही जयधवलाके सम्पादन तथा मुद्रणका उत्तरदायित्व सम्हालते हैं। अतः मैं सेठ साहब, सेठानी जी तथा पण्डितजीका आभार प्रकट किये बिना नहीं रह सकता।

जयधवला कार्यालय
भदैनी, वाराणसी।
ऋषभ निर्वाण दिवस–२४८७

कैलाशचन्द्र शास्त्री
मंत्री साहित्य विभाग
भा० दि० जैन संघ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भा० दि० जैन संघके साहित्य विभागके सदस्योंकी नामावली

संरक्षक सदस्य

१३०००) दानवीर सेठ भागचन्दजी डोंगरगढ़
८१२५) दानवीर साहू शान्तिप्रसादजी कलकत्ता
५०००) स्व० श्रीमन्त सर सेठ हुकुमचन्दजी इन्दौर
५०००) सेठ छदामीलालजी फिरोजाबाद
२००१) सेठ नानचन्द जी हीराचन्दजी गांधी उस्मानाबाद

(सहायक सदस्य)

१२५०) श्री सेठ भगवानदास जी मथुरा
१०००) ,, बा० कैलाशचन्दजी S. D. O. बम्बई
१००१) सकल दि० जैन परवार पञ्चान नागपुर
१००१) श्री सेठ श्यामलालजी फर्रूखाबाद
१००१) ,, सेठ घनश्यामदासजी सरावगी लालगढ़ [रा०ब० सेठ चुन्नीलालजी के सुपुत्र स्व० निहालचन्दजी की स्मृति में]
१०००) श्री लाला रघुबीरसिंहजी जैनावाच कम्पनी देहली
१०००) श्री रायसाहब लाला उल्फतरायजी देहली
१०००) स्व० लाला महावीरप्रसादजी ठेकेदार ,,
१०००) ,, लाला रतनलालजी मादीपुरिये ,,
१०००) श्री लाला धूमीमल धर्मदासजी ,,
१००१) श्रीमती मनोहरीदेवी मातेश्वरी लाला बसन्तलाल फिरोजीलालजी देहली
१०००) श्री बाबू प्रकाशचन्दजी खण्डेलवाल ग्लासवर्क्स सासनी
१०००) श्री लाला छीतरमल शंकरलालजी मथुरा
१००१) ,, सेठ गणेशीलाल आनन्दीलालजी आगरा
१०००) श्री सकल दि० जैन पञ्चान गया
१०००) ,, सेठ सुखानन्द शंकरलालजी मुलतान-वाले दिल्ली
१००१) श्री सेठ मगनमलजी हीरालालजी पाटनी आगरा
१०००) स्व० श्रीमती चन्द्रावतीजी, धर्मपत्नी साहू रामस्वरूपजी नजीबाबाद
१००१) लाला सुदर्शनलालजी जसवन्तनगर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
मङ्गलाचरण	१
बन्धकके दो अनुयोगद्वारोंकी सूचना	२
बन्धका स्वरूप	२
संक्रमका स्वरूप	२
संक्रमको बन्ध संज्ञा प्राप्त होनेका कारण	२
अकर्मबन्धका स्वरूप	२
कर्मबन्धका स्वरूप कह कर उसे संक्रम संज्ञा प्राप्त होनेके कारणका निर्देश	२
उक्त दोनों अधिकारोंके कहनेकी प्रतिज्ञा	३
इस विषयमें सूत्रगाथा	३
गाथाके पदोंका व्याख्यान	४
बन्ध अनुयोगद्वारकी सूचनामात्र	६
संक्रम अनुयोगद्वार	
संक्रमके चार प्रकारके अवतारके निरूपणकी सूचना	६
प्रथम प्रकार उपक्रम और उसके पाँच प्रकार	७
उपक्रम आदि पाँचका विशेष व्याख्यान	७
द्वितीय प्रकार निक्षेपका विचार	८
तृतीय प्रकार नयके आश्रयसे निक्षेपकी मीमांसा	८
निक्षेपार्थका विशेष विचार	११
नोआगमद्रव्यसंक्रमके दो भेद और उनकी मीमांसा	१२
प्रकृतमें उपयोगी कर्मद्रव्यसंक्रमके चार भेद	१४
प्रकृतिसंक्रमके दो भेद	
१ प्रकृतिसंक्रम	
प्रकृतिसंक्रमके कथनकी प्रतिज्ञा	१६
इस विषयमें उपयोगी तीन गाथाएँ और उनका व्याख्यान	१६
उक्त गाथाओंका पदच्छेद	१८
उपक्रमके पाँच प्रकार	१८
चारप्रकारका निक्षेप	१९
नाम और स्थापनानिक्षेपको पृथक् न कहनेके कारणका निर्देश	१९
द्रव्यादि चार निक्षेपोंका स्पष्टीकरण	१९
निक्षेपार्थको स्पष्ट करनेके लिए नयविधिका निरूपण	२०
कर्मद्रव्यप्रकृतिसंक्रमके विषयमें आठ प्रकारके निर्गमोंकी मीमांसा	२०
एकैकप्रकृतिसंक्रमका व्याख्यान	२६
उसके विषयमें २४ अनुयोगद्वारोंकी सूचना और उनका नामनिर्देश	२६
समुत्कीर्तना	२६
सर्व और नोसर्वसंक्रम	२७
उत्कृष्ट और अनुत्कृष्टसंक्रम	२७
जघन्य और अजघन्यसंक्रम	२७
सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुवसंक्रम	२८
स्वामित्व	२८
एक जीवकी अपेक्षा काल	३४
एक जीवकी अपेक्षा अन्तर	४६
नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय	५२
भागाभाग	५४
परिमाण	५६
क्षेत्र	५६
स्पर्शन	५७
नाना जीवोंकी अपेक्षा काल	५९
नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर	६२
सन्निकर्ष	६३
भाव	७३
अल्पबहुत्व	७३
प्रकृतिस्थानसंक्रम	
प्रकृतिस्थानसंक्रम कहने की प्रतिज्ञा	८१
इस विषयमें सूत्र समुत्कीर्तना अर्थात् ३२ सूत्रगाथाएँ	८१

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय	पृष्ठ
उक्त गाथाओंके विषयकी सूचना	८७
प्रकृतिस्थानसंक्रमविषयक अनुयोगद्वारोंका नामनिर्देश	८८
स्थानसमुत्कीर्तनामें आई हुई एक गाथा और उसका व्याख्यान	८९
कौन प्रकृतिस्थान प्रकृतिसंक्रमस्थान है और कौन नहीं है इसका सकारण निर्देश	९१
प्रकृतिस्थानप्रतिग्रहाप्रतिग्रहप्ररूपणा	११४
किस संक्रमकस्थानके कौन प्रतिग्रहस्थान हैं इस बातका निर्देश	१२३
संक्रमस्थानोंके अनुसन्धान करनेके उपायोंका निर्देश	१४४
आनुपूर्वी-अनानुपूर्वीसंक्रमस्थानोंका निर्देश	१४४
दर्शनमोहनीयके सद्भावमें प्राप्त होनेवाले और उसके अभावमें प्राप्त होनेवाले संक्रमस्थानोंका निर्देश	१४५
उपशामक और क्षपकसम्बन्धी संक्रम-स्थानोंका निर्देश	१४५
मार्गणास्थानोंमें संक्रमस्थान आदिके जाननेकी सूचना	१४७
गुणस्थानोंमें संक्रमस्थान आदिके जाननेकी सूचना करके कालानुयोगद्वारका संकेत	१४८
गतिमार्गणाके अवान्तर भेदोंमें संक्रम-स्थानोंका प्रमाणनिर्देश	१४९
मनुष्यगतिमें सब संक्रमस्थान होते हैं इसका निर्देश	१५०
एकेन्द्रियादि असंज्ञी पञ्चेन्द्रियोंमें कितने संक्रमस्थान होते हैं इसका निर्देश	१५०
गतिमार्गणामें प्रतिग्रहस्थानों और तदु-भयस्थानोंके जाननेकी सूचना	१५०
सम्यक्त्व और संयममार्गणामें उक्त विषयका विचार	१५२
लेश्यामार्गणामें उक्त विषयका विचार	१५३
वेदमार्गणामें उक्त विषयका विचार	१५४
कषायमार्गणामें उक्त विषयका विचार	१५५
ज्ञानमार्गणामें उक्त विषयका विचार	१५६
भव्य और आहारमार्गणामें उक्त विषयका विचार	१६०

विषय	पृष्ठ
वेद और कषायमार्गणामें शून्यस्थानोंका निर्देश	१६१
सत्कर्मस्थानोंका निर्देश	१६३
बन्धस्थानोंका निर्देश	१६३
सत्कर्मस्थानोंमें संक्रमस्थानोंका विचार	१६३
बन्धस्थानोंमें संक्रमस्थानोंका विचार	१६८
बन्धस्थानों और सत्त्वस्थानोंमें संक्रमस्थानोंका विचार	१७२
सत्कर्मस्थानोंमें बन्धस्थानों और संक्रमस्थानोंका विचार	१७४
बन्धस्थानोंमें सत्कर्मस्थानों और संक्रमस्थानोंका विचार	१७५
संक्रमस्थानोंमें बन्धस्थानों और सत्कर्मस्थानोंका विचार	१७५
शेष अनुयोगद्वारोंका दो गाथासूत्रों द्वारा नामनिर्देश	१७६
स्थानसमुत्कीर्तना	१७७
प्रकृतमें सर्वसंक्रमसे लेकर अजघन्य संक्रम तकके अनुयोगद्वार क्यों सम्भव नहीं हैं इसका निर्देश	१७८
सादि आदि चारका निर्देश	१७९
स्वामित्व	१७९
एक जीवकी अपेक्षा काल	१८१
एक जीवकी अपेक्षा अन्तर	१९८
नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय	२१०
भागाभाग	२१३
परिमाण	२१४
क्षेत्र	२१४
स्पर्शन	२१५
नाना जीवोंकी अपेक्षा काल	२१६
नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर	२१८
सन्निकर्ष	२२१
अल्पबहुत्व	२२२

भुजगार प्रकृति संक्रम

भुजगारके तेरह अनुयोगद्वार	२२६
समुत्कीर्तना	२२६
स्वामित्व	२२६

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय	पृष्ठ
एक जीवकी अपेक्षा काल	२३०
एक जीवकी अपेक्षा अन्तर	२३१
नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय	२३२
भागाभाग	२३२
परिमाण	२३३
क्षेत्र	२३३
स्पर्शन	२३३
नाना जीवोंकी अपेक्षा काल	२३४
नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर	२३५
भाव	२३५
अल्पबहुत्व	२३५
पदनिक्षेप प्रकृतिसंक्रम	
पदनिक्षेपके तीन अनुयोगद्वार	२३६
समुत्कीर्तना	२३६
स्वामित्व	२३७
अल्पबहुत्व	२३८
वृद्धि प्रकृतिसंक्रम	
वृद्धिके तेरह अनुयोगद्वार	२३९
समुत्कीर्तना	२३९
स्वामित्व	२३९
एक जीवकी अपेक्षा काल	२३९
एक जीवकी अपेक्षा अन्तर व शेषकी सूचना	२४०
नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय	२४०
नाना जीवोंकी अपेक्षा काल	२४०
नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर	२४०
भाव	२४०
अल्पबहुत्व	२४०
स्थितिसंक्रम	
स्थितिसंक्रमके दो भेद	२४२
स्थितिसंक्रम और स्थितिअसंक्रमकी व्याख्या	२४२
अपकर्षणस्थितिसंक्रमका स्वरूप	२४३
उत्कर्षणस्थितिसंक्रमका स्वरूप	२५३
अद्धाच्छेदकी सूचना	२६२
मूलप्रकृतिस्थितिसंक्रम	
मूलप्रकृतिस्थितिसंक्रमविषयक अनुयोगद्वारोंकी सूचना	२६२

विषय	पृष्ठ
अद्धाच्छेदके दो भेद	२६३
उत्कृष्ट अद्धाच्छेद	२६३
जघन्य अद्धाच्छेद	२६३
सर्व अनुयोगद्वारसे लेकर अजघन्य अनुयोगद्वार तक अनुयोगद्वारोंको स्थितिविभक्तिके समान जाननेकी सूचना	२६४
सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव अनुयोगद्वारोंकी प्ररूपणा	२६४
स्वामित्वके दो भेद	२६५
उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम स्वामित्व	२६५
जघन्य स्थितिसंक्रम स्वामित्व	२६५
एक जीवकी अपेक्षा कालके दो भेद	२६७
उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम काल	२६७
जघन्य स्थितिसंक्रम काल	२६८
अन्तरानुगमके दो भेद	२७२
उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम अन्तर	२७२
जघन्य स्थितिसंक्रम अन्तर	२७३
नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचयके दो भेद	२७५
उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम भंगविचय	२७५
जघन्य स्थितिसंक्रम भंगविचय	२७६
भागाभागके दो भेद	२७७
उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम भागाभाग	२७७
जघन्य स्थितिसंक्रम भागाभाग	२७७
परिमाणके दो भेद	२७७
उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम परिमाण	२७७
जघन्य स्थितिसंक्रम परिमाण	२७८
क्षेत्रके दो भेद	२७८
उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम क्षेत्र	२७८
जघन्य स्थितिसंक्रम क्षेत्र	२७९
स्पर्शनके दो भेद	२७९
उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम स्पर्शन	२७९
जघन्य स्थितिसंक्रम स्पर्शन	२८२
नाना जीवोंकी अपेक्षा काल के दो भेद	२८४
उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम काल	२८४
जघन्य स्थितिसंक्रम काल	२८५
नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरके दो भेद	२८७
उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम अन्तर	२८७
जघन्य स्थितिसंक्रम अन्तर	२८८
भाव	२८८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय	पृष्ठ
अल्पबहुत्वके दो भेद	२८८
स्थितिसंक्रम अल्पबहुत्वके दो भेद	२८८
उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम अल्पबहुत्व	२८८
जघन्य स्थितिसंक्रम अल्पबहुत्व	२८९
जीव अल्पबहुत्वके दो भेद	२८९
उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम जीव अल्पबहुत्व	२८९
जघन्य स्थितिसंक्रम जीव अल्पबहुत्व	२९०

भुजगारस्थितिसंक्रम

विषय	पृष्ठ
भुजगारके तेरह अनुयोगद्वारोंकी सूचना	२९०
समुत्कीर्तना	२९०
स्वामित्व	२९१
एक जीवकी अपेक्षा काल	२९१
एक जीवकी अपेक्षा अन्तर	२९५
नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय	२९५
भागाभाग	२९७
परिमाण	२९७
क्षेत्र-स्पर्शन	२ ७
नाना जीवोंकी अपेक्षा काल	२९७
नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर	२९७
भाव	२९७
अल्पबहुत्व	२९७

पदनिक्षेप स्थितिसंक्रम

विषय	पृष्ठ
पदनिक्षेपके तीन अनुयोगद्वारोंकी सूचना	२९८
समुत्कीर्तना	२९८
स्वामित्वके दो भेद	२९८
उत्कृष्ट	२९८
जघन्य	२९९
अल्पबहुत्व	२९९

वृद्धि स्थितिसंक्रम

विषय	पृष्ठ
वृद्धिके तेरह अनुयोगद्वारोंकी सूचना	२९९
समुत्कीर्तना	२९९
स्वामित्व	२९९
एक जीवकी अपेक्षा काल	३००
एक जीवकी अपेक्षा अन्तर	३०२
नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचयसे लेकर भाव तकके अनुयोगद्वारोंको स्थिति-विभक्तिके समान जाननेकी सूचना	३०३
अल्पबहुत्व	३०३
स्थानप्ररूपणा	३०३

उत्तरप्रकृतिस्थितिसंक्रम

विषय	पृष्ठ
उसके विषयमें २४ अनुयोगद्वारोंकी व भुजगारादिककी सूचना	३०४
अद्धाच्छेदके दो भेद	३०४
उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम अद्धाच्छेद	३०४
जघन्य स्थितिसंक्रम अद्धाच्छेद	३०५
सर्वादि अनुयोगद्वारोंको स्थितिविभक्तिके समान जाननेकी सूचना	३१०
स्वामित्व	३११
उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमस्वामित्व	३११
जघन्य स्थितिसंक्रम स्वामित्व	३१२
एक जीवकी अपेक्षा काल	३२३
उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम काल	३२३
जघन्य स्थितिसंक्रम काल	३२६
एक जीवकी अपेक्षा अन्तर	३३२
उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम अन्तर	३३२
जघन्य स्थितिसंक्रम अन्तर	३३३
नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय	३३६
उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम भंगविचय	३३६
जघन्य स्थितिसंक्रम भंगविचय	३३७
भागाभाग आदिको स्थितिविभक्तिके समान जाननेकी सूचना	३३८
नाना जीवोंकी अपेक्षा काल	३३८
उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम काल	३३८
जघन्य स्थितिसंक्रम काल	३३९
नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर	३४१
उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम अन्तर	३४१
जघन्य स्थितिसंक्रम अन्तर	३४१
सन्निकर्ष	३४२
उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम सन्निकर्ष	३४२
जघन्य स्थितिसंक्रम सन्निकर्ष	३४३
भाव	३४६
अल्पबहुत्व	३४६
उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम अल्पबहुत्व	३४६
जघन्य स्थितिसंक्रम अल्पबहुत्व	३४८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विषय	पृष्ठ
भुजगार स्थितिसंक्रम	
भुजगारसंक्रम	३५९
अर्थपद	३६०
भुजगार आदि पदोंका अर्थ	३६०
इस विषयमें तेरह अनुयोगद्वारोंकी सूचना	३६०
समुत्कीर्तना	३६०
स्वामित्व	३६०
एक जीवकी अपेक्षा काल	३६२
एक जीवकी अपेक्षा अन्तर	३७२
नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय	३७६
भागाभाग	३७८
परिमाण	३७८
क्षेत्र और स्पर्शन	३७८
नाना जीवोंकी अपेक्षा काल	३७९
नाना जीवों की अपेक्षा अन्तर	३८१
भाव	३८४
अल्पबहुत्व	३८४
पदनिक्षेप स्थितिसंक्रम	
उसमें तीन अनुयोगद्वार	३८८
समुत्कीर्तना	३८८
उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम समुत्कीर्तना	३८८
जघन्य स्थितिसंक्रम समुत्कीर्तना	३८८
स्वामित्व	३८९
ओघ उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम स्वामित्व	३८९
ओघ जघन्य स्थितिसंक्रम स्वामित्व	३९५
ओघादेश उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम स्वामित्व	३९७
ओघादेश जघन्य स्थितिसंक्रम स्वामित्व	३९९
अल्पबहुत्व	४००
वृद्धि स्थितिसंक्रम	
उसमें तीन अनुयोगद्वार	४०१
वृद्धिका स्वरूप	४०२
अनुयोगद्वारोंके नाम और उनका स्वरूप	४०२
ओघसमुत्कीर्तना	४०२
आदेशसमुत्कीर्तना	४०६
प्ररूपणा	४१०
एक जीवकी अपेक्षा काल	४११
एक जीवकी अपेक्षा अन्तर	४१४
नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय	४१५
भागाभाग	४१६
परिमाण	४१६
क्षेत्र	४१७
स्पर्शन	४१८
नानाजीवोंकी अपेक्षा काल	४१८
नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर	४१९
भाव	४२०
अल्पबहुत्व	४२०
स्थितिसंक्रमस्थान	४२८

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सिरि-जइवसहाइरियविरइय-चुण्णिसुत्तसमण्णिदं

सिरि-भगवंतगुणहरभडारओवइट्ठं

क सा य पा हु डं

तस्स

सिरि-वीरसेणाइरियविरइया टीका

जयधवला

तत्थ

बंधगो णाम छट्ठो अत्थाहियारो

पणमिय णीसंकमणो पच्चूहसमुद्दसंकमे जिणचलणे ।
बंधगमहाहियारं वोच्छं जत्थेव संकमो लीणो ॥१॥

जो विघ्नरूपी समुद्रको लांघ गये हैं ऐसे जिन चरणोंको निःशंक मनसे नमस्कार करके जिसमें संक्रम अधिकार लीन है ऐसे बन्धक नामक महाधिकारका व्याख्यान करता हूँ ॥१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

❀ बंधगे त्ति एदस्स वे अणियोगद्दाराणि। तं जहा— बंधो च संकमो च।

§ १. एदस्स सुत्तस्स अत्थविवरणं कस्सामो। तं जहा—बंधगे त्ति एदस्स पदस्स पढममूलगाहापडिबद्धस्स अत्थपरूवणे कीरमाणे तत्थ इमाणि वे अणियोगद्दाराणि णादव्वाणि। काणि ताणि त्ति सिस्साहिप्पायमासंकिय बंधो च संकमो चेति तेसिं णामणिद्देसो कओ। तत्थ जम्मि अणियोगद्दारे कम्मइयवग्गणाए पोग्गलक्खंधाणं कम्मपरिणामपाओग्गभावेणावट्ठिदाणं जीवपदेसेहिं सह मिच्छत्तादिपच्चयवसेण संबंधो पयडि-ट्ठिदि-अणुभाग-पदेसभेयभिण्णो परूविज्जइ तमणुयोगद्दारं बंधो त्ति भण्णदे। तहा बंधेण लद्धप्पसरूवस्स कम्मस्स मिच्छत्तादिभेयभिण्णस्स समयाविरोहेण सहावंतरसंकंतिलक्खणो संकमो पयडिसंकमादिभेयभिण्णो जत्थ सवित्थरमणुमग्गिज्जदे तमणियोगद्दारं संकमो त्ति भण्णदे। एवमेदाणि दोण्णि अणियोगद्दाराणि बंधगमहाहियारे होंति त्ति सुत्तत्थसंगहो। कथमेत्थ संकमस्स बंधगववएसो त्ति णासंकणिज्जं, तस्स वि बंधंतब्भावित्तादो। तं जहा—दुविहो बंधो अकम्मबंधो कम्मबंधो चेदि। तत्थाकम्मबंधो णाम कम्मइयवग्गणादो अकम्मसरूवेणावट्ठिदपदेसाणं गहणं। कम्मबंधो णाम कम्मसरूवेणावट्ठिदपोग्गलाणमण्णपयडिसरूवेण परिणमणं। तं जहा—सादत्ताए बद्धकम्ममंतरंगपच्चयविसेसवसेणासादत्ताए जदा परिणामिज्जइ, जदा वा कसायसरूवेण

✻ 'बन्धक' इस अर्थाधिकारके दो अनुयोगद्वार हैं। यथा—बन्ध और संक्रम।

§ १. अब इस सूत्रका अर्थ कहते हैं। यथा—प्रथम मूल गाथामें 'बन्धक' यह पद आया है। उसके अर्थका व्याख्यान करने पर वहाँ ये दो अनुयोगद्वार जानने चाहिये। वे कौन हैं यह शिष्यका प्रश्न है। इसपर सूत्रमें बन्ध और संक्रम इस प्रकार उनका नाम निर्देश किया है। उनमेंसे जिस अनुयोगद्वारमें कार्मणवर्गणाके कर्मरूप परिणमन करनेकी योग्यताको प्राप्त हुए पुद्गल स्कन्धोंका जीव प्रदेशोंके साथ मिथ्यात्व आदिके निमित्तसे प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और प्रदेशके भेदसे चार प्रकारका सम्बन्ध कहा जाता है उस अनुयोगद्वारको 'बन्ध' कहते हैं। तथा बन्धसे जिन्होंने कर्मभावको प्राप्त किया है और जो मिथ्यात्व आदि अनेक भेदरूप हैं ऐसे कर्मोंका यथाविधि स्वभावान्तर संक्रमणरूप संक्रमका प्रकृति संक्रम आदि भेदोंको लिए हुए जिसमें विस्तार के साथ विचार किया जाता है उस अनुयोगद्वारको संक्रम कहते हैं। इस प्रकार बन्धक नामके महाधिकारमें ये दो ही अनुयोगद्वार होते हैं यह इस सूत्रका समुदायार्थ है।

शंका—यहाँ पर संक्रमको बन्धक संज्ञा कैसे प्राप्त होती है?

समाधान—ऐसी आशंका करना ठीक नहीं है, क्योंकि संक्रमका भी बन्धमें अन्तर्भाव हो जाता है। यथा—अकर्मबन्ध और कर्मबन्ध ऐसे बन्धके दो भेद हैं। उनमें से जो कार्मण वर्गणाओंमें से अकर्म रूपसे स्थित परमाणुओंका ग्रहण होता है वह अकर्मबन्ध है और कर्मरूपसे स्थित पुद्गलोंका अन्य प्रकृति रूपसे परिणमना कर्मबन्ध है। उदाहरणार्थ—सातारूपसे बन्धको प्राप्त हुए जो कर्म अन्तरंग कारणके मिलने पर जब असातारूपसे परिणमन करते हैं, या कषायरूपसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बद्धा कम्मंसा बंधावलियं वोलाविय णोकसायसरूवेण संकामिज्जंति तदा सो कम्मबंधो उच्चइ, कम्मसरूवापरिच्चाएणेव कम्मंतरसरूवेण बज्झमाणत्तादो ।

❀ एत्थ सुत्तगाहा ।

§ २. एत्थ एदेसु[1] बंध-संकमसण्णिदेसु अणियोगद्दारेसु बंधगे त्ति बीजपदम्मि णिलीणेसु सुत्तगाहा संगहियासेसपयदत्थसारा गुणहराइरियमुहविणिग्गया अत्थि तमिदाणिं वत्तइस्सामो त्ति वुत्तं होइ । तं जहा—

(५) कदि पयडीओ बंधदि ट्ठिदि-अणुभागे जहण्णमुक्कस्सं ।
संकामेइ कदिं वा गुणहीणं वा गुणविसिट्ठं ॥२३॥

§ ३. एदिस्से गाहाए पुच्छामेत्तेण सूचिदासेसपयदत्थपरूवणाए अत्थविहासा

बंधे हुए कर्म बन्धावलिके बाद जब नोकषायरूपसे परिणमन करते हैं तब वह कर्मबन्ध कहलाता है, क्योंकि कर्मरूपताका त्याग किये बिना ही ये कर्मान्तररूपसे पुनः बंधते हैं ।

विशेषार्थ—'पेज्जदोसविहत्ती' इत्यादि प्रथम मूल गाथामें 'बंधगे चेय' यह पद आया है । यहाँ पर इसी पदका व्याख्यान करते हुए चूर्णिसूत्रकारने बन्ध और संक्रम इन दो अधिकारों के द्वारा उसके व्याख्यान करनेका निर्देश किया है । जो कार्मण वर्गणाएँ आत्मासे सम्बद्ध नहीं हैं उनका बन्धके कारणोंके मिलने पर आत्मासे बन्धको प्राप्त होना ही बन्ध है और बन्धको प्राप्त हुए कर्मोंका यथायोग्य सामग्रीके मिलने पर अन्य सजातीय प्रकृति रूपसे बदल जाना संक्रम है । इस बन्धक नामक अधिकारमें इन दोनों विषयोंका विस्तारसे वर्णन किया गया है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । यद्यपि यहाँ यह शंका उठाई गई है कि बन्धक अधिकारमें बन्धका वर्णन करना तो क्रम प्राप्त है पर इसमें संक्रमका वर्णन नहीं किया जा सकता, क्यों कि संक्रम बन्धका भेद नहीं है । इसका जो समाधान किया है उसका आशय यह है कि बन्धके ही दो भेद हैं—अकर्मबन्ध और कर्मबन्ध । इनमेंसे अकर्मबन्धका दूसरा नाम बन्ध है और कर्मबन्धका दूसरा नाम संक्रम है । इस प्रकार विचार करने पर बन्ध और संक्रम इन दोनोंका बन्धक अधिकारमें समावेश हो जाता है, अतः एक बन्धक अधिकारद्वारा बन्ध और संक्रम इन दोनोंका वर्णन करना अनुचित नहीं है ।

❀ इस विषय में सूत्र गाथा ।

§ २. यहाँ पर अर्थात् 'बन्धक' इस बीज पदमें अन्तर्भूत हुए बन्ध और संक्रम इन दो अनुयोगद्वारोंके विषयमें जिसमें प्रकृत अर्थका सब सार संगृहीत है और गुणधर आचार्यके मुखसे निकली है ऐसी एक गाथा है । यथा—

(५) यह जीव कितनी प्रकृतियोंको व कितनी स्थिति, अनुभाग और जघन्य उत्कृष्ट रूप प्रदेशोंको बांधता है । तथा कितनी प्रकृति, स्थिति व अनुभागका और कितने गुणे हीन व कितने गुणे अधिक प्रदेशोंका संक्रमण करता है ॥ २३ ॥

§ ३. इस गाथामें केवल पृच्छा द्वारा जो पूरे प्रकृत अर्थकी प्ररूपणा सूचित की गई है उसका

---

१. ता० प्रतौ पदेसु इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चुण्णिसुत्तणिबद्धा त्ति तदणुसारेणेव विवरणं कस्सामो । तं जहा—

❀ एदीए गाहाए बंधो च संकमो च सूचिदो होइ ।

§ ४. कुदो ? गाहापुव्वपच्छद्धेसु जहाकमं दोण्हमेदेसिमत्थाणं णिबद्धत्तदंसणादो। एवमेदेण सुत्तेण गाहाए समुदायत्थो परूविदो । संपहि पदच्छेदमुहेणावयवत्थपरूवणं कुणमाणो उवरिमपबंधमाह—

❀ पदच्छेदो ।

§ ५. सुगमं ।

❀ तं जहा ।

§ ६. सुगमं ।

❀ कदि पयडीओ बंधइ त्ति पयडिबंधो ।

§ ७. कदि पयडीओ बंधइ त्ति एदम्मि सुत्तपदे केत्तियाओ पयडीओ मोहणिज्जपडिबद्धाओ बंधइ, किमेक्कमाहो दोण्णि तिण्णि वा इच्चादिपुच्छामेत्तवावारेण सव्वो पयडिबंधो णिलीणो त्ति गहेयव्वो, एदस्स देसामासियभावेणावट्ठाणादो ।

❀ ट्ठिदि-अणुभागे त्ति ट्ठिदिबंधो अणुभागबंधो च ।

विशेष खुलासा चूर्णिसूत्रोंमें किया है, इसलिए चूर्णिसूत्रोंके अनुसार ही यहाँ व्याख्यान करते हैं । यथा—

*** इस गाथा द्वारा बन्ध और संक्रम ये दो अधिकार सूचित किये गये हैं ।**

§ ४. क्योंकि गाथाके पूर्वार्ध और उत्तरार्धमें क्रमसे निबद्धरूपसे ये दो ही अधिकार देखे जाते हैं ।

इस प्रकार इस सूत्रद्वारा गाथाके समुदायार्थका कथन किया । अब पदच्छेदद्वारा प्रत्येक पदके अर्थका कथन करते हुए आगेके प्रबन्धका निर्देश करते हैं—

*** अब पदच्छेद करते हैं ।**

§ ५. यह सूत्र सुगम है ।

*** यथा—**

§ ६. यह सूत्र भी सुगम है ।

*** 'कदि पयडीयो बंधदि' इस पदसे प्रकृतिबन्धको सूचित किया गया है ।**

§ ७. गाथा सूत्रके 'कदि पयडीयो बंधदि' इस पदमें मोहनीयकी कितनी प्रकृतियोंको बाँधता है, क्या एक प्रकृतिको बाँधता है अथवा दो या तीन प्रकृतियोंको बाँधता है इत्यादि पृच्छाविषयक व्यापार द्वारा पूरा प्रकृतिबन्ध अन्तर्भूत है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि यह पद देशामर्षकभावसे अवस्थित है ।

*** 'ट्ठिदि-अणुभागे' इस पदसे स्थितिबन्ध और अनुभागबन्धको सूचित किया गया है ।**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ८. ट्ठिदि-अणुभागे त्ति गाहापुव्वद्धपडिबद्धे सुत्तपदे ट्ठिदिबंधो अणुभागबंधो च णिलीणो त्ति गहेयव्वो, संगहिदसारस्सेदस्स पज्जवट्ठियपरूवणाए जोणिभावेणावट्ठाणादो।

❀ जहण्णमुक्कस्सं ति पदेसबंधो।

§ ९. जहण्णमुक्कस्सं ति गाहापुव्वद्धपडिबद्धे बीजपदे पदेसबंधो संगहिओ त्ति गहेयव्वं, किं जहण्णमुक्कस्सं वा पदेसग्गेण बंधइ त्ति सुत्तत्थसंबंधावलंबणादो। एवमेत्तिएण पबंधेण गाहापुव्वद्धे पयडि-ट्ठिदि-अणुभाग-पदेसबंधाणं पडिबद्धत्तं परूविय संपहि गाहापच्छद्धविहाणट्ठमाह—

❀ संकामेदि कदिं वा त्ति पयडिसंकमो च ट्ठिदिसंकमो च अणुभागसंकमो च गहेयव्वो।

§ १०. कदि पयडीओ संकामेइ, कदि वा ट्ठिदि-अणुभाए संकामेइ त्ति गाहापुव्वद्धादो अहियारवसेणाहिसंबंधादो तिण्हमेदेसिमेत्थ संगहो ण विरुज्झदे।

❀ गुणहीणं वा गुणविसिट्ठं ति पदेससंकमो सूचिओ।

§ ११. गुणहीणं वा गुणविसिट्ठं ति एदेण बीजपदेण पदेससंकमो सूचिओ, किं गुणहीणं पदेसग्गं संकामेइ, किं वा गुणविसिट्ठमिदि सुत्तत्थसंबंधावलंबणादो।

---

§ ८. गाथाके पूर्वार्धमें आये हुए 'ट्ठिदि-अणुभागे' इस सूत्रपदमें स्थितिबन्ध और अनुभागबन्ध अन्तर्भूत हैं ऐसा यहाँ जानना चाहिये, क्योंकि सारभूत विषयका संग्रह करनेवाला यह पद पर्यायार्थिक प्ररूपणाके योनिरूपसे अवस्थित है।

* 'जहण्णमुक्कस्सं' इस पदसे प्रदेशबन्धको सूचित किया गया है।

§ ९. गाथाके पूर्वार्धमें आये हुए 'जहण्णमुक्कस्सं' इस बीजपदमें प्रदेशबन्ध संग्रहीत है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि यहाँ पर प्रदेशरूपसे जघन्य या उत्कृष्ट कितने प्रदेशोंको बाँधता है' इस प्रकार सूत्रार्थके सम्बन्धका अवलम्बन लिया गया है। इस प्रकार इतने प्रबन्ध द्वारा गाथाके पूर्वार्धमें प्रकृतिबन्ध, स्थितबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्धका उल्लेख किया है, यह बतलाकर अब गाथाके उत्तरार्धका कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

* 'संकामेदि कदिं वा' इस पदसे प्रकृतिसंक्रम, स्थितिसंक्रम और अनुभागसंक्रमको ग्रहण करना चाहिए।

§ १०. कितनी प्रकृतियोंका संक्रमण करता है या कितनी स्थिति और अनुभागका संक्रमण करता है इस प्रकार यहाँ प्रकरणवश गाथाके पूर्वार्धका सम्बन्ध हो जानेसे प्रकृति, स्थिति और अनुभाग इन तीनोंका संग्रह यहाँ पर विरोधको प्राप्त नहीं होता।

* 'गुणहीणं वा गुणविसिट्ठं' इस पदसे प्रदेशसंक्रमको सूचित किया गया है।

§ ११. गाथासूत्रमें आये हुए 'गुणहीणं वा गुणविसिट्ठं' इस बीजपदसे प्रदेशसंक्रमका सूचन होता है, क्योंकि यहाँपर 'कितने गुणे हीन प्रदेशोंका संक्रमण करता है या कितने गुणे अधिक प्रदेशोंका संक्रमण करता है' इस प्रकार गाथा सूत्रके अर्थके सम्बन्धका अवलम्बन लिया गया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

❀ सो पुण पयडिट्ठिदि-अणुभाग-पदेसबंधो बहुसो परूविदो ।

§ १२. सो उण गाहाए पुव्वद्धम्मि णिलीणो पयडि-ट्ठिदि-अणुभाग-पदेसविसओ बंधो बहुसो गंथंतरेसु परूविदो त्ति तत्थेव तव्वित्थरो दट्ठव्वो, ण एत्थ पुणो परूविज्जदे, पयासियपयासणे फलविसेसाणुवलंभादो। तदो महाबंधाणुसारेणेत्थ पयडि-ट्ठिदि-अणुभाग-पदेसबंधेसु विहासिय समत्तेसु तदो बंधो समत्तो होइ।

❀ संकमे पयदं ।

§ १३. जहा उद्देसो तहा णिद्देसो त्ति णायादो बंधसमत्तिसमणंतरं पत्तावसरो संकममहाहियारो त्ति जाणावणट्ठमेदं सुत्तमागयं। एत्थ च पयदस्स संकमाहियारस्स उवक्कमो णिक्खेवो णओ अणुगमो चेदि चउव्विहो अवयारो परूवेयव्वो, अण्णहा तदणुगमोवायाभावादो। तत्थ ताव पंचविहोवक्कमपरूवणट्ठमुत्तरसुत्तमोइण्णं—

※ किन्तु उनमेंसे प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्धका बहुत बार प्ररूपण किया गया है ।

§ १२. किन्तु गाथाके पूर्वार्धमें जो प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्ध अन्तर्भूत हैं ऐसे बन्धका ग्रन्थान्तरोंमें बहुतबार प्ररूपण किया है, इसलिए उसका विस्तृत विवेचन वहीं पर देखना चाहिये। यहाँ पर उसका फिरसे कथन नहीं करते हैं, क्योंकि प्रकाशित हुई वस्तुके पुनः प्रकाशन करनेमें कोई विशेष लाभ नहीं है। इसलिये महाबन्धके अनुसार प्रकृतिबन्ध, स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध, और प्रदेशबन्धका यहाँ व्याख्यान कर लेनेपर बन्ध अनुयोगद्वार समाप्त होता है।

विशेषार्थ—'कदि पयडीओ' इत्यादि गाथामें प्रकृतिबन्ध आदि चार प्रकारके बन्धों और प्रकृतिसंक्रम आदि चार प्रकारके संक्रमोंका निर्देश किया है। यद्यपि गाथाके उत्तरार्धमें प्रकृति, स्थिति और अनुभागपदका स्पष्ट निर्देश नहीं है पर गाथाके पूर्वार्धमें ये पद आये हैं, अतः इनका वहाँ भी सम्बन्ध कर लेनेसे 'संकामेदि कदिं वा इस पदद्वारा प्रकृतिसंक्रम, स्थितिसंक्रम, और अनुभागसंक्रमका सूचन हो जाता है। इस प्रकार चूर्णिसूत्रकारने प्रारम्भमें जो 'बंधक' इस अधिकारमें बन्ध और संक्रम इन दोनोंके अन्तर्भाव करनेका निर्देश किया है सो वह इस गाथाके अनुसार ही किया है यह ज्ञात हो जाता है। यद्यपि इस प्रकरणमें चारों प्रकारके बन्धोंका भी निर्देश करना चाहिये था पर नहीं करनेका कारण चूर्णिकारने यह बतलाया है कि उसका अनेकबार कथन किया जा चुका है अतः यहाँ नहीं करते हैं। आशय यह है कि महाबन्ध आदिमें बन्धप्रकरणका विस्तृत विवेचन किया ही है अतः यहाँ उसका निर्देश नहीं किया गया है। तथापि महाबन्धसे यहाँपर इस प्रकरणको पूरा कर लेना चाहिये।

※ अब संक्रमका प्रकरण है ।

§ १३. उद्देश्यके अनुसार निर्देश किया जाता है इस न्यायके अनुसार बन्ध प्रकरणकी समाप्तिके बाद अब संक्रम महाधिकारका वर्णन अवसर प्राप्त है यह बतलानेके लिये यह सूत्र आया है। इस प्रकार प्रकरणप्राप्त संक्रम अधिकारका उपक्रम, निक्षेप, नय और अनुगम इस रूपसे चार प्रकारके अवतारका कथन करना चाहिये। नहीं तो उसका ठीक तरहसे ज्ञान नहीं हो सकता। इसमें पहले पाँच प्रकारके उपक्रमका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र आया है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

❀ **संकमस्स पंचविहो उवक्कमो—आणुपुव्वी णामं पमाणं वत्तव्वदा अत्थाहियारो चेदि ।**

§ १४. पयदत्थाहियारस्स सोदाराणं बुद्धिविसयपच्चासण्णभावो जेण कीरदे सो उवक्कमो णाम । पुण सो पंचविहो आणुपुव्वीआदिभेएण । तत्थाणुपुव्वी तिविहा—पुव्वाणुपुव्वी पच्छाणुपुव्वी जत्थतत्थाणुपुव्वी चेदि । तत्थ पुव्वाणुपुव्वीए कसायपाहुडस्स पण्हारसण्हमत्थाहियाराणं मज्झे पंचमो एसो अत्थाहियारो । पच्छाणुपुव्वीए एक्कारसमो । जत्थतत्थाणुपुव्वीए पढमो विदिओ तदिओ एवं जाव पण्हारसमो वा त्ति वत्तव्वं । णामभेदस्स संकमो त्ति गोण्णपदं, पयडि-ट्ठिदि-अणुभाग-पदेससंकमसरूव-वण्णणादो । पमाणमेत्थ अक्खर-पद-संघाय-पडिवत्ति-अणियोगद्दारेहि संखेज्जं, अत्थदो अणंतमिदि वत्तव्वं । वत्तव्वदा एदस्स ससमयो । एत्थ अत्थाहियारो चउव्विहो थप्पो, उवरि सुत्तयारेण समुहेणेव परूविस्समाणत्तादो । एवमुवक्कमो गओ ।

❀ **संक्रमका उपक्रम पाँच प्रकारका है—आनुपूर्वी, नाम, प्रमाण, वक्तव्यता और अर्थाधिकार ।**

§ १४. जिससे प्रकृत अर्थाधिकार श्रोताओंके बुद्धिविषय होनेके अनुकूल होता है वह उपक्रम कहलाता है । किन्तु वह आनुपूर्वी आदिके भेदसे पांच प्रकारका है । उनमेंसे आनुपूर्वीके तीन भेद हैं—पूर्वानुपूर्वी, पश्चादानुपूर्वी और यत्रतत्रानुपूर्वी । उनमेंसे पूर्वानुपूर्वीकी अपेक्षा कषायप्राभृतके पन्द्रह अर्थाधिकारोंमेंसे यह पांचवां अर्थाधिकार है । पश्चादानुपूर्वीकी अपेक्षा ग्यारहवाँ अर्थाधिकार है और यत्रतत्रानुपूर्वीकी अपेक्षा पहला, दूसरा, तीसरा इसी प्रकार क्रमसे जाकर पन्द्रहवां अर्थाधिकार है ऐसा यहां कहना चाहिये । इसका संक्रम यह नाम गौण्यपद है, क्योंकि इसमें प्रकृतिसंक्रम, स्थितिसंक्रम, अनुभागसंक्रम और प्रदेशसंक्रमके स्वरूपका वर्णन किया गया है । इसका प्रमाण अक्षर, पद, संघात, प्रतिपत्ति और अनुयोगद्वारोंकी अपेक्षा संख्यात है तथा अर्थकी अपेक्षा अनन्त है ऐसा यहां कहना चाहिये । वक्तव्यताके तीन भेद हैं । उनमेंसे इसकी स्वसमय वक्तव्यता है । प्रकृत अर्थाधिकारके चार भेद हैं जिनका कथन स्थगित करते हैं, क्योंकि आगे सूत्रकार स्वमुखसे ही उनका कथन करनेवाले हैं । इस प्रकार उपक्रमका कथन समाप्त हुआ ।

विशेषार्थ—उप उपसर्ग पूर्वक क्रम् धातुसे उपक्रम शब्द बना है । इसका अर्थ है समीपमें जाना । उपक्रमके जो आनुपूर्वी आदि पांच भेद बतलाये हैं उनको भले प्रकारसे जान लेनेपर श्रोताको प्रकृत अधिकारका संक्षेपतः पूरा ज्ञान हो जाता है । आनुपूर्वीसे तो वह यह जान लेता है कि यह प्रारम्भसे गिननेपर कितनेवां, अन्तसे गिननेपर कितनेवां और जहां कहींसे गिननेपर कितनेवां अधिकार है । नामसे प्रकृत प्रकरणका नाम और इसका नामके दस या छह भेदोंमेंसे किसमें अन्तर्भाव होता है यह जान लेता है । प्रमाणसे प्रकृत प्रकरणके परिमाणका ज्ञान हो जाता है । वक्तव्यतासे यह व्याख्यान स्वसमय या परसमय इनमेंसे किस अपेक्षासे किया जा रहा है यह ज्ञान हो जाता है । तथा अर्थाधिकारसे प्रकृत प्रकरणके अवान्तर अधिकारोंका ज्ञान हो जाता है । इस प्रकार जिस अधिकारका व्याख्यान करनेवाले होते हैं उसका आनुपूर्वी आदि द्वारा पूरा ज्ञान हो जाता है, इसलिये इन सबको उपक्रम कहते हैं । यहां पर संक्रम प्रकरणका वर्णन करनेवाले हैं, इसलिये आनुपूर्वी आदि द्वारा उसका उपक्रम बतलाया गया है ऐसा जानना चाहिये ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

❀ एत्थ णिक्खेवो कायव्वो ।

§ १५. एत्थुद्देसे संकमस्स णिक्खेवो कायव्वो होइ, अण्णहा अपयदणिरायरणमुहेण पयदत्थजाणावणोवायाभावादो । उत्तं च—

अवगयणिवारणट्ठं पयदस्स परूवणाणिमित्तं च ।
संसयविणासणट्ठं तच्चत्थवहारणट्ठं च ॥१॥

§ १६. तदो एत्थ णिक्खेवो अवयारेयव्वो त्ति सिद्धं ।

❀ णामसंकमो ठवणसंकमो दव्वसंकमो खेत्तसंकमो कालसंकमो भावसंकमो चेदि ।

§ १७. एवमेदे छण्णिक्खेवा एत्थ होंति त्ति भणिदं होइ । संपहि एदेसिं णिक्खेवाणमत्थपरूवणं थप्पं कादूण णयाणमवयारो ताव कीरदे, णयविहागे अणवगए[१] तदत्थणिण्णयाणुववत्तीदो ।

❀ णेगमो सव्वे संकमे इच्छइ ।

§ १८. कुदो ? दव्वपज्जायणयद्दयविसयत्तादो । णेदस्स सुत्तस्स तदुभय[२]विसयत्तमसिद्धं, यदस्ति न तद्द्वयमतिलंघ्य वर्तते इति नैकगमो नैगमो इति वचनात्तत्सिद्धेः । तदो सामण्णविसेसणिबंधणा सव्वे णिक्खेवा एदस्स विसए संभवंति त्ति सिद्धं ।

*** यहांपर निक्षेप करना चाहिये ।**

§ १५. अब इस स्थलपर संक्रमका निक्षेप करना चाहिये, क्योंकि इसके बिना अप्रकृत अर्थका निराकरण करके प्रकृत अर्थके ज्ञान करानेका दूसरा कोई उपाय नहीं है । कहा भी है—

अप्रकृत अर्थका निवारण करना, प्रकृत अर्थका प्ररूपण करना, संशयका विनाश करना और तत्त्वार्थका निश्चय करना इन चार प्रयोजनोंकी सिद्धिके लिये निक्षेप किया जाता है ॥१॥

§ १६ इस लिये यहांपर निक्षेपका अवतार करना चाहिये यह बात सिद्ध होती है ।

*** नामसंक्रम, स्थापनासंक्रम, द्रव्यसंक्रम, क्षेत्रसंक्रम, कालसंक्रम और भावसंक्रम ।**

§ १७. इस प्रकार ये छह निक्षेप यहांपर होते हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है । अब इन निक्षेपोंका विशेष व्याख्यान स्थगित करके पहले नयोंका अवतार करते हैं, क्योंकि नयविभागको जाने बिना निक्षेपोंका ठीक तरहसे निर्णय नहीं किया जा सकता ।

*** नैगम नय सब संक्रमोंको स्वीकार करता है ।**

§ १८. क्योंकि इसका विषय द्रव्य और पर्याय दोनों हैं । यदि कहा जाय कि नैगम नय द्रव्य और पर्याय इन दोनोंको विषय करता है यह बात नहीं सिद्ध होती, सो यह कहना भी ठीक नहीं है, क्योंकि 'जो है वह दोको उल्लंघनकर नहीं पाया जाता' इस उक्तिके अनुसार जो एकको प्राप्त न होकर अनेक अर्थात् दोको प्राप्त होता है वह नैगम नय है इस निरुक्तिवचनसे नैगमनयका द्रव्य और पर्याय दोनोंको विषय करना सिद्ध होता है । इसलिये सामान्य और विशेषकी अपेक्षा प्रवृत्त होनेवाले सब निक्षेप इसके विषय रूपसे संभव हैं यह बात सिद्ध होती है ।

---

१. ता० प्रतौ अणवगए णयविभागे इति पाठः । २. ता० प्रतौ णेदस्स तदुभय-इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

❀ संगह-ववहारा कालसंकममवणेंति ।

§ १९. एत्थ संगह-ववहारा सव्वे संकमे इच्छंति त्ति अहियारसंबंधो कायव्वो, दव्वट्ठिएसु सव्वेसिं णामादीणं संभवाविहारादो । णवरि कालसंकममवणेंति । कुदो ? संगहो ताव संखित्तवत्थुग्गहणलक्खणो । सामण्णावेक्खाए एक्को चेव कालो, ण तत्थ पुव्वावरीभावसंभवो, जेण तस्स संकमो होज्ज त्ति एदेणाहिप्पाएण कालसंकममवणेइ । ववहारणयस्स वि एवं चेव वत्तव्वं । णवरि कालसंकममवणेइ त्ति वुत्ते अदीदकालो सो चेव होऊण ण पुणो आगच्छइ, तस्सादीदत्तादो । ण चाण्णम्मि[1] आगए संते अण्णस्स संकमो वोत्तुं जुत्तो, अव्ववत्थावत्तीदो । तम्हा कालसंकममेसो णेच्छइ त्ति घेत्तव्वं ।

❀ उजुसुदो एदं च ठवणं च अवणेइ ।

§ २०. छण्हं णिक्खेवाणं मज्झे उजुसुदो एदमणंतरपरूविदं कालसंकमं ठवणासंकमं च अवणेइ, सेसचत्तारि संकमे इच्छइ त्ति वुत्तं होइ । कुदो दोण्हमेदेसिमणब्भुवगमो ? ण, एदस्स[2] विसए तब्भावसारिच्छसामण्णाणमभावेण तदुभयसंभवाणुवलंभादो । कधमुजुसुदे पज्जवट्ठिए णाम-दव्व-खेत्तसंकमाणं संभवो ? ण, उजुसुदवयणविच्छेद-

---

※ संग्रहनय और व्यवहारनय कालसंक्रमको स्वीकार नहीं करते हैं ।

§ १९. यहांपर संग्रह और व्यवहारनय सब संक्रमोंको स्वीकार करते हैं ऐसा प्रकरणके साथ सम्बन्ध कर लेना चाहिये, क्योंकि द्रव्यार्थिकनय नामादिक सबको विषय करते हैं ऐसा माननेमें कोई विरोध नहीं आता है । किन्तु ये दोनों नय कालसंक्रमको स्वीकार नहीं करते, क्योंकि संग्रहनय तो संग्रह की गई वस्तुको ग्रहण करता है । परन्तु सामान्यकी अपेक्षा काल एक ही है । उसमें पूर्वकाल और उत्तरकाल ऐसे भेद सम्भव नहीं हैं जिससे उसका संक्रम होवे । इस प्रकार इस अभियप्रायसे संग्रहनय कालसंक्रमको नहीं स्वीकार करता । व्यवहारनयकी अपेक्षा भी इसी प्रकार कथन करना चाहिये । किन्तु व्यवहारनय कालसंक्रमको नहीं स्वीकार करता ऐसा कहनेपर यह युक्ति देनी चाहिये कि अतीत काल वही होकर फिरसे नहीं आता है, क्योंकि वह बीत चुका है । और अन्य कालके आनेपर अन्य कालका संक्रम कहना युक्त नहीं है, अन्यथा अव्यवस्था दोष आता है । इसलिये व्यवहारनय भी कालसंक्रमको स्वीकार नहीं करता है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिये ।

※ ऋजुसूत्रनय इसको और स्थापनासंक्रमको स्वीकार नहीं करता ।

§ २० ऋजुसूत्रनय छह संक्रमोंमेंसे इस पूर्वमें कहे गये कालसंक्रमको और स्थापना संक्रमको स्वीकार नहीं करता, शेष चार संक्रमोंको स्वीकार करता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

शंका—ऋजुसूत्रनय इन दोनों संक्रमोंको क्यों स्वीकार नहीं करता ?

समाधान—नहीं, क्योंकि, तद्भावसादृश्यसामान्य ऋजुसूत्रका विषय नहीं होनेसे इन दोनोंको उसका विषय मानना सम्भव नहीं है ।

शंका—ऋजुसूत्रनयमें नाम, द्रव्य और क्षेत्र संक्रम कैसे सम्भव हैं ।

---

१. ता० प्रतौ तस्सादीह (द) त्तादो ? ण चाणु (ण्ण) म्मि इति पाठः । २. ता० प्रतौ –मणब्भुवगमो एदस्स इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कालब्भंतरे एदेसिं संभवं पडि विरोहाभावादो।

❀ सद्दस्स णामं भावो य।

§ २१. कुदो? सुद्धपज्जवट्ठियणए एदम्मि सेसणिक्खेवाणमसंभवादो। कथमेत्थ णामणिक्खेवस्स संभवो? ण, सद्दपहाणे एदम्मि तदत्थित्तं [पडि विरोहाभावादो]।

णिक्खेवणयपरूवणा गया।

समाधान—नहीं, क्योंकि वर्तमान कालके भीतर इन संक्रमोंका सद्भाव होनेमें कोई विरोध नहीं आता है।

*** नामसंक्रम और भावसंक्रम ये शब्दनयके विषय हैं।**

§ २१ क्योंकि शब्दनय शुद्ध पर्यायार्थिकनय है, इसलिये इसमें शेष निक्षेप असम्भव हैं।

शंका—इसमें नामनिक्षेप कैसे सम्भव है?

समाधान—नहीं, क्योंकि यह नय शब्दप्रधान है, इसलिये इसमें नामनिक्षेप है ऐसा स्वीकार कर लेनेमें कोई विरोध नहीं आता है।

विशेषार्थ—यहाँ संक्रमको नाम, स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव इन छह निक्षेपोंमें घटित करके उनमेंसे किस निक्षेपको कौन नय विषय करता है यह बतलाया है। मुख्य नय पाँच हैं- नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र और शब्द। जो संकल्प मात्रको ग्रहण करता है वह नैगमनय है इत्यादि रूपसे नैगमनयके अनेक लक्षण हैं। किन्तु यहाँ जो केवल द्रव्य या केवल पर्यायको, विषय न करके दोनोंको विषय करता है वह नैगमनय है, नैगमनयका ऐसा लक्षण स्वीकार कर लेनेसे सभी निक्षेप उसके विषय हो जाते हैं। इसीसे चूर्णिसूत्रकारने नैगमनय सब निक्षेपोंको स्वीकार करता है यह कहा है। यद्यपि संग्रहनय अभेदवादी है और संक्रम दो के बिना अर्थात् भेदके बिना बन नहीं सकता, इसलिये शुद्ध संग्रहका एक भी संक्रम विषय नहीं है। तथापि कालभेदके सिवा शेष सब भेद अभेददृष्टिसे अशुद्ध संग्रहके विषय हो सकते हैं, इस लिये काल-संक्रमके सिवा शेष सब संक्रम संग्रहनयके विषय बतलाये हैं। अब यहाँ दो प्रश्न होते हैं। प्रथम तो यह कि और भेदोंके समान कालभेद संग्रहनयका विषय क्यों नहीं है और दूसरा यह कि भावसंक्रम पर्यायरूप होनेके कारण वह संग्रहनयका विषय कैसे हो सकता है? इन दोनों प्रश्नोंका क्रमसे समाधान यह है कि ऐसा नियम है कि वस्तुमें जहाँ तक द्रव्यादि रूपसे भेद हो सकते हैं वहाँ तक वे दृष्टिभेदसे संग्रह और व्यवहारनयके विषय हैं और जहांसे कालभेद चालू हो जाता है वहांसे वे ऋजुसूत्रके विषय होते हैं। यतः कालसंक्रम कालभेदके बिना हो नहीं सकता, अतः इसे संग्रहनयका विषय नहीं माना है। अब भावनिक्षेप संग्रहनयका विषय क्यों है इसका विचार करते हैं—यद्यपि भाव और पर्याय ये एकार्थवाची शब्द हैं किन्तु द्रव्यके बिना केवल पर्याय नहीं पाई जाती। आशय यह है कि पर्यायसे उपलक्षित द्रव्य ही भाव कहलाता है, अतः इस विवक्षासे भावसंक्रम भी संग्रहनयका विषय माना गया है। व्यवहारनय भेद-वादी है। पर यह भी कालभेदको स्वीकार नहीं करता और एक कालमें संक्रम बन नहीं सकता, इसलिये कालनिक्षेप व्यवहारनयका भी विषय नहीं माना गया है। किन्तु शेष द्रव्यादि भेद व्यवहार नयमें बन जाते हैं, अतः कालसंक्रमके सिवा शेष सब संक्रम व्यवहारनयके भी विषय बतलाये गये हैं। ऋजुसूत्रनय वर्तमान पर्यायवादी है, इसलिये इसके रहते हुए जो निक्षेप सम्भव हैं वे ऋजुसूत्रके विषय हो सकते हैं शेष नहीं। शब्दनयके विषय नाम और भावनिक्षेप हैं यह स्पष्ट ही है।

इस प्रकार कौन निक्षेप किस नयके विषय हैं इसका कथन समाप्त हुआ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ २२. संपहि णिक्खेवत्थविहासणट्ठमुवरिमं पबंधमाह–

❀ णोआगमदो दव्वसंकमो ठवणिज्जो ।

§ २३. एत्थ णाम-ट्ठवणा संकमा आगमदो दव्वसंकमो च सुगमा त्ति ण परूविदा । णोआगमदव्वसंकमो पुण ताव ठवणिज्जो, तस्स पयदत्तादो बहुवण्णणिज्जत्तादो च । एवमेदं ठविय संपहि खेत्तसंकमसरूवपरूवणट्ठमुत्तरसुत्तं भणइ—

❀ खेत्तसंकमो जहा उड्ढलोगो संकंतो ।

§ २४. एत्थ 'खेत्तसंकमो जहा' त्ति आसंकिय 'उड्ढलोगो संकंतो' त्ति तस्स सरूवणिद्देसो कओ । उड्ढलोगणिद्देसेण तत्थ ट्ठियजीवाणमिह गहणं कायव्वं, अण्णहा उड्ढलोगस्स संकंतिविरोहादो । उड्ढलोगट्ठियदेवेसु इहागदेसु उड्ढलोगसंकमो जादो त्ति भावत्थो ।

❀ कालसंकमो जहा संकंतो हेमंतो ।

§ २५. जो सो पुव्वमइक्कंतो हेमंतो सो पडिणियत्तिय आगदो त्ति भणियं होइ । कथमइक्कंतस्स पुणरागमो त्ति णासंकणिज्जं, सारिच्छसामण्णावेक्खाए अइक्कंतस्स वि तस्स पुणरागमणं पडि विरोहाभावादो । अथवा वरिसयालपज्जाएणावट्ठिओ जो कालो

---

§ २२. अब निक्षेपोंके अर्थका विशेष व्याख्यान करनेके लिये आगेके प्रबन्धका निर्देश करते हैं—

* नोआगमद्रव्यसंक्रमका कथन स्थगित करते हैं ।

§ २३. नामसंक्रम, स्थापनासंक्रम और आगमद्रव्यसंक्रमका विवेचन सुगम है, इसलिए यहाँ उनका कथन नहीं किया। अब इसके आगे नोआगमद्रव्यसंक्रमका कथन करना चाहिये था किन्तु वह प्रकरण प्राप्त है और उसका बहुत वर्णन करना है इसलिये उसका कथन स्थगित करते हैं। इस प्रकार इसे स्थगित करके अब क्षेत्रसंक्रमके स्वरूपका निर्देश करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

* क्षेत्रसंक्रम यथा—ऊर्ध्वलोक संक्रान्त हुआ ।

§ २४. यहाँ पर क्षेत्रसंक्रम जैसे ऐसी आशंका करके 'उड्ढलोगो संकंतो' इस पदद्वारा उसके स्वरूपका निर्देश किया है। सूत्रमें जो 'ऊर्ध्वलोक' पदका निर्देश किया है सो उससे ऊर्ध्वलोकमें स्थित जीवोंका ग्रहण करना चाहिए, अन्यथा ऊर्ध्वलोकका संक्रमण होनेमें विरोध आता है। ऊर्ध्वलोकमें स्थित देवोंके यहाँ आनेपर वह ऊर्ध्वलोकका संक्रम कहलाता है यह इस सूत्रका भावार्थ है।

* कालसंक्रम यथा—हेमन्त ऋतु संक्रान्त हुई ।

§ २५. जो हेमन्त ऋतु पहले निकल गई थी वह पुनः लौट आई, यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

शंका—व्यतीत हुई हेमन्त ऋतुका फिरसे लौट आना कैसे सम्भव है ?

समाधान—ऐसी आशंका करना ठीक नहीं है, क्योंकि सादृश्यसामान्यकी अपेक्षा अतीत हुई हेमन्त ऋतुका फिरसे आगमन माननेमें कोई विरोध नहीं आता। अथवा जो

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सो तं छंडियूण हेमंतसरूवेण परिणदो त्ति एदस्स अत्थो वत्तव्वो। संपहि आगमभावसंकमसुवजुत्ततप्पाहुडजाणयविसयं सुगमत्तादो अपरूविय णोआगमभावसंकमपरूवणट्ठमाह—

❀ भावसंकमो जहा संकंतं पेम्मं।

§ २६. एत्थ पेम्मस्स जीवपज्जायत्तादो पत्तभाववदएसस्स विसयंतरसंकंती भावसंकमो त्ति घेत्तव्वो। प्रसिद्धश्चायं व्यवहारः, तथा हि वक्तारो भवन्ति संक्रान्तमस्य प्रेमान्यत्रामुष्मादिति।

❀ जो सो णोआगमदो दव्वसंकमो सो दुविहो कम्मसंकमो च णोकम्मसंकमो च[1]।

§ २७. जो सो पुव्वं ठविदो णोआगमदव्वसंकमो सो दुवियप्पो कम्म-णोकम्मभेएण, तदुभयवदिरित्तणोआगमदव्वस्साणुवलंभादो। तत्थ पढमस्स बहुवण्णणिज्जत्तादो पयदत्तादो च कमसुल्लंघिय थोववत्तव्वमेव ताव णोकम्मदव्वसंकमं णिदरिसणमुहेण परूवेइ—

❀ णोकम्मसंकमो जहा कट्ठसंकमो।

§ २८. कधमसंकंताणं कट्ठदव्वाणमेत्थ संकमववएसो ? न, संक्रम्यतेऽनेन

काल वर्षाकालरूपसे अवस्थित था वह वर्षाकालको छोड़कर हेमन्त रूपसे परिणत हो गया, यह इस सूत्रका अर्थ कहना चाहिये।

जो संक्रमप्राभृतका ज्ञाता है और उसके उपयोगसे युक्त है वह आगमभावसंक्रमप्राभृत है। यतः यह सुगम है अतः इसका कथन न करके अब नोआगमभावसंक्रमका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

* भावसंक्रम यथा—प्रेम संक्रान्त हुआ।

§ २६. यहाँ जीवकी पर्याय होनेसे प्रेमका भावरूपसे निर्देश किया है। उसका अन्य विषयरूपसे संक्रमण करना भावसंक्रम है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिये। जैसे कि लोकमें यह व्यवहार प्रसिद्ध है और वक्ता भी ऐसा कहते हैं कि इसका इससे प्रेम हट कर अन्यत्र संक्रान्त हो गया है।

* जो नोआगमद्रव्यसंक्रम है वह दो प्रकारका है—कर्मसंक्रम और नोकर्मसंक्रम।

§ २७. जो पहले नोआगमद्रव्यसंक्रम स्थगित कर आये हैं वह कर्म और नोकर्मके भेदसे दो प्रकारका है, क्यों कि इन दोके सिवा और नोआगमद्रव्य नहीं पाया जाता। उनमेंसे जो पहला कर्मनोआगमद्रव्यसंक्रम है उसका वर्णन बहुत है और उसका प्रकरण भी है अतः क्रमको छोड़कर जिसके विषयमें थोड़ा कहना है ऐसे नोकर्मद्रव्यसंक्रमका ही उदाहरणद्वारा कथन करते हैं—

* नोकर्मनोआगमद्रव्यसंक्रम यथा—काष्ठसंक्रम।

§ २८. शंका—काष्ठ द्रव्योंका संक्रमण तो होता नहीं, अर्थात् एक लड़की दूसरी

---

१. ता०प्रतौ कम्मसंकमो च णोकम्मसंकमो, आ० प्रतौ कम्मसंकमो णोकम्मसंकमो च इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

देशान्तरमिति संक्रमशब्दव्युत्पादनात् । णईतोये अण्णत्थ वा कत्थ वि कट्ठाणि ठविय जेणेच्छिदपदेसं गच्छंति सो कट्ठमओ संकमो कट्ठसंकमो त्ति भणियं होइ । णिदरिसण-मेत्तं चेदं तेणिट्ठ-पत्थर-मट्टिया-फलहसंकमाईणं गहणं कायव्वं, णोकम्मदव्वत्तं पडि विसेसाभावादो ।

लड़की रूप तो होती नहीं, फिर इन्हें यहाँ संक्रम संज्ञा कैसे दी है ?

समाधान—नहीं क्योंकि जिससे एक देशसे दूसरे देशमें संक्रमण किया जाता है वह संक्रम है, संक्रम शब्दकी इस व्युत्पत्तिसे उक्त कथन बन जाता है। नदी किनारे या अन्यत्र कहीं काष्ठोंको रखकर जिससे इच्छित स्थानको जाते हैं वह काष्ठमय संक्रम काष्ठसंक्रम है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। यह उदाहरणमात्र है इसलिये इससे इष्टकासंक्रम, पाषाणसंक्रम, मृत्तिकासंक्रम और फलकसंक्रम इत्यादिका ग्रहण करना चाहिये, क्यों कि ये सब नोकर्मद्रव्य है, इस अपेक्षा काष्ठसे इनमें कोई विशेषता नहीं है।

विशेषार्थ—पहले नामसंक्रम आदि छह संक्रमोंका उल्लेख कर आये हैं। यहाँ पर उन्हींका अर्थ दिया गया है। इनमें से नामसंक्रम, स्थापनासंक्रम, आगमद्रव्यसंक्रम और आगमभावसंक्रम इन्हें सरल समझ कर चूर्णिसूत्रकारने इनका खुलासा नहीं किया है। फिर भी यहाँ पर क्रमवार सभीका खुलासा किया जाता है। किसीका संक्रम ऐसा नाम रखना नामसंक्रम है। किसी अन्य वस्तुमें 'यह संक्रम है' ऐसी स्थापना करना स्थापनासंक्रम है। द्रव्यसंक्रमके दो भेद हैं—आगमद्रव्यसंक्रम और नोआगमद्रव्यसंक्रम । जो संक्रमविषयक शास्त्रका ज्ञाता हो किन्तु वर्तमानमें उसके उपयोगसे रहित हो वह आगमद्रव्यसंक्रम है। नोआगमद्रव्यसंक्रमके दो भेद हैं—कर्मनोआगमद्रव्यसंक्रम और नोकर्मनोआगमद्रव्यसंक्रम। कर्मनोआगमद्रव्यसंक्रम संक्रमको प्राप्त होनेवाला कर्म कहलाता है। यहाँ इस अनुयोगद्वारमें इसीका विस्तृत विवेचन किया जानेवाला है। नोकर्मनोआगमद्रव्यसंक्रम वे सहकारी कारण कहलाते हैं जिनके निमित्तसे एक देशसे दूसरे देशमें जानेमें सुगमता हो जाती है। उदाहरणार्थ लकड़ीका पुल, नौका, ईंटों, पत्थरों व फलकोंका पुल आदि। यद्यपि यहाँ संक्रम शब्दका अर्थ संक्रमण करके उसका यह नोकर्म बतलाया है पर कर्मद्रव्यसंक्रमका भी इसी प्रकार नोकर्म जान लेना चाहिये । जो कर्मद्रव्यके संक्रमणमें सहकारी होगा वह कर्मद्रव्यका नोकर्म कहलायगा । उदाहरणार्थ—असाताके कर्मपरमाणुओंको सातारूप परिणमानेमें सम्पत्ति आदि निमित्त पड़ते हैं, इसलिये ये असाताकर्मके साताकर्मरूप संक्रमणके निमित्त कारण हैं। इसी प्रकार सर्वत्र जान लेना चाहिये। एक क्षेत्रसे दूसरे क्षेत्रमें जाना क्षेत्रसंक्रम है। जैसे ऊर्ध्वलोकसे मध्यलोकमें जाना यह क्षेत्रसंक्रम है। कालका एक ऋतुको छोड़कर दूसरी ऋतुरूप होना या एक कालके स्थानमें दूसरा काल आ जाने पर भी पूर्व कालका पुनरागमन मानना कालसंक्रम है। जैसे वर्षाकालके बाद हेमन्त ऋतु आती है सो यह कालसंक्रम है। या हेमन्त ऋतुके बाद शिशिरऋतु आदि व्यतीत होकर पुनः हेमन्त ऋतुका आना इत्यादि कालसंक्रम है। भावसंक्रमके दो भेद हैं—आगमभावसंक्रम और नोआगमभावसंक्रम । जो संक्रमविषयक शास्त्र को जानता है और उसके उपयोगसे युक्त है वह आगमभावसंक्रम है। तथा नोआगमभाव संक्रममें प्रेम आदिरूप भाव लिये गये हैं। इनका एकसे दूसरेमें संक्रमित होना यह नोआगम भावसंक्रम है। इस प्रकार जो संक्रमका छह निक्षेपोंमें विभाग किया था उसका किस निक्षेपकी अपेक्षा क्या अर्थ है इसका खुलासा किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ २९. संपहि पयदकम्मदव्वसंकमसरूवपरूवणट्ठमुत्तरसुत्तं भणइ—

❀ **कम्मसंकमो चउव्विहो। तं जहा—पयडिसंकमो ट्ठिदिसंकमो अणुभागसंकमो पदेससंकमो चेदि।**

§ ३०. मिच्छत्तादिकज्जजणणक्खमस्स पोग्गलक्खंधस्स कम्मववएसो। तस्स संकमो कम्मत्तापरिच्चाएण सहावंतरसंकंती। सो पुण दव्वट्ठियणयावलंबणेणेगत्तमावण्णो पज्जवट्ठियणयावलंबणेण चउप्पयारो होइ पयडिसंकमादिभेएण। तत्थ पयडीए पयडि-अंतरेसु संकमो पयडिसंकमो त्ति भण्णइ, जहा कोहपयडीए माणादिसु संकमो त्ति। एवं सेसाणं पि वत्तव्वं। एसो चउप्पयारो कम्मसंकमो एत्थ पयदो। तत्थ वि मोहणिज्जकम्मसंबंधिणा संकमचउक्केण पयदं, अण्णेसिमेत्थाहियाराभावादो। एदेणेदस्स अत्थाहियारपरूवणदुवारेणाणुगमो परूविदो। को अणुगमो णाम? अनुगम्यतेऽनेन प्रकृतोऽधिकार इत्यनुगमः। प्रकृते वस्तुन्यवान्तराणामर्थाधिकाराणां निर्गमे[1] इति यावत्। एवमेदस्स संकममहाहियारस्स उवक्कमादीहि चउहि पयारेहि अहियारो परूविदो। संकमस्सेव सेसचोद्दसत्थाहियाराणं पि पुध पुध उवक्कमादिपरूवणा किण्ण परूविज्जदे? ण, एदस्स मज्झदीवयभावेण ताणं पि तस्सिद्धीए तदपरूवणादो।

§ २९. अब प्रकरण प्राप्त कर्मद्रव्यसंक्रमका स्वरूप बतलाने के लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

* **कर्मनोआगमद्रव्यसंक्रम चार प्रकारका है। यथा—प्रकृतिसंक्रम, स्थितिसंक्रम, अनुभागसंक्रम और प्रदेशसंक्रम।**

§ ३०. जो पुद्गलस्कन्ध मिथ्यात्व आदि कार्यके उत्पन्न करनेमें समर्थ हैं वह कर्म कहलाता है। उसका अपनी कर्मरूप अवस्थाका त्याग किये बिना अन्य स्वभावरूपसे संक्रमण करना कर्मसंक्रम कहलाता है। वह यद्यपि द्रव्यार्थिक नयकी अपेक्षासे एक प्रकारका है तथापि पर्यायार्थिक नयकी अपेक्षासे वह प्रकृतिसंक्रम आदिके भेदसे चार प्रकारका है। इनमेंसे एक प्रकृतिका दूसरी प्रकृतियोंमें संक्रम होना प्रकृतिसंक्रम कहलाता है। जैसे क्रोध प्रकृतिका मानादिकमें संक्रमण होना प्रकृतिसंक्रम है। इसी प्रकार शेष संक्रमोंके विषयमें भी कथन करना चाहिये। यह चार प्रकारका कर्मसंक्रम यहाँ पर प्रकृत है। उसमें भी मोहनीयकर्मसम्बन्धी चार संक्रमोंका यहाँ प्रकरण है, क्यों कि दूसरे कर्मोंका यहाँ पर अधिकार नहीं है। इस प्रकार यहाँ पर जो इसके अर्थाधिकारोंका कथन किया है सो इससे इसके अनुगमका कथन कर दिया गया ऐसा जानना चाहिये।

शंका—अनुगम किसे कहते हैं?

समाधान—जिससे प्रकृत अधिकारका ज्ञान होता है उसे अनुगम कहते हैं।

इससे प्रकृत वस्तुमें अवान्तर अधिकारोंका पूरा ज्ञान हो जाता है यह इसका तात्पर्य है। इस प्रकार इस संक्रम महाधिकारका उपक्रम आदि चार प्रकारसे अधिकार कहा।

शंका—जिस प्रकार संक्रमकी उपक्रम आदि रूपसे प्ररूपणा की है उसी प्रकार शेष चौदह अर्थाधिकारोंकी भी पृथक् पृथक् उपक्रम आदिरूपसे प्ररूपणा क्यों नहीं की?

समाधान—नहीं, क्यों कि मध्यदीपकरूपसे यहाँ इसका उल्लेख किया है। इससे

१. प्रतिषु–कारान्निर्गम इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ३१. संपहि चउण्हमेदेसिं संकमाणं मज्झे पयडिसंकमस्स ताव भेदपदुप्पायणट्ठ-मुत्तरसुत्तमाह—

❀ पयडिसंकमो दुविहो। तं जहा—एगेगपयडिसंकमो पयडिट्ठाण-संकमो च।

§ ३२. एत्थ मूलपयडिसंकमो णत्थि, सहावदो चेव मूलपयडीणमण्णोण्ण-विसयसंकंतीए अभावादो। तम्हा उत्तरपयडिसंकमो चेव दुविहो सुत्ते परूविदो। तत्थे-गेगपयडिसंकमो णाम मिच्छत्तादिपयडीणं पुध पुध णिरुंभणं काऊण संकमगवेसणा। तहा एक्कम्मि समए जत्तियाणं पयडीणं संकमसंभवो ताओ एकदो काऊण संकमपरिक्खा पयडिट्ठाणसंकमो भण्णइ; ठाणसद्दस्स समुदायवाचयस्स गहणादो। एदमुभयप्पयं पयडिसंकमं ताव वत्तइस्सामो त्ति जाणावणट्ठमुवरिमसुत्तं भणइ—

❀ पयडिसंकमे पयदं।

§ ३३. पयडि-ट्ठिदि-अणुभाग-पदेससंकमाणं मज्झे पयडिसंकमे ताव पयदमिदि

शेष अधिकारोंकी भी यह विधि सिद्ध हो जाती है, अतः अन्यत्र इस रूपसे प्ररूपणा नहीं की है।

विशेषार्थ—किसी भी शास्त्रके प्रारम्भमें उपक्रम, निक्षेप, नय और अनुगम इन चारका व्याख्यान करना आवश्यक है। इससे उस शास्त्रमें वर्णित विषय और उसके अधिकार आदिका पता लग जाता है। इसी दृष्टिसे चूर्णिसूत्रकारने इन चारका अपने अवान्तर भेदोंके साथ यहाँ वर्णन किया है तथापि संक्रमके जो चार अर्थाधिकार बतलाये हैं वे ही अनुगम व्यपदेशको प्राप्त होते हैं ऐसा यहाँ जानना चाहिये। यहां पर अन्तमें यह शंका की गई है कि संक्रमके प्रारम्भमें जैसे इन उपक्रम आदिका वर्णन किया है उसी प्रकार अन्य पेज्जदोसविहत्ति आदि चौदह अधिकारोंके प्रारम्भमें इनका वर्णन क्यों नहीं किया। टीकाकारने इसका जो समाधान किया है उसका भाव यह है कि जैसे मध्यमें रखा हुआ दीपक आगे और पीछे सर्वत्र प्रकाश देता है वैसे ही यह महाधिकार सबके मध्यमें है अतः यहां उनका उल्लेख कर देनेसे सर्वत्र वे अपने अपने अधिकारके नामानुरूप जान लेने चाहिए।

§ ३१. अब इन चारों संक्रमोंमें आये हुये प्रकृतिसंक्रमके भेद दिखलानेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

※ प्रकृतिसंक्रम दो प्रकारका है। यथा—एकैकप्रकृतिसंक्रम और प्रकृतिस्थानसंक्रम।

§ ३२. यहाँ पर मूल प्रकृतिसंक्रम नहीं है, क्योंकि स्वभावसे ही मूल प्रकृतियोंका परस्परमें संक्रम नहीं होता, इसलिये सूत्रमें उत्तरप्रकृतिसंक्रम ही दो प्रकारका बतलाया है। इनमेंसे मिथ्यात्व आदि प्रकृतियोंका पृथक पृथक् संक्रमका विचार करना एकैकप्रकृतिसंक्रम कहलाता है। तथा एक समयमें जितनी प्रकृतियोंका संक्रम सम्भव है उनको एकत्रित करके संक्रमका विचार करना प्रकृतिस्थानसंक्रम कहलाता है, क्यों कि यहां पर समुदायवाची स्थान शब्दका ग्रहण किया है। इन दोनों प्रकारके प्रकृतिसंक्रमको आगे बतलायेंगे इस बातका ज्ञान करानेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

※ प्रकृतिसंक्रम प्रकृत है।

§ ३३. संक्रमके प्रकृतिसंक्रम स्थितिसंक्रम, अनुभागसंक्रम और प्रदेशसंक्रम इन चार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भणिदं होइ। एवं च पयदस्स पयडिसंकमस्स परूवणं कुणमाणो तत्थ पडिबद्धाणं गाहासुत्ताणमियत्तावहारणट्ठमुत्तरसुत्तमाह—

❀ तत्थ तिण्णि सुत्तगाहाओ हवंति।

§ ३४. तत्थ पयडिसंकमपरूवणावसरे तिण्णि सुत्तगाहाओ संगहियासेसत्थसाराओ हवंति त्ति भणिदं होइ। ताओ कदमाओ त्ति आसंकिय पुच्छासुत्तमाह—

❀ तं जहा।

§ ३५. सुगमं।

संकम-उवक्कमविही पंचविहो चउव्विहो य णिक्खेवो।
णयविही पयदं पयदे च णिग्गमो होइ अट्ठविहो॥२४॥

§ ३६. एसा पढमा गाहा। एदीए पयडिसंकमस्स उवक्कमो णिक्खेवो णओ अणुगमो चेदि चउव्विहो अवयारो परूविदो, तेण विणा पयदस्स परूवणोवायाभावादो। एवमेदिस्से गाहाए समुदायत्थो परूविदो। अवयवत्थं पुण पुरदो चुण्णिसुत्तसंबंधेणेव परूवइस्सामो। संपहि एत्थुद्दिट्ठट्ठविहणिग्गमसरूवपरूवणट्ठविदियगाहाए अवयारो—

एक्केकाए संकमो दुविहो संकमविही य पयडीए।
संकमपडिग्गहविही पडिग्गहो उत्तम जहण्णो॥२५॥

भेदोंमेंसे सर्व प्रथम प्रकृतिसंक्रम प्रकृत है यह उक्त सूत्रका तात्पर्य है। इस प्रकार प्रकरणप्राप्त प्रकृतिसंक्रमका कथन करते हुए उससे सम्बन्ध रखनेवाली गाथाओंका परिमाण निश्चित करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

* इस विषयमें तीन सूत्र गाथाएं हैं।

§ ३४. यहां प्रकृतिसंक्रमके कथनसे सम्बन्ध रखनेवाली तथा सब अर्थके सारका संग्रह कर स्थित हुई तीन सूत्र गाथाएं हैं यह उक्त सूत्रका तात्पर्य है। वे कौनसी हैं ऐसी आशंका करके पृच्छासूत्र कहते हैं—

* यथा—

§ ३५. यह सूत्र सुगम है।

संक्रमकी उपक्रमविधि पाँच प्रकारकी है, निक्षेप चार प्रकारका है, नयविधि भी प्रकृत है और प्रकृतमें निर्गम आठ प्रकारका है॥२४॥

§ ३६. यह पहली गाथा है। इसके द्वारा प्रकृतिसंक्रमका उपक्रम, निक्षेप, नय और अनुगम यह चार प्रकारका अवतार कहा गया है, क्योंकि इसके बिना प्रकृत विषयका सम्यक् प्रकारसे प्रतिपादन नहीं हो सकता है। इस प्रकार इस गाथाका समुदायार्थ कहा। किन्तु इसके प्रत्येक पदका अर्थ आगे चूर्णिसूत्रके सम्बन्धसे ही कहेंगे। अब इस गाथामें कहे गये आठ प्रकारके निर्गमके स्वरूपका कथन करनेके लिये दूसरी गाथाका अवतार हुआ है—

प्रकृति संक्रम दो प्रकारका है—एक एक प्रकृतिका संक्रम अर्थात् एकैकप्रकृतिसंक्रम और प्रकृतिकी संक्रमविधि अर्थात् प्रकृतिस्थानसंक्रम। तथा संक्रममें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ३७. एत्थ पुवद्धे एवं पदसंबंधो कायव्वो। तं जहा—पयडीए संकमो दुविहो—एक्केकाए पयडीए संकमो पयडीए संकमविही चेदि। कुदो एवं? संकमपदस्स पयडिसद्दस्स य आवित्तीए संबंधावलंबणादो। गाहापच्छद्धे सुगमो पदसंबंधो। उभयत्थ वि अवयवत्थो उवरिमचुण्णिसुत्तसंबद्धो त्ति तमपरूविय समुदायत्थमेत्थ वत्तइस्सामो। तं जहा—एदीए गाहाए अट्ठण्णं णिग्गमाणं मज्झे पयडिसंकमो पयडिट्ठाणसंकमो पयडिपडिग्गहो पयडिट्ठाणपडिग्गहो च मुत्तकंठं परूविदा। एदेसिं पडिवक्खा वि चत्तारि णिग्गमा सूचिदा चेव, सव्वेसिं सप्पडिवक्खत्तादो वदिरेगेण विणा अण्णयपरूवणोवाया-भावादो च। संपहि एत्थेव णिच्छयजणणट्ठमुवरिमगाहासुत्तावयारो—

पयडि-पयडिट्ठाणसु संकमो असंकमो तहा दुविहो।
दुविहो पडिग्गहविही दुविहो अपडिग्गहविही य ॥२६॥

§ ३८. एदीए गाहाए अट्ठण्हं णिग्गमाणं णामणिद्देसो कओ होइ। एदिस्से

प्रतिग्रहविधि होती है और वह उत्तम प्रतिग्रह और जघन्य प्रतिग्रह ऐसे दो भेद रूप होती है ॥२५॥

§ ३७. यहां पूर्वार्धमें इस प्रकार पदोंका सम्बन्ध करना चाहिये। यथा—'पयडीए संकमो दुविहो—एक्केक्काए पयडीए संकमो पयडीए संकमविही च' इसके अनुसार यह अर्थ हुआ कि प्रकृतिसंक्रम दो प्रकारका है—एकैकप्रकृतिसंक्रम और प्रकृतिसंक्रमविधि अर्थात् प्रकृति-स्थानसंक्रम।

शंका—गाथाके पूर्वार्धसे यह अर्थ किस प्रकार निकलता है?

समाधान—संक्रम पद और प्रकृति शब्द इनकी आवृत्ति करके सम्बन्ध करनेसे उक्त अर्थ निकलता है।

गाथाके उत्तरार्धमें पदोंका सम्बन्ध सुगम है। गाथाके पूर्वार्ध और उत्तरार्ध इन दोनों ही स्थलोंमें प्रत्येक पदका अर्थ आगे चूर्णिसूत्रके सम्बन्धसे कहा जायगा, इसलिये यहां उसका निर्देश न करके समुदायार्थको ही बतलाते हैं। यथा—इस गाथामें आठ निर्गमोंमेंसे प्रकृतिसंक्रम, प्रकृति स्थानसंक्रम, प्रकृतिप्रतिग्रह और प्रकृतिस्थानप्रतिग्रह इन चारका मुक्तकण्ठ होकर कथन किया है। तथा इनके प्रतिपक्षभूत जो चार निर्गम हैं उनका भी इस द्वारा सूचन किया है, क्योंकि एक तो जितने भी पदार्थ होते हैं वे सब अपने प्रतिपक्षसहित होते हैं और दूसरे व्यतिरेकके बिना केवल अन्वयका कथन करना भी सम्भव नहीं है। अब इसी बातका निश्चय करनेके लिये आगेकी सूत्रगाथाका अवतार हुआ है—

प्रकृति और प्रकृतिस्थानमें संक्रम और असंक्रम ये दोनों प्रत्येक दो दो प्रकारके हैं। तथा प्रतिग्रहविधि भी दो प्रकारकी है और अप्रतिग्रहविधि भी दो प्रकार की है ॥२६॥

§ ३८. इस गाथा द्वारा आठ निर्गमोंका नामनिर्देश किया गया है। किन्तु इस गाथाके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवयवत्थमुवरिमपदच्छेदपरूवणाए चेव वत्तइस्सामो, सुत्तसिद्धस्स पुधपरूवणाए फलाभावादो।

※ एदाओ तिण्णि गाहाओ पयडिसंकमे।

§ ३९. एवमेदाओ तिण्णि गाहाओ पयडिसंकमे पडिबद्धाओ होंति त्ति भणिदं होइ। एवमेदासिं पयडिसंकमपडिबद्धत्तं णिरूविय पदच्छेदमुहेणेदासिं वक्खाणं कुणमाणो सुत्तपबंधमुत्तरं भणइ—

※ एदासिं गाहाणं पदच्छेदो।

§ ४०. एत्तो एदासिं गाहाणं पदच्छेदो कायव्वो होदि, अवयवत्थवक्खाणे पयारंतराभावादो त्ति उत्तं होदि।

※ तं जहा।

§ ४१. सुगमं।

※ 'संकम-उवक्कमविही पंचविहो' त्ति एदस्स पदस्स अत्थो पंचविहो— उवक्कमो आणुपुव्वी णामं पमाणं वत्तव्वदा अत्थाहियारो चेदि।

§ ४२. संकम-उवक्कमविही पंचविहो त्ति एदस्स पढमगाहापुव्वद्धावयवपदस्स अत्थो को होइ त्ति आसंकिय आणुपुव्वीआदिभेदेण पंचविहो उवक्कमो एदस्स पदस्स

प्रत्येक पदका अर्थ आगे पदच्छेदका कथन करते समय ही बतलावेंगे, क्योंकि जो बात सूत्रसिद्ध है उसका अलगसे कथन करनेमें कोई लाभ नहीं है।

※ ये तीन गाथाएं प्रकृतिसंक्रमके विषयमें आईं हैं।

§ ३९. इस प्रकार ये तीन गाथाएं प्रकृतिसंक्रमसे सम्बन्ध रखती हैं यह उक्त सूत्रका तात्पर्य है। इस प्रकार ये तीन गाथाएं प्रकृतिसंक्रमसे सम्बन्ध रखती हैं इसका कथन करके अब पदच्छेदद्वारा इनका व्याख्यान करते हुए आगेके सूत्रोंका निर्देश करते हैं—

※ इन गाथाओंका पदच्छेद।

§ ४०. अब इससे आगे इन गाथाओंका पदच्छेद करना चाहिये, क्योंकि अन्य प्रकारसे गाथाओंके प्रत्येक पदके अर्थका व्याख्यान करना सम्भव नहीं है यह उक्त सूत्रका तात्पर्य है।

※ यथा—

§ ४१. यह सूत्र सुगम है।

※ 'संकम-उवक्कमविही पंचविहो' इस पदका अर्थ है कि उपक्रम पाँच प्रकारका है—आनुपूर्वी, नाम, प्रमाण, वक्तव्यता और अर्थाधिकार।

§ ४२. प्रथम गाथाके पूर्वार्धमें जो 'संक्रम-उवक्कमविही पंचविहो' यह पद आया है सो इसका क्या अर्थ है ऐसी आशंका करके आनुपूर्वी आदिके भेदसे उपक्रम पाँच प्रकारका है यह इस

---

१. ता० प्रतौ 'एदस्स' इत्यतः सूत्रांशस्य टीकांशेन निर्देशः कृतः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्थो होइ त्ति णिद्दिट्ठं। तत्थाणुपुव्वी-णाम-पमाण-वत्तव्वदाणमत्थपरूवणा सुगमा। अत्थाहियारो पुण अट्ठविहो होइ, उवरि तहापरूवणादो।

❀ **'चउव्विहो य णिक्खेवो' त्ति णाम ट्ठवणं वज्जं दव्वं खेत्तं कालो भावो च।**

§ ४३. एत्थेवमहिसंबंधो कायव्वो—'चउव्विहो य णिक्खेवो' त्ति एदस्स बीजपदस्स अत्थो दव्वं खेत्तं कालो भावो चेदि चउव्विहो णिक्खेवो पयडिसंकमविसओ। कुदो? जम्हा णाम ट्ठवणं वज्जं वज्जणीयमिदि। कुदो पुण दोण्हमेदेसिं वज्जणं? ण, तेसिमेत्थेव जहासंभवमंतब्भावदंसणादो सुगमात्तदो वा। तदो दोण्हमेदेसिमवणयणं काऊण दव्व-खेत्त-काल-भावाणं गहणं कयं। तत्थागमदो दव्वपयडिसंकमो सुगमो, अणुवजुत्ततप्पाहुडजाणयसरूवत्तादो। णोआगमदो दव्वपयडिसंकमो दुविहो—कम्म-णोकम्मभेएण। तत्थ णोकम्मदव्वपयडिसंकमो जहा संकंतो णीलुप्पलगंधो त्ति, णीलुप्पलसहावस्स गंधस्स वासिज्जमाणदव्वंतरेसु संकंतिदंसणादो। कम्मदव्वपयडिसंकमो जहा मिच्छत्तादीणं मोहणिज्जपयडीणं अण्णोण्णं समयाविरोहेण संकमो। खेत्तादीणं णिक्खेवाणमत्थो पुव्वं व वत्तव्वो।

पदका अर्थ है ऐसा इस चूर्णिसूत्रमें निर्देश किया है। सो इनमेंसे आनुपूर्वी, नाम, प्रमाण और वक्तव्यता इनका अर्थ सुगम है। किन्तु जैसा कि आगे कहा जानेवाला है तदनुसार अर्थाधिकार आठ प्रकारका है।

※ **'चउव्विहो य णिक्खेवो' पदका अर्थ है कि नाम और स्थापनाको छोड़कर द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव ये चार निक्षेप हैं।**

§ ४३. यहाँ पर इस प्रकार सम्बन्ध करना चाहिये कि प्रथम गाथामें जो 'चउव्विहो य णिक्खेवो' यह बीजपद है सो इसका अर्थ है कि प्रकृतिसंक्रमको विषय करनेवाले द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव ये चार निक्षेप हैं।

शंका—ये चार ही क्यों हैं?

समाधान—क्यों कि यहाँ पर नाम और स्थापना निक्षेपको छोड़ देना चाहिये।

शंका—इन दोनोंको यहाँ क्यों छोड़ दिया है?

समाधान—नहीं, क्यों कि इन दोनोंका इन्हीं चारोंमें यथासम्भव अन्तर्भाव देखा जाता है या वे सुगम हैं, इस लिये इन दोनोंको छोड़कर द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव इनका ग्रहण किया है।

इन द्रव्यादि चार निक्षेपोंमें आगमद्रव्यप्रकृतिसंक्रम सुगम है, क्यों कि, जो प्रकृतिसंक्रम-विषयक प्राभृतको जानता है किन्तु उसके उपयोगसे रहित है वह आगमद्रव्यप्रकृतिसंक्रम कहलाता है। नोआगमद्रव्यप्रकृतिसंक्रम कर्म और नोकर्मके भेदसे दो प्रकारका है। इनमेंसे नील कमलका गन्ध संक्रान्त हुआ यह नोकर्मद्रव्यप्रकृतिसंक्रमका उदाहरण है, क्यों कि जिन दूसरे द्रव्योंको नील कमलके गन्धसे वासित किया जाता है उनमें उस गन्धका संक्रमण देखा जाता है। आगममें बतलाई हुई विधिके अनुसार मोहनीयकी मिथ्यात्व आदि प्रकृतियोंका परस्परमें संक्रमण होना कर्मद्रव्य-प्रकृतिसंक्रम है। तथा क्षेत्र आदि निक्षेपोंका अर्थ पहलेके समान कहना चाहिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

❀ 'णयविहि पयदं' त्ति एत्थ णओ वत्तव्वो ।

§ ४४. णयविहि पयदमिदि जमत्थपदं, एत्थ णओ वत्तव्वो, तेण विणा णिक्खेवत्थविसयणिण्णयाणुववत्तीदो । तत्थ णेगमो सव्वपयडिसंकमे इच्छइ । संगह-ववहारा कालसंकममवणेंति । एवमुजुसुदो वि । सद्दणयस्स भावणिक्खेवो एक्को चेव । एत्थ दव्वट्ठियणयवत्तव्वदाए कम्मदव्वपयडिसंकमे[1] पयदं ।

❀ 'पयदे च णिग्गमो होइ अट्ठविहो' त्ति पयडिसंकमो पयडिअसंकमो पयडिट्ठाणसंकमो पयडिट्ठाणअसंकमो पयडिपडिग्गहो पयडिअपडिग्गहो पयडिट्ठाणपडिग्गहो पयडिट्ठाणअपडिग्गहो त्ति एसो णिग्गमो अट्ठविहो ।

§ ४५. पयदे च णिग्गमो होइ अट्ठविहो त्ति एत्थ बीजपदे पयडिसंकमासंकमादि-भेदभिण्णो अट्ठविहो णिग्गमो अंतब्भूदो त्ति भणिदं होइ । तत्थ पयडिसंकमो त्ति भणिदे एगेगपयडिसंकमो गहेयव्वो, पयडिट्ठाणसंकमस्स पुध परूवणादो । एवं सेसाणं पि सुत्ताणु-सारेण अत्थपरूवणा कायव्वा । संपहि अट्ठण्हमेदेसिं सरूवणिदरिसणमुद्देसमेत्तेण कस्सामो । तं कथं ? पयडिसंकमो जहा मिच्छत्तपयडीए सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तेसु । पयडिअसंकमो जहा तिस्से चेव मिच्छाइट्ठिम्मि सासणसम्माइट्ठिम्मि सम्मामिच्छाइट्ठिम्मि वा । पयडिट्ठाण-

---

* 'णयविधि पयदं' इस पदके अनुसार यहाँ पर नयका व्याख्यान करना चाहिये ।

§ ४४. प्रथम गाथामें 'णयविहि पयदं' यह जो अर्थपद आया है तदनुसार यहांपर नयका कथन करना चाहिये, क्योंकि इसके बिना निक्षेपोंका अर्थविषयक निर्णय नहीं हो सकता है । द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव इन चार निक्षेपोंमेंसे नैगमनय सब प्रकृतिसंक्रमोंको स्वीकार करता है । संग्रह और व्यवहारनय काल संक्रमको स्वीकार नहीं करते हैं । इसी प्रकार ऋजुसूत्रनय भी कालसंक्रमको स्वीकार नहीं करता है । तथा शब्दनयका एक भावनिक्षेप ही विषय है । इस अधिकारमें द्रव्यार्थिकनयकी अपेक्षा कर्मद्रव्यप्रकृतिसंक्रमका प्रकरण है ।

* 'पयदे च णिग्गमो होइ अट्ठविहो' इस पदके अनुसार प्रकृतिसंक्रम, प्रकृति-असंक्रम, प्रकृतिस्थानसंक्रम, प्रकृतिस्थानअसंक्रम, प्रकृतिप्रतिग्रह, प्रकृतिअप्रतिग्रह, प्रकृतिस्थानप्रतिग्रह और प्रकृतिस्थानअप्रतिग्रह यह आठ प्रकारका निर्गम है ।

§ ४५. 'पयदे च णिग्गमो होइ अट्ठविहो' इस बीजपदमें प्रकृतिसंक्रम और प्रकृतिअसंक्रम आदिके भेदसे आठ प्रकारका निर्गम अन्तर्भूत है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । उनमेंसे प्रकृति-संक्रमपदसे एकैकप्रकृतिसंक्रमको ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि प्रकृतिस्थानसंक्रमका अलगसे कथन किया है । इसी प्रकार सूत्रके अनुसार शेष निर्गमोंके अर्थका भी कथन करना चाहिये ।

अब इन आठोंके स्वरूपका निर्देश नाममात्रको करते हैं । यथा—मिथ्यात्व प्रकृतिका सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वमें संक्रमित होना यह प्रकृतिसंक्रमका उदाहरण है । तथा उसी मिथ्यात्वका मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि या सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानके रहते हुए सम्यक्त्व

---

१. ता०प्रतौ कम्मपयडिसंकमे इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संकमो जहा अट्ठावीससंतकम्मियमिच्छाइट्ठिम्हि सत्तावीसाए। तदसंकमो जहा तत्थेव अट्ठावीसाए। पयडिपडिग्गहो जहा मिच्छत्तं मिच्छाइट्ठिम्मि संकमंताणं सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं। को पडिग्गहो णाम? संकमाहारे प्रतिगृह्यतेऽस्मिन् प्रतिगृह्णातीति वा पडिग्गहसद्दउप्पायणादो। तदपडिग्गहो जहा तत्थेव सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणि। जहा वा दंसण-चरित्तमोहणीयपयडीणमण्णोण्णं पेक्खिऊण पडिग्गहत्ताभावो। पयडिट्ठाणपडिग्गहो जहा मिच्छाइट्ठिम्मि बावीसपयडिसमुदायप्पयमेयं पयडिपडिग्गहट्ठाणमिदि[1]। पयडिट्ठाणअपडिग्गहो जहा सोलसादीणं ठाणाणमण्णदरो। एवमेसो अट्ठविहो णिग्गमो परूविदो चुण्णिसुत्तयारेण पयदे च णिग्गमो होइ अट्ठविहो त्ति बीजपदावलंबणेण।

और सम्यग्मिथ्यात्वमें संक्रमित नहीं होना यह प्रकृतिअसंक्रमका उदाहरण है। अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाले मिथ्यादृष्टिके सत्ताईस प्रकृतियोंका संक्रमित होना यह प्रकृतिस्थानसंक्रमका उदाहरण है। तथा उसी मिथ्यादृष्टिके अट्ठाईस प्रकृतियोंका संक्रमित नहीं होना यह प्रकृतिस्थान-असंक्रमका उदाहरण है। प्रकृतिप्रतिग्रहका उदाहरण, जैसे—मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें संक्रमणको प्राप्त हुई सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन दो प्रकृतियोंका मिथ्यात्वप्रकृति प्रकृतिप्रतिग्रह है।

शंका—प्रतिग्रह किसे कहते हैं?

समाधान—संक्रमरूप आधारके सद्भावमें प्रतिग्रह शब्दकी व्युत्पत्तिके अनुसार संक्रमको प्राप्त हुआ द्रव्य जिसमें ग्रहण किया जाता है या जो ग्रहण करता है उसे प्रतिग्रह कहते हैं।

प्रकृतिअप्रतिग्रहका उदाहरण, जैसे—उसी मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व ये दो प्रकृतियां प्रकृतिअप्रतिग्रह रूप हैं। अथवा दर्शनमोहनीय और चारित्र-मोहनीय ये परस्परमें प्रतिग्रहरूप नहीं हैं, इसलिये दर्शनमोहनीयकी कोई भी प्रकृति चरित्रमोहनीय की अपेक्षा प्रकृतिअप्रतिग्रह है और चरित्रमोहनीयकी कोई भी प्रकृति दर्शनमोहनीयकी अपेक्षा प्रकृतिअप्रतिग्रह है। प्रकृतिस्थानप्रतिग्रहका उदाहरण—जैसे, मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें बाईस प्रकृतियोंका समुदायरूप एक प्रतिग्रहस्थान है। प्रकृतिस्थानअप्रतिग्रहका उदाहरण, जैसे सोलह आदि स्थानोंमें से कोई एक स्थान प्रकृतिस्थानअप्रतिग्रह है। इस प्रकार 'पयदे च णिग्गमो होइ अट्ठविहो' इस बीजपदके आलम्बनसे चूर्णिसूत्रकारने यह आठ प्रकारका निर्गम कहा है।

विशेषार्थ—पहले संक्रमका उपक्रम आदि चारके द्वारा कथन करते हुए अन्तमें चूर्णिसूत्रकारने संक्रमके चार अर्थाधिकार बतलाये रहे। उनमें प्रथम अर्थाधिकार प्रकृतिसंक्रम है, इसलिए सर्व प्रथम इसका वर्णन क्रमप्राप्त है। इसीसे इसका पुनः उपक्रम आदि चारके द्वारा निर्देश किया गया है। यह निर्देश केवल चूर्णिसूत्रकारने ही नहीं किया है किन्तु मूलग्रन्थकर्ताने भी किया है। इसके लिये तीन गाथाएं आई हैं। प्रथम गाथामें उपक्रम, निक्षेप और निर्गम (अनुगम) के भेद देकर नययोजना करनेकी सूचना की गई है तथा दूसरी और तीसरी गाथामें निर्गमके विषयमें विशेष खुलासा और निर्गमके अवान्तर भेदोंका नामनिर्देश किया गया है। यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि ये गाथाएं केवल प्रकृतिसंक्रमके विषयमें ही क्यों लागू होती हैं, सामान्य संक्रमके विषयमें क्यों नहीं। सो इसका यह खुलासा है कि इन गाथाओंमें स्पष्टतः प्रकृतिसंक्रमके अवान्तर भेदोंका ही एकमात्र निर्देश किया है। इससे ज्ञात होता है कि इन गाथाओंका सम्बन्ध केवल प्रकृतिसंक्रमसे ही है।

---

१. आ० प्रतौ -मेयं पडिग्गहट्ठाणमिदि इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ४६. एवं पढमगाहाए पदच्छेदमुहेणमत्थविवरणं कादूण संपहि विदियगाहाए पदच्छेदकरणट्ठमिदमाह—

❀ 'एक्केक्काए संकमो दुविहो संकमविही य पयडीए' त्ति पदस्स अत्थो कायव्वो ।

§ ४७. पयडि-पयडिट्ठाणसंकमेसु पडिबद्धस्सेदस्स विदियगाहापुव्वद्धस्स अवयवत्थविवरणं कस्सामो त्ति पइज्जासुत्तमेदं ।

अब यहाँ क्रमसे चूर्णिसूत्र और टीकाके अनुसार प्रकृतिसंक्रमके विषयमें इन उपक्रम आदिका खुलासा करते हैं—उपक्रमके पाँच भेद हैं—आनुपूर्वी, नाम, प्रमाण, वक्तव्यता और अर्थाधिकार। आनुपूर्वीके तीन भेदोंमेंसे पूर्वानुपूर्वीके अनुसार प्रकृतिसंक्रम यह पहला भेद है। पश्चादानुपूर्वीके अनुसार चौथा और यत्रतत्रानुपूर्वीके अनुसार पहला, दूसरा, तीसरा या चौथा भेद है। नामके कई भेद हैं। उनमेंसे इसका गौण्यनाम है। प्रमाण ग्रन्थकी अपेक्षा संख्यात और अर्थकी अपेक्षा अनन्त है। वक्तव्यताके तीन भेद हैं। उनमेंसे इसमें स्वसमयवक्तव्यता है। अर्थाधिकार इसके आठ हैं जो निर्गमका कथन करते समय बतलाये जाँयगे। उपक्रमके बाद दूसरा भेद निक्षेप है। प्रकृतिसंक्रमको द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव इन चार निक्षेपोंमें घटित करके बतलाया है। यद्यपि मूलकर्ताने केवल चार निक्षेपोंकी सूचनामात्र की है। तदनुसार वे चार निक्षेप नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव भी हो सकते हैं। पर चूर्णिसूत्रकारने इन चार निक्षेपोंका प्रकृतमें ग्रहण न करके द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव इन चार निक्षेपोंका ही ग्रहण किया है। मालूम होता है कि संक्रममें नाम और स्थापनाकी उतनी उपयोगिता नहीं है जितनी द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी उपयोगिता है। इसीसे प्रकृतमें नाम और स्थापनाको छोड़ दिया गया है। उदाहरणार्थ किसीका प्रकृतिसंक्रम ऐसा नाम रखनेसे या किसीमें यह प्रकृतिसंक्रम है ऐसी स्थापना करनेसे प्रकृत प्रकृतिसंक्रमके समझनेमें विशेष सहायता नहीं मिलती पर द्रव्यादिकके संक्रमसे यथायोग्य कर्म-प्रकृतियोंके संक्रमणमें सहायता मिलती है इसलिये प्रकृतिसंक्रमकी निक्षेप व्यवस्था करते हुए इन चार निक्षेपोंकी यहाँ योजना की है। उदाहरणार्थ वसन्त ऋतुके बाद ग्रीष्म ऋतु आनेपर जीव गर्मीका अधिक अनुभव करता है, इससे जीवको गर्मीजन्य तीव्र वेदना होती है, अतः ऐसे अवसर पर गर्मीका निमित्त पा कर असाताकी उदय व उदीरणा होने लगती है तथा साता कर्मका असाता-रूप संक्रम भी होने लगता है। इसी प्रकार सभी निक्षेपोंके सम्बन्धमें यथायोग्य घटित कर लेना चाहिये। प्रकृतमें नयका इतना ही प्रयोजन है कि इन निक्षेपोंमें कौन निक्षेप किस नयका विषय है। सो इसका विशेष खुलासा पूर्वमें कर आये हैं, अतः यहाँ नहीं किया गया है। अब रहा निर्गम सो प्रकृतमें यह आठ प्रकारका है। विशेष खुलासा इसका स्वयं टीकाकारने ही किया है इस लिये यहाँ इसका खुलासा नहीं किया जाता है। किन्तु यहाँ इतना विशेष जानना चाहिये कि अन्यत्र जिसे अनुगम कहा है वही यहाँ निर्गम शब्द द्वारा कहा गया है।

§ ४६. इस प्रकार पदच्छेदद्वारा प्रथम गाथाके अर्थका खुलासा करके अब दूसरी गाथाका पदच्छेद करनेके लिये यह आगेका सूत्र कहते हैं—

'एक्केक्काए संकमो दुविहो संकमविही य पयडीए' इस पदका अर्थ करना चाहिये।

§ ४७. यह प्रतिज्ञा सूत्र है जिसके द्वारा यह प्रतिज्ञा की गई है कि अब प्रकृतिसंक्रम और प्रकृतिस्थानसंक्रम इनसे सम्बन्ध रखनेवाले इस दूसरी गाथाके पूर्वार्धके अर्थका विशेष खुलासा करेंगे।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** 'एक्केक्काए' त्ति एगेगपयडिसंकमो, 'संकमो दुविहो' त्ति दुविहो संकमो त्ति भणिदं होइ, [2]'संकमविही य' त्ति पयडिट्ठाणसंकमो, 'पयडीए' त्ति पयडिसंकमो त्ति भणियं होइ।**

§ ४८. पयडीए संकमो दुविहो—एक्केक्काए पयडीए संकमो पयडीए संकमविही चेदि गाहापुव्वद्धम्मि एवंविहसंबंधपदुप्पायणट्ठमागयस्सेदस्स सुत्तस्स अत्थो वुच्चदे। तं जहा—संकमो दुविहो त्ति दुविहो संकमो त्ति भणिदं होइ। एसो विदिओ सुत्तावयवो पढमं वक्खाणेयव्वो। तदो संकमो अविसिट्ठो ण होइ त्ति जाणावणट्ठं पयडीए त्ति भणिदं होइ त्ति एदेण चरिमसुत्तावयवेणाहिसंबंधो कायव्वो। तदो पयडिसंकमो दुविहो त्ति दोण्हं सुत्तावयवाणमत्थसंगहो। संपहि कथं दुविहत्तमिदि उत्ते 'एक्केकाए' त्ति एगेगपयडिसंकमो 'संकमविही' य त्ति पयडिट्ठाणसंकमो इदि पढमतइज्जावयवाणमहिसंबंधो। कधं पुण एक्केकाए त्ति एत्तियमेत्तेण एगेगपयडिसंकमो विण्णादुं सक्को? ण, 'पयडीए संकमो' त्ति उत्तरेण सह संबद्धेण तदुवलद्धीए। तहा 'संकमविही य' त्ति एत्थतणविहिसद्दस्स जहण्णुक्कस्स-तव्वदिरित्तपयारवाचयस्सावलंबणादो पयडिट्ठाणसंकमस्स गहणं पडिवज्जेयव्वं, एगेगपयडिविवक्खाए तदणुवलंभादो। तम्हा

---

* 'एक्कैक्काए' इस पदद्वारा एकैकप्रकृतिसंक्रम और 'संक्रमो दुविहो' इस पदद्वारा संक्रम दो प्रकारका है यह कहा गया है। तथा 'संक्रमविही य' इस पदद्वारा प्रकृतिस्थानसंक्रम और 'पयडीए' इस पदद्वारा प्रकृतिसंक्रम कहा गया है।

§ ४८. गाथाके पूर्वार्धमें प्रकृतिसंक्रम दो प्रकारका है—एकैकप्रकृतिसंक्रम और प्रकृतिसंक्रमविधि इस प्रकारके सम्बन्धका कथन करनेके लिये आये हुए इस सूत्रका अर्थ कहते हैं। यथा—'संक्रमो दुविहो' इस पदद्वारा संक्रम दो प्रकारका है यह कहा गया है। यद्यपि यह गाथा सूत्रका दूसरा अवयव है तथापि इसका सर्व प्रथम व्याख्यान करना चाहिये। किन्तु यहाँ पर सामान्य संक्रम नहीं लिया गया है यह जतानेके लिये गाथा सूत्रके पूर्वार्धके अन्तमें आये हुए 'पयडीए' इस पदके साथ 'संकमो दुविहो' इस पदका सम्बन्ध करना चाहिये। इसलिये प्रकृतिसंक्रम दो प्रकारका है यह गाथासूत्रके इन दोनों पदोंका समुच्चयार्थ होता है। अब यह प्रकृतिसंक्रम दो प्रकारका कैसे है ऐसा पूछनेपर गाथाके प्रथम पद 'एक्केक्काए' और तृतीय पद 'संकमविही य' इन दोनों पदोंका सम्बन्ध करके इन दोनों पदोंद्वारा क्रमसे एकैकप्रकृतिसंक्रम और प्रकृतिस्थानसंक्रम ये दो भेद बतलाये गये हैं।

शंका—एक्केक्काए' इतनेमात्र पदसे एकैकप्रकृतिसंक्रमका ज्ञान कैसे किया जा सकता है?

समाधान—नहीं, क्यों कि 'पयडीए संकमो' इस उत्तर पदके साथ सम्बन्ध कर लेनेसे उक्त अर्थ प्राप्त हो जाता है।

तथा 'संकमविही य' इस पदमें आये हुए जघन्य, उत्कृष्ट और तद्व्यतिरिक्त प्रकारवाची विधि शब्दका अवलम्बन लेनेसे प्रकृतिस्थानसंक्रमका ग्रहण करना चाहिए, क्यों कि एक एक

---

१. बी० सा० प्रतौ -पयडिसंकमो, दुविहो त्ति 'संकमो दुविहो' त्ति इति पाठः। २. ता०प्रतौ 'संकमविही य' इत्यतः सूत्रांशस्य टीकांशेन निर्देश कृतः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एदेहि चदुहि वि पुव्वद्धपडिबद्धसुत्तावयवेहि एगेगपयडिसंकमो पयडिट्ठाणसंकमो चेदि वे णिग्गमा परूविदा।

❀ 'संकमपडिग्गहविहि' त्ति संकमे पयडिपडिग्गहो।

§ ४९. संकमे संकमस्स वा पडिग्गहविही संकमपडिग्गहविहि त्ति एत्थ समासो पयडीए त्ति अहियारसंबंधो च कायव्वो। सेसं सुगमं।

❀ 'पडग्गिो उत्तम जहण्णो' त्ति पयडिट्ठाणपडिग्गहो।

§ ५०. कुदो ? जहण्णुक्कस्सवियप्पाणमण्णत्थासंभवादो। एवमेदीए विदियगाहाए एगेगपयडिसंकमो पयडिट्ठाणसंकमो पयडिपडिग्गहो पयडिट्ठाणपडिग्गहो च मुत्तकंठं परूविदा। तप्पडिवक्खा वि चत्तारि णिग्गमा देसामासियभावेण सूचिदा त्ति घेत्तव्वं। संपहि एदेसिं चेव अट्ठण्णं णिग्गमाणं फुडीकरणट्ठं तदियगाहाए पदच्छेदो कीरदे—

❀ 'पयडि-पयडिट्ठाणेसु संकमो' त्ति पयडिसंकमो पयडिट्ठाण-संकमो च।

प्रकृतिकी विवक्षामें ये जघन्य आदि भेद नहीं हो सकते। इसलिये गाथासूत्रके पूर्वार्धसे सम्बन्ध रखनेवाले इन चारों ही पदोंके द्वारा एकैकप्रकृतिसंक्रम और प्रकृतिस्थानसंक्रम ये दो निर्गम कहे गये हैं।

विशेषार्थ—गाथाका पूर्वार्ध इस प्रकार है—'एक्केक्काए संकमो दुविहो—संकमविही य पयडीए। इसका निम्न प्रकारसे अन्वय करना चाहिये—पयडीए संकमो दुविहो—एक्केक्काए पयडीए संकमो संकमविही य। इस अन्वयमें 'पयडीए संकमो' इन दो पदोंका दो वार अन्वय किया गया है। तदनुसार गाथाके इस पूर्वार्धका यह अर्थ हुआ कि प्रकृतिसंक्रम दो प्रकारका है—एकैकप्रकृतिसंक्रम और प्रकृतिस्थानसंक्रम। यहाँ 'संकमविही' इस पदका प्रकृतिस्थानसंक्रम इतना अर्थ लिया गया है, क्यों कि इस पदमें आया हुआ 'विधि' शब्द प्रकारवाची है जिससे उक्त अर्थ प्राप्त हो जाता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

※ 'संकमपडिग्गहविही' इस पदसे संक्रमके विषयमें प्रकृतिप्रतिग्रहका ग्रहण किया है।

§ ४९ संक्रममें या संक्रमकी प्रतिग्रहविधि संक्रमप्रतिग्रहविधि इस प्रकार यहाँपर समास करके 'पयडीए' इस पदका अधिकारवश सम्बन्ध करना चाहिये। शेष कथन सुगम है।

※ 'पडिग्गहो उत्तम जहण्णो' इस पदसे प्रकृतिस्थानप्रतिग्रहका ग्रहण किया है।

§ ५० क्योंकि जघन्य और उत्कृष्ट ये विकल्प अन्यत्र सम्भव नहीं हैं। इस प्रकार इस दूसरी गाथा द्वारा एकैकप्रकृतिसंक्रम, प्रकृतिस्थानसंक्रम, प्रकृतिप्रतिग्रह और प्रकृतिस्थानप्रतिग्रह इन चार निर्गमोंका मुक्तकण्ठ होकर कथन किया गया है। तथा इनके प्रतिपक्षभूत चार अन्य निर्गम भी देशामर्षकभावसे सूचित किये गये हैं ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिये। आशय यह है कि यद्यपि इस दूसरी गाथा द्वारा चार निर्गमोंका ही सूचन किया है किन्तु यह गाथा देशामर्षक है, अतः इससे इनके प्रतिपक्षभूत चार अन्य निर्गमोंका भी ग्रहण हो जाता है। अब इन्हीं आठों निर्गमोंका स्पष्टीकरण करनेके लिये तीसरी गाथाका पदच्छेद करते हैं—

※ 'पयडि-पयडिट्ठाणेसु संकमो' इस द्वारा प्रकृतिसंक्रम और प्रकृतिस्थानसंक्रमका ग्रहण किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ५१. कथमेत्थ गाहासुत्तावयवे संबंधविवक्खमकाऊण आहारणिद्देसो कओ त्ति णासंकणिज्जं, विसयभावस्स विवक्खियत्तादो। पयडिविसओ एक्को संकमो पयडिट्ठाणविसओ अवरो त्ति।

❀ 'असंकमो तहा दुविहो' त्ति पयडिअसंकमो पयडिट्ठाणअसंकमो च।

§ ५२. असंकमो तहा दुविहो त्ति एत्थ 'पयडि-पयडिट्ठाणेसु' त्ति अहियारसंबंधो कायव्वो। तेण पयडिअसंकम-पयडिट्ठाणासंकमाणं[1] संगहो कओ होइ।

❀ 'दुविहो पडिग्गहविहि' त्ति[2] पयडिपडिग्गहो पयडिट्ठाणपडिग्गहो च।

§ ५३. एत्थ वि पुव्वं व अहियारसंबंधेण पयदणिग्गमाणं गहणं कायव्वं[3]।

❀ 'दुविहो अपडिग्गविही य' त्ति पयडिअपडिग्गहो पयडिट्ठाणअपडिग्गहो च।

§ ५४. एत्थ वि अहियारसंबंधो पुव्वं व। सेसं सुगमं।

एवमेदे पयडिसंकमस्स अट्ठ णिग्गमा परूविदा।

---

§ ५१. **शंका**—तीसरी गाथासूत्रके 'पयडि' इत्यादि अवयवमें सम्बन्धकी विवक्षा किये बिना आधारका निर्देश कैसे किया गया है?

समाधान—ऐसी आशंका करना ठीक नहीं है, क्योंकि यहाँ पर विषयरूप अर्थ विवक्षित है। आशय यह है कि यहाँ पर आधार अर्थमें सप्तमी विभक्तिका निर्देश नहीं किया है किन्तु विषय अर्थमें सप्तमीका निर्देश किया है। जिससे प्रकृतिविषयक एक संक्रम और प्रकृतिस्थानविषयक दूसरा संक्रम यह अर्थ होता है।

✻ 'असंकमो तहा दुविहो' इस द्वारा प्रकृतिअसंक्रम और प्रकृतिस्थानअसंक्रम का ग्रहण किया है

§ ५२ 'असंकमो तहा दुविहो' यहाँ पर 'पयडि-पयडिट्ठाणेसु' इस पदका अधिकारवश सम्बन्ध कर लेना चाहिये जिससे उक्त गाथांशद्वारा प्रकृतिअसंक्रम और प्रकृतिस्थानअसंक्रम इन दोनोंका संग्रह किया गया हो जाता है।

✻ 'दुविहो पडिग्गहविही' इस द्वारा प्रकृतिप्रतिग्रह और प्रकृतिस्थानप्रतिग्रहका ग्रहण किया है

§ ५३. यहाँपर भी पूर्ववत् अधिकारोंका सम्बन्ध हो जानेसे प्रकृत निर्गमोंका ग्रहण कर लेना चाहिये।

✻ दुविहो अपडिग्गहविही य इस द्वारा प्रकृतिअप्रतिग्रह और प्रकृतिस्थान-अप्रतिग्रहका ग्रहण किया है।

§ ५४. यहाँपर भी पूर्ववत् अधिकारवश सम्बन्ध कर लेना चाहिये। शेष कथन सुगम है।

इसप्रकार प्रकृतिसंक्रमके ये आठ निर्गम कहे।

---

१. आ०प्रतौ तेण पयडिट्ठाणासंकमाणं इति पाठः। २. आ०प्रतौ पडिग्गहविहत्ती इति पाठः। ३. आ०प्रतौ -णिग्गमाणं कायव्वं इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ५५. एवं पयडिसंकमस्स चउव्विहावयारस्स परूवणं गाहासुत्तावलंबणेण काऊण पयदत्थोवसंहारकरणट्ठमिदमाह—

❀ एस सुत्तफासो ।

§ ५६. एसो गाहासुत्ताणमवयवत्थपरामरसो कओ त्ति भणिदं होइ । संपहि परूविदाणमट्ठण्हं णिग्गमाणं मज्झे एगेगपयडिपडिबद्धाणं ताव परूवणं कस्सामो त्ति सुत्तमुत्तरं भणइ—

❀ एगेगपयडिसंकमे पयदं ।

§ ५७. एगेगपयडिसंकमे अंतोभाविदतदसंकमतप्पडिग्गहापडिग्गहे पयदमिदि भणिदं होइ । तत्थ चउवीसमणियोगद्दाराणि होंति । तं जहा—समुक्कित्तणा सव्वसंकमो णोसव्वसंकमो उक्कस्ससंकमो अणुक्कस्ससंकमो जहण्णसंकमो अजहण्णसंकमो सादियसंकमो अणादियसंकमो धुवसंकमो अद्धुवसंकमो एगजीवेण सामित्तं कालो अंतरं णाणाजीवेहि भंगविचओ भागाभागो परिमाणं खेत्तं पोसणं कालो अंतरं सण्णियासो भावो अप्पाबहुअं चेदि । एत्थ ताव समुक्कित्तणादीणमेक्कारसण्हमणियोगद्दाराणमप्पवण्णणिज्जत्तादो सुत्तयारेण अपरूविदाणंमुच्चारणाणुसारेण परूवणं वत्तइस्सामो । तं जहा—

§ ५८. समुक्कित्तणाणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण अत्थि सव्वपयडीणं संकमो । एवं चदुसु गदीसु । णवरि पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज०-

§ ५५. इसप्रकार गाथासूत्रोंके आधारसे प्रकृतिसंक्रमके चार प्रकारके अवतारका कथन करके प्रकृत अर्थका उपसंहार करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

* यह सूत्रस्पर्श है ।

§ ५६. इसप्रकार यह गाथासूत्रोंके प्रत्येक पदके अर्थका स्पर्श किया यह उक्त कथनका तात्पर्य है । अब पूर्वोक्त इन आठ निर्गमोंमेंसे एकैकप्रकृतिसम्बन्धी निर्गमका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

* एकैकप्रकृतिसंक्रमका प्रकरण है ।

§ ५७. जिसमें एकैकप्रकृतिअसंक्रम, प्रकृतिप्रतिग्रह और प्रकृतिअप्रतिग्रह ये अन्तर्भूत हैं ऐसे एकैकप्रकृतिसंक्रमका प्रकरण है यह उक्त सूत्रका तात्पर्य है । सो इस विषयमें चौबीस अनुयोगद्वार हैं । यथा—समुत्कीर्तना, सर्वसंक्रम, नोसर्वसंक्रम, उत्कृष्टसंक्रम, अनुत्कृष्टसंक्रम, जघन्यसंक्रम, अजघन्यसंक्रम, सादिसंक्रम, अनादिसंक्रम, ध्रुवसंक्रम, अध्रुवसंक्रम, एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्व, काल और अन्तर तथा नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, सन्निकर्ष, भाव और अल्पबहुत्व । इनमेंसे समुत्कीर्तना आदि ग्यारह अनुयोगद्वार अल्प वर्णनीय होनेसे सूत्रकारके द्वारा नहीं कहे गये हैं, अतः उच्चारणाके अनुसार उनका कथन करते हैं । यथा—

§ ५८. समुत्कीर्तनानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे मोहनीयकी सब प्रकृतियोंका संक्रम है । इसीप्रकार चारों गतियोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी

१. आ०प्रतौ सुत्तयारेण परूवदाण- इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मणुसअपज्जत्तएसु मिच्छत्तस्स असंकमो। अणुदिसादि जाव सव्वट्ठे त्ति सम्मत्तस्स असंकमो। एवं जाव अणाहारि त्ति।

§ ५९. सव्व०-णोसव्वसंकमाणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण सव्वाओ पयडीओ संकामेमाणस्स सव्वसंकमो। तदूणं० णोसव्वसंकमो। एवं जाव०।

§ ६०. उक्कस्स-अणुक्कस्ससंकमाणुगमेण सत्तावीसपयडीओ संकामेमाणस्स उक्कस्स-संकमो। तदूणं अणुक्कस्ससंकमो। एवं जाव०।

§ ६१. जहण्ण-अजहण्णसंकमाणु० सव्वजहण्णियं पयडिं संकामेमाणस्स जहण्ण-संकमो। तदो उवरिमजहण्णसंकमो। का सव्वजहण्णिया पयडी णाम ? जा जहण्ण-संखाविसेसिया। तत्तो उवरिमसंखाविसेसिया अजहण्णा णाम, पयडिविसयसंखाए

विशेषता है कि पंचेन्द्रियतिर्यंचअपर्याप्त और मनुष्यअपर्याप्त जीवोंमें मिथ्यात्वका संक्रम नहीं होता। तथा अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें सम्यक्त्व प्रकृतिका संक्रम नहीं होता। इसीप्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये।

विशेषार्थ—मिथ्यात्वका संक्रम सम्यग्दृष्टि जीवके ही होता है किन्तु पंचेन्द्रियतिर्यंच लब्ध्यपर्याप्त और मनुष्यलब्ध्यपर्याप्त जीवोंके सम्यक्त्वकी प्राप्ति सम्भव नहीं, अतः इनके मिथ्यात्वके संक्रमका निषेध किया है। तथा सम्यक्त्वका संक्रम उसी मिथ्यादृष्टिके सम्भव है जिसके उसकी सत्ता है। यतः अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देव सम्यग्दृष्टि ही होते हैं, अतः इनके सम्यक्त्वके संक्रमका निषेध किया है। शेष कथन सुगम है।

§ ५९. सर्वसंक्रम और नोसर्वसंक्रमके अनुगमसे निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और और आदेशनिर्देश। ओघसे सब प्रकृतियोंका संक्रम करनेवाले जीवके सर्वसंक्रम होता है और इससे न्यून प्रकृतियोंका संक्रम करनेवाले जीवके नोसर्वसंक्रम होता है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये।

§ ६०. उत्कृष्टसंक्रम और अनुत्कृष्टसंक्रमानुगमसे सत्ताईस प्रकृतियोंका संक्रम करनेवाले जीवके उत्कृष्टसंक्रम होता है और इससे न्यून प्रकृतियोंका संक्रम करनेवाले जीवके अनुत्कृष्टसंक्रम होता है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चहिये।

विशेषार्थ—अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाले मिथ्यादृष्टिके मिथ्यात्वके सिवा सब प्रकृतियों का संक्रम सम्भव है, इसलिये यह उत्कृष्टसंक्रम है। तथा इसके सिवा शेष सब अनुत्कृष्टसंक्रम है। पर यह ओघ प्ररूपणा है। आदेशसे जहाँ जैसी प्रकृतियाँ और उनका बन्ध सम्भव हो तदनुसार उत्कृष्ट अनुत्कृष्टका विचार करना चाहिये।

§ ६१. जघन्यसंक्रम और अजघन्यसंक्रमानुगमकी अपेक्षा सबसे जघन्य प्रकृतिका संक्रम करनेवाले जीवके जघन्यसंक्रम होता है और इससे अधिक प्रकृतियोंका संक्रम करनेवाले जीवके अजघन्य संक्रम होता है।

शंका—सबसे जघन्य प्रकृति इसका क्या तात्पर्य है ?

समाधान—जो जघन्य संख्यासे युक्त है वह जघन्य प्रकृति है और इससे अधिक संख्या

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जहण्णाजहण्णभावस्स एत्थ विवक्खियत्तादो । एवं जाव अणाहारि त्ति ।

§ ६२. सादिय-अणादिय-धुव-अद्धुवसंकमाणु० दुविहो णि०—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं किं सादिओ संकमो किमणादिओ धुवो अद्धुवो वा ? सादि-अद्धुवो । सोलसकसाय-णवणोकसाय० किं सादिओ ४ ? सादि० अणादि० धुव० अद्धुवसंकमो वा । आदेसेण णेरइएसु सव्वपयडीणं सादि-अद्धुवो संकमो एवं जाव ।

§ ६३. एवमेदेसिं सुगमाणं परूवणमकादूण सामित्तपरूवणट्ठमिदमाह—

❀ एत्थ सामित्तं ।

वाली प्रकृतियाँ अजघन्य कहलाती हैं, क्योंकि यहाँपर प्रकृतिविषयक संख्याकी अपेक्षासे जघन्य और अजघन्य माना गया है ।

इसीप्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

§ ६२. सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव संक्रमानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघसे मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व इनका संक्रम क्या सादि है, क्या अनादि है, क्या ध्रुव है या क्या अध्रुव है ? सादि और अध्रुव है । सोलह कषाय और नौ नोकषायका संक्रम क्या सादि है, क्या अनादि है, क्या ध्रुव है या क्या अध्रुव है ? सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव चारों प्रकारका है । आदेशसे नारकियोंमें सब प्रकृतियोंका सादि और अध्रुव संक्रम है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्ता प्राप्त होनेपर ही मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रम सम्भव है । किन्तु उक्त दो प्रकृतियोंकी सत्ता अनादि कालसे नहीं पाई जाती, अतः इन तीन प्रकृतियोंका संक्रम सादि और अध्रुव इस तरह दो प्रकारका बतलाया है । अब रहीं सोलह कषाय और नौ नोकषायरूप पच्चीस प्रकृतियाँ सो इनमें सादि आदि चारों विकल्प सम्भव हैं, क्यों कि इन पच्चीस प्रकृतियोंका जिन प्रकृतियोंमें संक्रम हो सकता है उनकी जब तक बन्धव्युच्छित्ति नहीं हुई तब तक इनका संक्रम अनादि है । बन्धव्युच्छित्तिके बाद पुनः बन्ध होनेपर इनका संक्रम सादि है । तथा अभव्योंकी अपेक्षा ध्रुव और भव्योंकी अपेक्षा अध्रुव भंग है । यह तो ओघसे विचार हुआ । आदेशसे विचार करने पर एक जीवकी अपेक्षा नरक गति सादि है अतः इस अपेक्षासे सभी प्रकृतियोंके सादि और अध्रुव ये दो भंग ही सम्भव हैं । इसी प्रकार सभी मार्गणाओंमें जहाँ ओघ या आदेश जो व्यवस्था घटित हो जाय वह लगा लेनी चाहिये । उदाहरणार्थ अचक्षुदर्शनमें ओघ व्यवस्था लागू होती है इसलिये वहाँ ओघके समान प्ररूपणा जाननी चाहिये । अभव्य मार्गणामें सोलह कषाय और नौ नोकषायकी अपेक्षा अनादि और ध्रुव ये दो ही भंग सम्भव हैं । तथा यहाँ मिथ्यात्वका संक्रम होता नहीं, क्यों कि इसकी सजातीय प्रकृतियाँ सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व इसके नहीं पाई जातीं । भव्यके एक ध्रुव भंगको छोड़कर शेष सब कथन ओघके समान बन जाता है । अब रहीं शेष मार्गणाएँ सो उनमें सब कथन नरक गतिके समान है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

§ ६३. इस प्रकार इन सुगम अनुयोगद्वारोंका कथन न करके चूर्णिसूत्रकार स्वामित्वका कथन करनेके लिये यह आगेका सूत्र कहते हैं—

❀ अब यहाँ स्वामित्वका अधिकार है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ६४. एदम्मि एगेगपयडिसंकमे सामित्तपरूवणमिदाणिं कस्सामो त्ति भणिदं होइ।

❀ मिच्छत्तस्स संकामओ को होइ ?

§ ६५. मिच्छत्तस्स पयडिसंकमस्स सामिओ कदरो[1] होइ ? किं देवो णेरइओ मिच्छाइट्ठी सम्माइट्ठी वा ? इच्चेवमादिविसेसावेक्खमेदं पुच्छासुत्तं ।

❀ णियमा सम्माइट्ठी ।

§ ६६. कुदो ? अण्णत्थ तस्स संकमाभावादो । एदेण सम्माइट्ठी चेव संकामओ होदि ण अण्णो त्ति अण्णजोगववच्छेदो कदो । सो वि सम्माइट्ठी तिविहो खइयादिभेदेण । तत्थ सव्वेसिं सम्माइट्ठीणमविसेसेण पयदसामित्ते पसत्ते विसेसपदुप्पायणट्ठमाह—

❀ वेदगसम्माइट्ठी सव्वो ।

§ ६७. वेदयसम्माइट्ठी सव्वो मिच्छत्तस्स संकामओ होइ । णवरि संकमपाओग्गमिच्छत्तसंतकम्मिओ त्ति पयरणवसेणेत्थाहिसंबंधो कायव्वो, तदण्णत्थ पयदसामित्तासंभवादो ।

❀ उवसामगो च णिरासाणो ।

§ ६८. उवसमसम्माइट्ठी च सव्वो जाव णासाणं पडिवज्जइ ताव मिच्छत्तस्स

---

§ ६४. अब यहाँ एकैकप्रकृतिसंक्रमके विषयमें स्वामित्वका कथन करते हैं यह उक्त सूत्रका तात्पर्य है।

*** मिथ्यात्वका संक्रामक कौन होता है ?**

६५. मिथ्यात्व प्रकृतिके संक्रमका स्वामी कौन जीव है ? क्या देव है या नारकी है, सम्यग्दृष्टि है या मिथ्यादृष्टि है। इस प्रकार इत्यादि रूपसे विशेषकी अपेक्षा रखनेवाला यह पृच्छासूत्र है।

*** नियमसे सम्यग्दृष्टि होता है ।**

§ ६६. क्योंकि अन्यत्र मिथ्यात्वका संक्रम नहीं होता। यद्यपि इस सूत्र द्वारा सम्यग्दृष्टि ही संक्रामक होता है मिथ्यादृष्टि नहीं इस प्रकार अन्ययोगव्यवच्छेद कर दिया है तथापि वह सम्यग्दृष्टि भी क्षायिक आदिके भेदसे तीन प्रकारका है, इसलिये इन सब सम्यग्दृष्टियोंके सामान्यसे प्रकृत स्वामित्वका प्रसंग प्राप्त होने पर इस विषयकी विशेषताको बतलानेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं —

*** वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें सब जीव मिथ्यात्वके संक्रामक होते हैं ।**

§ ६७. वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें सब जीव मिथ्यात्वके संक्रामक होते हैं। किन्तु इतनी विशेषता है कि जिनके संक्रमके योग्य मिथ्यात्वका सत्त्व है वे ही उसके संक्रामक होते हैं इतना प्रकरण वश यहाँपर अर्थका सम्बन्ध कर लेना चाहिये, क्यों कि इसके सिवा अन्यत्र प्रकृत स्वामित्व सम्भव नहीं है।

*** उपशामकोंमें भी जो सासादनको नहीं प्राप्त हुए हैं वे मिथ्यात्वके संक्रामक होते हैं ।**

§ ६८. सभी उपशमसम्यग्दृष्टि जब तक सासादनको नहीं प्राप्त होते हैं तब तक मिथ्यात्वके

---

१. आ० प्रतौ कदवरो इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संकामओ होइ। कथमेत्थुवसंतदंसणमोहणिज्जम्मि मिच्छत्तस्स संकमसंभवो त्ति णासंकणिज्जं, उवसंतस्स वि दंसणमोहणिज्जस्स संकमब्भुवगमादो। सासणगुणपडिवण्णस्स पुण उवसंतदंसणमोहणीयस्स सहावदो चेव दंसणतियस्स संकमो णत्थि त्ति घेत्तव्वं।

❀ सम्मत्तस्स संकामओ को होइ ?

§ ६९. सुगमं।

❀ णियमा मिच्छाइट्ठी सम्मत्तसंतकम्मिओ।

§ ७०. एत्थ 'णियमा मिच्छाइट्ठि' त्ति एदेण सेसगुणट्ठाणवुदासो कओ। 'सम्मत्तसंतकम्मिओ' त्ति एदेण वि तदसंतकम्मियस्स पडिसेहो दट्ठव्वो। सो पयदसंकमस्स सामिओ होइ, तत्थ तदविरोहादो। किमेसो सम्मत्तसंतकम्मिओ

संक्रामक होते हैं।

शंका—जिसने दर्शनमोहनीयका उपशम कर लिया है उसके मिथ्यात्वका संक्रम कैसे सम्भव है ?

समाधान—ऐसी आशंका करना ठीक नहीं है, क्यों कि जिसने दर्शनमोहनीयकी उपशामना की है उसके भी मिथ्यात्वका संक्रम स्वीकार किया है।

किन्तु सासादनगुणस्थानको प्राप्त हुए जीवके यद्यपि दर्शनमोहनीयका उपशम रहता है तो भी उसके स्वभावसे ही दर्शनमोहनीयकी तीन प्रकृतियोंका संक्रम नहीं होता है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिये।

विशेषार्थ—सर्व प्रथम मिथ्यात्वके संक्रमका स्वामी बतलाया गया है। ऐसा नियम है कि सम्यग्दृष्टिके ही मिथ्यात्वका संक्रम होता है अन्यके नहीं, इसलिये चूर्णिसूत्रमें मिथ्यात्वके संक्रमका स्वामी सम्यग्दृष्टिको बतलाया है। उसमें भी क्षायिकसम्यग्दृष्टिके तो मिथ्यात्वका सत्त्व ही नहीं पाया जाता है अतः उसे छोड़कर शेष सम्यग्दृष्टियोंके ही मिथ्यात्वका संक्रम होता है। शेषसे यहाँ वेदकसम्यग्दृष्टि व उपशमसम्यग्दृष्टि जीव लिये गये हैं। वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें २८ या २४ प्रकृतियोंकी सत्तावाले वेदकसम्यग्दृष्टि ही मिथ्यात्वका संक्रम करते हैं अन्य नहीं इतना विशेष जानना चाहिये। उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें भी सासादनसम्यग्दृष्टियोंके सिवा शेष सब मिथ्यात्वका संक्रम करते हैं। सासादनसम्यग्दृष्टियोंके भी मिथ्यात्वका उपशम रहता है फिर भी स्वभावसे वे दर्शनमोहनीयका संक्रम नहीं करते ऐसा नियम है। शेष कथन सुगम है।

*** सम्यक्त्वका संक्रामक कौन होता है।**

§ ६९. यह सूत्र सुगम है।

*** नियमसे सम्यक्त्वकी सत्तावाला मिथ्यादृष्टि जीव होता है।**

§ ७०. यहां सूत्रमें 'णियमा मिच्छाइट्ठी' पद है सो इसके द्वारा शेष गुणस्थानोंका निराकरण कर दिया है। तथा 'सम्मत्तसंतकम्मिओ' इस पद द्वारा जो सम्यक्त्वकी सत्तासे रहित है उसका निषेध जान लेना चाहिये। उक्त प्रकारका जो मिथ्यादृष्टि है वह प्रकृत संक्रमका स्वामी होता है, क्योंकि उसके सम्यक्त्वका संक्रम होनेमें कोई विरोध नहीं आता। क्या यह सम्यक्त्वकी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सव्वावत्थासु संकामओ होइ किं वा अत्थि को वि विसेसो त्ति आसंकिय तदत्थित्तपदुप्पायणट्ठमुत्तरसुत्तं भणइ—

❀ णवरि आवलियपविट्ठसम्मत्तसंतकम्मियं वज्ज ।

§ ७१. उव्वेल्लणाए चरिमफालिं पादिय ट्ठिदो आवलियपविट्ठसम्मत्तसंतकम्मिओ णाम। तं वज्जिय सेससव्वावत्थासु सम्मत्तसंतकम्मिओ मिच्छाइट्ठी तस्स संकामओ होइ त्ति एसो विसेसो सुत्तेणेदेण परूविदो ।

❀ सम्मामिच्छत्तस्स संकामओ को होइ ?

§ ७२. सुगमं ।

❀ मिच्छाइट्ठी उव्वेल्लमाणओ ।

§ ७३. एदस्स सुत्तस्सत्थो सम्मत्तसामित्तसुत्तस्सेवं[1] वत्तव्वो। ण केवलमेसो चेव सामिओ, किं तु अण्णो वि अत्थि त्ति जाणावणट्ठमुत्तरसुत्तं—

सत्तावाला मिथ्यादृष्टि जीव सब अवस्थाओंमें सम्यक्त्वका संक्रामक होता है या इसमें कोई विशेषता है इस प्रकारकी आशंका करके उस विशेषताका ज्ञान करानेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

*** किन्तु इतनी विशेषता है कि जिसके सम्यक्त्वकी सत्ता आवलिमें प्रविष्ट हो गई है वह सम्यक्त्वका संक्रामक नहीं होता ।**

§ ७१. उद्वेलनाके द्वारा सम्यक्त्वकी अन्तिम फालिका पतन करके जो जीव स्थित है वह आवलिमें प्रविष्ट हुआ सम्यक्त्वकी सत्तावाला जीव कहलाता है। ऐसे जीवको छोड़कर शेष सब अवस्थाओंमें सम्यक्त्वकी सत्तावाला मिथ्यादृष्टि जीव उसका संक्रामक होता है। इस प्रकार इस सूत्र द्वारा यह विशेषता कही गई है ।

विशेषार्थ—सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवके तो दर्शनमोहनीयकी तीनों प्रकृतियोंका संक्रम नहीं होता ऐसा स्वभाव है। सम्यग्दृष्टिके अन्य दो दर्शनमोहनीय प्रकृतियोंका तो यथा सम्भव संक्रम सम्भव है पर सम्यक्त्वका संक्रम वहाँ भी नहीं होता। अब रहा केवल मिथ्यात्व गुणस्थान सो इसमें २८ प्रकृतियोंकी सत्तावाले सब जीवोंके सम्यक्त्वका संक्रम होता रहता है, किन्तु जब इसकी आवलिप्रमाण सत्ता शेष रह जाती है तब इसका संक्रम होना बन्द हो जाता है ।

*** सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रामक कौन होता है ?**

§ ७२. यह सूत्र सुगम है ।

*** जो मिथ्यादृष्टि सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना कर रहा है वह सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रामक होता है ।**

§ ७३. जिस प्रकार सम्यक्त्वके स्वामित्वका कथन करनेवाले सूत्रका अर्थ कहा है उसी प्रकार इस सूत्रका अर्थ कहना चाहिये। केवल यही स्वामी है ऐसी बात नहीं है किन्तु अन्य जीव भी स्वामी है इस प्रकार इस बातके जतानेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

---

१. आ०प्रतौ सम्मत्तसम्मामिच्छत्तसामित्तसुत्तस्सेव इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** सम्माइट्ठी वा णिरासणो ।**

§ ७४. एदस्स वि सुत्तस्स अत्थो सुगमो, वेदयसम्माइट्ठी सव्वो उवसामओ णिरासाणो त्ति एदेण मिच्छत्तसामित्तसुत्तेण सरिसवक्खाणत्तादो । एत्थतणविसेस-पदुप्पायणट्ठमुवरिमसुत्तं—

*** मोत्तूण पढमसमयसम्मामिच्छत्तसंतकम्मियं ।**

§ ७५. किमट्ठमेसो परिवज्जिदो ? ण, सम्मामिच्छत्तसंतुप्पायणवावदस्स तत्थ संकामणाए वावराभावादो । ण च संतुप्पायणसंकमकिरियाणमक्कमेण संभवो, विरोहादो ।

§ ७६. एवं दंसणमोहणीयपयडीणं सामित्तं पदुप्पाइय चारित्तमोहपयडीणं सामित्तमिदाणिं परूवेमाणो तण्णिबंधणमट्ठपदं ताव परूवेइ, तेण विणा तव्विसेस-

---

*** सासादन गुणस्थानको नहीं प्राप्त हुआ सम्यग्दृष्टि भी सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रामक होता है ।**

§ ७४. इस सूत्रका भी अर्थ सुगम है, क्योंकि इस सूत्रका व्याख्यान मिथ्यात्वके स्वामित्व-का कथन करनेवाले 'वेदयसम्माइट्ठी सव्वो उवसामओ णिरासाणो' इस सूत्रके समान है । अब यहाँ पर जो विशेषता है उसका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

*** किन्तु जो सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्ता प्राप्त करनेके प्रथम समयमें स्थित है वह उसका संक्रामक नहीं होता ।**

७५. **शंका**—ऐसे जीवका निषेध क्यों किया है ?

समाधान—नहीं, क्यों कि जो सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्ताके उत्पन्न करनेमें लगा हुआ है उसके उस अवस्थामें संक्रमविषयक क्रिया नहीं होती ।

यदि कहा जाय कि सत्त्वका उत्पादन और संक्रम ये दोनों क्रियाएं एक साथ बन जायंगी सो भी बात नहीं है, क्यों कि ऐसा होनेमें विरोध आता है ।

विशेषार्थ—मिथ्यादृष्टिके सम्यग्मिथ्यात्वका मिथ्यात्वमें और सम्यग्दृष्टिके सम्य-ग्मिथ्यात्वका सम्यक्त्वमें संक्रम होता है, इस लिये यहाँ सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि दोनोंको सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रामक बतलाया है । उसमें भी क्षायिकसम्यग्दृष्टियोंके सम्यग्मिथ्यात्वका सत्त्व नहीं होनेसे वे इसके संक्रामक नहीं होते । वेदकसम्यग्दृष्टियोंमें २८, २४ और २३ प्रकृतियोंकी सत्तावाले ही इसके संक्रामक होते हैं अन्य नहीं । उपशमसम्यग्दृष्टियोंमें और तो सबके इसका संक्रम होता है किन्तु जो २६ प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव या जिसके सम्यग्मिथ्यात्वका सत्त्व संक्रमके योग्य नहीं रहा है ऐसा २७ प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त करता है उसके उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त होनेके प्रथम समयमें इसका संक्रम नहीं होता । मिथ्या-दृष्टियोंमें भी जिसके सम्यग्मिथ्यात्वका सत्त्व आवलीके भीतर प्रविष्ट हो गया है वह इसका संक्रामक नहीं होता । शेष कथन सुगम है ।

७६. इस प्रकार दर्शनमोहनीयकी प्रकृतियोंके संक्रमविषयक स्वामित्वका कथन करके अब चारित्रमोहनीयकी प्रकृतियोंके संक्रमविषयक स्वामित्वका कथन करते हुए सर्वप्रथम इस संक्रमके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाणणोवायाभावादो ।

❀ दंसणमोहणीयं चरित्तमोहणीए ण संकमइ ।

§ ७७. कुदो ? भिण्णजादित्तादो ।

❀ चरित्तमोहणीयं पि दंसणमोहणीए ण संकमइ ।

§ ७८. एत्थ वि कारणमणंतरपरूवियं । ण चेदेसिं भिण्णजाईयत्तमसिद्धं, दंसण-चरित्तपडिबद्धयाणं समाणजाईयत्तविरोहादो। समाणजाईए चेव संकमो होइ त्ति कुदो एस णियमो ? सहावदो ।

❀ अणंताणुबंधी जत्तियाओ बज्झंति चरित्तमोहणीयपयडीओ तासु सव्वासु संकमइ ।

§ ७९. कुदो ? समाणजाईयत्तं पडि भेदाभावादो । एदेण 'बंधे संकमदि' त्ति एसो वि णाओ जाणाविदो ।

❀ एवं सव्वाओ चरित्तमोहणीयपयडीओ ।

§ ८०. सव्वत्थ समाणजाईयवज्झमाणपयडीसु संकमपउत्तीए विरोहाभावादो ।

कारणभूत अर्थपदका निर्देश करते हैं, क्योंकि इसके बिना उसका विशेष ज्ञान होनेका और कोई साधन नहीं है ।

*** दर्शनमोहनीय चारित्रमोहनीयमें संक्रमण नहीं करता ।**

§ ७७. क्योंकि इन दोनोंकी भिन्न जाति है ।

*** चारित्रमोहनीय भी दर्शनमोहनीयमें संक्रमण नहीं करता ।**

§ ७८. यहाँ भी अनन्तर पूर्व कहा हुआ कारण कहना चाहिये । यदि कहा जाय कि ये भिन्न जातिवाली प्रकृतियाँ हैं यह बात नहीं सिद्ध होती सो यह बात भी नहीं है; क्योंकि दर्शन और चारित्रसे सम्बन्ध रखनेवाली प्रकृतियोंको एक जातिका होनेमें विरोध आता है ।

शंका—समान जातिवाली प्रकृतिमें ही संक्रम होता है यह नियम किस कारणसे है ?

समाधान—स्वभावसे ही ऐसा नियम है ।

*** अनन्तानुबन्धी, चरित्रमोहनीयकी जितनी प्रकृतियोंका बन्ध होता है उन सबमें संक्रमण करती है ।**

§ ७९. क्यों कि समान जातिवाली होनेके प्रति इनमें कोई भेद नहीं है । इससे बन्धमें संक्रमण करती हैं इस न्यायका भी ज्ञान हो जाता है ।

*** इसी प्रकार चारित्रमोहनीयकी सब प्रकृतियोंके विषयमें जानना चाहिये ।**

§ ८०. क्योंकि सर्वत्र बँधनेवाली समानजातीय प्रकृतियोंमें संक्रमकी प्रवृत्ति होनेमें कोई विरोध नहीं आता ।

विशेषार्थ—उक्त कथनका यह तात्पर्य है कि दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय ये एक जातिकी प्रकृतियाँ न होनेसे इनका परस्परमें संक्रम नहीं होता। हाँ चारित्रमोहनीयकी सब प्रकृतियोंका परस्परमें संक्रम सम्भव है फिर भी यह संक्रम बँधनेवाली समानजातीय प्रकृतियोंमें ही होता है इतना विशेष नियम है ।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

§ ८१. संपहि एदमट्ठपदमवलंबिय सामित्तपरूवणट्ठमुत्तरसुत्तं भणइ—

® ताओ पणुवीसं पि चरित्तमोहणीयपयडीओ अण्णदरस्स संकमंति।

§ ८२. जेणेवमणंतरपरूविदणाएण सजाईयबज्झमाणपयडिपडिग्गहेणं[1] पणुवीस-चरित्तमोहणीयपयडीणं संकमसंभवो तेणेदाओ अण्णदरस्स सम्माइट्ठिस्स मिच्छाइट्ठिस्स वा संकमंति त्ति भणिदं होइ।

एवमोघेण सामित्तं समत्तं।

§ ८३. संपहि आदेसपरूवणट्ठमुच्चारणं वत्तइस्सामो। तं जहा—सामित्ताणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मिच्छत्तसंकामओ को होइ? अण्णदरो सम्माइट्ठी। सम्मत्तस्स संकमो कस्स? मिच्छाइट्ठिस्स। सम्मामिच्छत्त-सोलसक०-णवणोक० संकमो कस्स? अण्णदरस्स सम्माइट्ठिस्स वा मिच्छाइट्ठिस्स वा। एवं चदुसु वि गदीसु। णवरि पंचिंदियतिरिक्खअपज्जत्त-मणुसअपज्जत्त-अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठे त्ति सत्तावीसंपयडीणं संकमो कस्स? अण्णदरस्स। एवं जाव०।

§ ८१. अब इस अर्थपदका आश्रय लेकर स्वामित्वका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

*** चारित्रमोहनीयकी ये पच्चीस प्रकृतियाँ किसी भी जीवके संक्रम करती हैं।**

§ ८२. यतः पहले यह न्याय बतला आये हैं कि बँधनेवाली सजातीय प्रत्येक प्रकृति प्रतिग्रहरूप होनेसे चारित्रमोहनीयकी पच्चीस प्रकृतियोंका प्रत्येक प्रकृतिमें संक्रम सम्भव है अतः ये सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि किसी भी जीवके संक्रम करती हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

विशेषार्थ—चारित्रमोहनीयकी जिस समय जितनी प्रकृतियोंका बन्ध होता है उस समय उनमें सत्तामें स्थित चारित्रमोहनीयकी सब प्रकृतियोंका संक्रम होता है। इस कारण एक साथ चारित्रमोहनीयकी सब प्रकृतियोंका संक्रम सम्भव है यह सिद्ध होता है। किन्तु चारित्रमोहनीयका बन्ध यथासम्भव मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि दोनोंके सम्भव है इसलिये इन प्रकृतियोंके संक्रमके मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि दोनों प्रकारके जीव स्वामी हैं ऐसा यहाँ समझना चाहिये।

इस प्रकार ओघसे स्वामित्वका कथन समाप्त हुआ।

§ ८३. अब आदेशका कथन करनेके लिये उच्चारणाको बतलाते हैं। यथा—स्वामित्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। ओघसे मिथ्यात्वका संक्रामक कौन होता है? कोई भी सम्यग्दृष्टि मिथ्यात्वका संक्रामक होता है। सम्यक्त्वका संक्रम किसके होता है? मिथ्यादृष्टिके होता है। सम्यग्मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंका संक्रम किसके होता है? सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टि किसीके भी होता है। इसी प्रकार चारों गतियोंमें जानना चाहिये। किन्तु पंचेन्द्रियतिर्यंचअपर्याप्त, मनुष्यअपर्याप्त और अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें सत्ताईस प्रकृतियोंका संक्रम किसके होता है? किसी भी जीवके होता है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिये।

विशेषार्थ—ओघ प्ररूपणाका निर्देश स्वयं चूर्णिसूत्रकारने किया ही है जिसका खुलासा हम पहले कर आये हैं उसी प्रकार यहाँ पर भी ओघ प्ररूपणाका खुलासा कर लेना चाहिये। मार्गणाओंमें भी जिन मार्गणाओंमें मिथ्यात्व और सम्यक्त्व ये दोनों

१. ता०प्रतौ -पडिग्गहेण आ०प्रतौ -पयडिग्गहेण इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

❀ एयजीवेण कालो ।

§ ८४. सुगममेदमहियारसंभालणसुत्तं ।

❀ मिच्छत्तस्स संकामओ केवचिरं कालादो होदि ?

§ ८५. सुगममेदं पुच्छावकं ।

❀ जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।

§ ८६. तं जहा—मिच्छाइट्ठी सम्मामिच्छाइट्ठी वा सम्मत्तं घेत्तूण सव्वजहण्णमंतोमुहुत्तमच्छिय पुणो अण्णदरगुणं पडिवण्णो । लद्धो जहण्णेणंतोमुहुत्तमेत्तो मिच्छत्तसंकमकालो ।

❀ उक्कस्सेण छावट्ठिसागरोवमाणि सादिरेयाणि ।

§ ८७. तं जहा—उवसमसम्मत्तपढमसमए मिच्छत्तसंकमस्सादिं कादूण सव्वुक्कस्सियं तदद्धमणुपालिय पुणो वेदयसम्मत्तं पडिवज्जिय छावट्ठिसागरोवमाणि परिभमिय तत्थ अंतोमुहुत्तावसेसे दंसणमोहणीयक्खवणाए अब्भुट्ठिदस्स मिच्छत्तमावलियं पवेसिय

अवस्थाएँ सम्भव हैं वहाँ तो ओघ प्ररूपणा जानना चाहिये। उदाहरणार्थ चारों गतियोंमें उक्त दोनों अवस्थाएं हो सकती हैं अतः वहाँ ओघप्ररूपणा बन जाती है। किन्तु इस मार्गणाके अवान्तर भेद मनुष्यगतिमें लब्ध्यपर्याप्त मनुष्य और तिर्यञ्चगतिमें लब्ध्यपर्याप्त पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च इन दो मार्गणाओंमें एक मिथ्यात्व गुणस्थान ही होता है और मिथ्यात्व गुणस्थानमें मिथ्यात्व प्रकृतिका संक्रम नहीं होता ऐसा नियम है, अतः यहाँ २७ प्रकृतियोंका ही संक्रम बतलाया है। इसी प्रकार देवगतिमें भी अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंके एक सम्यग्दृष्टि गुणस्थान ही होता है और सम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें सम्यक्त्व प्रकृतिका संक्रम नहीं होता ऐसा नियम है, अतः यहाँ भी सम्यक्त्वके सिवा २७ प्रकृतियोंका संक्रम बतलाया है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक जहाँ जो विशेषता सम्भव हो उसे ध्यानमें रखकर जहाँ जितनी प्रकृतियोंका संक्रम सम्भव हो उसका निर्देश करना चाहिये।

* अब एक जीवकी अपेक्षा कालका अधिकार है।

§ ८४. अधिकारका निर्देश करनेवाला यह सूत्र सुगम है।

* मिथ्यात्वके संक्रामकका कितना काल है ?

§ ८५. यह पृच्छासूत्र सुगम है।

* जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है।

§ ८६. यथा—मिथ्यादृष्टि या सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव सम्यक्त्वको ग्रहण करके और सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त कालतक सम्यक्त्वके साथ रह कर फिर अन्यतर गुणस्थानको प्राप्त हो गया। इस प्रकार मिथ्यात्वका जघन्य संक्रमकाल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त हो गया।

* उत्कृष्ट काल साधिक छयासठ सागर है।

§ ८७. यथा—उपशमसम्यक्त्वके प्रथम समयमें मिथ्यात्वके संक्रमका प्रारम्भ करके और सबसे उत्कृष्ट कालतक उसका पालन करके फिर वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। अनन्तर छयासठ सागर कालतक उसके साथ परिभ्रमण करके उसमें अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहने पर दर्शनमोहनीयकी क्षपणाके

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

सम्मामिच्छत्त-सम्मत्ताणि खवेमाणस्स अंतोमुहुत्तकालं छावट्ठिअब्भंतरे पयदसंकमो ण लब्भइ तेणेत्थ पुव्वमुवसमसम्मत्तं घेत्तूण द्विदस्स अंतोमुहुत्तकालमाणेदूण ढुविदे सादिरेय-छावट्ठिसागरोवममेत्तो पयदसंकमस्स कालो लद्धो, ऊणकालादो अहियकालस्स संखेज्ज-गुणत्तुवलंभादो। कधमेदं परिच्छिज्जदे ? सम्मामिच्छत्त-सम्मत्तक्खवणद्धादो उवसमसम्मत्त-कालो बहुओ त्ति पुरदो भण्णमाणप्पाबहुआदो । तं जहा—'दंसणमोहक्खवयस्स सयल-अणियट्टिअद्धादो तस्सेव अपुव्वकरणद्धा संखेज्जगुणा, तत्तो अणंताणुबंधिविसंजोजयस्स अणियट्टिअद्धा संखेज्जगुणा, तस्सेव अपुव्वकरणद्धा संखेज्जगुणा, तदो दंसणमोहमुव-सामेंतयस्स अणियट्टिअद्धा संखेज्जगुणा, एदस्स चेय अपुव्वकरणद्धा संखेज्जगुणा, तेणेव अपुव्वकरणपढमसमयम्मि कदगुणसेढिणिक्खेवो विसेसाहिओ, तस्सुवरि उवसमसम्मत्तद्धा संखेज्जगुणा' त्ति ।

लिये उद्यत हुआ ऐसा जो जीव मिथ्यात्वकी क्षपणा करता हुआ उसका उदयावलिमें प्रवेश कराके सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वकी क्षपणा कर रहा है उसके छयासठ सागरमें एक अन्तर्मुहूर्त कालतक प्रकृत संक्रम नहीं प्राप्त होता, इसलिये वेदकसम्यक्त्वके प्राप्त होनेके पूर्वमें जो अन्तर्मुहूर्त उपशम सम्यक्त्वका काल है उसे लाकर इस वेदकसम्यक्त्वके कालमें मिलाने पर साधिक छयासठ सागर प्रमाण प्रकृत संक्रमका काल प्राप्त होता है, क्यों कि यहाँ पर छयासठ सागरमेंसे जितना काल घटाया गया है उससे उपशम सम्यक्त्वका जोड़ा गया काल संख्यातगुणा है ।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वके क्षपणा कालसे उपशमसम्यक्त्वका काल बहुत है यह अल्पबहुत्व आगे कहनेवाले हैं, इससे जाना जाता है कि यहाँ जितना काल घटाया गया है उससे, जो उपशमसम्यक्त्वका काल जोड़ा गया है, वह संख्यातगुणा है। यथा—'दर्शन-मोहनीयकी क्षपणा करनेवाले जीवके अनिवृत्तिकरणके पूरे कालसे उसीके अपूर्वकरणका काल संख्यातगुणा है। उससे अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करनेवाले जीवके अनिवृत्तिकरणका काल संख्यातगुणा है। उससे इसी विसंयोजक जीवके अपूर्वकरणका काल संख्यातगुणा है। उससे दर्शन मोहनीयकी उपशमना करनेवाले जीवके अनिवृत्तिकरणका काल संख्यातगुणा है। उससे इसीके अपूर्वकरणका काल संख्यातगुणा है। उससे इसीके अपूर्वकरणके प्रथम समयमें की गई गुणश्रेणिका निक्षेप विशेष अधिक है। उससे उपशमसम्यक्त्वका काल संख्यातगुणा है।' इससे जाना जाता है कि वेदकसम्यक्त्वके उत्कृष्ट कालमेंसे जो काल कम किया गया है उससे वेदकसम्यक्त्वके प्राप्त होनेके पूर्व प्राप्त हुआ उपशमसम्यक्त्वका काल संख्यातगुणा है।

विशेषार्थ—यहां मिथ्यात्वके संक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल बतलाया है। यह तो पहले ही बतला आये हैं कि मिथ्यात्वका संक्रम सम्यग्दृष्टिके ही होता है, इसलिये सम्यक्त्वका जो सबसे जघन्य काल है वह यहां मिथ्यात्वके संक्रमका जघन्य काल जानना चाहिये। यतः सम्यक्त्वका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त बतलाया है अतः मिथ्यात्वके संक्रमका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है। अब रही उत्कृष्ट कालकी बात सो यद्यपि सामान्यसे सम्यक्त्वका उत्कृष्ट काल साधिक चार पूर्वकोटि अधिक छयासठ सागर है। पर इसमें क्षायिकसम्यग्दर्शनका काल भी सम्मिलित है अतः इसे छोड़कर केवल वेदकसम्यक्त्वका कुछ कम उत्कृष्ट काल और उपशमसम्यक्त्व

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

❀ सम्मत्तस्स संकामओ केवचिरं कालादो होदि ?

§ ८८. सुगमं ।

❀ जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।

§ ८९. सव्वजहण्णमिच्छत्तकालावलंबणादो ।

❀ उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ।

§ ९०. दीहयरुव्वेल्लणकालग्गहणादो ।

❀ सम्मामिच्छत्तस्स संकामओ केवचिरं कालादो होदि ?

§ ९१. सुगमं ।

❀ जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।

§ ९२. सव्वजहण्णमिच्छत्त-सम्मत्तगुणकालमण्णदरस्स ग्गहणादो ।

का उत्कृष्ट काल ही यहां पर लेना चाहिये, क्योंकि क्षायिकसम्यग्दृष्टिके मिथ्यात्वका संक्रम नहीं होता। उसमें भी वेदकसम्यक्त्वके कालमेंसे मिथ्यात्वके आवलिमें प्रवेश करनेके कालसे लेकर सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वके क्षपणातकके कालका त्याग कर देना चाहिये। इस प्रकार जो भी काल बचता है वह अन्तर्मुहूर्त अधिक छयासठ सागर होता है, अतः मिथ्यात्वके संक्रमका उत्कृष्ट काल इतना बतलाया है।

* सम्यक्त्वके संक्रामकका कितना काल है ?

§ ८८. यह सूत्र सुगम है।

* जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है।

§ ८९. क्योंकि यहाँ पर मिथ्यात्वके सबसे जघन्य कालका अवलम्बन लिया है।

* उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है।

§ ९०. क्योंकि यहाँ पर सम्यक्त्वकी उद्वेलनाके सबसे बड़े कालका ग्रहण किया है।

विशेषार्थ—सम्यक्त्व प्रकृतिका संक्रामक मिथ्यादृष्टि जीव होता है, अतः मिथ्यात्व गुणस्थानका जो जघन्य काल है वह सम्यक्त्वके संक्रमका जघन्य काल बतलाया है। पर उत्कृष्ट कालमें कुछ विशेषता है। बात यह है कि मिथ्यात्व गुणस्थानमें चिरकाल तक सम्यक्त्वकी सत्ता नहीं पाई जाती। किन्तु सम्यक्त्व प्रकृति उद्वेलना प्रकृति होनेसे उत्कृष्ट उद्वेलनाका जितना काल है उतना सम्यक्त्व प्रकृतिके संक्रमका उत्कृष्ट काल प्राप्त होता है। यतः सम्यक्त्वका उत्कृष्ट उद्वेलना काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है अतः सम्यक्त्वका उत्कृष्ट संक्रमकाल भी उतना ही बतलाया है। किन्तु उद्वेलनाके अन्तमें जब सम्यक्त्व प्रकृति आवलिमें प्रविष्ट हो जाती है तब उसका संक्रम नहीं होता इतना विशेष जानना चाहिये। इससे सम्यक्त्वके उत्कृष्ट उद्वेलनाकालमेंसे इतना काल कम कर देना चाहिए।

* सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकका कितना काल है ?

§ ९१. यह सूत्र सुगम है।

* जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है।

§ ९२. क्योंकि यहांपर मिथ्यात्व या सम्यक्त्व गुणस्थानके सबसे जघन्य कालमेंसे किसी एकका ग्रहण किया है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

❀ उक्कस्सेण वेछावट्ठिसागरोवमाणि सादिरेयाणि ।

§ ९३. तं जहा—अणादियमिच्छाइट्ठी पढमसम्मत्तमुप्पाइय विदियसमए पयद-संकमस्सादिं कादूण तत्थ दोहमंतोमुहुत्तकालमच्छिय मिच्छत्तं गंतूण पलिदोवमासंखेज्ज-भागमेत्तमुव्वेल्लेमाणो चरिमफालिमेत्तसम्मामिच्छत्तट्ठिदिसंतकम्मे सेसे सम्मत्तं पडिवज्जिय पढमछावट्ठिं भमिय तत्थंतोमुहुत्तावसेसे मिच्छत्तं पडिवण्णो पुव्वविहाणेण उव्वेल्लेमाणो पलिदो० असंखे०भागमेत्तकालेण सम्मत्तमुवणमिय विदियछावट्ठिमंतोमुहुत्तूणियमणु-पालिय परिणामपच्चएण मिच्छत्तं गदो दीहुव्वेल्लणकालेणुव्वेल्लिज्जमाणं सम्मामिच्छत्त-माउलियं पवेसिय असंकामओ जाओ। लद्धो तीहि पलिदोवमासंखेज्जदिभागेहि सादिरेओ वेछावट्ठिसागरोवमकालो सम्मामिच्छत्तसंकामयस्स ।

❀ सेसाणं पि पणुवीसंपयडीणं संकामयस्स तिण्णि भंगा ।

§ ९४. एत्थ सेसग्गहणेणेव सिद्धे पणुवीसंपयडीणमिदि णिद्देसो णिरत्थओ त्ति णासंकणिज्जं, उहयणयावलंबिसिस्सजणाणुग्गहट्ठमण्णय-वदिरेगेहिं परूवणाए दोसा-

---

*** उत्कृष्ट काल साधिक दो छयासठ सागर है ।**

§ ९३. यथा—किसी एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीवने प्रथमोपशम सम्यक्त्वको उत्पन्न करके दूसरे समयमें प्रकृत संक्रमका प्रारम्भ किया। फिर वहां सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कालतक रह कर मिथ्यात्वमें गया। फिर वहां पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कालतक सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना की। किन्तु ऐसा करते हुए सम्यग्मिथ्यात्वका स्थितिसत्कर्म अन्तिम फालिप्रमाण शेष रहने पर सम्यक्त्वको प्राप्त करके प्रथम छयासठ सागर काल तक उसके साथ परिभ्रमण किया। किन्तु इसमें अन्तर्मुहूर्त कालके शेष रहने पर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। और पूर्वविधिसे पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कालके द्वारा सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करके सम्यक्त्वको प्राप्त किया। फिर अन्त-र्मुहूर्त कम दूसरे छयासठ सागर कालतक सम्यक्त्वका पालन करके परिणामवश मिथ्यात्वमें गया। फिर सर्वोत्कृष्ट उद्वेलना कालके द्वारा उद्वेलना करता हुआ सम्यग्मिथ्यात्वको उदयावलिमें प्रवेश कराके असंक्रामक हो गया। इस प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकका उत्कृष्ट काल पल्यके तीन असंख्यातवें भागोंसे अधिक दो छयासठ सागरप्रमाण प्राप्त होता है।

विशेषार्थ—सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रम सम्यक्त्व और मिथ्यात्व इन दोनों गुणस्थानोंमें होता है, इसलिये जघन्य काल प्राप्त करनेके लिये इन दोनों गुणस्थानोंमेंसे किसी एकका जघन्य काल लिया गया है। तथा उत्कृष्ट काल इन दोनों गुणस्थानोंकी अपेक्षासे घटित किया गया है। केवल ध्यान यह रखा गया है कि सम्यग्मिथ्यात्वका निरन्तर संक्रम बना रहे। इस हिसाबसे कालकी गणना करने पर उक्त काल प्राप्त हो जाता है जिसका विस्तारसे निर्देश टीकामें किया ही है।

*** शेष पच्चीस प्रकृतियोंके संक्रामक जीवके कालकी अपेक्षा तीन भंग होते हैं ।**

§ ९४. **शंका**—यहाँ सूत्रमें 'शेष' पदका ग्रहण करना ही पर्याप्त है। उसीसे बाकीकी बची हुई पच्चीस प्रकृतियोंका ग्रहण हो जाता है, इसलिये 'पणुवीसंपयडीणं' इस पदका निर्देश करना निरर्थक है ?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिये, क्योंकि दोनों नयोंका अवलम्बन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भावादो। तम्हा उत्तसेसाणं चरित्तमोहणीयपयडीणं पणुवीसण्हं पि संकामयस्स तिण्णि भंगा कायव्वा। तं जहा—अणादिओ अपज्जवसिदो अणादिओ सपज्जवसिदो सादिओ सपज्जवसिदो चेदि। आदिल्लदुगं सुगमं, तत्थ जहण्णुक्कस्सवियप्पाणमसंभवादो। इयरत्थ जहण्णुक्कस्सकालणिद्देसट्ठमुत्तरसुत्तावयारो—

❀ तत्थ जो सो सादिओ सपज्जवसिदो जहण्णेण अंतोमुहुत्तं। उक्कस्सेण उवड्ढपोग्गलपरियट्टं।

§ ९५. तत्थ 'जहण्णेणंतोमुहुत्तं'इदि उत्ते अणंताणुबंधो विसंजोएदूण[1] संजुत्तस्स पुणो वि सव्वजहण्णेण कालेण विसंजोयणाए वावदस्स जहण्णसंकमकालो घेत्तव्वो। सेसाणं पि सव्वोवसामणाए सेढीदो पडिवदिदस्स अंतोमुहुत्तेण पुणो वि सव्वोवसामणाए वावदस्स जहण्णकालो वत्तव्वो। 'उक्कस्सेण उवड्ढपोग्गलपरियट्टं' इदि उत्ते पोग्गलपरियट्टकालस्सद्धं देसूणं घेत्तव्वं, अद्धपोग्गलपरियट्टस्स समीवं उवड्ढपोग्गलपरियट्टमिदि गहणादो। तत्थाणंताणुबंधीणमुक्कस्ससंकमकाले भण्णमाणे अद्धपोग्गलपरियट्टादिसमए पढमसम्मत्तमुप्पाइय उवसमसम्मत्तकालब्भंतरे अणंताणुबंधिं विसंजोइय पुणो तिस्से उवसमसम्मत्तद्धाए छ आवलियाओ अत्थि त्ति आसाणं पडिवण्णस्स आवलि-

करनेवाले शिष्य जनोंका उपकार करनेके लिये अन्वय और व्यतिरेकरूपसे प्ररूपणा करनेमें कोई दोष नहीं आता। इसलिये पूर्वोक्त प्रकृतियोंमेंसे जो चारित्रमोहनीयकी पच्चीस प्रकृतियाँ शेष बची हैं उनके संक्रामकके कालकी अपेक्षासे तीन भंग करने चाहिये। यथा—अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त। इनमेंसे प्रारम्भके दो भंग सुगम हैं, क्योंकि उनमें जघन्य और उत्कृष्ट ये भेद सम्भव नहीं है। अब जो शेष बचा तीसरा भंग है सो उसके जघन्य और उत्कृष्ट कालका निर्देश करनेके लिये आगेके सूत्रका अवतार हुआ है—

*** उनमें जो सादि-सान्त भंग है उसका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल उपार्ध पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है।**

§ ९५. सूत्रमें 'तत्थ जहण्णेणंतोमुहुत्तं' ऐसा करने पर इससे अनन्तानुबन्धियोंकी विसंयोजना करके संयुक्त हुए जीवके फिर भी सबसे जघन्य कालद्वारा विसंयोजना करने पर जो अनन्तानुबन्धियोंका जघन्य संक्रमकाल प्राप्त होता है वह लेना चाहिये। इसी प्रकार सर्वोपशामनाके बाद श्रेणिसे च्युत होकर अन्तर्मुहूर्तमें फिर भी सर्वोपशामनामें लगे हुए जीवके शेष प्रकृतियोंका भी जघन्य संक्रमकाल कहना चाहिये। तथा सूत्रमें 'उक्कस्सेण उवड्ढपोग्गलपरियट्टं' ऐसा कहने पर उससे पुद्गलपरिवर्तनका कुछ कम आधा काल लेना चाहिये, क्योंकि अर्धपुद्गलपरिवर्तनके समीपका काल उपार्धपुद्गलपरिवर्तन काल कहलाता है ऐसा यहाँ ग्रहण किया गया है। उसमें सर्व प्रथम अनन्तानुबन्धियोंके उत्कृष्ट संक्रमकालका कथन करते हैं—जब संसारमें रहनेके लिये अर्धपुद्गलपरिवर्तन काल शेष बचे तब उसके प्रथम समयमें प्रथमोपशम सम्यक्त्वको उत्पन्न कराके उपशमसम्यक्त्वके कालके भीतर अनन्तानुबन्धियोंकी विसंयोजना करावे। फिर उसी उपशमसम्यक्त्वके कालमें जब छह आवलिकाल शेष बचे तब उसे सासादनमें ले जावे और एक

१ ता०प्रतौ -बंधी [णं] विसंजोएदूण, आ०प्रतौ -बंधीणं विसंजोएदूण इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

यादिकंतस्स आदी कायव्वा। सेसं सुगमं। एवं सेसाणं पि पयडीणं वतव्वं। णवरि सव्वोवसामणाए पडिवादपढमसमए संकमस्सादिं कादूण देसूणमद्धपोग्गलपरियट्टं साहेयव्वं।

एवमोघेण कालो गओ।

§ ९६. संपहि आदेसपरूवणट्ठमुच्चारणं वत्तइस्सामो। तं जहा—एयजीवेण कालाणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण मिच्छत्तसंकामओ केवचिरं० ? जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० छावट्ठिसागरो० सादिरेयाणि। असंकामओ जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं। सम्मत्त०संकामओ जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। असंकामय० जह० अंतोमु०, उक्क० वेछावट्ठिसागरो० सादिरेयाणि। सम्मामि०संकाम० जह० अंतोमु०, उक्क० वेछावट्ठिसागरो० सादिरेयाणि।

आवलिकालके बाद संक्रमका प्रारम्भ करावे। इसके आगेका शेष कथन सुगम है। इसी प्रकार शेष प्रकृतियोंका भी उत्कृष्ट संक्रमकाल कहना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि सर्वोपशामनासे च्युत होनेके प्रथम समयमें संक्रमका प्रारम्भ करके उसका उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण साध लेना चाहिये।

विशेषार्थ—दर्शनमोहनीयकी तीन प्रकृतियोंमेंसे सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका सत्त्व अनादि मिथ्यादृष्टि जीवके नहीं पाया जाता, इसलिये इन तीन प्रकृतियोंके संक्रमकी अपेक्षा अनादि-अनन्त और अनादि-सान्त ये दो विकल्प बनते ही नहीं। वहाँ केवल सादि-सान्त यही एक विकल्प सम्भव है। किन्तु चारित्रमोहनीयकी पच्चीस प्रकृतियोंका अनादि कालसे भव्य और अभव्य दोनोंके सत्त्व पाया जाता है। इसलिये इनकी अपेक्षा संक्रमके अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त ये तीनों विकल्प बन जाते हैं। अनादि-अनन्त विकल्प तो अभव्योंके ही होता है, क्योंकि अभव्योंके अनादि कालसे इन पच्चीस प्रकृतियोंका संक्रम होता आ रहा है और अनन्त कालतक होता रहेगा। किन्तु शेष दो विकल्प भव्योंके ही होते हैं। उनमेंसे अनादि-सान्त विकल्प उन भव्योंके होता है जिन्होंने एकबार अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना और चारित्रमोहनीयकी शेष प्रकृतियोंकी उपशामना की है। अब रहा तीसरा विकल्प सो उसका खुलासा टीकामें ही किया है। सुगम होनेसे उसका निर्देश पुनः यहाँ नहीं किया गया है।

इस प्रकार ओघसे कालका कथन समाप्त हुआ।

§ ९६. अब आदेशका कथन करनेके लिये उच्चारणाको बतलाते हैं। यथा—एक जीवकी अपेक्षा कालानुगमसे निर्देश दो प्रकारका है—ओघ निर्देश और आदेश निर्देश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मिथ्यात्वके संक्रामकका कितना काल है ? जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल साधिक छयासठ सागर है। मिथ्यात्वके असंक्रामकका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है। सम्यक्त्वके संक्रामकका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है ? असंक्रामकका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल साधिक दो छयासठ सागरप्रमाण है। सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल साधिक दो छयासठ सागरप्रमाण है। असंक्रामकका

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

असंका० जह० एगसमओ, उक० अंतोमु० । सोलसक०-णवणोक० संकाम० अणादिओ अपज्ज० अणादिओ सपज्ज० सादिओ सपज्ज० । जो सो सादिओ सपज्जवसिदो तस्स इमो णिद्देसो—जह० अंतोमु०, उक० उवड्ढपोग्गलपरियट्टं । अणंताणु०-असंकामओ जह० समयूणावलिया, विसंजोयणाचरिमफालीए तदुवलंभादो । उक० आवलिया संपुण्णा, संजुत्तपढमावलियाए तदुवलद्धीदो । सेसाणमसंकामय० जह० एगसमओ, उक० अंतोमु०, उवसमसेढीए तदुवलंभादो ।

जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। सोलह कषाय और नौ नोकषायोंके संक्रामकके कालकी अपेक्षा अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त ये तीन भंग होते हैं। उनमेंसे जो सादि-सान्त विकल्प है उसका यह निर्देश है। उसकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल उपार्ध पुद्गलपरावर्तप्रमाण है। अनन्तानुबन्धियोंके असंक्रामकका जघन्य काल एक समय कम एक आवलिप्रमाण है, क्योंकि विसंयोजनाकी अन्तिम फालिके आश्रयसे यह काल उपलब्ध होता है। उत्कृष्ट काल पूरी एक आवलिप्रमाण है, क्योंकि अनन्तानुबन्धियोंसे संयुक्त होनेपर प्रथम आवलिके समय यह काल उपलब्ध होता है। शेष प्रकृतियोंके असंक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है; क्योंकि ये दोनों काल उपशमश्रेणिमें पाये जाते हैं।

विशेषार्थ—ओघसे सब प्रकृतियोंके संक्रामकका जघन्य और उत्कृष्ट काल कितना है इसका खुलासा पूर्वमें चूर्णिसूत्रोंके व्याख्यानके समय कर आये हैं उसी प्रकार यहाँ भी जान लेना चाहिये। यहाँ इन सब प्रकृतियोंके असंक्रामकके जघन्य और उत्कृष्ट कालका खुलासा करते हैं—मिथ्यात्वका मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें संक्रम नहीं होता, अतः इस गुणस्थानका जो जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल है वही मिथ्यात्वके असंक्रामकका जघन्य काल प्राप्त होता है। यही कारण है कि यहाँ मिथ्यात्वके असंक्रामकका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त बतलाया है। तथा सादि-सान्त विकल्पकी अपेक्षा मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका जो उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है वही यहाँ मिथ्यात्वके असंक्रामकका उत्कृष्ट काल प्राप्त होता है। इसीसे मिथ्यात्वके असंक्रामकका उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण बतलाया है। सम्यक्त्वका संक्रम सम्यग्दृष्टिके नहीं होता, इसलिये सम्यग्दृष्टि गुणस्थानका जो जघन्य काल है वह सम्यक्त्वके असंक्रामकका जघन्य काल प्राप्त होता है। इसीसे सम्यक्त्वके असंक्रामकका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त-प्रमाण बतलाया है। तथा उद्वेलनाके अन्तमें प्राप्त हुआ एक समय कम एक आवलि-प्रमाण काल, उपशम सम्यक्त्वका अन्तर्मुहूर्त काल, वेदक सम्यक्त्वका कुछ कम छयासठ सागर काल, सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानका अन्तर्मुहूर्त काल और वेदकसम्यक्त्वका पूरा छयासठ सागर काल इन कालोंका जोड़ साधिक दो छयासठ सागर होता है इसीसे सम्यक्त्वके असंक्रामकका उत्कृष्ट काल साधिक दो छयासठ सागर बतलाया है। यहाँ इतना विशेष जानना चाहिये कि जिस क्रमसे उक्त कालोंका निर्देश किया है उसी क्रमसे उन्हें प्राप्त कराना चाहिये। यहाँ सम्यक्त्वकी सत्ता तो है पर संक्रम नहीं होता। सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रम सासादन और सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानमें नहीं होता। सासादनका जघन्य काल एक समय और सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसीसे यहाँ सम्यग्मिथ्यात्वके असंक्रामकका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त बतलाया है। अनन्तानुबन्धियोंकी विसंयोजनाके अन्तमें एक समयकम एक आवलिप्रमाण अन्तिम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ९७. आदेसेण णेरइएसु मिच्छत्त०संकाम० जह० अंतोमु०, उक्क० तेत्तीसं सागरो० देसूणाणि। सम्म० जह० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। सम्मामि०-अणंताणु०संकाम० जह० एगसमओ, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि। बारस-कसाय०-णवणोकसाय०संकाम० केव० ? जह० दसवस्ससहस्साणि, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि। पढमादि जाव सत्तमि त्ति मिच्छ०संकाम० जह० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा। सम्म० णिरओघभंगो। सम्मामि० जह० एगसमओ, उक्क० सगट्ठिदी। एवमणंताणु०चउक्कस्स। णवरि सत्तमाए जह० अंतोमुहुत्तं। बारसक०-णवणोक० जह० जहण्णट्ठिदी, उक्क० उक्कस्सट्ठिदी।

फालिके शेष रहनेपर उसका संक्रम नहीं होता, इसलिये अनन्तानुबन्धियोंके असंक्रामकका जघन्य काल एक समयकम एक आवलिप्रमाण बतलाया है। तथा विसंयोजनाके बाद अनन्तानुबन्धियों की पुनः सत्ता प्राप्त होनेपर एक आवलि काल तक उनका संक्रम नहीं होता, इसलिये इनके असंक्रामकका उत्कृष्ट काल एक आवलिप्रमाण बतलाया है। उपशमश्रेणिमें बारह कषाय और नौ नोकषाय इनमेंसे विवक्षित प्रकृतिका उपशम होनेके द्वितीय समयमें यदि मरकर यह जीव देवगतिमें चला जाता है तो इनके असंक्रामकका एक समय काल प्राप्त होता है। इसीसे यहाँ इनके असंक्रामकका जघन्य काल एक समय कहा है। तथा इन प्रकृतियोंका उपशम काल अन्तर्मुहूर्त है। इसीसे यहाँ इनके असंक्रामकका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त बतलाया है।

§ ९७. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मिथ्यात्वके संक्रामकका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है। सम्यक्त्वके संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीके संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। बारह कषाय और नौ नोकषायोंके संक्रामकका कितना काल है ? जघन्य काल दस हजार वर्ष है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। पहली पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक प्रत्येक नरकमें मिथ्यात्वके संक्रामकका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। सम्यक्त्वका भंग सामान्य नारकियोंके समान है। सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। इसी प्रकार अनन्तानुबन्धी चतुष्कके संक्रामकका जघन्य और उत्कृष्ट काल जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि सातवीं पृथिवीमें जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है। बारह कषाय और नौ नोकषायोंके संक्रामकका जघन्य काल अपनी अपनी जघन्य स्थितिप्रमाण है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है।

विशेषार्थ—यहाँ नरक गति और उसके अवान्तर भेदोंमें मिथ्यात्व आदि प्रकृतियोंके संक्रामकका किसका कितना काल है यह बतलाया है। नरक गतिमें सम्यग्दर्शनका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है, इसीसे यहाँ मिथ्यात्वके संक्रामकका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर घटित हो जाता है। इसी प्रकार प्रत्येक पृथिवीमें जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति-प्रमाण घटित कर लेना चाहिये। यहां यह प्रश्न हो सकता है कि पहली पृथिवीमें तो सम्यग्दृष्टि जीव भी मरकर उत्पन्न होता है और वह जीवनभर उसके साथ बना रहता है, अतः वहां कुछ कमका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ९८. तिरिक्खेसु मिच्छ०संकाम० जह० अंतोमु०, उक्क० तिण्णि पलिदोवमाणि देसूणाणि । सम्म० णारयभंगो । सम्मामि० जह० एगसमओ, उक्क० तिण्णि पलिदोवमाणि पलिदोवमासंखेज्जदिभागेण सादिरेयाणि । अणंताणु०चउक्कस्स जह० एगसमओ, उक्क० अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा । बारसक०-णवणोक० जह०

नियम कैसे लागू होगा, सो इसका यह समाधान है कि यद्यपि पहली पृथिवीमें सम्यग्दृष्टि जीव मरकर उत्पन्न होता है यह बात सही है पर ऐसा जीव या तो कृतकृत्यवेदकसम्यग्दृष्टि होता है या क्षायिकसम्यग्दृष्टि, इस लिये जब ऐसे जीवके वहां मिथ्यात्वका सत्त्व ही नहीं पाया जाता तब उसके मिथ्यात्वके संक्रमकी बात ही करना व्यर्थ है। सम्यक्त्व प्रकृतिके संक्रामकका जघन्य काल एक समय उद्वेलनाकी अपेक्षासे बतलाया है। अर्थात् जिसके सम्यक्त्व प्रकृतिकी उद्वेलनामें एक समय बाकी है ऐसा जीव मरकर यदि नरकमें उत्पन्न होता है तो उसके नरकमें सम्यक्त्वके संक्रामकका जघन्य काल एक समय पाया जाता है। तथा नरकमें सम्यक्त्वके संक्रामकका उत्कृष्ट काल जो पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण बतलाया है सो यह उद्वेलनाके उत्कृष्ट कालकी अपेक्षासे बतलाया है। इसी प्रकार प्रत्येक पृथिवीमें सम्यक्त्वके संक्रामकका जघन्य और उत्कृष्ट काल घटित कर लेना चाहिए, क्योंकि पूर्वोक्त कथनसे इसमें कोई विशेषता नहीं है। सामान्यसे नरकमें या प्रत्येक पृथिवीमें सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकका जघन्य काल एक समय भी सम्यक्त्व प्रकृतिके समान घटित होता है। हां उत्कृष्ट कालमें कुछ विशेषता है। बात यह है कि सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रम सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि दोनोंके होता है इसलिये नरकमें सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रम का उत्कृष्ट काल तेतीस सागर बन जाता है। अनन्तानुबन्धीके संक्रामकका भी उत्कृष्ट काल तेतीस सागर इसी प्रकारसे घटित किया जा सकता है, क्योंकि इसका संक्रम भी सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि दोनोंके होता रहता है पर ऐसे जीवके सम्यक्त्व दशामें अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना नहीं करानी चाहिये। अथवा केवल मिथ्यादृष्टि गुणस्थानकी अपेक्षासे घटित करनेमें भी आपत्ति नहीं है, क्योंकि कोई भी नारकी जीवनभर मिथ्यात्वके साथ रह सकता है। पर इसके संक्रामकका जघन्य काल एक समय इस प्रकार प्राप्त होता है कि जिसने अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना की है ऐसा कोई एक सम्यग्दृष्टि जीव सासादनमें गया और एक आवलिके बाद एक समयतक उसने अनन्तानुबन्धीका संक्रमण किया। फिर दूसरे समयमें मरकर वह अन्य गतिमें उत्पन्न हो गया तो इस प्रकार इसके नरकमें अनन्तानुबन्धीके संक्रामकका जघन्य काल एक समय प्राप्त हो जाता है। इसी प्रकार प्रत्येक पृथिवीमें अनन्तानुबन्धीका संक्रमकी अपेक्षा जघन्य काल एक समय घटित कर लेना चाहिये। किन्तु सातवें नरकमें ऐसे जीवका सासादनमें मरण नहीं होता और मिथ्यात्वमें अन्तर्मुहूर्त काल हुए बिना मरण नहीं होता अतः वहाँ जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त बतलाया है। प्रत्येक नरकमें इसका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है। तथा उक्त प्रकृतियोंके अतिरिक्त जो शेष बारह कषाय और नौ नोकषाय बचीं सो इनका सद्भाव नरकमें सर्वदा है और सर्वदा हर हालतमें इनका संक्रम होता रहता है, अतः इनका नरकगति और उसके अवान्तर भेदोंमें जघन्य और उत्कृष्ट जहाँ जो काल प्राप्त है वहाँ वह बन जानेसे उक्त प्रमाण कहा है।

§ ९८. तिर्यञ्चोंमें मिथ्यात्वके संक्रामकका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पल्य है। सम्यक्त्वके संक्रामकके जघन्य और उत्कृष्ट कालका भंग नारकियोंके समान है। सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यका असंख्यातवां भाग अधिक तीन पल्य है। अनन्तानुबन्धीचतुष्कके संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है। बारह कषाय और नौ

खुद्दाभवग्गहणं, उक्क० अणंतकालमसंखेज्जा० ।

§ ९९. पंचिंदियतिरिक्खतियम्मि मिच्छ०-सम्म० तिरिक्खोघभंगो । सम्मामि०-अणंताणु०चउक्कस्स जह० एगसमओ, उक्क० तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेण-ब्भहियाणि । बारसक०-णवणोक० जह० खुद्दाभव० अंतोमुहुत्तं, उक्क० तिण्णि पलिदो० पुव्वकोडिपुध० ।

नोकषायोंके संक्रामकका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है और उत्कृष्ट काल अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है।

विशेषार्थ—तिर्यञ्चोंमें वेदकसम्यक्त्वका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पल्य है। इसीसे यहां मिथ्यात्वके संक्रामकका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पल्य बतलाया है। सम्यक्त्वके संक्रामकका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण तथा सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीके संक्रामकका जघन्य काल एक समय जिस प्रकार नरकमें घटित करके बतला आये हैं उसी प्रकार यहां भी घटित कर लेना चाहिये; क्योंकि उससे इसमें कोई अन्तर नहीं है। जब यह जीव तिर्यंच पर्यायमें रह कर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करता रहता है और उद्वेलनाके समाप्त होनेके पूर्व ही मरकर तीन पल्यकी आयुवाले तिर्यञ्चोंमें उत्पन्न हो जाता है। फिर वहाँ सम्यक्त्वके योग्य कालके प्राप्त होने पर सम्यक्त्वको प्राप्त करके सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्ताको फिरसे बढ़ा लेता है और वहाँ या तो सम्यग्दृष्टि बना रहता है या मिथ्यात्वमें जाकर उद्वेलना होनेके पूर्व ही पुनः सम्यग्दृष्टि हो जाता है उसके तिर्यञ्च पर्यायके रहते हुए पल्यका असंख्यातवां भाग अधिक तीन पल्य काल तक सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रम देखा जाता है। इसीसे यहाँ सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकका उत्कृष्ट काल उक्तप्रमाण कहा है। तिर्यञ्चगतिमें सदा रहनेका उत्कृष्ट काल अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है। इसीसे यहां अनन्तानुबन्धीचतुष्क तथा शेष बारह कषाय और नौ नोकषायोंके संक्रामकका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा है। तथा तिर्यञ्च पर्यायमें रहनेका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है। इसीसे यहां बारह कषाय और नौ नोकषायोंके संक्रामकका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण कहा है।

§ ९९. पंचेन्द्रियतिर्यंचत्रिकमें मिथ्यात्व और सम्यक्त्वके संक्रामकका जघन्य और उत्कृष्ट काल सामान्य तिर्यंचोंके समान है। सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कके संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पूर्व कोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्य है। बारह कषाय और नौ नोकषायोंके संक्रामकका जघन्य काल सामान्य पंचेन्द्रिय तिर्यंचमें क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण और शेष दोमें अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है और उत्कृष्ट काल तीनोंमें पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्य है।

विशेषार्थ—पंचेन्द्रियतिर्यंचत्रिकका उत्कृष्ट काल पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्य है, इस लिये यहाँ सम्यग्मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क, बारह कषाय और नौ नोकषायोंके संक्रामकका उत्कृष्ट काल उक्तप्रमाण बतलाया है। तथा सामान्य तिर्यंचका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण और शेष दो प्रकारके तिर्यंचोंका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है। इसीसे यहाँ बारह कषाय और नौ नोकषायोंके संक्रामकका जघन्य काल उक्तप्रमाण बतलाया है। शेष कालोंके कारणोंका निर्देश पहले कर ही आये हैं इसलिये यहाँ नहीं किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ १००. पंचिं०तिरिक्खअपज्ज०--मणुसअपज्ज० सम्म०--सम्मामि० जह० एगस०, उक्क० अंतोमु०। सोलसक०-णवणोक० जह० खुद्दाभव०, उक्क० अंतोमु०।

§ १०१. मणुसतियम्मि पंचिं०तिरिक्खभंगो। णवरि बारसक०-णवणोक० जह० एगसमओ, उक्क० सगट्ठिदी।

§ १०२. देवेसु मिच्छ० जह० अंतोमु०, सम्मामि०-अणंताणु०चउक्काणं जह० एगस०, उक्क० सव्वेसिं तेत्तीसं सागरो०। सम्मत्त० णारयभंगो। बारसक०-णवणोक० णारयभंगो चेव। भवणवासियप्पहुडि जाव उवरिमगेवज्जा त्ति मिच्छ०-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्कस्स य जह० अंतोमु० एयसमओ, उक्क० सगट्ठिदी। सम्म० णारय-

---

§ १००. पंचेन्द्रियतिर्यंच अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व- के संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। तथा सोलह कषाय और नौ नोकषायोंके संक्रामकका जघन्य काल क्षुद्रभवग्रहणप्रमाण है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त- प्रमाण है।

विशेषार्थ—उक्त दोनों मार्गणाओंमें सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति सम्भव नहीं है, इसलिये यहाँ मिथ्यात्वका संक्रम न होनेसे उसका काल नहीं बतलाया है। एक जीवकी अपेक्षा इन दोनों मार्गणाओंका जघन्य काल खुद्दाभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, इस लिये यहाँ सब प्रकृतियोंके संक्रामकका जघन्य काल खुद्दाभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्रमाण बतलाया है। किन्तु सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रमणके जघन्य कालमें कुछ विशेषता है। बात यह है जिसके सम्यक्त्व या सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रममें एक समय शेष रहा ऐसा जीव मर कर यदि इन मार्गणाओंमें उत्पन्न हो तो उसके इन मार्गणाओंके रहते हुए उक्त प्रकृतियोंके संक्रमका जघन्य काल एक समय भी पाया जाता है। इसीसे यहाँ पर इन दोनों प्रकृतियोंके संक्रमका जघन्य काल एक समय बतलाया है।

§ १०१. मनुष्यत्रिकमें सब प्रकृतियोंके संक्रामकके जघन्य और उत्कृष्ट कालका कथन पंचेन्द्रिय तिर्यंचके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि बारह कषाय और नौ नोकषायोंके संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है।

विशेषार्थ—जो उपशामक जीव उपशमश्रेणिसे उतरते समय एक समय तक बारह कषाय और नौ नोकषायोंका संक्रम करता है और दूसरे समयमें मर कर देव हो जाता है उसके इनके संक्रमका जघन्य काल एक समय पाया जाता है। इसीसे यहाँ मनुष्य त्रिकमें उक्त प्रकृतियोंके संक्रामकका जघन्य काल एक समय बतलाया है। शेष कथन सुगम है।

§ १०२. देवोंमें मिथ्यात्वके संक्रामकका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कके संक्रामकका जघन्य काल एक समय है तथा इन सब प्रकृतियोंके संक्रामकका उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। सम्यक्त्वका भंग नारकियोंके समान है। बारह कषाय और नौ नोकषायोंका भंग भी नारकियोंके समान ही है। भवनवासियोंसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंमें मिथ्यात्वके संक्रामकका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त तथा सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धी चतुष्कके संक्रामकका जघन्य काल एक समय है। तथा इन सबके संक्रामकका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। सम्यक्त्वका भंग नारकियोंके समान है। तथा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भंगो। बारसक०-णवणोक० जहण्णुक्कस्सट्ठिदी भाणिदव्वा। अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठा त्ति मिच्छ०-सम्मामि०-बारसक०-णवणोक० जहण्णुक्कस्सट्ठिदी भाणियव्वा। अणंताणु० चउक्कस्स जह० अंतोमु०, उक्क० सगुक्कस्सट्ठिदी। एवं जाव०।

❀ एयजीवेण अंतरं।

§ १०३. सुगममेदमहियारसंभालणसुत्तं।

❀ मिच्छत्त-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं संकामयंतरं केवचिरं कालादो होदि ?

§ १०४. सुगमं।

❀ जहण्णेण अंतोमुहुत्तं।

§ १०५. मिच्छत्तसंकामयस्स ताव उच्चदे—एओ सम्माइट्ठी बहुसो दिट्ठमग्गो मिच्छत्तं गंतूण पुणो वि परिणामपच्चएण सम्मत्तगुणं सव्वजहण्णेण कालेण पडिवण्णो, लद्धमंतरं। एवं सम्मत्तस्स वि। णवरि सव्वजहण्णसम्मत्तकालेणंतरिदो त्ति वत्तव्वं। सम्मामिच्छत्तजहण्णकालो उवरि विसेसिऊण परूविज्जइ त्ति ण एत्थ तप्परूवणा कीरदे।

बारह कषाय और नौ नोकषायोंके संक्रामकका जघन्य और उत्कृष्ट काल क्रमसे जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण कहना चाहिये। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंके संक्रामकका जघन्य और उत्कृष्ट काल क्रमसे जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण कहना चाहिये। तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्कके संक्रामकका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिये।

विशेषार्थ—पहले ओघसे और नरकादि गतियोंसे कालका स्पष्टीकरण कर आये हैं। उसे ध्यानमें रख कर देवगति और उसके अवान्तर भेदोंमें उसे घटित कर लेना चाहिये। मात्र देवगतिमें जहाँ जो विशेषता है उसे ध्यानमें रख कर ही यह काल घटित करना चाहिये।

※ अब एक जीवकी अपेक्षा अन्तरका अधिकार है।

§ १०३. अधिकारका निर्देश करनेवाला यह सूत्र सुगम है।

※ मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकका अन्तरकाल कितना है?

§ १०४. यह सूत्र सुगम है।

※ जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है।

§ १०५. मिथ्यात्वके संक्रामकके अन्तरकालका खुलासा सर्व प्रथम करते हैं—जिसे मोक्षमार्गका अनेक बार परिचय मिल चुका है ऐसा एक सम्यग्दृष्टि जीव जब मिथ्यात्वमें जाकर और परिणामवश फिरसे अति स्वल्प काल द्वारा सम्यक्त्व गुणको प्राप्त होता है तब मिथ्यात्वके संक्रामकका जघन्य अन्तरकाल प्राप्त होता है। इसी प्रकार सम्यक्त्वका भी जघन्य अन्तरकाल प्राप्त कर लेना चाहिये। किन्तु यह सबसे जघन्य सम्यक्त्वके कालसे अन्तरित होता है ऐसा कथन करना चाहिये। सम्यग्मिथ्यात्वके जघन्य अन्तरकालका आगे विशेषरूपसे कथन किया जायगा, इसलिये यहां उसका कथन नहीं करते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

❀ उक्कस्सेण उवड्ढपोग्गलपरियट्टं ।

§ १०६. तं जहा—मिच्छत्तसंकामयस्स ताव उच्चदे—अणादियमिच्छाइट्ठी उवसमसम्मत्तं घेत्तूण छ आवलियाओ अत्थि त्ति सासणं गुणं गंतूणंतरिय देसूणमद्धपोग्गलपरियट्टं परिभमिय अंतोमुहुत्तावसेसे सिज्झिदव्वए त्ति सम्मत्तगुणं पडिवण्णो, लद्धमुक्कस्संतरं, पोग्गलपरियट्टस्स देसूणद्धमेत्तमादियंतेसु अंतोमुहुत्तमेत्तकालस्स बहिब्भावदंसणादो। एवं सम्मत्तस्स। णवरि देसूणपमाणं पलिदोवमासंखे०भागो, उवसमसम्मत्तं पडिवज्जिय मिच्छत्तं गंतूण तेत्तियमेत्तेण कालेण विणा सम्मत्तस्सुव्वेल्लेदुमसक्कियत्तादो। एवं सम्मामिच्छत्तस्स वि वत्तव्वं। संपहि सम्मामिच्छत्तजहण्णसंकामयंतरगयविसेसपदुप्पायणट्ठमुवरिमसुत्तं भणइ—

❀ णवरि सम्मामिच्छत्तस्स संकामयंतरं जहण्णेण एयसमओ

§ १०७. तं जहा—उवसमसम्माइट्ठी सम्मामिच्छत्तस्स संकामओ होऊण ट्ठिदो सगद्धाए एगसमयावसेसियाए सासादणभावं गंतूणेयसमयमंतरिय पुणो वि तदणंतरसमए संकामओ जादो, लद्धमेगसमयमेत्तमंतरं। अहवा मिच्छाइट्ठी सम्मामिच्छत्तमुव्वेल्ल-

---

※ उत्कृष्ट अन्तरकाल उपार्ध पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है।

§ १०६. खुलासा इस प्रकार है। उसमें भी सर्वप्रथम मिथ्यात्वके संक्रामकके उत्कृष्ट अन्तरकालका खुलासा करते हैं—कोई एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ और छह आवलि कालके शेष रहने पर सासादन गुणस्थानमें जाकर उसने मिथ्यात्वके संक्रमणका अन्तर किया। फिर कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण काल तक परिभ्रमण करके जब मुक्त होनेके लिये उसे अन्तर्मुहूर्त काल शेष बचा तब वह सम्यक्त्व गुणको प्राप्त हुआ। इस प्रकार उत्कृष्ट अन्तरकाल प्राप्त हो जाता है। यह पुद्गलपरिवर्तनका कुछ कम आधा इसलिये है, क्योंकि इसमेंसे प्रारम्भका एक अन्तर्मुहूर्त और अन्तका एक अन्तर्मुहूर्त कम होता हुआ देखा जाता है। इसी प्रकार सम्यक्त्वके संक्रामकके उत्कृष्ट अन्तरकालको घटित करके कहना चाहिये। किन्तु यहाँ कुछ कमका प्रमाण पल्यका असंख्यातवां भाग है, क्योंकि उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त करके और मिथ्यात्वमें जाकर तावन्मात्र अर्थात् पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कालके बिना सम्यक्त्वकी उद्वेलना नहीं हो सकती। इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकका उत्कृष्ट अन्तरकाल भी कहना चाहिये। अब सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकके जघन्य अन्तरकालविशेषका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

※ किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकका जघन्य अन्तरकाल एक समय है।

§ १०७. खुलासा इस प्रकार है—कोई एक उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रमण करता हुआ स्थित है। उसने अपने सम्यक्त्वके कालमें एक समय शेष रहने पर सासादन गुणस्थानमें जाकर एक समय तक सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रमका अन्तर किया और उसके अनन्तर समयमें फिरसे उसका संक्रामक हो गया। इस प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकका जघन्य अन्तर एक समय प्राप्त हुआ। अथवा सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करनेवाला जो मिथ्यादृष्टि जीव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

माणओ सम्मत्ताहिमुहो होऊणंतरकरणं करिय मिच्छत्तपढमट्ठिदिचरिमसमए सम्मामिच्छत्त-चरिमुव्वेल्लणफालिं परसरूवेण संकामिय उवसमसम्माइट्ठी पढमसमए सम्मामिच्छत्त-संतुप्पायणवावारेणेयसमयमंतरिय पुणो विदियसमए संकामओ जादो, लद्धमंतरं ।

❀ अणंताणुबंधीणं संकामयंतरं केवचिरं कालादो होदि ।

§ १०८. सुगमं ।

❀ जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।

§ १०९. विसंजोयणचरिमफालिं पादिय अंतरिदस्स पुणो सव्वलहुएण कालेण संजुत्तस्स बंधावलियवदिक्कंतसमए लद्धमंतरं कायव्वमिदि वुत्तं होइ ।

❀ उक्कस्सेण वेछावट्ठिसागरोवमाणि सादिरेयाणि ।

§ ११० तं जहा—पढमसम्मत्तं घेत्तूण उवसमसम्मत्तकालब्भतरे अणंताणुबंधिं विसंजोइय वेदयसम्मत्तं पडिवज्जिय पढमछावट्ठिं भमिय तत्थंतोमुहुत्तावसेसे सम्मामिच्छत्तं पडिवज्जिय पुणो अंतोमुहुत्तेण सम्मत्तमुवणमिय विदियछावट्ठिमणुपालिय थोवावसेसे मिच्छत्तं गदस्स लद्धमंतरं होदि । एत्थ पुव्वमणंताणुबंधिं विसंजोइय ट्ठिदस्स उवसम-

---

सम्यक्त्वके अभिमुख होकर और अन्तरकरण करके मिथ्यात्वकी प्रथम स्थितिके अन्तिम समयमें सम्यग्मिथ्यात्वकी अन्तिम उद्वेलना फालिका पररूपसे संक्रमण करके उपशमसम्यग्दृष्टि हो गया है वह अपने प्रथम समयमें सम्यग्मिथ्यात्वके सत्त्वके उत्पन्न करनेमें लगा रहनेके कारण एक समय तक सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रमका अन्तर करके दूसरे समयमें फिरसे संक्रामक हो गया । इस प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकका जघन्य अन्तर एक समय प्राप्त हो जाता है ।

* अनन्तानुबन्धियोंके संक्रामकका अन्तरकाल कितना है ।

§ १०८. यह सूत्र सुगम है ।

* जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है ।

§ १०९. कोई एक जीव है जिसने विसंयोजनाकी अन्तिम फालिका पतन करके अनन्तानुबन्धियोंके संक्रमका अन्तर किया । फिर अति स्वल्प काल द्वारा अनन्तानुबन्धियोंसे संयुक्त होकर बन्धावलिकालके समाप्त होनेके अनन्तर समयमें पुनः संक्रामक हो गया । इस प्रकार अनन्तानुबन्धियोंके संक्रामकका जघन्य अन्तरकाल प्राप्त करना चाहिये यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

* उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक दो छयासठ सागर है ।

§ ११०. खुलासा इस प्रकार है—कोई एक जीव है जिसने प्रथमोपशम सम्यक्त्वको ग्रहण करके उपशमसम्यक्त्वकालके भीतर अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना की । फिर वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त करके प्रथम छयासठ सागर काल तक परिभ्रमण किया । फिर उसके अन्तमें अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहने पर सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । फिर अन्तर्मुहूर्तमें सम्यक्त्वको प्राप्त करके और उसके साथ दूसरे छयासठ सागर काल तक रहा । फिर उसमें थोड़ा काल शेष रहने पर मिथ्यात्वमें गया । इस प्रकार अनन्तानुबन्धियोंके संक्रामकका उत्कृष्ट अन्तरकाल प्राप्त हो जाता है । यहां पर प्रारम्भमें अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करके स्थित हुए जीवके जो उपशमसम्यक्त्वका काल शेष बचता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्मत्तकालो पच्छिल्लमिच्छत्तजहण्णकालादो बहुओ तेण मिच्छत्तजहण्णकालमेत्तं तत्थ सोहिय सुद्धसेसेण सादिरेयत्तं वत्तव्वं ।

❀ सेसाणमेक्कवीसाए पयडीणं संकामयंतरं केवचिरं कालादो होइ ?

§ १११. सुगमं ।

❀ जहण्णेण एयसमओ ।

§ ११२. तं जहा—इगिवीसपयडीणं संकामओ उवसमसेढिमारुहिय अप्पप्पणो ठाणे सव्वोवसमं काऊणेयसमयमंतरिय पुणो विदियसमए कालं गदो संतो देवेसुप्पण्ण-पढमसमए लद्धमंतरं करेइ त्ति वत्तव्वं ।

❀ उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।

§ ११३. तं कथं ? अणियट्टिअद्धाए संखेज्जे भागे गंतूण सव्वासिमणंतरपरूविद-पयडीणं सगसगट्ठाणे सव्वोवसमं काऊण असंकामयभावेणंतरिय अणियट्टि०-सुहुम०-उवसंत०गुणट्ठाणाणि कमेणाणुपालिय पुणो ओदरमाणो सुहुम०गुणट्ठाणं वोलीणो

है वह अन्तमें प्राप्त हुए मिथ्यात्वके जघन्य कालसे बहुत है, इसलिये उपशमसम्यक्त्वके पूर्वोक्त कालमेंसे मिथ्यात्वके जघन्य कालको घटाकर उपशमसम्यक्त्वका जो काल शेष रहे उतना अधिक कहना चाहिये। आशय यह है कि दूसरे छ्यासठ सागरमेंसे यद्यपि अन्तमें प्राप्त हुए मिथ्यात्व गुणस्थानका जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल घट जाता है पर इस छ्यासठ सागरमें विसंयोजनाके बाद बचे हुए उपशमसम्यक्त्वके कालके मिला देने पर वह छ्यासठ सागरसे कुछ अधिक हो जाता है, इस लिये यहां अनन्तानुबन्धियोंके संक्रमका उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक दो छ्यासठ सागरप्रमाण कहा है।

* शेष इक्कीस प्रकृतियोंके संक्रामकका अन्तरकाल कितना है।

§ १११. यह सूत्र सुगम है।

* जघन्य अन्तरकाल एक समय है।

§ ११२. खुलासा इस प्रकार है—इक्कीस प्रकृतियोंके संक्रामक जिस जीवने उपशमश्रेणि पर चढ़ कर और अपने अपने स्थानमें उनका सर्वोपशम करके एक समय तक उनके संक्रमका अन्तर किया फिर दूसरे समयमें मर कर जो देव हुआ उसके वहां उत्पन्न होनेके पहले समयमें ही इन प्रकृतियोंके संक्रमका अन्तर प्राप्त हो जाता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। आशय यह है कि जिस समयमें जिस प्रकृतिका सर्वोपशम होता है उसके एक समय बाद यदि वह उपशम करनेवाला जीव मर कर देव हो जाता है तो उस प्रकृतिके संक्रमका एक समय अन्तर प्राप्त होता है।

* उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है।

§ ११३. शंका—सो कैसे ?

समाधान—अनिवृत्तिकरणके कालके संख्यात भागोंको बिता कर पहले कही गई सब प्रकृतियोंका अपने अपने स्थानमें सर्वोपसम होनेसे वे असंक्रमभावको प्राप्त हो जाती हैं और इस प्रकार इनके संक्रमका अन्तर करके उसी अन्तरके साथ अनिवृत्तिकरण, सूक्ष्मसम्पराय और उपशान्तमोह इन तीन गुणस्थानोंको क्रमसे प्राप्त कर फिर उतरते समय सूक्ष्मसम्पराय गुणस्थानको

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणियट्टिभावेणप्पप्पणो ट्ठाणे पुणो वि संकामओ जादो, लद्धमंतरमंतोमुहुत्तमेत्तं[1]। णवरि लोभसंजलणस्साणुपुव्वीसंकमपारंभेणंतरस्सादिं कादूण पुणो तदुवरमे लद्धमंतरं कायव्वं।

एवमोघेणंतरं गयं।

§ ११४. संपहि देसामासियसुत्तेण सूचिदमादेसमोघाणुवादपुरस्सरमुच्चारणमस्सिय परूवेमो। तं जहा अंतराणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मिच्छ०-सम्म० जह० अंतोमु०, सम्मामि० जह० एगसमओ, उक्क० तिण्हं पि उवड्ढपोग्गलपरियट्टं। अणंताणु०चउक्कस्स जह० अंतोमु०, उक्क० वेछावट्ठिसागरोवमाणि सादिरेयाणि। बारसक०-णवणोक० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं।

§ ११५. आदेसेण णेरइय० मिच्छ०-सम्म०-अणंताणु०चउक्कस्स जह० अंतोमु०, सम्मामि० एगसमओ, उक्क० तेत्तीसं सागरो० देसूणाणि। बारसक०-णवणोक०-संकामओ णत्थि अंतरं। एवं सव्वणेरइया। णवरि सगट्ठिदी देसूणा।

विता कर जब अनिवृत्तिकरणको प्राप्त होता है तब अपने अपने उपशम करनेके स्थानमें फिरसे संक्रामक हो जाता है और इस प्रकार इनका अन्तर्मुहूर्त अन्तरकाल प्राप्त हो जाता है। किन्तु इतनी विशेषता है कि आनुपूर्वी संक्रमके प्रारम्भसे लोभसंज्वलनके संक्रमके अन्तरका प्रारंभ करे जो आनुपूर्वी संक्रमके समाप्त होने तक चालू रहता है। इस प्रकार लोभसंज्वलनके संक्रमका अन्तर आनुपूर्वी संक्रमके प्रारम्भसे उसकी समाप्ति तक कहना चाहिये।

इस प्रकार ओघसे अन्तरकाल समाप्त हुआ।

§ ११४. अब देशामर्षक सूत्रके द्वारा सूचित होनेवाले आदेशका ओघानुवादपूर्वक उच्चारणाके आश्रयसे कथन करते हैं। जो इस प्रकार है—अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। इनमेंसे ओघकी अपेक्षा मिथ्यात्व और सम्यक्त्वके संक्रामकका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकका जघन्य अन्तरकाल एक समय है। तथा तीनोंके संक्रामकका उत्कृष्ट अन्तरकाल उपार्ध पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है। अनन्तानुबन्धीचतुष्कके संक्रामकका जघन्य अन्तर काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक दो छयासठ सागर है। बारह कषाय और नौ नोकषायोंके संक्रामकका जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—इन सब अन्तरकालोंका खुलासा चूर्णिसूत्रोंका व्याख्यान करते समय टीकाकार स्वयं कर आये हैं इसलिये वहांसे जान लेना चाहिये।

§ ११५. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कके संक्रामकका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है। सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकका जघन्य अन्तरकाल एक समय है तथा सभीके संक्रामकका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम तेतीस सागर है। किन्तु यहां बारह कषाय और नौ नोकषायोंके संक्रामकका अन्तरकाल नहीं है। इसी प्रकार सब नरकोंके नारकियोंमें अन्तरकालका कथन करना चाहिये। किन्तु उत्कृष्ट अन्तरकाल कहते समय सर्वत्र कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण कहना चाहिये।

---

१. ता० प्रतौ -मंतरमेत्तमंतोमुहुत्तमेत्तं इति पाठः।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

§ ११६. तिरिक्खेसु मिच्छ०-सम्म०-सम्मामि० ओघो। अणंताणु०चउक्कस्स जह० अंतोमु०, उक्क० तिण्णि पलिदो० देसूणाणि। बारसक०-णवणोक०[1] णत्थि अंतरं। एवं पंचि०तिरिक्खतियस्स। णवरि मिच्छ०-सम्म०-सम्मामि० जह० अंतोमु० एगस०, उक्क० तिण्णि पलिदो० पुव्व०। पंचि०तिरि०अपज्ज०-मणुसअपज्ज०-अणुदिसादि-जाव सव्वट्ठा त्ति सव्वपयडीणं णत्थि अंतरं। मणुसतियम्मि पंचिंदियतिरिक्खभंगो।

विशेषार्थ—मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्क इनके संक्रामकके जघन्य अन्तरकालका खुलासा जिस प्रकार ओघप्ररूपणाके समय चूर्णिसूत्रोंकी व्याख्या करते हुए किया है उसी प्रकार यहां भी जान लेना चाहिये। तथा इन सबके संक्रामकका उत्कृष्ट अन्तरकाल नरककी उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षासे कहा है जो अपनी अपनी दृष्टिसे घटित कर लेना चाहिये। उदाहरणार्थ एक ऐसा जीव लो जिसने नरकमें उत्पन्न होनेके अन्तर्मुहूर्तबाद उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करके मिथ्यात्वका संक्रम किया। फिर छह आवलि काल शेष रहने पर वह सासादनभावको प्राप्त होकर उसका असंक्रामक हुआ और फिर जीवन भर असंक्रामक ही रहा। किन्तु अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहने पर यदि वह उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त करके फिरसे मिथ्यात्वका संक्रम करने लगता है तो नरकमें मिथ्यात्वके संक्रमका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम तेतीस सागर प्राप्त हो जाता है। जो जीव नरकमें उत्पन्न होकर एक समय तक सम्यक्त्वका उद्वेलना संक्रम करके दूसरे समयमें असंक्रामक हो जाता है और फिर आयुके अन्तमें उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करके अतिस्वल्प काल द्वारा मिथ्यात्वमें जाकर सम्यक्त्वका संक्रम करने लगता है उसके सम्यक्त्वके संक्रामकका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम तेतीस सागर प्राप्त होता है। सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकका उत्कृष्ट अन्तरकाल भी इसी प्रकारसे घटित करना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि इस जीवको अन्तमें सम्यक्त्व उत्पन्न कराकर उसके दूसरे समयसे ही संक्रामक कहना चाहिये, क्योंकि सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रम सम्यग्दृष्टिके भी होता है। अनन्तानुबन्धीकी अपेक्षा यदि प्रारम्भमें विसंयोजना करावे और अन्तमें मिथ्यात्वमें ले जाय तो कुछ कम तेतीस सागरप्रमाण अन्तरकाल प्राप्त हो जाता है। अब शेष रहीं बारह कषाय और नौ नोकषाय सो इनके संक्रामकका अन्तरकाल उपशमश्रेणिमें ही सम्भव है और नरकमें उपशमश्रेणि होती नहीं, अतः नरकमें इनके संक्रमके अन्तरकालका निषेध किया है

§ ११६. तिर्यंचोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकका अन्तरकाल ओघके समान है। अनन्तानुबन्धीचतुष्कके संक्रामकका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम तीन पल्य है। किन्तु बारह कषाय और नौ नोकषायोंके संक्रामकका अन्तरकाल नहीं है। पंचेन्द्रियतिर्यंचत्रिकमें अन्तरकालका कथन इसी प्रकार जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके मिथ्यात्व और सम्यक्त्वके संक्रामकका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है। सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकका जघन्य अन्तरकाल एक समय है। तथा इन सबके संक्रामकका उत्कृष्ट अन्तरकाल पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक तीन पल्य है। पंचेन्द्रियतिर्यंच अपर्याप्त, मनुष्य अपर्याप्त और अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देव इनमें सब प्रकृतियोंके संक्रामकका अन्तरकाल नहीं है। बात यह है कि इन मार्गणाओंमें गुणस्थान नहीं बदलता, इसलिये अन्तरकाल नहीं प्राप्त होता। मनुष्यत्रिकमें पंचेन्द्रिय तिर्यंचके समान भंग है। किन्तु इतनी

१. ता० [णवणोकसाय०] इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णवरि बारसक०-णवणोक० जह० उक्क० अंतोमुहुत्तं।

§ ११७. देवेसु मिच्छ०-सम्म०-अणंताणु०चउक्क०-सम्मामि० जह० अंतोमु० एगस०, उक्क० एक्कत्तीसं सागरो० देसूणाणि। बारसक०-णवणोक० णत्थि अंतरं। एवं भवणादि जाव उवरिमगेवज्जा त्ति। णवरि सगट्ठिदी देसूणा कायव्वा। एवं जाव०।

❀ णाणाजीवेहि भंगविचओ।

§ ११८. सुगममेदमहियारसंभालणसुत्तं। तत्थ ताव अट्ठपदं परूवेमाणो सुत्तमुत्तरं भणइ—

❀ जेसिं पयडीणं संतकम्ममत्थि तेसु पयदं।

§ ११९. कुदो? अकम्मएहि अव्ववहारादो। एदेणट्ठपदेण दुविहो णिद्देसो ओघादेसभेएण। तत्थोघपरूवणट्ठमाह—

विशेषता है कि इनमें बारह कषाय और नौ नोकषायोंके संक्रामकका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है। आशय यह है कि इनमें उपशमश्रेणि सम्भव है अतः उक्त २१ प्रकृतियोंके संक्रमका अन्तरकाल बन जाता है।

विशेषार्थ—तिर्यंचोंमें प्रारम्भमें अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करके अन्ततक वैसा रहे किन्तु अन्तमें मिथ्यात्वमें चला जाय। यह क्रम तिर्यंचगतिमें एक पर्यायमें ही बन सकता है, अतः तिर्यंचगतिमें अनन्तानुबन्धी चतुष्कके संक्रामकका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम तीन पल्य कहा है। तथा पंचेन्द्रियतिर्यंचत्रिकमें जो मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकका उत्कृष्ट अन्तरकाल पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्य कहा है सो यह उस उस पर्यायके उत्कृष्ट कालकी अपेक्षासे कहा है। इसे नरकके समान यहां भी घटित कर लेना चाहिये। शेष कथन सुगम है।

§ ११७. देवोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कके संक्रामकका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है। सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकका जघन्य अन्तरकाल एक समय है और सबके संक्रामकका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम इकतीस सागर है। किन्तु बारह कषाय और नौ नोकषायोंके संक्रामकका अन्तरकाल नहीं है। इसी प्रकार भवनवासियोंसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तक जानना चाहिये। किन्तु सर्वत्र उत्कृष्ट अन्तर कहते समय कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थिति कहनी चाहिये। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये।

विशेषार्थ—देवगतिमें उपरिम ग्रैवेयक तक ही गुणस्थान परिवर्तन सम्भव है। इसीसे मिथ्यात्व आदि सात प्रकृतियोंके संक्रमका उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम इकतीस सागर कहा है। शेष कथन सुगम है।

*** अब नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचयका अधिकार है।**

§ ११८. अधिकारका निर्देश करनेवाला यह सूत्र सुगम है। अब यहाँ अर्थपदके बतलानेकी इच्छासे आगेका सूत्र कहते हैं—

*** जिन प्रकृतियोंकी सत्ता है वे यहाँ प्रकृत हैं।**

§ ११९ क्योंकि जो कर्मभावसे रहित हैं उनका प्रकृतमें उपयोग नहीं। इस अर्थपदके अनुसार ओघ और आदेशके भेदसे निर्देश दो प्रकारका है। उनमेंसे ओघका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

❀ मिच्छत्त-सम्मत्ताणं सव्वजीवा णियमा संकामया च असंकामया च।

§ १२०. कुदो ? मिच्छत्तस्स संकामयासंकामयाणं सम्माइट्ठि-मिच्छाइट्ठीणं सव्वकालमवट्ठाणदंसणादो। एवं सम्मत्तस्स वि। णवरि विवज्जासेण वत्तव्वं।

❀ सम्मामिच्छत्त-सोलसकसाय-णवणोकसायाणं च तिण्णि भंगा कायव्वा।

§ १२१. तं जहा—सिया सव्वे जीवा संकामया। सिया संकामया च असंकामओ च १। सिया संकामया च असंकामया च २। धुवसहिदा ३ तिण्णि भंगा।

एवमोघेण भंगविचओ समत्तो।

§ १२२. आदेसपरूवणट्ठमुच्चारणं वत्तइस्सामो। तं जहा—मणुसतियस्स ओघभंगो। णेरइएसु मिच्छ०-सम्म०-सम्मामि०-अणंताणु०चउक्कस्स ओघो। बारसक०-णवणोक० णियमा संकामया। एवं सव्वणेरइय-तिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खतिय-देवा

❀ मिथ्यात्व और सम्यक्त्वके सब जीव नियमसे संक्रामक और असंक्रामक हैं।

§ १२०. क्योंकि मिथ्यात्वका संक्रम करनेवाले सम्यग्दृष्टियोंका और संक्रम नहीं करनेवाले मिथ्यादृष्टियोंका सर्वदा सद्भाव देखा जाता है। इसी प्रकार सम्यक्त्व प्रकृतिकी अपेक्षा से भी कारणका कथन करना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि यहाँ विपरीतक्रमसे उक्त कारणका कथन करना चाहिये।

❀ सम्यग्मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंके तीन भंग करना चाहिये।

§ १२१. खुलासा इस प्रकार है—कदाचित् सब जीव संक्रामक हैं। कदाचित् बहुत जीव संक्रामक हैं और एक जीव असंक्रामक है १। कदाचित् बहुत जीव संक्रामक हैं और बहुत जीव असंक्रामक हैं २। यहाँ इन दो भंगोंमें ध्रुव भंगके मिलाने पर तीन भंग होते हैं।

विशेषार्थ—उक्त कथनका सार यह है कि मिथ्यात्व और सम्यक्त्वके संक्रामक और असंक्रामक बहुत जीव तो सदा पाये जाते हैं। किन्तु शेष प्रकृतियोंके विषयमें तीन भंग हैं। कदाचित् सब जीव संक्रामक हैं यह ध्रुव भंग है। आशय यह है कि शेष प्रकृतियोंके संक्रामकोंका सदा पाया जाना तो सम्भव है किन्तु असंक्रामकोंके विषयमें कोई निश्चित नियम नहीं कहा जा सकता है। कदाचित् एक भी जीव असंक्रामक नहीं होता। जब एक भी असंक्रामक जीव नहीं पाया जाता तब उक्त ध्रुव भंग होता है। इसके अतिरिक्त शेष दो भंग स्पष्ट ही हैं।

इस प्रकार ओघसे भंगविचय समाप्त हुआ।

§ १२२. अब आदेशका कथन करनेके लिये उच्चारणाको बतलाते हैं यथा—मनुष्यत्रिकमें ओघके समान भंग है। अर्थात् ओघसे जो व्यवस्था बतलाई है वह मनुष्यत्रिकमें घटित हो जाती है। नारकियोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भंग ओघके समान है। किन्तु बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी अपेक्षा नियमसे सब जीव संक्रामक हैं यही एक भंग है बात यह है कि इन इक्कीस प्रकृतियोंकी अपेक्षा असंक्रामकोंका भंग उपशमश्रेणिमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जाव उवरिमगेवज्जा त्ति ।

§ १२३. पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज० सम्म०-सम्मामि० सिया सव्वे संकामया। सिया संकामया च असंकामओ च। सिया संकामया च असंकामया च। सोलसक०-णवणोकसायाणं णियमा संकामया।

§ १२४. मणुसअपज्जत्त० सम्म०-सम्मामि० संकामयासंकामयाणमट्ठ भंगा कायव्वा। सोलसक०-णवणोक० सिया संकामओ। सिया संकामया। अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठा त्ति मिच्छ०-सम्मामि०-बारसक०-णवणोक० णियमा संकामया। अणंताणु०चउक्कस्स ओघो। एवं जाव०।

§ १२५. संपहि भागाभाग-परिमाण-खेत्त-पोसणाणं परूवणट्ठमुच्चारणमवलंबेमो। तं जहा—भागाभागाणु० दुविहो णि०—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मिच्छ०-संकामया सव्वजीवाणं केव० ? अणंतभागो। असंकाम० अणंतभागा। सम्म०संकाम० सव्वजीवाणं केव० ? असंखे०भागो। असंकामया असंखेज्जा[1] भागा। सम्मामि०-

प्राप्त होता है। पर नरकमें उपशमश्रेणि सम्भव नहीं, इसलिये इनकी अपेक्षा यहाँ एक ही भंग बतलाया है। इसी प्रकार सब नारकी, तिर्यञ्चत्रिक, देव और उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंके जानना चाहिये।

§ १२३. पंचेन्द्रियतिर्यञ्चलब्ध्यपर्याप्तकोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके कदाचित् सब जीव संक्रामक हैं। कदाचित् बहुत जीव संक्रामक हैं और एक जीव असंक्रामक है। कदाचित् बहुत जीव संक्रामक हैं और बहुत जीव असंक्रामक हैं। तथा सोलह कषाय और नौ नोकषायोंके नियमसे सब जीव संक्रामक हैं।

विशेषार्थ—आशय यह है कि इन जीवोंके मिथ्यात्वका संक्रम और अनन्तानुबन्धी चतुष्कका असंक्रम तो सम्भव ही नहीं, क्योंकि यहाँ अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान नहीं होता। अतः मिथ्यात्वके सिवा शेष प्रकृतियोंकी अपेक्षासे उक्त प्रकारसे भंग बतलाये हैं।

§ १२४. मनुष्य अपर्याप्तकोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामक और असंक्रामकोंके आठ भंग कहने चाहिये। तथा सोलहै कषाय और नौ नोकषायोंकी अपेक्षा कदाचित् एक जीव संक्रामक होता है और कदाचित् अनेक जीव संक्रामक होते हैं ये दो भंग होते हैं। तथा अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देव मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंके नियमसे संक्रामक होते हैं। तथा यहाँ अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भंग ओघके समान है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये।

§ १२५. अब भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र और स्पर्शनका कथन करनेके लिये उच्चारणाका अवलम्बन लेते हैं। यथा—भागाभागानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मिथ्यात्वके संक्रामक जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? अनन्तवें भागप्रमाण हैं। असंक्रामक जीव कितने भागप्रमाण हैं ? अनन्त बहुभागप्रमाण हैं। सम्यक्त्वके संक्रामक जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? असंख्यातवें भागप्रमाण हैं।

१. आ०प्रतौ संखेज्जा इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संकामया असंखेज्जा भागा । असंकामया असंखेज्जदिभागो । सोलसक०-णवणोक०-संकामया[1] अणंता भागा । असंकामया अणंतभागो ।

§ १२६. आदेसेण णेरइय० मिच्छ०-सम्म०संकाम० असंखे०भागो । असंकामया असंखेज्जा भागा । सम्मामि०-अणंताणु०४संकाम० असंखेज्जा भागा । असंकाम० असंखे०भागो । बारसक०-णवणोक० णत्थि भागाभागो, संकामयाणमेव णिप्पडिवक्खाणमेत्थ दंसणादो । एवं सव्वणेरइय-पंचिंदियतिरिक्खतिय-देवा जाव सहस्सारे त्ति ।

§ १२७. तिरिक्खेसु मिच्छ०-सम्म०-सम्मामि०-अणंताणु०४ ओघं । बारसक०-णवणोक० णत्थि भागाभागो । पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज०-मणुसअपज्ज० सम्म०-सम्मामि०-संकाम० असंखेज्जा भागा । असंकाम० असंखे०भागो । सेसपयडीणं णत्थि भागाभागो ।

§ १२८. मणुस्सेसु मिच्छत्त० णारयभंगो । सम्म०-सम्मामि०-सोलसक०-णवणोक० संकामया असंखेज्जा भागा । असंकाम० असंखे०भागो । एवं मणुसपज्ज०-मणुसिणीसु । णवरि संखेज्जं कायव्वं ।

§ १२९. आणदादि जाव णवगेवज्जा त्ति णारयभंगो । णवरि मिच्छ०संकामया

असंक्रामक जीव कितने भागप्रमाण हैं ? असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं । सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामक जीव असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं । असंक्रामक जीव असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । सोलह कपाय और नौ नोकषायोंके संक्रामक जीव अनन्त बहुभागप्रमाण हैं । असंक्रामक जीव अनन्तवें भागप्रमाण हैं ।

§ १२६. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मिथ्यात्व और सम्यक्त्वके संक्रामक जीव असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । असंक्रामक जीव असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं । सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कके संक्रामक जीव असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं । असंक्रामक जीव असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । यहाँ बारह कषाय और नौ नोकषायोंका भागाभाग नहीं है, क्योंकि नरकमें इनके केवल संक्रामक जीव ही देखे जाते हैं । इसी प्रकार सब नारकी, पंचेन्द्रियतिर्यंचत्रिक, सामान्य देव और सहस्रार कल्प तकके देवोंमें जानना चाहिये ।

§ १२७. तिर्यंचोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी अपेक्षा भागाभाग ओघके समान है । तथा यहाँ बारह कषाय और नौ नोकषायोंका भागाभाग नहीं है । पंचेन्द्रियतिर्यञ्चअपर्याप्त और मनुष्यअपर्याप्तकोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामक असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं । असंक्रामक असंख्यातवें भागप्रमाण हैं यहाँ शेष प्रकृतियोंका भागाभाग नहीं है ।

§ १२८. मनुष्योंमें मिथ्यात्वका भंग नारकियोंके समान है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंके संक्रामक असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं । असंक्रामक असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । इसी प्रकार मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंके जानना चाहिये । किन्तु इनमें असंख्यातके स्थानमें संख्यातका कथन करना चाहिये ।

§ १२९. आनत कल्पके लेकर नौ ग्रैवेयक तकका कथन नारकियोंके समान है । किन्तु

---

१. आ०प्रतौ सोलसक० संकामया इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संखेज्जा भागा। असंकामया संखे०भागो। अणुद्दिसादि [जाव] सव्वट्ठा त्ति अणंताणु०-चउक्कस्स संकामया असंखेज्जा भागा। असंकाम० असंखे०भागो। णवरि सव्वट्ठे संखेज्जं कायव्वं। सेसाणं णत्थि भागाभागो। सव्वत्थ कारणं सुगमं। एवं जाव०।

§ १३०. परिमाणाणु० दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मिच्छत्त०-सम्म०-सम्मामि० संकामया दव्वपमाणेण केवडिया? असंखेज्जा। सोलसक०-णवणोक०संकामया केत्तिया? अणंता। एवं तिरिक्खा०।

§ १३१. आदेसेण णेरइ० अट्ठावीसं पयडीणं संकामया केत्तिया? असंखेज्जा। एवं सव्वणेरइय-पंचिंदियतिरिक्खतिय-देवा जाव णवगेवज्जा त्ति। पंचिं०तिरि०-अपज्ज०-मणुसअपज्ज०-अणुद्दिसादि जाव अवराइदा त्ति सत्तवीसपयडीणं संकामया केत्तिया? असंखेज्जा। मणुस्सेसु मिच्छत्तस्स संकामया संखेज्जा। सेसाणमसंखेज्जा। मणुसपज्ज०-मणुसिणी-सव्वट्ठदेवेसु सव्वपयडीणं संकामया केवडिया? संखेज्जा। एवं जाव अणाहारि त्ति णेदव्वं।

§ १३२. खेत्ताणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मिच्छ०-सम्म०-सम्मामि०संकामया केवडि खेत्ते? लोगस्स असंखे०भागे। एवमसंकामया।

इतनी विशेषता है कि यहाँ मिथ्यात्वके संक्रामक संख्यात बहुभागप्रमाण हैं और असंक्रामक संख्यातवें भागप्रमाण हैं। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें अनन्तानुबन्धीचतुष्कके संक्रामक जीव असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं। असंक्रामक जीव असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। किन्तु इतनी विशेषता है कि सर्वार्थसिद्धिमें असंख्यातके स्थानमें संख्यातका कथन करना चाहिये। यहां शेष प्रकृतियोंका भागाभाग नहीं है। सर्वत्र कारण सुगम है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये।

§ १३०. परिमाणानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेश-निर्देश। ओघसे मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामक कितने हैं? असंख्यात हैं। सोलह कषाय और नौ नोकषायोंके संक्रामक कितने हैं? अनन्त हैं। इसी प्रकार तिर्यञ्चोंमें संख्या कहनी चाहिये।

§ १३१. आदेशसे नारकियोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंके संक्रामक जीव कितने हैं? असंख्यात हैं। इसी प्रकार सब नारकी, पंचेन्द्रियतिर्यञ्चत्रिक और नौ ग्रैवेयक तकके देवोंमें जानना चाहिये। पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त, मनुष्य अपर्याप्त और अनुदिशसे लेकर अपराजित तकके देवोंमें सत्ताईस प्रकृतियोंके संक्रामक जीव कितने हैं? असंख्यात हैं। मनुष्योंमें मिथ्यात्वके संक्रामक जीव संख्यात हैं। शेष प्रकृतियोंके संक्रामक जीव असंख्यात हैं। मनुष्यपर्याप्त मनुष्यिनी और सर्वार्थसिद्धि के देवोंमें सब प्रकृतियोंके संक्रामक जीव कितने हैं? संख्यात हैं। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये।

§ १३२. क्षेत्रानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेश निर्देश। ओघसे मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामक जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं। इसी प्रकार उक्त प्रकृतियोंके असंक्रामक जीव भी लोकके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णवरि मिच्छ०असंका० सव्वलोगे। सोलसक०-णवणोक०संकामया सव्वलोए। असंकाम० लोगस्स असंखे०भागे। एवं तिरिक्खा०। णवरि बारसक०-णवणोकसायाणं असंकामया णत्थि। सेसगइमग्गणासु सव्वपयडीणं संकामया जहासंभवमसंकामया च लोयस्स असंखे०भागे। एवं जाव अणाहारि त्ति णेदव्वं।

§ १३३. पोसणाणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मिच्छ०संकामएहि केवडियं०? लोगस्स असंखे०भागो अट्ठ चोद्दसभागा देसूणा। असंकामएहि सव्वलोओ। सम्म०-सम्मामि० संकामए० असंकाम० लोगस्स असंखे०-भागो अट्ठ चोद्द० सव्वलोगो वा। सोलसक०-णवणोक०संकाम० सव्वलोगो। असंका० लोयस्स असंखे०भागो। णवरि अणंताणु०४असंका०[1] अट्ठ चोद्द० देसूणा।

§ १३४. आदेसेण णेरइय० मिच्छ०संकाम० केव०? लोगस्स असंखे०भागो। सेसपयडीणं संकाम० दंसणतियअसंकाम० लोयस्स असंखे०भागो छ चोद्दस०। अणंताणु०४असंका० खेत्तं[2]। पढमाए खेत्तभंगो। बिदियादि जाव सत्तमा त्ति मिच्छ०-

असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं। किन्तु इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्वके असंक्रामक जीव सब लोकमें रहते हैं। सोलह कषाय और नौ नोकषायोंके संक्रामक जीव सब लोकमें रहते हैं। तथा इनके असंक्रामक जीव लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं। इसी प्रकार तिर्यंचोंके जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें बारह कषाय और नौ नोकषायोंके असंक्रामक जीव नहीं हैं। इनके अतिरिक्त शेष गति मार्गणाओंमें सब प्रकृतियोंके संक्रामक और यथासम्भव असंक्रामक जीव लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये।

§ १३३. स्पर्शनानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। ओघसे मिथ्यात्वके संक्रामक जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है? लोकके असंख्यातवें भागका और त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग क्षेत्रका स्पर्श किया है। मिथ्यात्वके असंक्रामकोंने सब लोकका स्पर्श किया है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामक और असंक्रामक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। सोलह कषाय और नौ नोकषायोंके संक्रामक जीवोंने सब लोकका स्पर्श किया है। असंक्रामकोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धीचतुष्कके असंक्रामकोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है।

§ १३४. आदेशसे नारकियोंमें मिथ्यात्वके संक्रामक जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्श किया है? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। शेष प्रकृतियोंके संक्रामकोंने और तीन दर्शनमोहनीयके असंक्रामकोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। अनन्तानुबन्धीचतुष्कके असंक्रामकोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है। पहली पृथिवीमें स्पर्श क्षेत्रके समान है। दूसरीसे लेकर सातवीं तक प्रत्येकमें

१. आ०प्रतौ अणंताणु०४ असंखे०भागो अट्ठ इति पाठः। २. आ०प्रतौ अणंताणु०४ असंखे० खेत्तं इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संकाम० लोगस्स असंखे०भागो। सेसपयडीणं संकाम० दंसणतियअसंकाम० लोग० असंखे०भागो एक्क–बे–तिण्णि-चत्तारि-पंच-छचोद्दस० देसूणा। अणंताणु०४असंका० खेत्तं।

§ १३५. तिरिक्खेसु मिच्छ०संकाम० लोयस्स असंखे०भागो छ चोद्दस० देसूणा। असंकाम० सव्वलोओ। सम्म०-सम्मामि०संकाम०-असंकाम० लोयस्स असंखे०भागो सव्वलोगो वा। सोलसक०-णवणोक०संकाम० सव्वलोगो। अणंताणु०४असंका० खेत्तं।

§ १३६. पंचिंदियतिरिक्खतिए मिच्छ०संका० लोगस्स असंखे०भागो छ चोद्दस० देसूणा। सेसपयडीणं संकाम० दंसणतियअसंकाम० लोयस्स असंखे०भागो सव्वलोगो वा। अणंताणु०४असंका० खेत्तं।

§ १३७. पंचि०तिरि०अपज्ज० सम्म०-सम्मामि०संकाम०-असंकाम० सोलसक०-णवणोक०संकाम० लोयस्स असंखे०भागो सव्वलोगो वा। मिच्छ०असंका० एसो[1] चेव भंगो। एवं मणुसतिए। णवरि मिच्छ०संकाम० सोलसक०-णवणोक०असंका० लोयस्स

मिथ्यात्वके संक्रामकोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। शेष प्रकृतियोंके संक्रामकोंने और तीन दर्शनमोहनीयके असंक्रामकोंने लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका तथा त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम एक भाग, कुछ कम दो भाग, कुछ कम तीन भाग, कुछ कम चार भार, कुछ कम पांच भाग और कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। अनन्तानुबन्धी चतुष्कके असंक्रामकोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है।

§ १३५. तिर्यंचोंमें मिथ्यात्वके संक्रामकोंने लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। असंक्रामकोंने सब लोक क्षेत्रका स्पर्श किया है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकों और असंक्रामकोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। सोलह कषाय और नौ नोकषायोंके संक्रामकोंने सब लोकका स्पर्श किया है। अनन्तानुबन्धीचतुष्कके असंक्रामकोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है।

§ १३६. पंचेन्द्रिय तिर्यंचत्रिकमें मिथ्यात्वके संक्रामकोंने लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। शेष प्रकृतियोंके संक्रामकोंने और तीन दर्शनमोहनीयके असंक्रामकोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सब लोक प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। अनन्तानुबन्धीचतुष्कके असंक्रामकोंका स्पर्श क्षेत्रके समान है।

§ १३७. पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकों और असंक्रामकोंने तथा सोलह कषाय और नौ नोकषायोंके संक्रामकोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। यहां मिथ्यात्वके असंक्रामकोंका भी यही भंग है। अर्थात् मिथ्यात्वके असंक्रामकोंने भी लोकके असंख्यातवें भाग और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। इसी प्रकार मनुष्यत्रिकमें जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्व के संक्रामकोंने तथा सोलह कषाय और नौ नोकषायोंके असंक्रामकोंने लोकके असंख्यातवें

---

१. आ०प्रतौ मिच्छ० असंखे० एसो इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

असंखे०भागो ।

§ १३८. देवेसु मिच्छ०संकाम० लोयस्स असंखे०भागो अट्ठ चोद्दस० देसूणा । सेसपयडीणं संकाम० दंसणतियअसंकाम० लोग० असंखे०भागो अट्ठ णव चोद्द० देसूणा । अणंताणु०४असंका० लोग० असंखे०भागो अट्ठ चोद्दस० देसूणा । एवं भवण०-वाणवेंतर-जोइसिएसु । णवरि सगपोसणं कायव्वं ।

§ १३९. सोहम्मीसाण० देवोघं । सणक्कुमारादि जाव सहस्सार त्ति अट्ठावीसं-पयडीणं संकाम० दंसणतिय-अणंताणु०४असंका० लोयस्स असंखे०भागो अट्ठ चोद्द० देसूणा । आणदादि जाव अच्चुदा त्ति अट्ठावीसं पयडीणं संकाम० दंसणतिय-अणंताणु०-४ असंकाम० लोग० असंखे०भागो छ चोद्दस० देसूणा । उवरि खेत्तभंगो । एवं जाव० ।

❀ णाणाजीवेहि कालो ।

§ १४०. सुगममेदमहियारसंभालणसुत्तं ।

❀ सव्वकम्माणं संकामया केवचिरं कालादो होंति[1] ?

§ १४१. एदं पि सुत्तं सुगमं ।

भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है ।

§ १३८. देवोंमें मिथ्यात्वके संक्रामकोंने लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । शेष प्रकृतियोंके संक्रामकोंने और तीन दर्शनमोहनीयके असंक्रामकोंने लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ तथा कुछ कम नौ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । अनन्तानुबन्धीचतुष्कके असंक्रामकोंने लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग-प्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । इसी प्रकार भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि अपना अपना स्पर्श कहना चाहिये ।

§ १३९. सौधर्म और ऐशान कल्पमें सामान्य देवोंके समान स्पर्श है । सनत्कुमारसे लेकर सहस्रार कल्प तकके देवोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंके संक्रामकोंने तथा तीन दर्शनमोहनीय और अनन्तानुबन्धीचतुष्कके असंक्रामकोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । आनतसे लेकर अच्युत कल्प तकके देवोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंके संक्रामकोंने तथा तीन दर्शनमोहनीय और अनन्तानुबन्धी चतुष्कके असंक्रामकोंने लोकके असंख्यातवें भाग और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है । अच्युत स्वर्गसे ऊपर स्पर्श क्षेत्रके समान है । इसी प्रकार अनाहारकों तक जानना चाहिये ।

※ अब नाना जीवोंकी अपेक्षा कालका अधिकार है ।

§ १४०. यह सूत्र सुगम है, क्योंकि इस द्वारा केवल अधिकारकी सम्हाल की गई है ।

※ सब कर्मोंके संक्रामक जीवोंका कितना काल है ।

§ १४१. यह सूत्र भी सुगम है ।

---

१. ता० प्रतौ होइ इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ॐ सव्वद्धा ।

§ १४२. णाणाजीवे पडुच्च सव्वकम्माणं संकामयपवाहस्स सव्वकालं वोच्छेदादंसणादो ।

§ १४३. संपहि देसामासियसुत्तेणेदेण सूचिदासेसपरूवणट्ठमुच्चारणं वत्तइस्सामो । तं जहा—कालाणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण अट्ठावीसंपयडीणं संकामया केवचिरं० ? सव्वद्धा । मिच्छ०-सम्म०असंकामया सव्वद्धा । सम्मामि०-अणंताणु०चउक्कअसंका० जह० एगसमओ समयूणावलिया, उक्क० पलिदो० असंखे०-भागो । बारसक०-णवणोक०असंका० जह एगस०, उक्क० अंतोमु० । एवं चदुसु गदीसु । णवरि मणुसगदिवदिरित्तसेसगदीसु बारसक०-णवणोक०असंकामया णत्थि । अणंताणु०-असंका० जह० एगसमओ । मणुसतिए अणंताणु०४असंका० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । मणुसपज्ज०-मणुसिणीसु सम्मामि०असंका० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं । पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज०-अणुदिसादि जाव सव्वट्ठा त्ति सत्तावीसं पयडीणं संका० केव० ? सव्वद्धा । सव्वट्ठे० अणंताणु०चउक्क०असंकामया जह० समयूणावलिया, उक्क० अंतोमु० । मणुसअपज्ज० सम्म०-सम्मामि०संका०-असंका० जह० एगस०, उक्क०

---

* सर्वदा काल है

§ १४२. क्योंकि नाना जीवोंकी अपेक्षा सब कर्मोंके संक्रम करनेवाले जीवोंके प्रवाहका कभी भी विच्छेद नहीं देखा जाता है ।

§ १४३. यतः यह सूत्र देशामर्षक है, अतः इससे सूचित होनेवाले अशेष अर्थका कथन करनेके लिये उच्चारणाको बतलाते हैं । यथा—कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघसे अट्ठाईस प्रकृतियोंके संक्रामक जीवोंका कितना काल है ? सब काल है । मिथ्यात्व और सम्यक्त्वके असंक्रामक जीवोंका सब काल है । सम्यग्मिथ्यात्वके असंक्रामक जीवोंका जघन्य काल एक समय है । अनन्तानुबन्धी चतुष्कके असंक्रामक जीवोंका जघन्य काल एक समयकम एक आवलि है । तथा इन दोनोंके असंक्रामक जीवोंका उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है । बारह कषाय और नौ नोकषायोंके असंक्रामकोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार चारों गतियोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्यगतिके सिवा शेष गतियोंमें बारह कषाय और नौ नोकषायोंके असंक्रामक जीव नहीं है । किन्तु इनमें अनन्तानुबन्धीचतुष्कके असंक्रामक जीवोंका जघन्य काल एक समय है । मनुष्यत्रिकमें अनन्तानुबन्धीचतुष्कके असंक्रामक जीवोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यनियोंमें सम्यग्मिथ्यात्वके असंक्रामकोंका जघन्य काल एक समय है तथा उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त और अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें सत्ताईस प्रकृतियोंके संक्रामकोंका कितना काल है ? सब काल है । सर्वार्थसिद्धिमें अनन्तानुबन्धीचतुष्कके असंक्रामकोंका जघन्य काल एक समय कम एक आवलि है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । मनुष्य अपर्याप्तकोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकों और असंक्रामकोंका जघन्य काल एक समय है तथा

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

पलिदो० असंखे०भागो। सोलसक०-णवणोक०संकाम० जह० खुद्दाभव०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। एवं जाव०।

उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। सोलह कषाय और नौ नोकषायोंके संक्रामकोंका जघन्य काल खुद्दाभवग्रहणप्रमाण है तथा उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये।

विशेषार्थ—नाना जीवोंकी अपेक्षा अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ता और यथासम्भव उनका बन्ध सदा पाया जाता है अतः ओघसे सब प्रकृतियोंके संक्रमका काल सर्वदा कहा है। किन्तु असंक्रमकी अपेक्षा कुछ विशेषता है। बात यह है कि मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें मिथ्यात्वका संक्रम नहीं होता है और सम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें सम्यक्त्वका संक्रम नहीं होता है, किन्तु इन दोनों गुणस्थानवाले जीव सदा पाये जाते हैं अतः मिथ्यात्व और सम्यक्त्वके असंक्रामकोंका काल भी सर्वदा कहा है। सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रम सासादन और मिश्र गुणस्थानमें नहीं होता है, किन्तु नाना जीवोंकी अपेक्षासे भी सासादनका जघन्य काल एक समय है, अतः सम्यग्मिथ्यात्वके असंक्रामकोंका जघन्य काल एक समय कहा है। जिन्होंने अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना की है उनके अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना करते समय अन्तमें एक समय कम एक आवलि काल तक अनन्तानुबन्धीका संक्रम नहीं होता। इसीसे अनन्तानुबन्धीचतुष्कके असंक्रामकोंका जघन्य काल एक समय कम एक आवलिप्रमाण कहा है। सासादन या सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानका उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है, इसीसे सम्यग्मिथ्यात्वके असंक्रामकोंका उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। जिन्होंने अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना की है ऐसे जीव मिथ्यात्वमें या सासादनमें गये और वहाँ अनन्तानुबन्धीके संक्रामक होनेके पूर्व ही अन्य इसी प्रकारके जीव वहाँ उत्पन्न हुए। इस प्रकार ऐसे जीव वहाँ उक्त प्रकारसे यदि निरन्तर उत्पन्न होते रहें तो पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक ही उत्पन्न हो सकते हैं इससे आगे नहीं, इसीसे यहाँ अनन्तानुबन्धीचतुष्कके असंक्रामकोंका उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। बारह कषायों और नौ नोकषायोंके असंक्रामकोंका जघन्य काल एक समय उपशमश्रेणिमें मरणकी अपेक्षा से और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्रत्येक प्रकृतिके उत्कृष्ट उपशामकालकी अपेक्षासे कहा है। आशय यह है कि नाना जीवोंने उक्त प्रकृतियोंका उपशम किया और जिस समय जिस प्रकृतिका उपशम किया उसके दूसरे समयमें मरकर उनके देव हो जाने पर उक्त प्रकृतियोंके असंक्रमका जघन्य काल एक समय प्राप्त हो जाता है। इसी प्रकार निरन्तरक्रमसे नाना जीवोंने उक्त प्रकृतियोंका यदि उपशम किया तो भी इस उपशमकालका जोड़ अन्तर्मुहूर्तसे अधिक नहीं प्राप्त होता, इसलिये उक्त प्रकृतियोंके असंक्रमका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्तसे अधिक नहीं होता। निम्नलिखित कुछ अपवादोंको छोड़कर यह ओघ व्यवस्था चारों गतियोंमें भी बन जाती है। अब कहाँ क्या अपवाद हैं इनका सकारण उल्लेख करते हैं—उपशमश्रेणिकी प्राप्ति मनुष्यगतिमें ही सम्भव है अतः मनुष्यगतिके सिवा शेष तीन गतियोंमें बारह कषाय और नौ नोकषायोंके असंक्रामकोंका निषेध किया है। चारों गतियोंमें अनन्तानुबन्धीचतुष्कके असंक्रामकोंका जो जघन्य काल एक समय बतलाया है सो वह गति परिवर्तनकी अपेक्षासे बतलाया है। उदाहरणार्थ नरकगतिमें अनन्तानुबन्धीचतुष्कके असंक्रामक नाना जीव एक समय तक रहें और वे दूसरे समयमें मरकर अन्य गतिमें चले गये तो नरकगतिमें अनन्तानुबन्धीचतुष्कके असंक्रामकोंका जघन्य काल एक समय बन जाता है। इसी प्रकार शेष तीन गतियोंमें उक्त काल घटित कर लेना चाहिये। या ऐसे नाना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

❀ णाणाजीवेहि अंतरं ।

§ १४४. सुगममेदं, अहियारसंभालणमेत्तवावारादो ।

❀ सव्वकम्मसंकामयाणं णत्थि अंतरं ।

§ १४५. एदस्स विवरणमुच्चारणामुहेण वत्तइस्सामो । तं जहा—अंतराणुगमेण

जीव, जो एक समयबाद अनन्तानुबन्धीचतुष्कका संक्रम करेंगे, देव, मनुष्य या तिर्यञ्चोंमें उत्पन्न हुए हैं तो इनकी अपेक्षासे भी उक्त एक समय काल प्राप्त हो जाता है, क्योंकि नरकगतिमें सासादनवाला उत्पन्न नहीं होता और मिथ्यात्वमें जाकर संयोजना करनेवालेका अन्तर्मुहुर्तसे पहिले मरण नहीं होता। यद्यपि सामान्य मनुष्योंकी संख्या असंख्यात है पर अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करनेवाले मनुष्यत्रिककी संख्या संख्यात ही है। ऐसे जीव यदि मिथ्यात्व और सासादनमें इस क्रमसे उत्पन्न हों जिससे वहाँ अनन्तानुबन्धीचतुष्कके असंक्रामकोंका नैरन्तर्य बना रहे तो ऐसे कालका जोड़ अन्तर्मुहूर्तसे अधिक नहीं हो सकता, अतः उक्त तीन प्रकारके मनुष्योंमें अनन्तानुबन्धीचतुष्कके असंक्रामकोंका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। इसी प्रकार मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंमें सम्यग्मिथ्यात्वके असंक्रामकोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त कर लेना चाहिये, क्योंकि यहाँ नानाजीवोंकी अपेक्षा सासादनका जघन्य काल एक समय और सासादन या सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त ही प्राप्त होता है। पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंके एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान होनेसे इनके मिथ्यात्वका संक्रम सम्भव नहीं और अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें एक अविरतसम्यग्दृष्टि गुणस्थान होनेसे इनके सम्यक्त्वका संक्रम सम्भव नहीं, इसीसे इनके सत्ताईस प्रकृतियोंके संक्रमका उल्लेख किया है। सर्वार्थसिद्धिमें संख्यात जीव ही होते हैं, अतः वहाँ अनन्तानुबन्धीचतुष्कके असंक्रामकोंका जघन्य काल एक समय कम एक आवलि और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। मनुष्य अपर्याप्त यह सान्तर मार्गणा है। इसका जघन्य काल खुद्दाभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है, अतः यहाँ सोलह कषाय और नौ नोकषायोंके संक्रामकोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा है। सम्यक्त्वप्रकृति और सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकोंका उत्कृष्ट काल तो पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण ही है किन्तु जघन्य कालमें कुछ विशेषता है। बात यह है कि ऐसे नाना जीव जिन्हें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रममें एक समय शेष है, लब्ध्यपर्याप्त मनुष्योंमें उत्पन्न हुए और फिर द्वितीयादि समयोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रम करनेवाले अन्य जीव नहीं उत्पन्न हुए तो ऐसी हालतमें लब्ध्यपर्याप्त मनुष्योंमें इन दो प्रकृतियोंके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय बन जाता है। इसी प्रकार इन दो प्रकृतियोंके असंक्रामकोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल घटित करना चाहिये। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक अपनी अपनी विशेषताको समझकर यथासम्भव प्रकृतियोंके संक्रामकों और असंक्रामकोंका काल कहना चाहिये।

※ अब नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरकालका अधिकार है।

§ १४४. यह सूत्र सुगम है; क्योंकि इसका काम एक मात्र अधिकारकी संहाल करना है।

※ सब कर्मोंके संक्रामकोंका अन्तरकाल नहीं है।

§ १४५. अब उच्चारणा द्वारा इस सूत्रका विवरण करते हैं। यथा—अन्तरानुगमकी अपेक्षा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण सव्वपयडीणं संकामयाणं णत्थि अंतरं। एवं चदुसु गदीसु। णवरि मणुसअपज्ज० सत्तावीसं पयडीणं संकाम० जह० एगसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। एवं जाव०। णवरि सव्वत्थ जहासंभवं असंकामयाणमंतरं[1] गवेसणिज्जं, सव्विस्से परूवणाए सप्पडिवक्खत्तदंसणादो[2]।

❀ सण्णियासो।

§ १४६. एत्तो सण्णियासो कीरदि त्ति भणिदं होइ। तस्स दुविहो णिद्देसो ओघादेसभेदेण। तत्थोघपरूवणट्ठमाह—

❀ मिच्छत्तस्स संकामओ सम्मामिच्छत्तस्स सिया संकामओ सिया असंकामओ।

§ १४७. तं जहा—मिच्छत्तस्स संकामओ णाम अणावलियपविट्ठसंतकम्मिओ वेदयसम्माइट्ठी उवसमसम्माइट्ठी च णिरासाणो। सो च सम्मामिच्छत्तसंकमे भज्जो,

निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। ओघसे सब प्रकृतियोंके संक्रामकोंका अन्तरकाल नहीं है। इसी प्रकार चारों गतियोंमें जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्य अपर्याप्तकोंमें सत्ताईस प्रकृतियोंके संक्रामकोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि सर्वत्र यथासंभव असंक्रामकोंके अन्तरका विचारकर कथन करना चाहिये, क्योंकि सभी प्ररूपणा सप्रतिपक्ष देखी जाती है।

विशेषार्थ—ओघसे सब प्रकृतियोंके संक्रामकोंका सर्वदा सद्भाव होनेसे इनके अन्तरकालका निषेध किया है। यही बात चारों गतियोंमें भी जानना चाहिये। किन्तु लब्ध्यपर्याप्त मनुष्य यह सान्तर मार्गणा है और उसका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। अतः इसमें जिन सत्ताईस प्रकृतियोंका संक्रम सम्भव है उनके संक्रामकोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण बतलाया है। इसीप्रकार अपनी-अपनी विशेषताको जानकर अन्य मार्गणाओंमें अन्तरकाल जानना चाहिये। शेष कथन सुगम है।

*** अब सन्निकर्षका अधिकार है।**

§ १४६. अब इसके आगे सन्निकर्षका विचार करते हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेश निर्देश। उनमेंसे ओघका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

*** मिथ्यात्वका संक्रामक सम्यग्मिथ्यात्वका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक है।**

§ १४७. जिसके मिथ्यात्वकी सत्ता उदयावलिके भीतर प्रविष्ट नहीं हुई है वह वेदकसम्यग्दृष्टि जीव तथा सासादनके बिना उपशमसम्यग्दृष्टि जीव मिथ्यात्वका संक्रामक होता है। इसके सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रम भजनीय है, क्योंकि प्रथमोपशम सम्यक्त्वके उत्पन्न होनेके प्रथम

१. आ०प्रतौ -संभवं संकामयाणमंतरं इति पाठः। २. ता० -आ०प्रत्योः सव्वपयडिवक्खत्तदंसणादो इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पढमसम्मत्तुप्पाइयपढमसमए तदभावादो। अण्णत्थ सव्वत्थ वि तदुवलंभादो।

❀ सम्मत्तस्स असंकामओ।

§ १४८. कुदो? दोण्हं परोप्परपरिहारेणावट्ठिदत्तादो। एत्थ मिच्छत्तस्स संकामओ त्ति अहियारसंबंधो कायव्वो। सुगममण्णं।

❀ अणंताणुबंधीणं सिया कम्मंसिओ सिया अकम्मंसिओ। जदि कम्मंसिओ सिया संकामओ सिया असंकामओ।

§ १४९. एत्थ वि पुव्वं व अहियारसंबंधो कायव्वो, तेण मिच्छत्तसंकामओ सम्माइट्ठी अणंतणुबंधिचउक्कस्स सिया कम्मंसिओ। तेसिमविसंजोयणाए सिया अकम्मंसिओ, विसंजोयणाए णिस्संतीकरणस्स वि संभवादो। तत्थ जइ कम्मंसिओ तो तेसिं संकमे भयणिज्जो, आवलियपविट्ठसंतकम्मियम्मि तदणुवलंभादो इयरत्थ वि तदुवलंभादो त्ति सुत्तत्थो।

❀ सेसाणमेक्कवीसाए कम्माणं सिया संकामओ सिया असंकामओ।

§ १५०. एत्थ वि पुव्वं व अहियारसंबंधो। कथमेदेसिमसंकामयत्तमेदस्स चे?

समयमें सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रम न होकर वह अन्यत्र सर्वत्र पाया जाता है।

* वह सम्यक्त्वका असंक्रामक है।

§ १४८. क्योंकि ये दोनों संक्रम एक दूसरेके अभावमें पाये जाते हैं। आशय यह है कि मिथ्यात्वका संक्रम सम्यग्दृष्टि जीवके होता है और सम्यक्त्वका संक्रम मिथ्यादृष्टि जीवके होता है, अतः इनका एक साथ पाया जाना सम्भव नहीं है। इस सूत्रमें 'मिच्छत्तस्स संकामओ' इस पदका अधिकारवश सम्बन्ध कर लेना चाहिये। शेष कथन सुगम है।

*** उसके अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी कदाचित् सत्ता है और कदाचित् सत्ता नहीं है। यदि सत्ता है तो वह अनन्तानुबन्धीचतुष्कका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक है।**

§ १४९. यहां भी पूर्ववत् अधिकारवश 'मिच्छत्तस्स संकामओ' पदका सम्बन्ध कर लेना चाहिये। इसलिये यह अर्थ हुआ कि मिथ्यात्वका संक्रामक जो सम्यग्दृष्टि जीव है वह जब तक अनन्तानुबन्धियोंकी विसंयोजना नहीं हुई है तब तक उनकी सत्तावाला है और अनन्तानुबन्धियोंकी विसंयोजना होकर अभाव हो जानेपर उनकी सत्तासे रहित है। अब यदि सत्तावाला है तो उसके इनका संक्रम भजनीय है, क्योंकि अनन्तानुबन्धियोंकी सत्ता आवलिके भीतर प्रविष्ट हो जानेपर उनका संक्रम नहीं पाया जाता। किन्तु अन्यत्र पाया जाता है यह इस सूत्रका अर्थ है। तात्पर्य यह है कि ऐसे जीवके विसंयोजनाकी अन्तिम फालिके पतनके समय एक समय कम एक आवलि काल तक अनन्तानुबन्धीका संक्रम नहीं होता।

*** वह शेष इक्कीस प्रकृतियोंका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक है।**

§ १५०. यहां भी पूर्ववत् अधिकारवश 'मिच्छत्तस्स संकामओ' पदका सम्बन्ध कर लेना चाहिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सव्वोवसमकरणे। ण च सव्वप्पणोवसंताणं संकमसंभवो, विरोहादो[1]। जइ एवं, मिच्छत्तस्स वि तत्थ संकमो मा होउ, उवसंतत्तं पडि विसेसाभावादो त्ति? ण, दंसणतियम्मि उदयाभावो चेव उवसमो त्ति गहणादो।

§ १५१. एवं मिच्छत्तणिरुंभणेण सेसपयडीणमोघेण सण्णियासं काऊण सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तादीणमप्पणं कुणमाणो उत्तरसुत्तं भणइ।

❀ एवं सण्णियासो कायव्वो।

§ १५२. एवमेदीए दिसाए सेसकम्माणं[2] पि सण्णियासो[3] णेदव्वो त्ति भणिदं होइ।

शंका—मिथ्यात्वका संक्रामक जीव उक्त इक्कीस प्रकृतियोंका असंक्रामक कैसे है?

समाधान—उक्त इक्कीस प्रकृतियोंका सर्वोपशम हो जानेपर वह उनका असंक्रामक होता है। यदि कहा जाय कि जिन प्रकृतियोंका सर्वोपशम हो गया है उनका भी संक्रम सम्भव है सो यह बात नहीं है, क्योंकि ऐसा माननेमें विरोध आता है।

शंका—यदि ऐसा है तो मिथ्यात्वका भी वहाँ संक्रम मत होओ, क्योंकि उपशान्तपनेकी अपेक्षा उनसे इसमें कोई विशेषता नहीं है?

समाधान—नहीं, क्योंकि दर्शनमोहनीयकी तीन प्रकृतियोंमें उनका उदयमें न आना ही उपशम है यह अर्थ लिया गया है।

विशेषार्थ—सूत्रमें यह बतलाया है कि जो मिथ्यात्वका संक्रामक है वह कदाचित् अप्रत्याख्यानावरणचतुष्क आदि २१ प्रकृतियोंका संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक। जब तक इन इक्कीस प्रकृतियोंका उपशम नहीं होता तब तक संक्रामक है और उपशम हो जानेपर असंक्रामक है। इस पर यह शंका हुई कि जो द्वितीयोपशमसम्यग्दृष्टि २१ प्रकृतियोंका उपशम करता है उसके दर्शनमोहनीयत्रिकका भी उपशम रहता है, अतः जैसे उसके २१ प्रकृतियोंका संक्रम नहीं होता वैसे मिथ्यात्वका भी संक्रम नहीं होना चाहिये, इसलिये मिथ्यात्वका संक्रामक उक्त २१ प्रकृतियोंका असंक्रामक भी है यह कहना नहीं बनता है। इस शंकाका जो समाधान किया है उसका भाव यह है कि दर्शनमोहनीयकी तीन प्रकृतियोंका उदयमें न आना यही उनका उपशम है, अतः उनका उपशम रहते हुए भी संक्रम बन जाता है इसलिये चूर्णिसूत्रकारने जो यह कहा है कि 'जो मिथ्यात्वका संक्रामक है वह शेष २१ प्रकृतियोंका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक है' सो इस कथनमें कोई बाधा नहीं आती है। आशय यह है कि उपशमनाके विधानानुसार २१ प्रकृतियोंका सर्वोपशम होता है किन्तु तीन दर्शनमोहनीयका उपशम हो जाने पर भी उनका यथासम्भव संक्रम और अपकर्षण ये दोनों क्रियाएं होती रहती हैं, अतः उक्त कथन बन जाता है।

§ १५१. इस प्रकार मिथ्यात्वको विवक्षित करके शेष प्रकृतियोंका ओघसे सन्निकर्ष बतला कर अब सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व आदि प्रकृतियोंको प्रधान करके आगेका सूत्र कहते हैं।

❀ इसी प्रकार शेष कर्मोंका सन्निकर्ष करना चाहिये।

§ १५२. इस प्रकार इसी पद्धतिसे शेष कर्मोंके सन्निकर्षका भी कथन करना चाहिये यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

---

१. ता० प्रतौ -संभवाविरोहादो इति पाठः। २. आ०प्रतौ एवमेदीए सेसकम्माणं इति पाठः। ३. ता०प्रतौ -कम्माणं सण्णियासो इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ १५३. संपहि एदेण सुत्तेण सूचिदत्थविवरणट्ठमुच्चारणं वत्तइस्सामो। तं जहा—सम्मत्तस्स संकामओ मिच्छ० असंका०। सम्मामि०-बारसक०-णवणोक० णियमा संकामओ। अणंताणु०चउक्कस्स सिया संकामओ सिया असंकामओ।

§ १५४. सम्मामि० संकामेंतो मिच्छ०-सम्म०-अणंताणु०४ सिया अत्थि सिया णत्थि। जइ अत्थि, सिया संका० सिया असंका०। बारसक०-णवणोक० सिया संका० सिया असंका०।

---

१५३. अब इस सूत्रसे सूचित होनेवाले अर्थका विवरण करनेके लिये उच्चारणाको बतलाते हैं। यथा—जो सम्यक्त्वका संक्रामक है वह मिथ्यात्वका असंक्रामक है; सम्यग्मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंका नियमसे संक्रामक है तथा अनन्तानुबन्धी चतुष्कका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक है।

विशेषार्थ—सम्यक्त्वका संक्रम मिथ्यात्वमें होता है किन्तु वहां मिथ्यात्वका संक्रम नहीं होता अतः जो सम्यक्त्वका संक्रामक है वह मिथ्यात्वका असंक्रामक है यह कहा है। सम्यग्मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंका संक्रम सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि दोनोंके होता है, अतः सम्यक्त्वके संक्रामकको उक्त प्रकृतियोंका संक्रामक नियमसे बतलाया है। यद्यपि अनन्तानुबन्धीचतुष्कका संक्रम सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि दोनोंके होता है तथापि जिसने अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना की है उसके मिथ्यात्वमें आनेपर एक आवलिकालतक उनका संक्रम नहीं होता, अतः सम्यक्त्वके संक्रामकको अनन्तानुबन्धीचतुष्कका कदाचित् संक्रामक और कदाचित् असंक्रामक बतलाया है।

§ १५४. जो सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रामक है उसके मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और अनन्तानुबन्धी-चतुष्कका कदाचित् सत्त्व है और कदाचित् सत्त्व नहीं है। यदि सत्त्व है तो वह उनका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक है। बारह कषाय और नौ नोकषयोंका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक है।

विशेषार्थ—सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रम करनेवाले जिसने अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना की है और जो दर्शनमोहनीयकी क्षपणा करते हुए मिथ्यात्वका क्षय कर चुका है उसके अनन्तानुबन्धीचतुष्क और मिथ्यात्वका सत्त्व नहीं पाया जाता। तथा जो सम्यक्त्वकी उद्वेलनाकर चुका है उसके भी सम्यक्त्वकी सत्ता नहीं पाई जाती है। किन्तु इसके अतिरिक्त सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रम करनेवाले शेष सब जीवोंके उक्त प्रकृतियोंकी सत्ता पाई जाती है। सो यह जीव इन प्रकृतियोंका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक है। मिथ्यात्वका मिथ्यात्व गुणस्थानमें असंक्रामक है और सम्यग्दृष्टि अवस्थामें संक्रामक है। सम्यक्त्वका सम्यग्दृष्टि अवस्थामें असंक्रामक है मिथ्यात्व गुणस्थानमें संक्रामक है। अनन्तानुबन्धीका दो स्थलोंमें असंक्रामक है। शेष सब जगह संक्रामक है। एक तो जब विसंयोजना करते हुए अनन्तानुबन्धीकी सत्ता आवलि-प्रविष्ट हो जाती है तब असंक्रामक है और दूसरे जिसने अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना की है ऐसा जीव जब मिथ्यात्वमें जाता है तब एक आवलि काल तक असंक्रामक है। इसी प्रकार बारह कषाय और नौ नोकषायोंका उपशम होनेके पूर्व संक्रामक है और उपशम होने पर असंक्रामक है। किन्तु लोभसंज्वलनका आनुपूर्वी संक्रमणके प्रारम्भ होनेपर असंक्रामक है। लोभसंज्वलनसम्बन्धी इस विशेषताका अन्यत्र जहां कहीं उल्लेख न किया हो वहाँ भी इसी प्रकार जान लेना चाहिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ १५५. अणंताणुबंधिकोधं संकामेंतो मिच्छ० सिया संका० सिया असंका०। सम्म०-सम्मामि० सिया अत्थि सिया णत्थि। जदि अत्थि, सिया संकाम० सिया असंकाम०। पण्णारसक०-णवणोक० णियमा संकामओ। एवं तिण्हमणंताणुबंधिकसायाणं।

§ १५६. अपच्चक्खाणकोधं संकामेंतो मिच्छ०-सम्म०-सम्मामि०-अणंताणु०४ सिया अत्थि सिया णत्थि। जइ अत्थि, सिया संकाम० सिया असंकाम०। दसकसायाणं णियमा संकामओ। लोभसंजलण-णवणोकसायाणं सिया संकाम० सिया असंकाम०। एवं पच्चक्खाणकोहं।

§ १५५ जो अनन्तानुबन्धी क्रोधका संक्रामक है वह मिथ्यात्वका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व कदाचित् हैं और कदाचित् नहीं हैं। यदि हैं तो इनका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक है। किन्तु पन्द्रह कषाय और नौ नोकषायोंका नियमसे संक्रामक है। मान आदि तीन अनन्तानुबन्धियोंका इस प्रकार कथन करना चाहिये।

विशेषार्थ—अनन्तानुबन्धीका संक्रम मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि दोनोंके सम्भव है किन्तु मिथ्यात्वका संक्रम केवल सम्यग्दृष्टिके ही होता है, अतः जो अनन्तानुबन्धी क्रोधका संक्रामक है वह मिथ्यात्वका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक है यह कहा है। जो अनादि मिथ्यादृष्टि है या जिस मिथ्यादृष्टिने सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना कर दी है उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व नहीं हैं शेषके हैं। तथा सासादन और मिश्र गुणस्थानमें तो इनका सद्भाव नियमसे है। किन्तु एक तो इन दोनों गुणस्थानोंमें दर्शनमोहनीयकी प्रकृतियोंका संक्रम नहीं होता और दूसरे उद्वेलनाके अन्तमें जब इनकी सत्ता आवलिके भीतर प्रविष्ट हो जाती है तब इनका संक्रम नहीं होता, अतः 'जो अनन्तानुबन्धीका संक्रामक है वह सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् संक्रामक नहीं है' यह कहा है। यहाँ इतना विशेष और जानना चाहिये कि सम्यक्त्वका संक्रम सम्यग्दृष्टि अवस्थामें नहीं होता है। शेष कथन सुगम है।

§ १५६ जो अप्रत्याख्यानावरण क्रोधका संक्रामक है उसके मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्क कदाचित् हैं और कदाचित् नहीं हैं। यदि हैं तो इनका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक है। तथापि अप्रत्याख्यानावरण मान आदि दश कषायोंका नियमसे संक्रामक है। किन्तु लोभ संज्वलन और नौ नोकषायोंका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक है। इसी प्रकार प्रत्याख्यानावरण क्रोधका संक्रम करनेवाले जीवके जानना चाहिये।

विशेषार्थ—जिस जीवने अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना और तीन दर्शनमोहनीयका क्षय कर दिया है उस अप्रत्याख्यानावरणक्रोधके संक्रामकके ये सात प्रकृतियां नहीं पाई जातीं, शेषके पाई जाती हैं। इसमें भी सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके सत्त्वके सम्बन्धमें और भी कई नियम हैं जिनका यथायोग्य पहले विवेचन किया ही है उसी प्रकार यहाँ भी जानना चाहिये। इन सात प्रकृतियोंका सत्त्व रहने पर भी अवस्था विशेषमें इनका संक्रम होता है और अवस्था विशेषमें इनका संक्रम नहीं होता, अतः जो अप्रत्याख्यानावरण क्रोधका संक्रामक है वह इनका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् संक्रामक नहीं है यह कहा है। अन्तरकरण करनेके बाद

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ १५७. अपच्चक्खाणमाणं संकामेंतो मिच्छ०-सम्म०-सम्मामि०-अणंताणु० चउक्काणमपच्चक्खाणकोहभंगो। सत्तकसायाणं णियमा संकामओ। चत्तारिकसाय-णवणोकसायाणं सिया संकाम० सिया असंकाम०। एवं पच्चक्खाणमाणं।

§ १५८. अपच्चक्खाणमायं[1] संकामेंतो मिच्छ०-सम्म०-सम्मामि०-अणंताणु० चउक्काणमपच्चक्खाणकोहभंगो। चत्तारि कसायाणं णियमा संकामओ। सत्तक०-णवणोक० सिया संकाम० सिया असंकाम०। एवं पच्चक्खाणमायं।

§ १५९. अपच्चक्खाणलोभं संकामेंतो दंसणतिय-अणंताणुबंधिचउक्काणमपच्च-

आनुपूर्वी संक्रम चालू हो जानेसे लोभसंज्वलनका संक्रम नहीं होता और अप्रत्याख्यानावरण क्रोधका उपशम होनेके पूर्व ही नौ नोकषायोंका उपशम हो जाता है ऐसा नियम है, अतः अप्रत्याख्यानावरण क्रोधका संक्रम चालू रहते हुए भी उक्त दस प्रकृतियोंका संक्रम होना रुक जाता है। इसीसे यहां पर जो अप्रत्याख्यानावरण क्रोधका संक्रामक है वह उक्त प्रकृतियोंका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक है यह कहा है। किन्तु इसके शेष अप्रत्याख्यानावरण मान आदि दस कषायोंका संक्रम अवश्य होता रहता है, क्योंकि अप्रत्याख्यानावरण क्रोधसे पहले न तो इन दस प्रकृतियोंका अभाव ही होता है और न उपशम ही होता है। प्रत्याख्यानावरण क्रोधकी स्थिति अप्रत्याख्यानावरण क्रोधसे मिलती जुलती है अतः इन दोनोंका कथन एक समान कहा है।

§ १५७. जो अप्रत्याख्यानावरण मानका संक्रामक है उसके मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भंग अप्रत्याख्यानावरण क्रोधके समान है। तथापि यह सात कषायोंका नियमसे संक्रामक है। तथा चार कषाय और नौ नोकषायोंका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक है। इसी प्रकार प्रत्याख्यानावरण मानका संक्रम करनेवाले जीवके विषयमें जानना चाहिये।

विशेषार्थ—अप्रत्याख्यानावरण मानके पहले अप्रत्याख्यानावरण माया और लोभ, प्रत्याख्यानावरण मान, माया और लोभ तथा संज्वलन मान और माया इन सात प्रकृतियोंका उपशम नहीं होता, अतः इन प्रकृतियोंका यह जीव नियमसे संक्रामक है यह कहा है। शेष कथन सुगम है।

§ १५८. जो अप्रत्याख्यानावरण मायाका संक्रामक है उसके मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भंग अप्रत्याख्यानावरण क्रोधके समान है। तथापि यह चार कषायोंका नियमसे संक्रामक है। तथा सात कषाय और नौ नोकषायोंका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक है। इसी प्रकार प्रत्याख्यानावरण मायाका संक्रम करनेवाले जीवके विषयमें जानना चाहिये।

विशेषार्थ—अप्रत्याख्यानावरण मायासे पहले अप्रत्याख्यानावरण लोभ, प्रत्याख्यानावरण माया और लोभ तथा संज्वलन माया इन चार प्रकृतियोंका उपशम नहीं होता, अतः इन प्रकृतियोंका यह जीव नियमसे संक्रामक है यह कहा है। शेष कथन सुगम है।

१५९. जो जीव अप्रत्याख्यानावरण लोभका संक्रम करता है उसके तीन दर्शनमोहनीय

१. ता०प्रतौ –क्खाणमायं। अपच्चक्खाणमाणं इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्खाणकोधभंगो। पच्चक्खाणलोभं णियमा संकामेइ। दसकसाय-णवणोकसायाणं सिया संकामओ सिया असंकाम०। एवं पच्चक्खाणलोभं।

§ १६०. कोधसंजलणं संकामेंतो मिच्छ०-सम्म०-सम्मामि०-बारसक०-णवणोक० सिया अत्थि सिया णत्थि। जइ अत्थि, सिया संका० सिया असंका०। दोण्हं संजलणाणं णियमा संकामओ। लोभसंजलणस्स सिया संकाम० सिया असंका०।

§ १६१. माणसंजलणं संकामेंतो मायासंजलणस्स णियमा संकामओ। लोभ-संजल० सिया संका० सिया असंका०। सेसं सिया अत्थि सिया णत्थि। जइ अत्थि, सिया संकाम० सिया असंका०।

§ १६२. मायासंजलणं संकामेंतो लोभसंजल० सिया संका० सिया असंका०।

और चार अनन्तानुबन्धियोंका भंग अप्रत्याख्यानावरण क्रोधके समान है। यह प्रत्याख्यानावरण लोभका नियमसे संक्रामक है। तथा दस कषाय और नौ नोकषायोंका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक है। इसी प्रकार प्रत्याख्यानावरण लोभका संक्रम करनेवाले जीवके विषयमें भी जानना चाहिये।

विशेषार्थ—अप्रत्याख्यानावरण लोभ और प्रत्याख्यानावरण लोभ इनका उपशम एक साथ होता है। अतः एकका संक्रामक दूसरेका संक्रामक नियमसे है यह कहा है। शेष कथन सुगम है।

§ १६०. जो क्रोधसंज्वलनका संक्रम करता है उसके मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषाय इनका सत्त्व कदाचित् है और कदाचित् नहीं है। यदि है तो इनका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक है। किन्तु यह दो संज्वलनोंका नियमसे संक्रामक है। लोभसंज्वलनका कदाचित् संक्रामक है कदाचित् असंक्रामक है।

विशेषार्थ—क्षपकश्रेणिकी अपेक्षा क्रोधसंज्वलनवालेके मिथ्यात्व आदि २४ प्रकृतियोंका सत्त्वनाश हो जाता है यह स्पष्ट ही है। अतः क्रोधसंज्वलनके संक्रामकके उक्त चौबीस प्रकृतियाँ कदाचित् हैं और कदाचित् नहीं हैं यह बात बन जाती है। इन प्रकृतियोंका सत्त्व रहने पर भी यथायोग्य स्थानमें इनका संक्रम नहीं होता, अन्यत्र होता है, अतः जो संज्वलन क्रोधका संक्रामक है वह उक्त चौबीस प्रकृतियोंका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक है, यह कहा है। किन्तु इस जीवके संज्वलन मान और मायाका सत्त्वनाश या उपशम पीछेसे होता है, अतः यह इन दोनों प्रकृतियोंका नियमसे संक्रामक है। तथा लोभसंज्वलनका आनुपूर्वी संक्रमका प्रारम्भ होनेके पूर्वतक संक्रामक है और उसके बाद असंक्रामक है।

§ १६१. जो मान संज्वलनका संक्रामक है वह माया संज्वलनका नियमसे संक्रामक है। वह लोभसंज्वलनका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक है। इसके शेष प्रकृतियाँ कदाचित् है और कदाचित् नहीं हैं। यदि हैं तो उनका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक है।

विशेषार्थ—मानसंज्वलनके संक्रामकके एक माया संज्वलन ही ऐसी प्रकृति बचती है जिसका वह नियमसे संक्रम करता है। शेष कथनका खुलासा पूर्ववत् जानना चाहिये।

§ १६२. जो माया संज्वलनका संक्रामक है वह लोभ संज्वलनका कदाचित् संक्रामक है

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सेसं सिया अत्थि सिया णत्थि। जदि अत्थि, सिया संका० सिया असंका०।

§ १६३. लोभसंजलणं संकामेंतो मिच्छ०-सम्म०-सम्मामि०-बारसक० सिया अत्थि सिया णत्थि। जइ अत्थि, सिया संका० सिया असंका०। तिण्हं संजलणाणं णवणोकसायाणं च णियमा संकामओ।

§ १६४. इत्थिवेदं संकामेंतो मिच्छ०-सम्म०-सम्मामि०-बारसक०-णवुंसयवेद० सिया अत्थि सिया णत्थि। जइ अत्थि, सिया संका० सिया असंका०। तिण्हं संजलणाणं सत्तणोकसायाणं च णियमा संकामओ। लोभसंजलणस्स सिया संका० सिया असंका०। एवं णवुंसयवेदं पि। णवरि इत्थिवेदस्स णियमा संकामओ।

और कदाचित् असंक्रामक है। शेष प्रकृतियाँ कदाचित् हैं और कदाचित् नहीं हैं। यदि हैं तो उनका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक है।

विशेषार्थ—मायासंज्वलनके संक्रामकके लोभसंज्वलन अवश्य पाया जाता है किन्तु इसका आनुपूर्वीसंक्रमका प्रारम्भ होनेपर संक्रम नहीं होता अतः यह लोभसंज्वलनका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक है यह कहा है। शेष खुलासा पूर्ववत् जानना चाहिये।

§ १६३. जो लोभसंज्वलनका संक्रामक है उसके मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और बारह कषाय ये प्रकृतियाँ कदाचित् हैं और कदाचित् नहीं हैं। यदि हैं तो वह इनका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक है। किन्तु तीन संज्वलन और नौ नोकषायोंका नियमसे संक्रामक है।

विशेषार्थ—आनुपूर्वीसंक्रम अन्तरकरण करनेके बाद प्रारम्भ होता है किन्तु मिथ्यात्व आदि पन्द्रह प्रकृतियोंकी क्षपणा पहले सम्भव है, इसीसे लोभसंज्वलनके संक्रामकके मिथ्यात्व आदि पन्द्रह प्रकृतियोंका कदाचित् सत्त्व और कदाचित् असत्त्व बतलाकर उनके संक्रमके विषयमें भी अनियम बतलाया है। अब रहीं शेष तीन संज्वलन और नौ नोकषाय ये बारह प्रकृतियां सो इनकी असंक्रमरूप अवस्था आनुपूर्वी संक्रमके प्रारम्भ होनेके बाद प्राप्त होती है, अतः लोभसंज्वलनके संक्रामकको इनका संक्रामक नियमसे बतलाया है।

§ १६४. जो स्त्रीवेदका संक्रामक है उसके मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, बारह कषाय और नपुंसकवेद ये सोलह प्रकृतियां कदाचित् हैं और कदाचित् नहीं हैं। यदि हैं तो इनका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक है। किन्तु तीन संज्वलन और सात नोकषायोंका नियमसे संक्रामक है। तथा लोभसंज्वलनका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक है। जो नपुंसकवेदका संक्रामक है उसका भी इसी प्रकारसे कथन करना चाहिये किन्तु यह स्त्रीवेदका नियमसे संक्रामक है।

विशेषार्थ—क्षपकके स्त्रीवेदकी सत्त्वव्युच्छित्तिके पूर्व ही इन मिथ्यात्व आदि सोलह प्रकृतियोंकी सत्त्वव्युच्छित्ति हो जाती है। इसीसे स्त्रीवेदके संक्रामकके इनके सत्त्वके विषयमें अनियम बतलाकर संक्रमके विषयमें भी अनियम बतलाया है। किन्तु इसके संज्वलन क्रोध आदि तीन संज्वलन और सात नोकषाय इनका संक्रम पीछे तक होता रहता है, इसलिये इसे इन दस प्रकृतियोंका नियमसे संक्रामक बतलाया है। अब रहा लोभ संज्वलन सो आनुपूर्वी संक्रम चालू हो जानेके समयसे ही इसका संक्रम होना बन्द हो जाता है अतः यह लोभसंज्वलनका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक है यह बतलाया है। नपुंसकवेदीके स्त्रीवेदकी क्षपणा एक समय पूर्व या

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ १६५. पुरिसवेदं संकामेंतो तिण्हं संजलणाणं णियमा संकामओ। लोभसंजलणस्स सिया संका० सिया असंका०। सेसं सिया अत्थि सिया णत्थि। जइ अत्थि, सिया संका० सिया असंका०।

§ १६६. हस्सं संकामेंतो संजलणतियपुरिसवेद-पंचणोकसायाणं णियमा संकामओ। लोभसंजलणस्स सिया संकामओ०। सेसं सिया अत्थि०। जदि अत्थि सिया संकामओ सिया असंका०। एवं पंचणोकसायाणं पि[1]।

§ १६७. आदेसेण णेरइएसु मिच्छत्तं संकामेंतो सम्मत्तस्स असंकामओ। सम्मामि० सिया संका० सिया असंका०। अणंताणु०चउक्कं सिया अत्थि०। जइ अत्थि सिया संकामओ०। बारसक०-णवणोक० णियमा संकामओ। सम्मत्ताणंताणु०-चउक्क० ओघं। सम्मामिच्छत्तं संकामेंतो मिच्छ० सिया संकामओ०। सम्मा०-

उसीके साथ होती है अतः नपुंसकवेदका संक्रामक स्त्रीवेदका भी नियमसे संक्रामक ठहरता है। शेष कथन पूर्ववत् है।

§ १६५. जो पुरुषवेदका संक्रामक है वह तीन संज्वलनोंका नियमसे संक्रामक है। लोभसंज्वलनका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक है। शेष प्रकृतियां कदाचित् हैं और कदाचित् नहीं हैं। यदि हैं तो उनका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक है।

विशेषार्थ—क्रोध आदि तीन संज्वलनोंका संक्रम पीछे तक होता रहता है इसलिये पुरुषवेदके संक्रामकको इनका संक्रामक नियमसे बतलाया है। आनुपूर्वी संक्रमके चालू हो जानेके समयसे लोभसंज्वलनका संक्रम नहीं होता किन्तु तब भी पुरुषवेदका संक्रम होता रहता है, इसलिये पुरुषवेदके संक्रामकके लोभसंज्वलनके संक्रमके विषयमें अनियम बतलाया है। शेष कथन सुगम है।

§ १६६. जो हास्यका संक्रामक है वह तीन संज्वलन, पुरुषवेद और पाँच नोकषायोंका नियमसे संक्रामक है। लोभसंज्वलनका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक है। शेष प्रकृतियां कदाचित् हैं और कदाचित् नहीं हैं। यदि हैं तो उनका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक है। इसीप्रकार पाँच नोकषायोंके संक्रामकका आश्रय लेकर कथन करना चाहिये।

विशेषार्थ—क्रोध आदि तीन संज्वलन और पुरुषवेदका संक्रम पीछे तक होता रहता है। तथा पाँच नोकषायोंका संक्रम हास्यके संक्रमका सहचारी है। इसीसे हास्यके संक्रामकको उक्त प्रकृतियोंका संक्रामक नियमसे बतलाया है। लोभसंज्वलनका संक्रम पूर्वमें ही रुक जाता है तब भी हास्यका संक्रम होता रहता है। इसीसे हास्यके संक्रामकके लोभसंज्वलनके संक्रमके विषयमें अनियम बतलाया है। शेष कथन सुगम है।

§ १६७. आदेशसे नारकियोंमें जो मिथ्यात्वका संक्रामक है। वह सम्यक्त्वका असंक्रामक है। सम्यग्मिथ्यात्वका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक है। अनन्तानुबन्धीचतुष्क कदाचित् हैं और कदाचित् नहीं हैं। यदि हैं तो उनका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक है। बारह कषाय और नौ नोकषायोंका नियमसे संक्रामक है। सम्यक्त्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कके आश्रयसे सन्निकर्षका कथन ओघके समान है। जो सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रामक है वह मिथ्यात्वका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक है। सम्यक्त्व और

१. ता० प्रतौ 'पि' इति पाठो नास्ति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणंताणु०४ सिया अत्थि०, जइ अत्थि सिया संकामओ० । बारसक०-णवणोक० णियमा संका० । अपच्चक्खाणकोधं संकामेंतो मिच्छ०-सम्म०-सम्मामि०अणंताणु०४ सिया अत्थि सिया णत्थि । जइ अत्थि सिया संका० सिया असंका० । एक्कारसक०-णवणोक० णियमा संकामओ । एवमेक्कारसक०-णवणोकसायाणं । एवं पढमाए तिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खदुगं[1]-देवगदि-देवा सोहम्मादि णवगेवज्जा त्ति । विदियादि सत्तमा त्ति एवं चेव । णवरि अपच्चक्खाणकोधं संकामेंतो मिच्छत्तस्स सिया संकाम० सिया असंकाम० । एवं जोणिणी-भवणवासिय-वाणवेंतर-जोइसिएसु ।

§ १६८. पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज०-मणुसअपज्ज० सम्मत्तं संकामेंतो सम्मामि०-सोलसक०-णवणोकसायाणं णियमा संकामओ । सम्मामिच्छत्तं संकामेंतो सम्मत्तं सिया अत्थि । जदि अत्थि, सिया संकाम० । सोलसक०-णवणोक० णियमा संकामओ । अणंताणु०कोधं संकामेंतो सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तं सिया अत्थि । जदि अत्थि, सिया संकामओ । पण्णारसक०-णवणोकसायाणं णियमा संकामओ । एवं पण्णारसक०-णवणोकसायाणं ।

अनन्तानुबन्धीचतुष्क कदाचित् हैं और कदाचित् नहीं हैं। यदि हैं तो इनका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक है। बारह कषाय और नौ नोकषायोंका नियमसे संक्रामक है। जो अप्रत्याख्यानावरण क्रोधका संक्रामक है उसके मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्क कदाचित् हैं और कदाचित् नहीं हैं। यदि हैं तो इनका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक है। ग्यारह कषाय और नौ नोकषायोंका नियमसे संक्रामक है। इसीप्रकार ग्यारह कषाय और नौ नोकषायोंका आश्रय लेकर कथन करना चाहिये। इसीप्रकार प्रथम पृथिवी, तिर्यञ्च, पंचेन्द्रियतिर्यञ्चद्विक, सामान्य देव और सौधर्मसे लेकर नौ ग्रैवयक तकके देवोंमें जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि जो अप्रत्याख्यानावरण क्रोधका संक्रामक है वह मिथ्यात्वका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक है। इसी प्रकार पंचेन्द्रियतिर्यञ्चयोनिनी, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंके जानना चाहिये।

§ १६८. पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्त जीवोंमें जो सम्यक्त्वका संक्रामक है वह सम्यग्मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंका नियमसे संक्रामक है। जो सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रामक है उसके सम्यक्त्व कदाचित् है और कदाचित् नहीं है। यदि है तो उसका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक है। सोलह कषाय और नौ नोकषायोंका नियमसे संक्रामक है। अनन्तानुबन्धी क्रोधका जो संक्रामक है उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व कदाचित् हैं और कदाचित् नहीं हैं। यदि हैं तो इनका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक है। पन्द्रह कषाय और नौ नोकषायोंका नियमसे संक्रामक है। इसी प्रकार पन्द्रह कषाय और नौ नोकषायोंके संक्रामकका आश्रय लेकर सन्निकर्ष कहना चाहिये।

विशेषार्थ—उक्त दो मार्गणाओंमें छब्बीस प्रकृतियाँ तो नियमसे हैं। किन्तु सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका सत्त्व पाया भी जाता है और नहीं भी पाया जाता है। उसमें भी जिसके

१. ता० प्रतौ पंचिंदियदुग इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ १६९. मणुसतिए ओघं। णवरि मणुसिणीसु पुरिसवेदं संकामेंतो छण्णोकसायाणं णियमा संकामओ। अणुद्दिस० जाव सव्वट्ठा त्ति मिच्छत्तं संकामेंतो सम्मामि०-बारसक०-णवणोक० णियमा संकामओ। अणंताणु०चउक्कं सिया अत्थि०। जदि अत्थि, सिया संकामओ०। एव सम्मामिच्छत्तस्स। अणंताणु०कोधं संकामेंतो मिच्छ०-सम्मामि०-पण्णारसक०-णवणोक० णियमा संकामओ। एव तिण्हं कसायाणं। अपच्चक्खाणकोहं संकामेंतो मिच्छ०-सम्मामि० सिया अत्थि०। जदि अत्थि, णियमा संकामओ। अणंताणु०४ सिया अत्थि०। जइ अत्थि, सिया संकामओ०। एक्कारसक०-णवणोकसायाणं णियमा संकामओ। एवमेक्कारसक०-णवणोकसायाणं। एवं जाव०।

§ १७०. भावो सव्वत्थ ओदइओ भावो।

❀ अप्पाबहुअं।

§ १७१. अहियारसंभालणसुत्तमेदं। सुगमं।

❀ सव्वत्थोवा सम्मत्तस्स संकामया।

सम्यक्त्वका सत्त्व है उसके सम्यग्मिथ्यात्वका सत्त्व नियमसे है। किन्तु जिसके सम्यग्मिथ्यात्वका सत्त्व है उसके सम्यक्त्वका सत्त्व है भी और नहीं भी है। इसी अपेक्षासे उक्त सन्निकर्ष कहा है।

§ १६९. मनुष्यत्रिकमें सन्निकर्ष ओघके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्यनियोंमें जो पुरुषवेदका संक्रामक है वह छह नोकषायोंका नियमसे संक्रामक है। आशय यह है कि इनके दोनोंका संक्रम एक साथ होता है अतः उक्त व्यवस्था बन जाती है। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें जो मिथ्यात्वका संक्रामक है वह सम्यग्मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंका नियमसे संक्रामक है। अनन्तानुबन्धीचतुष्क कदाचित् हैं और कदाचित् नहीं हैं। यदि हैं तो उनका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक है। इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकका आश्रय लेकर सन्निकर्ष कहना चाहिये। जो अनन्तानुबन्धी क्रोधका संक्रामक है वह मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, पन्द्रह कषाय और नौ नोकषायोंका नियमसे संक्रामक है। इसी प्रकार अनन्तानुबन्धीमान आदि तीन कषायोंके संक्रामकका आश्रय लेकर सन्निकर्ष कहना चाहिये। जो अप्रत्याख्यानावरण क्रोधका संक्रामक है उसके मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व कदाचित् हैं और कदाचित् नहीं हैं। यदि हैं तो उनका नियमसे संक्रामक है। अनन्तानुबन्धीचतुष्क कदाचित् हैं और कदाचित् नहीं है। यदि हैं तो उनका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक है। ग्यारह कषाय और नौ नोकषायोंका नियमसे संक्रामक है। इसी प्रकार ग्यारह कषाय और नौ नोकषायोंके संक्रामकका आश्रय लेकर सन्निकर्ष कहना चाहिये। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये।

§ १७०. भावका प्रकरण है। सर्वत्र औदयिक भाव है।

* अब अल्पबहुत्वका अधिकार है।

§ १७१. अधिकारका निर्देश करनेवाला यह सूत्र सुगम है।

* सम्यक्त्वके संक्रामक जीव सबसे थोड़े हैं।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

§ १७२. कुदो ? उव्वेल्लणवावदपलिदोवमासंखेज्जभागमेत्तजीवरासिस्स[1] गहणादो।

❀ मिच्छत्तस्स संकामया असंखेज्जगुणा।

§ १७३. कुदो ? वेदगसम्माइट्ठिरासिस्स पहाणभावेणेत्थ गहणादो।

❀ सम्मामिच्छत्तस्स संकामया विसेसाहिया।

§ १७४. केत्तियमेत्तेण ? सादिरेयसम्मत्तसंकामयजीवमेत्तेण।

❀ अणंताणुबंधीणं संकामया अणंतगुणा।

§ १७५. कुदो ? एइंदियरासिस्स पहाणत्तादो।

❀ अट्ठकसायाणं संकामया विसेसाहिया।

§ १७६. केत्तियमेत्तेण ? चउवीस-तेवीस-बावीस-इगिवीससंतकम्मियजीवमेत्तेण।

❀ लोभसंजलणस्स संकामया विसेसाहिया।

§ १७७. केत्तियमेत्तेण ? तेरससंकामयमेत्तेण। कुदो ? अट्ठकसाएसु खीणेसु वि जाव अंतरं ण करेइ ताव लोहसंजलणस्स संकमदंसणादो।

---

§ १७२. क्योंकि उद्वेलनामें लगी हुई जो पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण जीवराशि है वह यहाँ ली गई है।

* मिथ्यात्वके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं।

§ १७३. क्योंकि यहाँ वेदकसम्यग्दृष्टियोंका प्रधानरूपसे ग्रहण किया है।

* सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं।

§ १७४. **शंका**—कितने अधिक हैं ?

समाधान—सम्यक्त्वके संक्रामक जितने जीव हैं उतने हैं।

* अनन्तानुबन्धीके संक्रामक जीव अनन्तगुणे हैं।

§ १७५, क्योंकि अनन्तानुबन्धियोंके संक्रामकोंमें एकेन्द्रिय राशिकी प्रधानता है।

* आठ कषायोंके संक्रामक विशेष अधिक हैं।

§ १७६. **शंका**—कितने अधिक हैं ?

समाधान—चौबीस, तेईस, बाईस और इक्कीसप्रकृतिक सत्त्वस्थानवाले जीवोंका जितना प्रमाण है उतने अधिक हैं।

* लोभसंज्वलनके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं।

§ १७७. **शंका**—कितने अधिक हैं।

समाधान—तेरह प्रकृतियोंका संक्रम करनेवाले जीवोंका जितना प्रमाण है उतने अधिक हैं, क्योंकि आठ कषायोंका क्षय हो जाने पर भी जब तक अन्तर नहीं करता है तब तक लोभ-संज्वलनका संक्रम देखा जाता है।

---

१. ता०प्रतौ -मेत्तरासिस्स इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

❀ णवुंसयवेदस्स संकामया विसेसाहिया ।

§ १७८. कुदो ? अंतरकरणे कदे लोहसंजलणस्स संकमाभावे वि णवुंसयवेदस्स तत्थ अंतोमुहुत्तकालं संकमपाओग्गत्तदंसणादो । केत्तियमेत्तो विसेसो ? बारस-संकामयमेत्तो ।

❀ इत्थिवेदस्स संकामया विसेसाहिया ।

§ १७९. कुदो ? णवुंसयवेदे खीणे वि इत्थिवेदस्स अंतोमुहुत्तकालं संकमसंभव-दंसणादो । के०मेत्तो विसेसो ? एक्कारससंकामयजीवमेत्तो ।

❀ छण्णोकसायाणं संकामया विसेसाहिया ।

§ १८०. के०मेत्तेण ? दससंकामयजीवमेत्तेण ।

❀ पुरिसवेदस्स संकामया विसेसाहिया ।

§ १८१. छसु कम्मंसेसु खीणेसु उवरिदुसमऊण-दोआवलियमेत्तकालमेदस्स संकमसंभवेण तत्थ संचिदचदुसंकामयमेत्तेण विसेसाहियत्तमेत्थ गहेयव्वं ।

❀ कोहसंजलणस्स संकामया विसेसाहिया ।

* नपुंसकवेदके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं ।

§ १७८. क्योंकि अन्तरकरण करनेके बाद यद्यपि लोभ संज्वलनका संक्रम नहीं होता है तथापि वहाँ अन्तर्मुहूर्त कालतक नपुंसकवेदके संक्रमकी योग्यता देखी जाती है ।

शंका—विशेषका प्रमाण कितना है ।

समाधान—बारह प्रकृतियोंके संक्रामकोंका जितना प्रमाण है उतना है ।

* स्त्रीवेदके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं ।

§ १७९. क्योंकि नपुंसकवेदका क्षय हो जाने पर भी अन्तर्मुहूर्त काल तक स्त्रीवेदका संक्रम देखा जाता है ।

शंका—विशेषका प्रमाण कितना है ?

समाधान—ग्यारह प्रकृतियोंके संक्रामक जीवोंका जितना प्रमाण है उतना है ।

* छह नोकषायोंके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं ।

§ १८०. **शंका**—कितने अधिक हैं ?

समाधान—दस प्रकृतियोंके संक्रामकोंका जितना प्रमाण है उतने अधिक हैं ।

* पुरुषवेदके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं ।

§ १८१. छह नोकषायोंका क्षय हो जानेपर दो समयकम दो आवलि काल तक पुरुषवेदका संक्रम सम्भव होनेसे उस कालके भीतर चार प्रकृतियोंके संक्रामकोंका जितना प्रमाण प्राप्त हो उतना यहाँ विशेष अधिक लेना चाहिये ।

* क्रोधसंज्वलनके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं ।

१. ता०-आ०प्रत्योः उवरिमसमऊण- इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ १८२. के०मेत्तेण ? अंतोमुहुत्तसंचिदतिविहसंकामयमेत्तेण ।

❀ **माणसंजलणस्स संकामया विसेसाहिया ।**

§ १८३. विसेसपमाणमेत्थ दुविहसंकामयमेत्तं ।

❀ **मायासंजलणस्स संकामया विसेसाहिया ।**

§ १८४. एक्किस्से संकामयजीवमेत्तेण ।

एवमोघो समत्तो ।

§ १८५. संपहि आदेसेण णिरयगईए पयदप्पाबहुअपरूवणट्ठमुरिमो पबंधो—

❀ **णिरयगदीए सव्वत्थोवा सम्मत्तसंकामया ?**

§ १८६. कुदो ? सम्मत्तमुव्वेल्लमाणमिच्छाइट्ठिरासिस्स गहणादो ।

❀ **मिच्छत्तस्स संकामया असंखेज्जगुणा ।**

§ १८७. कुदो ? णेरइयवेदयसम्माइट्ठीणमुवसमसम्माइट्ठिसहिदाणमिह ग्गहणादो ।

❀ **सम्मामिच्छत्तस्स संकामया विसेसाहिया ।**

§ १८८. के०मेत्तेण ? सादिरेयसम्मत्तसंकामयमेत्तेण ।

---

§ १८२. **शंका**—कितने अधिक हैं ?

समाधान—अन्तर्मुहूर्तमें तीन प्रकृतियोंके संक्रामकोंका जितना प्रमाण संचित हो उतने अधिक हैं ।

* **मानसंज्वलनके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं ।**

§ १८३. क्योंकि दो प्रकृतियोंके संक्रामकोंका जितना प्रमाण है उतना यहाँ विशेष अधिकका प्रमाण जानना चाहिये ।

* **मायासंज्वलनके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं ।**

§ १८४. एक प्रकृतिके संक्रामक जीवोंका जितना प्रमाण है उतने अधिक हैं ।

इस प्रकार ओघप्ररूपणा समाप्त हुई ।

§ १८५. अब आदेशसे नरकगतिमें प्रकृत अल्पबहुत्वका कथन करनेके लिये आगेके प्रबन्धका निर्देश करते हैं—

* **नरकगतिमें सम्यक्त्वके संक्रामक जीव सबसे थोड़े हैं ।**

§ १८६. क्योंकि यहां सम्यक्त्वकी उद्वेलना करनेवाले मिथ्यादृष्टि जीवोंकी राशिका ग्रहण किया है ।

* **मिथ्यात्वके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं ।**

§ १८७. क्योंकि यहाँ उपशमसम्यग्दृष्टियोंके साथ वेदकसम्यग्दृष्टि नारकियोंका ग्रहण किया है ।

* **सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं ।**

§ १८८. **शंका**—कितने अधिक हैं ?

समाधान—सम्यक्त्वके संक्रामक जीवमात्र अधिक हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

❀ अणंताणुबंधीणं संकामया असंखेज्जगुणा।

§ १८९. कुदो ? इगिवीस-चउवीससंतकम्मिए मोत्तूण सेससव्वणेरइयरासिस्स गहणादो।

❀ सेसाणं कम्माणं संकामया तुल्ला विसेसाहिया।

§ १९०. इगिवीस-चउवीससंतकम्मियाणं पि एत्थ पवेसदंसणादो। एवं णिरयोघो परूविदो। एवं सत्तसु पुढवीसु वत्तव्वं।

❀ एवं देवगदीए।

§ १९१. एदस्स विवरणे कीरमाणे समणंतरपरूविदो सव्वो चेव अप्पाबहुआलावो वत्तव्वो, विसेसाभावादो। भवणादि जाव सहस्सारे त्ति एवं चेव वत्तव्वं। आणदादि जाव णवगेवज्जा त्ति सव्वत्थोवा सम्म० संकाम०। अणंताणु०४ संकाम० असंखे०गुणा। मिच्छ० संकाम० विसेसा०। सम्मामि० संकाम० विसेसा०। बारसक०-णवणोक० संकाम० विसेसा०। अणुद्दिसादि सव्वट्ठा त्ति सव्वत्थोवा अणंताणु०४ संकाम०। मिच्छ०-सम्मामि० संकाम० विसेसा०। बारसक०-णवणोक० संकाम० विसे०। जेणेयं सुत्तं देसामासियं तेणेसो सव्वो वि अत्थो एत्थ णिलीणो त्ति दट्ठव्वो।

---

* अनन्तानुबन्धियोंके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं।

§ १८९. क्योंकि इक्कीस और चौबीस प्रकृतिक सत्त्वस्थानवाले जीवोंके सिवा शेष सब नारकराशिका यहां ग्रहण किया गया है।

* शेष कर्मोंके संक्रामक जीव परस्पर बराबर हैं किन्तु अनन्तानुबन्धियोंके संक्रामकोंसे विशेष अधिक हैं।

§ १९०. क्योंकि इनमें इक्कीस और चौबीस प्रकृतिक सत्त्वस्थानवाले जीवोंका भी प्रवेश देखा जाता है। इस प्रकार सामान्यसे नारकियोंमें सम्यक्त्व आदि प्रकृतियोंके संक्रामकोंका अल्पबहुत्व कहा। इसी प्रकार सातों पृथिवियोंमें अल्पबहुत्व कहना चाहिये।

* इसी प्रकार देवगतिमें अल्पबहुत्व जानना चाहिये।

§ १९१. इस सूत्रका व्याख्यान करने पर इससे पूर्वके अल्पबहुत्वालापका पूराका पूरा कथन यहाँ पर भी करना चाहिये, क्योंकि उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है। भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार कल्पतक इसी प्रकार कथन करना चाहिये। आनतसे लेकर नौ ग्रैवेयकतकके देवोंमें सम्यक्त्वके संक्रामक जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे अनन्तानुबन्धीचतुष्कके संक्रामक जीव असंख्यात गुणे हैं। इनसे मिथ्यात्वके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं। इनसे सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं। इनसे बारह कषाय और नौ नोकषायोंके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें अनन्तानुबन्धीचतुष्कके संक्रामक जीव सबसे थोड़े हैं। इनसे मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं। इनसे बारह कषाय और नौ नोकषायोंके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं। यतः 'एवं देवगदीए' यह सूत्र देशामर्षक है अतः यह पूराका पूरा अर्थ इस सूत्रमें गर्भित है ऐसा जानना चाहिये। अब तिर्यंचगतिमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संपहि तिरिक्खगदीए अप्पाबहुअपरूवणट्ठमाह ।

❀ तिरिक्खगईए सव्वत्थोवा सम्मत्तस्स संकामया ।

§ १९२. सुगमं ।

❀ मिच्छत्तस्स संकामया असंखेज्जगुणा ।

§ १९३. एत्थ वि कारणमोघसिद्धं ।

❀ सम्मामिच्छत्तस्स संकामया विसेसाहिया ।

§ १९४. केत्तियमेत्तेण ? सादिरेयसम्मत्तसंकामयमेत्तेण ।

❀ अणंताणुबंधीणं संकामया अणंतगुणा ।

§ १९५. कुदो ? किंचूणतिरिक्खरासिस्स गहणादो ।

❀ सेसाणं कम्माणं संकामया तुल्ला विसेसाहिया ।

§ १९६. तिरिक्खरासिस्स सव्वस्स चेव गहणादो ।

❀ पंचिंदियतिरिक्खतिए णारयभंगो ।

§ १९७. पंचिंदियतिरिक्ख०-मणुसअपज्जत्तएसु सव्वत्थोवा सम्मत्तसंकामया । सम्मामिच्छत्तसंकामया विसेसाहिया । सोलसक०-णवणोक० संका० असंखे०गुणा । सुत्ते अवुत्तमेदं कधं उच्चदे ? ण, सुत्तस्स सूचणामेत्ते वावारादो ।

अल्पबहुत्वका कथन करनेके लिये आगेके सूत्र कहते हैं—

* तिर्यंच गतिमें सम्यक्त्वके संक्रामक जीव सबसे थोड़े हैं ।

§ १९२. यह सूत्र सुगम है ।

* मिथ्यात्वके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं ।

§ १९३. असंख्यातगुणेका जो कारण ओघ प्ररूपणाके समय कहा है वही यहाँ भी जानना चाहिये ।

* सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं ।

§ १९४. शंका—कितने अधिक हैं ?

समाधान—सम्यक्त्वके संक्रामक जीवमात्र अधिक हैं ।

* अनन्तानुबन्धियोंके संक्रामक जीव अनन्तागुणे हैं ।

§ १९५. क्योंकि यहां कुछकम तिर्यंच राशिका ग्रहण किया है ।

* शेष कर्मोंके संक्रामक जीव परस्परमें तुल्य हैं तथापि अनन्तानुबन्धियोंके संक्रामकोंसे विशेष अधिक हैं ।

§ १९६. क्योंकि यहां पूरी तिर्यंचराशिका ग्रहण किया है ।

* पंचेन्द्रिय तिर्यंचत्रिकमें अल्पबहुत्व नारकियोंके समान है ।

§ १९७. पंचेन्द्रियतिर्यंच अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्त जीवोंमें सम्यक्त्वके संक्रामक जीव सबसे थोड़े हैं । सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं । सोलह कषाय और नौ नोकषायोंके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

❀ मणुसगईए सव्वत्थोवा मिच्छत्तस्स संकामया ।

§ १९८. सम्माइट्ठिरासिपमाणत्तादो ।

❀ सम्मत्तस्स संकामया असंखेज्जगुणा ।

§ १९९. कारणमुव्वेल्लमाणो पलिदोवमासंखेज्जदिभागमेत्तो मिच्छाइट्ठिरासी गहिदो त्ति ।

❀ सम्मामिच्छत्तस्स संकामया विसेसाहिया ।

§ २००. किं कारणं ? अणंतरपरूविदपलिदोवमासंखे०भागमेत्तुव्वेल्लणरासी सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं सरिसो लब्भइ । पुणो सम्मत्ते उव्वेल्लिदे संते सम्मामिच्छत्तं उव्वेल्लमाणो पलिदो०असंखे०भागमेत्तो मिच्छाइट्ठिरासी संखेज्जो सम्माइट्ठिरासी च सम्मामिच्छत्तस्स लब्भइ । एदेण कारणेण विसेसाहियत्तं जादं ।

❀ अणंताणुबंधीणं संकामया असंखेज्जगुणा ।

§ २०१. कुदो ? मणुसमिच्छाइट्ठिरासिस्स पहाणत्तादो ।

❀ सेसाणं कम्माणं संकामया ओघो ।

§ २०२. कुदो ? ओघालावं पडि विसेसाभावादो । तदो ओघालावो णिरवसेसमेत्थ

शंका—यह अल्पबहुत्व सूत्रमें नहीं कहा गया है फिर यहां क्यों बतलाया जा रहा है ?

समाधान—नहीं क्योंकि सूत्रका काम सूचना करनामात्र है ।

* मनुष्यगतिमें मिथ्यात्वके संक्रामक जीव सबसे थोड़े हैं ।

§ १९८. क्योंकि स्थूलरूपसे ये मनुष्य सम्यग्दृष्टियोंका जितना प्रमाण है उतने हैं ।

* सम्यक्त्वके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं ।

§ १९९. क्योंकि यहां उद्वेलना करनेवाले पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण मिथ्यादृष्टि जीवोंकी राशिका ग्रहण किया है ।

* सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं ।

§ २००. क्योंकि समनन्तर पूर्व जो पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण जीवराशि कही है वह सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन दोनोंके संक्रमकी अपेक्षा समान है किन्तु सम्यक्त्वकी उद्वेलना कर लेनेके बाद पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण ऐसी मिथ्यादृष्टि राशि है जो केवल सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करती है तथा ऐसे संख्यात सम्यग्दृष्टि जीव भी हैं जो केवल सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रम करते हैं, इस कारणसे सम्यक्त्वके संक्रामकोंसे सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामक मनुष्य विशेष अधिक हो जाते हैं ।

* अनन्तानुबन्धियोंके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं ।

§ २०१. क्योंकि यहाँ मनुष्य मिथ्यादृष्टिराशिकी प्रधानता है ।

* शेष कर्मोंके संक्रामकोंका अल्पबहुत्व ओघके समान है ।

§ २०२ क्योंकि ओघप्ररूपणासे इसमें कोई विशेषता नहीं है, इसलिये पूरेके पूरे ओघ-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कायव्वो । एवं मणुसपज्जत्ता । णवरि जम्हि असंखेज्जगुणं तम्हि संखेज्जगुणं कायव्वं । एवं चेव मणुसिणीसु वि वत्तव्वं । णवरि छण्णोकसाय-पुरिसवेदसंकामया सरिसा कायव्वा ।

एवं गइमग्गणा समत्ता ।

§ २०३. संपहि सेसमग्गणाणं देसामासियभावेणिंदियमग्गणावयवभूदेइंदिएसु पयदप्पाबहुअपरूवणं कुणमाणो सुत्तमुत्तरं भणइ—

❀ एइंदिएसु सव्वत्थोवा सम्मत्तस्स संकामया ।

§ २०४. सुगमं ।

❀ सम्मामिच्छत्तस्स संकामया विसेसाहिया ।

§ २०५. सम्मत्तुव्वेल्लणकालादो सम्मामिच्छत्तुव्वेल्लणकालस्स विसेसाहियत्तादो ।

❀ सेसाणं कम्माणं संकामया तुल्ला अणंतगुणा ।

§ २०६. कुदो ? एइंदियरासिस्स सव्वस्सेव गहणादो । एवं जाव अणाहारि त्ति ।

एवमेगेगपयडिसंकमो समत्तो ।

प्ररूपणाको यहाँ कहना चाहिये। मनुष्य पर्याप्तकोंमें इसी प्रकार अल्पबहुत्व कहना चाहिये, किन्तु इतनी विशेषता है कि जहाँ असंख्यातगुणा कहा है वहाँ संख्यातगुणा कहना चाहिये। मनुष्यिनियोंमें भी इसी प्रकार कथन करना चाहिये, किन्तु इतनी विशेषता है कि यहाँ छह नोकषाय और पुरुषवेदके संक्रामक जीव एक समान बतलाना चाहिये।

इस प्रकार गतिमार्गणा समाप्त हुई।

§ २०३. अब शेष मार्गणाओंके देशामर्षकरूपसे इन्द्रिय मार्गणाके एक भेद एकेन्द्रियोंमें प्रकृत अल्पबहुत्वका कथन करते हुए आगेका सूत्र कहते हैं—

*** एकेन्द्रियोंमें सम्यक्त्वके संक्रामक जीव सबसे थोड़े हैं।**

§ २०४. यह सूत्र सुगम है।

*** सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं।**

§ २०५. क्योंकि सम्यक्त्वके उद्वेलना कालसे सम्यग्मिथ्यात्वका उद्वेलना काल विशेष अधिक है।

*** शेष कर्मोंके संक्रामक जीव परस्परमें तुल्य हैं, तथापि सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रामकोंसे अनन्तगुणे हैं।**

§ २०६. क्योंकि यहाँ पर समस्त एकेन्द्रिय जीवराशिका ग्रहण किया है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये।

इस प्रकार एकैकप्रकृतिसंक्रम अधिकार समाप्त हुआ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

❀ एत्तो पयडिट्ठाणसंकमो ।

§ २०७. एत्तो उवरि पयडिट्ठाणसंकमो सप्पडिवक्खो सगंतोभाविदपयडिट्ठाण-पडिग्गहापडिग्गहो परूवेयव्वो त्ति भणिदं होइ ।

❀ तत्थ पुव्वं गमणिज्जा सुत्तसमुक्कित्तणा ।

§ २०८. तम्हि पयडिट्ठाणसंकमे परूविज्जमाणे पुव्वमेव तत्थ ताव पडिबद्धाणं गाहासुत्ताणं समुक्कित्तणा कायव्वा त्ति वुत्तं होइ ।

❀ तं जहा ।

§ २०९. सुगममेदं गाहासुत्तावयारावेक्खं पुच्छावक्कं ।

अट्ठावीस चउवीस सत्तरस सोलसेव पण्णरसा ।
एदे खलु मोत्तूणं सेसाणं संकमो होइ[1] ॥ २७ ॥
सोलसग बारसट्ठग वीसं वीसं तिगादिगधिगा य ।
एदे खलु मोत्तूणं सेसाणि पडिग्गहा होंति[2] ॥ २८ ॥
छव्वीस सत्तवीसा य संकमो णियम चदुसु ट्ठाणेसु ।
वावीस पण्णरसगे एक्कारस ऊणवीसाए[3] ॥ २९ ॥

❀ अब इससे आगे प्रकृतिस्थानसंक्रमका अधिकार है ।

§ २०७. अब इससे आगे जिसमें प्रकृतिस्थानप्रतिग्रह और प्रकृतिस्थान-अप्रतिग्रहका कथन आ जाता है ऐसे प्रकृतिस्थानसंक्रमका अपने प्रतिपक्षके साथ कथन करते हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

❀ उसमें सर्व प्रथम गाथासूत्रोंकी समुत्कीर्तना जाननी चाहिये ।

§ २०८. इस प्रकृतिस्थानसंक्रमका कथन करते समय सर्व प्रथम प्रकृतिस्थानसे सम्बन्ध रखनेवाले गाथासूत्रोंकी समुत्कीर्तना करनी चाहिये यह उक्त सूत्रका तात्पर्य है ।

❀ यथा—

§ २०९. गाथासूत्रोंके अवतारकी अपेक्षा रखनेवाला यह पृच्छासूत्र सुगम है ।

अट्ठाईस, चौबीस, सत्रह, सोलह और पन्द्रह इन पाँच स्थानोंके सिवा शेष तेईस स्थानोंका संक्रम होता है ॥२७॥

सोलह, बारह, आठ, बीस और तीन अधिक आदि बीस अर्थात् तेईस, चौबीस, पचीस, छब्बीस, सत्ताईस और अट्ठाईस इन दस स्थानोंके सिवा शेष अठारह प्रतिग्रह-स्थान होते हैं ॥२८॥

छब्बीस और सत्ताईस संक्रमस्थानोंका बाईस, पन्द्रह, ग्यारह और उन्नीस इन चार प्रतिग्रहस्थानोंमें नियमसे संक्रम होता है । ॥२९॥

---

१. कर्मप्रकृति संक्रम गा० १० । २. कर्मप्रकृति संक्रम गा० ११ । ३. कर्मप्रकृति संक्रम गा० १२ ।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

सत्तारसेगवीसासु संकमो णियम पंचवीसाए।
णियमा चदुसु गदीसु य णियमा दिट्ठीगए तिविहे[1] ॥३०॥
बावीस पण्णरसगे सत्तग एक्कारसूणवीसाए।
तेवीस संकमो पुण पंचसु पंचिंदिएसु हवे[2] ॥ ३१ ॥
चोद्दसग दसग सत्तग अट्ठारसगे च णियम बावीसा।
णियमा मणुसगईए विरदे मिस्से अविरदे य[3] ॥३२॥
तेरसय णवय सत्तय सत्तारस पणय एक्कवीसाए।
एगाधिगाए वीसाए संकमो छप्पि सम्मत्ते[4] ॥ ३३ ॥
एत्तो अवसेसा संजमम्हि उवसामगे च खवगे च।
वीसा य संकम दुगे छक्के पणए च बोद्धव्वा[5] ॥ ३४ ॥

पच्चीसप्रकृतिक संक्रमस्थानका सत्रह और इक्कीस इन दो प्रतिग्रहस्थानोंमें नियमसे संक्रम होता है। यह संक्रमस्थान चारों गतियोंमें तथा दृष्टिगत अर्थात् मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि इन तीन गुणस्थानोंमें नियमसे होता है। ॥३०॥

तेईसप्रकृतिक संक्रमस्थानका बाईस, पन्द्रह, सात, ग्यारह और उन्नीस इन पाँच प्रतिग्रहस्थानोंमें संक्रम होता है। यह संक्रमस्थान संज्ञी पंचेन्द्रियोंमें ही पाया जाता है ॥३१॥

बाईसप्रकृतिक संक्रमस्थानका चौदह, दस, सात, और अठारह इन चार प्रतिग्रहस्थानोंमें नियमसे संक्रम होता है। यह संक्रमस्थान मनुष्यगतिके रहते हुए विरत, विरताविरत और अविरतसम्यग्दृष्टि इन तीन गुणस्थानोंमें ही पाया जाता है ॥३२॥

इक्कीसप्रकृतिक संक्रमस्थानका तेरह, नौ, सात, सत्रह, पाँच और इक्कीस इन छह प्रतिग्रहस्थानोंमें संक्रम होता है। ये छहों प्रतिग्रहस्थान सम्यक्त्व अवस्थामें ही पाये जाते हैं ॥३३॥

इससे आगेके बाकीके बचे हुए बीस आदि सब संक्रमस्थान और छह आदि सब प्रतिग्रहस्थान संयमयुक्त उपशमश्रेणि और क्षपकश्रेणिमें ही होते हैं। यथा—बीस प्रकृतिक संक्रमस्थानका छह और पाँच इन दो प्रतिग्रहस्थानोंमें संक्रम जानना चाहिए ॥३४॥

१. कर्मप्रकृति संक्रम गा० १३। २. कर्मप्रकृति संक्रम गा० १४। ३. कर्मप्रकृति संक्रम गा० १५। ४. कर्मप्रकृति संक्रम गा० १६। ५. कर्मप्रकृति संक्रम गा० १७।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचसु च ऊणवीसा अट्ठारस चदुसु होंति बोद्धव्वा।
चोद्दस छसु पयडीसु य तेरसयं छक्क-पणगम्हि[1] ॥३५॥
पंच-चउक्के बारस एक्कारस पंचगे तिग चउक्के।
दसगं चउक्क-पणगे णवगं च तिगम्हि बोद्धव्वा[2] ॥३६॥
अट्ठ दुग तिग चउक्के सत्त चउक्के तिगे च बोद्धव्वा।
छक्कं दुगम्हि णियमा पंच तिगे एक्कग दुगे वा[3] ॥३७॥
चत्तारि तिग चदुक्के तिण्णि तिगे एक्कगे च बोद्धव्वा।
दो दुसु एगाए वा एगा एगाए बोद्धव्वा[4] ॥३८॥

उन्नीसप्रकृतिक संक्रमस्थानका पांच प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें, अठारहप्रकृतिक संक्रमस्थानका चारप्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें, चौदहप्रकृतिक संक्रमस्थानका छह प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें और तेरहप्रकृतिक संक्रमस्थानका छह और पाँच प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानोंमें संक्रम होता है ऐसा जानना चाहिये ॥३५॥

बारहप्रकृतिक संक्रमस्थानका पाँच और चार प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानोंमें, ग्यारह प्रकृतिक संक्रमस्थानका पाँच, तीन और चार प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानोंमें, दसप्रकृतिक संक्रमस्थानका चार और पाँच प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानोंमें तथा नौप्रकृतिक संक्रमस्थानका तीनप्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें संक्रम होता है ऐसा जानना चाहिये ॥३६॥

आठप्रकृतिक संक्रमस्थानका दो, तीन और चारप्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानोंमें, सातप्रकृतिक संक्रमस्थानका चार और तीन प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानोंमें, छहप्रकृतिक संक्रमस्थानका नियमसे दोप्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें तथा पाँचप्रकृतिक संक्रमस्थानका तीन, एक और दो प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानोंमें संक्रम होता है ऐसा जानना चाहिये ॥३७॥

चारप्रकृतिक संक्रमस्थानका तीन और चार प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानोंमें, तीन प्रकृतिक संक्रमस्थानका तीन और एक प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानोंमें, दोप्रकृतिक संक्रमस्थानका दो और एक प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानोंमें तथा एकप्रकृतिक संक्रमस्थानका एकप्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें संक्रम होता है ऐसा जानना चाहिये ॥३८॥

१. कर्मप्रकृति संक्रम गा० १८। २. कर्मप्रकृति संक्रम गा० १९। ३. कर्मप्रकृति संक्रम गा० २०। ४. कर्मप्रकृति संक्रम गा० २१।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

अणुपुव्वमणणुपुव्वं झीणमझीणं च दंसणे मोहे ।
उवसामगे च खवगे च संकमे मग्गणोवाया[1] ॥३९॥
एक्केक्कम्हि य द्वाणे पडिग्गहे संकमे तदुभए च ।
भविया वाऽभविया वा जीवा वा केसु ठाणेसु ॥४०॥
कदि कम्हि होंति ठाणा पंचविहे भावविधिविसेसम्हि ।
संकमपडिग्गहो वा समाणणा वाध केवचिरं ॥४१॥
णिरयगइ-अमर-पंचिंदिएसु पंचेव संकमट्ठाणा ।
सव्वे मणुसगईए सेसेसु तिगं असण्णीसु ॥४२॥
चदुर दुगं तेवीसा मिच्छत्ते मिस्सगे य सम्मत्ते ।
वावीस पणय छक्कं विरदे मिस्से अविरदे य ॥४३॥
तेवीस सुक्कलेस्से छक्कं पुण तेउ-पम्मलेस्सासु ।
पणयं पुण काऊए णीलाए किण्हलेस्साए ॥४४॥

आनुपूर्वीसंक्रमस्थान, अनानुपूर्वीसंक्रमस्थान, दर्शनमोहनीयके क्षयसे प्राप्त हुए संक्रमस्थान, दर्शनमोहनीयके क्षयके बिना प्राप्त हुए संक्रमस्थान, उपशामकके प्राप्त हुए संक्रमस्थान और क्षपकके प्राप्त हुए संक्रमस्थान इस प्रकार ये संक्रमस्थानोंके विषयमें गवेषणा करनेके उपाय हैं ॥३९॥

प्रतिग्रह, संक्रम और तदुभयरूप एक एक स्थानमेंसे कितने स्थानोंमें भव्य जीव होते हैं, कितने स्थानोंमें अभव्य जीव होते हैं और कितने स्थानोंमें अन्य मार्गणावाले जीव होते हैं ॥४०॥

यथायोग्य पाँच प्रकारके भावोंसे युक्त चौदह गुणस्थानोंमेंसे किस गुणस्थानमें कितने संक्रमस्थान और कितने प्रतिग्रहस्थान होते हैं। तथा किसका कितना काल है ॥४१॥

नरकगति, देवगति और पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें पाँच, मनुष्यगतिमें सब तथा शेषमें अर्थात् एकेन्द्रियों और विकलत्रयोंमें तथा असंज्ञियोंमें तीन संक्रमस्थान होते हैं ॥४२॥

मिथ्यात्वमें चार, सम्यग्मिथ्यात्वमें दो, सम्यक्त्वमें तेईस, विरतमें बाईस, विरताविरतमें पाँच और अविरतमें छह संक्रमस्थान होते हैं ॥४३॥

शुक्ललेश्यामें तेईस, पीत और पद्मलेश्यामें छह तथा कापोत नील और कृष्ण लेश्यामें पाँच संक्रमस्थान होते हैं ॥४४॥

१, कर्मप्रकृति संक्रम गा० २२ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवगयवेद-णवुंसय-इत्थी-पुरिसेसु चाणुपुव्वीए ।
अट्ठारसयं णवयं एक्कारसयं च तेरसया ॥४५॥
कोहादी उवजोगे चदुसु कसाएसु चाणुपुव्वीए ।
सोलस य ऊणवीसा तेवीसा चेव तेवीसा ॥४६॥
णाणम्हि य तेवीसा तिविहे एक्कम्हि एक्कवीसा य ।
अण्णाणम्हि य तिविहे पंचेव य संकमट्ठाणा ॥४७॥
आहारय-भविएसु य तेवीसं होंति संकमट्ठाणा ।
अणाहारएसु पंच य एक्कं ट्ठाणं अभविएसु ॥४८॥
छव्वीस सत्तवीसा तेवीसा पंचवीस बावीसा ।
एदे सुण्णट्ठाणा अवगदवेदस्स जीवस्स ॥४९॥
उगुवीसट्ठारसयं चोद्दस एक्कारसादिया सेसा ।
एदे सुण्णट्ठाणा णवुंसए चोद्दसा होंति ॥५०॥
अट्ठारस चोद्दसयं ट्ठाणा सेसा य दसगमादीया ।
एदे सुण्णट्ठाणा बारस इत्थीसु बोद्धव्वा ॥५१॥

अपगतवेद, नपुंसकवेद, स्त्रीवेद और पुरुषवेदमें क्रमसे अठारह, नौ ग्यारह और तेरह संक्रमस्थान होते हैं ॥४५॥

क्रोधादि चार कषायोंमें क्रमसे सोलह, उन्नीस, तेईस और तेईस संक्रमस्थान होते हैं ॥४६॥

मति आदि तीन प्रकारके ज्ञानोंमें तेईस, एक मनःपर्ययज्ञानमें इक्कीस और तीनों प्रकारके अज्ञानोंमें पाँच ही संक्रमस्थान होते हैं ॥४७॥

आहारक और भव्य जीवोंमें तेईस, अनाहारकोंमें पाँच और अभव्योंमें एक ही संक्रमस्थान होता है ॥४८॥

अपगतवेदी जीवोंमें छब्बीस, सत्ताईस, तेईस, पच्चीस और बाईस ये पाँच संक्रमस्थान नहीं होते ॥४९॥

नपुंसकवेदमें उन्नीस, अठारह, चौदह और ग्यारह आदि शेष सब स्थान अर्थात् कुल मिलाकर चौदह संक्रमस्थान नहीं होते ॥५०॥

स्त्रियोंमें अर्थात् स्त्रीवेदवाले जीवोंमें अठारह और चौदह तथा दस आदि शेष सब स्थान इस प्रकार ये बारह संक्रमस्थान नहीं होते ॥५१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चोद्दसग-णवगमादी हवंति उवसामगे च खवगे च ।
एदे सुण्णट्ठाणा दस वि य पुरिसेसु बोद्धव्वा ॥५२॥
णव अट्ठ सत्त छक्कं पणग दुगं एक्कयं च बोद्धव्वा ।
एदे सुण्णट्ठाणा पढमकसायोवजुत्तेसु ॥५३॥
सत्त य छक्कं पणगं च एक्कयं चेव आणुपुव्वीए ।
एदे सुण्णट्ठाणा विदियकसाओवजुत्तेसु ॥५४॥
दिट्ठे सुण्णासुण्णे वेद-कसाएसु चेव ट्ठाणेसु ।
मग्गणगवेसणाए दु संकमो आणुपुव्वीए ॥५५॥
कम्मंसियट्ठाणेसु य बंधट्ठाणेसु संकमट्ठाणे ।
एक्केक्केण समाणय बंधेण य संकमट्ठाणे ॥५६॥
सादि य जहण्ण संकम कदिखुत्तो होइ ताव एक्केक्के ।
अविरहिद सांतरं केवचिरं कदिभाग परिमाणं ॥५७॥
एवं दव्वे खेत्ते काले भावे य सण्णिवादे य ।
संकमणयं णयविदू णेया सुददेसिदमुदारं ॥५८॥

पुरुषोंमें उपशामक और क्षपकसे सम्बन्ध रखनेवाले चौदह और नौ आदि शेष सब स्थान इस प्रकार ये दस संक्रमस्थान नहीं होते ॥५२॥

प्रथम क्रोधकषायसे युक्त जीवोंमें नौ, आठ, सात, छह, पाँच, दो और एक ये सात संक्रमस्थान नहीं होते ॥५३॥

दूसरे मानकषायसे उपयुक्त जीवोंमें क्रमसे सात, छह, पांच और एक ये चार संक्रमस्थान नहीं होते ॥५४॥

इस प्रकार वेद और कषाय मार्गणामें कितने संक्रमस्थान हैं और कितने नहीं हैं इसका विचार कर लेनेपर इसी प्रकार गति आदि शेष मार्गणाओंमें भी यत्रतत्रानुपूर्वीके क्रमसे इनका विचार करना चाहिये ॥५५॥

मोहनीयके सत्कर्मस्थानोंमें और बन्धस्थानोंमें संक्रमस्थानोंका विचार करते समय एक एक बन्धस्थान और सत्कर्मस्थानके साथ आनुपूर्वीसे संक्रमस्थानोंका विचार करना चाहिये ॥५६॥

सादि, जघन्य, अल्पबहुत्व, एक जीवकी अपेक्षा काल, एक जीवकी अपेक्षा अन्तर और भागाभाग तथा इसी प्रकार नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, द्रव्य-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ २१०. एवमेदाओ बत्तीस सुत्तगाहाओ[1] पयडिट्ठाणसंकमे पडिबद्धाओ त्ति उत्तं होइ। एत्थ पढमगाहाए ठाणसमुक्कित्तणा संगतोभावियपयडिट्ठाणसंकमासंकमपडिबद्धा। विदियगाहाए वि पयडिट्ठाणपडिग्गहो तदपडिग्गहो च पडिबद्धो। पुणो तदणंतरोवरिम-दसगाहाओ एदस्सेदस्स पयडिट्ठाणसंकमस्स एत्तियाणि एत्तियाणि पडिग्गहट्ठाणाणि होंति त्ति एवंविहस्स अत्थविसेसस्स सामित्तसहगयस्स परूवणट्ठमोदिण्णाओ। पुणो अणुपुव्वमणणुपुव्वमिच्चेदीए तेरसमीए गाहाए पयडिसंकमट्ठाणाणं दंसण-चरित्तमोहक्खव-णोवसामणादिविसयविसेसमस्सिदूण समुप्पत्तिकमपरूवणट्ठमाणुपुव्विसंकमादिअट्ठपदाणि सूचिदाणि। तदणंतरोवरिमगाहा वि संकमपडिग्गह-तदुभयट्ठाणाणं मग्गणट्ठदाए गदियादि-चोद्दसमग्गणट्ठाणाणि देसामासियभावेण सूचेदि। तत्तो अणंतरोवरिमगाहासुत्तपुव्वद्ध पयदसंकमट्ठाणाणमाधारभूदाणि गुणट्ठाणाणि सूचिदाणि, तेहि विणा सामित्तपरूवणो-वायाभावादो। पच्छिमद्धे वि सामित्ताणंतरपरूवणाजोग्गं कालाणिओगद्दारं सेसाणिओग-द्दाराणं देसामासियभावेण सूचिदमिदि घेत्तव्वं। पुणो एत्तो उवरिमसत्तगाहासुत्तेहि[2] गदियादिचोद्दसमग्गणट्ठाणेसु जत्थतत्थाणुपुव्वीए संकमट्ठाणाणं मग्गणा कीरदे। पुणो

प्रमाणानुगम, क्षेत्रानुगम, स्पर्शनानुगम, नाना जीवोंकी अपेक्षा काल, नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तर, भाव और सन्निकर्ष इन अनुयोगद्वारोंके आश्रयसे नयके जानकार पुरुष प्रकृतिसंक्रमविषयक उक्त गाथाओंके उदार अर्थको मूल श्रुतके अनुसार जानें ॥५७-५८॥

§ २१०. इस प्रकार प्रकृतिस्थानसंक्रमसे सम्बन्ध रखनेवाली ये बत्तीस सूत्रगाथाएं हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है। इनमेंसे पहली गाथामें स्थानोंका निर्देश किया है। उसमें बतलाया है कि कितने प्रकृतिस्थानसंक्रम हैं और कितने प्रकृतिस्थान असंक्रम हैं। दूसरी गाथामें प्रकृतिस्थान-प्रतिग्रह कितने हैं और प्रकृतिस्थानअप्रतिग्रह कितने हैं यह बतलाया है। फिर इन दो गाथाओंके बादकी दस गाथाएँ इस इस प्रकृतिस्थानसंक्रमके ये ये प्रतिग्रहस्थान होते हैं इस तरहके अर्थविशेष का कथन करनेके लिये आई हैं। साथ ही इनमें अपने अपने स्थानके स्वामीका भी निर्देश किया है। फिर 'अणुपुव्वमणणुपुव्वं' इत्यादि तेरहवीं गाथा द्वारा दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीयकी क्षपणा और उपशमना आदि विषयक विशेषताका आश्रय लेकर प्रकृतिसंक्रमस्थानोंके उत्पत्तिका क्रम दिखलानेके लिये आनुपूर्वीसंक्रम आदि आठ स्थान सूचित किये गये हैं। फिर इससे अगली गाथा भी संक्रमस्थान, प्रतिग्रहस्थान और तदुभयस्थान इनकी गवेषणा करनेके लिये देशामर्षकरूपसे गति आदि चौदह मार्गणास्थानोंको सूचित करती है। फिर इससे आगेकी गाथाके पूर्वार्धमें प्रकृतसंक्रमस्थानोंके आधारभूत गुणस्थानोंका संकेत किया है, क्योंकि इनका निर्देश किये बिना स्वामित्वका कथन नहीं किया जा सकता है। फिर इसी गाथाके उत्तरार्धमें स्वामित्वके बाद कथन करने योग्य कालानुयोगद्वारको ग्रहण किया है जिससे कि देशामर्षकरूपसे शेष अनुयोगद्वारोंका सूचन होता है। फिर इससे आगेकी सात गाथाओं द्वारा गति आदि चौदह मार्गणास्थानोंमें यत्रतत्रानुपूर्वीके क्रमसे संक्रमस्थानोंका विचार किया गया है। फिर भी इससे आगेकी सात गाथाएं

---

१. ता०प्रतौ बत्तीसगाहाओ इति पाठः। २. ता० प्रतौ सुत्तगासु तेहि इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वि उवरिमसत्तगाहाओ मग्गणाविसेसे अस्सिऊण सुण्णट्ठाणाणि परूवेंति। किं सुण्णट्ठाणं णाम ? जत्थ जं संतकम्मट्ठाणं ण संभवइ तत्थ तस्स सुण्णट्ठाणववएसो। तदणंतरोवरिमाए पुण गाहाए बंध-संकम-संतकम्मट्ठाणाणमण्णोण्णसण्णियासविहाणं सूचिदं। अवसेसदोगाहाओ गुणट्ठाणसंबंधेण पुव्वपरूविदाणमणिओगद्दाराणं गुणट्ठाणविवक्खाए विणा मग्गणट्ठाणसंबंधेण विसेसेयूण[1] परूवणट्ठमागदाओ त्ति णिच्छओ कायव्वो। एवमेसो गाहासुत्ताणं समुदायत्थो परूविदो। अवयवत्थविवरणं पुण पुरदो वत्तइस्सामो।

§ २११. संपहि सुत्तसमुक्कित्तणाणंतरं तदत्थविवरणं कुणमाणो चुण्णिसुत्तयारो सुत्तसूचिदाणमणियोगद्दाराणं परूवणट्ठमुत्तरसुत्तं भणइ—

❀ सुत्तसमुक्कित्तणाए समत्ताए इमे अणियोगद्दारा।

§ २१२. गाहासुत्तसमुक्कित्तणाणंतरमेदाणि अणियोगद्दाराणि पयडिट्ठाणसंकमविसयाणि णादव्वाणि त्ति भणिदं होइ।

❀ तं जहा।

§ २१३. सुगमं।

❀ ठाणसमुक्कित्तणा सव्वसंकमो णोसव्वसंकमो उक्कस्ससंकमो

मार्गणाविशेषोंकी अपेक्षा शून्यस्थानोंका कथन करती हैं।

शंका—शून्यस्थान किसे कहते हैं ?

समाधान—जहाँ जो सत्कर्मस्थान सम्भव नहीं है, वहाँ वह शून्यस्थान कहलाता है।

फिर इससे आगेकी गाथामें बन्धस्थान, संक्रमस्थान और सत्कर्मस्थान इनके परस्परमें सन्निकर्षकी विधि सूचित की गई है। अब रहीं शेष दो गाथाएं सो वे जिन अनुयोगद्वारोंका गुणस्थानोंके सम्बन्धसे पहले कथन कर आये हैं उनका गुणस्थानोंकी विवक्षा किये बिना मार्गणाओंके सम्बन्धसे विशेष कथन करनेके लिये आई हैं ऐसा निश्चय करना चाहिये। इस प्रकार यह गाथासूत्रोंका समुच्चयार्थ है जिसका कथन किया। किन्तु उनके प्रत्येक पदका अर्थ आगे कहेंगे।

§ २११. अब गाथा सूत्रोंकी समुत्कीर्तना करनेके बाद उनके अर्थका विवरण करते हुए चूर्णिसूत्रकार गाथासूत्रोंसे सूचित होनेवाले अनुयोगद्वारोंका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

❋ गाथासूत्रोंकी समुत्कीर्तना करनेके बाद ये अनुयोगद्वार ज्ञातव्य हैं।

§ २१२. गाथासूत्रोंकी समुत्कीर्तना करनेके बाद प्रकृतिस्थानसंक्रमसे सम्बन्ध रखनेवाले ये अनुयोगद्वार ज्ञातव्य हैं यह उक्त सूत्रका तात्पर्य है।

❋ यथा—

§ २१३. यह सूत्र सुगम है।

❋ स्थानसमुत्कीर्तना, सर्वसंक्रम, नोसर्वसंक्रम, उत्कृष्ट संक्रम, अनुत्कृष्ट संक्रम,

---

१. आ०प्रतौ विसेसे पुण इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अणुक्कस्ससंकमो जहण्णसंकमो अजहण्णसंकमो सादियसंकमो अणादियसंकमो धुवसंकमो अद्धुवसंकमो एगजीवेण सामित्तं कालो अंतरं णाणाजीवेहि भंगविचओ कालो अंतरं सण्णियासो अप्पाबहुअं भुजगारो पदणिक्खेवो[1] वड्ढि त्ति ।

§ २१४. एत्थ ट्ठाणसमुक्कित्तणादीणि वड्ढिपज्जंताणि अणियोगद्दाराणि णादव्वाणि भवंति त्ति सुत्तत्थसंबंधो । तत्थ समुक्कित्तणादीणि अप्पाबहुअपज्जवसाणाणि चउवीस-अणियोगद्दाराणि, भागाभाग-परिमाण-खेत्त-पोसण-भावाणुगमाणमेत्थ देसामासयभावेण संगहियत्तादो । एवमेदाणि चउवीसमणियोगद्दाराणि सामण्णेण सुत्ते परूविदाणि । एदेसु सव्व-णोसव्व-उक्कस्साणुक्कस्स-जहण्णाजहण्णसंकमा सण्णियासो च एत्थ ण संभवंति, पयडिट्ठाणसंकमे णिरुद्धे तेसिं संभवाणुवलंभादो । तदो सेससत्तारसअणियोगद्दाराणि एत्थ गहियव्वाणि । पुणो एदेहिंतो पुधभूदाणि भुजगारादीणि तिण्णि अणियोगद्दाराणि सुत्तणिद्दिट्ठाणि घेत्तव्वाणि । संपहि एवं परूविदसव्वाणियोगद्दारेहि गाहासुत्तत्थविहासणं कुणमाणो चुण्णिसुत्तयारो तत्थ ताव ट्ठाणसमुक्कित्तणापरूवणट्ठमुवरिमपबंधमाह ।

*** ठाणसमुक्कित्तणा त्ति जं पदं तस्स विहासा जत्थ एया गाहा ।**

जघन्यसंक्रम, अजघन्यसंक्रम, सादिसंक्रम, अनादिसंक्रम, ध्रुवसंक्रम, अध्रुवसंक्रम, एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्व, काल और अन्तर, नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, काल, अन्तर, सन्निकर्ष, अल्पबहुत्व, भुजगार, पदनिक्षेप और वृद्धि ।

§ २१४. यहाँ स्थानसमुत्कीर्तनासे लेकर वृद्धि पर्यन्त अनुयोगद्वार ज्ञातव्य हैं यह इस सूत्रका अभिप्राय है । उनमेंसे समुत्कीर्तनासे लेकर अल्पबहुत्व तक चौबीस अनुयोगद्वार हैं, क्योंकि इनमें देशामर्षकभावसे भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र, स्पर्शन और भावानुगमका संग्रह हो जाता है । इस प्रकार ये चौबीस अनुयोगद्वार सामान्यरूपसे सूत्रमें कहे गये हैं । इनमेंसे सर्वसंक्रम, नोसर्वसंक्रम, उत्कृष्टसंक्रम, अनुत्कृष्टसंक्रम, जघन्यसंक्रम, अजघन्यसंक्रम और सन्निकर्ष ये सात अनुयोगद्वार यहाँ सम्भव नहीं हैं, क्योंकि प्रकृतिस्थानसंक्रमके विवक्षित रहते हुए उक्त अनुयोगद्वारोंका पाया जाना सम्भव नहीं है । इसलिये यहाँ पर शेष सत्रह अनुयोगद्वारोंको ग्रहण करना चाहिये । तथा इनसे अतिरिक्त भुजगार आदि जो तीन अनुयोगद्वार हैं जो कि सूत्रनिर्दिष्ट हैं उनको ग्रहण करना चाहिये । अब इस प्रकार कहे गये सब अनुयोगद्वारोंके द्वारा गाथासूत्रोंके अर्थका विशेष व्याख्यान करनेकी इच्छासे चूर्णिसूत्रकार पहले उन अनुयोगद्वारोंमेंसे स्थानसमुत्कीर्तनाका कथन करनेके लिये आगेके प्रबन्धका निर्देश करते हैं—

*** अब 'स्थानसमुत्कीर्तना' पदका विशेष व्याख्यान करते हैं जिसमें एक गाथा निबद्ध है ।**

---

१. ता०-आ०प्रत्योः भुजगारो अप्पदरो अवट्ठिदो अवत्तव्वओ पदणिक्खेवो इति पाठः ।

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

§ २१५. पुव्वुत्ताणमणियोगद्दाराणमादिम्मि जं पदं ठविदं ठाणसमुक्कित्तणा त्ति तस्स विहासा कीरदि त्ति सुत्तत्थसंबंधो। तत्थ य एगा गाहा पडिबद्धा त्ति जाणावणट्ठं 'जत्थ एया गाहा' पडिबद्धा त्ति भणिदं। संपहि का सा गाहा त्ति आसंकाए इदमाह—

अट्ठावीस चउवीस सत्तरस सोलसेव पण्णरसा।
एदे खलु मोत्तूणं सेसाणं संकमो होइ ॥२७॥

§ २१६. एसा गाहा ठाणसमुक्कित्तणे पडिबद्धा त्ति उत्तं होइ। संपहि एदिस्से गाहाए अत्थविहासणट्ठमिदमाह—

❀ एवमेदाणि पंच ट्ठाणाणि मोत्तूण सेसाणि तेवीस संकमट्ठाणाणि।

§ २१७. 'एवमेदाणि' त्ति वयणेण गाहासुत्तपुव्वद्धणिद्दिट्ठाणमट्ठावीसादीणं परामरसो कओ। तेसिं संखाविसेसावहारणट्ठं 'पंच ट्ठाणाणि' त्ति उत्तं। ताणि मोत्तूण सेसाणि संकमट्ठाणाणि होंति। तेसिं च संखाणं विसेसणिद्धारणट्ठं 'तेवीस' ग्गहणं कयं। तदो २८, २४, १७, १६, १५ एदाणि पंच ट्ठाणाणि असंकमपाओग्गाणि। सेसाणि सत्तावीसादीणि तेवीस संकमट्ठाणाणि त्ति सिद्धं। तेसिमंकविण्णासो एसो २७, २६, २५, २३, २२, २१, २०, १९, १८, १४, १३, १२, ११, १०, ९, ८, ७, ६, ५, ४, ३, २, १। संपहि एदेसिं ट्ठाणाणं पयडिणिद्देसकरणट्ठमुत्तरसुत्तावयारो कीरदे—

---

§ २१५. पूर्वोक्त अनुयोगद्वारोंके आदिमें जो 'स्थानसमुत्कीर्तना' पद आया है उसका विशेष व्याख्यान करते हैं यह उक्त सूत्रका प्रकरणसंगत अर्थ है। इस विषयमें एक गाथा आई है यह जतानेके लिये सूत्रमें 'जत्थ एया गाहा पडिबद्धा' यह कहा है। अब वह कौनसी गाथा है ऐसी आशंका होने पर उसका निर्देश करते हैं—

'अट्ठाईस, चौबीस, सत्रह, सोलह और पन्द्रह इन पाँच स्थानोंके सिवा शेष तेईस स्थानोंका संक्रम होता है।'

§ २१६. यह गाथा स्थान समुत्कीर्तन अनुयोगद्वारसे सम्बन्ध रखती है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। अब इस गाथाके अर्थका विशेष व्याख्यान करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

❀ इस प्रकार इन पाँच स्थानोंके सिवा शेष तेईस संक्रमस्थान हैं।

§ २१७. चूर्णिसूत्रमें जो 'एवमेदाणि' पद आया है सो इस पदके द्वारा गाथासूत्रके पूर्वार्धमें बतलाये गये अट्ठाईस आदि स्थानोंका निर्देश किया है। उनकी संख्याविशेषका निश्चय करनेके लिये 'पंच ट्ठाणाणि' यह कहा है। इनके सिवा शेष संक्रमस्थान हैं। उनकी संख्याविशेषका निश्चय करनेके लिये 'तेईस' पदको ग्रहण किया है। इसलिये २८, २४, १७, १६ और १५ ये पाँच स्थान संक्रमके अयोग्य हैं और शेष २७ आदि तेईस संक्रमस्थान हैं यह बात सिद्ध होती है। उनका अंकविन्यास इस प्रकार है—२७, २६, २५, २३, २२, २१, २०, १९, १८, १४, १३, १२, ११, १०, ९, ८, ७, ६, ५, ४, ३, २, और १। अब इन स्थानोंकी प्रकृतियोंका निर्देश करनेके लिये

---

१. ता०प्रतौ अद्ध (त्थ)- इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

❀ एत्थ पयडिणिद्देसो कायव्वो ।

§ २१८. एदेसु अणंतरणिद्दिट्ठसंकमासंकमट्ठाणेसु एदाहिं पयडीहिं एदं ठाणं होइ त्ति जाणावणणिमित्तं पयडिणिद्देसो कायव्वो त्ति भणिदं होइ । तत्थ ताव अट्ठावीस-पयडिट्ठाणस्स पयडिणिद्देसो सुबोहो त्ति कादूण तदसंकमपाओग्गत्ते कारणगवेसणट्ठं पुच्छावक्कमाह —

❀ अट्ठावीसं केण कारणेण ण संकमइ ?

§ २१९. सुगममेदमासंकावयणं ।

❀ दंसणमोहणीय-चरित्तमोहणीयाणि एक्केक्कम्मि ण संकमंति ।

§ २२०. कुदो ? सहावदो चेव तेसिमण्णोण्णपडिग्गहसत्तीए अभावादो ।

❀ तदो चरित्तमोहणीयस्स जाओ पयडीओ बज्झंति तत्थ पणुवीसं पि संकमंति ।

§ २२१. समाणजाइयत्तं पडि विसेसाभावादो । अबज्झमाणियासु किं कारणं णत्थि संकमो ? ण, तत्थ पडिग्गहसत्तीए अभावादो ।

❀ दंसणमोहणीयस्स उक्कस्सेण दो पयडीओ संकमंति ।

आगेका सूत्र कहते हैं—

* यहाँ पर प्रकृतियोंका निर्देश करना चाहिये ।

§ २१८. ये जो समनन्तरपूर्व संक्रमस्थान और असंक्रमस्थान बतला आये हैं उनमेंसे इस स्थानकी इतनी प्रकृतियां होती हैं यह जतानेके लिये प्रकृतियोंका निर्देश करना चाहिये यह उक्त सूत्रका तात्पर्य है । उसमें भी अट्ठाईस प्रकृतिक स्थानकी प्रकृतियोंका निर्देश सुगम है ऐसा मान कर वह स्थान संक्रमके अयोग्य क्यों है इसके कारणका विचार करनेके लिये पृच्छासूत्र कहते हैं—

* अट्ठाईस प्रकृतिक स्थान किस कारणसे संक्रमित नहीं होता ।

§ २१९. यह आशंका सूत्र सुगम है ।

* क्योंकि दर्शनमोहनीय और चारित्रमोहनीय ये परस्परमें संक्रम नहीं करतीं ।

§ २२०. क्योंकि स्वभावसे ही इनमें परस्पर प्रतिग्रहरूप शक्ति नहीं पाई जाती है ।

* इसलिये चारित्रमोहनीयकी जितनी प्रकृतियाँ बंधती हैं उनमें पच्चीस प्रकृतियाँका ही संक्रमित होती हैं ।

§ २२१. क्योंकि एक जातिकी अपेक्षा उनमें कोई भेद नहीं है ।

शंका—नहीं बंधनेवाली प्रकृतियोंमें संक्रम क्यों नहीं होता ?

समाधान—नहीं क्योंकि उनमें प्रतिग्रहरूप शक्ति नहीं पाई जाती ।

* तथा दर्शनमोहनीयकी अधिकसे अधिक दो प्रकृतियाँ संक्रमित होती हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ २२२. किं कारणं ? अट्ठावीससंतकम्मियमिच्छाइट्ठिम्मि मिच्छत्तपडिग्गहेण सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं संकंतिदंसणादो ।

*** एदेण कारणेण अट्ठावीसाए णत्थि संकमो ।**

§ २२३. जेण कारणेण तिण्हं दंसणमोहपयडीणमक्कमेण संकमसंभवो णत्थि तेण कारणेण अट्ठावीसाए संकमो णत्थि त्ति भणिदं होइ ।

§ २२४. एवमेत्तिएण पबंधेण अट्ठावीसपयडिट्ठाणस्स असंकमपाओग्गत्ते कारणं परूविय संपहि सत्तावीसपयडिसंकमट्ठाणस्स पयडिणिद्देसविहासणट्ठमिदमाह—

*** सत्तावीसाए काओ पयडीओ ।**

§ २२५. सुगममेदं पुच्छासुत्तं ।

*** पणुवीसं चरित्तमोहणीयाओ दोण्णि दंसणमोहणीयाओ ।**

§ २२२. क्योंकि अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाले मिथ्यादृष्टिके मिथ्यात्व प्रकृति प्रतिग्रहरूप रहती है, उसमें सम्यक्त्व तथा सम्यग्मिथ्यात्व इन दो प्रकृतियोंका ही संक्रम पाया जाता है। तथा सम्यग्दृष्टिके भी मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वका ही संक्रम देखा जाता है। आशय यह है कि दर्शनमोहनीयकी तीन प्रकृतियोंका एक साथ संक्रम नहीं होता किन्तु अधिकसे अधिक दो प्रकृतियोंका ही संक्रम पाया जाता है।

*** इस कारणसे अट्ठाईस प्रकृतिक स्थानका संक्रम नहीं होता ।**

§ २२३. यतः दर्शनमोहनीयकी तीन प्रकृतियोंका युगपत् संक्रम होना सम्भव नहीं है अतः अट्ठाईस प्रकृतिक स्थानका संक्रम नहीं होता यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

विशेषार्थ—मोहनीयकी अट्ठाईस प्रकृतियां मुख्यतया दर्शमोहनीय और चारित्रमोहनीय इन दो भागोंमें बटी हुई हैं। इनमेंसे दर्शनमोहनीयके तीन और चारित्रमोहनीयके पच्चीस भेद हैं। ऐसा नियम है कि दर्शमोहनीयका चारित्रमोहनीयमें और चारित्रमोहनीयका दर्शनमोहनीयमें संक्रम नहीं होता, क्योंकि इनकी एक जाति नहीं है। तथापि जिस समय चारित्रमोहनीयकी जितनी प्रकृतियाँ बंधती हैं उनमें उसकी सब प्रकृतियोंका तो संक्रम बन जाता है किन्तु दर्शनमोहकी अपेक्षा एक साथ दो प्रकृतियोंसे अधिकका संक्रम नहीं होता, क्योंकि मिथ्यात्व गुणस्थानमें मिथ्यात्व प्रकृति प्रतिग्रहरूप रहती है, वहाँ उसका संक्रम सम्भव नहीं और सम्यग्दृष्टिके सम्यक्त्व प्रकृति प्रतिग्रहरूप रहती है, वहां उसका संक्रम सम्भव नहीं है। इसीसे प्रकृतमें अट्ठाईस प्रकृतिक संक्रमस्थान नहीं होता यह बतलाया है।

§ २२४. इस प्रकार इतने प्रबन्धके द्वारा अट्ठाईस प्रकृतिक स्थान संक्रमके अयोग्य है इसका कारण कह कर अब सत्ताईस प्रकृतिक संक्रमस्थानकी प्रकृतियोंका विधान करनेके लिये यह सूत्र कहते हैं—

*** सत्ताईस प्रकृतिक स्थानकी कौनसी प्रकृतियाँ हैं ?**

§ २२५. यह पृच्छासूत्र सुगम है।

*** चारित्रमोहनीयकी पच्चीस और दर्शनमोहनीयकी दो ये सत्ताईस प्रकृतियाँ हैं ।**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ २२६. सोलसकसाय-णवणोकसायभेएण पणुवीसं चरित्तमोहणीयपयडीओ सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तसण्णिदाओ मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्तसण्णिदाओ वा दोण्णि दंसण-मोहणीयपयडीओ च घेत्तूण सत्तावीसाए संकमट्ठाणमुप्पज्जदि त्ति भणिदं होइ।

*** छब्बीसाए सम्मत्ते उव्वेल्लिदे।**

§ २२७. सत्तावीससंकामयमिच्छाइट्ठिणा सम्मत्ते उव्वेल्लिदे संते सेसछब्बीस-पयडिसमुदायप्पयमेदं संकमट्ठाणमुप्पज्जइ त्ति सुत्तत्थो। पयारंतरेणावि तप्पदुप्पायणट्ठ-मुत्तरो सुत्तावयारो—

*** अहवा पढमसमयसम्मत्ते उप्पाइदे।**

§ २२८. पढमसमयविसेसिदं सम्मत्तं पढमसमयसम्मत्तं। तम्मि उप्पाइदे पयदसंकमट्ठाणमुप्पज्जइ, तत्थ सम्मामिच्छत्तस्स संकमाभावादो। तं कधं ? छब्बीस-संतकम्मियमिच्छाइट्ठिस्स पढमसम्मत्तुप्पायणसमए मिच्छत्तकम्मं सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त-सरूवेण परिणमइ, ण तम्मि समए सम्मामिच्छत्तस्स संकमसंभवो, पुव्वमणुप्पण्णस्स ताधे चेव उप्पज्जमाणस्स तप्परिणामविरोहादो संतुप्पायणे वावदस्स जीवस्स संकामण-

---

§ २२६. सोलह कषाय और नौ नोकषायोंके भेदसे चारित्रमोहनीयकी पच्चीस प्रकृतियाँ तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व या मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व ये दो दर्शनमोहनीयकी प्रकृतियाँ मिलाकर सत्ताईस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है यह उक्त सूत्रका तात्पर्य है।

*** इन सत्ताईसमेंसे सम्यक्त्वकी उद्वेलना होने पर छब्बीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है।**

§ २२७. सत्ताईस प्रकृतियोंके संक्रामक मिथ्यादृष्टि जीवके द्वारा सम्यक्त्वकी उद्वेलना कर लेने पर शेष छब्बीस प्रकृतियोंका समुदायरूप संक्रमस्थान उत्पन्न होता है यह उक्त सूत्रका अर्थ है। अब प्रकारान्तरसे उक्त स्थानके उत्पन्न करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

*** अथवा सम्यक्त्वके उत्पन्न करनेके प्रथम समयमें छब्बीस प्रकृतिक संक्रम-स्थान होता है।**

§ २२८. सूत्रमें 'प्रथम समय' पद सम्यक्त्वका विशेषण है और 'सम्यक्त्व' विशेष्य है। इसलिये इस सूत्रका यह आशय है कि प्रथम समयसे युक्त सम्यग्दर्शनके उत्पन्न होने पर अर्थात् सम्यग्दर्शनके उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें प्रकृत संक्रमस्थान उत्पन्न होता है, क्योंकि वहाँ सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रम नहीं होता।

शंका—सो कैसे ?

समाधान—छब्बीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो मिथ्यादृष्टि जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्वको उत्पन्न करता है उसके प्रथमोपशम सम्यक्त्वके उत्पन्न करनेके प्रथम समयमें मिथ्यात्व कर्म सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वरूपसे परिणमन करता है। इसलिये उस समय सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रम सम्भव नहीं है, क्योंकि जो प्रकृति पहले न उत्पन्न होकर उसी समय उत्पन्न हो रही है उसका उसी समय संक्रमरूप परिणमन माननेमें विरोध आता है। दूसरे जो जीव सत्ताके उत्पन्न करनेमें लगा हुआ है उसके उसी समय संक्रमकरणकी प्रवृत्ति माननेमें विरोध आता है, इसलिये

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करणवावारविरोहादो च । तम्हा छव्वीससंतकम्मियस्स पणुवीससंकमट्ठाणे सम्मत्तुप्पत्ति-पढमसमए मिच्छत्तस्स संकमपाओग्गत्तसिद्धीएं छव्वीससंकमट्ठाणसंभवो त्ति सिद्धं ।

❀ पणुवीसाए सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तेहि विणा सेसाओ ।

§ २२९. पणुवीसाए संकमट्ठाणस्स काओ पयडीओ त्ति आसंकिय सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तेहि विणा सेसाओ होंति त्ति उत्तं । सेसं सुगमं ।

❀ चउवीसाए किं कारणं णत्थि ।

§ २३०. एत्थ संकमो त्ति पयरणवसेणाहिसंबंधो कायव्वो । सेसं सुगमं ।

छब्बीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले मिथ्यादृष्टिके पच्चीस प्रकृतिक संक्रमस्थानके रहते हुए जब वह सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके प्रथम समयमें मिथ्यात्वको संक्रमके योग्य कर लेता है तब उसके छब्बीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है यह सिद्ध हुआ ।

विशेषार्थ—यहाँ छब्बीस प्रकृतिक संक्रमस्थान दो प्रकारसे बतलाया है । प्रथम प्रकारमें सोलह कषाय, नौ नोकषाय तथा सम्यग्मिथ्यात्व ये छब्बीस प्रकृतियां ली हैं । यह संक्रमस्थान सम्यक्त्वकी उद्वेलनाके बाद मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें प्राप्त होता है । यद्यपि यहां सत्ताईस प्रकृतियोंकी सत्ता है तथापि यहां मिथ्यात्वका संक्रम सम्भव नहीं, इसलिये संक्रमस्थान छब्बीस प्रकृतिक ही होता है । दूसरे प्रकारमें सोलह कषाय, नौ नोकषाय और मिथ्यात्व ये छब्बीस प्रकृतियां ली हैं । यह संक्रमस्थान जो छब्बीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव प्रथमोपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करता है उसके प्रथम समयमें होता है । यद्यपि यहां सत्ता अट्ठाईस प्रकृतियोंकी हो जाती है, तथापि यहां प्रथम समयमें सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रम नहीं होता, इसलिये यहां भी छब्बीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

*** पच्चीस प्रकृतिक संक्रमस्थानमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके विना शेष सब प्रकृतियाँ हैं ।**

§ २२९. पच्चीस प्रकृतिक संक्रमस्थानकी कौनसी प्रकृतियां हैं ऐसी आशंका करके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके विना शेष सब प्रकृतियां हैं यह कहा है । शेष कथन सुगम है ।

विशेषार्थ—पहले यह बतला आये हैं कि सत्ताईस प्रकृतिक संक्रमस्थानमें चारित्रमोहनीयकी पच्चीस तथा दर्शनमोहनीयकी दो ये सत्ताईस प्रकृतियाँ होती हैं । उनमेंसे दर्शनमोहनीयकी दो प्रकृतियाँ निकाल लेने पर पच्चीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है । तथापि वे दो प्रकृतियाँ कौनसी हैं जो सत्ताईस प्रकृतियोंमेंसे निकाली गई हैं । यह एक प्रश्न है । जिसका उत्तर देते हुए चूर्णिसूत्रमें यह बतलाया है कि वे दो प्रकृतियाँ सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व हैं । जिन्हें निकाल देने पर पच्चीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है । आशय यह है कि मिथ्यादृष्टि जीवके जब सम्यग्मिथ्यात्वकी भी उद्वेलना हो जाती है तब यह पच्चीस प्रकृतिक संक्रमस्थान प्राप्त होता है । या अनादि मिथ्यादृष्टिके भी मिथ्यात्वके बिना यह संक्रमस्थान होता है ।

*** चौबीस प्रकृतिक स्थानका किस कारणसे संक्रम नहीं होता ।**

§ २३०. इस सूत्रमें प्रकरणवश 'संक्रम' इस पदका सम्बन्ध कर लेना चाहिये । शेष कथन सुगम है ।

---

१. ता० प्रतौ पाओग्गत्ता सिद्धीए इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

❀ अणंताणुबंधिणो सव्वे अवणिज्जंति ।

§ २३१. जेण कारणेण अणंताणुबंधिणो सव्वे जुगवमवणिज्जंति तेण चउवीसाए पयडिट्ठाणस्स संकमो णत्थि त्ति सुत्तत्थसंबंधो । तेसिमक्कमेणावणयणे चउवीससंतकम्मं होदूण तेवीससंकमट्ठाणमेवुप्पज्जदि त्ति भावत्थो ।

❀ एदेण कारणेण चउवीसाए णत्थि ।

§ २३२. एदेणाणंतरपरूविदेण कारणेण चउवीसाए णत्थि संकमो त्ति भणिदं होइ ।

❀ तेवीसाए अणंताणुबंधीसु अवगदेसु ।

§ २३३. अणंताणुबंधीसु विसंजोइदेसु इगिवीसकसाय-दोदंसणमोहणीयपयडीओ घेत्तूण तेवीससंकमट्ठाणं होदि त्ति सुत्तत्थो ।

❀ वावीसाए मिच्छत्ते खविदे सम्मामिच्छत्ते सेसे ।

※ क्योंकि सब अनन्तानुबन्धियाँ निकल जाती हैं ।

§ २३१. यतः सब अनन्तानुबन्धियाँ युगपत् निकल जाती हैं अतः चौबीस प्रकृतिक स्थानका संक्रम नहीं होता यह इस सूत्रका तात्पर्य है । उन चार अनन्तानुबन्धियोंके एक साथ निकल जाने पर चौबीस प्रकृतिक सत्कर्मस्थान होकर संक्रमस्थान तेईसप्रकृतिक ही उत्पन्न होता है यह उक्त कथनका भावार्थ है ।

※ इस कारणसे चौबीस प्रकृतिक स्थानका संक्रम नहीं होता ।

§ २३२. यह जो अनन्तरपूर्व कारण कह आये हैं उससे चौबीस प्रकृतिक स्थानका संक्रम नहीं होता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

विशेषार्थ—चौबीस प्रकृतिकस्थान चार अनन्तानुबन्धियोंकी विसंयोजना होने पर ही प्राप्त होता है अन्य प्रकारसे नहीं । किन्तु इन चौबीस प्रकृतियोंमें दर्शनमोहनीयकी तीन प्रकृतियाँ भी सम्मिलित हैं, अतः चौबीस प्रकृतिक संक्रमस्थान नहीं होता यह कहा है ।

※ चार अनन्तानुबन्धियोंके अपगत होने पर तेईस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

§ २३३. अनन्तानुबन्धियोंकी विसंयोजना हो जाने पर इक्कीस कषाय और दो दर्शनमोहनीय इन प्रकृतियोंको लेकर तेईस प्रकृतिकसंक्रमस्थान होता है यह इस सूत्रका अर्थ है ।

विशेषार्थ—आशय यह है कि जब यह जीव चार अनन्तानुबन्धियोंकी विसंयोजना कर लेता है तब चौबीस प्रकृतियोंकी सत्ता और तेईस प्रकृतियोंका संक्रम होता है । यहाँ दर्शनमोहनीयकी दो प्रकृतियोंमेंसे मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व ये दो प्रकृतियाँ संक्रमयोग्य ली गई हैं । किन्तु ऐसे जीवके मिथ्यात्वमें जाने पर सत्ता तो अट्ठाईसकी हो जाती है तथापि संक्रम एक आवलि काल तक तेईसका ही होता रहता है, क्योंकि तब एक आवलि काल तक चार अनन्तानुबन्धियोंका संक्रम नहीं होता ऐसा नियम है । इस अपेक्षासे यहाँ दर्शनमोहनीयकी सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व ये दो प्रकृतियाँ लेनी चाहिये, क्योंकि मिथ्यात्व गुणस्थानमें मिथ्यात्वका संक्रम नहीं होता ऐसा नियम है ।

※ मिथ्यात्वका क्षय हो जाने पर और सम्यग्मिथ्यात्वके शेष रहने पर बाईस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ २३४. तेणेव विसंजोइदाणंताणुबंधीचउक्केण दंसणमोहक्खवणमब्भुट्ठिय मिच्छत्ते खविदे इगिवीसकसाय-सम्मामिच्छत्तपयडीओ घेत्तूणेदं संकमट्ठाणमुप्पज्जइ त्ति उत्तं होइ।

❀ अहवा चउवीसदिसंतकम्मियस्स आणुपुव्वीसंकमे कदे जाव णवुंसयवेदो अणुवसंतो।

§ २३५. 'चउवीससंतकम्मिय' वयणं सेससंतकम्मियपडिसेहफलं, तत्थ पयद-संकमट्ठाणसंभवाभावादो। 'आणुपुव्वीसंकमे कदे' त्ति वयणमणाणुपुव्वीसंकमपडिसेहट्ठं, तस्स पयदविरोहित्तादो। तत्थ वि णवुंसयवेदे अणुवसंते चेव पयदसंकमट्ठाणमुप्पज्जइ त्ति जाणावणट्ठं णवुंसयवेदे अणुवसंते त्ति भणिदं। तम्मि उवसंते पयदसंकमट्ठाणादो हेट्ठिमट्ठाणस्स समुप्पत्तिदंसणादो। ओदरमाणस्स चउवीससंतकम्मियस्स इत्थिवेदे ओकड्डिदे जाव णवुंसयवेदो अणोकड्डिदो ताव पयदट्ठाणसंभवो अत्थि। णवरि सो एत्थ ण विवक्खिओ, चढमाणस्सेव पहाणभावेणावलंबियत्तादो।

---

§ २३४. जिसने अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना की है ऐसा जीव दर्शनमोहनीयकी क्षपणाके लिये उद्यत होकर जब मिथ्यात्वका क्षय कर देता है तब इक्कीस कषाय और सम्यग्मिथ्यात्व इन प्रकृतियोंको लेकर यह संक्रमस्थान उत्पन्न होता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

विशेषार्थ—यद्यपि मिथ्यात्वकी क्षपणाके बाद सत्ता तेईस प्रकृतियोंकी होती है तथापि सम्यग्दृष्टिके सम्यक्त्व संक्रमके अयोग्य होनेसे संक्रम बाईस प्रकृतियोंका ही होता है यह उक्त सूत्रका अभिप्राय है।

※ अथवा चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके आनुपूर्वी संक्रमका प्रारम्भ करने पर जब तक नपुंसकवेदका उपशम नहीं होता है तब तक बाईस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है।

§ २३५. सूत्रमें जो 'चउवीससंतकम्मिय' यह वचन दिया है सो इसका फल शेष सत्कर्म-स्थानोंका निषेध करना है, क्योंकि उनके सद्भावमें प्रकृत संक्रमस्थान नहीं हो सकता है। सूत्रमें 'आणुपुव्वीसंकमे कदे' यह वचन अनानुपूर्वी संक्रमका प्रतिषेध करनेके लिये आया है, क्योंकि वह प्रकृतका विरोधी है। उसमें भी नपुंसकवेदका उपशम न होने पर ही प्रकृत संक्रमस्थान उत्पन्न होता है यह बतानेके लिये 'णवुंसयवेदे अणुवसंते' यह कहा है, क्योंकि नपुंसकवेदका उपशम हो जाने पर प्रकृत संक्रमस्थानसे नीचेके स्थानकी उत्पत्ति देखी जाती है। उपशमश्रेणिसे उतरते समय चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके स्त्रीवेदका अपकर्षण होकर जब तक नपुंसकवेदका अपकर्षण नहीं होता है तब तक प्रकृत स्थान सम्भव है, किन्तु वह यहाँ विवक्षित नहीं है, क्योंकि उपशम-श्रेणि पर चढ़नेवाला जीव ही प्रधानरूपसे यहाँ स्वीकार किया गया है।

विशेषार्थ—उपशमश्रेणिमें यह बाईस प्रकृतिकसंक्रमस्थान दो प्रकारसे बतलाया है। यथा—उपशमश्रेणि पर चढ़ते समय चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जिस जीवने अन्तरकरण करनेके बाद आनुपूर्वी संक्रमका प्रारम्भ कर दिया है उसके जब तक नपुंसकवेदका उपशम नहीं होता है तब तक यह बाईस प्रकृतिक संक्रमस्थान प्राप्त होता है। यद्यपि इस जीवके सत्ता इक्कीस कषाय और तीन दर्शनमोहनीय इन चौबीस प्रकृतियोंकी है तथापि इनमेंसे सम्यक्त्व और संज्वलन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

❀ एक्कवीसाए खीणदंसणमोहणीयस्स अक्खवग-अणुवसामगस्स ।

§ २३६. खीणदंसणमोहणीयस्स अक्खवगाणुवसामगस्स इगिवीससंकमट्ठाणमुप्पज्जइ त्ति सुत्तत्थसंबंधो खवगमुवसामगं च वज्जिययूणण्णत्थ[1] खीणदंसणमोहणीयस्स पयदसंकमट्ठाणसंभवो त्ति भणिदं होइ । किमिदि खवगोवसामगपरिवज्जणं कीरदे ? ण, तत्थाणुपुव्वीसंकमादिवसेण ट्ठाणंतरुप्पत्तिदंसणादो । एत्थ खवगोवसामगववएसो अणियट्टिअद्धाए संखेज्जेसु भागेसु गदेसु संखेज्जदिमे भागे सेसे विवक्खिओ, तत्थेव खवणोवसामणवावारपउत्तिदंसणादो ।

❀ चउवीसदिसंतकम्मियस्स वा णउंसयवेदे उवसंते इत्थिवेदे अणुवसंते ।

लोभ इन दो प्रकृतियोंका संक्रम नहीं होता, अतः यहाँ बाईस प्रकृतिकसंक्रमस्थान प्राप्त होता है। दूसरा प्रकार यह है कि यह जीव उपशमश्रेणिसे उतरता हुआ स्त्रीवेदका अपकर्षण करनेके बाद जब तक नपुंसकवेदका अपकर्षण नहीं करता है तब तक बाईस प्रकृतिकसंक्रमस्थान होता है। यहाँ आनुपूर्वीसंक्रमके न रहनेसे यद्यपि लोभका संक्रम तो होने लगता है पर अभी नपुंसकवेदका संक्रम नहीं प्रारम्भ हुआ है इसलिये बाईस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है। इस प्रकार यद्यपि उपशमश्रेणिमें बाईस प्रकृतिक दो संक्रमस्थान होते हैं तथापि चूर्णिकारने चढ़ते समयके एक संक्रमस्थानका ही निर्देश किया है दूसरेका नहीं। दूसरेका क्यों निर्देश नहीं किया इसका कारण बतलाते हुए टीकामें जो कुछ लिखा है उसका भाव यह है कि उतरते समय जो बाईस प्रकृतिक संक्रमस्थान प्राप्त होता है उसे प्रधान न मानकर उसका उल्लेख नहीं किया है।

* जिसने दर्शनमोहनीयका क्षय कर दिया है किन्तु जो क्षपक या उपशमक नहीं है उसके इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है।

२३६. जिसने दर्शनमोहनीयका क्षय कर दिया है किन्तु जो क्षपक या उपशामक नहीं है उसके इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है यह इस सूत्रका तात्पर्य है। क्षपक या उपशामकको छोड़कर जिसने दर्शनमोहनीयकी क्षपणा कर दी है ऐसे जीवके अन्यत्र प्रकृत संक्रमस्थान सम्भव है यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

शंका—क्षपक और उपशामकका निषेध क्यों किया है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि क्षपक या उपशामकके आनुपूर्वी संक्रम आदिके कारण दूसरे स्थानोंकी उत्पत्ति देखी जाती है।

प्रकृतमें क्षपक और उपशामक यह संज्ञा अनिवृत्तिकरणके कालका बहुभाग व्यतीत होकर एक भाग शेष रहने पर जो जीव स्थित हैं उनकी अपेक्षा विवक्षित है, क्योंकि क्षपणा और उपशामनारूप व्यापारकी प्रवृत्ति वहीं पर देखी जाती है।

* अथवा चौबीस प्रकृतिक सत्कर्मवाले जीवके नपुंसकवेदका उपशम होने पर और स्त्रीवेदका उपशम नहीं होने पर इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है।

१. आ० प्रतौ वज्जियमण्णत्थ इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ २३७. आणुपुव्वीसंकमवसेण लोभस्सासंकामगो होऊण जो ट्ठिओ चउवीस-संतकम्मिओ उवसामओ तस्स वावीससंकमपयडीसु णवुंसयवेदे उवसंते इत्थिवेदे चाणु-वसंते इगिवीससंकमट्ठाणं पयारंतरपडिबद्धमुप्पज्जइ। जेणेदं सुत्तं देसामासियं तेण चउवीससंतकम्मियउवसमसम्माइट्ठिस्स सासणभावं पडिवण्णस्स पढमावलियाए चउवीस-संतकम्मियसम्मामिच्छाइट्ठिस्स वा इगिवीससंकमट्ठाणं पयारंतरपडिग्गहियं होइ त्ति वत्तव्वं, तत्थ पयारंतरपरिहारेण पयदसंकमट्ठाणसिद्धीए णिव्वाहमुवलंभादो। अदो चेय ओदरमाणगस्स वि चउवीससंतकम्मियस्स सत्तसु कम्मेसु ओकड्डिदेसु जाव इत्थि-णवुंसयवेदा उवसंता ताव इगिवीससंतकम्मट्ठाणसंभवो सुत्तंतब्भूदो वक्खाणेयव्वो।

§ २३७. आनुपूर्वी संक्रमके कारण लोभ संज्वलनका संक्रम नहीं करनेवाला जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशामक जीव है उसके बाईस संक्रम प्रकृतियोंमेंसे नपुंसकवेदका उपशम होने पर और स्त्रीवेदका उपशम नहीं होने पर प्रकारान्तरसे इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है। यतः यह सूत्र देशामर्षक है अतः इससे यह भी सूचित होता है कि जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशम सम्यग्दृष्टि जीव सासादन गुणस्थानको प्राप्त होता है उसके पहली आवलि कालके भीतर या चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले सम्यग्मिथ्यादृष्टिके अन्य प्रकारके प्रतिग्रहके साथ यह इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है, क्योंकि वहां पर प्रकारान्तरके परिहार द्वारा प्रकृत संक्रमस्थानकी सिद्धि निर्बाधरूपसे पाई जाती है। तथा इससे सूत्रमें अन्तर्भूत हुए इस स्थानका भी व्याख्यान करना चाहिये कि चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो जीव उपशमश्रेणिसे उतर रहा है उसके सात नोकषाय कर्मोंका अपकर्षण तो हो गया है किन्तु जब तक स्त्रीवेद और नपुंसकवेद उपशान्त हैं तब तक इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थान सम्भव है।

विशेषार्थ—यहां पर इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थान पांच प्रकारसे बतलाया है। यथा—(१) जो क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव जब तक अन्य प्रकृतियोंका क्षय नहीं करता या उपशमश्रेणिमें आनुपूर्वी संक्रमको नहीं प्राप्त होता है तबतक इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है। (२) जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव उपशमश्रेणि पर चढ़ता है उसके नपुंसकवेदका उपशम हो जाने पर जब तक स्त्रीवेदका उपशम नहीं होता तब तक इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है। इस स्थानमें सम्यक्त्व, संज्वलन लोभ और नपुंसकवेदका संक्रम नहीं होता, शेषका होता है। (३) चौबीस प्रकृतियोंकी सत्ता-वाला जो उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सासादन गुणस्थानको प्राप्त होता है उसके एक आवलि कालतक इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है। यहाँ पर तीन दर्शनमोहनीय और चार अनन्तानुबन्धी इन सातका संक्रम नहीं होता। (४) चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो जीव मिश्र गुणस्थानको प्राप्त होता है उसके इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है। इसके अनन्तानुबन्धीचतुष्क तो हैं ही नहीं और तीन दर्शनमोहनीयका संक्रम नहीं होता है। (५) जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव उपशमश्रेणिसे उतर रहा है उसके और सब कर्मोंके अनुपशान्त हो जाने पर भी जब तक स्त्रीवेद और नपुंसकवेद उपशान्त रहते हैं तब तक इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है। इसके भी चार अनन्तानुबन्धियोंका तो सद्भाव ही नहीं है और सम्यक्त्व, स्त्रीवेद तथा नपुंसकवेदका संक्रम नहीं होता है। इस प्रकार ये पाँच प्रकारसे इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थान प्राप्त होते हैं। इनमेंसे प्रारम्भके दो संक्रमस्थानोंका तो चूर्णिसूत्रकारने स्वयं उल्लेख किया है किन्तु शेष तीन संक्रमस्थानोंका नहीं किया है। सो चूर्णिसूत्र देशामर्षक होनेसे सूचित हो जाते हैं ऐसा जानना चाहिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

❀ वीसाए एक्कवीसदिसंतकम्मियस्स आणुपुव्वीसंकमे कदे जाव णवुंसयवेदो अणुवसंतो ।

§ २३८. णवुंसयवेदोवसमो किमट्ठमेत्थ णेच्छिज्जदे ? ण,तम्मिं उवसंते पयद-विरोहिसंकमट्ठाणंतरुप्पत्तिदंसणादो[2] । तदो एक्कारसकसाय-णवणोकसायसमुदायप्पयमेदं संकमट्ठाणमिगिवीससंतकम्मियस्सुवसामगस्स अंतरकरणपढमसमयादो जाव णवुंसय-वेदाणुवसमो ताव होदि त्ति सुत्तत्थसंगहो । ओदरमाणगस्स पुण णवुंसयवेदे उवसंते चेय पयदसंकमट्ठाणसंभवो त्ति एसो वि अत्थो एत्थेव सुत्ते णिलीणो त्ति वक्खाणेयव्वो ।

❀ चउवीसदिसंतकम्मियस्स वा आणुपुव्वीसंकमे कदे इत्थिवेदे उवसंते छसु कम्मेसु अणुवसंतेसु ।

§ २३९. चउवीसदिसंतकम्मंसियस्स[3] वा उवसामगस्स पयदसंकमट्ठाणमुप्पज्जइ त्ति संबंधो । कधंभूदस्स तस्स ? आणुपुव्वीसंकमे कदे णवुंसयवेदोवसामणाणंतरमित्थि-

---

※ इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके आनुपूर्वी संक्रमका प्रारम्भ हो जाने पर जब तक नपुंसकवेदका उपशम नहीं होता तब तक बीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

§ २३८. **शंका**—यहां पर नपुंसकवेदका उपशम क्यों नहीं स्वीकार किया गया है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि उसका उपशम हो जाने पर प्रकृत संक्रमस्थानके विरोधी दूसरे संक्रमस्थानकी उत्पत्ति देखी जाती है, इसलिये यहां नपुंसकवेदका उपशम नहीं स्वीकार किया गया है ।

इसलिए इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक जीवके अन्तरकरण करनेके प्रथम समयसे लेकर जब तक नपुंसकवेदका उपशम नहीं होता है तब तक ग्यारह कषाय और नौ नोकषायोंके समुदायरूप यह बीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है यह इस सूत्रका समुच्चयार्थ है । किन्तु उपशमश्रेणिसे उतरनेवाले जीवके तो नपुंसकवेदके उपशान्त रहते हुए ही प्रकृत संक्रमस्थान सम्भव है इस प्रकार यह अर्थ भी इसी सूत्रमें गर्भित है यह व्याख्यान यहां करना चाहिये ।

※ अथवा चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके आनुपूर्वी संक्रमके बाद स्त्रीवेदका उपशम होकर जब तक छह नोकषायोंका उपशम नहीं हुआ है तब तक बीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

§ २३९. अथवा चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक जीवके प्रकृत संक्रमस्थान उत्पन्न होता है ऐसा यहाँ सम्बन्ध करना चाहिये ।

शंका—यह चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशामक जीव कैसा होना चाहिये जब इसके प्रकृत संक्रमस्थान होता है ?

समाधान—जिसने आनुपूर्वीसंक्रम करके नपुंसकवेदका उपशम करनेके बाद स्त्रीवेदका उपशम तो कर लिया है किन्तु छह नोकषायोंका उपशम कर रहा है उस चौबीस प्रकृतियोंकी

---

१. ता० प्रतौ ण तत्थ (त०) म्मि इति पाठः । २. ता० प्रतौ -ट्ठाणंतरुवलंभदंसणादो । इति पाठः । ३. ता० प्रतौ -कम्मियस्स इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वेदे उवसंते छण्णोकसायाणमुवसामयभावेणावट्ठिदस्स । तत्थ दो दंसणमोहणीयपयडीहिं सह एक्कारसकसाय-सत्तणोकसायाणं संकमपाओग्गाणमुवलंभादो ।

❀ एगुणवीसाए एक्कवीसदिसंतकम्मंसियस्स णवुंसयवेदे उवसंते इत्थिवेदे अणुवसंते ।

§ २४०. इगिवीससंतकम्मियस्सुवसामगस्स लोभाणुपुव्वीसंकमवसेण समासादिद-वीसपयडिसंकमट्ठाणस्स कमेण णवुंसयवेदे उवसंते पयदसंकमट्ठाणमुप्पज्जइ त्ति सुत्तत्थ-संबंधो । ओदरमाणगं पि समस्सियूणेदस्स ट्ठाणस्स संभवो समयाविरोहेणाणुगंतव्वो, सुत्तस्सेदस्स देसामासयत्तादो ।

❀ अट्ठारसण्हमेक्कावीसदिकम्मंसियस्स इत्थिवेदे उवसंते जाव छण्णो-कसाया अणुवसंता ।

§ २४१. तस्सेव इगिवीससंतकम्मंसियस्स अंतरकरणे कदे णवुंसय-इत्थिवेदेसु

सत्तावाले उपशामक जीवके प्रकृत संक्रमस्थान होता है, क्योंकि यहाँ पर संक्रमके योग्य दो दर्शन मोहनीयके साथ ग्यारह कषाय और सात नोकषाय प्रकृतियां पाई जाती हैं ।

विशेषार्थ—यहां पर बीस प्रकृतिक संक्रमस्थान तीन प्रकारसे प्राप्त होता है दो क्षायिक सम्यग्दृष्टिके और एक द्वितीयोपशम सम्यग्दृष्टिके । ये तीनों ही संक्रमस्थान उपशमश्रेणिमें होते हैं । इनका विशेष खुलासा टीकामें ही किया है अतः यहाँ नहीं करते हैं ।

※ इकीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके नपुंसकवेदका उपशम होकर जब तक स्त्रीवेदका उपशम नहीं होता तब तक उन्नीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

§ २४० जिस इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक जीवने लोभसंज्वलनमें होनेवाले आनुपूर्वी संक्रमके कारण बीस प्रकृतिक संक्रमस्थानको प्राप्त कर लिया है उसके क्रमसे नपुंसकवेदके उपशान्त हो जाने पर प्रकृत संक्रमस्थान उत्पन्न होता है यह इस सूत्रका तात्पर्य है । इसी प्रकार उपशमश्रेणिसे उतरनेवाले जीवकी अपेक्षासे भी आगमानुसार इस स्थानको जान लेना चाहिये, क्योंकि यह सूत्र देशामर्षक है ।

विशेषार्थ—यहाँ उन्नीस प्रकृतिक संक्रस्थान दो प्रकारसे बतलाया है । एक तो जो क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव उपशमश्रेणि पर चढ़ रहा है उसके नपुंसकवेदका उपशम हो जाने पर प्राप्त होता है, क्योंकि तब लोभसंज्वलन और नपुंसकवेदका संक्रम नहीं होता है शेषका होता है । दूसरे यह जीव जब उपशमश्रेणिसे उतर कर छह नोकषायोंका तो अपकर्षण कर लेता है किन्तु स्त्रीवेद और नपुंसक वेद उपशान्त ही रहते हैं तब प्राप्त है । इसके स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका संक्रम नहीं होता शेषका होता है । यद्यपि दूसरा प्रकार चूर्णिसूत्रमें नहीं बतलाया है तथापि यह सूत्र देशामर्षक होनेसे इस स्थानका ग्रहण हो जाता है ।

※ इकीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके स्त्रीवेदका उपशम होकर जब तक छह नोकषायोंका उपशम नहीं होता है तब तक अठारह प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

§ २४१. उसी इकीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके अन्तरकरण करनेके बाद नपुंसकवेद

---

१. ता०प्रतौ तदो दंसणमोहपयडीहि इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उवसंतेसु जाव छण्णोकसाया अणुवसंता ताव पयदसंकमट्ठाणमेक्कारसकसाय-सत्तणोकसाय-पडिबद्धमुप्पज्जइ, पुव्वुत्तसंकमपयडीसु इत्थिवेदस्स बहिब्भावादो। एवमिगिवीस-चउवीस-संतकम्मिए अवलंबिय उवसमसेढीपाओग्गाणि संकमट्ठाणाणि वीसादीणि परूविय संपहि सत्तारसादीणं तिण्हमसंकमपाओग्गट्ठाणाणमसंभवे कारणणिद्देसं कुणमाणो उवरिमं पबंधमाह—

❀ सत्तारसण्हं केण कारणेण णत्थि संकमो ?

§ २४२. सत्तारसण्हं पयडीणं संकमपाओग्गभावेण संभवो केण कारणेण णत्थि त्ति पुच्छिदं होइ।

❀ खवगो एक्कावीसादो एक्कपहारेण अट्ठ कसाए अवणेदि।

§ २४३. खवगो ताव एक्कवीससंतकम्मट्ठाणादो एक्कवारेणेव अट्ठ कसाए अवणेइ। एवमवणिदे पयदट्ठाणुप्पत्ती तत्थ णत्थि त्ति भणिदं होइ। संपहि एदस्सेव फुडीकरट्ठ-मुत्तरसुत्तमाह।

❀ तदो अट्ठकसाएसु अवणिदेसु तेरसण्हं संकमो होइ।

§ २४४. जेण कारणेण अट्ठकसाएसु जुगवमवणिदेसु तेरससंकमट्ठाणमुप्पज्जइ तेण खवगमस्सिऊण सत्तारसपयडिट्ठाणस्स णत्थि संभवो त्ति सुत्तत्थसंगहो।

और स्त्रीवेदका उपशम होकर जबतक छह नोकषायोंका उपशम नहीं होता तबतक ग्यारह कषाय और सात नोकषायोंसे सम्बन्ध रखनेवाला प्रकृत संक्रमस्थान उत्पन्न होता है, क्योंकि यहां पर पूर्वोक्त उन्नीस संक्रम प्रकृतियोंमेंसे स्त्रीवेद प्रकृति और कम हो गई है। आशय यह है कि चढ़ते समय पीछे जो उन्नीस प्रकृतिकसंक्रमस्थान बतला आये हैं उसमेंसे स्त्रीवेदके कम कर देने पर अठारह प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है। इस प्रकार इक्कीस और चौबीस प्रकृतिक सत्त्वस्थानोंका आलम्बन लेकर उपशमश्रेणिके योग्य बीस आदि संक्रमस्थानोंका कथन करके अब जो सत्रह आदि तीन संक्रमके अयोग्य स्थान बतलाये हैं उनका संक्रम क्यों सम्भव नहीं है इसके कारणका निर्देश करनेकी इच्छासे आगेके प्रबन्धका निर्देश करते हैं—

*** सत्रह प्रकृतियोंका किस कारणसे संक्रम नहीं होता।**

§ २४२. सत्रह प्रकृतियाँ संक्रमके योग्य क्यों नहीं हैं यह इस सूत्रके द्वारा पूछा गया है।

*** क्योंकि क्षपक जीव इक्कीस प्रकृतियोंमेंसे एक प्रहारके द्वारा आठ कषायोंका अभाव करता है।**

§ २४३. क्षपक तो इक्कीस प्रकृतिक सत्त्वस्थानसे एक बारमें ही आठ कषायोंको निकाल फेंकता है और इस प्रकार निकाल देने पर वहां प्रकृत स्थानकी उत्पत्ति नहीं होती है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। अब इसी बातको स्पष्ट करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

*** इस लिये आठ कषायोंका अभाव कर देने पर तेरहप्रकृतिक संक्रमस्थान होता है।**

§ २४४. यतः आठ कषायोंका एक साथ अभाव कर देने पर तेरह प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है अतः क्षपक जीवकी अपेक्षा सत्रह प्रकृतिकस्थान सम्भव नहीं है यह इस सूत्रका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

❀ उवसामगस्स वि एक्कावीसदिकम्मंसियस्स छसु कम्मेसु उवसंतेसु बारसण्हं संकमो भवदि ।

§ २४५. एक्कवीससंतकम्मियस्सुवसामगस्स वि पयडिट्ठाणसंभवो णत्थि त्ति सुत्तत्थसंबंधो। कुदो ? तस्साणुपुव्वीसंकमवसेण लोभस्सासंकमं कादूण णवुंस-इत्थिवेदे जहाकममुवसामिय अट्ठारससंकामयभावेणावट्ठिदस्स छसु कम्मेसु उवसंतेसु बारसण्हं पयडीणं संकमुवलंभादो ।

❀ चउवीसदिकम्मंसियस्स छसु कम्मेसु उवसंतेसु चोद्दसण्हं संकमो भवदि ।

§ २४६. चउवीससंतकम्मियस्स वि उवसामगस्स पयदट्ठाणसंभवासंका ण कायव्वा, तस्स वि तेवीससंकमट्ठाणादो आणुपुव्वीसंकमादिवसेण बावीस-इगिवीस-वीस-संकमट्ठाणाणि उप्पाइय समवट्ठिदस्स छसु कम्मेसु उवसंतेसु पुरिसवेदेण सह एक्कारस-कसाय-दोदंसणमोहपयडीणं संकमपाओग्गभावेणुप्पत्तिदंसणादो ।

❀ एदेण कारणेण सत्तारसण्हं वा सोलसण्हं वा पण्णारसण्हं वा संकमो णत्थि ।

§ २४७. एदेणाणंतरपरूविदेण कारणेण सत्तारसण्हं पयडीणं संकमो णत्थि । जहा सत्तारसण्हमेवं सोलसण्हं पण्णारसण्हं च पयडीणं णत्थि चेव संकमो, त्तिपुरिस-

---

समुदायार्थ है ।

※ इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामकके भी छह नोकषायोंका उपशम होने पर बारह प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

§ २४५. इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक जीवके भी प्रकृत संक्रमस्थान सम्भव नहीं है यह इस सूत्रका तात्पर्य है, क्योंकि आनुपूर्वी संक्रमके कारण लोभसंज्वलनका संक्रम न करके तथा नपुंसकवेद और स्त्रीवेदका क्रमसे उपशम करके अठारह प्रकृतिक संक्रमस्थानको प्राप्त होकर स्थित हुए इस जीवके छह नोकषायोंके उपशान्त होनेपर बारहप्रकृतिक संक्रमस्थान उपलब्ध होता है।

※ तथा चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक जीवके छह नोकषायोंके उपशान्त होने पर चौदहप्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

§ २४६. जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशामक जीव है उसके भी प्रकृत स्थान सम्भव होगा ऐसी आशंका करना ठीक नहीं है, क्योंकि तेईस प्रकृतिक संक्रमस्थानमेंसे आनुपूर्वी संक्रम आदिके कारण बाईस, इक्कीस और बीस प्रकृतिक संक्रमस्थानोंको उत्पन्न करके अवस्थित हुए उसके क्रमसे छह नोकषायोंके उपशान्त हो जानेपर पुरुषवेदके साथ ग्यारह कषाय और दो दर्शन-मोहनीय इन चौदह प्रकृतियोंकी संक्रमप्रायोग्यरूपसे उत्पत्ति देखी जाती है ।

※ इस कारणसे सत्रह सोलह और पन्द्रह प्रकृतियोंका संक्रम नहीं होता ।

§ २४७. यह जो अनन्तर कारण कह आये हैं उससे सत्रह प्रकृतियोंका संक्रम नहीं होता है। और जिस प्रकार सत्रह प्रकृतियोंका संक्रम नहीं होता उसीप्रकार सोलह और पन्द्रह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संबंधेण गवेसिज्जमाणाणं तेसिं संभवाणुवलंभादो ।

§ २४८. एवं पयदत्थोवसंहारं काऊण संपहि चोद्दससंकमट्ठाणस्स पयडिणिद्देस-मुहेण परूवणट्ठमुत्तरसुत्तं भणइ—

ॐ चोद्दसण्हं चउवीसदिकम्मंसियस्स छसु कम्मेसु उवसामिदेसु पुरिसवेदे अणुवसंते ।

§ २४९. सुगममेदं सुत्तं, अणंतरादीदकारणपरूवणाए गयत्थत्तादो । ओदरमाण-संबंधेण वि पयदट्ठाणसंभवो एत्थाणुमग्गियव्वो ।

प्रकृतियोंका भी संक्रम नहीं होता है, क्योंकि तीन पुरुषों (स्वामियों) के सम्बन्धसे विचार करनेपर उक्त स्थानोंकी संक्रमस्थानरूपसे सम्भावना नहीं उपलब्ध होती ।

विशेषार्थ—यहां सत्रह, सोलह और पन्द्रह प्रकृतिक स्थानोंका संक्रम क्यों नहीं होता है यह बतलाया है जो क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव क्षपकश्रेणीपर चढ़ता है उसके जब आठ कषायोंका क्षय होता है तब इक्कीससे इकदम तेरह प्रकृतिक संक्रम स्थान उत्पन्न होता है, इसलिये तो क्षपक-श्रेणिवाले जीवके ये स्थान सम्भव नहीं होनेसे इनका संक्रम नहीं बनता । उपशमश्रेणिकी अपेक्षा भी यदि इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशमश्रेणि पर चढ़ता है तो पहले वह आनुपूर्वी संक्रमका प्रारम्भ करके २० प्रकृतिक संक्रमस्थान प्राप्त करता है । फिर नपुंसकवेदका उपशम करके १९ प्रकृतिक संक्रमस्थान प्राप्त करता है । फिर स्त्रीवेदका उपशम करके १८ प्रकृतिक संक्रमस्थान प्राप्त करता है । इसके बाद इसके एक साथ छह नोकषायोंका उपशम होनेसे बारह प्रकृतिक संक्रमस्थान प्राप्त होता है इसलिये इसके भी सत्रह, सोलह और पन्द्रह प्रकृतिक संक्रमस्थान सम्भव न होनेसे उनका संक्रम नहीं बनता है । अब रहा चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशामक जीव सो इसके प्रारम्भमें तो तेईस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है, क्योंकि उसके सम्यक्त्वप्रकृतिका संक्रम नहीं होता । फिर आनुपूर्वीसंक्रमका प्रारम्भ होने पर बाईस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है । फिर नपुंसकवेद और स्त्रीवेदका उपशम होने पर क्रमसे इक्कीस और बीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है । इसके बाद इसके भी छह नोकषायोंका एक साथ उपशम होनेके कारण चौदह प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है । इस प्रकार इसके भी सत्रह, सोलह और पन्द्रह प्रकृतिक संक्रमस्थान सम्भव नहीं होनेसे उनका संक्रम नहीं होता है । यही कारण है कि प्रकृतमें इन तीन संक्रमस्थानोंका निषेध किया है ।

§ २४८. इस प्रकार प्रकृत अर्थका उपसंहार करके अब चौदह संक्रमस्थानकी प्रकृतियोंके निर्देश द्वारा कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

*** चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके छह नोकषायोंका उपशम होकर पुरुष वेदका उपशम नहीं होने तक चौदह प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।**

§ २४९. यह सूत्र सुगम है, क्योंकि अनन्तरपूर्व कारणका कथन करते समय इसका विचार कर चुके हैं । उपशमश्रेणिसे उतरनेवाले जीवके सम्बन्धसे भी यहाँ पर प्रकृत स्थानका विचार कर लेना चाहिये ।

विशेषार्थ—यहाँ चौदह प्रकृतिकसंक्रमस्थान दो प्रकारसे बतलाया है । एक चढ़ते समय और दूसरा उतरते समय । चढ़ते समय चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जिस जीवके क्रमसे आनुपूर्वी संक्रमका प्रारम्भ होकर नपुंसकवेदका उपशम, स्त्रीवेदका उपशम और छह नोकषायोंका उपशम हो गया है उसके यह स्थान प्राप्त होता है । तथा उतरते समय अप्रत्याख्यानावरण क्रोध और प्रत्याख्यानावरण

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

❀ तेरसण्हं चउवीसदिकम्मंसियस्स पुरिसवेदे उवसंते कसाएसु अणुवसंतेसु ।

§ २५०. तस्सेव चउवीससंतकम्मियस्स चोद्दससंकामयभावेणावट्ठिदस्स पुव्वुत्त-चोद्दसपयडीसु पुरिसवेदे उवसंते पयदसंकमट्ठाणमुप्पज्जइ, कसायाणमणुवसमे तदुप्पत्तीए विरोहाभावादो । एवं चउवीससंतकम्मियसंबंधेण तेरससंकमट्ठाणमुप्पाइय पयारंतरेणावि तदुप्पायणट्ठमुत्तरसुत्तमाह—

❀ खवगस्स वा अट्ठकसाएसु खविदेसु जाव अणाणुपुव्वीसंकमो ।

§ २५१. इगिवीससंतकम्मादो अट्ठकसाएसु खविदेसु चदुसंजलण-णवणोकसायाणं संकमपाओग्गभावेण परिप्फुडमुवलंभादो । तदो चेव जाव अणाणुपुव्वीसंकमो त्ति उत्तं, आणुपुव्वीसंकमे जादे लोभसंजलणस्स संकमपाओग्गत्तविणासेण ट्ठाणंतरुप्पत्तिदंसणादो ।

क्रोधका अपकर्षण होकर जब तक पुरुषवेद उपशान्त रहता है तब तक यह स्थान होता है। प्रथम प्रकारमें लोभसंज्वलनके सिवा ग्यारह कषाय, पुरुषवेद और दो दर्शनमोहनीय इन चौदह प्रकृतियोंका संक्रम होता रहता है। तथा दूसरे प्रकारमें बारह कषाय और दो दर्शनमोहनीय इन चौदह प्रकृतियोंका संक्रम होता रहता है।

❀ चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके पुरुषवेदके उपशान्त और कषायोंके अनुपशान्त रहते हुए तेरहप्रकृतिक संक्रमस्थान होता है।

§ २५०. चौदह प्रकृतियोंका संक्रम करनेवाले उसी चौबीस प्रकृतिक सत्कर्मवाले जीवके पूर्वोक्त चौदह प्रकृतियोंमेंसे पुरुषवेदके उपशान्त होने पर प्रकृत संक्रमस्थान उत्पन्न होता है, क्योंकि जब तक कषायोंका उपशम नहीं होता तब तक इस स्थानकी उत्पत्ति होनेमें कोई विरोध नहीं आता। इस प्रकार चौबीस प्रकृतिक सत्त्वस्थानके सम्बन्धसे तेरह प्रकृतिक संक्रमस्थानको उत्पन्न करके प्रकारान्तरसे भी उस स्थानको उत्पन्न करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

❀ तथा क्षपक जीवके आठ कषायोंका क्षय हो जाने पर जब तक अनानुपूर्वी संक्रमका सद्भाव है तब तक तेरह प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है।

§ २५१. क्षपकके सत्ताको प्राप्त इक्कीस प्रकृतियोंमेंसे आठ कषायोंका क्षय होनेपर संक्रमके योग्य चार संज्वलन और नौ नोकषाय ये तेरह प्रकृतियाँ स्पष्ट रूपसे पाई जाती हैं, इसीलिये जब तक अनानुपूर्वी संक्रम है ऐसा कहा है, क्योंकि आनुपूर्वी संक्रमका प्रारम्भ होनेपर लोभ संज्वलन संक्रमके योग्य नहीं रहनेसे दूसरे संक्रमस्थानकी उत्पत्ति देखी जाती है।

विशेषार्थ—यहांसे तेरह प्रकृतिक संक्रमस्थान दो प्रकारसे उत्पन्न होता है ऐसा बतलाया है—प्रथम उपशमश्रेणिकी अपेक्षा और दूसरा क्षपकश्रेणिकी अपेक्षा। प्रथम स्थान तो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके पुरुषवेदका उपशम होनेपर प्राप्त होता है और दूसरा स्थान आठ कषायोंका क्षय होनेपर प्राप्त होता है। प्रथम प्रकारमें लोभ संज्वलनके सिवा ग्यारह कषाय और दो दर्शनमोहनीय इन तेरह प्रकृतियोंका संक्रम होता रहता है और दूसरे प्रकारमें चार संज्वलन और नौ नोकषाय इन तेरह प्रकृतियोंका संक्रम होता रहता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

❀ बारसण्हं खवगस्स आणुपुव्वीसंकमो[1] आढत्तो जाव णवुंसयवेदो अक्खीणो ।

§ २५२. तस्सेव तेरससंकामयस्स खवगस्स आणुपुव्वीसंकमो आढत्तो जाव णवुंसयवेदो अक्खीणो ताव बारसण्हं संकमट्ठाणं होइ त्ति सुत्तत्थसंगहो ।

❀ एक्कावीसदिकम्मंसियस्स वा छसु कम्मेसु उवसंतेसु पुरिसवेदे अणुवसंते ।

§ २५३. एक्कवीसकम्मंसियस्स वा उवसामयस्स छसु कम्मेसु उवसंतेसु तं चेव संकमट्ठाणमुप्पज्जइ, पुरिसवेदे अणुवसंते तेण सह एक्कारसकसायाणं परिग्गहादो । ओदरमाणगस्स इगिवीससंतकम्मियस्स पयदसंकमट्ठाणसंभवो वत्तव्वो, तिविहे कोहे ओकड्डिदे तदुवलंभादो । चउवीससंतकम्मियस्स बारससंकमट्ठाणसंभवो णत्थि ।

※ क्षपक जीवके आनुपूर्वी संक्रमका प्रारम्भ होकर जब तक नपुंसकवेदका क्षय नहीं होता है तब तक बारह प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

§ २५२. तेरह प्रकृतियोंका संक्रम करनेवाले उसी क्षपक जीवके आनुपूर्वी संक्रमका प्रारम्भ होकर जब तक नपुंसकवेदका क्षय नहीं होता है तब तक बारह प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है यह उक्त सूत्रका समुच्चयार्थ है ।

※ अथवा इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके छह नोकषायोंका उपशम होकर पुरुषवेदके अनुपशान्त रहते हुए बारह प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

§ २५३. अथवा इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक जीवके छह नोकषायोंके उपशान्त हो जानेपर वही संक्रमस्थान उत्पन्न होता है, क्योंकि यहां पुरुषवेदका उपशम नहीं होनेसे उसके साथ संकमके योग्य ग्यारह कषायोंको ग्रहण किया है । इसी प्रकार उतरनेवाले इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके प्रकृत संक्रमस्थानका कथन करना चाहिये, क्योंकि तीन प्रकारके क्रोधका अपकर्षण होने पर उक्त स्थान उपलब्ध होता है । किन्तु चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके बारह प्रकृतिक संक्रमस्थान नहीं प्राप्त होता ।

विशेषार्थ—यहां बारह प्रकृतिक संक्रमस्थान तीन प्रकारसे बतलाया है—प्रथम क्षपक श्रेणिकी अपेक्षा और अन्तके दो उपशमश्रेणिकी अपेक्षा । प्रथम स्थान तो क्षपक जीवके आनुपूर्वी संक्रमका प्रारम्भ होनेके बाद जब तक नपुंसकवेदका क्षय नहीं होता तब तक प्राप्त होता है । दूसरा स्थान क्षायिक सम्यग्दृष्टि उपशामकके चढ़ते समय छह नोकषायोंका उपशम होकर जब तक पुरुषवेद का उपशम नहीं होता तब तक प्राप्त होता है और तीसरा स्थान इसी जीवके उतरते समय तीन प्रकारके क्रोधोंके अपकर्षण होनेके समयसे लेकर जब तक पुरुषवेद उपशान्त रहता है तब तक प्राप्त होता है । प्रथम प्रकारमें चार संज्वलन और नौ नोकषाय इन तेरह प्रकृतियोंकी सत्ता है पर संज्वलन लोभके सिवा संक्रम बारहका होता है । दूसरे प्रकारमें सत्ता तो इक्कीस प्रकृतियोंकी है पर संक्रम संज्वलन लोभके सिवा ग्यारह कषाय और पुरुषवेद इन बारह प्रकृतियोंका होता है । इसी तरह तीसरे प्रकारमें सत्ता तो इक्कीस प्रकृतियोंकी है पर संक्रम बारह कषायका ही होता है ।

1. आ० प्रतौ -संकमादो इति पाठः ।

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

❀ एक्कारसण्हं खवगस्स णउंसयवेदे खविदे इत्थिवेदे अक्खीणे[1] ।

§ २५४. खवगस्स अट्ठकसायक्खवणवावारेण तेरससंकामयभावेणावट्ठिदस्स पुणो आणुपुव्वीसंकमवसेण समुप्पाइदबारससंकमट्ठाणस्स णवुंसयवेदे परिक्खीणे एक्कारस-संकमट्ठाणमुप्पज्जइ, तिसंजलण-अट्ठणोकसायाणं तत्थ संकमदंसणादो ।

❀ अथवा एक्कावीसदिकम्मंसियस्स पुरिसवेदे उवसंते अणुवसंतेसु कसाएसु ।

§ २५५. कुदो ? एक्कारसकसायाणं परिप्फुडमेव तत्थसंकतिदंसणादो ।

❀ चउवीसदिकम्मंसियस्स वा दुविहे कोहे उवसंते कोहसंजलणे अणुवसंते ।

§ २५६. चउवीसदिकम्मंसियस्स वा णिरुद्धसंकमट्ठाणमुप्पज्जइ । कुदो ? पुव्वुत्त-विहाणेण तेरससंकामयभावेणावट्ठिदस्स तस्स दुविहकोहोवसमे संते कोहसंजलणेण सह एक्कारसपयडीणं संकमोवलंभादो । ओदरमाणसंबंधेण वि पयदसंकमट्ठाणसंभवो वत्तव्वो, सुत्तस्सेदस्स देसामासियभावेणावट्ठाणादो ।

यहां तीसरा स्थान चूर्णिसूत्रकारने नहीं कहा है सो चूर्णिसूत्रको देशामर्षक मानकर उसका स्वीकार करना चाहिये ।

*** क्षपक जीवके नपुंसकवेदका क्षय होकर स्त्रीवेदका क्षय नहीं होने पर ग्यारह प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।**

§ २५४. जिस क्षपक जीवने आठ कषायोंका क्षय करके तेरह प्रकृतिक संक्रमस्थान प्राप्त कर लिया है फिर आनुपूर्वीसंक्रमके कारण बारह प्रकृतिक संक्रमस्थानको उत्पन्न कर लिया है उसके नपुंसकवेदका क्षय होनेपर ग्यारह प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है, क्योंकि यहां तीन संज्वलन और आठ नोकषायोंका संक्रम देखा जाता है ।

*** अथवा इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके पुरुषवेदका उपशम होकर कषायोंके अनुपशान्त रहते हुए ग्यारह प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।**

§ २५५. क्योंकि यहां ग्यारह कषायोंका स्पष्ट रूपसे संक्रम देखा जाता है ।

*** अथवा चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके दो प्रकारके क्रोधोंका उपशम होकर क्रोधसंज्वलनके अनुपशान्त रहते हुए ग्यारह प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।**

§ २५६. अथवा चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके विवक्षित संक्रमस्थान उत्पन्न होता है, क्योंकि पूर्वोक्त विधिसे जो तेरह प्रकृतिक संक्रमभावसे अवस्थित है उसके दो प्रकारके क्रोधोंका उपशम हो जाने पर क्रोध संज्वलनके साथ ग्यारह प्रकृतियोंका संक्रम उपलब्धि होता है । इसी प्रकार उतरनेवाले जीवके सम्बन्धसे भी प्रकृत संक्रमस्थानका कथन करना चाहिये, क्योंकि यह सूत्र देशामर्षकभावसे अवस्थित है ।

विशेषार्थ—यहाँ ग्यारह प्रकृतिक संक्रमस्थान चार प्रकारसे बतलाया है । प्रथम क्षपक श्रेणिकी अपेक्षा और शेष तीन उपशमश्रेणिकी अपेक्षा । क्षपकश्रेणिकी अपेक्षा नपुंसकवेदका

---

१. वी॰प्रतौ णउंसयवेदे अक्खीणे इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

❀ दसण्हं खवगस्स इत्थिवेदे खीणे छसु कम्मंसेसु अक्खीणेसु ।

§ २५७. दसण्हं संकमट्ठाणं खवगस्स होइ त्ति सुत्तत्थसंबंधो । कम्हि अवत्थाए तं होइ त्ति उत्ते इत्थिवेदे खीणे छण्णोकसाएसु अक्खीणेसु होइ त्ति घेत्तव्वं, तत्थ सत्तणोकसाय-संजलणतियस्स संकमोवलंभादो ।

❀ अथवा चउवीसदिकम्मंसियस्स कोधसंजलणे उवसंते सेसेसु कसाएसु अणुवसंतेसु ।

§ २५८. चउवीसदिकम्मंसियस्स दुविहं कोहमुवसामिय एक्कारसपयडीणं संकमसामित्तेणावट्ठिदस्स कोहसंजलणोवसमे जादे पयदसंकमट्ठाणमुप्पज्जइ त्ति सुत्तत्थ-

क्षय होकर जब तक स्त्रीवेदका क्षय नहीं होता तब तक यह संक्रमस्थान होता है। इसके चार संज्वलन और आठ नोकषाय इन बारह प्रकृतियोंकी सत्ता है पर संक्रम संज्वलन लोभके बिना ग्यारह प्रकृतियोंका होता है । उपशमश्रेणिकी अपेक्षा प्रथम प्रकार इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके उपशमश्रेणि पर चढ़ते समय प्राप्त होता है । यह स्थान पुरुषवेदके उपशमके बाद होता है । इसमें संज्वलन लोभके बिना ग्यारह कषायोंका संक्रम होता रहता है। उपशमश्रेणिकी अपेक्षा दूसरा प्रकार चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके उपशमश्रेणिपर चढ़ते समय प्राप्त होता है । यह स्थान अप्रत्याख्यानावरण क्रोध और प्रत्याख्यानावरण क्रोध इन दो प्रकारके क्रोधोंके उपशान्त होने पर प्राप्त होता है । इसमें अप्रत्याख्यानावरण मान, माया, लोभ ये तीन, प्रत्याख्यानावरण मान, माया, लोभ ये तीन संज्वलन क्रोध, मान, माया ये तीन और दर्शनमोहनीयकी दो इस प्रकार इन ग्यारह प्रकृतियोंका संक्रम होता रहता है। चौथा स्थान इसी जीवके उतरते समय संज्वलन क्रोधके उपशान्त रहते हुए प्राप्त होता है । इसके तीनों प्रकारके मान, माया और लोभ ये नौ और दर्शनमोहनीयकी दो इन ग्यारह प्रकृतियोंका संक्रम होता है । इस प्रकार ग्यारह प्रकृतिक संक्रमस्थानके कुल भेद चार होते हैं यह सिद्ध हुआ ।

※ क्षपक जीवके स्त्रीवेदका क्षय होकर छह नोकषायोंका क्षय नहीं होनेपर दस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

§ २५७. दस प्रकृतिक संक्रमस्थान क्षपकके होता है यह इस सूत्रका तात्पर्य है ।

शंका—किस अवस्थाके होने पर वह होता है ?

समाधान—स्त्रीवेदका क्षय होकर छह नोकषायोंके अक्षीण रहते हुए वह होता है ऐसा अर्थ लेना चाहिये, क्योंकि यहाँ सात नोकषाय और तीन संज्वलनोंका संक्रम उपलब्ध होता है ।

※ अथवा चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके क्रोध संज्वलनका उपशम होकर शेष कषायोंके अनुपशान्त रहते हुए दस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

§ २५८. चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो जीव दो प्रकारके क्रोधोंका उपशम कर ग्यारह प्रकृतिक संक्रमस्थानके स्वामीरूपसे अवस्थित है उसके क्रोध संज्वलनका उपशम हो जाने पर प्रकृत संक्रमस्थान उत्पन्न होता है यह इस सूत्रका अभिप्राय है। यहाँ सूत्रमें जो 'सेसकसाएसु

१. ता०प्रतौ पयडिसंकम इति पाठः ।

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

संबंधो । एत्थ सेसकसाएसु अणुवसंतेसु त्ति वयणमट्ठकसाय-दोदंसणमोहपयडीणं गहणट्ठं ।

※ एवएहं एक्कावीसदिकम्मंसियस्स दुविहे कोहे उवसंते कोहसंजलणे अणुवसंते ।

§ २५९. इगिवीससंतकम्मियस्स एक्कावीसपयडिसंकमादो लोभाणुपुव्वी संकमं काऊण कमेण णवणोकसाए उवसामिय एक्कारससंकामयभावेणावट्ठिदस्स पुणो दुविहे कोहे उवसंते पयदसंकमट्ठाणमुप्पज्जइ, कोहसंजलणेण सह तिविहमाण-माया-दुविहलोभ-पयडीणं संकमोवलंभादो । ओदरमाणसंबंधेण वि एत्थ पयदसंकमट्ठाणसंभवो वत्तव्वो, विरोहाभावादो । एत्थ पयारंतरसंभवासंकाणिरायरणट्ठमुत्तरसुत्तमाह—

※ चउवीसदिकम्मंसियस्स खवगस्स च णत्थि ।

अणुवसंतेसु' यह वचन दिया है सो यह आठ कषाय और दो दर्शनमोहनीय इन दस प्रकृतियोंके ग्रहण करनेके लिये दिया है ।

विशेषार्थ—यहाँ दस प्रकृतिक संक्रमस्थान दो प्रकारसे बतलाया है—प्रथम क्षपकश्रेणिकी अपेक्षा और दूसरा उपशमश्रेणिकी अपेक्षा । क्षपकश्रेणिकी अपेक्षा स्त्रीवेदका क्षय करके छह नोकषायों-का क्षय करते समय यह स्थान प्राप्त होता है । इस स्थानमें चार संज्वलन और सात नोकषायोंकी सत्ता पाई जाती है किन्तु संज्वलन लोभके बिना शेष दसका संक्रम होता है । उपशमश्रेणिकी अपेक्षा चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके दूसरा संक्रमस्थान पाया जाता है । यह स्थान जब क्रोधसंज्वलनका उपशम करनेके बाद दो मानोंका उपशम करनेका प्रारम्भ करता है तब प्राप्त होता है । इसके प्रत्याख्यानावरण मान, माया और लोभ ये तीन; अप्रत्याख्यानावरण मान, माया और लोभ ये तीन; संज्वलन मान और माया ये दो तथा दर्शनमोहनीयकी दो इन दस प्रकृतियोंका संक्रम पाया जाता है ।

※ इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके दो प्रकारके क्रोधका उपशम होकर क्रोधसंज्वलनके अनुपशान्त रहते हुए नौ प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

§ २५९. जो इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव इक्कीस प्रकृतियोंके संक्रमके बाद लोभमें आनुपूर्वी संक्रमको प्राप्त करके और क्रमसे नौ नोकषायोंका उपशम करके ग्यारह प्रकृतिक संक्रम-स्थानको प्राप्त होकर स्थित है उसके दो प्रकारके क्रोधका उपशम होने पर प्रकृत संक्रमस्थान उत्पन्न होता है, क्योंकि उसके क्रोधसंज्वलनके साथ तीन प्रकारके मान, तीन प्रकारकी माया और दो प्रकारके लोभ इन नौ प्रकृतियोंका संक्रम उपलब्ध होता है । उपशमश्रेणिसे उतरनेवालेके सम्बन्धसे भी यहाँ पर प्रकृत संक्रमस्थानका कथन करना चाहिये, क्योंकि इसमें कोई विरोध नहीं आता । यहां पर यह नौ प्रकृतिक संक्रमस्थान प्रकारान्तरसे भी सम्भव है क्या इस आशंकाके निवारण करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

※ किन्तु चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक जीवके और क्षपक जीवके यह स्थान नहीं होता ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ २६०. चउवीसदिकम्मंसियस्स ताव पयदसंकमट्ठाणसंभवो णत्थि, कोहसंजलण-मुवसामिय दसण्हं संकामयभावेणावट्ठिदस्स तस्स दुविहे माणे उवसंते तत्तो हेट्ठिम-ट्ठाणुप्पत्तिदंसणादो[1]। खवगस्स वि इत्थिवेदक्खएण दससंकामयस्स छसु कम्मेसु खीणेसु चउण्हं संकमट्ठाणुप्पत्तिदंसणादो णत्थि पयदसंकमट्ठाणसंभवो[2]। तम्हा पुव्वुत्तो चेव तदुप्पत्तिपयारो णाण्णो त्ति सिद्धं।

❀ अट्ठण्हं एक्कावीसदिकम्मंसियस्स तिविहे कोहे उवसंते सेसेसु कसाएसु अणुवसंतेसु।

§ २६१. इगिवीससंतकम्मियस्सुवसामगस्स तिविहकोहोवसमे संते संकमट्ठाणमेद-मुप्पज्जइ, समणंतरपरूविदसंकमपयडीसु कोहसंजलणस्स बहिब्भावदंसणादो।

❀ अहवा चउवीसदिकम्मंसियस्स दुविहे माणे उवसंते माणसंजलणे अणुवसंते।

§ २६०. चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके प्रकृत संक्रमस्थान तो सम्भव नहीं है, क्योंकि क्रोधसंज्वलनका उपशम करके जो दस प्रकृतियोंका संक्रम करता हुआ स्थित है उसके दो प्रकारके मानका उपशम करने पर नौ प्रकृतिक संक्रमस्थानके नीचेके स्थानकी उत्पत्ति देखी जाती है। इसी प्रकार स्त्रीवेदका क्षय हो जाने पर दस प्रकृतियोंका संक्रम करनेवाले क्षपक जीवके भी छह नोकषायोंका क्षय हो जाने पर चार प्रकृतिक संक्रमस्थानकी उत्पत्ति देखी जाती है, इसलिये इनके प्रकृत संक्रमस्थान सम्भव नहीं है। अतः उसके उत्पत्तिका प्रकार पूर्वोक्त ही है अन्य नहीं यह बात सिद्ध होती है।

विशेषार्थ—यहां नौ प्रकृतिक संक्रमस्थान दो प्रकारसे बतलाया है। जो दोनों ही प्रकार उपशमश्रेणिकी अपेक्षासे प्राप्त होते हैं। जब इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके दो प्रकारके क्रोधका उपशम हो जाता है किन्तु क्रोधसंज्वलन अनुपशान्त रहता है तब प्रथम प्रकार प्राप्त होता है। इस स्थानमें क्रोधसंज्वलन, तीन मान, तीन माया और संज्वलन लोभके सिवा शेष दो लोभ इन नौ प्रकृतियोंका संक्रम होता है। दूसरा प्रकार उपशमश्रेणिसे उतरते समय इसी इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके प्राप्त होता है। किन्तु इसके संज्वलन क्रोध उपशान्त रहता है और तीन मान, तीन माया तथा तीन लोभ ये नौ प्रकृतियाँ अनुपशान्त होकर इनका संक्रम होता रहता है। इन दो प्रकारोंको छोड़कर अन्य किसी प्रकारसे इस स्थानकी उत्पत्ति सम्भव नहीं है। स्पष्टीकरण मूलमें किया ही है।

※ इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके तीन प्रकारके क्रोधका उपशम होकर शेष कषायोंके अनुपशान्त रहते हुए आठ प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है।

§ २६१. इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक जीवके तीन प्रकारके क्रोधका उपशम होने पर प्रकृत संक्रमस्थान उत्पन्न होता है, क्योंकि इससे पूर्वके स्थानमें जो संक्रमरूप प्रकृतियां कही हैं उनमेंसे क्रोधसंज्वलनका बहिर्भाव देखा जाता है।

※ अथवा चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके दो प्रकारके मानका उपशम होकर मानसंज्वलनके अनुपशान्त रहते हुए आठ प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है।

१. आ० प्रतौ हेट्ठिमाणुप्पत्तिदंसणादो इति पाठः। २. ता० प्रतौ पयदट्ठाणसंभवो इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ २६२. कोहसंजलणमुवसामिय दसण्हं संकामयत्तेणावट्ठिदस्स तस्स दुविह-माणोवसमे णिरुद्धसंकमट्ठाणुप्पत्तिं[1] पडि विरोहाभावादो । एत्थ वि ओदरमाणसंबंधेण पयदसंकमट्ठाणपरूवणा कायव्वा ।

❀ सत्तण्हं चउवीसदिकम्मंसियस्स तिविहे माणे उवसंते सेसेसु कसाएसु अणुवसंतेसु ।

§ २६३. चउवीसदिकम्मंसियस्से त्ति वयणेण इगिवीसकम्मंसियस्स खवगस्स च पडिसेहो कओ, तत्थ पयदसंकमट्ठाणुप्पत्तीए असंभवादो । तदो चउवीससंतकम्मियस्स तिविहे माणे उवसंते तिविहमाय-दुविहलोह-दंसणमोहपयडीओ घेत्तूण पयदसंकम-ट्ठाणमुप्पज्जइ त्ति घेत्तव्वं ।

---

§ २६२. क्रोधसंज्वलनको उपशमा कर जो दस प्रकृतियोंका संक्रम करते हुए अवस्थित है उसके दो प्रकारके मानका उपशम होने पर प्रकृत संक्रमस्थानकी उत्पत्ति होनेमें कोई विरोध नहीं आता है । यहां पर भी उपशमश्रेणिसे उतरनेवाले जीवके सम्बन्धसे प्रकृत संक्रमस्थानका कथन करना चाहिये ।

विशेषार्थ—यहाँ पर आठ प्रकृतिक संक्रमस्थान तीन प्रकारसे बतलाया गया है । ये तीनों ही संक्रमस्थान उपशमश्रेणिमें प्राप्त होते हैं । उनमेंसे दो चढ़नेवाले जीवोंके प्राप्त होते हैं और एक उतरनेवाले जीवके प्राप्त होता है । चढ़नेवालोंमें पहला इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके और दूसरा चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके होता है । प्रथम स्थान तीनों क्रोधोंके उपशान्त होने पर प्राप्त होता है । इसके तीनों मान, तीनों माया और लोभ संज्वलनके बिना दो लोभ इन आठ प्रकृतियोंका संक्रम होता रहता है । दूसरा स्थान दो प्रकारके मानके उपशान्त होने पर प्राप्त होता है । इसके मान संज्वलन, तीन माया, लोभसंज्वलनके बिना दो लोभ और दो दर्शनमोहनीय इन आठ प्रकृतियोंका संक्रम होता रहता है । इन दो स्थानके सिवा जो तीसरा स्थान उतरनेवालेके प्राप्त होता है सो वह चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके ही प्राप्त होता है । इसके तीन माया, तीन लोभ और दो दर्शनमोहनीय इन आठ प्रकृतियोंका संक्रम होता रहता है ।

※ चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके तीन प्रकारके मानका उपशम होकर शेष कषायोंके अनुपशान्त रहते हुए सात प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।

§ २६३. सूत्रमें 'चउवीसदिकम्मसियस्स' वचन आया है सो इस द्वारा इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामकका और क्षपकका निषेध किया है, क्योंकि उसके प्रकृत संक्रमस्थानकी उत्पत्ति होना असम्भव है । अतः चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके तीन प्रकारका मान उपशान्त होने पर तीन प्रकारकी माया, दो प्रकारका लोभ और दो दर्शनमोहनीय प्रकृतियां इन आठकी अपेक्षा प्रकृत संक्रमस्थान उत्पन्न होता है ऐसा जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—सात प्रकृतिक संक्रमस्थान एक ही प्रकारका है जिसका टीकामें ही खुलासा किया है ।

---

१. ता०प्रतौ णिरुद्धे संकमट्ठाणुप्पत्ति इति पाठः ।

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

❀ छण्हमेक्कावीसदिकम्मंसियस्स दुविहे माणे उवसंते सेसेसु कसाएसु अणुवसंतेसु ।

§ २६४. कुदो ? तत्थ माणसंजलणेण सह तिविहमाय-दुविहलोभाणं संकमदंसणादो। ओयरमाणसंबंधेण वि पयदसंकमट्ठाणमेत्थाणुगंतव्वं ।

❀ पंचण्हमेक्कावीसदिकम्मंसियस्स तिविहे माणे उवसंते सेसकसाएसु अणुवसंतेसु ।

§ २६५. कुदो ? तत्थ तिविहमाय-दुविहलोभाणं संकमदंसणादो ।

❀ अथवा चउवीसदिकम्मंसियस्स दुविहाए मायाए उवसंताए सेसेसु अणुवसंतेसु ।

§ २६६. किं कारणं ? तत्थ मायासंजलणेण सह दुविहलोभ-दोदंसणमोहपयडीणं संकमोवलंभादो ?

*** इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके दो प्रकारके मानका उपशम होकर शेष कषायोंके अनुपशान्त रहते हुए छह प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।**

§ २६४. क्योंकि इस संक्रमस्थानमें मान संज्वलनके साथ तीन प्रकारकी माया और दो प्रकारका लोभ इन छह प्रकृतियोंका संक्रम देखा जाता है । उतरनेवाले जीवके सम्बन्धसे भी यहां पर प्रकृत संक्रमस्थान जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—यहां पर छह प्रकृतिक संक्रमस्थान दो प्रकारसे बतलाया गया है । ये दोनों ही स्थान इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके उपशमश्रेणिमें प्राप्त होते हैं । इनमेंसे पहला चढ़नेवालेके और दूसरा उतरनेवाले जीवके होता है । चढ़नेवालेके तो दो प्रकारके मानका उपशम होने पर होता है । इसके मान संज्वलन, तीन माया और दो लोभ इन छह प्रकृतियोंका संक्रम होता रहता है । तथा उतरनेवालेके मान संज्वलनके उपशान्त रहते हुए ही यह स्थान होता है । इसके तीन माया और तीन लोभ इन छह प्रकृतियोंका संक्रम होने लगता है ।

*** इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके तीन प्रकारके मानका उपशम होकर शेष कषायोंके अनुपशान्त रहते हुए पांच प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।**

§ २६५. क्योंकि यहां पर तीन प्रकारकी माया और दो प्रकारके लोभका संक्रम देखा जाता है ।

*** अथवा चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके दो प्रकारकी मायाका उपशम होकर शेष प्रकृतियोंके अनुपशान्त रहते हुए पांच प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।**

§ २६६. क्योंकि यहां पर माया संज्वलनके साथ दो प्रकारके लोभ और दो दर्शनमोहनीय इन पांच प्रकृतियोंका संक्रम देखा जाता है ।

विशेषार्थ—यहां पर पांच प्रकृतिक संक्रमस्थान दो प्रकारसे बतलाया है । ये दोनों ही स्थान उपशमश्रेणिमें चढ़ते समय प्राप्त होते हैं । पहला स्थान इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावालेके होता है । इसके और सब प्रकृतियोंका तो उपशम हो जाता है किन्तु तीन माया और दो लोभ

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

⊛ चउण्हं खवगस्स छसु कम्मेसु खीणेसु पुरिसवेदे अक्खीणे।

§ २६७. खवगस्स इत्थिवेदक्खयाणंतरमुप्पाइददससंकमट्ठाणस्स पुणो छण्णोकसाएसु खीणेसु पयदसंकमट्ठाणमुप्पज्जइ त्ति सुत्तत्थणिच्छओ।

⊛ अहवा चउवीसदिकम्मंसियस्स तिविहाए मायाए उवसंताए सेसेसु अणुवसंतेसु।

§ २६८. तत्थ दुविहलोह-दोदंसणमोहपयडीणं संकमस्स परिप्फुडमुवलंभादो। एत्थ वि ओदरमाणसंबंधेणेदं संकमट्ठाणमणुमग्गियव्वं।

⊛ तिण्हं खवगस्स पुरिसवेदे खीणे सेसेसु अक्खीणेसु।

बच रहते हैं। संज्वलन लोभका आनुपूर्वी संक्रमके कारण संक्रम नहीं होता। दूसरा स्थान चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावालेके होता है। इसके और सबका उपशम तो हो जाता है किन्तु माया संज्वलन, दो लोभ और दो दर्शनमोहनीय इन पांच प्रकृतियोंका संक्रम होता रहता है। यहां भी संज्वलन लोभका संक्रम नहीं होता।

⁂ क्षपकके छह नोकषायोंका क्षय होकर पुरुषवेदके अक्षीण रहते हुए चार प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है।

§ २६७. स्त्रीवेदके क्षयके बाद जिसने दस प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न कर लिया है ऐसे क्षपक जीवके तदनन्तर छह नोकषायोंका क्षय करने पर प्रकृत संक्रमस्थान उत्पन्न होता है यह इस सूत्रका भाव है।

⁂ अथवा, चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके तीन प्रकारकी मायाका उपशम होकर शेष प्रकृतियोंके अनुपशान्त रहते हुए चार प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है।

§ २६८. क्योंकि यहां पर दो प्रकारके लोभ और दर्शनमोहनीयकी दो प्रकृतियां इन चारका स्पष्टरूपसे संक्रम उपलब्ध होता है। यहां पर भी उतरनेवाले जीवके सम्बन्धसे यह संक्रमस्थान जान लेना चाहिये।

विशेषार्थ—यहां पर चार प्रकृतिक संक्रमस्थान तीन प्रकारसे बतलाया है। एक क्षपकश्रेणिकी अपेक्षा और दो उपशमश्रेणिकी अपेक्षा। उपशमश्रेणिमें भी प्रथम चढ़नेवालेके और दूसरा उतरनेवालेके होता है। क्षपकश्रेणिमें पहला स्थान छह नोकषायोंका क्षय होने पर प्राप्त होता है। इसमें चार संज्वलन और एक पुरुषवेद इन पांचकी सत्ता रहती है किन्तु संक्रम संज्वलन लोभके बिना चारका होता है। दूसरा स्थान चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावालेके होता है। इसमें दो लोभ और दो दर्शनमोहनीय इन चार प्रकृतियोंका संक्रम होता रहता है। संज्वलन लोभका संक्रम नहीं होता। तीसरा स्थान इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके उपशमश्रेणिसे उतरते हुए तीन प्रकारके लोभके साथ संज्वलन मायाके संक्रमित करने पर होता है। उस समय इस जीवके तीन लोभ माया संज्वलन यह चार प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है।

⁂ क्षपक जीवके पुरुषवेदका क्षय होकर शेष प्रकृतियोंके अक्षीण रहते हुए तीन प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ २६९. तत्थ तिण्हं संजलणाणं संकमदंसणादो।

❀ **अथवा एक्कावीसदिकम्मंसियस्स दुविहाए मायाए उवसंताए सेसेसु अणुवसंतेसु।**

§ २७०. तत्थ मायासंजलणेण सह दोण्हं लोहाणं संकमदंसणादो।

❀ **दोण्हं खवगस्स कोहे खविदे सेसेसु अक्खीणेसु।**

§ २७१. माण-मायासंजलणाणं दोण्हं चेव तत्थ संकमदंसणादो।

❀ **अहवा एक्कावीसदिकम्मंसियस्स तिविहाए मायाए उवसंताए सेसेसु अणुवसंतेसु।**

§ २७२. तिविहमायोवसमे दुविहलोहस्सेव तत्थ संकमोवलंभादो।

❀ **अहवा चउवीसदिकम्मंसियस्स दुविहे लोहे उवसंते।**

§ २७३. तस्स दुविहलोहोवसमेण दोदंसणमोहपयडीणं चेव संकमोवलंभादो।

---

§ २६९. क्योंकि यहाँ पर तीन संज्वलनोंका संक्रम देखा जाता है।

※ **अथवा इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके दो प्रकारकी मायाका उपशम होकर शेष प्रकृतियोंके अनुपशान्त रहते हुए तीन प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है।**

§ २७०. क्योंकि यहाँ पर माया संज्वलनके साथ दोनों लोभोंका संक्रम देखा जाता है।

विशेषार्थ—यहाँ पर तीन प्रकृतिक संक्रमस्थान दो प्रकारसे बतलाया है—एक क्षपकश्रेणिकी अपेक्षा और दूसरा उपशमश्रेणिकी अपेक्षा। क्षपकश्रेणिमें जो स्थान प्राप्त होता है वह पुरुषवेदके क्षय होनेपर प्राप्त होता है। यहां यद्यपि सत्ता चारों संज्वलनोंकी है तथापि संक्रम संज्वलन लोभके बिना शेष तीनका होता है। उपशमश्रेणिमें प्राप्त होनेवाला स्थान इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके प्राप्त होता है। यह जीव जब दो प्रकारकी मायाका उपशम कर लेता है तब यह स्थान होता है। इसमें माया संज्वलनका और संज्वलन लोभके सिवा शेष दो लोभोंका संक्रम होता है।

※ **क्षपक जीवके क्रोधका क्षय होकर शेष प्रकृतियोंके अक्षीण रहते हुए दो प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है।**

§ २७१. क्योंकि यहांपर मान और माया इन दो संज्वलन प्रकृतियोंका ही संक्रम देखा जाता है।

※ **अथवा इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके तीन प्रकारकी मायाका उपशम होकर शेष प्रकृतियोंके अनुपशान्त रहते हुए दो प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है।**

§ २७२. क्योंकि यहां पर तीन प्रकारकी मायाका उपशम होने पर दो प्रकारके लोभका ही संक्रम पाया जाता है।

※ **अथवा चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके दो प्रकारके लोभका उपशम होनेपर दो प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है।**

§ २७३. क्योंकि इसके दो प्रकारके लोभका उपशम होकर दर्शनमोहनीयकी दो प्रकृतियोंका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एदं दोदंसणमोहपयडिसंकमट्ठाणं कस्स होइ त्ति आसंकाए इदमाह—

❀ सुहुमसांपराइय-उवसामयस्स वा उवसंतकसायस्स वा ।

§ २७४. सुगमं ।

❀ एक्किस्से संकमो खवगस्स माणे खविदे मायाए अक्खीणाए ।

§ २७५. सुगमं ।

एवं ट्ठाणसमुक्कित्तणाए पयडिणिद्देसो समत्तो ।

एवं पढमगाहाए अत्थो समत्तो ।

§ २७६. संपहि विदियादिगाहाणमत्थो सुगमो त्ति चुण्णिसुत्ते ण परूविदो । तमिदाणिं वत्तइस्सामो—'सोलसय बारसट्ठय० पडिग्गहा होंति ।' एसा विदिया गाहा पयडिट्ठाणपडिग्गहापडिग्गहपरूवणे पडिबद्धा । तं जहा—गाहापुव्वद्धणिद्दिट्ठाणि सोलसादीणि अपडिग्गहट्ठाणाणि णाम १६, १२, ८, २०, २३, २४, २५, २६, २७, २८ । एदाणि मोत्तूण सेसाणि बावीसादीणि एयपयडिपज्जंताणि पडिग्गहठाणाणि होंति । तेसिमंकविण्णासो

संक्रम उपलब्ध होता है । यह दर्शनमोहनीयकी अपेक्षा दो प्रकृतिक संक्रमस्थान किसके होता है ऐसी आशंका होने पर यह आगेका सूत्र कहते हैं—

*** सूक्ष्मसम्पराय उपशामक और उपशान्तकषाय जीवके होता है ।**

§ २७४. यह सूत्र सुगम है ।

विशेषार्थ—यहाँ दो प्रकृतिक संक्रमस्थान तीन प्रकारसे बतलाया है । इनमेंसे अन्तिम संक्रमस्थानका स्वामी सूक्ष्मसम्पराय उपशामक और उपशान्तकषाय जीव है । शेष कथन सुगम है ।

*** क्षपक जीवके मानका क्षय होकर मायाके अक्षीण रहते हुए एक प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ।**

§ २७५. यह सूत्र सुगम है ।

विशेषार्थ—आशय यह है कि उपशमश्रेणिमें एक प्रकृतिक संक्रमस्थान सम्भव नहीं है । वह केवल क्षपकश्रेणिमें ही प्राप्त होता है जिसका निर्देश चूर्णिसूत्रमें किया ही है ।

इस प्रकार स्थानसमुत्कीर्तना अनुयोगद्वारमें प्रकृतियोंके निर्देशका कथन समाप्त हुआ ।

इस प्रकार पहली गाथाका अर्थ समाप्त हुआ ।

§ २७६. द्वितीयादि गाथाओंका अर्थ सुगम होनेसे चूर्णिसूत्रमें नहीं कहा है । उसे इस समय बतलाते हैं—'सोलसय बारसट्ठय० पडिग्गहा होंति' यह दूसरी गाथा है जो प्रकृतिस्थानप्रतिग्रह और प्रकृतिस्थान अप्रतिग्रहके कथन करनेमें प्रतिबद्ध है । यथा—गाथाके पूर्वार्धमें निर्दिष्ट किये गये सोलह आदि अप्रतिग्रहस्थान हैं—१६, १२, ८, २०, २३, २४, २५, २६, २७, और २८ । इन स्थानोंके सिवा शेष बाईससे लेकर एक प्रकृति तक प्रतिग्रहस्थान हैं । उनका अंकविन्यास इस प्रकार है—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एसो—२२, २१, १९, १८, १७, १५, १४, १३, ११, १०, ९, ७, ६, ५, ४, ३, २, १। संपहि एदेसिं पयडिणिद्देसो कीरदे। तं जहा—मिच्छत्त-सोलसक० तिण्हं वेदाणमेक्कदरं हस्स-रदि अरदि-सोग दोण्हं जुगलाणमण्णदरं भय-दुगुंछाओ च एवमेदाओ बावीस-पयडीओ घेत्तूण पढमं पडिग्गहट्ठाणमुप्पज्जइ, अट्ठावीस-सत्तावीसाणमण्णदरसंतकम्मिय-मिच्छाइट्ठिम्मि जहाकमं सत्तावीस-छव्वीसपयडिट्ठाणसंकमस्स तदाहारत्तेण पउत्ति-दंसणादो। तेणेव बावीसबंधगेण सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणि उव्वेल्लिय मिच्छत्तपडिग्गह-वोच्छेदे कदे इगिवीसकसायपयडिपडिबद्धं विदियं पडिग्गहट्ठाणमुप्पज्जइ, एत्थ वि छव्वीससंतकम्मसहगदपणुवीससंकमट्ठाणस्साहारभावदंसणादो। अहवा सासणसम्मा-इट्ठिस्स मिच्छत्तं मोत्तूण सेसपयडीओ बंधमाणस्स पयदपडिग्गहट्ठाणमुप्पज्जइ, तत्थ वि इगिवीसपयडिपडिग्गहपडिबद्धपणुवीस-इगिवीसपयडिट्ठाणसंकमोवलंभादो।

२२, २१, १९, १८, १७, १५, १४, १३, ११, १०, ९, ७, ६, ५, ४, ३, २, और १। अब इन स्थानोंकी प्रकृतियोंका निर्देश करते हैं—मिथ्यात्व, सोलह कषाय, तीन वेदोंमेंसे कोई एक वेद, हास्य-रति या अरति-शोक इन दो युगलोंमेंसे कोई एक युगल, भय और जुगुप्सा इन बाईस प्रकृतियोंका प्रथम प्रतिग्रहस्थान होता है, क्योंकि अट्ठाईस और सत्ताईस इनमेंसे किसी एक स्थानके सत्तावाले मिथ्यादृष्टि जीवके क्रमसे सत्ताईस और छब्बीस प्रकृतिकस्थानके संक्रमके आधाररूपसे इस स्थानकी प्रवृत्ति देखी जाती है। बाईस प्रकृतियोंका बन्ध करनेवाला यही जीव जब सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करके मिथ्यात्व प्रकृतिका प्रतिग्रहरूपसे विच्छेद कर देता है तब कषायोंकी इक्कीस प्रकृतियोंसे सम्बन्ध रखनेवाला दूसरा प्रतिग्रहस्थान उत्पन्न होता है क्योंकि यह स्थान भी छब्बीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले मिथ्यादृष्टि जीवके पच्चीस प्रकृतिक संक्रमस्थानका आधार देखा जाता है। अथवा मिथ्यात्वके सिवा शेष प्रकृतियोंका बन्ध करनेवाले सासादनसम्यग्दृष्टिके प्रकृत प्रतिग्रहस्थान उत्पन्न होता है, क्योंकि यहाँ पर भी इक्कीस प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानसे सम्बन्ध रखनेवाले पच्चीस प्रकृतिकसंक्रमस्थानका और इक्कीसप्रकृतिकसंक्रमस्थानका संक्रम पाया जाता है।

विशेषार्थ—प्रकृतमें दूसरी गाथाके अर्थका खुलासा करते हुए प्रतिग्रहस्थान कितने हैं और अप्रतिग्रहस्थान कितने हैं यह बतलाकर किस प्रतिग्रहस्थानकी कौन कौन प्रकृतियां हैं और उनमेंसे किस प्रतिग्रहस्थानमें किस किस संक्रमस्थानका संक्रम होता है यह बतलाया जा रहा है। प्रतिग्रहका अर्थ स्वीकार करना है और प्रकृतिस्थानका अर्थ प्रकृतियोंका समुदाय है। आशय यह है कि जो प्रकृतियोंका समुदाय संक्रमको प्राप्त हुए कर्मोंको स्वीकार करके अपनेरूप परिणमा लेता है उसे प्रतिग्रहस्थान कहते हैं। इसका दूसरा नाम पतद्ग्रहस्थान भी है सो इससे पड़नेवाले कर्मोंको जो प्रकृतियोंका समुदाय स्वीकार करता है वह पतद्ग्रहस्थान है ऐसा अर्थ लेना चाहिये। प्रकृतमें मोहनीय कर्मकी अपेक्षा १८ प्रतिग्रहस्थान और १० अप्रतिग्रहस्थान बतलाये हैं। ऐसा नियम है कि बँधनेवाली प्रकृतियोंमें ही संक्रम होता है और मोहनीयकी एक साथ अधिकसे अधिक २२ प्रकृतियोंका ही बन्ध होता है अतः सबसे उत्कृष्ट प्रतिग्रहस्थान २२ प्रकृतिक ही हो सकता है। यद्यपि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन दो प्रकृतियोंका बन्ध नहीं होता तथापि ये प्रतिग्रहरूप स्वीकार की गई है। पर इनमें यह योग्यता सम्यग्दृष्टि जीवके सिवा अन्यत्र नहीं पाई जाती ऐसा नियम है। अतः २२ प्रकृतिक स्थानसे ऊपर तो प्रतिग्रहस्थान हो ही नहीं सकते यह सिद्ध होता है इसीसे २३, २४, २५, २६, २७ और २८ ये छह अप्रतिग्रहस्थान बतलाये हैं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ २७७. असंजदसम्मादिट्ठिम्मि एगूणवीसाए पडिग्गहट्ठाणं होइ, तस्स सत्तारस-बंधपयडीसु सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं पडिग्गहत्तेण पवेसदंसणादो। एदम्मि पडिग्गह-ट्ठाणम्मि पडिबद्धसत्तावीस-छव्वीस-तेवीससंकमट्ठाणाणमुवलंभादो। एदेण चेव मिच्छत्तं खविय सम्मामिच्छत्तपडिग्गहे णासिदे अट्ठारसपडिग्गहट्ठाणं होइ, एत्थ वि बावीसपयडि-ट्ठाणसंकमोवलंभादो। पुणो वि एदेण सम्मामिच्छत्तं खइय सम्मत्तपडिग्गहे वि णासिदे सत्तारस०पडिग्गहट्ठाणमुप्पज्जइ, इगिवीसकसायपयडीणमेत्थ संकमंताणमुवलंभादो।

किन्तु इनके अतिरिक्त २०, १६, १२ और ८ ये चार अप्रतिग्रहस्थान और हैं, क्योंकि गुणस्थान भेदसे प्रतिग्रहरूप प्रकृतियोंको जोड़ने पर जैसे अन्य प्रतिग्रहस्थान उत्पन्न हो जाते हैं वैसे ये चार स्थान नहीं उत्पन्न होते। इसीसे इन्हें अप्रतिग्रहस्थान बतलाया है। इन अप्रतिग्रहस्थानोंके सिवा शेष २२, २१, १९, १८, १७, १५, १४, १३, ११, १०, ९, ७, ६, ५, ४, ३, २, और १ ये १८ प्रतिग्रहस्थान हैं। इनमेंसे २२ प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान २८ या २७ प्रकृतियोंकी सत्तावाले मिथ्यादृष्टिके होता है। जो २८ प्रकृतियोंकी सत्तावाला मिथ्यादृष्टि है उसके २२ प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें २७ प्रकृतियोंका संक्रम होता है। मिथ्यात्व गुणस्थानमें मिथ्यात्वप्रकृति संक्रमके अयोग्य है, अतः उसे छोड़ दिया है। तथा जो २७ प्रकृतियोंकी सत्तावाला है उसके भी २२ प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें २६ प्रकृतियोंका संक्रम होता है। २१ प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान २६ प्रकृतियोंकी सत्तावाले मिथ्यादृष्टिके या २८ प्रकृतियोंकी सत्तावाले सासादनसम्यग्दृष्टिके होता है। जो २६ प्रकृतियोंकी सत्तावाला मिथ्यादृष्टि है उसके २१ प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें २५ प्रकृतियोंका संक्रम होता है। मिथ्यादृष्टिके यद्यपि बन्ध तो २२ प्रकृतियोंका ही होता है तथापि उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन दो प्रकृतियोंकी उद्वेलना हो जानेके बाद मिथ्यात्व प्रकृति प्रतिग्रह रूप नहीं रहती, अतः २१ प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान मिथ्यादृष्टिके भी बन जाता है। सासादनसम्यग्दृष्टि जीव दो प्रकारके होते हैं। प्रथम तो वे जो अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना किये बिना उपशमसम्यक्त्वसे च्युत होकर सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुए हैं और दूसरे वे जो अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनाके बाद उपशमसम्यक्त्वसे च्युत होकर सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुए हैं। २८ प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सासादन गुणस्थानको प्राप्त होता है उसके सासादनमें तीन दर्शनमोहनीयके सिवा शेष २५ प्रकृतियोंका संक्रम होता है। तथा जो अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनाके बाद सासादन गुणस्थानको प्राप्त होते हैं उनके सासादनमें एक आवलि काल तक अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भी संक्रम नहीं होता, अतः इसके एक आवलि कालतक तीन दर्शनमोहनीय और चार अनन्तानुबन्धी इन सातके सिवा इक्कीस प्रकृतियोंका संक्रम होता है। इस प्रकार सासादनसम्यग्दृष्टिके २१ प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें २५ प्रकृतियोंका या २१ प्रकृतियोंका संक्रम होता है यह सिद्ध हुआ।

§ २७७. असंयत सम्यग्दृष्टिके उन्नीस प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान होता है, क्योंकि उसके सत्रह बन्ध प्रकृतियोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका प्रतिग्रहरूपसे प्रवेश देखा जाता है। इस प्रतिग्रह स्थानमें सत्ताईस, छब्बीस और तेईस प्रकृतिक संक्रमस्थानोंका संक्रम उपलब्ध होता है। और जब इसी जीवके मिथ्यात्वका नाश होकर सम्यग्मिथ्यात्व प्रतिग्रहप्रकृति नहीं रहती तब अठारह प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान होता है, क्योंकि इसमें भी बाईस प्रकृतिक स्थानका संक्रम उपलब्ध होता है। फिर भी इस जीवके सम्यग्मिथ्यात्वका नाश होकर जब सम्यक्त्व भी प्रतिग्रहप्रकृति नहीं रहती तब सत्रह प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान उत्पन्न होता है, क्योंकि उसमें कषाय और नोकषायकी इक्कीस प्रकृतियोंका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्मामिच्छाइट्ठिम्मि वि एदं पडिग्गहट्ठाणं पणुवीस-इगिवीससंकमट्ठाणपडिबद्धमणुगंतव्वं।

§ २७८. संजदासंजदगुणट्ठाणमस्सियूण पण्णारसपडिग्गहट्ठाणमुप्पज्जदे, तेरसविधं बंधमाणस्स तस्स बंधपयडीसु पुव्वं व सत्तावीस-छव्वीस-तेवीससंकमट्ठाणाणमाहारभावेण सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तपयडीणं पवेसणादो। पुणो इमेण दंसणमोहक्खवणमब्भुट्ठिय

संक्रम उपलब्ध होता है। यह सत्रह प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान सम्यग्मिथ्यादृष्टिके भी जानना चाहिये। किन्तु उसके इसमें पच्चीस और इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थानोंका संक्रम होता है।

विशेषार्थ—अविरतसम्यग्दृष्टिके १९, १८, और १७, प्रकृतिक तीन प्रतिग्रहस्थान होते हैं। दर्शनमोहनीयकी सत्तावाले सम्यग्दृष्टिके मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन दो प्रकृतियोंका संक्रम अवश्य होता है। मिथ्यात्वका संक्रम तो सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्व इन दोनोंमें होता है किन्तु सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रम केवल सम्यक्त्वमें होता है। इस प्रकार सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्त्वरूप इन दो प्रतिग्रहप्रकृतियोंको वहां बँधनेवाली सत्रह प्रकृतियोंमें मिला देनेपर १९ प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान होता है। किन्तु दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका प्रारम्भ करके जब यह जीव मिथ्यात्वका क्षय कर देता है तब सम्यग्मिथ्यात्व प्रतिग्रहप्रकृति नहीं रहती इसलिये १८ प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान होता है। और इसी प्रकार जब यह जीव सम्यग्मिथ्यात्वका क्षय कर देता है तब सम्यक्त्व प्रतिग्रहप्रकृति नहीं रहनेसे १७ प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान होता है। इस प्रकार अविरत सम्यग्दृष्टिके कुल तीन प्रतिग्रहस्थान होते हैं यह बात सिद्ध हुई। अब इसके कितने संक्रमस्थान होते हैं और किन संक्रमस्थानोंका किस प्रतिग्रहस्थानमें संक्रम होता है इसका विचार करते हैं—जो छब्बीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त होता है उसके प्रथम समयमें सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रम न होनेसे छब्बीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है। और द्वितीयादि समयोंमें इसके सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रम होने लगनेसे २७ प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है। इसी प्रकार जब यह जीव अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना करता है तब २३ प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है। ये तीनों संक्रमस्थान उन्नीस प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानके रहते हुए सम्भव हैं, क्योंकि इन स्थानोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्ता आवश्यक है। इसलिये उन्नीस प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें इन तीन स्थानोंका संक्रम होता है यह बात सिद्ध होती है। १८ प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान मिथ्यात्वका क्षय होनेपर ही होता है और मिथ्यात्वका क्षय होनेपर संक्रमस्थान २२ प्रकृतिक पाया जाता है, इसलिये १८ प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें २२ प्रकृतिक स्थानका संक्रम होता है यह बात सिद्ध होती है। १७ प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान सम्यग्मिथ्यात्वका क्षय होनेपर होता है और तब संक्रमस्थान इक्कीसप्रकृतिक पाया जाता है, इसलिये १७ प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें २१ प्रकृतिकस्थानका संक्रम होता है यह बात सिद्ध होती है। इस प्रकार अविरत सम्यग्दृष्टिके प्रतिग्रहस्थान और संक्रमस्थानोंका विचार करके अब सम्यग्मिथ्यादृष्टिके इनका विचार करते हैं—इस गुणस्थानमें दर्शनमोहकी प्रकृतियोंका संक्रम नहीं होता और बन्ध सत्रह प्रकृतियोंका होता है, अतः प्रतिग्रहस्थान एक १७ प्रकृतिक ही पाया जाता है। तथापि सत्ता २८ या २४ प्रकृतियोंकी होनेसे संक्रमस्थान २५ या २१ प्रकृतिक ये दो पाये जाते हैं, क्योंकि २८ या २४ प्रकृतियोंमेंसे दर्शनमोहनीयकी तीन प्रकृतियोंके संक्रम न होनेसे मिश्रगुणस्थानमें संक्रमस्थान २५ या २१ प्रकृतिक ही प्राप्त होते हैं।

§ २७८. संयतासंयत गुणस्थानकी अपेक्षा पन्द्रह प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान उत्पन्न होता है, क्योंकि तेरह प्रकृतियोंका बन्ध करनेवाले संयतासंयतके बन्धप्रकृतियोंमें पूर्ववत् २७, २६ और २३ प्रकृतिक संक्रमस्थानोंके आधाररूपसे सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन दो प्रकृतियोंका प्रवेश और हो जाता है। फिर इसके द्वारा दर्शनमोहनीयकी क्षपणाके लिये उद्यत होकर मिथ्यात्वका

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

मिच्छत्ते खविदे सम्मामिच्छत्तेण विणा चोद्दसपडिग्गहट्ठाणं होदि। एदेणेव सम्मामिच्छत्ते खविदे सम्मत्तेण विणा तेरसपडिग्गहो होइ, जहाकममेदेसु बावीस-इगिवीसपयडीणं संकमदंसणादो ।

§ २७९. पमत्तापमत्ताणमेक्कारस० पडिग्गहो होइ, तब्बंधपयडीसु पुव्वं व सत्तावीस-छव्वीस-तेवीससंकमट्ठाणाणं पडिग्गहभावेण सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं पवेसिदत्तादो। एत्थेव मिच्छत्तं खइय सम्मामिच्छत्तपडिग्गहे णासिदे दसपडिग्गहो होइ। तेणेव सम्मामिच्छत्तं खइय सम्मत्तं पडिग्गहाभावे कदे णवपयडिपडिग्गहट्ठाणं होइ, जहाकममेदेसु बावीस-इगिवीसपयडीणं संकमदंसणादो ।

§ २८०. अपुव्वकरणगुणट्ठाणम्मि एक्कारस वा णव वा तेवीस-इगिवीससंकमणाणमाहारभावेण पडिग्गहा होंति, तत्थ पयारंतासंभवादो ।

क्षय कर देने पर सम्यग्मिथ्यात्वके बिना चौदहप्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान उत्पन्न होता है। और जब यह जीव सम्यग्मिथ्यात्वका भी क्षय कर देता है तब तेरहप्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान होता है, क्योंकि इन दोनों स्थानोंमें क्रमसे २२ और २१ प्रकृतियोंका संक्रम देखा जाता है।

विशेषार्थ—यहां संयतासंयतके प्रतिग्रहस्थान और संक्रमस्थान बतलाते हुए किस प्रतिग्रहस्थानमें किन संक्रमस्थानोंका संक्रम होता है इस बातका निर्देश किया गया है। अविरतसम्यग्दृष्टिके जो संक्रमस्थान बतलाये हैं वे ही संयतासंयतके होते हैं, क्योंकि सत्ता और क्षपणाकी अपेक्षासे इन दोनों गुणस्थानोंमें कोई अन्तर नहीं है। किन्तु बन्धकी अपेक्षासे संयतासंयतके चार प्रकृतियाँ कम हो जाती हैं। अतः १९, १८ और १७ मेंसे ४ प्रकृतियाँ कम करने पर इसके क्रमसे १५, १४ और १३ ये तीन प्रतिग्रहस्थान प्राप्त होते हैं। अब इनमेंसे किसमें कितनी प्रकृतियोंका संक्रम होता है सो यह सब कथन अविरतसम्यग्दृष्टिके संक्रमस्थानोंके स्वामित्वको देखकर घटित कर लेना चाहिये।

§ २७९. प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयतके ग्यारहप्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान होता है, क्योंकि इनकी बन्धप्रकृतियोंमें पूर्ववत् सत्ताईस, छब्बीस और तेईस प्रकृतिक संक्रमस्थानोंका प्रतिग्रहपना पाया जानेके कारण इन बन्धप्रकृतियोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन दो प्रकृतियोंका प्रवेश किया गया है। जब इनके मिथ्यात्वका क्षय होकर सम्यग्मिथ्यात्व प्रतिग्रह प्रकृति नहीं रहती तब दसप्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान होता है। और जब यही जीव सम्यग्मिथ्यात्वका क्षय करके सम्यक्त्वका प्रतिग्रह प्रकृतिरूपसे अभाव कर देता है तब नौप्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान होता है, क्योंकि इन दोनों प्रतिग्रहस्थानोंमें क्रमसे बाईस और इक्कीस प्रकृतियोंका संक्रम देखा जाता है।

विशेषार्थ—संयतासंयतके बँधनेवाली १३ प्रकृतियोंमेंसे ४ प्रकृतियाँ कम होकर इन दो गुणस्थानोंमें ९ प्रकृतियोंका बन्ध होता है, अतः यहाँ ११, १० और ९ प्रकृतिक तीन प्रतिग्रहस्थान प्राप्त होते हैं। शेष कथन सुगम है।

§ २८०. अपूर्वकरण गुणस्थानमें तेईस और इक्कीस प्रकृतियोंके आधारभूत ग्यारह प्रकृतिक या नौ प्रकृतिक ये दो प्रतिग्रहस्थान होते हैं, क्योंकि यहाँ पर और कोई दूसरा प्रकार सम्भव नहीं है।

विशेषार्थ—अपूर्वकरणमें २४ प्रकृतिक या २१ प्रकृतिक ये दो सत्त्वस्थान होते हैं। इसीसे यहाँ २३ प्रकृतिक या २१ प्रकृतिक ये दो संक्रमस्थान और क्रमसे उनके आधारभूत

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ २८१. संपहि उवसमसेढीए चउवीससंतकम्मियमस्सिऊण पडिग्गहट्ठाणाणमुप्पत्तिं वत्तइस्सामो। तं कधं? चउवीससंतकम्मियस्स उवसमसेढिं चढिय अणियट्टिगुणट्ठाणम्मि पंचविहं बंधमाणस्स सत्तपयडिपडिग्गहो होइ, तत्थ चउसंजलण-पुरिसवेद-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तसमूहस्स तेवीस-बावीस-इगिवीससंकमाणं पडिग्गहत्तदंसणादो। एदेणेव णवुंस-इत्थिवेदमुवसामिय पुरिसवेदपडिग्गहवोच्छेदे कदे छप्पयडिपडिग्गहो होइ, चदुसंजलण-दोदंसणमोहपयडीणमेत्थ वीसाए संकमस्साहारभावोवलंभादो। एत्थेव छण्णोकसाय-पुरिसवेदाणं जहाकममुवसमेण चोद्दस-तेरससंकमट्ठाणाणमुवलंभादो च। पुणो वि एदेण दुविहकोहोवसमं काऊण कोहसंजलणपडिग्गहविणासे कए पंचपयडिपडिग्गहट्ठाणमेकारससंकमाहारभूदमुप्पज्जदि। एत्थेव कोहसंजलणोवसममस्सिऊण दससंकमाहारं तं चेव पडिग्गहट्ठाणं होदि। तेणेव दुविहमाणमुवसामिय माणसंजलणपडिग्गहवोच्छेदे कदे चउपयडिपडिबद्धमट्ठपयडिसंकमाहारभूदं पडिग्गहट्ठाणं होइ। एत्थेव माणसंजलणोवसमे कदे सत्तपयडिसंकमपडिबद्धं तं चेव पडिग्गहट्ठाणं होदि। तेणेव दुविहमायोवसमेण मायासंजलणपडिग्गहवोच्छेदे कदे लोभसंजलण-दोदंसणमोहपयडिपडिबद्धं तिण्हं पडिग्गहट्ठाणं पंचपयडिसंकमावेक्खं मायासंजलणोवसमेण चदुपयडि-

११ प्रकृतिक और ९ प्रकृतिक ये दो प्रतिग्रहस्थान बतलाये हैं। यहाँ दर्शनमोहनीयकी क्षपणा न होनेसे १० प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान सम्भव नहीं है।

§ २८१. अब उपशमश्रेणिमें चौबीस प्रकृतिक सत्त्वस्थानकी अपेक्षा प्रतिग्रहस्थानोंकी उत्पत्ति बतलाते हैं। यथा—जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशमश्रेणि पर चढ़कर अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें पाँच प्रकृतियोंका बन्ध करता है उसके सात प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान होता है, क्योंकि वहाँ पर चार संज्वलन, पुरुषवेद, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन सात प्रकृतियोंके समुदायमें तेईस, बाईस और इक्कीस प्रकृतियोंके संक्रमका प्रतिग्रहपना देखा जाता है। तथा जब यही जीव स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका उपशम करके पुरुषवेदकी प्रतिग्रहव्युच्छित्ति कर देता है तब छह प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान होता है, क्योंकि यहांपर चार संज्वलन और दो दर्शनमोहनीय ये छह प्रकृतियां बीस प्रकृतियोंके संक्रमके आधाररूपसे उपलब्ध होती हैं। फिर जब यह जीव इन बीस प्रकृतियोंमेंसे छह नोकषाय और पुरुषवेदको क्रमसे उपशमा देता है तब चौदह और तेरह प्रकृतिक संक्रमस्थान उपलब्ध होते हैं। फिर भी जब यह जीव दो प्रकारके क्रोधको उपशमा देता है तब क्रोधसंज्वलन प्रतिग्रह प्रकृति न रह कर ग्यारह प्रकृतिक संक्रमस्थानका आधारभूत पांच प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान उत्पन्न होता है। फिर यहीं पर क्रोधसंज्वलनका उपशम कर लेनेपर दस प्रकृतिक संक्रमस्थानका आधारभूत वही प्रतिग्रहस्थान होता है। फिर जब यही जीव दो प्रकारके मानका उपशम करके मानसंज्वलनकी प्रतिग्रहव्युच्छित्ति कर देता है तब आठ प्रकृतिक संक्रमस्थानका आधारभूत चार प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान उत्पन्न होता है। फिर यहीं पर मानसंज्वलनका उपशम कर लेनेपर सात प्रकृतिक संक्रमस्थानसे सम्बन्ध रखनेवाला वही प्रतिग्रहस्थान होता है। फिर जब वही जीव दो प्रकारकी मायाका उपशम करके मायासंज्वलनकी प्रतिग्रहव्युच्छित्ति कर देता है तब पांच प्रकृतियोंके संक्रमकी अपेक्षा रखनेवाला या मायासंज्वलनका उपशम हो जानेपर चार प्रकृतियोंके संक्रमकी अपेक्षा रखनेवाला लोभसंज्वलन और दो दर्शनमोहसम्बन्धी तीन प्रकृतिक

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

संकमावेक्खं वा समुवजायदे। एदेणेव दुविहलोहमुवसामिय लोभसंजलणपडिग्गह-बोच्छेदे कदे मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्तसंकमपाओग्गं सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तपडिबद्धं दोण्हं पयडिपडिग्गहट्ठाणमुप्पज्जइ।

§ २८२. संपहि इगिवीससंतकम्मियमस्सिऊणुवसमसेढीए संभवंताणं पडिग्गहट्ठाणाणमुप्पत्ती वुच्चदे। तं कथं? इगिवीससंतकम्मियस्स उवसमसेढिं चढिय अणियट्टिगुणट्ठाणम्मि पंचविहं बंधमाणस्स एक्कावीस-वीस-एगूणवीसपयडिसंकमाहारभूदं पंचपडिग्गहट्ठाणमुप्पज्जइ। पुणो एदेण णवुंस-इत्थिवेदाणमुवसमं काऊण पुरिसवेदपडिग्गहविणासे कए चउण्हं पडिग्गहट्ठाणमट्ठारसपयडिसंकमपडिबद्धमुप्पज्जइ। तेणेव सत्तणोकसाय-दुविहकोहोवसमणवावारेण कोहसंजलणपडिग्गहवोच्छेदे कदे तिण्हं पडिग्गहट्ठाणं णवपयडिसंकमपडिबद्धमुप्पज्जइ। पुणो कोहसंजलणेण सह दुविहमाणोवसमं काऊण माणसंजलणपडिग्गहवोच्छेदे कदे दोण्हं पडिग्गहट्ठाणं छप्पयडिसंकमपडिबद्धमुप्पज्जइ। पुणो माणसंजलण-दुविहमायोवसामणेण मायासंजलणपडिग्गहवोच्छेदे कदे एक्किस्से पडिग्गहट्ठाणं तिण्हं पयडिसंकमट्ठाणपडिबद्धमुप्पज्जइ, मायासंजलणेण सह दुविहलोहस्स लोहसंजलणम्मि ताधे संकतिदंसणादो। एवं खवगस्स वि पंचविहबंधगप्पहुडि उवरिमपडिग्गहट्ठाणाणं समुप्पत्ती वत्तव्वा, जहाकमं तत्थ पंच-चदु-ति-दु-एक्कविधबंधट्ठाणेसु

प्रतिग्रहस्थान उत्पन्न होता है। फिर जब वही जीव दो प्रकारके लोभका उपशम करके लोभसंज्वलनकी प्रतिग्रहव्युच्छित्ति कर देता है तब मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रमके योग्य सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वसम्बन्धी दो प्रकृतिक प्रतिग्रह स्थान उत्पन्न होता है।

§ २८२. अब इक्कीस प्रकृतिक सत्तास्थानकी अपेक्षा उपशमश्रेणिमें सम्भव प्रतिग्रहस्थानोंकी उत्पत्तिका विवेचन करते हैं। यथा—जो इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव उपशमश्रेणिपर चढ़कर अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें पांच प्रकृतिक बन्ध करता है उसके इक्कीस, बीस और उन्नीस प्रकृतिक संक्रमस्थानोंका आधारभूत पांच प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान उत्पन्न होता है। फिर जब यह जीव नपुंसकवेद और स्त्रीवेदका उपशम करके पुरुषवेदकी प्रतिग्रहव्युच्छित्ति करता है तब अठारह प्रकृतिक संक्रमस्थानसे सम्बन्ध रखनेवाला चार प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान उत्पन्न होता है। फिर जब वही जीव सात नोकषाय और दो प्रकारके क्रोधका उपशम करके क्रोधसंज्वलनकी प्रतिग्रहव्युच्छित्ति कर देता है तब उसके नौ प्रकृतिक संक्रमस्थानसे सम्बन्ध रखनेवाला तीन प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान उत्पन्न होता है। फिर जब वही जीव क्रोधसंज्वलनके साथ दो प्रकारके मानका उपशम करके मानसंज्वलनकी प्रतिग्रहव्युच्छित्ति कर देता है तब छह प्रकृतिक संक्रमस्थानसे सम्बन्ध रखनेवाला दो प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान उत्पन्न होता है। फिर जब वही जीव मानसंज्वलन और दो प्रकारकी मायाका उपशम करके मायासंज्वलनकी प्रतिग्रहव्युच्छित्ति कर देता है तब उसके तीन प्रकृतिक संक्रमस्थानसे सम्बन्ध रखनेवाला एक प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान उत्पन्न होता है, क्योंकि तब मायासंज्वलनके साथ दो प्रकारके लोभका लोभसंज्वलनमें संक्रम देखा जाता है। इसीप्रकार क्षपक जीवके भी पांच प्रकारके बन्धस्थानसे लेकर आगेके प्रतिग्रहस्थानोंकी उत्पत्तिका कथन करना चाहिये, क्योंकि वहाँ क्रमसे पांच प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें इक्कीस, तेरह, बारह और ग्यारह प्रकृतिक संक्रम

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

एक्कवीस-तेरस-बारसेक्कारसण्हं दस-चउक्काणं तिण्हं दोण्हमेक्किस्से च संकमट्ठाणस्स संकंतिदंसणादो। एवमेदीए विदियगाहाए पढमगाहापरूविदसंकमट्ठाणाणमाहारभूदाणि पडिग्गहट्ठाणाणि सामण्णेण णिद्दिट्ठाणि।

स्थानोंका, चार प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें दस और चार प्रकृतिक संक्रमस्थानोंका, तीन प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें तीन प्रकृतिक संक्रमस्थानका, दो प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें दो प्रकृतिकसंक्रमस्थानका और एक प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें एक प्रकृतिक संक्रमस्थानका संक्रम देखा जाता है। इसप्रकार इस दूसरी गाथाद्वारा प्रथम गाथामें कहे गये संक्रमस्थानोंके आधारभूत प्रतिग्रहस्थानोंका सामान्यरूपसे निर्देश किया है।

विशेषार्थ—अब यहां गुणस्थानके क्रमसे प्रतिग्रहस्थान, संक्रमस्थान तथा उनकी प्रकृतियोंका कोष्ठकद्वारा निर्देश करते हैं—

गुणस्थान	प्रतिग्रह स्थान	प्रकृतियाँ	संक्रमस्थान	प्रकृतियां
मिथ्यात्व	२२ प्र०	मिथ्यात्व, सोलह कषाय, तीन वेदोंमेंसे कोई एक, दो युगलोंमेंसे एक युगल, भय और जुगुप्सा	२७ प्र०	मिथ्यात्वके बिना
			२६ प्र०	मिथ्यात्व और सम्यक्त्वके बिना
	२१ प्र०	मिथ्यात्वके बिना पूर्वोक्त	२५ प्र०	तीन दर्शनमोहके बिना
सासादन	२१ प्र०	मिथ्यात्वके बिना पूर्वोक्त किन्तु नपुंसकवेदका बन्ध न होनेसे दो वेदोंमेंसे कोई एक	२५ प्र०	तीन दर्शनमोहके बिना
			२१ प्र०	तीन दर्शनमोह व अनन्तानुबन्धी चारके बिना
मिश्र	१७ प्र०	पूर्वोक्त २१ मेंसे चार अनन्तानुबन्धीके बिना किन्तु वेदमें मात्र पुरुषवेद	२५ प्र०	तीन दर्शनमोहके बिना
			२१ प्र०	तीन दर्शनमोह व चार अनन्तानुबन्धीके बिना
अविरत सम्य०	१९ प्र०	पूर्वोक्त १७ में सम्यक्त्व व सम्यग्मिथ्यात्व मिला देनेपर	२७	सम्यक्त्वके बिना
			२६	सम्यक्त्व व सम्यग्मिथ्यात्वके बिना
			२३	अनन्तानुबन्धी ४ व सम्यक्त्वके बिना
	१८ प्र०	सम्यग्मिथ्यात्वके बिना	२२	पूर्वोक्त ५ व मिथ्यात्व के बिना
	१७ प्र०	सम्यक्त्वके बिना	२१	१२ कषाय ९ नोकषाय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुण०	प्रति०	प्रकृतियां०	संक्रमस्थान०	प्रकृतियाँ
देशविरत	१५ प्र०	पूर्वोक्त १९ मेंसे अप्रत्याख्यानावरण ४ के बिना	२७,२६,२३	पूर्ववत्
	१४ प्र०	सम्यग्मि० के बिना	२२ प्र०	पूर्ववत्
	१३ प्र०	सम्यक्त्वके बिना	२१ प्र०	पूर्ववत्
प्रमत्त व अप्रमत्त	११ प्र०	पूर्वोक्त १५ मेंसे प्रत्याख्यानावरण ४ के बिना	२७, २६ व २३ प्र०	पूर्ववत्
	१० प्र०	सम्यग्मिथ्यात्वके बिना	२२ प्र०	पूर्ववत्
	९ प्र०	सम्यक्त्वके बिना	२१ प्र०	पूर्ववत्
अपूर्वकरण	११ प्र०	पूर्ववत्	२३ प्र०	पूर्ववत्
	९ प्र०	पूर्ववत्	२१ प्र०	पूर्ववत्
उपशम श्रेणि २४ प्र० सत्कर्मकी अपेक्षा	७ प्र०	चार संज्व०, पुरुषवेद, सम्यक्त्व व सम्यग्मिथ्यात्व	२३,२२ व २१ प्र०	२३ पूर्ववत् ,२२सं० लोभके बिना, २१ नपुंसकवेदके बिना
	६ प्र०	पुरुषवेदके बिना	२० प्र०	२३ मेंसे नपुंसकवेद, स्त्रीवेद व संज्वलनलोभ कम कर देने पर
			१४ प्र०	२० मेंसे छह नोकषाय कम कर देने पर
			१३ प्र०	१४ मेंसे पुरुषवेदके कम कर देने पर
	५ प्र०	क्रोधसंज्वलनके बिना	११ प्र०	१३ मेंसे दो क्रोधोंको कम कर देने पर
			१० प्र०	११ मेंसे क्रोधसंज्वलन के कम कर देने पर
	४ प्र०	मानसंज्वलनके बिना	८ प्र०	दो मान कमकर देनेपर
			७ प्र०	मानसं०कम करदेने पर
	३ प्र०	माया संज्वलनके बिना	५ प्र०	दो माया कमकर देनेपर
			४ प्र०	मायासं० कमकर देनेपर
	२प्र०	लोभसं० के बिना सम्यक्त्व व सम्यग्मि०	२ प्र०	मिथ्या० व सम्यग्मि०

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ २८३. संपहि सत्तावीसादिसंकमट्ठाणाणि परिवाडीए ट्ठविय पादेक्कमेक्केकसंकमट्ठाणणिरुंभणं काऊणेदस्स संकमट्ठाणस्स एत्तियाणि पडिग्गहट्ठाणाणि होंति त्ति जाणावणट्ठमुवरिमदसगाहाओ। तत्थ ताव तासिमादिमगाहा छव्वीस सत्तावीसा य। एदीए तदियगाहाए छव्वीस सत्तावीससंकमट्ठाणाणं पडिग्गहट्ठाणणियमो कीरदे—चदुसु चेव पडिग्गहट्ठाणेसु छव्वीस-सत्तावीसाणं संकमो णाणत्थ इदि। एत्थ णियमसद्दो

गुण	प्रति०	प्रकृतियां	संक्रमस्थान	प्रकृतियां
उपशम श्रेणि २१ प्रकृतिक सत्कर्मकी अपेक्षा	५ प्र०	चार संज्व० व पुरुषवेद	२१ प्र०	१२ कषाय नौ नोकषाय
			२० प्र०	संज्व०लो० बिना पूर्वोक्त
			१९ प्र०	नपुं०वेद बिना पूर्वोक्त
	४ प्र०	पुरुषवेदके बिना	१८ प्र०	स्त्रीवेद बिना पूर्वोक्त
	३ प्र०	संज्वलनक्रोधके बिना	९ प्र०	सात नोकषा० दो क्रोध के बिना
	२ प्र०	संज्वलनमानके बिना	६ प्र०	दो मानके बिना
	१ प्र०	माया संज्वलनके बिना	३ प्र०	दो मायाके बिना
क्षपकश्रेणि	५ प्र०	चारसं० व पुरुषवेद	२१ प्र०	पूर्ववत्
			१३ प्र०	मध्यके आठकषाय बिना
			१२ प्र०	संज्व०लोभ बिना
			११ प्र०	नपुंसकवेद बिना
	४ प्र०	चार संज्वलन	१० प्र०	स्त्रीवेदके बिना
			४ प्र०	छह नोकषाय बिना
	३ प्र०	संज्वलन क्रोध बिना	३ प्र०	संज्व०क्रोध, मान व माया
	२ प्र०	संज्वलन मान बिना	२ प्र०	संज्व० मान व माया
	१ प्र०	संज्वलन माया बिना	१ प्र०	संज्वलन माया

§ २८३. अब सत्ताईस आदि संक्रमस्थानोंको क्रमसे रखकर प्रत्येक संक्रमस्थानकी अपेक्षा इस संक्रमस्थानके इतने प्रतिग्रहस्थान होते हैं यह बतलानेके लिये आगेकी दस गाथाएं आई हैं। उनमेंसे 'छब्बीस सत्तवीसा य' यह पहली गाथा है जो क्रमानुसार तीसरे नम्बरपर प्राप्त होती है। इस तीसरी गाथामें छब्बीस प्रकृतिक और सत्ताईस प्रकृतिक संक्रमस्थानोंके प्रतिग्रहस्थानोंका नियम करते हैं—छब्बीस प्रकृतिक और सत्ताईस प्रकृतिक संक्रमस्थानोंका चार प्रतिग्रहस्थानोंमें ही संक्रम होता है अन्यत्र नहीं होता। इस गाथामें आया हुआ 'नियम' शब्द पंचमी विभक्तिका एकवचनान्त

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचमिएयवयणंतो छंदोभंगभएण पडियतलोवं काऊण रहस्सादेसेण णिद्दिट्ठो । संकम-ट्ठाणाणमेत्थ णियमो पडिग्गहट्ठाणाणमणियमो । तदो तेसु तेवीसाए वि संकमो ण विरुज्झदे । एवं सत्तावीस-छव्वीससंकमाहारत्तेणावहारियाणं चउण्हं पडिग्गहट्ठाणाणं सरूवणिद्देसट्ठं गाहापच्छद्धो 'बावीस पण्णरसगे० ।' पादेक्कमेदेसु चदुसु पडिग्गहट्ठाणेसु छव्वीस-सत्तावीसाणं संकमो होइ त्ति वुत्तं होइ ।

§ २८४. तत्थ ताव सत्तावीससंतकम्मियमिच्छाइट्ठिम्मि पणुवीसकसाय-सम्मामिच्छत्तसंकामयम्मि छव्वीससंकमस्स बावीसपडिग्गहो लब्भदे । पुणो छव्वीससंतकम्मियमिच्छाइट्ठिणा उवसमसम्मत्त-संजमासंजमगहणपढमसमए सम्मामिच्छत्तसंकमाभावेण छव्वीससंकमस्स पण्णारस पडिग्गहो होइ । तेरसविहतब्बंधपयडीसु सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं पवेसादो । तेणेव पढमसम्मत्त-संजमजुगवग्गहणपढमसमयम्मि छव्वीससंकमस्स एक्कारस०पडिग्गहो होइ, तत्थ सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तेहि सह चदुकसाय-पंचणोकसायाणं पडिग्गहत्तदंसणादो । पुणो पढमसम्मत्तग्गहणपढमसमए वट्टमाणस्स असंजदसम्माइट्ठिस्स एगूणवीसपडिग्गहट्ठाणपडिग्गहिओ छव्वीससंकमो होइ, तदवत्थाए पडिग्गहट्ठाणंतरस्सासंभवादो ।

है, इसलिए छन्द भंग होनेके भयसे अन्तमें प्राप्त हुए 'त' का लोप करके और उसके स्थानमें ह्रस्व का आदेश करके निर्देश किया है । यहां पर संक्रमस्थानोंका नियम किया गया है प्रतिग्रहस्थानोंका नियम नहीं किया गया है,इसलिये इन प्रतिग्रहस्थानोंमें तेईस प्रकृतिक स्थानका संक्रम भी विरोधको नहीं प्राप्त होता है। इस प्रकार सत्ताईस प्रकृतिक और छब्बीस प्रकृतिक संक्रमोंके आधाररूपसे निश्चित किये गये चार प्रतिग्रहस्थानोंके स्वरूपका निर्देश करनेके लिये 'बाबीस पण्णरसगे' यह गाथाका उत्तरार्ध कहा है । इन चारों प्रतिग्रहस्थानोंमेंसे प्रत्येकमें छब्बीसप्रकृतिक और सत्ताईस-प्रकृतिक स्थानोंका संक्रम होता है यह उक्त कथनका तत्पर्य है ।

§ २८४. उनमेंसे पच्चीस कषाय और सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रम करनेवाले सत्ताईस प्रकृतियोंकी सत्तावाले मिथ्यादृष्टिके छब्बीस प्रकृतिक संक्रमस्थानका बाईसप्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान प्राप्त होता है । फिर जो छब्बीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला मिथ्यादृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्व और संयमासंयमको एकसाथ प्राप्त करता है उसके प्रथम समयमें सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रम नहीं होनेसे छब्बीस प्रकृतिक संक्रमस्थानका पन्द्रहप्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान प्राप्त होता है, क्योंकि संयतासंयतके बंधनेवाली तेरह प्रकारकी प्रकृतियोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका प्रतिग्रहरूपसे प्रवेश देखा जाता है । तथा वही छब्बीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला मिथ्यादृष्टि जीव जब प्रथम सम्यक्त्व और संयम इन दोनोंको एक साथ ग्रहण करता है तब उसके प्रथम समयमें छब्बीस प्रकृतिक संक्रम-स्थानका ग्यारह प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान होता है, क्योंकि वहां पर सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके साथ चार कषाय और पांच नोकषाय ये ग्यारह प्रतिग्रह प्रकृतियाँ देखी जाती हैं । पुनः प्रथम सम्यक्त्वका ग्रहण करनेके प्रथम समयमें विद्यमान हुए असंयतसम्यग्दृष्टि जीवके उन्नीसप्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानसे सम्बन्ध रखनेवाला छब्बीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है, क्योंकि उस अवस्थामें दूसरा प्रतिग्रहस्थान नहीं हो सकता है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ २८५. संपहि सत्तावीसाए उच्चदे—अट्ठावीससंतकम्मियमिच्छाइट्ठिम्मि सत्तावीससंकमो बावीसपयडिपडिग्गहविसईकओ समुप्पज्जइ । पुणो उवसमसम्मत्तग्गहण-विदियसमयप्पहुडि जाव अणंताणुबंधीणं विसंजोयणा णत्थि ताव संजदासंजद-संजद-असंजदसम्माइट्ठिगुणट्ठाणेसु सत्तावीससंकमस्स जहाकमं पण्णारसेक्कारस-एगूणवीस-पडिग्गहा होंति । एवं तदियगाहाए अत्थो समत्तो ।

§ २८६. सत्तारसेक्कवीसासु०—पंचवीसाए संकमो कम्मि पडिग्गहट्ठाणम्मि होइ त्ति आसंकिय 'सत्तारसेक्कवीसासु' त्ति[1] उत्तं । एदेसु दोसु पडिग्गहट्ठाणेसु पणुवीसाए संकमो णिबद्धो त्ति उत्तं होइ । एत्थ वि णियमसद्दो पडिग्गहट्ठाणेसु संकमट्ठाणाव-

§ २८५. अब सत्ताईस प्रकृतिक संक्रमस्थानके प्रतिग्रहस्थान कहते हैं—अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाले मिथ्यादृष्टिके बाईस प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानका विषयभूत सत्ताईसप्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है । पुनः उपशमसम्यक्त्वके ग्रहण करनेके दूसरे समयसे लेकर जब तक अनन्तानुबन्धियोंकी विसंयोजना नहीं होती है तब तक संयतासंयत, संयत और असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानोंमें सत्ताईस प्रकृतिक संक्रमस्थानके क्रमसे पन्द्रहप्रकृतिक, ग्यारहप्रकृतिक और उन्नीस प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान उत्पन्न होते हैं ।

विशेषार्थ—यहां पर प्रकृतिसंक्रमस्थानके सिलसिलेमें आई हुई ३२ गाथाओंमेंसे तीसरी गाथाका व्याख्यान किया गया है । इस गाथासे लेकर १२वीं गाथा तक १० गाथाओंमें किस संक्रमस्थानके कितने प्रतिग्रहस्थान हैं यह बतलाया गया है । उनमेंसे तीसरी गाथामें २७ प्रकृतिक और २६ प्रकृतिक संक्रमस्थानोंके २२, १९, १५, और ११ प्रकृतिक चार प्रतिग्रहस्थान बतलाये गये हैं सो इनका विशेष खुलासा टीकामें किया ही है । इस तीसरी गाथाके पूर्वार्धमें 'णियम' पद आया है । यह 'नियमात्' इस पंचमी विभक्तिके एक वचनका रूप है । प्राकृतके नियमानुसार आदि, मध्य और अन्तमें' आये हुए वर्णों और स्वरोंका लोप हो जाता है, अतः इस पदमेंसे 'त्' का लोप करके फिर छन्दोभंग दोषको टालनेके लिये ह्रस्व कर दिया गया है । इसलिये 'णियम' यह 'नियमात्' का रूप जानना चाहिये यह उक्त कथनका तात्पर्य है । यह 'नियम' पद संक्रमस्थानों का नियम करता है कि इन दो संक्रमस्थानोंके ये चार ही प्रतिग्रहस्थान होते हैं अन्य नहीं, किन्तु प्रतिग्रहस्थानोंका नियम नहीं करता है । ये चार प्रतिग्रहस्थान इन दो संक्रमस्थानोंके तो होते ही हैं किन्तु इनके सिवा अन्य संक्रमस्थान भी इन प्रतिग्रहस्थानोंमें सम्भव हो सकते हैं । यथा अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनाके बाद जो तेईस प्रकृतिक संक्रमस्थान प्राप्त होता है उसके उन्नीस, पन्द्रह और ग्यारहप्रकृतिक तीन प्रतिग्रहस्थान होते हैं । इस प्रकार गाथामें आये हुए नियम पदसे संक्रमस्थानोंका नियम किया गया है प्रतिग्रहस्थानोंका नहीं यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

इस प्रकार तीसरी गाथाका अर्थ समाप्त हुआ ।

§ २८६. अब 'सत्तारसेक्कवीसासु' इस चौथी गाथाका व्याख्यान करते हैं—पच्चीस प्रकृतिक संक्रम किस प्रतिग्रहस्थानमें होता है ऐसी आशंका करके सत्रह प्रकृतिक और इकीस प्रकृतिक इन दो प्रतिग्रहस्थानोंमें होता है ऐसा कहा है । इन दो प्रतिग्रहस्थानोंमें पच्चीस प्रकृतिक संक्रम निबद्ध है यह उक्त कथनका तात्पर्य है । यहाँ भी गाथामें 'नियम' शब्द आया है सो यह इस संक्रमस्थानके

१. ता०प्रतौ -वीसासु पंचवीसाए त्ति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हारणफलो पुव्वं व पडियतलोवादिविहाणेण णिदिट्ठो दट्ठव्वो। तत्थ छव्वीससंतकम्मियमिच्छाइट्ठिस्स बावीसविहं बंधमाणयस्स इगिवीसपडिग्गहालंबणो होऊण पणुवीसकसायसंकमो होइ। अहवा अणंताणुबंधी अविसंजोएदूण ट्ठिदउवसमसम्माइट्ठिस्स आसाणं पडिवज्जिय इगिवीसबंधमाणस्स पणुवीससंकमो इगिवीसपडिग्गहपडिबद्धो होइ, तत्थ सहावदो दंसणतियस्स संकम-पडिग्गहसत्तीणमभावादो। पुणो अट्ठावीससंतकम्मियमिच्छाइट्ठि-सम्माइट्ठीणमण्णदरस्स सम्मामिच्छत्तं पडिवज्जिय सत्तारसपयडीओ बंधमाणस्स पणुवीससंकमो सत्तारसपडिग्गहपडिग्गहिओ होइ, एत्थ वि दंसणतियस्स संकमाभावादो। एवं पडिग्गहट्ठाणविसेसविसयत्तेणावहारियस्स पणुवीससंकमट्ठाणस्स[1] गइगयविसेसणिद्धारणट्ठमिदमाह—'णियमा चदुसु गदीसु य' णियमा णिच्छएण चदुसु वि गईसु पणुवीससंकमट्ठाणमवट्ठिदं दट्ठव्वं, अण्णदरगइविसयणियमाभावादो। एत्थेव गुणट्ठाणगयसामित्तविसेसणिद्धारणट्ठमाह—'णियमा 'दिट्ठीगए तिविहे' गुणट्ठाणमादीदो पहुडि तिविहे गुणट्ठाणे मिच्छाइट्ठि-सासणसम्माइट्ठि-सम्मामिच्छादिट्ठि त्ति दिट्ठिविसेसणविसिट्ठत्तादो दिट्ठिगए पयदसंकमट्ठाणसंभवो णाण्णत्थ, तत्थेव तदुप्पत्तिणियमदंसणादो। एदेण 'दिट्ठीगय' विसेसणेण संजदासंजदादीणमुवरिमगुणट्ठाणाणं उदासो

ये ही प्रतिग्रहस्थान हैं यह बतलानेके लिए दिया है। तथा इस नियम शब्दके 'न्' का लोप और ह्रस्व विधि पूर्ववत् जान लेना चाहिये। जो छब्बीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला मिथ्यादृष्टि जीव, बाईस प्रकृतियोंका बन्ध करता है उसके इक्कीस प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानके रहते हुए पच्चीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है। अथवा अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना किये बिना जो उपशमसम्यग्दृष्टि जीव सासदन गुणस्थानको प्राप्त होकर इक्कीस प्रकृतियोंका बन्ध करता है उसके इक्कीस प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानसे सम्बन्ध रखनेवाला पच्चीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है, क्योंकि वहाँपर स्वभावसे ही दर्शनमोहकी तीन प्रकृतियोंमें संक्रम और प्रतिग्रहरूप शक्तिका अभाव है। पुनः अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो मिथ्यादृष्टि या सम्यग्दृष्टि जीव सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होकर सत्रह प्रकृतियोंका बन्ध करता है उसके सत्रह प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानसे सम्बन्ध रखनेवाला पच्चीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है, क्योंकि यहांपर भी दर्शनमोहकी तीन प्रकृतियोंका संक्रम नहीं होता है। इस प्रकार प्रतिग्रहविशेषके विषयरूपसे निश्चय किये गये पच्चीस प्रकृतिक संक्रमस्थानका गतिसम्बन्धी विशेषताका निश्चय करनेके लिये गाथामें 'णियमा चदुसु गदीसु य' यह कहा है। आशय यह है कि यह पच्चीस प्रकृतिक संक्रमस्थान नियमसे चारों गतियोंमें होता है ऐसा जानना चाहिये, क्योंकि यह अमुक गतिमें ही होता है ऐसा कोई नियम नहीं है। तथा यहींपर गुणस्थानों की अपेक्षा स्वामित्व विशेषका निर्धारण करनेके लिये 'णियमा दिट्ठीगए तिविहे' यह कहा है। यहां गाथामें दृष्टि विशेषण होनेसे आदिके तीन मिथ्यादृष्टि सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानोंका ग्रहण होता है। इन तीन गुणस्थानोंमें ही प्रकृत संक्रमस्थान सम्भव है अन्यत्र नहीं, क्योंकि इन्हीं तीन गुणस्थानोंमें इस संक्रमस्थानकी उत्पत्ति देखी जाती है। यहां जो यह 'दृष्टिगत' विशेषण दिया है सो इससे संयतासंयत आदि आगेके गुणस्थानोंका निषेध कर

१. ता०प्रतौ पडिग्गहट्ठाणविसेसविसयत्तेणावहारियस्स पणुवीससंकमट्ठाणविसेसविसयत्तेणावहारियस्स पणुवीससंकमट्ठाणस्स इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कओ। 'तिविह' विसेसणेण च असंजद०गुणट्ठाणस्स वहिब्भावो कओ। एवं चउत्थगाहाए अत्थपरूवणा समत्ता।

§ २८७. 'बावीस पण्णरसगे०' एसा पंचमी गाहा तेवीससंकमट्ठाणस्स पडिग्गहट्ठाणपरूवणट्ठमागया। एदिस्से अत्थविवरणं कस्सामो—तेवीससंकमो पंचसु ट्ठाणेसु होइ त्ति एत्थ संबंधो। तेसिं पंचसंखाविसेसियाणं पडिग्गहट्ठाणाणं सरूवणिद्धारणट्ठं 'बावीसादि' वयणं। कधमेत्थ बावीसाए तेवीससंकमोवलंभो? ण, अणंताणुबंधीविसंजोयणापुरस्सरसंजुत्तमिच्छादिट्ठिपढमसमयप्पहुडि आवलियमेत्तकालमणंताणुबंधीणं संकमाभावेण तेवीससंकामयस्स तदुवलंभविरोहाभावादो। पण्णरसगे पयदसंकमट्ठाणसंभवो संजदासंजदम्मि दट्ठव्वो, विसंजोइदाणंताणुबंधिचउक्कसंजदासंजदस्स पण्णारसपडिग्गहट्ठाणाधारत्तेण तेवीससंकमट्ठाणपउत्तिदंसणादो। एवं सत्तगे वि पयदसंकमट्ठाणसंभवो जोजेयव्वो। णवरि चउवीससंतकम्मियाणियट्टिम्मि अंतरकरणादो हेट्ठा तदुप्पत्ती वत्तव्वा, अणाणुपुव्वीसंकामयस्स[1] तस्स तदविरोहादो। एक्कारसूणवीसासु पयदजोयणा एवं

दिया है और 'त्रिविध' इस विशेषण द्वारा असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानका निषेध कर दिया है।

विशेषार्थ—आशय यह है कि मिथ्यादृष्टि और सासादनसम्यग्दृष्टिके २१ प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें तथा सम्यग्मिथ्यादृष्टिके १७ प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें २५ प्रकृतियोंका संक्रम होता है। पच्चीस प्रकृतिक संक्रमस्थानके ये दो ही प्रतिग्रहस्थान हैं अन्य नहीं यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

इस प्रकार चौथी गाथाके अर्थका कथन समाप्त हुआ।

§ २८७. 'बावीस पण्णरसगे०' यह पांचवी गाथा है जो तेईस प्रकृतिक संक्रमस्थानके प्रतिग्रहस्थानोंका कथन करनेके लिये आई है। अब इस गाथाका अर्थ लिखते हैं—तेईस प्रकृतिक संक्रम पांच स्थानोंमें होता है ऐसा यहां सम्बन्ध करना चाहिये। उन पांच संख्यासे विशेषताको प्राप्त हुए प्रतिग्रहस्थानोंके स्वरूपका निश्चय करनेके लिये गाथामें 'बावीस' आदि वचन दिया है।

शंका—बाईस प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें तेईस प्रकृतिक संक्रम कैसे उपलब्ध होता है?

समाधान—नहीं, क्योंकि अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना पूर्वक उससे संयुक्त हुए मिथ्यादृष्टिके प्रथम समयसे लेकर एक आवलि कालतक अनन्तानुबन्धियोंका संक्रम नहीं होनेसे तेईस प्रकृतियोंका संक्रम करनेवाले जीवके बाईस प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान पाये जानेमें कोई विरोध नहीं आता है।

पन्द्रह प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें प्रकृत संक्रमस्थानका सम्भव संयतासंयतके जानना चाहिये, क्योंकि जिसने अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना की है ऐसे संयतासंयतके पन्द्रह प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानके आधाररूपसे तेईस प्रकृतिक संक्रमस्थानकी प्रवृत्ति देखी जाती है। इसी प्रकार सात प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें भी प्रकृत संक्रमस्थानको घटित कर लेना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले अनिवृत्तिकरणमें अन्तरकरण क्रिया करनेके पहले इसी स्थानकी उत्पत्ति कहनी चाहिये, क्योंकि जिसने आनुपूर्वी संक्रमका प्रारम्भ नहीं किया है उस जीवके सात

१. ता० प्रतौ पुव्वीसंकमस्स इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चेव कायव्वा। णवरि पमत्तापमत्तापुव्वकरणोवसामगगुणट्ठाणेसु असंजदसम्मादिट्ठिट्ठाणे च जहाकमं तदुभयसंभवो त्ति वत्तव्वं, णव-सत्तारसविहबंधएसु तेसु चउवीससंतकम्मिएसु तदुभयाधारतेवीससंकमसुप्पत्तीए णाइयत्तादो। एवमेदेसु पंचसु पडिग्गहट्ठाणेसु तेवीस-संकमट्ठाणणियमो त्ति जाणावणट्ठं पंचग्गहणमेत्थ कयं। एत्थेव विसेसंतरपदुप्पायणट्ठं 'पंचिंदिएसु' त्ति वयणं। तेण पंचिंदिएसु चेव तेवीससंकमो णाण्णत्थे त्ति घेत्तव्वं। तत्थ वि सण्णिपंचिंदिएसु चेव णासण्णीसु। कुत एतत्? व्याख्यानतो विशेषप्रतिपत्तेः।

एवं पंचमगाहाए अत्थो समत्तो।

§ २८८. 'चोद्दसय-दसय-सत्तय०'-एदेसु चदुसु पडिग्गहट्ठाणेसु बावीससंकम-णियमो दट्ठव्वो त्ति गाहापुव्वद्धे संबंधो। कथमेदेसिं संभवो त्ति उत्ते उच्चदे—संजदा-संजदस्स दंसणमोहक्खवणमब्भुट्ठिय णिस्सेसीकयमिच्छत्तकम्मस्स सम्मामिच्छत्तेण विणा

प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानके आश्रयसे तेईस प्रकृतिक संक्रमस्थानके होनेमें कोई बाधा नहीं आती है। ग्यारह प्रकृतिक और उन्नीस प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानोंमें प्रकृत संक्रमस्थानकी योजना इसी प्रकार करनी चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत और अपूर्वकरण उपशामक इन तीन गुणस्थानोंमें तथा असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें क्रमसे वे दोनों सम्भव हैं ऐसा यहाँ कथन करना चाहिये, क्योंकि जो नौ और सत्रह प्रकृतियोंका बन्ध कर रहे हैं और जिनके चौबीस प्रकृतियोंकी सत्ता है उनके इन दोनों प्रतिग्रहस्थानोंके आश्रयसे तेईस प्रकृतिक संक्रमस्थानकी उत्पत्ति मानना सर्वथा न्यायसंगत है। इस प्रकार इन पाँच प्रतिग्रहस्थानोंमें तेईस प्रकृतिक संक्रमस्थानका नियम है यह जतानेके लिये गाथामें 'पंच' पदका ग्रहण किया है। तथा यहीं पर दूसरी विशेषताका कथन करनेके लिये पंचिंदिएसु, वचन दिया है। इससे यह तेईस प्रकृतिक संक्रमस्थान 'पंचिन्द्रियोंके ही होता है अन्यके नहीं ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिये। उसमें भी संज्ञी पंचेन्द्रियोंके ही होता है असंज्ञियोंके नहीं होता इतना विशेष जानना चाहिये।

शंका—यह कैसे जाना ?

समाधान—व्याख्यानसे विशेषका ज्ञान होता है, यह नियम है। तदनुसार प्रकृतमें भी यह तेईस प्रकृतिक संक्रमस्थान संज्ञियोंके ही होता है असंज्ञियोंके नहीं होता यह विशेष जाना जाता है।

विशेषार्थ—इस पांचवी गाथामें तेईस प्रकृतिक संक्रमस्थानका २२, १९, १५, ११ और ७ प्रकृतिक पाँच प्रतिग्रहस्थानोंमें संक्रम होता है यह बतलाया गया है। उसमें भी यह संक्रमस्थान संज्ञियोंके ही होता है अन्यके नहीं होता इतना विशेष जानना चाहिये।

इस प्रकार पाँचवीं गाथाका अर्थ समाप्त हुआ।

§ २८८. अब 'चोद्दसय-दसय-सत्तय०' इस छठी गाथाका अर्थ कहते हैं—चौदह, दस, सात और अठारह इन चार प्रतिग्रहस्थानोंमें बाईस प्रकृतिक संक्रमका नियम जानना चाहिये यह इस गाथाके पूर्वार्धका तात्पर्य है। इनका यहाँ कैसे सम्भव है ऐसा पूछनेपर कहते हैं—दर्शन-मोहनीयकी क्षपणाके लिये उद्यत होकर जिसने मिथ्यात्वका क्षय कर दिया है उस संयतासंयतके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चोद्दसपडिग्गहो होऊण बावीससंकमट्ठाणमुप्पज्जइ। एवं सेसाणं पि वत्तव्वं, पमत्तापमत्त-संजदाणियट्टिगुणट्ठाणाविरदसम्माइट्ठीसु जहाकम्मं तदुप्पत्तीदो। कधमणियट्टिट्ठाणे बावीससंकमसंभवो त्ति णासंकणिज्जं, आणुपुव्वीसंकमे चउवीससंतकम्मियस्स तद-विरोहादो। एत्थेव गइविसयणियमावहारणट्ठमिदं वयणं 'णियमा मणुसगईए।' कुदो एस णियमो? सेसगईसु दंसणमोहक्खवणाए आणुपुव्वीसंकमस्स वा असंभवादो। एत्थेव गुणट्ठाणगयसामित्तविसेसावहारणट्ठमिदमाह—'विरदे मिस्से अविरदे य।' संजदासंजद-संजद-असंजदसम्माइट्ठिगुणट्ठाणेसु चेवेदाणि पडिग्गहट्ठाणाणि होंति त्ति भणिदं होइ ॥६॥

§ २८९. 'तेरसय णवय सत्तय०'—एत्थ एगाधिगाए वीसाए संकमो तेरसादिसु छसु पडिग्गहट्ठाणेसु होइ त्ति सुत्तत्थसंबंधो। कथमेदेसिं संभवो? वुच्चदे—खइयसम्माइट्ठि-संजदासंजदम्मि पयदसंकमट्ठाणस्स तेरसपडिग्गहसंभवो पमत्तापमत्तापुव्वकरणेसु णव-

---

सम्यग्मिथ्यात्वके बिना चौदह प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानके साथ बाईस प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है। इसी प्रकार शेष प्रतिग्रहस्थानोंके विषयमें भी कथन करना चाहिये, क्योंकि क्रमसे प्रमत्ताप्रमत्तसंयतके दस प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानके रहते हुए, अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें सात प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानके रहते हुए और अविरतसम्यग्दृष्टिके अठारह प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानके रहते हुए बाईस प्रकृतिक संक्रमस्थानकी उत्पत्ति होती है।

शंका—अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें बाईस प्रकृतिक संक्रम कैसे सम्भव है?

समाधान—यह आशंका करना ठीक नहीं है, क्योंकि आनुपूर्वी संक्रमका प्रारम्भ हो जानेपर चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके बाईस प्रकृतिक संक्रमस्थानके होनेमें कोई विरोध नहीं आता है।

यहींपर गतिविषयक नियमका निश्चय करनेके लिये 'णियमा मणुसगईए' पद दिया है।

शंका—यह नियम किस कारणसे किया गया है?

समाधान—क्योंकि मनुष्यगतिके सिवा शेष गतियोंमें दर्शनमोहकी क्षपणा और आनुपूर्वी-संक्रम सम्भव नहीं है।

यहींपर गुणस्थानसम्बन्धी स्वामित्वविशेषका निश्चय करनेके लिये 'विरदे मिस्से अविरदे य' पद कहा है। इसका यह आशय है कि ये प्रतिग्रहस्थान संयतासंयत, संयत और असंयत-सम्यग्दृष्टि इन गुणस्थानोंमें ही होते हैं।

विशेषार्थ—इस छठी गाथामें बाईस प्रकृतिक संक्रमस्थानके कौन-कौन प्रतिग्रहस्थान होते हैं और वे किस गतिमें तथा किस किस गुणस्थानमें होते हैं यह बतलाया है। गुणस्थानोंका उल्लेख गाथामें 'विरदे मिस्से अविरदे य' इस रूपमें किया है। यहाँ मिश्रसे विरताविरत लिया है, क्योंकि चौदह प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान विरताविरतके ही पाया जाता है।

§ २८९. अब 'तेरसय णवय सत्तय०' इस सातवीं गाथाका अर्थ कहते हैं—इक्कीस प्रकृतियों-का संक्रम तेरह आदि छह प्रतिग्रह स्थानोंमें होता है यह इस गाथा सूत्रका तात्पर्य है। इनका यहाँ कैसे सम्भव है? बतलाते हैं—क्षायिकसम्यग्दृष्टि संयतासंयतके प्रकृत संक्रमस्थानका तेरहप्रकृतिक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पयडिपडिग्गहसंभवो असंजदसम्माइट्ठिट्ठाणे अणियट्टिकरणपविट्ठखवगोवसामगेसु च जहाकमं सत्तारस-पंचपडिग्गहट्ठाणसंभवो, इगिवीससंतकम्मिएसु तेसु तदुप्पत्तिविसेसाभावादो। संतकम्मियमस्सिऊणाणियट्टिट्ठाणम्मि सत्तपयडिपडिग्गहट्ठाणसंभवो, आणुपुव्वीसंकमं काऊण णवुंसयवेदे उवसामिदे तत्थ सत्तपडिग्गहट्ठाणपडिबद्धेकावीससंकमट्ठाणुवलंभादो। सासणसम्माइट्ठिम्मि एक्कवीसपडिग्गहट्ठाणसंभवो वत्तव्वो, अणंताणुबंधिविसंजोयणापरिणदउवसमसम्माइट्ठिम्मि सासणगुणं पडिवण्णे तप्पढमावलियाए तदुवलद्धीदो। संपहि एदेसिं पडिग्गहट्ठाणाणमाधारभूदगुणट्ठाणविसेसावहारणट्ठमिदमाह—'छप्पि सम्मत्ते' इदि। एदाणि छप्पि पडिग्गहट्ठाणाणि सम्मत्तोवलक्खिए चेव गुणट्ठाणे होंति णाण्णत्थ संभवंति त्ति उत्तं होइ। कधं पुण सासणसम्माइट्ठिस्स सम्माइट्ठिववएसो ? ण दंसणतियस्स उदयाभावं पेक्खियूण तस्स सम्माइट्ठित्तोवयारादो ॥७॥

प्रतिग्रहस्थान सम्भव है। प्रमत्तसंयत, अप्रमत्तसंयत और अपूर्वकरणमें प्रकृतसंक्रमस्थानका नौ प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान सम्भव है। असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें तथा अनिवृत्तिकरणमें प्रविष्ट हुए क्षपक और उपशामकके क्रमसे सत्रह प्रकृतिक और पाँच प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान सम्भव है। अर्थात् असंयत सम्यग्दृष्टिके सत्रह प्रकृतिक तथा अनिवृत्तिकणरगुणस्थानवर्ती क्षपक और उपशामकके पाँच प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान है, क्योंकि इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उक्त जीवोंके उक्त प्रतिग्रहस्थानोंकी उत्पत्ति होनेमें कोई बाधा नहीं आती है। तथा चौबीस प्रकृतिक सत्कर्मकी अपेक्षा अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें सात प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान सम्भव है, क्योंकि आनुपूर्वी संक्रमको करके नपुंसकवेदका उपशम कर लेनेपर वहाँ सातप्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानसे सम्बन्ध रखनेवाला इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थान उपलब्ध होता है। इसीप्रकार इक्कीस प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानका सम्भव सासादनसम्यग्दृष्टिके कहना चाहिये, क्योंकि जिस उपशमसम्यग्दृष्टिने अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना की है उसके सासादन गुणस्थानको प्राप्त होनेपर उसकी प्रथम आवलिके भीतर उक्त प्रतिग्रहस्थान व संक्रमस्थान पाया जाता है। अब इन प्रतिग्रहस्थानोंके आधारभूत गुणस्थानविशेषोंका अवधारण करनेके लिये 'छप्पि सम्मत्ते' पद कहा है। ये छह प्रतिग्रहस्थान सम्यक्त्वसहित गुणस्थानोंमें सम्भव हैं अन्यत्र सम्भव नहीं है यह इस कथनका तात्पर्य है।

शंका—यहाँ सासादनसम्यग्दृष्टिको सम्यग्दृष्टि यह संज्ञा कैसे दी है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि सासादन गुणस्थानमें दर्शनमोहनीयकी तीन प्रकृतियोंका उदय नहीं होता यह देखकर उपचारसे उसे सम्यग्दृष्टि संज्ञा दी है।

विशेषार्थ—प्रकृतिसंक्रमस्थानकी इस सातवीं गाथामें इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थानके कितने प्रतिग्रहस्थान और कौन कौन स्वामी हैं यह बतलाया है। स्वामीका निर्देश करते हुए गाथामें केवल 'सम्मत्ते' पद दिया है। जिसका अर्थ होता है कि इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थानके ये छहों प्रतिग्रहस्थान सम्यग्दृष्टिके होते हैं। तथापि इनमेंसे इक्कीस प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानके रहते हुए इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थान सासादन सम्यग्दृष्टिके भी होता है, इसलिये यह प्रश्न हुआ कि सासादन सम्यग्दृष्टिको सम्यग्दृष्टि कैसे कहा जाय ? टीकामें इसका यह समाधान किया गया है कि सासादनमें तीन दर्शनमोहनीयका उदय नहीं होता है और इस अपेक्षासे उसे उपचारसे सम्यग्दृष्टि कहा जा सकता है। इस प्रकार यद्यपि इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थानके रहते हुए इक्कीस प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान सम्यग्दृष्टिके बन जाता है तथापि इन छह प्रतिग्रहस्थानोंमें एक सत्रह प्रकृतिक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ २९०. 'एत्तो अवसेसा' पयडिट्ठाणसंकमा वीसादयो पयडिट्ठाणपडिग्गहा च छक्क-पणगादयो संजमम्हि संजमोवलक्खिएसु चेव गुणट्ठाणेसु होंति णाण्णत्थ, तेसिं तत्थेव णियमदंसणादो। तत्थ वि खवगोवसमसेढीसु चेव होंति त्ति जाणावणट्ठं 'उवसामगे च खवगे च' इदि भणिदं। एवं सामण्णेण परूविय संपहि एदस्सेव विसेसिऊण परूवणट्ठमिदमाह 'वीसा य संकमदुगे'। वीसाए संकमो दोसु चेव पडिग्गहट्ठाणेसु होइ। काणि ताणि दोपडिग्गहट्ठाणाणि त्ति आसंकाए 'छक्के पणगे च बोद्धव्वा' त्ति भणिदं। तं कथं? चउवीससंतकम्मिएणुवसमसेढिं चढिय णवुंसय-इत्थिवेदोवसमं काऊण पुरिसवेदपडिग्गहवोच्छेदे कदे सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त-चउसंजलण-सण्णिदछप्पयडिपडिग्गहपडिबद्धो वीसपयडिसंकमो होइ। पुणो इगिवीससंतकम्मिएणु-वसमसेढिं चढिय आणुपुव्वीसंकमे कदे वीसपयडिसंकमो पंचपयडिपडिग्गहपडिबद्धो समुप्पज्जइ। तम्हा छक्के पणगे च वीसाए संकमो त्ति सिद्धं ॥८॥

प्रतिग्रहस्थान भी सम्मिलित है। यह प्रतिग्रहस्थान सम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि इन दोनोंके सम्भव है और इन दोनोंके इसमें इक्कीस प्रकृतियोंका संक्रम भी सम्भव है। यद्यपि स्थिति ऐसी है तथापि गाथामें या उसकी टीकामें सम्यग्मिथ्यादृष्टिके इस संक्रम व प्रतिग्रहस्थानका निर्देश नहीं किया गया है। इसका निर्देश क्यों नहीं किया गया है इसके दो कारण हो सकते हैं। प्रथम तो यह कि सम्यक्त्वके ग्रहण करनेसे उसके प्रतिपक्षी भावका भी ग्रहण हो जाता है, इसलिये यद्यपि पृथकसे निर्देश नहीं किया है तथापि उसका ग्रहण हो जाता है और दूसरा यह कि गौण समझकर उसे छोड़ दिया है। तथापि गाथामें आया हुआ 'सम्मत्ते' पद देशामर्षक होनेसे उसका ग्रहण हो जाता है

§ २९०. अब 'एत्तो अवसेसा०' इस आठवीं गाथाका अर्थ लिखते हैं—ये पूर्वमें जितने भी संक्रमस्थान और प्रतिग्रहस्थान कह आये हैं उनके सिवा बीस आदिक जितने संक्रमस्थान हैं और छह, पाँच आदिक जितने प्रतिग्रहस्थान हैं वे सब संयमसे युक्त गुणस्थानोंमें ही होते हैं। अन्यत्र नहीं होते हैं, क्योंकि उनके वहीं होनेका नियम देखा जाता है। उसमें भी ये क्षपकश्रेणि और उपशमश्रेणिमें ही होते हैं, इसलिये इस बातके जतानेके लिये गाथामें 'उवसामगे च खवगे च' पाठ कहा है। इस प्रकार सामान्यरूपसे कथन करके अब इसी बातका विशेषरूपसे कथन करनेके लिये गाथामें 'वीसा य संकमदुगे' पाठ कहा है। इसका यह आशय है कि बीस प्रकृतिक संक्रम दो प्रतिग्रहस्थानोंमें होता है। वे दो प्रतिग्रहस्थान कौनसे हैं ऐसी आशंका होने पर 'छक्के पणगे च बोद्धव्वा' यह पद कहा है। खुलासा इस प्रकार है—जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव उपशमश्रेणि पर चढ़कर नपुंसकवेद और स्त्रीवेदका उपशम करके पुरुषवेदकी प्रतिग्रहव्युच्छित्ति कर देता है उसके सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और चार संज्वलन इन छह प्रकृतियोंके प्रतिग्रहरूप स्थानसे सम्बन्ध रखनेवाला बीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है। तथा इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो जीव उपशमश्रेणि पर चढ़कर आनुपूर्वी संक्रमका प्रारम्भ कर देता है उसके पाँच प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानसे सम्बन्ध रखनेवाला बीस प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है। अतएव छह और पाँच प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें बीस प्रकृतियोंका संक्रम होता है यह बात सिद्ध हुई ॥८॥

---

१. ता०प्रतौ सम्मत्तसम्मामिच्छत्तचउ- इति पाठः।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

§ २९१. 'पंचसु च ऊणवीसा०' एसा णवमी गाहा १९, १८, १४, १३ चउण्हमेदेसिं संकमट्ठाणाणं पडिग्गहट्ठाणपरूवणट्ठमागया। तत्थ ताव 'पंचसु च ऊणवीसा' त्ति भणिदे पंचसु पयडीसु पडिग्गहभावमावण्णासु एऊणवीसाए संकमो होइ त्ति घेत्तव्वं। काओ ताओ पंच पयडीओ? पुरिसवेद-चउसंजलणसण्णिदाओ, इगिवीससंतकम्मियाणियट्टिउवसामगस्स लोभासंकमाणंतरमुवसामिदणवुंसयवेदस्स तप्पडि-

विशेषार्थ—प्रकृतिसंक्रमस्थानकी इस आठवीं गाथामें दो बातें बतलाई हैं। प्रथम बात तो यह बतलाई है कि अब तक जितने संक्रमस्थान और प्रतिग्रहस्थान कहे गये हैं उनके सिवा आगे जितने भी संक्रमस्थान और प्रतिग्रहस्थान कहे जांयगे वे सब उपशमश्रेणि और क्षपकश्रेणिमें ही होते हैं। तथा दूसरी यह बात बतलाई गई है कि २० प्रकृतिक संक्रमस्थानका छह और पांच प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानोंमें संक्रम होता है अन्यत्र नहीं। किन्तु श्वेताम्बर परम्परामें प्रसिद्ध कर्मप्रकृतिमें इस बीस प्रकृतिक संक्रमस्थानके प्रतिग्रहस्थान दो न बतलाकर ७, ६ और ५ प्रकृतिक तीन बतलाये हैं। इस मतभेदका कारण क्या है अब इस पर विचार कर लेना आवश्यक है। यह तो दोनों परम्पराओंमें समानरूपसे स्वीकार किया है कि उपशमश्रेणिमें अन्तरकरण क्रिया कर लेनेके बाद दूसरे समयसे आनुपूर्वी संक्रमका प्रारम्भ होता है। किन्तु आनुपूर्वी संक्रमके क्रमके विषयमें दोनों परम्पराओंमें थोड़ा मतभेद मिलता है। यतिवृषभ आचार्य ने अपनी चूर्णिमें बतलाया है कि अन्तर करनेके बाद प्रथम समयसे लेकर छह नोकषायोंका क्रोधमें संक्रम[1] होता है अन्य किसीमें संक्रम नहीं होता है। किन्तु श्वेताम्बर परम्परामें प्रसिद्ध कर्मप्रकृतिके उपशमनाकरणकी गाथा ४७ की चूर्णिमें लिखा है कि 'पुरुषवेद' की प्रथम स्थितिमें दो आवलि शेष रहने पर आगालका विच्छेद हो जाता है किन्तु अनन्तरवर्ती आवलिमेंसे उदीरणा होती रहती है। तथा उसी समयसे लेकर छह नोकषायोंके द्रव्यका पुरुषवेदमें संक्रम नहीं होता है।[2] इस मतभेदसे यह स्पष्ट हो जाता है कि कषायप्राभृतके अनुसार तो नपुंसकवेद और स्त्रीवेदका उपशम हो जानेके बाद पुरुषवेदकी प्रतिग्रहव्युच्छित्ति हो जाती है किन्तु कर्मप्रकृतिके अनुसार नपुंसकवेद और स्त्रीवेदका उपशम हो जानेके बाद भी पुरुषवेदमें प्रतिग्रहशक्ति बनी रहती है। यही कारण है कि कषायप्राभृतमें बीस प्रकृतिक संक्रमस्थानके ६ प्रकृतिक और ५ प्रकृतिक ये दो प्रतिग्रहस्थान बतलाये हैं और कर्मप्रकृतिमें बीस प्रकृतिक संक्रमस्थानके ७, ६ और ५ प्रकृतिक तीन संक्रमस्थान बतलाये हैं।

§ २९१. 'पंचसु च ऊणवीसा०' यह नौवीं गाथा १९, १८, १४ और १३ इन चार संक्रमस्थानोंके प्रतिग्रहस्थानका कथन करनेके लिये आई है। वहाँ गाथामें जो 'पंचसु च ऊणवीसा' पद कहा है सो इससे प्रतिग्रहरूप पांच प्रकृतियोंमें उन्नीस प्रकृतिक संक्रम होता है यह अर्थ लेना चाहिये। वे पांच प्रकृतियां कौन सी हैं? पुरुषवेद और चार संज्वलन ये पांच प्रकृतियां हैं जो प्रकृतमें प्रतिग्रहरूप हैं, क्योंकि इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले अनिवृत्तिकरण उपशामक जीवके लोभ संज्वलनका संक्रम न होनेके बाद नपुंसकवेदका उपशम हो जानेपर पांच प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानसे सम्बन्ध रखने वाला उन्नीस प्रकृतिक संक्रमस्थान देखा जाता है। 'अट्ठारस चदुसु०' यह

१. अंतरादो दुसमयकदादो पाये छण्णोकसाए कोधे संछुहदि ण अण्णम्हि कम्हि वि। कषाय० उपशा. चु. ६७९०

२. पुरिसवेयस्स पढमट्ठितिते दुयावलियसेसाए आगालो वोछिन्नो। अणंतरावलिगातो उदीरणा एति, ताहे छण्हं नोकसायाणं संछोभो णत्थि पुरिसवेदे, संजलणेसु संछुभन्ति। कर्मप्र० उपशा. गा. ४७ चु.

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बद्धेऊणवीससंकमट्ठाणोवलंभादो । 'अट्ठारस चदुसु०' एसो सुत्तस्स विदियावयवो अट्ठारसपयडिसंकमस्स चदुसु पडिग्गहपयडीसु संभवावहारणफलो, तेणेवित्थिवेदोवसमं करिय पुरिसवेदपडिग्गहवोच्छेदे कदे चउसंजलणपयडिपडिबद्धे पयदसंकमट्ठाणोवलंभादो । 'चोद्दस छसु०' एदेण वि सुत्तस्स तइज्जावयणेण चोद्दससंकमट्ठाणस्स छसु पयडीसु पडिबद्धत्तं परूविदं, चउवीससंतकम्मियाणियट्टिउवसामयस्स पुरिसवेदणवकबंधोवसामणावत्थाए[१] चउसंजलण-दोदंसणमोहसण्णिदछप्पयडिपडिग्गहेण पुरिसवेदेकारसकसाय-दोदंसणमोहपयडिपडिबद्धचोद्दससंकमट्ठाणोवलंभादो । 'तेरसयं छक्क-पणगम्हि' एदेण वि चउत्थावयवेण तेरससंकमट्ठाणस्स छक्क-पणएसु णिबंधणत्तं परूविदं । तत्थ ताव समणंतरपरूविदचोद्दससंकामएण पुरिसवेदोवसमे कदे तेरसपयडिसंकमो छप्पयडिपडिग्गहसंबंधिओ समुप्पज्जइ, पुव्वुत्तपडिग्गहपयडीणं छण्हं पि तत्थ तहावट्ठाणदंसणादो । एदस्स चेव कोहसंजलणपढमट्ठिदीए तिसु आवलियासु समयूणासु सेसासु तेरससंकमट्ठाणं पंचपयडिपडिग्गहियमुप्पज्जइ । अथवा अणियट्टिखवगेण अट्ठकसाएसु खविदेसु पंचपडिग्गहट्ठाणसंबंधियं तेरससंकमट्ठाणमुवलब्भइ ॥९॥

गाथाका दूसरा पद अठारह प्रकृतिक संक्रमस्थानका चार प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें संक्रम होता है यह अवधारण करानेके लिए दिया है, क्योंकि वही पूर्वोक्त जीव जब स्त्रीवेदका उपशम करके पुरुषवेदकी प्रतिग्रहव्युच्छित्ति कर देता है तब उसके चार संज्वलनरूप प्रतिग्रहस्थानसे सम्बन्ध रखनेवाला प्रकृत संक्रमस्थान उपलब्ध होता है। गाथाके 'चोद्दस छसु०' इस तीसरे चरण द्वारा भी चौदह प्रकृतिक संक्रमस्थान छह प्रतिग्रह प्रकृतियोंसे प्रतिबद्ध है यह बतलाया है, क्योंकि चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले अनिवृत्तिकरण उपशामकके पुरुषवेदके नवकबन्धकी उपशामना करते समय चार संज्वलन और दो दर्शनमोहनीय इन छह प्रकृतियोंके प्रतिग्रहरूपसे पुरुषवेद, ग्यारह कषाय और दो दर्शनमोहनीय प्रकृतियोंसे सम्बन्ध रखनेवाला चौदह प्रकृतिक संक्रमस्थान उपलब्ध होता है। गाथाके 'तेरसयं छक्क-पणगम्हि' इस चौथे चरण द्वारा भी तेरह प्रकृतिक संक्रमस्थान छह और पाँच प्रतिग्रह प्रकृतियोंमें प्रतिबद्ध है यह बतलाया है। यहाँपर समनन्तर पूर्व कहे गये चौदह प्रकृतियोंके संक्रामक जीवके द्वारा पुरुषवेदका उपशम कर लेने पर छह प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानसे सम्बन्ध रखनेवाला तेरह प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है, क्योंकि पूर्वोक्त छह प्रतिग्रह प्रकृतियाँ इस तेरह प्रकृतिक संक्रमस्थानके समय पूर्ववत् अवस्थित देखी जाती हैं। तथा इसी जीवके जब क्रोध संज्वलनकी प्रथम स्थितिमें एक समय कम तीन आवली काल शेष रह जाता है तब पांच प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानसे सम्बन्ध रखनेवाला तेरह प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है। अथवा अनिवृत्तिकरण गुणस्थानवर्ती क्षपकके द्वारा आठ कषायोंका क्षय कर देने पर पांच प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानसे सम्बन्ध रखनेवाला तेरह प्रकृतिक संक्रमस्थान प्राप्त होता है ॥ ९ ॥

विशेषार्थ—इस गाथामें १९, १८, १४ और १३ इन चार संक्रमस्थानोंका किस किस प्रतिग्रहस्थानमें संक्रम होता है यह बतलाया है। विशेष खुलासा टीकामें किया ही है। किन्तु

---

१. ता० -आ०प्रत्योः -सामणावट्ठाए इति पाठः।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

§ २९२. 'पंच चउक्के बारस०' एसा दसमगाहा १२, ११, १०, ९ चउण्ह-मेदेसिं संकमट्ठाणाणं पडिग्गहट्ठाणपरूवट्ठमागया। तत्थ पढमावयवेण बारससंकमट्ठाणस्स पंच-चदुक्कसण्णिदपडिग्गहट्ठाणेसु संभवावहारणं कीरदे, इगिवीससंतकम्मियखवगोव-सामगेसु जहाकमं लोभासंकम-छण्णोकसायोवसामणपरिणदेसु तहाविहसंभवोवलंभादो। 'एक्कारस पंचगे०' एदेण च विदियावयवेण पंच-तिग-चदुक्कसण्णिदेसु तिसु पडिग्गह-ट्ठाणेसु एक्कारसपयडिसंकमस्स विसयावहारणं कीरदे। तं कधं? खवगस्स णवुंसयवेदे खीणे पंचपडिग्गहट्ठाणाहारमेक्कारससंकमट्ठाणमुप्पज्जइ। अहवा चउवीसदिकम्मंसिएण दुविहकोहोवसमं काऊण कोहसंजलणपडिग्गहवोच्छेदे कदे तमेव संकमट्ठाणं तेणेव पडिग्गहट्ठाणेण पडिग्गहिदमुवजायदे, तत्थ माण-माया-लोहसंजलण-सम्मत्त[१]-सम्मामिच्छत्ताणं[२] कोहसंजलण-तिविहमाण-तिविहमाय-दुविहलोभ-मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्त-समूहारद्धपयदसंकमट्ठाणस्साहारभावोवलंभादो। पुणो इगिवीससंतकम्मिओवसामगेण

यहां एक बातका निर्देश कर देना आवश्यक प्रतीत होता है। बात यह है कि यहां अठारह प्रकृतिक संक्रमस्थानका चार प्रकृतिक एक प्रतिग्रहस्थान बतलाया है किन्तु कर्मप्रकृतिमें १८ प्रकृतिक संक्रमस्थानके ५ और ४ ये दो प्रतिग्रह स्थान बतलाये हैं। २१ प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके आनुपूर्वी संक्रमका प्रारम्भ हो जानेके बाद नपुंसकवेद और स्त्रीवेदका उपशम हो जानेपर यह अठारह प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है। तब कषायप्राभृतके अनुसार पुरुषवेद प्रतिग्रह प्रकृति नहीं रहती, अतः चार प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान ही प्राप्त होता है किन्तु कर्मप्रकृतिके अनुसार उसमें जब तक छह नोकषायोंका संक्रम होता रहता है तब तक पांच प्रकृतिक और उसके बाद चार प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान प्राप्त होता है। इस प्रकार मतभेदका यह कारण जानना चाहिये।

§ २९२. 'पंच-चउक्के बारस०' यह दसवीं गाथा १२, ११, १० और ९ इन चार संक्रम-स्थानोंके प्रतिग्रहस्थानोंका कथन करनेके लिये आई है। वहां गाथाके प्रथम चरणद्वारा बारह प्रकृतिक संक्रमस्थानके पांच प्रकृतिक और चार प्रकृतिक ये दो प्रतिग्रहस्थान सम्भव हैं यह अवधारण किया गया है, क्योंकि जो क्षपक आनुपूर्वी संक्रमका प्रारम्भ हो जानेके कारण लोभसंज्वलनका संक्रम नहीं कर रहा है उसके बारह प्रकृतिक संक्रमस्थानका पांच प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान उपलब्ध होता है और इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो उपशामक छह नोकषायोंका उपशमन कर रहा है उसके बारह प्रकृतिक संक्रमस्थानका चार प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान उपलब्ध होता है। 'गाथाके एक्कारस पंचगे०' इस दूसरे चरण द्वारा यह निश्चय किया गया है कि ग्यारह प्रकृतिक संक्रम-स्थानका पांच, चार और तीन प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानोंमें संक्रम होता है, क्योंकि क्षपक जीवके नपुंसकवेदका क्षय कर देने पर ग्यारह प्रकृतिक संक्रमस्थानका आधारभूत पांच प्रकृतिक प्रतिग्रह-स्थान उत्पन्न होता है। अथवा चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो उपशामक जीव दो प्रकारके क्रोधका उपशम करके क्रोध संज्वलनकी प्रतिग्रह व्युच्छित्ति कर देता है उसके उसी पूर्वोक्त प्रति-ग्रहस्थानसे सम्बन्ध रखनेवाला वही पूर्वोक्त संक्रमस्थान उत्पन्न होता है, क्योंकि वहाँ पर क्रोध-संज्वलन, तीन मान, तीन माया, दो लोभ, मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व इनके समूह रूप प्रकृत संक्रमस्थानका आधारभूत मान संज्वलन, माया संज्वलन, लोभ संज्वलन, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन पाँच प्रकृतिरूप प्रतिग्रहस्थान उपलब्ध होता है। तथा इक्कीस प्रकृतियोंकी

१. आ०प्रतौ -संजलणस्स सम्मत्त- इति पाठः। २. ता०प्रतौ सम्मत्तसम्माइट्ठीणं इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णवणोकसायोवसमे कदे तिविहकोह–माण–माया–दुविहलोहपयडिसमुदायणिप्पण्ण-मेक्कारसपयडिसंकमट्ठाणं चदुसंजलणपडिग्गहविसयं होऊण समुप्पज्जइ। एदस्स चेव कोहसंजलणपढमट्ठिदीए तिण्हमावलियाणं समयूणाणमवसेसे दुविहं कोहं तत्थासंकामेऊण माणसंजलणसरूवेण संकामेमाणस्स तक्काले तिण्हं संजलणपयडीणं पडिग्गहभावेण एक्कारससंकमट्ठाणमुप्पज्जइ। 'दसगं चउक्क-पणगे'—दसपयडिसंकमो चउक्क-पणयपडिग्गहट्ठाणविसए पडिणियदो त्ति दट्ठव्वो। तत्थ ताव चउवीससंतकम्मिएण तिविहकोहोवसमे कदे तिविहमाण-माया-दुविहलोह-मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्तसण्णिददसपयडिसंकमो माण-माया-लोहसंजलण–सम्मत्त–सम्मामिच्छत्तपंचपयडिपडिग्गहट्ठाणाहिट्ठाणो समुप्पज्जइ। एदस्स चेव माणसंजलणपढमट्ठिदीए समयूणावलियतियमेत्तावसेसे[1] दुविहं माणमेत्था-संकामेऊण मायासंजलणे संछुहमाणयस्स माया-लोहसंजलण-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त-चउपयडिपडिग्गहावेक्खो दसपयडिसंकमो होइ। अहवा खवगेण इत्थिवेदे खविदे दसपयडिसंकमट्ठाणं चउसंजलणपयडिपडिग्गहपडिबद्धमुप्पज्जइ। 'णवगं च तिगम्हि बोद्धव्वा' एदेण चउत्थावयवेण णवसंकमट्ठाणस्स तिण्हं पयडीणं पडिग्गहभावो परूविदो। तं जहा—इगिवीससंतकम्मिएण दुविहकोहोवसमे कदे कोहसंजलण-

सत्तावाला जो उपशामक जीव नौ नोकषायोंका उपशम कर देता है उसके प्रतिग्रहरूप चार संज्वलनोंका विषयभूत तीन प्रकारका क्रोध, तीन प्रकारका मान, तीन प्रकारकी माया और दो प्रकारका लोभ इन प्रकृतियोंका समुदायरूप ग्यारह प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है। यही जीव जब क्रोध संज्वलनकी प्रथम स्थितिमें एक समय कम तीन आवलि शेष रहने पर इसमें दो प्रकारके क्रोधका संक्रम न करके केवल मान संज्वलनका संक्रम करता है तब तीन संज्वलन प्रकृतियोंके प्रतिग्रहरूपसे ग्यारह प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है। 'दसगं चउक्क-पणगे' यह गाथाका तीसरा चरण है। इसमें चार प्रकृतिक और पाँचप्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानके विषयरूपसे दस प्रकृतिक संक्रमस्थान प्रतिनियत है यह बतलाया गया है। खुलासा इस प्रकार है—जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव तीन प्रकारके क्रोधका उपशम कर देता है उसके तीन प्रकारका मान, तीन प्रकारकी माया, दो प्रकार का लोभ, मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन दस प्रकृतियोंका संक्रम मान, माया और लोभ संज्वलन तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन पांच प्रतिग्रहरूप प्रकृतियोंके आधारसे उत्पन्न होता है। तथा जब यही जीव मान संज्वलनकी प्रथम स्थितिमें एक समयकम तीन अवलि कालके शेष रह जानेपर इसमें दो प्रकारके मानके संक्रमका अभाव करके माया संज्वलनमें संक्रम करता है तब मायासंज्वलन, लोभसंज्वलन, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन चार प्रतिग्रहरूप प्रकृतियोंकी अपेक्षा रखनेवाला दस प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है। अथवा जब क्षपक जीव स्त्रीवेदका क्षय कर देता है तब प्रतिग्रहरूप चार संज्वलन प्रकृतियोंसे सम्बन्ध रखनेवाला दस प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है। गाथाके 'णवगं च तिगम्हि बोद्धव्वा' इस चौथे चरण द्वारा नौ प्रकृतिक संक्रमस्थानका तीन प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान होता है यह बतलाया है। यथा—इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जिस जीवने दो प्रकारके क्रोधका उपशम कर दिया है उसके क्रोध संज्वलन, तीन प्रकारका

१. आ०प्रतौ -समयूणावलियएत्तियमेत्तावसेसे इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिविहमाण-माया-दुविहलोहपयडिसंकमो तिसु संजलणपयडीसु लब्भदे, ताहे कोह-संजलणणवकबंधस्स संकमं मोत्तूण पडिग्गहित्ताभावादो ॥१०॥

§ २९३. 'अट्ठ दुग तिग चदुक्के०' एसा एक्कारसमी गाहा ८, ७, ६, ५ एदेसिं चउण्हं संकमट्ठाणाणं पडिग्गहणियमपरूवणट्ठमागया। तत्थ पढमावयवो अट्ठपयडि-संकमस्स दुग-तिग-चदुक्केसु पडिग्गहट्ठाणेसु पडिबद्धपरूवणट्ठमागओ। इगिवीस-चउवीससंतकम्मियोवसामगेसु जहाकमं तिविहकोह-दुविह-माणोवसमेण परिणदेसु तिग-चउक्कपडिग्गहट्ठाणपडिबद्धपढमसमयअट्ठपयडिसंकमट्ठाणमुवलब्भदे, इगिवीससंतकम्मि-यस्स माणसंजलणपढमट्ठिदीए समयूणावलियतियमेत्तावसेसाए दुविहमाणं[1] तत्थासंकामिय संजलणमायाए संछुहमाणस्स माणसंजलणपडिग्गहसत्तिविरहेण[2] माया-लोभसंजलणाणं दोण्हमेव पडिग्गहभावेण अट्ठपयडिसंकमो लब्भइ। 'सत्त चदु०'—सत्तपयडिसंकमो चदुक्के तिगे च पडिणियदो बोद्धव्वो। चउवीससंतकम्मियस्स तिविहमाणोवसमाणंतरं चउण्हं पडिग्गहभावेण सत्तपयडिसंकमो लब्भदे। एदस्स चेव समयूणावलियतियमेत्त-मायासंजलणपढमट्ठिदिवारयस्स मायासंजलणपडिग्गहस्स विरामेण तिण्हं पडिग्गहत्त-

मान, तीन प्रकारकी माया और दो प्रकारका लोभ इन नौ प्रकृतियोंका तीन संज्वलन प्रकृतियोंमें संक्रम उपलब्ध होता है, क्योंकि तब क्रोधसंज्वलनके नवकबन्धका संक्रम तो होता है पर उसमें प्रतिग्रहपनेका अभाव रहता है ॥१०॥

विशेषार्थ—इस दसवीं गाथा द्वारा १२, ११, १० और ९ इन चार संक्रमस्थानोंके प्रतिग्रहस्थान बतलाये हैं। विशेष खुलासा टीकामें ही किया है।

§ २९३. 'अट्ठ दुग तिग चदुक्के०' यह ग्यारहवीं गाथा ८, ७, ६ और ५ इन चार संक्रम-स्थानोंके प्रतिग्रहस्थानोंका कथन करनेके लिये आई है। उसमें भी गाथाका प्रथम चरण आठ प्रकृतिक संक्रमस्थानका दो, तीन और चार प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानोंसे सम्बन्ध है यह बतलानेके लिये आया है। इक्कीस प्रकृतियोंकी या चौबीस प्रकृतियोंकी सत्ता रखनेवाले जिन उपशामक जीवोंने तीन प्रकारके क्रोध और दो प्रकारके मानका उपशम कर लिया है उनके प्रथम समयमें क्रमसे तीन प्रकृतिक और चार प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानोंसे सम्बन्ध रखनेवाला आठ प्रकृतिक संक्रमस्थान प्राप्त होता है, क्योंकि जो इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव मान संज्वलनकी प्रथम स्थितिमें एक समय कम तीन आवलि कालके शेष रह जाने पर दो प्रकारके मानका उसमें संक्रम न करके संज्वलन मायामें संक्रम करता है उसके मान संज्वलनमें प्रतिग्रहरूप शक्ति न रहनेके कारण मायासंज्वलन और लोभसंज्वलन इन दो प्रकृतियोंके प्रतिग्रहरूपसे आठ प्रकृतिक संक्रमस्थान उपलब्ध होता है। 'सत्त चदु०' इत्यादि गाथाका दूसरा चरण है। इस द्वारा चार प्रकृतिक और तीन प्रकृतिक इन दो प्रतिग्रहस्थानोंमें सात प्रकृतियोंका संक्रम प्रतिनियत जानना चाहिए। यथा—चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके तीन प्रकारके मानका उपशम होनेके बाद चार प्रकृतियोंके प्रतिग्रहरूपसे सात प्रकृतिक संक्रमस्थान प्राप्त होता है। तथा इसी जीवके मायासंज्वलनकी एक समय कम तीन आवलिप्रमाण प्रथम स्थिति शेष रहने पर माया संज्वलनमें प्रतिग्रह शक्ति न रहनेसे तीन प्रकृतिक

१. ता०प्रतौ दुविहं माणं इति पाठः। २. आ०प्रतौ -संजलणविग्गहसत्तिविरहेण इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संभवो दट्ठव्वो। 'छक्कं दुगम्हि णियमा'—छण्हं संकमो णियमा दुगम्हि पडिबद्धो बोद्धव्वो, एक्कावीसदिकम्मंसियस्स दुविहमाणोवसममस्सियूण तदुवलद्धीदो। 'पंच तिगे एक्कग दुगे वा'—पंचसंकमो तिगे दुगे एक्कगे वा होइ त्ति सुत्तत्थसंबंधो। तत्थ ताव चउवीससंतकम्मिएण दुविहमायोवसमे कदे मायासंजलण-दुविहलोह-मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्तपंचपयडिसंकमो लोहसंजलण-सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ततिविहपडिग्गहावेक्खो समुप्पज्जदि। पुणो इगिवीससंतकम्मियोवसामगेण तिविहमाणोवसमे कदे तिविहमाय-दुविहलोहसण्णिदपंचपयडिसंकमो माया – लोहसंजलणदुविहपडिग्गहट्ठाणावलंबणो समुप्पज्जइ। एदस्स चेव मायासंजलणपढमट्ठिदीए समयूणावलियतियमेत्तावसेसे दुविहं मायमसंकामियं[1] लोहसंजलणम्मि संछुहमाणस्स एगपयडिपडिग्गहपडिबद्धो पंचपयडिट्ठाण-संकमो होइ ॥११॥

§ २९४. 'चत्तारि तिग-चदुक्के०' एसा बारसमी गाहा ४, ३, २, १ चदुण्हमेदेसिं संकमट्ठाणाणं पडिग्गहणियमपरूवणट्ठमागया। एदिस्से पढमावयवो चदुपयडि-संकमस्स तिग-चदुक्केसु पडिबद्धत्तं परूवेदि, खवगस्स छण्णोकसायपरिक्खए चदुण्हं

प्रतिग्रहस्थानका सद्भाव जानना चाहिये। 'छक्कं दुगम्हि णियमा' यह गाथाका तीसरा चरण है। इस द्वारा छह प्रकृतियोंका संक्रम नियमसे दो प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानसे सम्बन्ध रखनेवाला जानना चाहिए, क्योंकि इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके दो प्रकारके मानके उपशमका आश्रय लेकर उक्त संक्रम व प्रतिग्रहस्थानकी उपलब्धि होती है। 'पंच तिगे एक्कग दुगे वा' यह गाथाका चौथा चरण है। तीन, दो और एक प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानोंमें पांच प्रकृतियोंका संक्रम होता है यह इस सूत्रवचनका तात्पर्य है। उसमें सर्वप्रथम जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव दो प्रकारकी मायाका उपशम कर लेता है उसके लोभ संज्वलन, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व इस तीन प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानसे सम्बन्ध रखनेवाला मायासंज्वलन, दो प्रकारका लोभ, मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व यह पांच प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है। तथा इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो उपशामक जीव तीन प्रकारके मानका उपशम कर देता है उसके माया संज्वलन और लोभ संज्वलन इस दो प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानसे सम्बन्ध रखनेवाला तीन प्रकारकी माया और दो प्रकारका लोभ यह पाँच प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है। तथा यही जीव जब माया संज्वलनकी प्रथम स्थितिमें एक समय कम तीन आवलि काल शेष रहने पर दो प्रकारकी मायाका माया संज्वलनमें संक्रम न करके लोभ संज्वलनमें संक्रम करने लगता है तब एक प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानसे सम्बन्ध रखनवाला पाँच प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है ॥ ११ ॥

विशेषार्थ—इस गाथामें आठ प्रकृतिक, सात प्रकृतिक, छह प्रकृतिक और पाँच प्रकृतिक इन चार संक्रमस्थानोंके कौन कौन प्रतिग्रहस्थान हैं यह बतलाया है। विशेष खुलासा टीकामें किया ही है।

§ २९४. 'चत्तारि तिग चदुक्के०' यह बारहवीं गाथा ४, ३, २ और १ इन चार संक्रमस्थानोंके प्रति ग्रहस्थानोंके नियमका कथन करनेके लिये आई है। इस गाथाका प्रथम चरण चार प्रकृतिक संक्रमस्थानका तीन और चार प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानोंसे सम्बन्ध है यह बतलाती है, क्योंकि

---

१. ता०प्रतौ मायमो (म) संकामिय, आ०प्रतौ मायमोसंकामिय इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चदुसु संकमोवलंभादो चउवीसदिकम्मंसियस्स तिविहमायोवसमे चदुण्हं तिसु संकमोवलद्धीदो च। 'तिण्णि तिगे एक्कगे च बोद्धव्वा' खवगस्स पुरिसवेदपरिक्खए तिण्हं तिसु संकमदंसणादो इगिवीस० उवसामगस्स दुविह-मायोवसमे तिण्हमेक्किस्से पडिग्गहत्तदंसणादो च। 'दो दुसु एक्काए वा' खवगस्स कोहे णिल्लेविदे इगिवीससंतकम्मियस्स च तिविहे मायोवसमे जादे जहाकमं दोण्हं दुसु एक्किस्से च संकमोवलंभादो चउवीसदिकम्मंसियस्स वि दुविहलोहोवसमे जादे दोण्हं दुसु संकमस्स संभवोवलंभादो। 'एगा एगाए बोद्धव्वा', संजलणमाणे खविदे परिप्फुडमेव तदुवलंभादो ॥१२॥

एक तो जिस क्षपकने छह नोकषायोंका क्षय कर दिया है उसके चार प्रकृतियोंका चार प्रकृतियोंमें संक्रम उपलब्ध होता है और दूसरे चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके तीन प्रकारकी मायाका उपशम हो जाने पर चार प्रकृतियोंका तीन प्रकृतियोंमें संक्रम उपलब्ध होता है। 'तिण्ण तिगे एक्कगे च बोद्धव्वा' यह गाथाका दूसरा चरण है। इस द्वारा तीन प्रकृतिक संक्रमस्थानका तीन और एक प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें संक्रम होता है यह बतलाया गया है, क्योंकि एक तो क्षपक जीवके पुरुषवेदका क्षय हो जाने पर तीन प्रकृतियोंका तीन प्रकृतियोंमें संक्रम देखा जाता है और दूसरे इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक जीवके दो प्रकारकी मायाका उपशम हो जानेपर तीन प्रकृतिक संक्रमस्थानका एक प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थान देखा जाता है। 'दो दुसु एक्काए वा' यह गाथाका तीसरा चरण है। इस द्वारा दो प्रकृतिक संक्रमस्थानका दो और एक प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें संक्रम होता है यह बतलाया है, क्योंकि क्षपक जीवके क्रोधका नाश हो जाने पर दो प्रकृतियोंका दो प्रकृतियोंमें और इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक जीवके तीन प्रकारकी मायाका उपशम हो जाने पर दो प्रकृतियोंका एक प्रकृतिमें संक्रम उपलब्ध होता है तथा चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके भी दो प्रकारके लोभका उपशम हो जानेपर दो प्रकृतियोंका दो प्रकृतियोंमें संक्रम उपलब्ध होता है। 'एगा एगाए बोद्धव्वा' इस द्वारा एक प्रकृतिक संक्रमस्थानका एक प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानमें संक्रम होता है यह बतलाया है, क्योंकि क्षपक जीवके संज्वलन मानका क्षय हो जानेपर स्पष्ट रूपसे उक्त संक्रमस्थान और प्रतिग्रहस्थान उपलब्ध होता है ॥१२॥

विशेषार्थ—इस गाथा द्वारा चार प्रकृतिक, तीन प्रकृतिक, दो प्रकृतिक और एक प्रकृतिक संक्रमस्थानोंके कौन कौन प्रतिग्रहस्थान हैं इसका खुलासा किया है। अब संक्रमस्थानों और प्रतिग्रहस्थानोंकी उक्त १० गाथाओंमें कही गई विशेषताका ज्ञान करनेके लिए कोष्ठक दिया जाता है—

सत्तास्था०	संक्रमस्था०	प्रकृतियां	प्रतिग्रहस्था०	प्रकृतियाँ	स्वामी
२८ प्र०	२७ प्र०	मिथ्यात्वके बिना सब	२२ प्र०	मिथ्यादृष्टिके बँधनेवाली २२ प्रकृतियाँ	२८ प्रकृतियोंकी सत्तावाला मिथ्यादृष्टि
२८ प्र०	२७ प्र०	सम्यक्त्वके बिना सब	१९ प्र०	अविरत सम्यग्दृष्टिके बँधनेवाली १७ प्रकृतियाँ व सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व	अविरत सम्यग्दृष्टि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्तास्था०	संक्रमस्था०	प्रकृतियाँ	प्रतिग्रहस्था०	प्रकृतियाँ	स्वामी
२८ प्र०	२७ प्र०	सम्यक्त्वके बिन	१५ प्र०	अप्रत्याख्यानावरण ४ के बिना पूर्वोक्त १९	देशविरत
२८ प्र०	२७ प्र०	,,	११ प्र०	प्रत्याख्यानावरण ४ के बिना पूर्वोक्त १५	संयत
२७ प्र०	२६ प्र०	पच्चीस कषाय और सम्यग्मिथ्यात्व	२२ प्र०	मिथ्यादृष्टि के बंधनेवाली २२ प्रकृतियाँ	मिथ्यादृष्टि २७ प्रकृतियोंकी सत्ता वाला
२८ प्र०	२६ प्र०	सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके बिना सब	१९ प्र०	पूर्वोक्त १९ प्र०	अविरतस० के प्रथम समयमें
२८ प्र०	२६ प्र०	,,	१५ प्र०	पूर्वोक्त १५ प्र०	देशवि० के प्र० समय में
२८ प्र०	२६ प्र०	,,	११ प्र०	पूर्वोक्त ११ प्र०	संयतके ,, ,,
२६ प्र०	२५ प्र०	२५ कषाय	२१ प्र०	२१ कषाय	२२ प्र० का बन्ध करनेवाला मिथ्यादृष्टि
२८ प्र०	२५ प्र०	२५ कषाय	२१ प्र०	२१प्र०का बन्धक	सासादन सम्य०
२८ प्र०	२५ प्र०	२५ कषाय	१७ प्र०	१७ प्र०का बन्धक	सम्यग्मिथ्यादृष्टि
२८ प्र०	२३ प्र०	चार अनन्तानुबन्धी व मिथ्यात्व के बिना २३ प्र०	२२ प्र०	पूर्वोक्त	एक अवलिकाल तक मिथ्यादृष्टि
२४ प्र०	२३ प्र०	चार अनन्तानुबन्धी व सम्यक्त्वके बिना	१९ प्र०	पूर्वोक्त	विसंयोजक अविरत सम्यग्दृष्टि

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

सत्तास्था०	संक्रमस्था०	प्रकृतियां	प्रतिग्रहस्था०	प्रकृतियां	स्वामी
२४ प्र०	२३ प्र०	चार अनन्तानुबन्धी व सम्यक्त्व के बिना	१५ प्र०	पूर्वोक्त	विसंयो० देशविरत
२४ प्र०	२३ प्र०	,, ,,	११ प्र०	पूर्वोक्त	विसंयो० प्रमत्त, अप्र०अपू०संयत
२४ प्र०	२३ प्र०	,, ,,	७	चार संज्वलन, पुरुषवेद सम्यक्त्व व सम्यग्मि०	अनिवृत्तिकरण उपशा०
२३ प्र०	२२ प्र०	चार अनन्तानुबन्धी मिथ्यात्व व सम्यक्त्व के बिना	१८ प्र०	पूर्वोक्त १९ में से सम्यग्मिथ्यात्वके कम कर देने पर	जिसने मिथ्यात्व की क्षपणा कर दी है ऐसा अविरत सम्यग्दृष्टि
२३ प्र०	२२ प्र०	,, ,,	१४ प्र०	१८ में से अप्रत्या० ४ के कम कर देने पर	मिथ्यात्वका क्षपक देशविरत
२३ प्र०	२२ प्र०	,, ,,	१० प्र०	१४ मेंसे प्रत्याख्या० ४ के कम कर देने पर	मिथ्यात्वका क्षपक प्रमत्त व अप्रमत्त
२४ प्र०	२२ प्र०	अनन्तानु० ४, सम्यक्त्व व संज्वलन लोभके बिना २२ प्र०	७ प्र०	पूर्वोक्त ७ प्र०	अनिवृत्ति० उपशा०
२८ प्र०	२१ प्र०	अनन्तानुबन्धी ४ व ३ दर्शनमोहके बिना	२१ प्र०	पूर्वोक्त २१ प्र०	सासादन सम्य० के एक आवलि तक
२१ प्र०	२१ प्र०	,, ,,	१७ प्र०	पूर्वोक्त १७ प्र०	क्षायिक अविरतस०
२१ प्र०	२१ प्र०	,, ,,	१३ प्र०	देशविरतके बंधने वाली १३ प्र०	क्षायिक० देशवि०
२१ प्र०	२१ प्र०	,, ,,	९ प्र०	चार संज्व, ५ नोकषाय	प्रथम आदि तीन क्षायिक सम्यग्दृष्टि
२४ प्र०	२१ प्र०	४अनन्ता०,सम्यक्त्व, संज्व० लोभ व नपुंसकवेदके बिना २१ प्र०	७ प्र०	पूर्वोक्त ७ प्र०	अनिवृत्ति० उपशा०

Jain Education International	For Private & Personal Use Only	www.jainelibrary.org

सत्तास्था०	संकमस्था०	प्रकृतियां	प्रतिग्रहस्था०	प्रकृतियां	स्वामी
२१ प्र०	२१ प्र०	१२ कषाय ९ नोकषाय	५ प्र०	चार संज्वलन व पुरुषवेद	क्षपक या उपशामक के अनिवृत्ति० के प्रारंभ में
२४ प्र०	२० प्र०	४अनन्ता०,सम्यक्त्व,संज्व० लोभ, नपुंसक वेद व स्त्रीवेदके बिना २० प्र०	६ प्र०	चार संज्व०, सम्य० व सम्यग्मिथ्यात्व	अनिवृत्ति उपशा०
२१ प्र०	२० प्र०	४ अनन्ता० ३ दर्शनमोह व संज्व० लोभके विना २० प्र०	५ प्र०	४ संज्वलन व पुरुषवे०	,, ,,
२१ प्र०	१९ प्र०	पूर्वोक्त २० मेंसे नपुंसकवेदके कम करनेपर १९ प्र०	५ प्र०	,, ,,	,, ,,
२१ प्र०	१८ प्र०	१९ मेंसे स्त्रीवेदके कम करने पर १८ प्र०	४ प्र०	४ संज्वलन०	,, ,,
२४ प्र०	१४ प्र०	पुरुषवेद,११ कषाय, मिथ्यात्व व सम्यग्मिथ्यात्व ये १४	६ प्र०	४ संज्व०, सम्यक्त्व व सम्यग्मिथ्यात्व ये ६प्र०	,, ,,
२४ प्र०	१३ प्र०	पूर्वोक्त १४ मेंसे पुरुषवेद कम कर देने पर १३ प्र०	६ प्र०	,, ,,	,, ,,
२४ प्र०	१३ प्र०	,, ,,	५ प्र०	मान आदि ३ संज्व०, सम्यक्त्व व सम्यग्मिथ्यात्व	,, ,,
१३ प्र०	१३ प्र०	४ संज्व० व ९ नोकषाय	५ प्र०	४ संज्वलन व पुरुषवेद	अनिवृत्ति०क्षपक
१३ प्र०	१२ प्र०	लोभके बिना ३ संज्व०व ९ नोकषाय ये १२ प्र०	५ प्र०	,, ,,	,, ,,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्तास्था०	संक्रमस्था०	प्रकृतियां	प्रतिग्रहस्था०	प्रकृतियां	स्वामी
२१ प्र०	१२ प्र०	संज्व० लोभ के बिना ११ कषाय व पुरुषवेद ये १२ प्र०	४ प्र०	४ संज्वलन	अनिवृत्ति० उपशा०
१२ प्र०	११ प्र०	लोभके बिना ३ संज्व० व नपुंसक वेदके बिना ८ नोकषाय ये ११ प्र०	५ प्र०	४ संज्व० व पुरुषवेद	अनिवृत्ति० क्षपक
२४ प्र०	११ प्र०	१ क्रोध, ३ मान, ३ माया, २ लोभ, मिथ्यात्व व सम्यग्मिथ्यात्व ये ११ प्र०	५ प्र०	मान आदि ३ संज्व; सम्यक्त्व व सम्यग्मि० ये ५ प्र०	अनिवृत्ति० उपशा०
२१ प्र०	११ प्र०	तीन क्रोध, तीन मान, तीन माया व दो लोभ	४ प्रकृ०	४ संज्वलन	क्षायिक सम्यग्दृष्टि उपशामक अनिवृत्ति
२१ प्र०	११ प्र०	,, ,,	३ प्रकृ०	मान आदि ३ संज्वलन	,, ,,
२४ प्र०	१० प्र०	३ मान, ३ माया, २ लोभ मिथ्यात्व व सम्यग्मिथ्यात्व	५ प्र०	मान आदि ३ संज्वलन, सम्यक्त्व व सम्यग्मिथ्यात्व	उपशामक अनि०
२४ प्र०	१० प्र०	,, ,,	४ प्र०	माया व लोभ संज्वलन व दो दर्शनमोह	,, ,,
११ प्र०	१० प्र०	६ नोकषाय, पुरुषवेद व लोभ के बिना ३ संज्व०	४ प्र०	चार संज्वलन	क्षपक ,,
२१ प्र०	९ प्र०	३ क्रोध, ३ मान ३ माया व २ लोभ	३ प्रकृ०	मान आदि ३ संज्वलन	क्षायिक सम्य० अनिवृत्ति उपशामक
२४ प्र०	८ प्र०	३ मान, ३ माया २ लोभ, मिथ्यात्व व सम्यग्मिथ्यात्व	४ प्र०	माया आदि २ संज्वलन, सम्यक्त्व व सम्यग्मिथ्यात्व	अनिवृत्ति० उपशामक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्तास्था०	संक्रमस्था०	प्रकृतियां	प्रतिग्रहस्था०	प्रकृतियां	स्वामी
२१ प्र०	८ प्र०	३ मान, ३ माया व २ लोभ	३ प्र०	मान आदि ३ संज्वलन	क्षायिक सम्य० अनिवृत्ति० उपशामक
२१ प्र०	८ प्र०	,, ,,	२ प्र०	माया व लोभ संज्वलन	,, ,,
२४ प्र०	७ प्र०	३ माया, २ लोभ मिथ्यात्व व सम्यग्मिथ्यात्व	४ प्र०	माया आदि २ संज्व०, सम्यक्त्व व सम्यग्मि०	अनिवृत्ति० उपशामक
२४ प्र०	७ प्र०	,, ,,	३ प्र०	संज्व० लोभ, सम्यक्त्व व सम्यग्मिथ्यात्व	,, ,,
२१ प्र०	६ प्र०	१ मान, ३ माया व २ लोभ	२ प्र०	माया व लोभ संज्वलन	क्षायिक सम्यग्दृष्टि अनिवृत्ति० उपशामक
२४ प्र०	५ प्र०	१ माया, २लोभ, मिथ्यात्व व सम्यग्मिथ्यात्व	३ प्र०	लोभसंज्व०, सम्य० व सम्यग्मि०	अनिवृत्ति० उपशामक
२१ प्र०	५ प्र०	३ माया व २ लोभ	२ प्र०	माया व लोभ संज्वलन	क्षायिक सम्य० अनि० उप०
२१ प्र०	५ प्र०	,, ,,	१ प्र०	संज्वलन लोभ	,, ,,
५ प्र०	४ प्र०	पुरुषवेद व लोभ के बिना तीन संज्वलन	४ प्र०	४ संज्वलन	क्षपक अनि०
२४ प्र०	४ प्र०	२ लोभ,मिथ्यात्व व सम्यग्मिथ्यात्व	३ प्र०	१ लोभ, सम्य० व सम्यग्मिथ्यात्व	उपशम स०अनि० उपशामक
४ प्र०	३ प्र०	लोभ के बिना ३ संज्वलन	३ प्र०	मान आदि ३ संज्वलन	क्षपक अनि०
२१ प्र०	३ प्र०	१ माया व २ लोभ	१ प्र०	संज्वलन लोभ	क्षायिक स०अनि० उपशामक
३ प्र०	२ प्र०	मान व माया संज्वलन	२ प्र०	माया व लोभ संज्वलन	क्षपक अनि०
२१ प्र०	२ प्र०	दो लोभ	१ प्र०	लोभ संज्वलन	क्षायिक स०अनि० उपशामक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ २९५. एवमेत्तिएण गाहासुत्तसंबंधेण संकमट्ठाणाणं पडिग्गहट्ठाणेसु णियमं कादूण संपहि तं मग्गणोवायभूदाणमत्थपदाणं परूवणट्ठमुत्तरं गाहासुत्तमोइण्णं—'अणुपुव्वमणणुपुव्वं'—पयडिट्ठाणसंकमे परूविज्जे पुव्वमेव इमे संकमट्ठाणाणं मग्गणोवाया अणुगंतव्वा, अण्णहा तव्विसयणिण्णयाणुप्पत्तीदो। के ते? अणुपुव्वं अणणुपुव्वमिच्चादओ। तत्थाणुपुव्विसंकमो एक्को, अणाणुपुव्विसंकमो विदिओ, दंसणमोहस्स खयमस्सियूण तदियो, तदक्खयमवलंबिय चउत्थो, चरित्तमोहोवसामगविसए पंचमो, चरित्तमोहक्खवणणिबंधणो छट्ठो एवमेदे संकमट्ठाणाणं मग्गणोवाया णादव्वा भवंति। एदेहि पुव्वुत्तसंकमट्ठाणाणं पडिग्गहट्ठाणाणमुप्पत्ती साहेयव्वा त्ति उत्तं होइ।

§२९६. एत्थाणुपुव्वीसंकमविसए संकमट्ठाणगवेसणे कीरमाणे चउवीससंतकम्मियोवसामगस्स ताव बावीस-इगिवीसादओ पुव्वुत्तकमेणाणुमग्गिदव्वा। तेसिं पमाणमेदं—२२, २१, २०, १४, १३, ११, १०, ८, ७, ५, ४, २। इगिवीससंतकम्मियस्स

सत्तास्था०	संक्रमस्था०	प्रकृतियां	प्रतिग्रहस्था०	प्रकृतियां	स्वामी
२४ प्र०	२ प्र०	मिथ्यात्व व सम्यग्मिथ्यात्व	२ प्र०	सम्यक्त्व व सम्यग्मिथ्यात्व	सूक्ष्मसांपराय व उपशांतमोह उपशामक
२ प्र०	१ प्र०	संज्वलन माया	१ प्र०	संज्वलन लोभ	क्षपक अनिवृत्ति

§ २९५. इस प्रकार इतने गाथासूत्रोंके सम्बन्धसे संक्रमस्थानोंका प्रतिग्रहस्थानोंमें नियम करके अब इस नियमका अन्वेषण करनेके उपायभूत अर्थपदोंका कथन करनेके लिये आगेका गाथासूत्र आया है—'अणुपुव्वमणणुपुव्वं' प्रकृतिस्थानोंके संक्रमका कथन करते समय सर्व प्रथम संक्रमस्थानोंके अन्वेषणके ये उपाय जानना चाहिये, अन्यथा उनका समुचित निर्णय नहीं किया जा सकता है।

शंका—वे अन्वेषण करनेके उपाय कौनसे हैं?

समाधान—आनुपूर्वी और अनानुपूर्वी इत्यादिक। उनमेंसे आनुपूर्वीसंक्रम यह प्रथम उपाय है, अनानुपूर्वीसंक्रम यह दूसरा उपाय है, दर्शनमोहके क्षयके आश्रयसे प्राप्त होनेवाला तीसरा उपाय है, दर्शनमोहके क्षयके न होनेसे सम्बन्ध रखनेवाला चौथा उपाय है, चारित्रमोहनीयकी उपशामनाको विषय करनेवाला पाँचवां उपाय है और चारित्रमोहकी क्षपणाके निमित्तसे होनेवाला छठा उपाय है। इस प्रकार ये संक्रमस्थानोंके अनुसंधान करनेके उपाय जानने चाहिये। इनके द्वारा पूर्वोक्त संक्रमस्थानों और प्रतिग्रहस्थानोंकी उत्पत्ति साध लेनी चाहिये यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

§ २९६. अब यहाँपर आनुपूर्वीसंक्रम विषयक संक्रमस्थानोंका अन्वेषण करने पर चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामकके पूर्वोक्त क्रमसे २२, २१ आदि प्रकृतिक संक्रमस्थान जानना चाहिये। उनका प्रमाण यह है—२२, २१, २०, १४, १३, ११, १०, ८, ७, ५, ४ और २।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वि वीसेक्कोणवीसपहुडयो तेणेव विहाणेणाणुगंतव्वा। तेसिं पमाणमेदं—२०, १९, १८, १२, ११, ९, ८, ६, ५, ३, २[1]। खवगस्स वि बारससंकमट्ठाणप्पहुडि एदाणि संकमट्ठाणाणि दट्ठव्वाणि—१२, ११, १०, ४, ३, २, १। अणाणुपुव्वीविसयाणं पि संकमट्ठाणाणमणुगमो कायव्वो। तेसिमेसा ठवणा—२७, २६, २५, २३, २२, २१, १३। एत्थेवोदरमाणमस्सियूण संभवंताणं संकमट्ठाणाणमणुमग्गणा कायव्वा, तेसिमणाणुपुव्विविसयाणमिह परूवणाए विरोहाभावादो।

§ २९७. संपहि 'झीणमझीणं च दंसणे मोहे' इच्चेदमत्थपदमवलंबिय संकमट्ठाणाणं मग्गणे कीरमाणे तत्थ ताव दंसणमोहक्खयमस्सियूण इगिवीससंतकम्मियाणुपुव्वी-संकमट्ठाणाणि चेव इगिवीससंकमट्ठाणब्भहियाणि लब्भंति। एत्थेव खवगसेढिपाओग्ग-संकमट्ठाणाणि वि वत्तव्वाणि, सव्वेसिमेव तेसिं दंसणमोहक्खवयपच्छाकालभावीणं तण्णिबंधणत्तसिद्धीदो। तदपरिक्खए च सत्तावीसादिसंकमट्ठाणाणि इगिवीसपज्जंताणि संभवंति त्ति वत्तव्वं। चउवीससंतकम्मियाणुपुव्वीसंकमट्ठाणाणि वि एत्थेव पवेसियव्वाणि।

§ २९८. संपहि 'उवसामगे च खवगे च' एदमत्थपदमवलंबिय[2] संकमट्ठाणमग्गणाए चउवीस-इगिवीससंतकम्मियोवसामग-खवगेसु जहाकमं तेवीस-इगिवीसप्पहुडिसंकम-

इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके भी उसी विधिसे २० और १९ आदि प्रकृतिक संक्रमस्थान जानना चाहिये। उनका प्रमाण यह है—२०, १९, १८, १२, ११, ९, ८, ६, ५, ३ और २। क्षपक जीवके भी बारह प्रकृतिक संक्रमस्थानसे लेकर ये संक्रमस्थान जानना चाहिये—१२, ११, १०, ४, ३, २ और १। इसी प्रकार अनानुपूर्वी संक्रमस्थानोंका भी विचार करना चाहिये। उनकी स्थापना इस प्रकार है—२७, २६, २५, २३, २२ २१ और १३। तथा यहीं पर उपशमश्रेणीसे उतरनेवाले जीवकी अपेक्षा भी जो संक्रमस्थान सम्भव हैं उनका विचार करना चाहिये, क्योंकि वे अनानुपूर्वीको विषय करते हैं इसलिये उनका यहाँ कथन करनेमें कोई विरोध नहीं आता है।

§ २९७. अब 'क्षीणमक्षीणं च दंसणे मोहे' इस अर्थपदकी अपेक्षा संक्रमस्थानोंका विचार करनेपर इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके जो पहले आनुपूर्वीसंक्रमस्थान कह आये हैं उनमें इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थानके मिला देने पर वे सबके सब दर्शनमोहके क्षयकी अपेक्षा संक्रम-स्थान प्राप्त होते हैं। तथा क्षपकश्रेणिके योग्य संक्रमस्थान भी यहीं पर कहने चाहिये, क्योंकि वे सब दर्शनमोहनीयके क्षय होनेके बाद होते हैं, इसलिये वे भी तन्निमित्तक सिद्ध होते हैं। और दर्शनमोहके क्षयके अभावमें सत्ताईस प्रकृतिक संक्रमस्थानसे लेकर इक्कीस प्रकृतिक संक्रम-स्थान तक छह होते हैं ऐसा कहना चाहिये। तथा चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके जो आनुपूर्वी संक्रमस्थान होते हैं उनका समावेश भी यहीं पर कर लेना चाहिये। अर्थात् २४ प्रकृतियों की सत्तावाले जीवके जितने संक्रमस्थान होते हैं वे भी दर्शनमोहके क्षयके अभावमें होते हैं अतः उनकी गणना भी दर्शनमोहके क्षयके अभावमें होनेवाले संक्रमस्थानोंमें हो जाती है।

§ २९८. अब 'उवसामगे च खवगे च' इस अर्थपदकी अपेक्षा संक्रमस्थानोंका विचार करने पर चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामकके और इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक

१. ता०- आ०प्रत्योः २, १ इति पाठः। २. ता०- आ०प्रत्योः -मद्धपदमवलंबिय इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ट्ठाणाणि वत्तव्वाणि, खवगोवसमसेढिपाओग्गसंकमट्ठाणाणं सव्वेसिमेत्थेव संभवदंसणादो। ओदरमाणमस्सियूण वि उवसमसेढीए संकमट्ठाणाणि लब्भंति। तं जहा—चउवीससंतकम्मिओ सुहुमोवसंतगुणट्ठाणेसु दुविहसंकामगो अद्धाक्खएण परिवडमाणगो अणियट्टिगुणट्ठाणपवेसकाले चेय दुविहं लोहं लोहसंजलणम्मि संकामेइ। तदो तत्थ चदुण्हं[2] संकमो तिसु पयडीसु पडिग्गहभावमावण्णासु संभवइ। पुणो जहाकमं तिविहमायतिविहमाण-तिविहकोह-सत्तणोकसाय-इत्थि-णवुंसयवेदाणमोकड्डणवावारेण परिणदस्स तस्सेव अट्ठण्हमेकारसण्हं चोद्दसण्हमेकावीसाए बावीसाए तेवीसाए च संकमट्ठाणाणि उप्पज्जंति—४, ८, ११, १४, २१, २२, २३। एवमिगिवीससंतकम्मियस्स वि परिवदमाणयस्स संकमट्ठाणाणमुप्पत्ती वत्तव्वा। ताणि च एदाणि—२[3], ६, ९, १२, १९, २०, २१, सव्वेसिमेदाणं पडिग्गहट्ठाणजोयणा च जाणिय कायव्वा ॥१३॥

और क्षपकके क्रमसे तेईस प्रकृतिक आदि और इक्कीस प्रकृतिक आदि संक्रमस्थान कहने चाहिये, क्योंकि क्षपक और उपशमश्रेणिके योग्य सभी संक्रमस्थान यहाँपर लिये गये हैं। तथा उपशमश्रेणिसे उतरनेवाले जीवकी अपेक्षा भी उपशमश्रेणिमें संक्रमस्थान प्राप्त होते हैं। यथा सूक्ष्मसाम्पराय और उपशान्तकषाय गुणस्थानोंमें दो प्रकृतियोंका संक्रम करनेवाला चौबीस प्रकृतियों की सत्तावाला जो जीव इन गुणस्थानोंका काल समाप्त होनेसे गिरकर अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें प्रवेश करता है उसके उस समय ही दो प्रकारके लोभका लोभ संज्वलनमें संक्रम करता है, इसलिये वहाँ प्रतिग्रहभावको प्राप्त हुई तीन प्रकृतियोंमें चार प्रकृतियोंका संक्रम होता है। फिर क्रमसे जब वही जीव तीन प्रकारकी माया, तीन प्रकारका मान, तीन प्रकारका क्रोध, सात नोकषाय, स्त्रीवेद और नपुंसकवेद इनका अपकर्षण करता है तब उसीके आठ, ग्यारह, चौदह, इक्कीस, बाईस और तेईस प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होते हैं। पूर्वोक्त सब स्थान ये हैं—४, ८, ११, १४, २१, २२ और २३। इसी प्रकार जो इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव उपशमश्रेणिसे च्युत होता है उसके भी संक्रमस्थानोंकी उत्पत्ति कहनी चाहिये। वे ये हैं—२, ६, ९, १२, १९, २० २१। इन सब स्थानों के प्रतिग्रहस्थानोंकी योजना जानकर कर लेना चाहिये ॥१३॥

विशेषार्थ—२७ प्रकृतिक संक्रमस्थानसे लेकर १ प्रकृतिक संक्रमस्थान तक जितने संक्रम स्थान हैं उनमेंसे पहले तो इस बातका विचार करना चाहिये कि इनमेंसे कितने संक्रमस्थान तो आनुपूर्वी क्रमसे उत्पन्न होते हैं और कितने आनुपूर्वीके बिना उत्पन्न होते हैं। अन्तरकरणके पश्चात् कर्मोंकी होनेवाली उपशमना या क्षपणाके अनुसार उत्तरोत्तर हीन क्रमको लिये हुए जो संक्रमस्थान उत्पन्न होते हैं वे आनुपूर्वी क्रमसे उत्पन्न हुए संक्रमस्थान कहलाते हैं और शेष अनानुपूर्वी संक्रमस्थान कहलाते हैं। इसी प्रकार जो संक्रमस्थानों और प्रतिग्रहस्थानोंके अन्वेषण करनेके अन्य उपायोंका निर्देश किया है सो उनका भी स्वरूप जान लेना चाहिये। उनके स्वरूपके कथन करनेमें कोई विशेषता न होनेसे यहाँपर हमने उसका निर्देश नहीं किया है। अब यहाँ आनुपूर्वी और अनानुपूर्वी क्रमसे प्राप्त होनेवाले संक्रमस्थानोंका सरलतासे ज्ञान करानेके लिये कोष्ठक दिया जाता है—

१. आ०प्रतौ -मेवत्थ इति पाठः। २. ता०प्रतौ तदो ति चदुण्हं, आ०प्रतौ तदो त्व चदुण्हं इति पाठः। ३. ता०-आ०प्रत्योः ३ इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ २९९. एवमेदीए गाहाए संकमट्ठाणाणं मग्गणोवायभूदाणि अत्थपदाणि परूविय संपहि संकम-पडिग्गह-तदुभयट्ठाणाणमादेसपरूवणट्ठं गदियादिचोद्दसमग्गणट्ठाणाणि परूवेमाणो गाहासुत्तमुत्तरं भणइ—'एक्केक्कम्हि य ट्ठाणे०' एक्केक्कम्हि ट्ठाणे संकम-पडिग्गह-तदुभयभेदभिण्णे गदियादिचोद्दसमग्गणट्ठाणविसेसिदजीवाणं गवेसणे कीरमाणे तत्थ केसु ट्ठाणेसु भवसिद्धिया जीवा होंति, केसु वा ट्ठाणेसु अभवसिद्धिया जीवा होंति, सेसमग्गणट्ठाणविसेसिदा वा जीवा केसु ट्ठाणेसु होंति त्ति पुच्छा कदा भवदि। एवमेदीए गाहाए भवियाभवियमग्गणाणं णामणिद्देसं कादूण सेसमग्गणाणं च 'जीवा वा' इदि एदेण सामण्णवयणेण संगहो कदो दट्ठव्वो। एत्थ भवियाभवियजीवेसु

आनुपूर्वी			अनानुपूर्वी		
२१ प्र० उपशा० संक्र० प्रति०	२४प्र० उपशा० संक्र० प्रति०	क्षपक संक्र० प्रति०	संक० प्रति०	उपश० श्रेणिसे पड़नेवाला २४प्र०	उपशमश्रेणिसे पड़नेवाला२१प्र०
२०······५	२२······७	१२······५	२७···२२,१९ १५,११	४······३	२······१
१९······५	२१······७	११······५	२६···· ,,	८······४	६······२
१८······४	२०······६	१०······४	२५···२१,१७	११······५	६······३
१२······४	१४······६	४······४	२३···२२,१६ १५,११,७	१४······६	१२······४
११······४	१३······६व५	३······३	२२···१८,१४ १०	२१······७	१९······५
९······४	११······५	२······२	२१···२१,१७ १३,९,५	१२······७	२०······५
८······३व२	१०······४	१······१	१३ ५	२३···७, ११	२१······५,६
६······२	८······४				
५······२व१	७······४				
३······१	५······३				
२······१	४······३				
	२······२				

§ २९९. इस प्रकार इस गाथा द्वारा संक्रमस्थानोंके अन्वेषणके उपायभूत अर्थपदोंका कथन करके अब संक्रमस्थानों, प्रतिग्रहस्थानों और तदुभयस्थानोंका आदेशकी अपेक्षा कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—अब 'एक्केक्कम्हि य ट्ठाणे०' इस द्वारा संक्रम, प्रतिग्रह और तदुभयरूप भेदोंसे अनेक भेदोंको प्राप्त हुए एक एक स्थानमें गति आदि चौदह मार्गणाओंवाले जीवोंका विचार करने पर उनमेंसे किन स्थानोंमें भव्य जीव होते हैं, किन स्थानोंमें अभव्य जीव होते हैं और किन स्थानोंमें शेष मार्गणावाले जीव होते हैं यह पृच्छा की गई है। इस प्रकार इस गाथामें भव्य और अभव्य मार्गणाका नाम निर्देश करके शेष मार्गणाओंका 'जीवा वा' इस सामान्य वचनद्वारा संग्रह किया गया है ऐसा जानना चाहिये। इस गाथामें भव्य और अभव्य जीवोंके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

काणि ट्ठाणाणि होंति त्ति अभणिदूण केसु ट्ठाणेसु भवियाभवियजीवा होंति त्ति भणंतस्साहिप्पाओ मग्गणट्ठाणाणं संकमट्ठाणेसु गवेसणे कदे वि मग्गणट्ठाणेसु संकमट्ठाणाणि गवेसिदाणि होंति त्ति एदेणाहिप्पाएण तहा णिद्देसो कदो त्ति घेत्तव्वो, इच्छावसेण तेसिमाधाराधेयभावोववत्तीदो ॥१४॥

§ ३००. एवमेदेण गाहासुत्तेण परूविदमग्गणट्ठाणाणं संकमट्ठाणाणं गुणट्ठाणेसु वि मग्गणा कायव्वा त्ति जाणावणट्ठमुवरिमगाहासुत्तमोइण्णं—'कदि कम्मि होंति ठाणा०' एत्थ पंचविहो भाववियप्पो ओदइयादिभेदेण तस्स विसेसो मिच्छाइट्ठिप्पहुडि जाव अजोगिकेवलि त्ति एदाणि गुणट्ठाणाणि, पंचविहभावे अस्सियूण तेसिमवट्ठिदत्तादो। तत्थ कम्हि गुणट्ठाणे कदे कदि संकमट्ठाणाणि होंति केत्तियाणि वा पडिग्गहट्ठाणाणि होंति त्ति एदेण सुत्तेण पुच्छा कदा भवदि। तत्थ ताव ओदइयभावपरिणदे मिच्छाइट्ठिगुणट्ठाणे सत्तावीसादीणि चत्तारि संकमट्ठाणाणि होंति—२७, २६, २५, २३। पडिग्गहट्ठाणाणि पुण दोण्णि चेव तत्थ संभवंति, बावीस-इगिवीसाणि मोत्तूणण्णेसिं

कितने स्थान होते हैं ऐसा न कहकर जो 'कितने स्थानोंमें भव्य और अभव्य जीव होते हैं' ऐसा कहा गया है सो यद्यपि इस कथन द्वारा मार्गणास्थानोंका संक्रमस्थानोंमें विचार करनेकी सूचना की गई है तथापि मार्गणास्थानोंमें संक्रमस्थानोंके अन्वेषण करनेके अभिप्रायसे ही उस प्रकारका निर्देश किया गया है यह अर्थ यहाँ लेना चाहिये, क्योंकि इच्छावश उनमें आधार-आधेयभाव की उत्पत्ति होती है ॥१४॥

विशेषार्थ—पूर्वमें जो संक्रमस्थानों, प्रतिग्रहस्थानों और तदुभयस्थानोंकी सूचना की गई है सो उनमेंसे भव्य, अभव्य और अन्य मार्गणावाले जीवोंके कौन स्थान कितने होते हैं इसके ज्ञान करनेकी इस गाथामें सूचना की गई है। यद्यपि गाथामें यह निर्देश किया गया है कि 'संक्रम, प्रतिग्रह और तदुभयरूप एक एक स्थानमेंसे किन स्थानोंमें भव्य, अभव्य या अन्य मार्गणावाले जीव होते हैं, इसका विचार करना चाहिये, तथापि इसका आशय यह है कि भव्य, अभव्य या अन्य मार्गणाओंमें जहाँ जितने स्थान सम्भव हों उनका विचार कर लेना चाहिये।' ऐसा अभिप्राय बिठानेके लिए यद्यपि विभक्ति परिवर्तन करना पड़ता है। पर ऐसा करनेमें कोई आपत्ति नहीं आती। साथ ही इससे ठीक अर्थका ज्ञान करनेमें सुगमता जाती है, इसलिये अर्थ करते समय यह परिवर्तन किया गया है।

§ ३००. इस प्रकार इस गाथासूत्रके द्वारा कहे गये मार्गणास्थानों और संक्रमस्थानोंका गुणस्थानोंमें भी विचार करना चाहिये यह जतानेके लिये आगेका गाथासूत्र आया है—'कदि कम्मि होंति ठाणा०' इसमें औदयिक आदिके भेदसे पाँच प्रकारके भावोंका निर्देश किया है। मिथ्यात्वसे लेकर अयोगिकेवली तक जो चौदह गुणस्थान हैं वे इन्हींके भेद हैं, क्योंकि पाँच प्रकारके भावोंका आश्रय लेकर ही वे अवस्थित हैं। उनमेंसे किस गुणस्थानमें कितने संक्रमस्थान और कितने प्रतिग्रहस्थान होते हैं यह इस गाथासूत्र द्वारा पृच्छा की गई है। उनमेंसे औदयिक भावरूप मिथ्यात्व गुणस्थानमें तो सत्ताईस प्रकृतिक आदि चार संक्रमस्थान होते हैं—२७,२६,२५, और २३। किन्तु वहाँ प्रतिग्रहस्थान दो ही होते हैं, क्योंकि वहाँ बाईस और इक्कीस प्रकृतिक प्रतिग्रहस्थानोंके सिवा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तत्थासंभवादो। तहा विदियगुणट्ठाणे पारिणामियभावपरिणदे पणुवीसेक्कवीससंकमट्ठाणाणि २५, २१, इगिवीसपडिग्गहट्ठाणं च होइ २१। एदीए दिसाए सेसगुणट्ठाणेसु वि पयदमग्गणा समयाविरोहेण कायव्वा। एदेण सामित्तणिद्देसो वि सूचिदो दट्ठव्वो, गुणट्ठाणवदिरेगेण सामित्तसंबंधारिहाणमण्णेसिमणुवलद्धीदो। तदो चेव तदणंतरपरूवणाजोग्गस्स कालाणुगमस्स सेसाणियोगद्दाराणं देसामासियभावेण परूवणाबीजमिदमाह—'समाणणा वाध केवचिरं' केवचिरं कालमेक्केक्कस्स संकमट्ठाणस्स समाणणा होइ किमेगसमयं दो वा समए इच्चादिकालविसेसावेक्खमेदं पुच्छासुत्तमिदि घेत्तव्वं ॥१५॥

§ ३०१. एवमेदाओ दो गाहाओ गुणट्ठाण-मग्गणट्ठाणेसु संकम-पडिग्गह-तदुभयट्ठाणपरूणाए तप्पडिबद्धसामित्तादिअणियोगद्दाराणं च बीजपदभूदे परूविय संपहि मग्गणट्ठाणेसु जत्थतत्थाणुपुव्वीए संकमट्ठाणाणमुवरिमसत्तगाहाहिं मग्गणं कुणमाणो तत्थ ताव पढमगाहाए गदिमग्गणाविसए संकमट्ठाणाणमियत्तावहारणं कुणइ—'णिरयगइ-अमर-पंचिंदिएसु०' एदिस्से गाहाए पुव्वद्धेण णिरय-देवगइ-पंचिंदियतिरक्खेसु पंचण्हं संकमट्ठाणाणं संभवावहारणं कयं दट्ठव्वं। काणि ताणि पंच संकमट्ठाणाणि ? सत्तावीस-छव्वीस-पणुवीस-तेवीस-इगिवीससण्णिदाणि—२७, २६, २५, २३, २१। कत्थमेत्थ

अन्य प्रतिग्रहस्थान सम्भव नहीं हैं। तथा पारिणामिक भावरूप दूसरे गुणस्थानमें पच्चीस और इक्कीस प्रकृतिक २५,२१ ये दो संक्रमस्थान और इक्कीस प्रकृतिक २१ एक प्रतिग्रहस्थान होता है। शेष गुणस्थानोंमें भी इसी प्रकार यथाविधि प्रकृत विषयका विचार कर लेना चाहिये। इस कथनसे स्वामित्वका निर्देश भी सूचित हुआ जानना चाहिये, क्योंकि गुणस्थानोंके सिवा स्वामित्वके योग्य अन्य वस्तु नहीं पाई जाती है। फिर इसके बाद कथन करनेके योग्य कालानुयोगद्वारका निर्देश करनेके लिये 'समाणणा वाध केवचिरं' यह पद कहा है जो देशामर्षकरूपसे शेष अनुयोगद्वारोंको सूचित करनेके लिये बीजभूत है। एक एक संक्रमस्थानकी कितने कालतक प्राप्ति होती है। क्या एक समय तक होती है या दो समय तक होती है इत्यादि रूपसे कालविशेषकी अपेक्षा रखनेवाला यह पृच्छासूत्र जानना चाहिये ॥१५॥

विशेषार्थ—इस गाथामें संक्रमस्थानों और प्रतिग्रहस्थानोंके स्वामी व कालके जान लेनेकी तो स्पष्ट सूचना की है किन्तु शेष अनुयोगद्वारों की सूचना नहीं की है। तथापि यह सूत्र देशामर्षक है अतः उनका सूचन हो जाता है।

§ ३०१. इस प्रकार गुणस्थानों और मार्गणास्थानोंमें संक्रमस्थानों, प्रतिग्रहस्थानों और तदुभयस्थानोंके कथनसे सम्बन्ध रखनेवाली और इन संक्रमस्थान आदिसे सम्बन्ध रखनेवाले स्वामित्व आदि अनुयोगद्वारोंके बीजभूत इन दो गाथाओंका कथन करके अब मार्गणास्थानोंमें यत्रतत्रानुपूर्वीके हिसाबसे आगेकी सात गाथाओं द्वारा संक्रमस्थानोंका विचार करते हुए उसमें भी सर्व प्रथम गाथाद्वारा गतिमार्गणामें संक्रमस्थानोंके प्रमाणका निश्चय करते हैं—'णिरयगइ-अमर-पंचिंदिएसु०' इस गाथाके पूर्वार्धद्वारा नरकगति, देवगति और पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें पाँच संक्रमस्थान सम्भव हैं यह बतलाया गया है।

शंका—वे पाँच संक्रमस्थान कौनसे हैं ?

समाधान—सत्ताईस, छब्बीस, पच्चीस, तेईस, और इक्कीस ये पाँच संक्रमस्थान हैं—२७, २६, २५, २३, २१।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचिंदियग्गहणेण चउगइसाहारणेण तिरिक्खाणमेव पडिवत्ती ? ण, पारिसेसियण्णाएण तत्थेव तप्पउत्तीए विरोहाभावादो। किमेवं चेव मणुसगईए वि होदि त्ति आसंकाए उत्तरमाह—'सव्वे मणुसगईए' मणुसगईए सव्वाणि वि संकमट्ठाणाणि संभवंति त्ति उत्तं होइ, सव्वेसिमेव तत्थ संभवे विरोहाभावादो। एत्थ ओघपरूवणा अणूणाहिया वत्तव्वा[1]। पंचिंदियतिरिक्खेसु कथं होइ त्ति आसंकाए इदमुत्तरं—'सेसेसु तिगं'। सेसग्गहणेण एइंदिय-विगलिंदियाणं गहणं कायव्वं, तेसु सत्तावीस-छव्वीस-पणुवीस-सण्णिदसंकमट्ठाणतियमेव संभवइ। एवमसण्णिपंचिंदिएसु वि वत्तव्वं, विसेसाभावादो त्ति पदुप्पायणट्ठमिदं वयणं—'असण्णीसु'[2]। असण्णिपंचिंदिएसु वि संकमट्ठाणत्तियमेवाणंतर-परूविदं संभवइ त्ति उत्तं होइ। अहवा 'सेसेसु तियं असण्णीसु' त्ति उत्ते सेसग्गहणेणा-सण्णिविसेसिदेण एइंदिय-विगलिंदियाणमसण्णिपंचिंदियाणं च संगहो कायव्वो, तेसिं सव्वेसिमसण्णित्तं पडि भेदाभावादो। तदो तेसु संकमट्ठाणतियमेवाणंतरपरूविदं होइ त्ति घेत्तव्वं। एत्थ णिरयादिगईसु संभवंताणं पडिग्गहट्ठाणाणं च जहागममणुगमो

शंका—इस गाथामें जो 'पंचिदिय' पदका ग्रहण किया है सो यह चारों गतियोंमें साधारण है। अर्थात् पंचेन्द्रिय चारों गतियोंके जीव होते हैं फिर उससे केवल तिर्यंचोंका ही ज्ञान कैसे किया गया है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि पारिशेष न्यायसे तिर्यंचोंमें ही इस पदकी प्रवृत्ति माननेमें कोई विरोध नहीं आता है।

क्या इसी प्रकार मनुष्य गतिमें भी संक्रमस्थान होते हैं ? इस प्रकारकी शंकाके होनेपर उसके उत्तररूपमें 'सव्वे मणुसगईए' यह सूत्रवचन कहा है। मनुष्यगतिमें सभी संक्रमस्थान सम्भव हैं यह इसका तात्पर्य है, क्योंकि वहाँ पर सभी संक्रमस्थानोंके होनेमें कोई विरोध नहीं आता है। यहाँ मनुष्यगतिमें ओघप्ररूपणा न्यूनाधिकतासे रहित पूरी कहनी चाहिए।

अब पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंसे अतिरिक्त तिर्यञ्चोंमें कौनसे संक्रमस्थान होते हैं ऐसी आशंका होनेपर उसके उत्तररूपमें 'सेसेसु तिगं' यह सूत्रवचन कहा है। यहाँ शेष पदसे एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रियोंका ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि उनमें सत्ताईस, छब्बीस और पच्चीस प्रकृतिक तीन संक्रमस्थान ही सम्भव हैं। तथा इसी प्रकार असंज्ञी पंचेन्द्रियोंमें भी कथन करना चाहिये, क्योंकि एकेन्द्रियों और विकलेन्द्रियोंके कथनसे इनके कथनमें कोई विशेषता नहीं है। इस प्रकार इस बातका कथन करनेके लिये सूत्रमें 'असण्णीसु' वचन दिया है। असंज्ञी पंचेन्द्रियोंमें भी पूर्वमें कहे गये तीन संक्रमस्थान ही होते हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है। अथवा 'सेसेसु तियं असण्णीसु' इस वचनमें जो 'शेष' पदका ग्रहण किया है सो इससे असंज्ञी विशेषणसे युक्त एकेन्द्रिय, विकलेन्द्रिय और असंज्ञी पंचेन्द्रियोंका संग्रह करना चाहिये, क्योंकि असंज्ञित्वकी अपेक्षा इन सबमें कोई भेद नहीं है। इसलिये उनमें वे ही तीन संक्रमस्थान होते हैं जिनका पूर्वमें उल्लेख कर आये हैं ऐसा यहाँ जानना चाहिये। यहाँ पर नरकादि गतियोंमें प्रतिग्रहस्थानोंका यद्यपि गाथासूत्रमें उल्लेख नहीं किया है तथापि आगमानुसार उनका विचार कर लेना चाहिये। तथा इसी प्रकार तदुभयस्थानोंका

---

१. आ०प्रतौ वत्तव्वा। अहवा पंचिंदिय-- इति पाठः। २. ता०प्रतौ वयणं असण्णिपंचिंदिएसु इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कायव्वो । तदो तदुभयट्ठाणाणि च परूवेयव्वाणि । एवं कए गइमग्गणा समप्पइ । एत्थेव काइंदिय-जोग-सण्णिमग्गणाणं च संगहो कायव्वो, सुत्तस्सेदस्स देसामासियत्तादो ॥१६॥

भी कथन कर लेना चाहिये। इस प्रकार कथन करने पर गतिमार्गणा समाप्त होती है। यहीं पर काय,इन्द्रिय,योग और संज्ञी मार्गणाका भी संग्रह करना चाहिये,क्योंकि यह सूत्र देशामर्षक है ॥१६॥

विशेषार्थ—इस गाथासूत्रमें चारों गतियोंमेंसे किसमें कितने संक्रमस्थान होते हैं इसका स्पष्ट उल्लेख किया है। उसमें भी तिर्यंच गतिमें एकेन्द्रियोंके कितने, विकलेन्द्रियोंके कितने और असंज्ञियोंके कितने संक्रमस्थान होते हैं इसका भी उल्लेख किया है। इतने निर्देशसे काय, इन्द्रिय, योग और संज्ञी मार्गणामें कहाँ कितने संक्रमस्थान होते हैं इसका भी ज्ञान हो जाता है इसलिये देशामर्षक रूपसे इस सूत्रद्वारा उन मार्गणाओंका भी यहाँ संकलन करनेके लिये निर्देश किया है। खुलासा इस प्रकार है—काय मार्गणाके स्थावर और त्रस ये दो भेद हैं। इनमेंसे स्थावर एकेन्द्रिय ही होते हैं और शेष सब त्रस होते हैं, इनमें मनुष्य भी सम्मिलित हैं। इसलिये स्थावरोंके २८,२७ और २६ ये तीन संक्रमस्थान तथा त्रसोंके सब संक्रमस्थान प्राप्त होते हैं, क्योंकि एकेन्द्रियोंके उक्त तीन और मनुष्योंके सब संक्रमस्थान बतलाये हैं। इन्द्रिय मार्गणाके एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय आदि पाँच भेद हैं। सो गाथा सूत्रमें एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय अर्थात् द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जीवोंके २७, २६ और २५ ये तीन संक्रमस्थान होते हैं इसका स्पष्ट निर्देश किया ही है। अब रहे पंचेन्द्रिय सो इनमें तिर्यंच पंचेन्द्रिय और शेष तीन गतियोंके सब जीव सम्मिलित हैं अतः इनके भी सब संक्रमस्थान प्राप्त होते हैं। योगके स्थूल रूपसे तीन भेद हैं और मनुष्योंके ये तीनों योग सम्भव हैं अतः प्रत्येक योगमें सब संक्रमस्थान सम्भव हैं यह सिद्ध होता है। यह तो हुआ सामान्य विचार किन्तु योगोंके उत्तर भेदोंकी अपेक्षासे विचार करने पर मनोयोगके चारों भेदोंमें और वचन योगके चारों भेदोंमें सब संक्रमस्थान सम्भव हैं, क्योंकि इनका सत्त्व मिथ्यात्व गुणस्थानसे लेकर उपशान्तकषाय गुणस्थान तक पाया जाना सम्भव है, इसलिये इनमें सब संक्रमस्थान बन जाते हैं। अब रहे काययोगके सात भेद सो औदारिककाययोग पर्याप्त अवस्थामें मनुष्योंके भी सम्भव है और मनुष्योंके सब संक्रमस्थान बतलाये हैं इसलिये इसमें सब संक्रमस्थान बन जाते हैं। औदारिकमिश्रकाययोग प्रथम, द्वितीय और चतुर्थ गुणस्थानकी अपर्याप्त अवस्थामें मनुष्य और तिर्यंचोंके ही होता है। यहाँ सयोगकेवली गुणस्थान अविवक्षित है। किन्तु ऐसी दशामें २७,२६,२५,२३ और २१ ये पाँच संक्रमस्थान सम्भव हैं शेष नहीं, इसलिये औदारिक मिश्रकाययोगमें ये पाँच संक्रमस्थान प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार वैक्रियिकमिश्रकाययोग और कार्मणकाययोगमें भी जानना चाहिये, क्योंकि इन योगोंका सम्बन्ध भी अपर्याप्त दशासे है तथा देवोंके ये ही संक्रमस्थान होते हैं अन्य नहीं। वैक्रियिक काययोग देव और नारकियोंके होता है, इसलिये देव और नारकियोंके जो भी संक्रमस्थान होते हैं वे वैक्रिय काययोगमें भी प्राप्त होते हैं। अब रहे आहारक और आहारकमिश्रकाययोग सो ये दोनों योग प्रमत्तसंयत गुणस्थानमें तो होते ही हैं साथ ही या तो वेदकसम्यग्दृष्टि प्रमत्तसंयतके होत हैं या क्षायिक सम्यग्दृष्टि प्रमत्तसंयतके होते हैं। इसलिये इनमें २७,२३, और २१ ये तीन ही संक्रमस्थान सम्भव हैं ऐसा जानना चाहिये। तथा संज्ञी मार्गणाके संज्ञी और असंज्ञी ये दो भेद हैं। सो इनमेंसे असंज्ञियोंके २७,२६ और २५ ये संक्रमस्थान होते हैं यह तो गाथामें ही बतलाया है। तथा मनुष्य संज्ञी ही होते हैं और मनुष्योंके सब संक्रमस्थान बतलाये हैं इसलिये संज्ञियोंके भी सब संक्रमस्थान सम्भव हैं यह बात सहज फलित हो जाती है। इस प्रकार इस गाथासूत्रसे काय आदि पूर्वोक्त चार गाथाओंमें कहाँ कितने संक्रमस्थान होते हैं यह कथन देशामर्षकभावसे सूचित हो जाता है यह बात सिद्ध हुई।

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

§ ३०२. एवं गइमग्गणमंतोभाविदकाइंदिय-जोग-सण्णियाणुवादं परूविय संपहि सम्मत्त-संजममग्गणगयविसेसपदुप्पायट्ठमुत्तरसुत्तं भणइ—'चदुर दुगं तेवीसा०' एत्थ जहासंखमहिसंबंधो कायव्वो। मिच्छत्ते चत्तारि संकमट्ठाणाणि, मिस्सगे दोण्णि, सम्मत्ते तेवीसं संकमट्ठाणाणि होंति। तत्थ मिच्छाइट्ठिम्मि सत्तावीस-छव्वीस-पणुवीस-तेवीससण्णिदाणि चत्तारि संकमट्ठाणाणि होंति—२७, २६, २५, २३। सम्मामिच्छाइट्ठिम्मि पणुवीस-इगिवीससण्णिदाणि दोण्णि संकमट्ठाणाणि भवंति—२५, २१। सम्मत्तोवलक्खियगुणट्ठाणे सव्वसंकमट्ठाणसंभवो सुगमो। कधमेत्थ पणुवीससंकमट्ठाणसंभवो त्ति णासंकणिज्जं, अट्ठावीससंतकम्मियोवसमसम्माइट्ठिपच्छायदसासणसम्माइट्ठिम्मि तदुवलंभादो। कधमेदस्स सम्माइट्ठिववएसो त्ति ण पच्चवट्ठाणं कायव्वं, दत्तुत्तरत्तादो। गाहापच्छद्धे वि जहासंखं णायावलंबणेण संबंधो जोजेयव्वो। तत्थ विरदे बावीस संकमट्ठाणाणि होंति, संजमोवलक्खियगुणट्ठाणेसु पणुवीससंकमट्ठाणं मोत्तूण सेसाणं

यद्यपि गाथामें केवल संक्रमस्थानोंका ही निर्देश किया है प्रतिग्रहस्थानों और तदुभयस्थानोंका निर्देश नहीं किया है तथापि संक्रमस्थानोंका ज्ञान हो जाने पर प्रतिग्रहस्थानों और तदुभयस्थानोंका ज्ञान सहज हो जाता है इसलिये उनका अलगसे निर्देश नहीं किया है इतना जानना चाहिये।

§ ३०२. इस प्रकार गति मार्गणा और उनके भीतर आई हुई काय, इन्द्रिय, योग और संज्ञी मार्गणाओंका कथन करके अब सम्यक्त्व और संयमगत विशेषताका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—'चदुर दुगं तेवीसा०' इनमें क्रमसे सम्बन्ध करना चाहिये। आशय यह है कि मिथ्यात्वमें चार, मिश्रमें दो और सम्यक्त्वमें तेईस संक्रमस्थान होते हैं। उनमेंसे मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें सत्ताईस, छब्बीस, पचीस और तेईस प्रकृतिक ये चार संक्रमस्थान होते हैं २७, २६, २५, २३। सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें पच्चीस और इक्कीस प्रकृतिक दो संक्रमस्थान होते हैं २५, २१। तथा सम्यक्त्व सहित गुणस्थानोंमें सब संक्रमस्थान सम्भव हैं सो यह कथन सुगम है।

शंका—सम्यक्त्व सहित गुणस्थानोंमें पच्चीस प्रकृतिक संक्रमस्थान कैसे सम्भव है ?

समाधान—ऐसी आशंका करना ठीक नहीं है, क्योंकि अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो उपशमसम्यग्दृष्टि जीव पीछेसे सासादनसम्यक्त्वमें वापिस आता है उसके पच्चीस प्रकृतिक संक्रमस्थान पाया जाता है।

शंका—इसे सम्यग्दृष्टि संज्ञा कैसे दी गई है ?

समाधान—ऐसी आशंका करना भी ठीक नहीं है, क्योंकि इसका उत्तर दिया जा चुका है। आशय यह है कि एक तो उपशमसम्यक्त्वके कालके भीतर ही सासादन सम्यक्त्वकी प्राप्ति होती है और दूसरे इसके सासादन गुणस्थानके प्राप्त हो जाने पर भी दर्शनमोहनीयकी तीन प्रकृतियोंका अनुदय बना रहनेके कारण मिथ्यात्व भाव प्रकट नहीं होता है इसलिये सासादन-सम्यग्दृष्टिको सम्यग्दृष्टि संज्ञा दी है। गाथाके उत्तरार्धमें भी यथासंख्य न्यायका अवलम्बन लेकर पदों का सम्बन्ध कर लेना चाहिये। यथा—विरतके बाईस संक्रमस्थान होते हैं क्योंकि संयमसे युक्त गुणस्थानोंमें पच्चीस प्रकृतिक संक्रमस्थानके सिवा शेष सभी संक्रमस्थान पाये जाते हैं।

---

१. आ०प्रतौ -मग्गणामंतोभाविद- इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सव्वेसिमेव संभवोवलंभादो । एदं संजमसामण्णावेक्खाए भणिदं । संजमविसेसविवक्खाए पुण सामाइय-छेदोवट्ठावणसुद्धिसंजमेसु वावीसण्हं पि संकमट्ठाणाणं संभवो णाण्णत्थ । तं कधं ? परिहारसुद्धिसंजमम्मि २७, २३, २२, २१ एदाणि चत्तारि संकमट्ठाणाणि मोत्तूण सेसाणि सव्वाणि वि सुण्णट्ठाणाणि । सुहुम०-जहाक्खाद०संजमेसु वि संकमट्ठाण-मेक्कं चेव संभवइ, चउवीससंतकम्मियमस्सियूण तत्थ दोण्हं पयडीणं संकमोवलंभादो । मिस्सग्गहणमेत्थ संजमासंजमस्स संगहट्ठं । तदो तम्मि पंच संकमट्ठाणाणि होंति त्ति संबंधो । ताणि च एदाणि—२७, २६, २३, २२, २१[1] । असंजमोवलक्खिए गुणट्ठाणे इमाणि चेव पणुवीसब्भहियाणि संभवंति त्ति सुत्ते छक्कणिद्देसो कओ । ताणि चेदाणि—२७, २६, २५, २३, २२, २१ ॥१७॥

§ ३०३. एवं सम्मत्त-संजममग्गणासु संकमट्ठाणाणमियत्तासंभवं णिद्धारिय लेस्सा-मग्गणाए तदियत्तासंभवावहारणट्ठमुत्तरसुत्तं भणइ—'तेवीस सुक्कलेस्से०' सुक्कलेस्सापरिणदे जीवे तेवीसं पि संकमट्ठाणाणि भवंति, तत्थ तस्संभवे विरोहाभावादो । तेउ-पम्मलेस्सासु पुण सत्तावीसादीणमिगिवीसपज्जंताणं संभवदंसणादो छक्कणियमो—२७, २६, २५, २३, २२, २१[2] । 'पणगं पुण काऊए' काउलेस्साए पंचेव संकमट्ठाणाणि होंति, अणंतर-

यह कथन सामान्य संयमकी अपेक्षासे किया है । संयमविशेषोंकी अपेक्षासे तो सामायिक और छेदोपस्थापनाशुद्धिसंयममें बाईस ही संक्रमस्थान सम्भव हैं किन्तु अन्य संयमोंमें ये बाईस संक्रमस्थान सम्भव नहीं है । जैसे परिहारसुद्धिसंयममें २७,२३,२२ और २१ इन चार संक्रम-स्थानोंके सिवा शेष सब संक्रमस्थान नहीं होते । सूक्ष्मसम्परायसंयम और यथाख्यातसंयममें भी केवल एक संक्रमस्थान सम्भव है, क्योंकि चौबीस प्रकृतिक सत्कर्मवाले जीवकी अपेक्षा वहाँ दो प्रकृतियोंका संक्रम उपलब्ध होता है । सूत्रमें मिश्र पद संयमासंयमके संग्रह करनेके लिये ग्रहण किया है, इसलिये संयमासंयम गुणस्थानमें पाँच संक्रमस्थान होते हैं ऐसा सम्बन्ध करना चाहिये । वे पाँच संक्रमस्थान २७,२६,२३,२२ और २१ ये हैं । तथा असंयम सहित गुणस्थानोंमें पच्चीस प्रकृतिक संक्रमस्थानके साथ ये पूर्वोक्त पाँच ही संक्रमस्थान होते हैं, इसलिए सूत्रमें 'छह' पदका निर्देश किया है । वे छह संक्रमस्थान २७,२६,२५,२३,२२ और २१ ये हैं ॥१७॥

विशेषार्थ—इस गाथा द्वारा मिथ्यादृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि, सम्यग्दृष्टि, विरत, विरताविरत और अविरत जीवोंमेंसे प्रत्येकके कितने संक्रमस्थान होते हैं इसका निर्देश किया है ।

§ ३०३. इस प्रकार सम्यक्त्व मार्गणा और संयम मार्गणामें संक्रमस्थानोंके परिमाणका निर्धारण करके अब लेश्यामार्गणामें संक्रमस्थानोंके परिमाणका निश्चय करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—'तेवीस सुक्कलेस्से०' शुक्ललेश्यावाले जीवोंमें तेईस ही संक्रमस्थान होते हैं, क्योंकि वहाँ पर इनके होनेमें कोई विरोध नहीं आता । पीतलेश्या और पद्मलेश्यामें तो सत्ताईससे लेकर इक्कीस तक ही संक्रमस्थान देखे जानेसे छहका नियम किया है—२७,२६,२५,२३,२२ और २१ । 'पणगं पुण काऊए' कापोत लेश्यामें पाँच ही संक्रमस्थान होते हैं, क्योंकि पीछे जो छह संक्रमस्थान

१. आ०प्रतौ २७, २६, २५, २३, २२, २१ इति पाठः । २. ता० प्रतौ १२ इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परूविदट्ठाणेसु बावीसाए बहिब्भावदंसणादो। कुदो पुण तत्थ तब्बहिब्भावो ? ण, सुहत्तिलेस्साविसयस्स तस्स तदण्णत्थ उत्तिविरोहादो। एवं णीललेस्साए किण्हलेस्साए च वत्तव्वं, विसेसाभावादो। एवं लेस्सामग्गणाए संकमट्ठाणाणुगमो समत्तो ॥१८॥

§ ३०४. 'अवगयवेद-णवुंसय०' एसा गाहा वेदमग्गणाए संकमट्ठाणमियत्ता-परूवणट्ठमागया। एत्थ अट्ठारसादीणमवगदवेदादीहि जहासंखमहिसंबंधो कायव्वो। कुदो एदं णव्वदे ? 'आणुपुव्वीए' इदि सुत्तवयणादो। तत्थावगदवेदजीवम्मि अट्ठारस-संकमट्ठाणाणि संभवंति, सत्तावीसादीणं पंचण्हं एत्थ सुण्णट्ठाणत्तोवएसादो—२७, २६, २५, २३, २२। तदो एदाणि मोत्तूण सेसाणमवगदवेदमग्गणाए संभवो त्ति तेसिमिमो णिद्देसो कीरदे—चउवीससंतकम्मिओवसामगो पुरिसवेदोदएण सेढिमारूढो अणियट्टिट्ठाणम्मि लोभस्सासंकमगो[1] होऊण कमेण णउंस-इत्थिवेद-छण्णोकसायाणमुव-

बतला आये हैं उनमेंसे बाईस प्रकृतिक संक्रमस्थान कापोत लेश्यामें नहीं पाया जाता।

शंका—बाईस प्रकृतिक संक्रमस्थान कापोत लेश्यामें क्यों नहीं पाया जाता ?

समाधान—नहीं, क्योंकि बाईसप्रकृतिक संक्रमस्थान तीन शुभ लेश्याओंके सद्भावमें ही होता है, इसलिये उसकी अन्य लेश्याओंके रहते हुए प्रवृत्ति माननेमें विरोध आता है।

इसी प्रकार नीललेश्या और कृष्णलेश्यामें भी उक्त पांच संक्रमस्थान होते हैं ऐसा कथन करना चाहिये, क्योंकि कापोतलेश्यासे इन दोनों लेश्याओंमें एतद्विपयक कोई विशेषता नहीं है।

विशेषार्थ—शुक्ललेश्या प्रारम्भके ग्यारह गुणस्थानोंमें ही सम्भव है, इसलिये इसमें सब संक्रमस्थान बतलाये हैं। पद्मलेश्या और पीतलेश्या प्रारम्भके सात गुणस्थानों तक ही सम्भव हैं किन्तु इन सात गुणस्थानोंमें २७,२६,२५,२३,२२ और २१ ये छह संक्रमस्थान ही सम्भव है, इसलिये इन लेश्याओंमें ये छह संक्रमस्थान बतलाये है। अब रहीं तीन अशुभ लेश्याएं सो एक तो वे प्रारम्भके चार गुणस्थानों तक ही पाई जाती हैं और दूसरे इनके सद्भावमें दर्शनमोहनीयकी क्षपणा सम्भव नहीं है, इसलिये इन तीन लेश्याओंमें २२ प्रकृतिक संक्रमस्थानके सिवा २७,२६,२५, २३ और २१ ये पाँच संक्रमस्थान बतलाये हैं।

इस प्रकार लेश्यामार्गणामें संक्रमस्थानोंका विचार समाप्त हुआ ॥१८॥

§ ३०४. 'अवगयवेद-णवुंसय' यह गाथा वेदमार्गणामें संक्रमस्थानोंके परिमाणका कथन करनेके लिये आई है। यहाँ पर अठारह आदि पदोंका अवगदवेद आदि पदोंके साथ क्रमसे सम्बन्ध करना चाहिये।

शंका—यह कैसे जाना जाता है ?

समाधान—सूत्रमें आये हुए 'आनुपूर्वी' इस वचनसे जाना जाता है। उनमेंसे अपगत-वेदी जीवके अठारह संक्रमस्थान सम्भव हैं, क्योंकि यहाँ सत्ताईस आदि पाँच स्थान नहीं होते ऐसा आगमका उपदेश है। वे पाँच शून्यस्थान ये हैं—२७,२६,२५,२३ और २२। यत: इन पाँच संक्रम-स्थानोंके सिवा शेष सब संक्रमस्थान अपगतवेदमार्गणामें सम्भव हैं अतः यहाँ उनका निर्देश करते हैं—जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशामक जीव पुरुषवेदके उदयसे श्रेणि पर चढ़ता है वह अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें पहुँचकर पहले लोभसंज्वलनके संक्रमका अभाव करता है फिर

१. ता०प्रतौ संकमणं (गो) आ०प्रतौ संकमगो इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सामणाए परिणदो अवगदवेदत्तमुवणमिय चोद्दसण्हं संकामगो होइ १ । पुणो पुरिसवेद-णवकबंधमुवसामिय तेरसण्हं संकामयत्तमुवगओ २ दुविहकोहोवसामणाए एक्कारस-संकामयत्तं पडिवण्णो ३ कोहसंजलणोवसामणवावारेण दसण्हं संकामयत्तमणुपालिय ४ दुविहमाणोवसामणाए परिणमिय अट्ठण्हं संकामयभावमुवगओ ५ माणसंजलणोवसामणाए सत्तण्हं संकामओ होऊण ६ दुविहमायमुवसामिय पंचण्हं संकमस्स सामिओ जादो ७ । पुणो मायासंजलणोवसामणाणंतरं चउण्हं संकामयत्तमुवणमिय ८ दुविहलोहोवसामणा-वावदो दोण्हं संकामओ जायदे ९ । एवमेदाणि णवसंकमट्ठाणाणि पुरिसवेदोदइल्ल-चउवीससंतकम्मियमस्सियूण अवगयवेदट्ठाणम्मि लब्भंति ।

§ ३०५. संपहि इगिवीससंतकम्मिओवसामगस्स पुरिसवेदोदएण सेढिं चढिदस्स आणुपुव्वीसंकमाणंतरमुवसामिदणवुंसय-इत्थिवेद-छण्णोकसायस्स बारससंकमट्ठाणमवगद-वेदपडिबद्धमुप्पज्जइ । पुणो दुविहकोह-दुविहमाण-दुविहमायापयडीणमुवसामणपज्जाएण परिणदस्स जहाकमं णवण्हं छण्णं तिण्हं संकमट्ठाणाणि समुप्पज्जंति । एवमेदाणि चत्तारि चेव संकमट्ठाणाणि एत्थ लब्भंति, सेसाणं पुणरुत्तभावदंसणादो । एदाणि पुव्विल्लेहि सह मेलाविदाणि तेरस संकमट्ठाणाणि होंति । पुणो तस्सेव णउंसयवेदोदएण सेढिं चढिदस्स आणुपुव्वीसंकमाणंतरमुवसामिद-णवुंसय-इत्थिवेदस्स वेदपरिणामविरहेणाव-

क्रमसे नपुंसकवेद, स्त्रीवेद और छह नोकषायोंका उपशम करनेके बाद अपगतवेदी होकर चौदह प्रकृतियोंका संक्रामक होता है १ । फिर पुरुषवेदके नवकबन्धका उपशम करके तेरह प्रकृतियोंका संक्रामक होता है २ । फिर दो प्रकारके क्रोधका उपशम हो जाने पर ग्यारह प्रकृतिक संक्रमस्थान-को प्राप्त होता है ३ । फिर क्रोधसंज्वलनके उपशमन द्वारा दस प्रकृतिक संक्रमस्थानको प्राप्त करके ४ दो प्रकारके मानका उपशम करके आठ प्रकृतिक संक्रमस्थानको प्राप्त होता है ५ । फिर मान-संज्वलनका उपशम हो जाने पर सात प्रकृतिक संक्रमस्थानको प्राप्त करके ६ अनन्तर दो प्रकारकी मायाको उपशमा कर पाँच प्रकृतिक संक्रमस्थानका स्वामी होता है ७ । फिर माया संज्वलनके उपशमानेके बाद चार प्रकृतिक संक्रमस्थानको प्राप्त करके ८ अनन्तर दो प्रकारके लोभका उपशम हो जाने पर दो प्रकृतियोंका संक्रामक होता है ९ । इस प्रकार जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव पुरुषवेदके उदयसे उपशमश्रेणि पर चढ़ कर अपगतवेदी होता है उसके अपगतवेदस्थानमें ये नौ संक्रमस्थान प्राप्त होते हैं ।

§ ३०५. अब पुरुषवेदके उदयसे श्रेणिपर चढ़े हुए इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक जीवके आनुपूर्वी संक्रमके बाद नपुंसकवेद, स्त्रीवेद और छह नोकषायोंका उपशम हो जाने पर अपगतवेदसे सम्बन्ध रखनेवाला बारह प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है । फिर दो प्रकारके क्रोध, दो प्रकारके मान और दो प्रकारकी माया इन प्रकृतियोंके उपशमभावसे परिणत हुए जीवके क्रमसे नौ, छह और तीन प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होते हैं । इस प्रकार यहां ये चार ही संक्रम-स्थान प्राप्त होते हैं, क्योंकि शेष संक्रमस्थान पुनरुक्त देखे जाते हैं । इन चारको पहलेके नौ संक्रम-स्थानोंमें मिला देनेपर तेरह संक्रमस्थान होते हैं । फिर जब यही नपुंसकवेदके उदयसे श्रेणिपर चढ़कर आनुपूर्वीसंक्रमके बाद नपुंसकवेद और स्त्रीवेदका उपशम करके वेदपरिणामसे रहित होकर

१. ता०प्रतौ णक्क इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गदवेदभावमुवगयस्स संकमट्ठारसपयडिपडिबद्धमेक्कं चेव पुणरुत्तभावविरहिदमुवलब्भइ, एत्तो उवरिमाणं पुणरुत्तभावदंसणादो। एदस्स चेव सेढीदो ओदरमाणयस्स बारसकसाय-सत्तणोकसायाणमोक्कड्डणावावदस्स पयदमग्गणाविसयमेगूणवीससंकमट्ठाणमपुणरुत्त-मुप्पज्जदे, तेणेदेसिं दोण्हं संकमट्ठाणाणं पुव्विल्लेहि सह मेलणे कदे पण्णारस संकम-ट्ठाणाणि होंति। एवं चेव णवुंसयवेदोदयसहगदचउवीससंतकम्मियस्स वि चढणोव-यरणवावदस्स दोण्हमपुणरुत्तसंकमट्ठाणाणमुप्पत्ती वत्तव्वा, तत्थ जहाकमं पुव्वुत्तपदेसु वीसेक्कवीसाणमवगदवेदसंबंधेण समुप्पज्जंताणमुवलंभादो। एदाणं पुव्विल्लसंकमट्ठाणाण-मुवरि पक्खेवे कदे सत्तारससंकमट्ठाणाणि पयदविसए लद्धाणि भवंति। खवगस्स वि पुरिस-णवुंसयवेदोदइल्लस्स चउक्कदसगप्पहुडीणि अवगदवेयसंकमट्ठाणाणि पुणरुत्ताणि चेव समुप्पज्जंति। णवरि सव्वपच्छिममेक्किस्से संकमट्ठाणमपुणरुत्तमुवलब्भदे। तदो एदेण सह अट्ठारससंकमट्ठाणाणि अवगदवेदजीवपडिबद्धाणि भवंति।

§ ३०६. संपहि णवुंसयवेदमग्गणाए णव संकमट्ठाणाणि होंति त्ति विदिओ सुत्तावयवो। तत्थ सत्तावीसादीणि इगिवीसपज्जंताणि छ संकमट्ठाणाणि सेढीदो हेट्ठा चेव णिरुद्धवेदोदयम्मि लब्भंति। इगिवीससंतकम्मियोवसामगस्स आणुपुव्वीसंकम-मस्सियूण वीससंकमट्ठाणमेत्थोवलब्भदे। पुणो णवुंसयवेदोदएण सेढिमारूढस्स खवगस्स अट्ठकसायक्खवणेण तेरससंकमट्ठाणमुवलब्भइ। तस्सेवाणुपुव्वीसंकमपरिणदस्स

अपगतवेदभावको प्राप्त हो जाता है तब उसके मात्र अठारह प्रकृतिक संक्रमस्थान अपुनरुक्त उपलब्ध होता है क्योंकि इससे आगेके संक्रमस्थान पुनरुक्त देखे जाते हैं। तथा जब यही जीव श्रेणिसे उतरते समय बारह कषाय और सात नोकषायोंका अपकर्षण कर लेता है तब इसके प्रकृत मार्गणाका विषयभूत अपुनरुक्त उन्नीस प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है। अतः इन दो संक्रम-स्थानोंको पूर्वोक्त तेरह संक्रमस्थानोंमें मिलाने पर पन्द्रह संक्रमस्थान होते हैं। तथा इसी प्रकार नपुंसकवेदके उदयके साथ चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके भी चढ़ते और उतरते समय दो अपुनरुक्त स्थानोंकी उत्पत्ति कहनी चाहिये, क्योंकि वहां पर क्रमसे पूर्वोक्त स्थानोंमें अपगतवेदके सम्बन्धसे बीस प्रकृतिक और इक्कीस प्रकृतिक ये दो स्थान उत्पन्न होते हुए उपलब्ध होते हैं। इन स्थानोंको पूर्वोक्त संक्रमस्थानोंमें मिला देने पर प्रकृत विषयमें सत्रह संक्रमस्थान लब्ध होते हैं। पुरुषवेद और नपुंसकवेदके उदयवाले क्षपक जीवके भी अपगतवेद सम्बन्धी क्रमसे चार आदि और दस आदि संक्रमस्थान पुनरुक्त ही उत्पन्न होते हैं। किन्तु इतनी विशेषता है कि सबके अन्तमें एक प्रकृतिक संक्रमस्थान अपुनरुक्त उपलब्ध होता है। इसलिये इसके साथ अपगतवेदी जीवसे सम्बन्ध रखनेवाले अठारह संक्रमस्थान होते हैं।

§ ३०६. अब नपुंसकवेद मार्गणामें नौ संक्रमस्थान होते हैं इस आशयके सूत्रके दूसरे चरणका व्याख्यान करते हैं—उन नौमेंसे सत्ताईससे लेकर इक्कीस तकके छह संक्रमस्थान तो श्रेणि पर नहीं चढ़नेके पूर्व ही प्रकृत वेदके उदयमें प्राप्त होते हैं। तथा इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक जीवके आनुपूर्वी संक्रमके आश्रयसे बीस प्रकृतिक संक्रमस्थान भी यहां पाया जाता है। फिर नपुंसकवेदके उदयसे श्रेणिपर चढ़े हुए क्षपक जीवके आठ कषायोंका क्षय हो जानेसे तेरह

---

१. ता०प्रतौ –वेदस्स मग्गणाए इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बारससंकमट्ठाणमुप्पज्जइ। एवं पयदमग्गणाविसए णव णेव संकमट्ठाणाणि होंति त्ति सिद्धं—२७, २६, २५, २३, २२, २१, २०, १३, १२। सेसाणमेत्थ संभवो णत्थि।

§ ३०७. इत्थिवेदम्मि एक्कारससंकमट्ठाणाणि होंति त्ति तदियं[1] सुत्तावयवमस्सियूण संकमट्ठाणाणमेवं चेव परूवणा कायव्वा। णवरि णवुंसयवेदपडिबद्धणवसंकमट्ठाणाणमुवरि एगूणवीसेक्कारससंकमट्ठाणाणमहियाणमुवलंभो वत्तव्वो, इगिवीससंतकम्मिओवसामग-खवगेसु णिरुद्धवेदोदएण णवुंसयवेदोवसामण-क्खवणपरिणदेसु जहाकमं तदुवलंभादो। पुरिसवेदोदयम्मि तेरससंकमट्ठाणाण परूवयस्स चउत्थसुत्तावयवस्स वि परूवणाए एसो चेव कमो। णवरि दोण्हमपुव्वसंकमट्ठाणाणमुवलंभो एत्थ वत्तव्वो, इगिवीससंतकम्मियोवसामग-खवगेसु पयदवेदोदएणित्थिवेदोवसामण-खवणवावदेसु जहाकममट्ठारस-दससंकमट्ठाणाणं एत्थ संभवोवलंभादो ॥१९॥

§ ३०८. एवं वेदमग्गणाए संकमट्ठाणाणमणुगमं काऊण संपहि कसायमग्गणाविसए तदणुगमं कुणमाणो सुत्तमुत्तरं भणइ—'कोहादी उवजोगे०' एत्थ कोहादी उवजोगे त्ति वयणेण कसायमग्गणाए संकमट्ठाणाणं परूवणं कस्सामो त्ति पइज्जा

प्रकृतिक संक्रमस्थान प्राप्त होता है। तथा उसीके आनुपूर्वी संक्रमका प्रारम्भ हो जानेपर बारह प्रकृतिक संक्रमस्थान प्राप्त होता है। इस प्रकार प्रकृत मार्गणामें नौ ही संक्रमस्थान होते हैं यह बात सिद्ध होती है - २७, २६, २५, २३, २२, २१, २०, १३ और १२। शेष संक्रमस्थान यहांपर संभव नहीं हैं।

§ ३०७. स्त्रीवेदमें ग्यारह संक्रमस्थान होते हैं इस तीसरे सूत्र वचनके आश्रयसे संक्रमस्थानोंका पूर्वोक्त प्रकारसे ही कथन करना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि नपुंसकवेदसे सम्बन्ध रखनेवाले नौ संक्रमस्थानोंके साथ स्त्रीवेदमें उन्नीस और ग्यारह प्रकृतिक ये दो संक्रमस्थान अधिक उपलब्ध होते हैं ऐसा कहना चाहिये, क्योंकि इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक और क्षपक जीवोंके नपुंसकवेदका उपशम और क्षय हो जानेपर विवक्षित वेदके उदयके साथ क्रमसे उक्त दोनों स्थान उपलब्ध होते हैं। पुरुषवेदके उदयमें तेरह संक्रमस्थानोंका कथन करनेवाले सूत्रके चौथे चरणकी प्ररूपणामें भी यही क्रम जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि दो नये संक्रमस्थानोंका सद्भाव यहांपर कहना चाहिये, क्योंकि इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो उपशामक या क्षपक जीव प्रकृत वेदका उदय रहते हुए स्त्रीवेदकी उपशामना या क्षपणा करता है उसके यहां पर क्रमसे अठारह और दस प्रकृतिक ये दो संक्रमस्थान उपलब्ध होते हैं ॥१९॥

विशेषार्थ—इस उन्नीसवीं गाथा द्वारा वेद मार्गणाकी अपेक्षा विचार करते हुए अपगतवेद, नपुंसकवेद, स्त्रीवेद और पुरुषवेदमें कहां कितने संक्रमस्थान होते हैं इसका स्पष्ट निर्देश किया है। विशेष खुलासा टीकामें आ चुका है, इसलिये इस विषयमें और अधिक नहीं लिखा जाता है।

§ ३०८. इस प्रकार वेदमार्गणामें संक्रमस्थानोंका विचार करके अब कषाय मार्गणामें उनका विचार करते हुए आगेका सूत्र कहते हैं—'कोहादी उवजोगे०' यहां सूत्रमें आये हुए 'कोहादी उवजोगे०' वचन द्वारा कषायमार्गणामें संक्रमस्थानोंका कथन करेंगे यह प्रतिज्ञा की गई है। इस

---

१. ता०प्रतौ तदिय इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कया। एवं पइण्णं काऊण कोहादिसु चदुसु कसाएसु परिवाडीए संकमट्ठाणगवेसणा कीरदे। एत्थं जहासंखणाएणाहिसंबंधो कायव्वो त्ति जाणावणट्ठमाणुपुव्वीए त्ति उत्तं। तं जहा—कोहकसायम्मि सोलस संकमट्ठाणाणि होंति, माणकसायोदयम्मि ऊणवीस संकमट्ठाणाणि भवंति, सेसेसु दोसु वि कसाओवजोगेसु पादेक्कं तेवीससंकमट्ठाणाणि भवंति त्ति। तत्थ ताव कोहकसायम्मि सोलसण्हं संकमट्ठाणाणं संभवो उच्चदे। तं जहा—सत्तावीसादीणि इगिवीसपज्जंताणिं संकमट्ठाणाणि सेढीदो हेट्ठा चेव मिच्छाइट्ठि-आदिगुणट्ठाणेसु जहासंभवं लब्भंति। पुणो चउवीससंतकम्मियोवसामगस्स कोह-कसायोदएण उवसमसेढिं चढिदस्स तेवीस-बावीस-इगिवीससंकमट्ठाणाणि पुणरुत्ताणि होदूण पुणो वीस-चोद्दस-तेरससंकमट्ठाणाणि लब्भंति णाण्णाणि, कोहकसायम्मि णिरुद्धे एत्तो उवरिमाणमसंभवादो। इगिवीससंतकम्मियोवसामगमस्सियूण पुण एगूण-वीसट्ठारस-बारसेकारससंकमट्ठाणाणि लब्भंति, हेट्ठिमाणं पुणरुत्ताणमसंगहादो। उवरिमाणं च णिरुद्धकसायोदयम्मि संभवाभावादो। खवगस्स वि णिरुद्धकसायोदइल्लस्स दस-चउक्क-तियसंकमट्ठाणाणि अपुणरुत्ताणि लब्भंति, हेट्ठिमोवरिमाणं पुव्वुत्तण्णाएण बहिब्भाव-दंसणादो। एवमेदाणि सोलस संकमट्ठाणाणि कोहकसायम्मि लब्भंति त्ति सिद्धं—

प्रकारकी प्रतिज्ञा करके क्रोधादि चार कषायोंमें क्रमसे संक्रमस्थानोंका विचार करते हैं। यहां 'यथासंख्य, न्यायके अनुसार पदोंका सम्बन्ध करना चाहिये यह जतानेके लिये सूत्रमें 'आनुपूर्वी' पद कहा है। खुलासा इस प्रकार है—क्रोध कषायमें सोलह संक्रमस्थान होते हैं, मान कषायके उदयमें उन्नीस संक्रमस्थान होते हैं तथा शेष दो कषायोंके सद्भावमें भी प्रत्येकमें तेईस संक्रमस्थान होते हैं। अब सर्वप्रथम क्रोध कषायमें सोलह संक्रमस्थानोंका सद्भाव बतलाते हैं। यथा—सत्ताईससे लेकर इक्कीस तक जितने भी संक्रमस्थान हैं वे श्रेणि चढ़नेके पूर्व ही मिथ्यादृष्टि आदि गुणस्थानोंमें यथासम्भव पाये जाते हैं। फिर जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशामक जीव क्रोध कषायके उदयसे उपशमश्रेणि पर चढ़ा है उसके यद्यपि तेईस, बाईस और इक्कीस प्रकृतिक तीन संक्रमस्थान पुनरुक्त होते हैं तथापि बीस, चौदह और तेरह ये तीन संक्रमस्थान अपुनरुक्त प्राप्त होते हैं। इसके इनके अतिरिक्त अन्य संक्रमस्थान नहीं प्राप्त होते, क्योंकि क्रोध कषायके रहते हुए इनसे आगेके स्थानोंका पाया जाना सम्भव नहीं है। इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामकके आश्रयसे मात्र उन्नीस, अठारह, बारह और ग्यारह प्रकृतिक चार संक्रमस्थान प्राप्त होते हैं, क्योंकि इनसे पूर्वके संक्रमस्थान पुनरुक्त होनेसे उनका यहाँपर संग्रह नहीं किया गया है। और ग्यारह प्रकृतिक संक्रमस्थानसे आगेके संक्रमस्थान विवक्षित कषायके उदयमें सम्भव नहीं हैं। इसी प्रकार क्षपकके भी विवक्षित कषायका उदय रहते हुए दस, चार और तीन प्रकृतिक अपुनरुक्त संक्रमस्थान प्राप्त होते हैं, क्योंकि पूर्वोक्त न्यायके अनुसार नीचे और ऊपरके संक्रमस्थानोंका संग्रह न करके उन्हें अलग कर दिया है। अर्थात् दस प्रकृतिक संक्रमस्थानसे पूर्वके जितने संक्रमस्थान यहाँ सम्भव हैं वे तो पुनरुक्त समझ कर छोड़ दिये गये हैं और तीन प्रकृतिक संक्रमस्थानसे आगेके संक्रमस्थानोंका यहाँ पाया जाना सम्भव न होनेसे उन्हें छोड़ दिया है। इस प्रकार क्रोधकषायमें

१. ता०-आ०प्रत्योः जत्थ इति पाठः। २. ता०प्रतौ पजंताणि आ०प्रतौ पजत्ताणि इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

२७, २६, २५, २३, २२, २१, २०, १९, १८, १४, १३, १२, ११, १०, ४, ३।

§ ३०९. माणकसायोदए वि एदाणि चेव णवट्ठ-दोपयडिसंकमट्ठाणब्भहियाणि एगूणवीससंखाविसेसियाणि होंति, इगिवीससंतकम्मियोवसामगम्मि दुविह[कोह]-कोह संजलणोवसामणपरिणदम्मि जहाकमं माणोदएण सह णवट्ठपयडिसंकमट्ठाणोवलंभादो। खवगस्स च कोहसंजलणपरिक्खए दोण्हं पयडीणं संकंतिदंसणादो। एवं माणकसायोदयम्मि एगूणवीससंकमट्ठाणाणि होंति ण सेसाणि, तेसिमेत्थ सुण्णट्ठाणत्तोवएसादो। सेसकसाएसु दोसु वि पादेक्कं तेवीस संकमट्ठाणाणि होंति, तेसिं तत्थ संभवे विरोहाभावादो। एत्थाकसाईसु संकमट्ठाणमेक्कं चेव लब्भदे, चउवीससंतकम्मियोवसामगस्स उवसंतकसायगुणट्ठाणम्मि दोण्हं पयडीणं संकमोवलंभादो ॥२०॥

§ ३१०. एवं कसायमग्गणं समाणिय णाणमग्गणागयविसेसपदुप्पायणट्ठमुत्तरसुत्तमाह—'णाणम्हि य तेवीसा०' एत्थ तिविहणाणग्गहणेण मदि-सुदोहिणाणाणं संगहो कायव्वो, तेवीससंकमट्ठाणाहाराणमण्णेसिमसंभवादो[1]। कधमेत्थ पणुवीससंकमट्ठाणसंभवो त्ति णासंकियव्वं, सम्मामिच्छाइट्ठिम्मि तदुवलंभसंभवादो। कधं

ये सोलह संक्रमस्थान प्राप्त होते हैं यह सिद्ध होता है—२७, २६, २५, २३, २२, २१, २०, १९, १८, १४, १३, १२, ११, १०, ४ और ३।

§ ३०९. मान कषायके उदयमें भी सोलह तो ये ही तथा नौ, आठ और दो प्रकृतिक तीन और इस प्रकार कुल उन्नीस संक्रमस्थान होते हैं, क्योंकि जो इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशामक जीव दो प्रकारके क्रोध और क्रोधसंज्वलनका उपशम कर देता है उसके क्रमसे मानकषायका उदय रहते हुए नौ प्रकृतिक और आठ प्रकृतिक ये दो संक्रमस्थान पाये जाते हैं। तथा क्षपकके क्रोधसंज्वलनका क्षय हो जानेपर दो प्रकृतिक संक्रमस्थान देखा जाता है। इस प्रकार मानकषायका उदय रहते हुए केवल उन्नीस संक्रमस्थान होते हैं शेष संक्रमस्थान नहीं होते, क्योंकि यहाँ उनका अभाव देखा जाता है ऐसा उपदेश है। शेष दो कषायोंके सद्भावमें भी प्रत्येकमें तेईस संक्रमस्थान होते हैं, क्योंकि उनके वहाँ होनेमें कोई विरोध नहीं आता है। यहाँ पर कषाय रहित जीवोंके संक्रमस्थान एक ही उपलब्ध होता है, क्योंकि चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक जीवके उपशान्तकषाय गुणस्थानमें केवल दो प्रकृतियोंका संक्रम पाया जाता है ॥२०॥

§ ३१०. इस प्रकार कषायमार्गणाका कथन समाप्त करके अब ज्ञानमार्गणा सम्बन्धी विशेषताका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—'णाणम्हि य तेवीसा०' इस गाथा सूत्रमें तीन प्रकारके ज्ञानका ग्रहण करनेसे मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान इन तीन ज्ञानोंका संग्रह करना चाहिये, क्योंकि तेईस संक्रमस्थानोंका आधार अन्य ज्ञान नहीं हो सकते।

शंका—इन तीन ज्ञानोंमें पच्चीस प्रकृतिक संक्रमस्थान कैसे सम्भव है?

समाधान—ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिये, क्योंकि सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें उसकी उपलब्धि होती है।

१. ता०प्रतौ –राणमसंभवादो इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिस्सणाणस्स सण्णाणंतब्भावो ? ण, असुद्धेणयाहिप्पाएण तस्स तदंतब्भावविरोहाभावादो। कधमोहिणाणम्मि पढमसम्मत्तग्गहणपढमसमयलद्धप्पसरूवस्स छव्वीससंकमट्ठाणस्स संभवो ? ण एस दोसो, देव-णेरइएसु तग्गहणपढमसमए चेव तण्णाणस्स सरूवोवलंभसंभवादो। 'एकम्मि एक्कवीसा य' एक्कम्मि मणपज्जवणाणे एक्कवीससंखावच्छिण्णाणि संकमट्ठाणाणि होंति, तत्थ पणुवीस-छव्वीसाणमसंभवादो। 'अण्णाणम्मि य तिविहे पंचेव य संकमट्ठाणा।' कुदो ? तत्थ सत्तावीसादीणमिगिवीसपज्जंतसंकमट्ठाणाणं बावीसबहिब्भावेण पंचसंखावहारियाणं समुवलंभादो। एत्थ चक्खु-अचक्खु-ओहिदंसणीसु पुध परूवणा ण कया, तेसिमोघपरूवणादो भेदाभावादो मदि-सुदोहिणाणपरूवणाहि चेव गयत्थत्तादो[3] वा। तदो तत्थ पादेक्कं तेवीससंकमट्ठाणसंभवो अणुगंतव्वो ॥२१॥

§ ३११. एवं णाणमग्गणं संगतोभाविददंसणाणुवादं परिसमाणिय संपहि भवियाहारमग्गणासु संकमट्ठाणगवेसणट्ठमुत्तरं गाहासुत्तमोइण्णं—'आहारय-भविएसु य०' आहारमग्गणाए भवियमग्गणाए च तेवीस संकमट्ठाणाणि भवंति, सव्वेसिं तत्थ संभवे

शंका—मिश्रज्ञानका सम्यग्ज्ञानमें अन्तर्भाव कैसे हो सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि अशुद्ध नयके अभिप्रायसे मिश्रज्ञानका सम्यग्ज्ञानमें अन्तर्भाव करनेमें कोई विरोध नहीं आता है।

शंका—प्रथम सम्यक्त्वको प्राप्त होनेके प्रथम समयमें प्राप्त होनेवाला छब्बीस प्रकृतिक संक्रमस्थान अवधिज्ञानमें कैसे सम्भव है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि देव और नारकियोंमें प्रथम सम्यक्त्वको ग्रहण करनेके प्रथम समयमें ही अवधिज्ञानकी स्वरूप प्राप्ति सम्भव है और इसीसे अवधिज्ञानमें छब्बीस प्रकृतिक संक्रमस्थान बन जाता है।

'एकम्मि एक्कवीसा य' एक मनःपर्ययज्ञानमें इक्कीस संक्रमस्थान होते हैं, क्योंकि इसमें पच्चीस और छब्बीस प्रकृतिक संक्रमस्थान सम्भव नहीं है। तथा 'अण्णाणम्मि य तिविहे पंचेव य संकमट्ठाणा' तीन प्रकारके अज्ञानोंमें पांच ही संक्रमस्थान होते हैं, क्योंकि वहाँ बाईसके बिना सत्ताईससे लेकर इक्कीस तक पांच ही संक्रमस्थान पाये जाते हैं। यहांपर चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन और अवधिदर्शनमें अलगसे प्ररूपणा नहीं की है, क्योंकि इनके कथनमें ओघ कथनसे कोई भेद नहीं पाया जाता। अथवा मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञानकी प्ररूपणा द्वारा ही इनमें कितने संक्रमस्थान होते हैं इसका ज्ञान हो जाता है, अतएव इन तीन दर्शनोंमेंसे प्रत्येकमें तेईस संक्रमस्थान सम्भव हैं यह जान लेना चाहिये।

§ ३११. इसप्रकार ज्ञानमार्गणा और उसमें गर्भित दर्शनमार्गणाके कथनको समाप्त करके अब भव्य और आहार मार्गणाओंमें संक्रमस्थानोंका विचार करनेके लिये आगेका गाथासूत्र कहते हैं—'आहारय-भविएसु य०' आहारमार्गणा और भव्यमार्गणामें तेईस संक्रमस्थान होते हैं,

१. ता०-आ०प्रत्योः णोसुद्ध- इति पाठः। २. आ०प्रतौ -संखा वड्डिहाणिसंकमट्ठाणाणि इति पाठः। ३. ता०प्रतौ गयत्थादो इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विरोहाभावादो। 'अणाहारएसु पंचेव संकमट्ठाणाणि होंति, सत्तावीसादीणमिगिवीस-पज्जंताणं[1] चेव बावीसवज्जाणं तत्थ संभवोवलंभादो। 'एयट्ठाणं अभविएसु'। कुदो? पणुवीससंकमट्ठाणस्सेक्कस्सेव तत्थ संभवदंसणादो ॥२२॥

§ ३१२. एवमेत्तिएण पबंधेण मग्गणट्ठाणेसु संकमट्ठाणाणं गवेसणं कादूण संपहि तेसु चेव सुण्णट्ठाणपरूवणं कुणमाणो सेसमग्गणाणं देसामासयभावेण वेद-कसायमग्गणासु तप्परूवणट्ठमुवरिमं गाहासुत्तपबंधमाह—'छव्वीस सत्तवीसा' २६, २७, २५, २३, २२ एवमेदाणि पंच संकमट्ठाणाणि अवगदवेदविसए ण संभवंति। तदो एदाणि तत्थ सुण्णठाणाणि त्ति घेत्तव्वाणि, जत्थ जं संकमट्ठाणमसंभवइ तत्थ तस्स सुण्णट्ठाणववएसावलंबणादो ॥२३॥

§ ३१३. 'उणुवीसट्ठारसगं' १९, १८, १४, ११, १०, ९, ८, ७, ६, ५, ४, ३, २, १ एवमेदाणि चोद्दस संकमट्ठाणाणि[2] णवुंसयवेदे सुण्णट्ठाणाणि होंति त्ति सुत्तत्थसंगहो। सेसं सुगमं ॥२४॥

§ ३१४. 'अट्ठारस चोद्दसगं' १८, १४, १०, ९, ८, ७, ६, ५, ४, ३ २, १ एवमेदाणि बारस संकमट्ठाणाणि इत्थिवेदविसए सुण्णट्ठाणाणि होंति त्ति भणिदं होइ।

क्योंकि इन मार्गणाओंमें सब संक्रमस्थानोंके पाये जानेमें कोई विरोध नहीं आता। अनाहारकमें पांच ही संक्रमस्थान होते हैं, क्योंकि यहांपर बाईसके सिवा सत्ताईससे लेकर इक्कीस पर्यन्त पांच संक्रमस्थान ही उपलब्ध होते हैं। तथा 'एगट्ठाणं अभविएसु' अभव्योंके एक संक्रमस्थान होता है, क्योंकि इनमें एक पचीस प्रकृतिक संक्रमस्थान ही देखा जाता है ॥२२॥

§ ३१२. इस प्रकार इतने कथन द्वारा मार्गणास्थानोंमें संक्रमस्थानोंका विचार करके अब उन्हीं मार्गणाओंमें शून्यस्थानोंका कथन करनेकी इच्छासे यतः वेद और कषाय मार्गणा शेष मार्गणाओंके देशामर्षकरूपसे ग्रहण की गई हैं अतः उन्हीं मार्गणाओंमें शून्यस्थानोंका कथन करनेके लिये आगेका गाथासूत्र कहते हैं—'छव्वीस सत्तवीसा०' अपगतवेदमें २६, २७, २५, २३ और २२ ये पांच संक्रमस्थान सम्भव नहीं हैं, इसलिये ये वहां शून्य स्थानरूप जानने चाहिये, क्योंकि जहां जो संक्रमस्थान असम्भव होता है वहां उसे शून्यस्थान संज्ञा दी गई है। आशय यह है कि ये पांच संक्रमस्थान वेदवाले जीवके ही पाये जाते हैं इसलिये अपगतवेदमें इनका अभाव बतलाया है ॥२३॥

§ ३१३. उणुवीसट्ठारसगं' १९, १८ १४, ११, १०, ९, ८, ७, ६, ५, ४, ३, २ और १ इस प्रकार ये चौदह संक्रमस्थान नपुंसकवेदमें शून्यस्थान हैं यह इस सूत्रका तात्पर्य है। शेष कथन सुगम है। आशय यह है कि नपुंसकवेदमें २० प्रकृतिक संक्रमस्थान तकके सब और १३ तथा १२ प्रकृतिक ये दो इस प्रकार कुल नौ संक्रमस्थान ही पाये जाते हैं शेष नहीं, इसलिये शेषका यहां निषेध किया है ॥२४॥

§ ३१४. 'अट्ठारस चोद्दसगं' १८, १४, १०, ९, ८, ७, ६, ५, ४, ३, २ और १ इस प्रकारके ये बारह संक्रमस्थान स्त्रीवेदमें शून्यस्थान होते हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है। शेष कथन सुगम

---

१. ता०प्रतौ पजंताणं इति पाठः। २. ता०प्रतौ संकमट्ठाणाणि इति पाठो नास्ति।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुगममण्णं ॥२५॥

§ ३१५. 'चोद्दसग णवगमादी' १४, ९, ८, ७, ६ ५, ४, ३, २, १ एवमेदाणि दस संकमट्ठाणाणि उवसामग-खवगपडिबद्धाणि पुरिसवेदविसए सुण्णट्ठाणाणि होंति त्ति गाहासुत्तत्थसंगहो । सुगममन्यत् ॥२६॥

§ ३१६. 'णव अट्ठ सत्त छक्कं' ९, ८, ७, ६, ५, २ १ एवमेदाणि सत्त संकमट्ठाणाणि कोहकसायोवजुत्तेसु सुण्णट्ठाणाणि होंति त्ति सुत्तत्थसमुच्चओ ॥२७॥

§ ३१७. 'सत्तय छक्कं पणगं च०' ७, ६, ५, १ एवमेदाणि चत्तारि माण-कसायोवजुत्तेसु सुण्णट्ठाणाणि होंति त्ति भणिदं होइ । सेसदोकसाएसु णत्थि एसो विचारो, सव्वेसिमेव संकमट्ठाणाणं तत्थासुण्णभावदंसणादो ॥२८॥

§ ३१८. एवमेदीए दिसाए सेसमग्गणासु वि सुण्णट्ठाणगवेसणा कायव्वा त्ति पदुप्पायणट्ठमुवरिमगाहासुत्तमाह—'दिट्ठे सुण्णासुण्णे०' वेद-कसायमग्गणासु सुण्णा-सुण्णट्ठाणपविभागेसु पुव्वुत्तकमेण दिट्ठे संते पुणो एदीए दिसाए गदियादिमग्गणासु वि जत्थतत्थाणुपुव्वीए संकमट्ठाणाणं सुण्णासुण्णभावगवेसणा कायव्वा त्ति सुत्तत्थ-संबंधो ॥२९॥

है । आशय यह है कि स्त्रीवेदमें उन्नीस प्रकृतिकस्थान तकके सब तथा १३, १२ और ११ प्रकृतिक ये तीन इसप्रकार कुल ग्यारह संक्रमस्थान पाये जाते हैं शेष नहीं, इसलिये शेषका यहां निषेध किया है ॥२५॥

§ ३१५. 'चोद्दसग णवगमादी' १४, ९, ८, ७, ६, ५, ४, ३, २ और १ इस प्रकार ये दस संक्रमस्थान पुरुषवेदी उपशामक और क्षपकजीवोंके शून्यस्थान होते हैं यह इस गाथासूत्रका समुच्चयार्थ है । शेष कथन सुगम है । आशय यह है कि पुरुषवेदमें पन्द्रह प्रकृतिक स्थान तकके सब तथा १३, १२, ११ और १० प्रकृतिक ये चार इस प्रकार कुल १३ संक्रमस्थान होते हैं शेप नहीं, इसलिये शेषका यहां निषेध किया है ॥२६॥

§ ३१६. 'णव अट्ठ सत्त छक्कं' ९, ८, ७, ६, ५, २ और १ इस प्रकार ये सात संक्रमस्थान क्रोधकषायवाले जीवोंमें शून्यस्थान होते हैं यह इस सूत्रका समुच्चयार्थ है । आशय यह है कि क्रोध कषायमें १० प्रकृतिक संक्रमस्थान तकके सब तथा ४ और ३ प्रकृतिक ये दो इस प्रकार कुल १६ संक्रमस्थान होते हैं शेष नहीं, इसलिये शेषका यहाँ निषेध किया है ॥ २७ ॥

§ ३१७. 'सत्त य छक्कं पणगं च' ७, ६, ५ और १ इस प्रकार ये चार संक्रमस्थान मान-कषायवाले जीवोंमें शून्यस्थान होते हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है। आशय यह है कि मानकषायमें इन चारके सिवा शेष सब संक्रमस्थान होते हैं, इसलिये यहाँ चार स्थानोंका निषेध किया है। किन्तु शेष दो कषायोंमें यह विचार नहीं है, क्योंकि वहाँ पर सभी संक्रमस्थान अशून्यभावसे देखे जाते हैं ॥२८॥

§ ३१८. इस प्रकार इसी पद्धतिसे शेष मार्गणाओंमें भी शून्यस्थानोंका विचार कर लेना चाहिये यह दिखलानेके लिये अब आगेका गाथासूत्र कहते हैं—'दिट्ठे सुण्णासुण्णे' वेद और कषाय मार्गणामें शून्यस्थानों और अशून्यस्थानोंके विभागका पूर्वोक्त क्रमसे विचारकर लेनेके बाद फिर इसी पद्धतिसे गति आदि मार्गणाओंमें भी यत्रतत्रानुपूर्वीके क्रमसे संक्रमस्थानोंके सद्भाव और असद्भावका विचार कर लेना चाहिये यह इस सूत्रका अभिप्राय है ॥२९॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ३१९. एवं गदिआदिमग्गणासु संकमट्ठाणाणं संभवगवेसणमण्णय-वदिरेगेहिं कादूण संपहि बंध-संकम-संतकम्मट्ठाणाणमेग-दुसंजोगकमेण णिरुंभणं कादूण सण्णियास-परूवणट्ठमुवरिमगाहासुत्तमाह—'कम्मंसियट्ठाणेसु य०' एसा गाहा ट्ठाणसमुक्कित्तणाए ओघादेसेहि समुक्कित्तिदाणं संकमट्ठाणाणं पडिणियदपडिग्गहट्ठाणपडिबद्धाणं बंध-संतट्ठाणेसु मग्गणाविहिं परूवेदि। एदिस्से अत्थविवरणं कस्सामो। तं जहा—कम्मंसियट्ठाणाणि णाम संतकम्मट्ठाणाणि। ताणि च मोहणीए- अट्ठावीस-सत्तावीस-छव्वीस--चउवीस--तेवीस--बावीसेक्कवीस-तेरस--बारस--एक्कारस-पंच-चदुक-ति-दु-एक्कपयडि-पडिबद्धाणि। तेसिमेसा ठवणा—२८, २७, २६, २४, २३, २२, २१, १३, १२, ११, ५, ४, ३, २, १। बंधट्ठाणाणि च बावीस-इगिवीस-सत्तारस-तेरस-णव-पंच-चदुक-ति-दु-एक्कसण्णिदाणि २२, २१, १७, १३, ९, ५, ४, ३, २, १ एवमेदाणि परिवाडीए ठविय पादेक्कमेदेसु सत्तावीसादिसंकमट्ठाणाणं संभवगवेसणा कायव्वा त्ति गाहासुत्तपुव्वद्धे समुच्चयत्थो। 'एक्केक्केण समाणय' एवं भणिदे बंध-संतट्ठाणेसु एक्केक्केण सह 'समाणय' सम्यगानुपूर्व्यानयेत्यर्थः। बंध-संतट्ठाणाणि पुध० आधार-भूदाणि ट्ठविय तेसु संकमट्ठाणाणि णेदव्वाणि त्ति भावत्थो।

§ ३२०. तत्थ ताव संतकम्मट्ठाणेसु संकमट्ठाणाणं गवेसणा कीरदे। तं कथं? मिच्छादिट्ठिस्स वा सम्मादिट्ठिस्स वा अट्ठावीससंतकम्मं होऊण सत्तावीससंकमो होइ १।

§ ३१९. इस प्रकार गति आदि मार्गणाओंमें कहाँ कितने संक्रमस्थान सम्भव हैं इसका अन्वय और व्यतिरेक द्वारा विचार करके अब बन्धस्थान, संक्रमस्थान और सत्कर्मस्थान इन्हें एकसंयोग और दोसंयोगके क्रमसे विवक्षित करके सन्निकर्षका कथन करनेके लिये आगेका गाथासूत्र कहते हैं—'कम्मंसियट्ठाणेसु य' स्थानसमुत्कीर्तना अनुयोगद्वारमें जो संक्रमस्थान ओघ और आदेशसे कहे गये हैं तथा जो प्रतिनियत प्रतिग्रहस्थानोंसे सम्बन्ध रखते हैं वे बन्धस्थानों और सत्त्वस्थानोंमें कहां कितने होते हैं इस बातका कथन यह गाथा करती है। अब इस गाथाके अर्थका व्याख्यान करते हैं। यथा—कर्मांशिकस्थान यह सत्कर्मस्थानका दूसरा नाम है। वे मोहनीयकर्ममें अट्ठाईस, सत्ताईस, छब्बीस, चौबीस, तेईस, बाईस, इक्कीस, तेरह, बारह, ग्यारह, पांच, चार, तीन, दो और एक इतनी प्रकृतियोंसे प्रतिबद्ध हैं। उनकी अंकोंद्वारा यह स्थापना है—२८, २७, २६, २४, २३, २२, २१, १३, १२, ११, ५, ४, ३, २ और १। और बन्धस्थान बाईस, इक्कीस, सत्रह, तेरह, नौ, पांच, चार, तीन, दो और एक प्रकृतिक होते हैं—२२, २१, १७, १३, ९, ५, ४, ३, २ और १। इस प्रकार इन्हें क्रमसे स्थापित करके इनमेंसे प्रत्येकमें सत्ताईस प्रकृतिक आदि सम्भव संक्रमस्थानोंका विचार करना चाहिये यह इस गाथासूत्रके पूर्वार्धका समुच्चयार्थ है। तथा गाथाके उत्तरार्धमें 'एक्केक्केण समाणय' ऐसा कहने पर बन्धस्थानों और सत्त्वस्थानोंमेंसे एक एकके साथ 'समाणय' अर्थात् भले प्रकार इस आनुपूर्वीसे बन्धस्थानों और सत्त्वस्थानोंको आधाररूपसे अलग अलग स्थापित करके उनमें संक्रमस्थानोंको जानना चाहिये यह इसका भावार्थ है।

§ ३२०. उनमेंसे सर्वप्रथम सत्कर्मस्थानोंमें संक्रमस्थानोंका विचार करते हैं। यथा—मिथ्यादृष्टि या सम्यग्दृष्टि जीवके अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्ता होकर सत्ताईस प्रकृतियोंका संक्रम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिच्छाइट्ठिणा सम्मत्तुव्वेल्लणवावदेण सम्मत्तस्स समयूणावलियमेत्तगोवुच्छावसेसे कदे अट्ठावीससंतेण सह छव्वीससंकमो होइ २ । अहवा छव्वीससंतकम्मिएण पढमसम्मत्ते उप्पाइदे अट्ठावीससंतकम्माहारं[1] छव्वीससंकमट्ठाणमुप्पज्जइ । अविसंजोइदाणंताणुबंधिणा उवसमसम्माइट्ठिणा सासणगुणे पडिवण्णे अट्ठावीससंतकम्मिएण सम्मामिच्छत्ते वा पडिवण्णे अट्ठावीससंतकम्मसहगदं पणुवीससंकमट्ठाणमुप्पज्जइ ३ । अणंताणुबंधी विसंजोइय संजुत्तमिच्छाइट्ठिपढमावलियाए तेवीसपयडिसंकमट्ठाणमट्ठावीससंकमट्ठाण-पडिबद्धमुप्पज्जइ । अहवा अणंताणु० विसंजोयणाचरिमफालिं संकामियं[2] समयूणावलिय-मेत्तगोवुच्छावसेसे वट्टमाणस्स तमेव संकमट्ठाणं तेणेव संतकम्मट्ठाणेणाहिट्ठिदमुप्पज्जदि ४ । अणंताणु० विसंजोयणापुरस्सरं सासणगुणं पडिवण्णस्स आवलियमेत्तकालमट्ठावीस-संतकम्मेण सह इगिवीससंकमट्ठाणमुप्पज्जइ ५ । एवमेदाणि पंच संकमट्ठाणाणि अट्ठा-वीससंतकम्मियस्स होंति ।

§ ३२१. संपहि सत्तावीसाए उच्चदे—अट्ठावीससंतकम्मियमिच्छाइट्ठिणा सम्मत्ते उव्वेल्लिदे सत्तावीससंतकम्मं घेत्तूणं[3] छव्वीससंकमो होइ १ । पुणो तेणेव सम्मामिच्छत्त-मुव्वेल्लंतेण समयूणावलियमेत्तगोवुच्छावसेसे कए सत्तावीससंतकम्मेण सह पणुवीस-

होता है १ । जो मिथ्यादृष्टि जीव सम्यक्त्वकी उद्वेलना कर रहा है उसके सम्यक्त्वकी गोपुच्छाके एक समयकम एक आवलिप्रमाण शेष रहने पर अट्ठाईस प्रकृतिक सत्त्वस्थानके साथ छब्बीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है २ । अथवा जो छब्बीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव प्रथम सम्यक्त्व-को उत्पन्न करता है उसके प्रथम सम्यक्त्वके उत्पन्न करनेपर अट्ठाईस प्रकृतिक सत्कर्मका आधार-भूत छब्बीस प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है । जिस उपशमसम्यग्दृष्टिने अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना नहीं की है उसके सासादनगुणस्थानको प्राप्त होने पर या अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होने पर अट्ठाईस प्रकृतिक सत्कर्मके साथ पच्चीस प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है ३ । जो सम्यग्दृष्टि जीव अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करके फिर मिथ्यात्वमें जाकर उससे संयुक्त होता है उसके प्रथम आवलिमें अट्ठाईस प्रकृतिक सत्कर्मसे सम्बन्ध रखनेवाला तेईस प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है । अथवा अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनाकी अन्तिम फालिका संक्रम करनेके बाद एक समयकम एक आवलिप्रमाण गोपुच्छाके शेष रहनेपर उसी सत्कर्मके आधारसे वही संक्रमस्थान उत्पन्न होता है ४ । जो अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनापूर्वक सासादनगुणस्थानको प्राप्त होता है उसके एक आवलिप्रमाण कालतक अट्ठाईस प्रकृतिक सत्कर्मके साथ इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है ५ । इस प्रकार ये पांच संक्रमस्थान अट्ठाईस प्रकृतिक सत्कर्मवाले जीवके होते हैं ।

§ ३२१. अब सत्ताईस प्रकृतिक सत्कर्मवालेके कितने संक्रमस्थान होते हैं यह बतलाते हैं — अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाले मिथ्यादृष्टि जीवके सम्यक्त्वकी उद्वेलना कर लेने पर सत्ताईस प्रकृतिक सत्कर्मके साथ छब्बीस प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है १ । फिर सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करते हुए उसी जीवके एक समय कम एक आवलिप्रमाण गोपुच्छाके शेष रहने पर

१. आ०प्रतौ -हारद्धं इति पाठः । २. ता०प्रतौ संकामय इति पाठः । ३. ता०-आ०प्रत्योः मोत्तूण इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संकमट्ठाणमुप्पज्जइ २। एवं सत्तावीससंतकम्मे णिरुद्धे दोण्णि चेव संकमट्ठाणाणि होंति।

§ ३२२. संपहि छव्वीसाए उच्चदे—अणादियमिच्छाइट्ठिस्स सादिछव्वीससंतकम्मियस्स वा छव्वीससंतकम्मं होऊण पणुवीससंकमट्ठाणमेक्कं चेव लब्भदे, तत्थ पयारंतरसंभवाभावादो।

§ ३२३. संपहि चउवीससंतकम्मियस्स संकमट्ठाणगवेसणा कीरदे—अणंताणुबंधिविसंजोयणापरिणदसम्माइट्ठिम्मि चउवीससंतकम्मं होऊण तेवीससंकमो होइ १। पुणो तेणेव उवसमसेढिमारूढेणंतरकरणाणंतरमाणुपुव्वीसंकमे कदे बावीससंकमो होइ २। तेणेव णवुंसयवेदोवसमे कदे इगिवीससंकमो जायदे ३। इत्थिवेदोवसमे वीससंकमो होइ ४। तस्सेव छण्णोकसायाणमुवसामणमस्सियूण चोद्दससंकमो होइ ५। पुरिसवेदोवसामणाए तेरससंकमट्ठाणमुप्पज्जइ ६। दुविहकोहोवसमेणेक्कारससंकमो होइ ७। कोहसंजलणोवसममस्सियूण दसण्हं संकमो जायदे ८। दुविहमाणोवसमेण अट्ठण्हं संकमो होइ ९। माणसंजलणोवसामणाए सत्तण्हं संकमो जायदे १०। दुविहमायोवसममस्सियूण पंचसंकमो जायदे ११। मायासंजलणोवसमे चउण्हं संकमो होइ १२। दुविहलोहोवसामणाए मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्तपयडीणं दोण्हं चेव संकमो जायदे १३।

सत्ताईस प्रकृतिक सत्कर्मके साथ पच्चीस प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है २। इस प्रकार सत्ताईस प्रकृतिक सत्कर्मके रहते हुए दो ही संक्रमस्थान होते हैं।

§ ३२२. अब छब्बीस प्रकृतिक सत्कर्मवालेके कितने संक्रमस्थान होते हैं यह बतलाते हैं—अनादिमिथ्यादृष्टिके या छब्बीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले सादि मिथ्यादृष्टिके छब्बीस प्रकृतिक सत्कर्मके साथ केवल एक पच्चीस प्रकृतिक संक्रमस्थान प्राप्त होता है, क्योंकि यहां पर और कोई दूसरा प्रकार सम्भव नहीं है।

§ ३२३. अब चौबीस प्रकृतिक सत्कर्मवाले जीवके संक्रमस्थानोंका विचार करते हैं—जिसने अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना कर दी है ऐसे सम्यग्दृष्टि जीवके चौबीस प्रकृतिक सत्कर्मके साथ तेईस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है १। फिर उसी जीवके उपशमश्रेणि पर चढ़कर अन्तरकरणके बाद आनुपूर्वी संक्रमका प्रारम्भ करने पर बाईस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है २। फिर उसी जीवके नपुंसकवेदका उपशम कर लेने पर इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ३। स्त्रीवेदका उपशम कर लेने पर बीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ४। उसीके छह नोकषायोंके उपशमका आश्रय लेकर चौदह प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ५। पुरुषवेदका उपशम हो जानेपर तेरह प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ६। दो प्रकारके क्रोधके उपशम हो जानेसे ग्यारह प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ७। क्रोधसंज्वलनके उपशमका आश्रय लेकर दस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ८। दो प्रकारके मानका उपशम हो जानेसे आठ प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ९। मानसंज्वलनका उपशम हो जाने पर सात प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है १०। दो प्रकारकी मायाके उपशमका आश्रय लेकर पांच प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है ११। मायासंज्वलनका उपशम होने पर चार प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है १२। और दो प्रकारके लोभका उपशम होने पर मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्व

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं चउवीससंतकम्मम्मि णिरुद्धे तेरससंकमट्ठाणाणि लब्भंति। णवरि ओदरमाणमस्सियूण लब्भमाणाणि ट्ठाणाणि एत्थेव पुणरुत्तभावेण पविट्ठाणि। चउवीससंतकम्मियसम्मामिच्छाइट्ठिस्स इगिवीससंकमट्ठाणं दंसणमोहक्खवगस्स मिच्छत्तचरिमफालिपदणाणंतरमुवलब्भमाणवावीसट्ठाणं च पुणरुत्तमेवे त्ति ण पुध परूविदाणि।

§ ३२४. संपहि चउवीससंतकम्मिएण दंसणमोहक्खवणमब्भुट्ठिय मिच्छत्ते खविदे तेवीससंतकम्मं होऊण बावीससंकमो होइ १। तेणेव सम्मामिच्छत्तं खवेंतेण समयूणावलियमेत्तगोवुच्छावसेसे कए तेणेव संतकम्मेण सहिदइगिवीससंकमट्ठाणमुप्पज्जइ २। एवं तेवीसाए दोण्णि चेव संकमट्ठाणाणि भवंति।

§ ३२५. तस्सेव णिस्सेसिदसम्मामिच्छत्तस्स बावीससंतकम्मसहगयमिगिवीससंकमट्ठाणमेक्कं चेव लब्भदे, तत्थण्णसंभवाणुवलंभादो।

§ ३२६. खइयसम्माइट्ठिम्मि इगिवीससंतकम्ममिगिवीससंकमट्ठाणाणुविद्धमुप्पज्जदि १। पुणो इगिवीससंतकम्मिएण उवसमसेढिमारुहिय आणुपुव्वीसंकमे कदे वीससंकमट्ठाणमेक्कवीससंतकम्माहारमुप्पज्जदि २। उवरि जाणिऊण णेदव्वं। एवं णीदे एक्कवीसाए बारससंकमट्ठाणाणि लब्भंति १२, णवुंस-इत्थिवेद-छण्णोकसाय-पुरिसवेद-

---

इन दो प्रकृतियोंका ही संक्रम होता है १३। इस प्रकार चौबीस प्रकृतिक सत्कर्मके सद्भावमें तेरह संक्रमस्थान उपलब्ध होते हैं। यहां इतना विशेष और समझना चाहिए कि उपशमश्रेणिसे उतरनेवाले जीवका आश्रय लेकर प्राप्त होनेवाले संक्रमस्थान पुनरुक्त होनेके कारण उनका इन्हींमें अन्तर्भाव हो गया है। तथा चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीवके प्राप्त हुआ इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थान और दर्शनमोहकी क्षपणा करनेवाले जीवके मिथ्यात्वकी अन्तिम फालिके पतनके बाद प्राप्त हुआ बाईस प्रकृतिक संक्रमस्थान पुनरुक्त ही हैं इस लिये वे अलगसे नहीं कहे हैं।

§ ३२४. अब जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव दर्शनमोहकी क्षपणा करनेके लिये उद्यत होता है उसके मिथ्यात्वका क्षय हो जाने पर तेईस प्रकृतिक सत्कर्मके साथ बाईस प्रकृतिक संक्रमस्थान प्राप्त होता है १। सम्यग्मिथ्यात्वका क्षय करते हुए उसी जीवके उसकी एक समय कम एक आवलिप्रमाण गोपुच्छा कर देने पर उसी तेईस प्रकृतिक सत्कर्मके साथ इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है २। इस प्रकार तेईस प्रकृतिक सत्कर्मके सद्भावमें दो ही संक्रमस्थान होते हैं।

§ ३२५. फिर वही जीव जब सम्यग्मिथ्यात्वका क्षय कर देता है तब उसके बाईस प्रकृतिक सत्कर्मके साथ केवल एक इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थान प्राप्त होता है, क्योंकि यहां पर अन्य संक्रमस्थान नहीं उपलब्ध होता है।

§ ३२६. क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवके इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थानसे सम्बन्ध रखनेवाला इक्कीस प्रकृतिक सत्कर्मस्थान उत्पन्न होता है १। फिर इक्कीस प्रकृतिक सत्कर्मवाले जीवके उपशमश्रेणिपर चढ़ कर आनुपूर्वी संक्रमका प्रारम्भ कर देने पर बीसप्रकृतिक संक्रमस्थानका आधारभूत इक्कीस प्रकृतिक सत्कर्मस्थान उत्पन्न होता है २। आगे जान कर कथन करना चाहिये। इस प्रकार कथन करने पर इक्कीस प्रकृतिक सत्कर्मस्थानके बारह संक्रमस्थान प्राप्त होते हैं १२, क्योंकि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दुविहकोह-कोहसंजलण-दुविहमाण-(माण) संजलण-दुविहमाय-मायसंजलणाणमुवसमेण जहाकमेगूणवीसादिसंकमट्ठाणाणमिगिवीससंतकम्माहाराणमुवलंभादो । पुणो खवगेण अट्ठकसायखवणवावदेण समयूणावलियमेत्तगोवुच्छावसेसे कदे तेरससंकमट्ठाणमिगिवीस-संतकमसंबंधेण समुवलब्भइ । एवं सव्वसमासेण तेरससंकमट्ठाणाणि इगिवीससंतकम्म-पडिबद्धाणि भवंति १३ ।

§ ३२७, पुणो अट्ठकसाएसु णिल्लेविदेसु तेरससंतकम्मसंबद्धं तेरसपयडिसंकम-ट्ठाणमुप्पज्जदि १ । तेणेव समाणिदंतरकरणेण आणुपुव्वीसंकमे कदे बारससंकमट्ठाणं तेरससंतकम्मसहगयमुप्पज्जदि २ । एवमेदाणि दोण्णि तेरससंतकम्मियस्स संकमट्ठाणाणि ।

§ ३२८. एदेणेव णवुंसयवेदे खविदे बारससंतकम्मं होऊणेक्कारससंकमट्ठाण-मुवलब्भदे । इत्थिवेदे खविदे एक्कारससंतकम्मं होऊण दससंकमो लब्भदे । छण्णो-कसायक्खवणाणंतरं पंचसंतकम्मं होऊण चदुण्हं संकमो जायदे । पुरिसवेदे णवकबंधे खविदे चत्तारि संतकम्माणि होऊण तिण्हं संकमो जायदे । कोहसंजलणे[1] खविदे तिण्णि संतकम्माणि दोण्हं संकमो माणसंजलणे खविदे दोण्णि संतकम्माणि एगपयडिसंकमो च जायदे । एवं संतकम्मट्ठाणेसु संकमट्ठाणाणमणुगमो कदो ।

नपुंसकवेद, स्त्रीवेद, छह नोकषाय, पुरुषवेद, दो प्रकारका क्रोध, क्रोधसंज्वलन, दो प्रकारका मान मानसंज्वलन, दो प्रकारकी माया और मायासंज्वलन इन प्रकृतियोंका उपशम होनेसे क्रमसे इक्कीस प्रकृतिक सत्कर्मस्थानके आधारसे उन्नीस प्रकृतिक आदि संक्रमस्थान उपलब्ध होते हैं। फिर आठ कषायोंकी क्षपणा करनेवाले क्षपकके एक समय कम एक आवलिप्रमाण गोपुच्छाके शेष रहने पर इक्कीस प्रकृतिक सत्कर्मस्थानके सम्बन्धसे तेरह प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है। इस प्रकार इक्कीस प्रकृतिक सत्कर्मस्थानसे सम्बन्ध रखनेवाले कुल तेरह संक्रम-स्थान होते हैं १३ ।

§ ३२७. पुनः आठ कषायोंका क्षय हो जाने पर तेरह प्रकृतिक सत्कर्मसे सम्बन्ध रखनेवाला तेरह प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है १ । फिर इसी जीवके अन्तरकरण करनेके बाद आनुपूर्वी संक्रमका प्रारम्भ कर देने पर तेरह प्रकृतिक सत्कर्मसे सम्बन्ध रखनेवाला बारह प्रकृतिक संक्रम-स्थान उत्पन्न होता है । २ । इस प्रकार तेरह प्रकृतिक सत्कर्मवालेके ये दो संक्रमस्थान होते हैं ।

§ ३२८. पुनः इसी जीवके द्वारा नपुंसकवेदका क्षय कर देने पर बारह प्रकृतिक सत्कर्मके साथ ग्यारह प्रकृतिक संक्रमस्थान उपलब्ध होता है। स्त्रीवेदका क्षय कर देने पर ग्यारह प्रकृतिक सत्कर्म होकर दस प्रकृतिक संक्रमस्थान प्राप्त होता है। छह नोकषायोंका क्षय हो जाने पर पाँच प्रकृतिक सत्कर्म होकर चार प्रकृतिक संक्रमस्थान प्राप्त होता है। पुरुषवेदके नवकबन्धका क्षय हो जाने पर चार प्रकृतिक सत्कर्म होकर तीन प्रकृतिक संक्रमस्थान प्राप्त होता है। क्रोधसंज्वलनका क्षय हो जाने पर तीन प्रकृतिक सत्कर्मके साथ दो प्रकृतिक संक्रमस्थान और मानसंज्वलनका क्षय हो जाने पर दो प्रकृतिक सत्कर्मके साथ एक प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है। इस प्रकार सत्कर्मस्थानोंमें संक्रमस्थानोंका विचार किया ।

१. ता० प्रतौ लोभसंजलणे इति पाठः ।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

§ ३२९. संपहि बंधट्ठाणेसु तदणुगमं वत्तइस्सामो । तं जहा—अट्ठावीससंतकम्मियमिच्छाइट्ठिम्मि बावीसबंधट्ठाणं होऊण सत्तावीससंकमो होइ १ । तेणेव सम्मत्ते उव्वेल्लिदे छव्वीससंकमो होइ, बंधट्ठाणं पुण तं चेव २ । सम्मामिच्छत्ते उव्वेल्लिदे तेणेव बंधट्ठाणेण सह पणुवीससंकमो होइ ३ । अणंताणुबंधी विसंजोएदूण मिच्छत्तं गदस्स पढमावलियाए बावीसबंधेण सह तेवीससंकमो होइ ४ । एवं बावीसबंधट्ठाणम्मि चत्तारि संकमट्ठाणाणि लद्धाणि ।

§ ३३०. सासणसम्माइट्ठिम्मि इगिवीसबंधट्ठाणं होदूण पणुवीससंकमट्ठाणमुप्पज्जदि १ । अणंताणु०विसंजोयणापुरस्सरं सासाणं गुणं पडिवण्णस्स पढमावलियाए इगिवीसबंधट्ठाणमिगिवीससंकमट्ठाणाहिट्ठियमुप्पज्जदि २ । एवमिगिवीसबंधट्ठाणम्मि दोण्णि चेव संकमट्ठाणाणि होंति ।

§ ३३१. सम्मामिच्छाइट्ठिम्मि सत्तारसबंधो होऊण अणंताणुबंधिविसंजोयणाविसंजोयणावसेण इगिवीस-पंचवीससंकमट्ठाणाणि होंति २ । अट्ठावीससंतकम्मियासंजदसम्माइट्ठिम्मि सत्तारसबंधेण सह सत्तावीसपयडिट्ठाणसंकमो होइ ३ । उवसमसम्मत्तग्गहणपढमसमयम्मि वट्टमाणस्स तस्सेव छव्वीससंकमट्ठाणं होइ ४। अणंताणु०विसंजोयणमस्सिगूण

§ ३२९. अब बन्धस्थानोंमें उनका अनुगम करके बतलाते हैं। यथा - अट्ठाईस प्रकृतिक सत्कर्मवाले मिथ्यादृष्टिके बाईस प्रकृतिक बन्धस्थान होकर सत्ताईस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है १ । इसी जीवके द्वारा सम्यक्त्वकी उद्वेलना कर देने पर छब्बीसप्रकृतिक संक्रमस्थान होता है किन्तु बन्धस्थान वही रहता है २ । सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना कर देने पर उसी बन्धस्थानके साथ पच्चीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ३ । अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करके मिथ्यात्वको प्राप्त हुए जीवके प्रथम आवलिमें बाईस प्रकृतिक बन्धस्थानके साथ तेईस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ४ । इस प्रकार बाईस प्रकृतिक बन्धस्थानमें चार संक्रमस्थान प्राप्त हुए ।

§ ३३०. सासादनसम्यग्दृष्टि जीवके इक्कीस प्रकृतिक बन्धस्थान होकर पच्चीस प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है १ । तथा अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनापूर्वक सासादनको प्राप्त हुए जीवके प्रथम आवलिमें इक्कीस प्रकृतिक बन्धस्थानसे सम्बन्ध रखनेवाला इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है २ । इस प्रकार इक्कीस प्रकृतिक बन्धस्थानमें दो ही संक्रमस्थान होते हैं ।

§ ३३१. सम्यग्मिथ्यादृष्टि गुणस्थानमें सत्रह प्रकृतिक बन्धस्थान होकर इक्कीस प्रकृतिक और पचीस प्रकृतिक ये दो संक्रमस्थान होते हैं । इनमेंसे जिसने पूर्वमें अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना की है उसके इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है और जिसने अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना नहीं की है उसके पच्चीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है २ । अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाले असंयतसम्यग्दृष्टि गुणस्थानमें सत्रहप्रकृतिक बन्धस्थानके साथ सत्ताईस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ३ । उपशमसम्यक्त्वको ग्रहण करनेके प्रथम समयमें विद्यमान उसी जीवके छब्बीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ४ । अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनाका आश्रय करके तेईस प्रकृतिक

१. ता० प्रतौ विसंजोएदूण इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेवीससंकमो जायदे ५। तेणेव इत्थिवेदे उवसमिदे[1] मिच्छत्तक्खवणमस्सियूण बावीससंकमो होदि ६। तेणेव सम्मामिच्छत्ते खविदे इगिवीससंकमो जायदे। एवं सव्वसमुच्चएण सत्तारसबंधट्ठाणम्मि छच्चेव संकमट्ठाणाणि भवंति।

§ ३३२. संजदासंजदम्मि तेरसबंधो होऊण सत्तावीससंकमो होइ १। तस्सेव पढमसम्मत्तविसेसिदसंजमासंजमग्गहणपढमसमयम्मि वट्टमाणस्स छव्वीससंकमो होइ २। विसंजोइदाणंताणु०चउक्कस्स तेवीससंकमो जायदे ३। तेणेव मिच्छत्ते खविदे बावीससंकमो होइ ४। सम्मामिच्छत्ते खविदे इगिवीससंकमो जायदे ५। एवं तेरसबंधम्मि णिरुद्धे पंचसंकमट्ठाणाणि भवंति।

§ ३३३. पमत्तापमत्तसंजदेसु णवपयडिबंधट्ठाणं होऊण सत्तावीससंकमो होइ १। अप्पमत्तभावेणोवसमसम्मत्तं संजमं च जुगवं पडिवण्णस्स पढमसमए णवबंधट्ठाणेण सह छव्वीससंकमो होइ २। अणंताणु०विसंजोयणापरिणदपमत्तापमत्तसंजदाणं तेणेव बंधट्ठाणेणाणुविद्धं तेवीससंकमट्ठाणं होइ ३। तत्थेव मिच्छत्तक्खवणमस्सियूण बावीससंकमट्ठाणोवलद्धी ४। सम्मामिच्छत्तक्खवणमवलंबिय इगिवीससंकमट्ठाणसमुवलंभो ५। एवं णवबंधट्ठाणम्मि पंचेव संकमट्ठाणाणि लब्भंति।

संक्रमस्थान होता है ५। मिथ्यात्वके क्षयका आश्रय करके बाईस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ६। उसी जीवके द्वारा सम्यग्मिथ्यात्वका क्षय कर देनेपर इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है। इस प्रकार सब मिलाकर सत्रह प्रकृतिक बन्धस्थानमें छह ही संक्रमस्थान होते हैं।

§ ३३२. संयतासंयत गुणस्थानमें तेरहप्रकृतिक बन्धस्थान होकर सत्ताईस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है १। प्रथम सम्यक्त्वके साथ संयमासंयमको ग्रहण करनेके प्रथम समयमें विद्यमान उस जीवके छब्बीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है २। अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करके स्थित हुए उसी जीवके तेईस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ३। उसी जीवके द्वारा मिथ्यात्वका क्षय कर देनेपर बाईस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ४। सम्यग्मिथ्यात्वका क्षय कर देनेपर बाईसप्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ४। सम्यग्मिथ्यात्वका क्षय कर देनेपर इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ५। इस प्रकार तेरह प्रकृतिक बन्धस्थानके रहते हुए पाँच संक्रमस्थान होते हैं।

§ ३३३. प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत गुणस्थानमें नौ प्रकृतिक बन्धस्थान होकर सत्ताईस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है १। अप्रमत्तभावके साथ उपशमसम्यक्त्व और संयमको एक साथ प्राप्त होनेवाले जीवके प्रथम समयमें नौ प्रकृतिक बन्धस्थानके साथ छब्बीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है २। अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनारूपसे परिणत हुए प्रमत्तसंयत और अप्रमत्तसंयत जीवोंके उसी बन्धस्थानसे अनुबिद्ध तेईस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ३। वहीं पर मिथ्यात्वके क्षयका आश्रय कर बाईस प्रकृतिक संक्रमस्थान प्राप्त होता है ४। तथा सम्यग्मिथ्यात्वके क्षयका अवलम्बन कर इक्कीसप्रकृतिक संक्रमस्थान उपलब्ध होता है। इस प्रकार नौप्रकृतिक बन्धस्थानमें पाँच ही संक्रमस्थान उपलब्ध होते हैं।

१. ता०प्रतौ जायदे ५। तेणेव इत्थिवेदे उवसामिदे इति पाठः।

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

§ ३३४. चउवीससंतकम्मियाणियट्टिगुणट्ठाणम्मि पंचपयडिबंधट्ठाणेण सह तेवीससंकमो होइ १। तत्थेवाणुपुव्वीसंकमवसेण बावीससंकमो होइ २। णवुंसयवेदोवसामणाए इगिवीससंकमो ३। इत्थिवेदोवसामणाए वीससंकमो होइ ४। पुणो इगिवीससंतकम्मिओवसामगेणाणुपुव्वीसंकमं काऊण णवुंसयवेदे उवसामिदे एगूणवीसं संकमो होइ ५। तेणेव इत्थिवेदे उवसामिदे अट्ठारससंकमो होइ ६। खवगेण अट्ठकसाएसु खविदेसु तेरससंकमो जायदे ७। अंतरकरणं करिय आणुपुव्वीसंकमे कदे बारससंकमो होइ ८। णवुंसयवेदे खविदे एक्कारससंकमो जायदे ९। इत्थिवेदक्खवणाए दससंकमो जायदे १०। एवं पंचपयडिबंधट्ठाणम्मि दस संकमट्ठाणाणि भवंति।

§ ३३५. संपहि चउण्हं बंधट्ठाणम्मि संकमट्ठाणगवेसणा कीरदे—चउवीससंतकम्मियोवसामगेण छण्णोकसायाणमुवसामणाए कदाए णिरुद्धबंधट्ठाणेण सह चोद्दससंकमट्ठाणमुप्पज्जइ १, तदवत्थाए पुरिसवेदबंधुवरमदंसणादो। तत्थेव पुरिसवेदे उवसामिदे तेरससंकमो जायदे २। इगिवीससंतकम्मिएण छण्णोकसाएसु उवसामिदेसु बारससंकमो होइ ३। पुरिसवेदोवसमे एक्कारससंकमो होइ ४। खवगेण छण्णोकसाएसु खविदेसु चउण्हं संकमो होइ ५। पुरिसवेदे खविदे तिण्हं संकमो जायदे ६। एवं चउव्विहबंधगम्मि छच्चेव संकमट्ठाणाणि भवंति, पुरिसवेदोदए णिरुद्धे अण्णेसिमणुव-

§ ३३४. चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें पाँच प्रकृतिक बन्धस्थानके साथ तेईस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है १। वहीं पर आनुपूर्वीसंक्रमके कारण बाईस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है २। नपुंसकवेदका उपसम हो जाने पर इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ३। स्त्रीवेदका उपसम हो जाने पर बीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ४। फिर इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक जीवके द्वारा आनुपूर्वी संक्रमका प्रारम्भ करनेके बाद नपुंसकवेदका उपशम कर लेने पर उन्नीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ५। उसीके द्वारा स्त्रीवेदका उपशम कर देने पर अठारह प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ६। क्षपकके द्वारा आठ कषायोंका क्षय कर देने पर तेरह प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ७। अन्तरकरण करनेके बाद आनुपूर्वी संक्रमका प्रारम्भ कर लेने पर बारह प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ८। नपुंसकवेदका क्षय कर देनेपर ग्यारह प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ९। स्त्रीवेदका क्षय कर देनेपर दस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है १०। इस प्रकार पाँच प्रकृतिक बन्धस्थानमें दस संक्रमस्थान होते हैं।

§ ३३५. अब चार प्रकृतिक बन्धस्थानमें संक्रमस्थानोंका विचार करते हैं—चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक जीवके द्वारा छह नोकषायोंका उपशम कर लेने पर विवक्षित बन्धस्थानके साथ चौदह प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है १, क्योंकि इस अवस्थामें पुरुषवेदके बन्धका अभाव देखा जाता है। वहीं पर पुरुषवेदका उपशम हो जाने पर तेरह प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है २। इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके द्वारा छह नोकषायोंका उपसम कर देने पर बारह प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ३। पुरुषवेदका उपशम हो जाने पर ग्यारह प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ४। क्षपकके द्वारा छह नोकषायोंका क्षय कर देने पर चार प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ५। पुरुषवेदका क्षय कर देने पर तीन प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ६। इस प्रकार चार प्रकृतिक बन्धस्थानमें छह ही संक्रमस्थान होते हैं, क्योंकि पुरुषवेदके उदयके सद्भावमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लंभादो। सेसवेदोदयविवक्खाए पुण तिपुरिससंबंधेण वीसट्ठारसादिसंकमट्ठाणाणं संभवो अणुगंतव्वो।

§ ३३६. संपहि तिविहबंधट्ठाणे संकमट्ठाणाणं परूवणा कीरदे—चउवीससंतकम्मिएण कोहसंजलणबंधवोच्छेदे कदे सेससंजलणतियबंधाहिट्ठियमेक्कारससंकमट्ठाणं होइ १। कोहसंजलणे उवसामिदे दससंकमो जायदे २। इगिवीससंतकम्मिएण दुविहकोहोवसमे कदे णवण्हं संकमो होइ ३। कोहसंजलणे उवसामिदे अट्ठण्हं संकमो होइ ४। खवगेण कोहसंजलणबंधवोच्छेदे कदे तिण्हं संकमो, कोहसंजलणणवकबंधसंकामयम्मि तदुवलंभादो ५। तेणेव कोहसंजलणे णिसंतीकए दोण्हं संकमट्ठाणमुप्पज्जदि ६।

§ ३३७. संपहि दुविहबंधयस्स उच्चदे—चउवीससंतकम्मियोवसामयेण दुविहमाणोवसमे कदे अट्ठण्हं संकमट्ठाणमुवजायदे १। तेणेव माणसंजलणोवसमे कदे सत्तण्हं संकमो जायदे २। इगिवीससंतकम्मियोवसामगेण दुविहमाणोवसमे कदे छण्हं संकमो होइ ३। माणसंजलणोवसमे कदे पंचण्हं संकमो जायदे ४। खवगेण माणसंजलणबंधवोच्छेदे कदे तण्णवकबंधसंकममस्सिऊण दोण्हं संकमो होइ ५। तम्मि चेव णिस्संतीकए एक्किस्से संकमो जायदे ६। एवमेत्थ वि छण्हं संकमट्ठाणाणं संभवो दट्ठव्वो।

अन्य संक्रमस्थानोंका पाया जाना सम्भव नहीं है। किन्तु शेष वेदोंके उदयकी विवक्षा होनेपर तो तीन पुरुषोंके सम्बन्धसे बीस, अठारह आदि संक्रमस्थान सम्भव हैं इसका विचार कर लेना चाहिए।

§ ३३६. अब तीन प्रकृतिक बन्धस्थानमें संक्रमस्थानोंका कथन करते हैं—चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके द्वारा क्रोधसंज्वलनकी बन्धव्युच्छित्ति कर देने पर शेष संज्वलनसम्बन्धी तीन प्रकृतिक बन्धस्थानके साथ ग्यारह प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है १। क्रोधसंज्वलनका उपशम कर देने पर दस प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है २। इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके द्वारा दो प्रकारके क्रोधका उपशम कर देने पर नौ प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ३। क्रोधसंज्वलनका उपशम कर देने पर आठ प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ४। क्षपक जीवके द्वारा क्रोधसंज्वलनकी बन्धव्युच्छित्ति कर देने पर तीन प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है, क्योंकि क्रोध संज्वलनके नवक बन्धके संक्रम करने पर इस स्थानकी उपलब्धि होती है ५। इसी जीवके द्वारा क्रोध संज्वलनके निःसत्त्व कर देने पर दो प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है ६।

§ ३३७. अब दो प्रकृतिक बन्धस्थानवाले जीवके संक्रमस्थान बतलाते हैं—चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक जीवके द्वारा दो प्रकारके मानका उपशम कर देने पर आठ प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है १। उसी जीवके द्वारा मानसंज्वलनका उपशम कर देने पर सात प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है २। इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामकके द्वारा दो प्रकारके मानका उपशम कर देने पर छह प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ३। मानसंज्वलनका उपशम कर देने पर पाँच प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ४। क्षपकके द्वारा मानसंज्वलनकी बन्धव्युच्छित्ति कर देने पर उसके नवकबन्धके संक्रमके आश्रयसे दो प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ५। उसी नवकबन्धके निःसत्त्व कर देने पर एक प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ६। इस प्रकार यहाँपर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

३३८. एगपयडिबंधणिरुद्धे पंच संकमट्ठाणाणि लब्भंति। तं जहा—चउवीस-संतकम्मियोवसामगस्स दुविहमायोवसमे मायसंजलणणवगबंधेण सह पंचण्हं संकमो १। मायासंजलणोवसमे चउण्हं संकमो २। इगिवीससंतकम्मियस्स दुविह-मायोवसमे मायासंजलणणवकबंधेण सह तिण्हं संकमो ३। तम्हि उवसामिदे दोण्हं संकमो ४। खवगस्स लोभसंजलणबंधयस्स मायासंजलणसंकमो एक्को चेव लब्भदे ५। एवं बंधट्ठाणेसु संकमट्ठाणाणं परूवणा कया।

§ ३३९. एवमेगसंजोगपरूवणं काऊण संपहि 'बंधेण य संकमट्ठाणे' इदि सुत्ताव-यवमवलंबिय दुसंजोगपरूवणं वत्तइस्सामो। तत्थ ताव बंध-संतट्ठाणाणं[1] दुसंजोगमाहार-भूदं काऊण संकमट्ठाणगवेसणा कीरदे। तं जहा—अट्ठावीससंतकम्मं बावीसबंधट्ठाणं च अण्णोण्णसहगयमाहारभूदं कादूण एदाणि संकमट्ठाणाणि भवंति २७, २६, २३। पुणो अट्ठावीससंतकम्ममिगिवीसबंधट्ठाणं च सहभूदमाधारं काऊण पणुवीस-इगिवीस-सण्णिदाणि दोण्णि संकमट्ठाणाणि लब्भंति २५, २१। तं चेव संतट्ठाणं[2] सत्तारस-बंधसहगदमस्सिऊण २७, २६, २५, २३ एदाणि चत्तारि संकमट्ठाणाणि संभवंति। तम्मि चेव कम्मंसियट्ठाणम्मि तेरस-णवविहबंधट्ठाणसहगयम्मि पादेक्कं सत्तावीस-

---

भी छह ही संक्रमस्थान सम्भव जानने चाहियें।

§ ३३८. एक प्रकृतिक बन्धस्थानके सद्भावमें पाँच संक्रमस्थान प्राप्त होते हैं। यथा—चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक जीवके दो प्रकारकी मायाका उपशम हो जाने पर मायासंज्वलनके नवक बन्धके साथ पाँच प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है १। मायासंज्वलनके उपशम हो जाने पर चार प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है २। इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके दो प्रकारकी मायाका उपशम हो जाने पर मायासंज्वलनके नवकबन्धके साथ तीन प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ३। नवकबन्धका उपशम कर देने पर दो प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है ४। तथा क्षपक जीवके लोभसंज्वलनका बन्ध होते हुए मायासंज्वलनका संक्रमरूप एक ही संक्रमस्थान प्राप्त होता है ५। इस प्रकार बन्धस्थानोंमें संक्रमस्थानोंका कथन किया।

§ ३३९. इस प्रकार एकसंयोगी भंगोंका कथन करके अब 'बन्धेण य संकमट्ठाणे' इस सूत्र वचनका अवलम्बन लेकर दो संयोगी स्थानोंका कथन करते हैं। उसमें भी बन्धस्थान और सत्कर्मस्थान इन दोनोंके संयोगको आधारभूत मानकर संक्रमस्थानोंका विचार करते हैं। यथा—अट्ठाईस प्रकृतिक सत्कर्मस्थान और बाईस प्रकृतिक बन्धस्थान इन दोनोंके परस्पर संयोगको आधारभूत करके २७, २६ और २३ प्रकृतिक ये तीन संक्रमस्थान होते हैं। पुनः अट्ठाईस प्रकृतिक सत्कर्मस्थान और इक्कीस प्रकृतिक बन्धस्थान इन दोनोंके संयोगको आधारभूत करके पच्चीस और इक्कीस प्रकृतिक दो संक्रमस्थान प्राप्त होते हैं २५, २१। उसी सत्कर्मस्थानको सत्रहप्रकृतिक बन्धस्थानके साथ प्राप्त करके २७, २६, २५ और २३ प्रकृतिक ये चार संकमस्थान सम्भव हैं। तेरह और नौ प्रकृतिक बन्धस्थानोंके साथ प्राप्त हुए उसी सत्कर्मस्थानके सद्भावमें प्रत्येकमें

---

१. ता०-आ० प्रत्योः ताव संकमट्ठाणाणं इति पाठः। २. आ०प्रतौ संकमट्ठाणं इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छव्वीस-तेवीससण्णिदाणि तिण्णि संकमट्ठाणाणि लब्भंति २७, २६, २३। उवरिमबंधट्ठाणेसु णिरुद्धसंतकम्मट्ठाणसंभवो णत्थि। एवमेदेण कमेण एक्केक्कसंतकम्मट्ठाणं जहासंभवं सव्वबंधट्ठाणेसु संजोजिय तत्थ संकमट्ठाणाणमियत्तासंभवो मग्गणिज्जो। अथवा बंधट्ठाणं धुवं कादूण जहासंभवसंतकम्मट्ठाणेसु संजोजिय तत्थ संभवंताणं संकमट्ठाणाणं गवेसणा कायव्वा। तं कधं? अट्ठावीससंतकम्मं बावीसबंधट्ठाणं च होऊण २७, २६, २३[1] एदाणि तिण्णि संकमट्ठाणाणि भवंति। तम्मि चेव बंधट्ठाणे सत्तावीससंतकम्मसहगए २६, २५ एदाणि दोण्णि संकमट्ठाणाणि भवंति। छव्वीससंतं बावीसबंधो च होऊण पणुवीससंकमट्ठाणमेक्कं चेव लब्भइ २५। एवं बावीसबंधसहगएसु संतकम्मट्ठाणेसु संकमट्ठाणपरूवणा कया।

§ ३४०. संपहि इगिवीसबंधट्ठाणमट्ठावीससंतकम्मं च होऊण पणुवीस-इगिवीससण्णिदाणि दोण्णि संकमट्ठाणाणि भवंति २५, २१। इगिवीसबंधट्ठाणे णिरुद्धे णत्थि अण्णो संतकम्मवियप्पो। अट्ठावीससंतं सत्तारसबंधो च होऊण २७, २६, २५, २३ एदाणि संकमट्ठाणाणि भवंति। चउवीससंतं सत्तारसबंधो च होऊण २३, २२, २१ एदाणि संकमट्ठाणाणि भवंति। पुणो तम्मि चेव बंधट्ठाणे तेवीससंतकम्मट्ठाणेण सह गदे बावीस-इगिवीससंकमट्ठाणाणि लब्भंति २२, २१। पुणो तम्मि चेव बंधट्ठाणे

सत्ताईस, छब्बीस और तेईस प्रकृतिक तीन संक्रमस्थान प्राप्त होते हैं २७, २६, २३,। इसके आगेके बन्धस्थानोंमें विवक्षित २८ प्रकृतिक सत्कर्मस्थान सम्भव नहीं है। इस प्रकार इस क्रमसे एक एक सत्कर्मस्थानका यथासम्भव सब बन्धस्थानोंके साथ संयोग करके वहाँ पर संक्रमस्थानोंके परिमाणका विचार कर लेना चाहिये। अथवा बन्धस्थानको ध्रुव करके और उससे यथासम्भव सत्कर्मस्थानोंका संयोग करके वहाँपर सम्भव संक्रमस्थानोंका विचार कर लेना चाहिये। यथा—अट्ठाईस प्रकृतिक सत्कर्मस्थान और बाईस प्रकृतिक बन्धस्थान होकर २७, २६ और २३ प्रकृतिक ये तीन संक्रमस्थान होते हैं। उसी बन्धस्थानके सत्ताईस प्रकृतिक सत्कर्मस्थानके साथ प्राप्त होनेपर २६ और २५ प्रकृतिक ये दो संक्रमस्थान होते हैं। छब्बीस प्रकृतिक सत्कर्मस्थान और बाईस प्रकृतिक बन्धस्थान होकर एक पच्चीस प्रकृतिक संक्रमस्थान प्राप्त होता है २५। इस प्रकार बाईस प्रकृतिक बन्धस्थानके साथ प्राप्त हुए सत्कर्मस्थानोंमें संक्रमस्थानोंका कथन किया।

§ ३४०. इक्कीस प्रकृतिक बन्धस्थान और अट्ठाईस प्रकृतिक सत्त्वस्थान होकर पच्चीस और इक्कीस प्रकृतिक दो संक्रमस्थान होते हैं २५, २१। इक्कीस प्रकृतिक बन्धस्थानके सद्भावमें अन्य सत्कर्मस्थानका विकल्प नहीं होता। अट्ठाईस प्रकृतिक सत्कर्मस्थान और सत्रह प्रकृतिक बन्धस्थान होकर २७, २६, २५ और २३ प्रकृतिक ये चार संक्रमस्थान होते हैं। चौबीस प्रकृतिक सत्त्वस्थान और सत्रह प्रकृतिक बन्धस्थान होकर २३, २२ और २१ प्रकृतिक ये तीन संक्रमस्थान होते हैं। पुनः तेईस प्रकृतिक सत्कर्मस्थानके साथ उसी बन्धस्थानके प्राप्त होने पर बाईस प्रकृतिक और इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थान होते हैं २२, २१। पुनः बाईस प्रकृतिक सत्कर्मस्थानके साथ उसी बन्ध-

---

१. ता०प्रतौ २४ इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बावीससंतकम्मेण सह गदे इगिवीससंकमट्ठाणमेक्कं चेव होइ, तत्थ पयारंतरासंभवादो। पुणो इगिवीससंतं सत्तारसबंधो च होऊण इगिवीससंकमट्ठाणमेक्कं चेव लब्भइ, णत्थि अण्णो वियप्पो। एवमुवरिमबंधट्ठाणेसु वि जहासंभवं संतकम्मट्ठाणविसेसिदेसु पादेक्कं संकमट्ठाणसंभवो गवेसणिज्जो।

§ ३४१. संपहि अण्णो दुसंजोगपयारो उच्चदे। तं जहा—'बंधेण य संकमट्ठाणे' बंधट्ठाणेहि सह संकमट्ठाणाणि समाणय? कम्हि त्ति पुच्छिदे कम्मंसियट्ठाणेसु त्ति अहिसंबंधो कायव्वो। संतकम्मियट्ठाणाणि आहारभूदाणि ठविय तेसु बंध-संकमट्ठाणाणं दुसंजोगो णेदव्वो त्ति उत्तं होइ। एदं च देसामासयं तेण बंधट्ठाणेसु संत-संकमट्ठाणाणं दुसंजोगो समाणेयव्वो, संकमट्ठाणेसु च बंध-संतट्ठाणाणं दुसंजोगो सम्ममाणुपुव्वीए णेदव्वो त्ति।

§ ३४२. एत्थ ताव संतकम्मट्ठाणेसु बंध-संकमट्ठाणाणं दुसंजोगस्स समाणा विही उच्चदे। तं जहा—अट्ठावीससंतकम्ममाहारं काऊण २२, २१, १७, १३, ९ बंधट्ठाणाणि २७, २६, २५, २३, २१ एदाणि च संकमट्ठाणाणि लब्भंति। सत्तावीस-संतकम्मे णिरुद्धे २२ बंधो २६, २५ संकमो च लब्भइ। छव्वीससंतकम्मम्मि बावीस-बंधो पणुवीससंकमो च लब्भइ। एवमुवरिमसंतकम्मट्ठाणेसु वि जहासंभवं बंध-संकम-ट्ठाणाणं दुसंजोगो अणुगंतव्वो।

स्थानके प्राप्त होने पर इक्कीस प्रकृतिक एक ही संक्रमस्थान होता है, क्योंकि यहाँ पर और कोई दूसरा प्रकार सम्भव नहीं है। पुनः इक्कीस प्रकृतिक सत्कर्मस्थान और सत्रह प्रकृतिक बन्धस्थान होकर इक्कीस प्रकृतिक एक ही संक्रमस्थान प्राप्त होता है, क्योंकि यहाँ अन्य विकल्प सम्भव नहीं है। इसी प्रकार यथासम्भव सत्कर्मस्थानोंसे युक्त आगेके बन्धस्थानोंमें भी अलग अलग संक्रम-स्थानोंका विचार कर लेना चाहिये।

§ ३४१. अब अन्य प्रकारसे दो संयोगी प्रकारका कथन करते हैं। यथा—'बंधेण य संकमट्ठाणे' बन्धस्थानोंके साथ संक्रमस्थानोंको ले आना चाहिये। कहाँ ले आना चाहिए? सत्कर्मस्थानोंमें ऐसा यहाँ सम्बन्ध कर लेना चाहिये। अर्थात् सत्कर्मस्थानोंको आधार रूपसे स्थापित कर उनमें बन्धस्थानों और संक्रमस्थानोंके दो संयोगको घटित कर लेना चाहिये यह उक्त कथनका तात्पर्य है। यतः यह वचन देशामर्षक है अतः बन्धस्थानोंमें सत्कर्मस्थानों और संक्रमस्थानोंका दो संयोग घटित कर लेना चाहिये। तथा संक्रमस्थानोंमें बन्धस्थानों और सत्कर्मस्थानोंका दो संयोग भले प्रकार आनुपूर्वीक्रमसे घटित कर लेना चाहिये।

§ ३४२. यहाँ सर्व प्रथम सत्कर्मस्थानोंमें बन्धस्थानों और संक्रमस्थानोंके दो संयोगको घटित कर लेनेकी विधि कहते हैं। यथा—अट्ठाईस प्रकृतिक सत्कर्मस्थानको आधार करके २२, २१, १७, १३ और ९ प्रकृतिक ये पाँच बन्धस्थान और २७, २६, २५, २३ और २१ प्रकृतिक ये पाँच संक्रमस्थान प्राप्त होते हैं। सत्ताईस प्रकृतिक सत्कर्मस्थानके रहते हुए २२ प्रकृतिक बन्धस्थान तथा २६ और २५ प्रकृतिक संक्रमस्थान प्राप्त होते हैं। छब्बीस प्रकृतिक सत्कर्मस्थानके रहते हुए बाईस प्रकृतिक बन्धस्थान और पच्चीस प्रकृतिक संक्रमस्थान प्राप्त होता है। इसी प्रकार आगेके सत्कर्मस्थानोंमें भी यथासम्भव बन्धस्थानों और संक्रमस्थानोंके दो संयोगको जान लेना चाहिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ३४३. संपहि बंधट्ठाणेसु सेसदुगसंजोगो णिज्जदे । तं जहा—२२ बंधो होऊण २८, २७, २६ संतकम्मट्ठाणाणि २७, २६, २५, २३ संकमट्ठाणाणि च लब्भंति । इगिवीसबंधट्ठाणम्मि २८ संतकम्मं २५, २१ संकमट्ठाणाणि च भवंति । सत्तारसबंधट्ठाणम्मि २८, २४, २३, २२, २१ संतकम्मट्ठाणाणि २७, २६, २५, २३, २२, २१ संकमट्ठाणाणि च भवंति । एवमुवरिमबंधट्ठाणेसु वि एक्केक्कणिरुंभणं काऊण तत्थ सेसदुगसंजोगो जहासंभवमणुमग्गणिज्जो जाव एक्किस्से बंधट्ठाणमिदि ।

§ ३४४. संपहि संकमट्ठाणेसु बंध-संतट्ठाणाणं दुसंजोगस्साणयणकमो उच्चदे । तं जहा—सत्तावीससंकमे णिरुद्धे अट्ठावीससंतं २२, १७, १३, ९ बंधट्ठाणाणि च भवंति । छव्वीससंकमट्ठाणम्मि २८, २७ संतकम्मट्ठाणाणि २२, १७, १३, ९ बंधट्ठाणाणि च भवंति । पणुवीससंकमट्ठाणम्मि २८, २७, २६ संतकम्मट्ठाणाणि २२, २१, १७ बंधट्ठाणाणि च भवंति । २३ संकमट्ठाणे २८, २४ संतट्ठाणाणि २२, १७, १३, ९, ५ बंधट्ठाणाणि च भवंति । एवमुवरिमसंकमट्ठाणाणं[1] पि पादेक्कं णिरुंभणं काऊण तत्थ संतकम्मट्ठाणाणि[2] बंधट्ठाणाणि च दुसंजोगविसिट्ठाणि णेदव्वाणि जाव एगसंकमट्ठाणे त्ति । एवं णीदे दुसंजोगपरूवणा समत्ता होइ । एसो च सव्वो अदीदगाहासुत्तपबंधो संकम-पडिग्गह-तदुभयट्ठाणसमुक्कित्तणाए सामित्तगब्भिणीए[3] पडिबद्धो,

§ ३४३. अब बन्धस्थानोंमें शेष दो संयोगी स्थानोंका विचार करते हैं। यथा · बाईस प्रकृतिक बन्धस्थान होकर २८, २७ और २६ प्रकृतिक तीन सत्कर्मस्थान और २७, २६, २५ और २३ प्रकृतिक चार संक्रमस्थान प्राप्त होते हैं। इक्कीस प्रकृतिक बन्धस्थानमें २८ प्रकृतिक सत्कर्मस्थान तथा २५ और २१ प्रकृतिक संक्रमस्थान होते हैं। सत्रह प्रकृतिक बन्धस्थानमें २८, २४, २३, २२ और २१ प्रकृतिक सत्कर्मस्थान और २७, २६, २५, २३, २२ और २१ प्रकृतिक संक्रमस्थान होते हैं। इसी प्रकार एक प्रकृतिक बन्धस्थानके प्राप्त होनेतक आगेके बन्धस्थानोंमेंसे भी एक एकको विवक्षित करके उसमें यथासम्भव शेष दो संयोगी स्थानोंका विचार कर लेना चाहिये।

§ ३४४. अब संक्रमस्थानोंमें बन्धस्थानों और सत्कर्मस्थानोंके दो संयोगके लानेका क्रम कहते हैं। यथा—सत्ताईस प्रकृतिक संक्रमस्थानके सद्भावमें २८ प्रकृतिक सत्कर्मस्थान और २२, १७, १३ और ९ प्रकृतिक बन्धस्थान होते हैं। छब्बीस प्रकृतिक संक्रमस्थानमें २८ और २७ प्रकृतिक सत्कर्मस्थान और २२, १७, १३ और ९ प्रकृतिक बन्धस्थान होते हैं। पच्चीस प्रकृतिक संक्रमस्थानमें २८, २७ और २६ प्रकृतिक सत्कर्मस्थान तथा २२, २१ और १७ प्रकृतिक बन्धस्थान होते हैं। २३ प्रकृतिक संक्रमस्थानमें २८ और २४ प्रकृतिक सत्कर्मस्थान तथा २२, १७, १३, ९ और ५ प्रकृतिक बन्धस्थान होते हैं। इस प्रकार एक प्रकृतिक संक्रमस्थानके प्राप्त होने तक आगेके सब संक्रमस्थानोंमेंसे भी प्रत्येकको विवक्षित करके उसमें सत्कर्मस्थानों और बन्धस्थानोंके दो संयोगी स्थानोंका विचार कर लेना चाहिये। इस प्रकार विचार करनेपर दो संयोगी प्ररूपणा समाप्त होती है। ३० यह सब अतीत गाथासूत्रोंका कथन स्वामित्वको सूचित करनेवाले संक्रमस्थानों,

१. ता०प्रतौ एवमुवरि संकमट्ठाणाणं इति पाठः। २. आ०प्रतौ संकमट्ठाणाणि इति पाठः। ३. ता०प्रतौ -गब्भणीए ? आ०प्रतौ -गब्भणाए इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ओघादेसेहि तप्परूवणाए चेव णिबद्धाणमदीदसव्वगाहाणमुवलंभादो ।

§ ३४५. संपहि जत्थतत्थाणुपुव्वीए सेसाणमणियोगद्दाराणं णामणिद्देसकरणट्ठ-मुवरिमगाहासुत्ताणं दोण्हमवयारो[1]—'सादिय जहण्ण संकम०' एत्थ सादि-जहण्ण-ग्गहणेण सादि-अणादि-धुव-अद्धुव-सव्व-णोसव्व-उक्कस्साणुक्कस्स-जहण्णाजहण्णसंकम-सण्णिदाणमणियोगद्दाराणं संगहो कायव्वो,देसामासयभावेणेदस्सवट्ठाणादो। संकमग्गहण-मेदेसिमणियोगद्दाराणं पयडिट्ठाणसंकमविसयत्तं सूचेदि । 'कदिखुत्तो०' एवं उत्ते एक्केक्कम्मि संकमट्ठाणम्मि कदिगुणो जीवरासी होइ त्ति पुच्छिदं हवइ । एदेणप्पा-बहुआणिओगद्दारं सूचिदं । 'अविरहिद'ग्गहणेण एयजीवेण कालो, 'सांतर'ग्गहणेण वि एयजीवेणंतरं सूचिदं, 'केवचिरं' गहणेण दोण्हं पि विसेसणादो । 'कदिभाग परिमाणं' इच्चेदेण भागाभागस्स संगहो कायव्वो, सव्वजीवरासिस्स कइत्थओ भागो केसिं संकमट्ठाणाणं संकामयजीवरासिपमाणं होइ त्ति पुच्छाए अवलंबणादो ॥३१॥

§ ३४६. 'एवं दव्वे खेत्ते०' अत्र 'एवं' इत्यनेन नानाजीवसंबंधिनो भंगविचयस्य

प्रतिग्रहस्थानों और तदुभयस्थानोंके कथनसे सम्बन्ध रखता है, क्योंकि ओघ और आदेशसे इसके कथन करनेमें ही अतीत सब गाथाओंका व्यापार देखा जाता है ।

§ ३४५. अब यत्रतत्रानुपूर्वीके क्रमसे शेष अनुयोगद्वारोंके नामका निर्देश करनेके लिये ही आगेके दो गाथासूत्र आये हैं—'सादिय जहण्ण संकम०' इसमें जो 'सादि जहण्ण' पदका ग्रहण किया है सो इससे सादि, अनादि, ध्रुव, अध्रुव, सर्व, नोसर्व, उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्यसंक्रम संज्ञावाले अनुयोगद्वारोंका संग्रह करना चाहिये, क्योंकि देशामर्षकभावसे यह पद अवस्थित है। 'संक्रम' पद, ये अनुयोगद्वार प्रकृति संक्रमस्थानसे सम्बन्ध रखते हैं, यह सूचित करता है। 'कदिखुत्तो०' ऐसा कहनेपर एक एक संक्रमस्थानमें कितनीगुणी जीवराशि होती है यह पृच्छा की गई है। इससे अल्पबहुत्व अनुयोगद्वार सूचित होता है। 'अविरहिद' पदके ग्रहण करनेसे एक जीवकी अपेक्षा काल और 'सांतर' पदके ग्रहण करनेसे भी एक जीवकी अपेक्षा अन्तर ये अनुयोगद्वार सूचित होते हैं, क्योंकि 'केवचिरं' पदके ग्रहण करनेसे यह 'अविरहिद' और 'सांतर' इन दोनोंका विशेषण है यह सिद्ध होता है। तथा 'कदिभाग परिमाणं' इसद्वारा भागाभागका संग्रह करना चाहिए, क्योंकि इस पदमें किन संक्रमस्थानोंके संक्रामक जीवराशिका प्रमाण सब जीवराशिका कितना भाग है इस पृच्छाका अवलम्बन लिया गया है।

विशेषार्थ—आशय यह है कि इस ३१ वीं गाथामें संक्रमप्रकृतिस्थानसे सम्बन्ध रखनेवाले सादि संक्रम, अनादि संक्रम, ध्रुव संक्रम अध्रुव संक्रम, सर्वसंक्रम, नोसर्वसंक्रम, उत्कृष्टसंक्रम, अनुत्कृष्टसंक्रम, जघन्यसंक्रम, अजघन्यसंक्रम, अल्पबहुत्व, एक जीवकी अपेक्षा काल, एक जीवकी अपेक्षा अन्तर और भागाभाग इन अनुयोगद्वारोंकी सूचना की गई है । अर्थात् इतने अनुयोगद्वारोंके द्वारा प्रकृतिसंक्रमस्थानका वर्णन करना चाहिये यह इसका अभिप्राय है ।

§ ३४६. 'एवं दव्वे खेत्ते' इस गाथामें आये हुए 'एवं' इस पद द्वारा नाना जीवोंसम्बन्धी

१. ता०प्रतौ -मुवयारो इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संग्रहः। 'दव्वे' इच्चेदेण सुत्तावयवेण दव्वपमाणाणुगमो। 'खेत्त'ग्गहणेण खेत्ताणुगमो च, पोसणाणुगमो च'काल'ग्गहणेण त्रि कालंतराणं णाणाजीवविसयाणं संगहो कायव्वो। 'भाव' ग्गहणं भावाणिओगद्दारस्स संगहणफलं। एत्थाहियरणणिद्देसो तव्विसयपरूवणाए तदाहार-भावपदुप्पायणफलो त्ति दट्ठव्वो। 'सण्णिवाद' ग्गहणं च सण्णियासाणियोगद्दारस्स सूचणा-मेत्तफलं। 'च' सद्दो वि भुजगार-पदणिक्खेव-वड्ढीणं सप्पभेदाणं संगाहओ, तेहि विणा पयदपरूवणाए असंपुण्णभावावत्तीदो। एवमेदेहिं अणेयणयगहणणिलीणाणिओगद्दारेहिं 'संकमणयं' पयडिसंकमगाहासुत्ताणं[1]महिप्पायं णयविदू णयण्हू[2] 'णेया' णयदु 'सुददेसिदं' मूलसुत्तसंदब्भसंदरिसिदपरूवणोवायं 'उदारं' अत्थगंभीरं सुत्ताहिप्पायं णयदु। त्ति उत्तं होइ। अहवा 'संकमणयं' संक्रमनीतकविधानं णयविदू नयज्ञः[3] 'णेया' नयेत्प्रकाशये-दित्यर्थः। एवं णीदे संकमवित्तिगाहाणमत्थो परिसमत्तो होइ।

§ ३४७. एत्तो गाहासुत्तसूचिदाणमणियोगद्दाराणं विहासणट्ठमुच्चारणाए सह चुण्णिसुत्ताणुगमं कस्सामो। तं जहा—ट्ठाणसमुक्कित्तणाए दुविहो णिद्देसो—ओघादेस-भेदेण। तत्थोघेण अत्थि २७, २६, २५, २३, २२, २१, २०, १९, १८, १४, १३, १२, ११, १०, ९, ८, ७, ६, ५, ४, ३, २, १ एदेसिं संकामणा। एवं

भंगविचयका संग्रह किया गया है। 'दव्वे' इस सूत्रवचनद्वारा द्रव्यप्रमाणानुगमका 'खेत्त' पदके ग्रहण करनेसे क्षेत्रानुगम और स्पर्शनानुगमका तथा 'काल' पदके ग्रहण करनेसे भी नाना जीव सम्बन्धी काल और अन्तर अनुयोगद्वारोंका संग्रह करना चाहिये। सूत्रमें 'भाव' पदका ग्रहण भाव अनुयोगद्वारके संग्रह करनेके लिये किया है। इस गाथामें जो उक्त सब पदोंका निर्देश अधिकरण-रूपसे किया है सो उस उस विषयका कथन करते समय वह अनुयोगद्वार आधार हो जाता है यह दिखलानेके लिये किया है ऐसा यहाँ जानना चाहिये। 'सण्णिवाद' पदका ग्रहण सन्निकर्ष अनुयोगद्वारको सूचित करनेके लिये किया है। सूत्रमें 'च' शब्द भी अपने भेदोंसहित भुजगार, पदनिक्षेप और वृद्धि इन तीनोंका संग्रह करनेके लिये आया है, क्योंकि इनके विना प्रकृत प्ररूपणाके अधूरी रहनेकी आपत्ति आती है। इस प्रकार अनेक गहन नयोंके विषयभूत इन अनुयोगद्वारोंके द्वारा 'संकमणयं' अर्थात् प्रकृतिसंक्रमविषयक गाथा सूत्रोंके अभिप्रायको 'णयविदू' अर्थात् नयके जानकार 'णेया' अर्थात् जानें। तात्पर्य यह है कि 'सुददेसिदं' अर्थात् मूल सूत्रके सन्दर्भमें दिखलाये गये प्ररूपणाके उपायको, जो उदारं अर्थात् अर्थगम्भीर है ऐसे सूत्रके अभिप्रायको जानें यह उक्त कथनका तात्पर्य है। अथवा 'संकमणयं' अर्थात् संक्रमसे प्राप्त हुए विधानको 'णयविदू' अर्थात् नयके जानकार पुरुष 'णेया' अर्थात् प्रकाशित करें यह उक्त कथनका तात्पर्य है। इस प्रकार ले जाने पर संक्रमविषयक वृत्तिगाथाओंका अर्थ समाप्त होता है।

§ ३४७. अब इससे आगे गाथासूत्रोंके द्वारा सूचित होनेवाले अनुयोगद्वारोंका व्याख्यान करनेके लिये उच्चारणाके साथ चूर्णिसूत्रोंका परिशीलन करते हैं। यथा—स्थान समुत्कीर्तनाकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा २७, २६, २५, २३, २२, २१, २०, १९, १८, १४, १३, १२, ११, १०, ९, ८, ७, ६, ५, ४, ३, २ और १ इन स्थानोंके

१. ता०प्रतौ पयडिगाहासंकमसुत्ताण- इति पाठः। २. आ०प्रतौ णयविदो णयण्हो इति पाठः। ३. ता०प्रतौ णयविदू नयज्ञाः, आ०प्रतौ णयविदो नयज्ञाः इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मणुस्सतिए। णवरि मणुसिणीसु चोद्दससंकमो णत्थि। अहवा ओयरमाणमस्सिऊण अत्थि।

§ ३४८. आदेसेण णेरइएसु अत्थि २७, २६, २५, २३, २१ संकामया। एवं सव्वणेरया तिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खतिय-देवा जाव णवगेवज्जा त्ति।

§ ३४९. पंचिं०तिरिक्खअपज्ज०-मणुसअपज्ज० अत्थि २७, २६, २५ संकामया। अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठे त्ति अत्थि २७, २३, २१ संकामया। एवं जाव अणाहारि त्ति।

§ ३५०. सव्व-णोसव्व-उक्कस्साणुक्कस्स-जहण्णाजहण्णसंकमाणमेत्थ णत्थि संभवो,

---

संक्रामक जीव हैं। इसी प्रकार तीन प्रकारके मनुष्योंमें जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्यनियोंमें चौदह प्रकृतिक संक्रमस्थान नहीं होता है। अथवा उतरनेवाले मनुष्यिनी जीवोंके होता है।

विशेषार्थ—ओघसे तो उक्त सभी स्थानोंके संक्रामक जीव हैं। मनुष्यगतिमें सामान्य मनुष्य और मनुष्य पर्याप्त इनके उक्त सब संक्रमस्थान सम्भव हैं। केवल मनुष्यनियोंके उपशम-श्रेणि पर चढ़ते समय १४ प्रकृतिक संक्रमस्थान नहीं होता, क्योंकि जो २४ प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव उपशम श्रेणि पर चढ़ता है उसीके ६ नोकषायोंका उपशम होने पर १४ प्रकृतिक संक्रमस्थान पाया जाता है। किन्तु स्त्रीवेदके उदयके साथ उपशमश्रेणि पर चढ़े हुए ऐसे जीवके छह नोकषाय और पुरुषवेदका एक साथ उपशम होता है इसलिये इसके १४ प्रकृतिक संक्रमस्थान नहीं पाया जाता। हाँ उपशमश्रेणिसे उतरते समय जब १४ प्रकृतियोंका संक्रम होने लगता है तब मनुष्यनीके १४ प्रकृतिक संक्रमस्थान अवश्य प्राप्त हो जाता है। इसीसे यहाँ मनुष्यनीके उपशमश्रेणि पर चढ़ते समय १४ प्रकृतिक संक्रमस्थानका निषेध किया है।

§ ३४८. आदेशसे नारकियोंमें २७,२६, २५, २३ और २१ प्रकृतिक संक्रमस्थानोंके संक्रामक जीव हैं। इसी प्रकार सब नारकी, तिर्यञ्च, पंचेन्द्रियतिर्यञ्चत्रिक और सामान्य देवोंसे लेकर नौ ग्रैवेयक तकके देव इनके कथन करना चाहिये।

विशेषार्थ—इन मार्गणाओंमें ये ही संक्रमस्थान होते हैं, अतः यहाँ इनके संक्रामक जीव बतलाये हैं। किन्तु इतनी विशेषता है कि द्वितीयादि नरकोंमें, तिर्यञ्चिनियोंमें और भवनत्रिकोंमें व सौधर्म ऐशान कल्पकी देवियोंमें २१ प्रकृतिक संक्रमस्थान क्षपणाकी अपेक्षा घटित न करके अनन्तानुबन्धीके विसंयोजक जीवोंकी अपेक्षा सासादन गुणस्थानमें एक आवलिकाल तक जानना चाहिये, क्योंकि इन मार्गणाओंमें क्षायिक सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति सम्भव नहीं है। इसलिये यहाँ दर्शनमोहनीयकी क्षपणाकी अपेक्षा २१ प्रकृतिक संक्रमस्थान नहीं प्राप्त होता यह सिद्ध होता है।

§ ३४९. पंचेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें २७, २६ और २५ प्रकृतिक स्थानोंके संक्रामक जीव हैं। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें २७,२३, और २१ प्रकृतिक स्थानोंके संक्रामक जीव हैं। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये।

विशेषार्थ—अनुदिशादिकमें २८ प्रकृतियोंकी सत्तावालेके २७ प्रकृतिक, २४ प्रकृतियोंकी सत्तावालेके २३ प्रकृतिक और २१ प्रकृतियोंकी सत्तावालेके २१ प्रकृतिक संक्रमस्थान होते हैं। शेष कथन सुगम है।

§ ३५०. यहाँ प्रकृतिसंकमस्थानमें सर्वसंक्रम, नोसर्वसंक्रम, उत्कृष्ट संक्रम, अनुत्कृष्ट संक्रम,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णिरुद्धेयसंकमट्ठाणम्मि उक्कस्साणुक्कस्सादिपदभेदाणमसंभवादो ।

§ ३५१. सादि-अणादि-धुव-अद्धुवाणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण पणु० संकाम० किं सादि०४ ? सादि० अणादि० धुवा अद्धुवा वा। सेसट्ठाणसंकामया सव्वे सादि-अद्धुवा। आदेसेण णेरइय० सव्वसंकमट्ठाणाणं संकामया सादि-अद्धुवा। एवं जाव अणाहारि त्ति।

❀ एत्तो पदाणुमाणियं सामित्तं णेयव्वं।

§ ३५२. एदस्स सामित्तपरूवणाबीजपदभूदसुत्तस्स अत्थविवरणं कस्सामो।

जघन्य संक्रम और अजघन्य संक्रम ये अनुयोगद्वार सम्भव नहीं हैं, क्योंकि विवक्षित एक संक्रमस्थानमें उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट इत्यादि भेद सम्भव नहीं हैं।

विशेषार्थ—तात्पर्य यह है कि जिस संक्रमस्थानमें जितनी प्रकृतियाँ परिगणित की गई हैं उसमें उतनी ही प्रकृतियाँ होती हैं, इसलिए प्रकृतिसंक्रमस्थानोंमें इन भेदोंका निषेध किया है।

§ ३५१. सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुवानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। ओघसे पचीस प्रकृतिक स्थानके संक्रामक जीव क्या सादि होते हैं, क्या अनादि होते हैं, क्या ध्रुव होते हैं या क्या अध्रुव होते हैं ? सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव चारों प्रकारके होते हैं। शेष स्थानोंके संक्रामक सब जीव सादि और अध्रुव होते हैं। आदेशसे नारकियोंमें सब संक्रमस्थानोंके संक्रामक जीव सादि और अध्रुव होते हैं। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये।

विशेषार्थ—बात यह है कि पचीस प्रकृतिक संक्रमस्थान अनादि व सादि दोनों प्रकारके मिथ्यादृष्टियोंके व भव्य, और अभव्य इन दोनोंके सम्भव है, अतः यहाँ सादि आदि चारों विकल्प बन जाते हैं। किन्तु शेष स्थानोंकी यह बात नहीं है, क्योंकि वे सब स्थान कादाचित्क हैं, अतः उनमें सादि और अध्रुव ये ही दो विकल्प घटित होते हैं। इसी प्रकार सब मार्गणाओंमें उक्त प्रकारसे सादि आदि प्ररूपणा लगा लेना चाहिये। इनका सरलतासे ज्ञान होनेके लिये कोष्ठक दे रहे हैं—

मार्गणा	२५ प्र०	शेष स्थान
मिथ्या०	सादि आदि ४	सादि व अध्रु।
अचक्षु०	,,	,,
भव्य	ध्रुवके बिना ३	,,
अभव्य०	अनादि व ध्रुव	×
शेष	सादि व अध्रुव	जहाँ जो सम्भव हैं वे सादि व अध्रुव

❀ अब आगे आनुपूर्वी आदि अर्थपदोंके द्वारा अनुमान किये गये स्वामित्वको जानना चाहिए।

§ ३५२. अब स्वामित्व प्ररूपणाके बीजभूत इस सूत्रका व्याख्यान करते हैं। यथा—इससे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तं कधं ? एत्तो उवरि सामित्तमवसरपत्तं णेदव्वं । कधं णेदव्वं इदि पुच्छिदे पदाणुमाणियं पुव्वुत्ताणि अत्थपदाणि आणुपुव्वीसंकमादीणि णिबंधणं कादूण णेदव्वमिदि उत्तं होइ । संपहि एदेण समप्पिदत्थविवरद्दमुच्चारणं वत्तइस्सामो । तं जहा—सामित्ताणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेणादेसेण । ओघेण २७, २६, २३ संकमो कस्स ? अण्णदरस्स सम्माइट्ठिस्स वा मिच्छाइट्ठिस्स वा । २५ संकमो कस्स ? मिच्छा० सासण० सम्मामि० वा । २१ संकमो कस्स ? सासण० सम्मामिच्छाइट्ठिस्स सम्मादिट्ठिस्स वा । बावीस-वीसप्पहुडि जाव एक्किस्से संकमो कस्स ? अण्णदरस्स सम्माइट्ठिस्स । एवं मणुसतिए । णवरि मणुसिणीसु १४ संकमसामित्तं णत्थि । अहवा ओयरमाणमस्सियूण चउवीस-संतकम्मियोवसामयस्स सामित्तं वत्तव्वं ।

§ ३५३. आदेसेण णेरइय० २७, २६, २३ कस्स ? अण्णद० सम्माइट्ठि० मिच्छाइट्ठि० । २५, २१ कस्स ? ओघं । एवं पढमपुढवि-तिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्ख२-देवगदिदेवा सोहम्मादि जाव णवणेवज्ञा त्ति । एवं विदियादि जाव सत्तमि त्ति । णवरि इगिवीससंकमो सम्माइट्ठिस्स णत्थि । एवं जोणिणी-भवण०-वाण-जोदिसिया त्ति । पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज०-मणुसअपज्ज०-अणुद्दिसादि सव्वट्ठा त्ति अप्पप्पणो

आगे स्वामित्व अवसर प्राप्त है, इसलिए उसे जानना चाहिये । कैसे जानना चाहिए ऐसा पूछनेपर पदानुमानित अर्थात् आनुपूर्वी, संक्रम आदि अर्थपदोंको निमित्त करके जानना चाहिए यह उक्त कथनका तात्पर्य है । अब इससे प्राप्त हुए अर्थका विवरण करनेके लिए उच्चारणाको बतलाते हैं । यथा—स्वामित्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे २७, २८ और २३ प्रकृतिक संक्रमस्थान किसके होते हैं ? अन्यतर सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टिके होते हैं । २५ प्रकृतिक संक्रमस्थान किसके होता है ? मिथ्यादृष्टि, सासादनसम्यग्दृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि के होता है । २१ प्रकृतिक संक्रमस्थान किसके होता है ? सासादनसम्यग्दृष्टि, सम्यग्मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टिके होता है । २२ और २० प्रकृतिक संक्रमस्थानोंसे लेकर एक प्रकृतिक संक्रमस्थान तकके सब संक्रमस्थान किसके होते हैं ? अन्यतर सम्यग्दृष्टिके होते हैं । इसी प्रकार मनुष्यत्रिकमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्यनियोंमें १४ प्रकृतिक संक्रमस्थानका स्वामित्व नहीं है । अथवा उपशमश्रेणीसे उतरनेवाले जीवकी अपेक्षा चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक स्त्रीवेदीके १४ प्रकृतिक संक्रमस्थानका स्वामित्व कहना चाहिए ।

§ ३५३. आदेशसे नारकियोंमें २७, २६ और २३ प्रकृतिक संक्रमस्थान किसके होते हैं ? अन्यतर सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टिके होते हैं । २५ और २१ प्रकृतिक संक्रमस्थान किसके होते हैं ? इनका स्वामित्व ओघके समान है । इसी प्रकार प्रथम पृथिवीके नारकी, तिर्यंच, पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च, पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्त, देवगतिमें सामान्य देव और सौधर्म कल्पसे लेकर नौ ग्रैवेयक तकके देवोंमें जानना चाहिए । इसी प्रकार दूसरे नरकसे लेकर सातवें नरक तकके नारकियोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इन नारकियोंमें सम्यग्दृष्टिके इक्कीस प्रकृतिक संक्रम-स्थान नहीं होता । इसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनी, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें जानना चाहिये । पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त, मनुष्य अपर्याप्त और अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें अपने अपने तीन संक्रमस्थान किसके होते हैं ? अन्यतरके होते हैं । इसी प्रकार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिण्णि ट्ठाणाणि कस्स ? अण्णदरस्स । एवं जाव ।

§ ३५४. एवं सामित्तं समाणिय संपहि कालाणियोगद्दारपरूवणट्ठमुत्तरसुत्तावयारो कीरदे—

❀ एयजीवेण कालो ।

§ ३५५. सामित्तपरूवणाणंतरमेयजीवविसओ कालो परूवेयव्वो त्ति पइज्जासुत्तमेदं ।

❀ सत्तवीसाए संकामओ केवचिरं कालादो होइ ?

§ ३५६. पुच्छासुत्तमेदं सुगमं ।

❀ जहण्णेण अंतोमुहुत्तं ।

§ ३५७. एसो जहण्णकालो मिच्छाइट्ठिस्स पणुवीससंकामयस्स उवसमसम्मत्तं घेत्तूण विदियसमयप्पहुडि सत्तावीससंकामयभावेण जहण्णमंतोमुहुत्तमेत्तकालमच्छिय पुणो उवसमसम्मत्तकालब्भंतरे चेय अणंताणुबंधी विसंजोइय तेवीससंकामयत्तेण परिणयस्स समुवलब्भदे । अथवा सम्मामिच्छाइट्ठिस्स सम्मत्तं मिच्छत्तं वा गंतूण तत्थ सव्वजहण्णमंतोमुहुत्तमच्छिय पुणो परिणामपच्चएण सम्मामिच्छत्तमुवगयस्स एसो कालो गहियव्वो । संपहि तदुक्कस्सकालपरूवणट्ठमुत्तरसुत्तं भणइ—

❀ उक्कस्सेण वेछावट्ठिसागरोवमाणि सादिरेयाणि तिपलिदोवमस्स[1]

अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

§ ३५४. इस प्रकार स्वामित्वको समाप्त करके अब कालानुयोगद्वारका कथन करनेके लिए आगेके सूत्रोंका अवतार करते हैं—

※ एक जीवकी अपेक्षा कालका अधिकार है ।

§ ३५५. स्वामित्वविषयक प्ररूपणाके बाद एक जीवविषयक कालका कथन करना चाहिये इस प्रकार यह प्रतिज्ञासूत्र है ।

※ सत्ताईस प्रकृतिक संक्रामकका कितना काल है ?

§ ३५६. यह पृच्छासूत्र सुगम है ।

※ जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है ।

§ ३५७. जो पच्चीस प्रकृतियोंका संक्रम करनेवाला मिथ्यादृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त करके दूसरे समयसे लेकर सत्ताईस प्रकृतियोंका संक्रम करता हुआ जघन्य अन्तर्मुहूर्त कालतक वहाँ रहकर पुनः उपशमसम्यक्त्वके कालके भीतर ही अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करके तेईस प्रकृतिक संक्रमस्थानको प्राप्त होजाता है उसके सत्ताईस प्रकृतिक संक्रमस्थानका यह जघन्य काल प्राप्त होता है । अथवा जो सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव सम्यक्त्व या मिथ्यात्वको प्राप्त होकर और वहाँ सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त कालतक रहकर फिर परिणामवश सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानको प्राप्त होता है उसके यह जघन्य काल ग्रहण करना चाहिए। अब इस संक्रमस्थानके उत्कृष्ट कालका कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

※ उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागसे अधिक दो छयासठ सागर-

---

१. आ०-ता०प्रत्योः पलिदोवमस्स, ता०प्रतौ [ति] पलिदोवमस्स इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

असंखेज्जदिभागेण।

§ ३५८. तं जहा—एगो अणादियमिच्छाइट्ठी उवसमसम्मत्तं पडिवज्जिय सत्तावीससंकामओ होऊण मिच्छत्तं गदो पलिदोवमासंखेज्जभागमेत्तकालमुव्वेल्लणावावारेणच्छिय अविणट्ठसंकमपाओग्गसम्मत्तसंतकम्मेण सम्मत्तं पडिवण्णो पढमछावट्ठिं परिभमिय तदवसाणे मिच्छत्तं गंतूण पुव्वं व पलिदोवमासंखेज्जभागमेत्तकालसम्मत्तुव्वेल्लणावावदो तदुव्वेल्लणचरिमफालीए सह सम्मत्तमुवगओ। विदियछावट्ठिं परिभमणं काऊण तप्पज्जवसाणे मिच्छत्तं गओ। पुणो वि दीहुव्वेलणकालेण सम्मत्तमुव्वेल्लिय छव्वीससंकामओ जादो। एवं तीहि पलिदोवमासंखेज्जदिभागेहि सादिरेयवेछावट्ठिसागरोवममेत्तो सत्तावीससंकमुक्कस्सकालो लद्धो। संपहि छव्वीससंकामयजहण्णुक्कस्सकालपरूवणट्ठमुत्तरसुत्तमोइण्णं—

❀ छव्वीससंकामओ केवचिरं कालादो होइ ?

§ ३५९. सुगमं।

❀ जहण्णेण एगसमओ।

§ ३६०. तं जहा—णिस्संतकम्मियमिच्छाइट्ठिस्स पढमसम्मत्तग्गहणपढमसमयम्मि छव्वीससंकामयभावमुवगयस्स पुणो विदियसमए सम्मामिच्छत्तं संकामेमाणस्स

काल प्रमाण है।

§ ३५८. खुलासा इस प्रकार है—कोई एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीव उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त करके और सत्ताईस प्रकृतियोंका संक्रामक होकर मिथ्यात्वमें गया। फिर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कालतक उद्वेलनाक्रियामें लगा रहा और सम्यक्त्वसत्कर्मके संक्रमकी योग्यताका नाश होनेके पूर्व ही सम्यक्त्वको प्राप्त होगया। फिर प्रथम छ्यासठ सागर कालतक परिभ्रमण करके अन्तमें मिथ्यात्वमें गया और पहलेके समान पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कालतक सम्यक्त्वकी उद्वेलना करता रहा। किन्तु उसकी उद्वेलनाकी अन्तिम फालिके साथ ही सम्यक्त्वको प्राप्त होगया। फिर दूसरे छ्यासठ सागर कालतक परिभ्रमण करके उसके अन्तमें मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। फिर सबसे बड़े उद्वेलनाकालके द्वारा सम्यक्त्वकी उद्वेलना करके छब्बीस प्रकृतियोंका संक्रामक होगया। इस प्रकार सत्ताईस प्रकृतियोंके संक्रामकका उत्कृष्ट काल पल्यके तीन असंख्यातवें भागोंसे अधिक दो छ्यासठ सागर प्राप्त हुआ। अब छब्बीस प्रकृतियोंके संक्रामकके जघन्य और उत्कृष्ट कालका कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

* छब्बीस प्रकृतिक संक्रामकका कितना काल है ?

§ ३५९. यह सूत्र सुगम है।

* जघन्य काल एक समय है।

§ ३६०. खुलासा इस प्रकार है—सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्तासे रहित जो मिथ्यादृष्टि जीव प्रथम सम्यक्त्वको ग्रहण करके उसके प्रथम समयमें छब्बीस प्रकृतिक संक्रम-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सत्तावीससंकमो होइ त्ति छव्वीससंकमजहण्णकालो एयसमयमेत्तो लब्भदे। अहवा जो मिच्छत्तपढमट्ठिदीए दुचरिमसमयम्मि सम्मत्तमुव्वेल्लिय एगसमयछव्वीससंकामओ होऊण से काले सम्मत्तं पडिवज्जिय सत्तावीससंकामओ जादो तस्स छव्वीससंकमकालो जहण्णओ एयसमयमेत्तो लब्भइ त्ति वत्तव्वं।

❀ उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।

§ ३६१. तं कधं ? अट्ठावीससंतकम्मियमिच्छाइट्ठिस्स सम्मत्तमुव्वेल्लियूण पुणो सम्मामिच्छत्तमुव्वेल्लेमाणस्स सव्वो चेव तदुव्वेल्लणकालो छव्वीससंकामयस्स उक्कस्सकालो होइ। सो च पलिदोवमासंखेज्जदिभागमेत्तो। णवरि सम्मामिच्छत्तुव्वेल्लणकालो समयाहिओ छव्वीससंकामयस्स उक्कस्सकालो वत्तव्वो, तदुव्वेल्लणचरिमफालिं मिच्छत्तपढमट्ठिदिचरिमसमए संकामिय सम्मत्तं पडिवण्णम्मि तदुवलंभादो। संपहि पणुवीससंकामयकालपरूवणट्ठमुत्तरसुत्तं भणइ—

❀ पणुवीसाए संकामए तिण्णि भंगा।

§ ३६२. तं जहा—अणादिओ अपज्जवसिदो अणादिओ सपज्जवसिदो सादिओ सपज्जवसिदो चेदि पणुवीसाए संकामयस्स तिण्णि भंगा। तत्थाभव्वजीवस्स पढमो भंगो। भव्वजीवस्स सम्मत्तुप्पायणाए बिदिओ भंगो। तस्सेव हेट्ठा परिवदिदस्स तदिओ

स्थानको प्राप्त होगया। पुनः दूसरे समयमें सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रामक होकर सत्ताईस प्रकृतिक संक्रमस्थानको प्राप्त हुआ उसके छब्बीस प्रकृतिक संक्रमस्थानका जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है। अथवा जो जीव मिथ्यात्वकी प्रथम स्थितिके उपान्त्य समयमें सम्यक्त्वकी उद्वेलना करके एक समय तक छब्बीस प्रकृतिक संक्रमस्थानका स्वामी होकर उसके बाद दूसरे समयमें सम्यक्त्वको प्राप्त होकर सत्ताईस प्रकृतियोंका संक्रामक हुआ उसके छब्बीस प्रकृतिक संक्रमस्थानका जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है ऐसा यहाँ कहना चाहिए।

※ उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है।

§ ३६१. खुलासा इस प्रकार है—अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो मिथ्यादृष्टि जीव सम्यक्त्वकी उद्वेलना करके पुनः सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना कर रहा है उसके सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलनामें जितना काल लगता है वह सभी काल छब्बीस प्रकृतिक संक्रामकका उत्कृष्ट काल होता है जो कि पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण होता है। किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यग्मिथ्यात्वके उक्त उद्वेलना कालको एक समय अधिक करके छब्बीस प्रकृतिक संक्रामकका उत्कृष्टकाल कहना चाहिये, क्योंकि जो जीव मिथ्यात्वकी प्रथम स्थितिके अन्तिम समयमें सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना की अन्तिम फालिका संक्रम करके सम्यक्त्वको प्राप्त होता है उसके उक्त उत्कृष्ट काल प्राप्त होता है। अब पच्चीस प्रकृतियोंके संक्रामकके कालका कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

※ पच्चीस प्रकृतिक संक्रामकके तीन भङ्ग हैं।

§ ३६२. यथा—अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त। इस प्रकार पच्चीस प्रकृतिक संक्रामक जीवकी अपेक्षा तीन भङ्ग हैं। उनमेंसे अभव्य जीवके पहला भङ्ग होता है। भव्य जीवके सम्यक्त्वके उत्पन्न करनेपर दूसरा भङ्ग होता है और उसी जीवके सम्यक्त्वसे च्युत होनेपर तीसरा भंग होता है। यहाँ तीसरे भंगमें जघन्य और उत्कृष्ट विकल्प सम्भव होनेसे उसका निर्णय करनेके

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

भंगो। एत्थ तदियभंगो जहण्णुक्कस्सवियप्पसंभवादो तण्णिण्णयपरूपणट्ठमुत्तरसुत्तं—

❀ तत्थ जो सो सादिओ सपज्जवसिदो जहण्णेण एगसमओ। उक्कस्सेण उवड्ढपोग्गलपरियट्टं।

§ ३६३. एत्थ ताव जहण्णकालपरूवणा कीरदे—जो छव्वीससंकामयमिच्छाइट्ठी सम्मामिच्छत्तमुव्वेल्लेमाणो उवसमसम्मत्ताहिमुहो होऊण मिच्छत्तपढमट्ठिदीए दुचरिमसमयम्मि सम्मामिच्छत्तचरिमफालिं मिच्छत्तसरूवेण संकामिय पुणो चरिमसमयम्मि पणुवीससंकामगो होऊण से काले पुणो वि छव्वीससंकामओ जादो तस्स लद्धो पयदजहण्णकालो। अहवा अट्ठावीससंतकम्मियउवसमसम्माइट्ठी सत्तावीससंकामओ उवसमसम्मत्तद्धाए एगसमओ अत्थि त्ति सासणभावं पडिवण्णो पणुवीससंकामयभावेणेगसमयमच्छिय पुणो विदियसमए मिच्छत्तमुवणमिय सत्तावीससंकामओ जादो। अथवा चउवीससंतकम्मिय उवसमसम्माइट्ठी सगद्धाए समयाहियावलियमेत्तसेसाए सासणभावं पडिवण्णो अणंताणुबंधीणं बंधावलियं वोलाविय एगसमयं पणुवीससंकामओ जादो तदणंतरसमए मिच्छत्तं पडिवज्जिय सत्तावीससंकामओ जादो लद्धो सुत्तुत्तजहण्णकालो। उक्कस्सेणुवड्ढपोग्गलपरियट्टपरूवणा कीरदे। तं जहा—अद्धपोग्गलपरियट्टादिसमए सम्मत्तं पडिवज्जिय तत्थ जहण्णमंतोमुहुत्तमच्छिय मिच्छत्तं गंतूण सव्वलहुं सम्मत्त-

लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

❀ उनमेंसे जो सादि-सान्त भंग है उसका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल उपार्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है।

§ ३६३. यहाँ सर्व प्रथम जघन्य कालका कथन करते हैं—छब्बीस प्रकृतियोंके संक्रामक जिस मिथ्यादृष्टि जीवने सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करते हुए उपशमसम्यक्त्वके अभिमुख होकर मिथ्यात्वकी प्रथम स्थितिके द्विचरम समयमें सम्यग्मिथ्यात्वकी अन्तिम फालिका मिथ्यात्वरूपसे संक्रमण किया। पुनः अन्तिम समयमें पच्चीस प्रकृतियोंका संक्रामक होकर तदनन्तर समयमें फिरसे छब्बीस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया। उसके प्रकृत जघन्य काल प्राप्त हुआ। अथवा अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो उपशम सम्यग्दृष्टि जीव सत्ताईस प्रकृतियोंका संक्रमण करते हुए उपशमसम्यक्त्वके कालमें एक समय शेष रहने पर सासादनभावको प्राप्त होकर एक समय तक पच्चीस प्रकृतियोंका संक्रामक रहा। पुनः दूसरे समयमें मिथ्यात्वको प्राप्त होकर सत्ताईस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया उसके पच्चीस प्रकृतिक संक्रमस्थानका जघन्य काल एक समय प्राप्त हुआ। अथवा चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो उपशम सम्यग्दृष्टि जीव अपने कालमें एक समय अधिक एक आवलि शेष रहने पर सासादनभावको प्राप्त हुआ। पुनः अनन्तानुबन्धियोंकी बन्धावलिको बिताकर एक समय तक पच्चीस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया और तदनन्तर समयमें मिथ्यात्वको प्राप्त होकर सत्ताईस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया उसके सूत्रोक्त जघन्य काल प्राप्त हुआ। अब पच्चीस प्रकृतिक संक्रामकके उपार्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण उत्कृष्ट कालका कथन करते हैं। यथा—कोई एक जीव अर्धपुद्गलपरिवर्तन कालके प्रथम समयमें सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ और वहाँ सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल तक रहकर मिथ्यात्वमें गया। पुनः वहाँ सम्यक्त्व और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्मामिच्छत्ताणि उव्वेल्लिय पणुवीससंकामओ जादो। पुणो उवड्ढपोग्गलपरियट्टं परिभमिय अंतोमुहुत्तावसेसे संसारे सम्मत्तं पडिवण्णो तस्स ताधे पणुवीससंकमो णस्सदि त्ति पयदुक्कस्सकालो लद्धो। संपहि तेवीससंकमट्ठाणस्स जहण्णुक्कस्सकालणिहालणट्ठमुत्तरं पबंधमाह—

❀ तेवीसाए संकामओ केवचिरं कालादो होइ।

§ ३६४. सुगमं।

❀ जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, एयसमओ वा।

§ ३६५. एत्थ ताव अंतोमुहुत्तपरूवणा कीरदे। तं जहा—उवसमसम्माइट्ठी अणंताणु० विसंजोइय तेवीससंकामओ जादो। तदो जहण्णमंतोमुहुत्तकालमच्छिय उवसमसम्मत्तद्धाए छावलियावसेसाए सासणगुणं पडिवज्जिय इगिवीससंकामओ जादो तस्स लद्धो तेवीससंकमजहण्णकालो अंतोमुहुत्तमेत्तो। संपहि एयसमयपरूवणा कीरदे। तं जहा—एगो चउवीससंतकम्मिओ उवसमसम्माइट्ठी समयूणावलियमेत्तावसेसाए उवसमसम्मत्तद्धाए सासणसम्मत्तं पडिवण्णो इगिवीससंकामओ जादो। कमेण मिच्छत्त-मुवगओ एगसमयं तेवीससंकामओ होदूण तदणंतरसमयम्मि अणंताणुबंधिसंकमणावसेण सत्तावीससंकामओ जादो लद्धो एयसमयमेत्तो पयदजहण्णकालो।

सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करके पच्चीस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया। पुनः उपार्ध पुद्गल परिवर्तनप्रमाण काल तक परिभ्रमण करके जब संसारमें रहनेका काल अन्तर्मुहूर्त शेष रह गया तब सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ उसके उस समय पच्चीस प्रकृतिक संक्रमस्थान नष्ट हो जाता है, इसलिये उस जीवके प्रकृत उत्कृष्ट काल प्राप्त हुआ। अब तेईस प्रकृतिक संक्रमस्थानके जघन्य और उत्कृष्ट कालका विचार करनेके लिये आगेकी सूत्ररचनाका निर्देश करते हैं—

*** तेईस प्रकृतिक संक्रामकका कितना काल है ?**

§ ३६४. यह सूत्र सुगम है।

*** जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त या एक समय है।**

§ ३६५. यहाँ सर्व प्रथम अन्तर्मुहूर्तकालका कथन करते हैं। यथा—कोई एक उपशम-सम्यग्दृष्टि जीव अनन्तानुबन्धियोंकी विसंयोजना करके तेईस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया। अनन्तर जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल तक वहाँ रहा और उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलि शेष रहने पर सासादन गुणस्थानको प्राप्त होकर इक्कीस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया उसके तेईस प्रकृतिक संक्रमस्थानका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त हुआ। अब जघन्य काल एक समयका कथन करते हैं। यथा—कोई एक चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशमसम्यग्दृष्टि जीव उपशमसम्यक्त्वके कालमें एक समय कम एक आवलि शेष रहने पर सासादन गुणस्थानको प्राप्त होकर इक्कीस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया पुनः क्रमसे मिथ्यात्वमें जाकर और एक समय तक तेईस प्रकृतियों-का संक्रामक होकर तदनन्तर समयमें अनन्तानुबन्धियोंका संक्रम होने लगनेके कारण सत्ताईस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया उसके प्रकृत जघन्य काल एक समय प्राप्त हुआ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

❀ उक्कस्सेण छावट्ठिसागरोवमाणि सादिरेयाणि ।

§ ३६६. तं जहा—एओ मिच्छाइट्ठी पढमसम्मत्तं पडिवज्जिय उवसमसम्मत्त-कालब्भंतरे चेय अणंताणुबंधिचउक्कं विसंजोइय अंतोमुहुत्तकालं तेवीससंकममणुपालिय वेदयसम्मत्तमुवणमिय छावट्ठिसागरोवमाणि परिभमिय तदवसाणे दंसणमोहक्खवणाए परिणमिदो मिच्छत्तं खविय बावीससंकामओ[1] जादो । तदो पुव्विल्लेणुवसमसम्मत्तकाल-ब्भंतरभाविणा अंतोमुहुत्तेण मिच्छत्तचरिमफालिपदणादो उवरिमकदकरणिज्जचरिमसमय-पज्जत्तंतोमुहुत्तूणेण सादिरेयाणि छावट्ठिसागरोवमाणि तेवीससंकामयस्स उक्कस्सकालो होइ ।

❀ बावीसाए वीसाए एगूणवीसाए अट्ठारसण्हं तेरसण्हं बारसण्हं एक्कारसण्हं दसण्हं अट्ठण्हं सत्तण्हं पंचण्हं चउण्हं तिण्हं दोण्हं पि कालो जहण्णेण एयसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ।

§ ३६७. बावीसाए ताव उच्चदे—एओ चउवीससंतकम्मिओ उवसमसेढिं चढिय अंतरकरणाणंतरमाणुपुव्वीसंकमेण परिणदो एयसमयं[2] बावीससंकामगो होदूण विदिय-समए कालं काऊण देवेसुववज्जिय तेवीससंकामओ जादो । एसो बावीसाए जहण्णकालो ।

*** उत्कृष्ट काल साधिक छयासठ सागर है ।**

§ ३६६. खुलासा इस प्रकार है— कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव प्रथम सम्यक्त्वको प्राप्त करके उपशम सम्यक्त्वके कालके भीतर ही अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना करके अन्तर्मुहूर्त काल तक तेईसप्रकृतिक संक्रमस्थानको प्राप्त हुआ । पुनः वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त होकर और छयासठ सागर काल तक परिभ्रमण करके उसके अन्तमें दर्शनमोहनीयकी क्षपणाके लिये उद्यत हो मिथ्यात्वका क्षय करके बाईस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया । इस प्रकार इस जीवके जो पूर्वोक्त उपशम सम्यक्त्वके कालके भीतर तेईस प्रकृतिक संक्रमस्थानका अन्तर्मुहूर्त काल प्राप्त हुआ है उसमेंसे मिथ्यात्वकी अन्तिम फालिके पतन समयसे लेकर कृतकृत्यवेदकके अन्तिम समय तकका जितना काल है उसे घटा देने पर जो शेष काल बचता है उससे अधिक छयासठ सागर काल तेईस प्रकृतिक संक्रामकका उत्कृष्ट काल होता है ।

*** बाईस, बीस, उन्नीस, अठारह, तेरह, बारह, ग्यारह, दस, आठ, सात, पाँच, चार, तीन और दो प्रकृतिक संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।**

§ ३६७. सर्व प्रथम बाईस प्रकृतियोंके संक्रामकके कालका कथन करते हैं—कोई एक चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव उपशमश्रेणि पर चढ़ा और अन्तरकरणके बाद आनुपूर्वी संक्रमसे परिणत होकर एक समय तक बाईस प्रकृतियोंका संक्रामक हुआ । पुनः दूसरे समयमें मरकर और देवोंमें उत्पन्न होकर तेईस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया । इस प्रकार यह बाईस प्रकृतिक संक्रमस्थानका जघन्य काल है । अब इस स्थानका अन्तर्मुहूर्त प्रमाण जो उत्कृष्ट काल है उसका दृष्टान्त देते हैं—कोई एक दर्शनमोहकी क्षपणा करनेवाला जीव मिथ्यात्वका क्षय करके

---

१. ता० —आ०प्रत्योः चदुवावीससंकामओ इति पाठः ।

२. ता०प्रतौ एयसमओ (ए) इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्कस्सेणंतोमुहुत्तपरूवणाए णिदरिसणं—एगो दंसणमोहक्खवओ मिच्छत्तं खविय सम्मामिच्छत्तखवणद्धाए बावीससंकामओ जादो जाव चरिमफालिपदणसमओ त्ति एसो च कालो अंतोमुहुत्तमेत्तो।

§ ३६८. संपहि वीसाए उच्चदे। तं जहा—तत्थ जहण्णेणेगसमओ त्ति उत्ते एक्को इगिवीससंकामओ उवसमसेढिं चढिय लोभस्सासंकामगो होदूण एयसमयं वीससंकममणुपालिय तदणंतरसमयम्मि कालं काऊण देवेसुववज्जिय इगिवीससंकामओ जादो। लद्धो एयसमओ। उक्कस्सेणंतोमुहुत्तमिदि उत्ते एक्को इगिवीससंतकम्मिओ णवुंसयवेदोदएण उवसमसेढिं चढिय अंतरकरणं कादूणाणुपुव्वीसंकमवसेण वीसाए संकामओ जादो। तदो तस्स णवुंसयवेदोवसमणकालो सव्वो चेय पयदुक्कस्सकालो होइ।

§ ३६९. संपहि एगूणवीससंकमट्ठाणस्स जहण्णुक्कस्सकालणिण्णयं कस्सामो। तं जहा—इगिवीससंतकम्मिओ उवसमसेढीमारूढो अंतरकरणं समाणिय णउंसयवेदमुवसामिऊण ऊणवीसाए संकामओ जादो। विदियसमए कालगओ देवेसुववण्णो इगिवीससंकामओ जादो तस्स लद्धो एगसमओ। तस्सेव णवुंसयवेदमुवसामिय इत्थिवेदोवसामणावावदस्स तदुवसामणकालो सव्वो चेय पयदुक्कस्सकालो होइ त्ति वत्तव्वं।[1]

सम्यग्मिथ्यात्वका क्षय होनेके कालमें अन्तिम फालिके पतनके समय तक बाईस प्रकृतिक संक्रमस्थानका स्वामी रहा उसके यह काल अन्तर्मुहूर्त होता है। इसीसे बाईस प्रकृतिक संक्रमस्थानका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है।

§ ३६८. अब बीस प्रकृतिक संक्रमस्थानके कालका विचार करते हैं। यथा—उसमें भी जो जघन्य काल एक समय कहा है उसका खुलासा करते हैं—कोई एक इक्कीस प्रकृतियोंका संक्रामक जीव उपशमश्रेणि पर चढ़कर और लोभका असंक्रामक होकर एक समय तक बीस प्रकृतियोंके संक्रमको प्राप्त हुआ। पुनः तदनन्तर समयमें मरा और देव होकर इक्कीस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया। इस प्रकार बीस प्रकृतिक संक्रमस्थानका जघन्य काल एक समय प्राप्त हो गया। अब जो उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है उसका खुलासा करते हैं—कोई एक इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव नपुंसकवेदके उदयसे उपशमश्रेणि पर चढ़ा। पुनः अन्तरकरण करके आनुपूर्वी संक्रमके वशसे वह बीस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया। अनन्तर उसके नपुंसकवेदके उपशम करनेका जितना काल है वह सब प्रकृत स्थानका उत्कृष्ट काल है।

§ ३६९. अब उन्नीस प्रकृतिक संक्रमस्थानके जघन्य और उत्कृष्ट कालका निर्णय करते हैं। यथा—कोई एक इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव उपशमश्रेणि पर चढ़ा। फिर अन्तरकरण करके और नपुंसकवेदका उपशम करके उन्नीस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया। तथा दूसरे समयमें मरकर देवोंमें उत्पन्न हुआ और इक्कीस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया। इस प्रकार इसके उन्नीस प्रकृतिक संक्रमस्थानका जघन्य काल एक समय प्राप्त हुआ। तथा वही जीव जब नपुंसकवेदका उपशम करके स्त्रीवेदका उपशम करने लगता है तब स्त्रीवेदके उपशम करनेमें जितना काल लगता है वह सब प्रकृत स्थानका उत्कृष्ट काल होता है ऐसा यहाँ कहना चाहिये।

१. ता०प्रतौ घेत्तव्वं इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ३७०. संपहि अट्ठारससंकमट्ठाणस्स जहण्णुक्कस्सकालपरूपणा कीरदे। तं जहा—इगिवीससंतकम्मिओवसामओ णवुंसय-इत्थिवेदमुवसामिय एयसमयमट्ठारससंकामओ होऊण तदणंतरसमए कालं कादूण देवेसुववज्जिय इगिवीससंकामओ जादो लद्धो पयदसंकमट्ठाणजहण्णकालो। तस्सेव जाव छण्णोकसाया अणुवसंता ताव तदुवसामणकालो सव्वो चेय पयदुक्कस्सकालो होइ।

§ ३७१. संपहि तेरससंकमट्ठाणस्स जहण्णुक्कस्सकालपरूवणा[1] कीरदे—चउवीससंतकम्मिओवसामओ जहाकमं णवणोकसाए उवसामिय एयसमयं तेरससंकामओ जादो। तदणंतरसमए कालं काऊण तेवीससंकामओ जादो तस्स पयदजहण्णकालो होइ। खवगो अट्ठकसाए खविय जाव आणुपुव्वीसंकमं णाढवेइ ताव पयदुक्कस्सकालो घेतव्वो।

§ ३७२. संपहि बारससंकमट्ठाणजहण्णुक्कस्सकालपरूवणा कीरदे। तं जहा—इगिवीससंतकम्मिओवसामगो जहाकममुवसामिदट्ठणोकसाओ एयसमयबारससंकामओ जादो। विदियसमए कालं कादूण देवेसुववण्णो इगिवीससंकामओ जादो। लद्धो एगसमओ। उक्कस्सेणंतोमुहुत्तमेत्तकालपरूवणोदाहरणं—एगो संजदो चारित्तमोहक्खवणाए अब्भुट्ठिदो आणुपुव्वीसंकमे कादूण तदो जाव णवुंसयवेदं ण खवेइ ताव विवक्खियसंकमट्ठाणुक्कस्सकालो होइ।

§ ३७०. अब अठारह प्रकृतिक संक्रमस्थानके जघन्य और उत्कृष्ट कालका कथन करते हैं। यथा—जो इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशामक जीव नपुंसकवेद और स्त्रीवेदका उपशम करके एक समयके लिये अठारह प्रकृतियोंका संक्रामक हो कर तदनन्तर समयमें मर कर और देवोंमें उत्पन्न हो कर इक्कीस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया उसके प्रकृत स्थानका जघन्य काल एक समय प्राप्त हुआ। तथा उसीके जबतक छह नोकषायोंका उपशम नहीं हुआ तब तक उपशममें लगनेवाला जितना भी काल है वह प्रकृत स्थानका उत्कृष्ट काल होता है।

§ ३७१. अब तेरह प्रकृतिक संक्रमस्थानके जघन्य और उत्कृष्ट कालका कथन करते हैं—चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो उपशामक जीव क्रमसे नौ नोकषायोंका उपशम करके एक समयके लिये तेरह प्रकृतियोंका संक्रामक हुआ और तदनन्तर समयमें मरकर तेईस प्रकृतियोंका संक्रामक हुआ उसके प्रकृत स्थानका जघन्य काल प्राप्त होता है। तथा जो क्षपक जीव आठ कषायोंका क्षय करके जब तक आनुपूर्वी संक्रमका प्रारम्भ नहीं करता है तब तक प्रकृत स्थानका उत्कृष्ट काल ग्रहण करना चाहिये।

§ ३७२. अब बारह प्रकृतिक संक्रमस्थानके जघन्य और उत्कृष्ट कालका कथन करते हैं। यथा—जो इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशामक जीव क्रमसे आठ कषायोंका उपशम करके एक समयके लिये बारह प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया और दूसरे समयमें मर कर तथा देव होकर इक्कीस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया उसके उक्त स्थानका जघन्य काल एक समय प्राप्त हुआ। अब इस स्थानका उत्कृष्ट काल जो अन्तर्मुहूर्त कहा है उसका उदाहरण यह है—कोई एक संयत जीव चारित्रमोहनीयकी क्षपणाके लिये उद्यत होकर और आनुपूर्वी संक्रमको करके अनन्तर जब तक नपुंसकवेदका क्षय नहीं करता है तब तक विवक्षित संक्रमस्थानका उत्कृष्ट काल होता है।

१. आ॰प्रतौ –ट्ठाणस्स कालपरूवणा इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ३७३. संपहि एयारससंकामयजहण्णुक्कस्सकालपरूवणा कीरदे । तं जहा—इगिवीससंतकम्मिओ उवसामओ जहाकममुवसामिदणवणोकसाओ एयसमयमेकारससंकामओ होऊण तदणंतरसमए कालं कादूण देवो जादो तस्स लद्धो एयसमयमेत्तो पयदसंकमट्ठाणजहण्णकालो । खवगो णवुंसयवेदं खवेदूण जावित्थिवेदं ण खवेइ ताव पयदुक्कस्सकालो होइ ।

§ ३७४. संपहि दससंकमट्ठाणपडिबद्धजहण्णुक्कस्सकालपरूवणा कीरदे । तं जहा—चउवीससंतकम्मिओवसामिओ तिविहकोहोवसामणाए परिणदो एयसमयं दससंकामओ जादो, विदियसमए देवेसुववज्जिय तेवीससंकामओ संजादो, लद्धो पयदसंकमट्ठाणजहण्णकालो । उक्कस्सकालो पुण खवगस्स छण्णोकसायखवणद्धामेत्तो घेत्तव्वो ।

§ ३७५. अट्ठसंकमट्ठाणजहण्णुक्कस्सकालविहासणं कस्सामो । तं जहा—चउवीससंतकम्मिओवसामओ दुविहमाणमुवसामिय एयसमयमट्ठसंकामओ होदूण विदियसमए कालगदो देवेसुववण्णो लद्धो पयदजहण्णकालो । उक्कस्सकालपरूवणाणिदरिसणं—एगो इगिवीससंतकम्मिओवसामगो कमेण णवणोकसाए तिविहं च कोहमुवसामिय अट्ठसंकामओ जादो । तत्थंतोमुहुत्तमच्छिऊण दुविहमाणोवसामणाए छण्हं संकामओ जाओ, लद्धो णिरुद्धसंकमट्ठाणुक्कस्सकालो दुविहमाणोवसामणद्धामेत्तो ।

§ ३७३. अब ग्यारह प्रकृतियोंके संक्रामकके जघन्य और उत्कृष्ट कालका कथन करते हैं। यथा—जो इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशामक जीव क्रमसे नौ नोकषायोंका उपशम करके एक समयके लिये ग्यारह प्रकृतियोंका संक्रामक हो कर तदनन्तर समयमें मर कर देव हो जाता है उसके प्रकृत संक्रमस्थानका जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है। तथा जो क्षपक जीव नपुंसकवेदका क्षय करके जब तक स्त्रीवेदका क्षय नहीं करता है तबतक प्रकृत स्थानका उत्कृष्ट काल होता है।

§ ३७४. अब दस प्रकृतिक संक्रमस्थानके जघन्य और उत्कृष्ट कालका कथन करते हैं। यथा—जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशामक जीव तीन प्रकारके क्रोधके उपशम भावसे परिणत होकर एक समयके लिये दस प्रकृतियोंका संक्रामक हुआ और दूसरे समयमें देवोंमें उत्पन्न होकर तेईस प्रकृतियोंका संक्रामक हुआ उसके प्रकृत संक्रमस्थानका जघन्य काल प्राप्त होता है। तथा क्षपक जीवके छह नोकषायोंकी क्षपणामें जितना काल लगे उतना इस स्थानका उत्कृष्ट काल लेना चाहिये।

§ ३७५. अब आठ प्रकृतिक संक्रमस्थानके जघन्य और उत्कृष्ट कालका व्याख्यान करते हैं। यथा—जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशामक जीव दो प्रकारके मानका उपशम करके एक समयके लिये आठ प्रकृतियोंका संक्रामक हो कर और दूसरे समयमें मर कर देवोंमें उत्पन्न हुआ उसके प्रकृत स्थानका जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है। अब जो अन्तर्मुहूर्त प्रमाण उत्कृष्ट काल कहा है उसका दृष्टान्त देते हैं—जो इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशामक जीव क्रमसे नौ नोकषाय और तीन प्रकारके क्रोधका उपशम करके आठ प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया है। फिर वहाँ अन्तर्मुहूर्त काल तक रह कर जो दो प्रकारके मानका उपशम हो जाने पर छह प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया है उसके दो प्रकारके मानके उपशम करनेमें जितना काल लगता है तत्प्रमाण विवक्षित संक्रमस्थानका उत्कृष्ट काल प्राप्त होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ३७६. संपहि सत्तसंकामयजहण्णुक्कस्सकालणिण्णयविहाणं वत्तइस्सामो— जहण्णकालो ताव चउवीससंतकम्मिओवसामयस्स तिविहमाणोवसामणाए परिणदस्स विदियसमए चेव कालं कादूण देवेसुववण्णस्स लब्भदे। उक्कस्सकालो पुण तस्सेव दुविहमायोवसामणाए वावदस्स जाव तदणुवसमो त्ति ताव अंतोमुहुत्तमेत्तो लब्भदे।

§ ३७७. संपहि पंचसंकामयजहण्णुक्कस्सकालपरूवणा कीरदे। तं जहा—तेणेव सत्तसंकामएण दुविहमायोवसामणाए कदाए एयसमयं पंचसंकामओ होदूण विदियसमए भवक्खएण देवो जादो तस्स पयदजहण्णकालो होइ। उक्कस्सकालो पुण इगिवीससंतकम्मियोवसामगस्स तिविहमायोवसमणपरिणदस्स जाव दुविहमायाणुसमो ताव होइ।

§ ३७८. चदुण्हं संकामयस्स जहण्णुक्कस्सकालणिरूवणा कीरदे। तत्थ ताव जहण्णकालपरूवणोदाहरणं—चउवीससंतकम्मियोवसामगो मायासंजलणमुवसामिय चउण्हं संकामओ जादो, तत्थेयसमयमच्छिय विदियसमए जीविदद्धाक्खएण देवो जादो तस्स पयदजहण्णकालो होइ। उकस्सकालो वि तस्सेव मरणपरिणामविरहियस्स मायासंजलणोवसमप्पहुडि जाव दुविहलोहाणुवसमो त्ति ताव अंतोमुहुत्तमेत्तो होइ।

§ ३७९. तिण्हं संकामयस्स जहण्णुक्कस्सकालपरूवणा कीरदे। तं जहा—

§ ३७६ अब सात प्रकृतिक संक्रामकके जघन्य और उत्कृष्ट कालके निर्णय करनेकी विधि बतलाते हैं—जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशामक जीव तीन प्रकारके मानका उपशम करके और दूसरे समयमें मर कर देवोंमें उत्पन्न हुआ है उसके प्रकृत स्थानका जघन्य काल प्राप्त होता है। तथा इसी जीवके दो प्रकारकी मायाका उपशम करते हुए जब तक उनका उपशम नहीं होता है तब तक उक्त स्थानका अन्तर्मुहूर्त प्रमाण उत्कृष्ट काल प्राप्त होता है।

§ ३७७. अब पाँच प्रकृतिक संक्रामकके जघन्य और उत्कृष्ट कालका कथन करते हैं। यथा—वही सात प्रकृतियोंका संक्रामक जीव दो प्रकारकी मायाका उपशम करके एक समयके लिए पाँच प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया। फिर दूसरे समयमें आयुका क्षय हो जानेसे देव हो गया। इस प्रकार इस जीवके प्रकृत स्थानका जघन्य काल प्राप्त होता है। तथा इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो उपशामक जीव तीन प्रकारकी मायाका उपशम कर रहा है उसके जब तक दो प्रकारकी मायाका उपशम नहीं हुआ है तब तक प्रकृत स्थानका उत्कृष्ट काल होता है।

§ ३७८. अब चार प्रकृतिक संक्रामक जीवके जघन्य और उत्कृष्ट कालका कथन करते हैं। उसमें भी सर्व प्रथम जघन्य कालका उदाहरण देते हैं—जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशामक जीव माया संज्वलनका उपशम करके चार प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया और वहाँ एक समय तक रहकर दूसरे समयमें आयुका क्षय हो जानेसे देव हो गया है उसके प्रकृत स्थानका जघन्य काल प्राप्त होता है। तथा मरणके परिणामसे रहित इसी जीवके माया संज्वलनका उपशम होकर जब तक दो प्रकारके लोभका उपशम नहीं होता तब तक उनके उपशम करनेमें जो अन्तर्मुहूर्त काल लगता है वह प्रकृत स्थानका उत्कृष्ट काल होता है।

§ ३७९. अब तीन प्रकृतिक संक्रामक जीवके जघन्य और उत्कृष्ट कालका कथन करते हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इगिवीससंतकम्मिओवसामिओ दुविहमायोवसामणाए परिणदो तिण्हं संकामओ जादो। विदियसमए देवेसुववण्णो तस्स लद्धो पयदजहण्णकालो। उक्कस्सकालो पुण चरित्तमोहक्खवयस्स कोहसंजलणखवणकालो सव्वो चेय होइ।

§ ३८०. संपहि दोण्हं संकामयस्स जहण्णुक्कस्सकालपरिक्खा कीरदे। तं जहा—चउवीससंतकम्मिओवसामओ आणुपुव्वीसंकमादिपरिवाडीए दुविहलोहमुवसामिय मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्ताणमेयसमयं संकामओ होऊण विदियसमए भवक्खएण देवभावमुवणओ तस्स णिरुद्धजहण्णकालो होइ। तस्सेव दुविहलोहोवसमप्पहुडि[1] जाव ओयरमाण-सुहुमसांपराइयचरिमसमओ त्ति ताव पयदुक्कस्सकालो होइ।

§ ३८१. संपहि इगिवीससंकामयजहण्णुक्कस्सकालपदुप्पायणट्ठं सुत्तमाह—

❀ एक्कवीसाए संकामओ केवचिरं कालादो होइ?

§ ३८२. सुगमं।

❀ जहण्णेणेयसमओ।

§ ३८३. तं कथं? चउवीससंतकम्मियउव[2]सामयस्स णवुंसयवेदोवसामणावसेण लद्धप्पसरूवस्स पयदसंकमट्ठाणस्स मरणवसेण विदियसमए विणासो जादो, लद्धो

यथा—जो इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशामक जीव दो प्रकारकी मायाके उपशम भावसे परिणत होकर तीन प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया है और दूसरे समयमें मरकर देवोंमें उत्पन्न हुआ है उसके प्रकृत स्थानका जघन्य काल प्राप्त होता है। तथा चारित्रमोहनीयकी क्षपणा करनेवाले जीवके क्रोधसंज्वलनकी क्षपणाका जितना काल है वह सब प्रकृत स्थानका उत्कृष्ट काल होता है।

§ ३८०. अब दो प्रकृतिक संक्रामकके जघन्य और उत्कृष्ट कालका विचार करते हैं। यथा—जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशामक जीव आनुपूर्वी संक्रम आदि परिपाटीके अनुसार दो प्रकारके लोभका उपशम करके मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वका एक समयके लिये संक्रामक होता है और दूसरे समयमें आयुका क्षय हो जानेके कारण देवभावको प्राप्त हो जाता है उसके प्रकृत स्थानका जघन्य काल होता है। तथा उसी जीवके दो प्रकारके लोभका उपशम होनेके समयसे लेकर उतरते समय सूक्ष्मसाम्पराय गुणस्थानके अन्तिम समय तक जितना काल होता है वह सब प्रकृत स्थानका उत्कृष्ट काल होता है।

§ ३८१. अब इक्कीस प्रकृतियोंके संक्रामक जीवके जघन्य और उत्कृष्ट कालका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

*** इक्कीस प्रकृतिक संक्रामकका कितना काल है?**

§ ३८२. यह सूत्र सुगम है।

*** जघन्य काल एक समय है।**

§ ३८३. खुलासा इस प्रकार है—जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशामक जीव नपुंसकवेदका उपशम हो जानेके कारण इस संक्रमस्थानको प्राप्त हुआ है और मर जानेके कारण

---

१. ता०—आ०प्रत्योः दुविविहकोहोवसमप्पहुडि इति पाठः।

२. ता०प्रतौ –कम्मिओ (य) उव,– –आ०प्रतौ –कम्मिओ उव– इति पाठः।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

एगसमओ। चउवीससंतकम्मियउवसमसम्माइट्ठिस्स वि एगसमयं सासणगुणपडिवत्तिवसेण पयदजहण्णकालसंभवो वत्तव्वो।

❀ उक्कस्सेण तेत्तीससागरोवमाणि सादिरेयाणि।

§ ३८४. तं जहा—देवणेरइयाणमण्णदरपच्छायदस्स चउवीससंतकम्मियस्स गब्भादिअट्ठवस्साणमंतोमुहुत्तब्भहियाणमुवरि सव्वलहुं दंसणमोहक्खवणाए परिणमिय इगिवीससंकमं पारभिय देसूणपुव्वकोडिं संजमभावेण विहरिय कालं कादूण विजयादिसु समऊणतेत्तीससागरोवममेत्तदेवायुगमणुपालिय तत्तो चइय पुव्वकोडाउगमणुस्सपज्जाएण परिणमिय सव्वजहण्णंतोमुहुत्तावसेसे सिज्झिदव्वए खवयसेढीमारोहणेणट्ठकसायक्खवणाए तेरससंकामयभावमुवणयस्स दोअंतोमुहुत्तब्भहियट्ठवस्सपरिहीणवि[1]पुव्वकोडीहि सादिरेयतेत्तीससागरोवममेत्तुक्कस्सकालोवलद्धी जादा।

❀ चोद्दसण्हं णवण्हं छण्हं पि कालो जहण्णेणेयसमओ।

§ ३८५. तत्थ चोद्दससंकामयस्स जहण्णकालपरूवणोदाहरणं—एक्को चउवीससंतकम्मिओवसामिओ अट्ठणोकसाए उवसामिय एयसमयचोद्दससंकामओ जादो। विदियसमए भवक्खएण देवेसु उप्पण्णो, लद्धो पयदजहण्णकालो। णवण्हं संकामयस्स

जिसके दूसरे समयमें प्रकृत संक्रमस्थानका विनाश हो गया है उसके इस संक्रमस्थानका जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है। इसी प्रकार जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशमसम्यग्दृष्टि जीव एक समयके लिये सासादन गुणस्थानको प्राप्त होता है उसके भी प्रकृत स्थानका जघन्य काल एक समय कहना चाहिये।

❀ उत्कृष्ट काल साधिक तेतीस सागर है।

§ ३८४. खुलासा इस प्रकार है—जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव देव या नरक पर्यायसे आकर तथा गर्भसे लेकर आठ वर्ष और अन्तर्मुहूर्तके बाद अतिशीघ्र दर्शनमोहकी क्षपणा करके इक्कीस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया है। फिर कुछ कम पूर्वकोटि काल तक संयमके साथ विहार करके जो मरा और विजयादिकमें एक समय कम तेतीस सागर काल तक देव पर्यायके साथ रहा है। फिर वहाँसे च्युत होकर जिसने एक पूर्वकोटि आयुके साथ मनुष्य पर्यायको प्राप्त किया है। फिर वहाँ जब सिद्ध होनेके लिये सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहा तब जिसने क्षपकश्रेणी पर चढ़कर और आठ कषायोंका क्षय करके तेरह प्रकृतिक संक्रमस्थानको प्राप्त कर लिया है उसके प्रकृत संक्रमस्थानका उत्कृष्ट काल दो अन्तर्मुहूर्त और आठ वर्ष कम तथा दो पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागर प्राप्त होता है।

❀ चौदह, नौ और छह प्रकृतियोंके संक्रामकका भी जघन्य काल एक समय है।

§ ३८५. उसमेंसे चौदह प्रकृतिक संक्रामकके जघन्य कालका कथन करनेके लिये उदाहरण देते हैं—जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशामक जीव आठ नौ कषायोंका उपशम करके एक समयके लिये चौदह प्रकृतियोंका उपशामक हो गया है और दूसरे समयमें आयुका क्षय हो जानेसे देवोंमें उत्पन्न हुआ है उसके प्रकृत स्थानका जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है। अब नौ प्रकृ-

१. ता०प्रतौ -हीणो वि, आ०प्रतौ -हीणे वि इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जहण्णकालपरूवणाए णिदरिसणं—एगो इगिवीससंतकम्मिओवसामगो दुविहकोहोवसामणाए परिणदो एयसमयं णवसंकामओ होऊण विदियसमए कालं कादूण देवो जादो, लद्धा पयदजहण्णद्धा[1]। छण्हं संकामयस्स जहण्णकालपरूवणाए सो चेव इगिवीससंतकम्मिओवसामिओ णवसंकमट्ठाणादो कोहसंजलणाणवकबंधेण सह दुविहमाणोवसामणाए परिणामिय एयसमयं छण्हं संकामगो जादो, विदियसमए कालं कादूण देवो जादो तस्स लद्धो णिरुद्धजहण्णकालो।

❀ उक्कस्सेण दो आवलियाओ समयूणाओ।

§ ३८६. चोद्दससंकामयस्स ताव उच्चदे। सो चेव जहण्णकालसामिओ पुरिसवेदणवकबंधमुवसामेंतो समयूणदोआवलियमेत्तकालं चोद्दससंकामओ होइ। एसो चेव कमो णवण्हं छण्हं पि उक्कस्सकालपरूवणाए। णवरि सगजहण्णकालसामिओ जहाकमं कोह-माणसंजलणणवकबंधोवसामणापरिणदो पयदुक्कस्सकालसामिओ होइ त्ति वत्तव्वं। मेदएं परूविय एत्थेव पयारंतरसंभवपदुप्पायणट्ठमुवरिमसुत्तमोइण्णं—

❀ अथवा उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं ओयरमाणस्स लब्भइ।

तियोंके संक्रामकके जघन्य कालका कथन करनेके लिये उदाहरण देते हैं—जो इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला कोई एक उपशामक जीव दो प्रकारके क्रोधका उपशम करके एक समयके लिये नौ प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया है उसके दूसरे समयमें मरकर देव हो जाने पर प्रकृत स्थानका जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है। अब छह प्रकृतियोंके संक्रामकके जघन्य कालका कथन करते हैं—वही इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशामक जीव नौ प्रकृतिक संक्रमस्थानमेंसे क्रोधसंज्वलनके नवक बन्धके साथ दो प्रकारके मानका उपशम करके जब एक समयके लिए छह प्रकृतियोंका संक्रामक हो जाता है और दूसरे समयमें मरकर देव हो जाता है तब उसके प्रकृत स्थानका जघन्य काल प्राप्त होता है।

*** उत्कृष्ट काल एक समय कम दो आवलि प्रमाण है।**

§ ३८६. सर्व प्रथम चौदह प्रकृतिक संक्रामकके उत्कृष्ट कालका कथन करते हैं—चौदह प्रकृतिक संक्रामकके जघन्य कालका निर्देश करते समय जो स्वामी बतलाया है वही जीव यदि मरकर देव नहीं होता किन्तु पुरुषवेदके नवक बन्धका उपशम करता है तो एक समय कम दो आवलि काल तक चौदह प्रकृतियोंका संक्रामक होता है। तथा नौ प्रकृतियों और छह प्रकृतियोंके संक्रामकके उत्कृष्ट कालका कथन करते समय भी यही क्रम जानना चाहिये। किन्तु अपने अपने जघन्य कालका स्वामी जीव यदि दूसरे समयमें मर कर देव न होकर क्रमसे क्रोधसंज्वलन और मानसंज्वलनके नवकबन्धका उपशम करता है तो क्रमसे प्रकृत स्थानोंके उत्कृष्ट कालका स्वामी होता है, इस प्रकार यहां इतना विशेष कहना चाहिये। इस प्रकार इसका कथन करके अब यहीं पर जो प्रकारान्तर सम्भव है उसका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र आया है—

*** अथवा उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है जो उपशमश्रेणिसे उतरनेवाले जीवके प्राप्त होता है।**

१. आ०प्रतौ पयदजहण्णा इति पाठः।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

§ ३८७. तं जहा—चउवीससंतकम्मिओवसामयस्स सव्वोवसमं कादूण हेट्ठा ओयरमाणस्स बारसकसायाणमोकड्डणाए वावदस्स जाव सत्तणोकसायाणमणोकड्डणा ताव चोद्दससंकामयस्स उक्कस्सकालो होइ। एवं छण्हं णवण्हं पि वत्तव्वं। णवरि इगिवीससंतकम्मिओवसामयस्स सव्वोवसामणादो पडिवदिदस्स जहाकमं तिविहमायमाणाणमोकड्डणपरिणदावत्थाए परूवेयव्वं। संपहि एक्किस्से संकमट्ठाणस्स जहण्णुक्कस्सकालणिरूवणट्ठमुत्तरसुत्तं भणइ—

❀ एक्किस्से संकामओ केवचिरं कालादो होइ ?

§ ३८८. सुगमं।

❀ जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।

§ ३८९. खवयस्स माणसंजलणक्खवणाए एयसंकामयत्तमुवगयस्स मायासंजलणक्खवणकालो अंतोमुहुत्तमेत्तो एक्किस्से संकामयकालो होइ। सो च कोहमाणोदएण चढिदस्स जहण्णो मायोदएण चढिदस्स उक्कस्सो होदि त्ति घेत्तव्वो।

§ ३९०. एवमोघेण सव्वसंकमट्ठाणाणं कालपरूवणं कादूण संपहि आदेसपरूवणट्ठमुच्चारणं वत्तइस्सामो। तं जहा—आदेसेण णेरइय०सत्तावीस-पंचवीससंकामयाणं जह० एयसमओ, उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि। २६ ओघं। २३[1] जह० एगस०,

§ ३८७. खुलासा इस प्रकार है—सर्वोपशम करके श्रेणिसे नीचे उतरनेवाले चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक जीवके बारह कषायोंके अपकर्षणमें व्यापृत रहते हुए जब तक सात नोकषायोंका अपकर्षण नहीं होता तब तक उसके चौदह प्रकृतिक संक्रमस्थानका उत्कृष्ट काल होता है। तथा इसी प्रकार छह और नौ प्रकृतिक संक्रामकके उत्कृष्ट कालका भी कथन करना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि जो इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशामक जीव सर्वोपशामनासे च्युत हो रहा है उसके क्रमसे तीन प्रकारकी माया और तीन प्रकारके मानका अपकर्षण करने पर प्रकृत स्थानोंके उत्कृष्ट कालका कथन करना चाहिये। अब एक प्रकृतिक संक्रमस्थानके जघन्य और उत्कृष्ट कालका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

※ एक प्रकृतिक संक्रामकका कितना काल है ?

§ ३८८. यह सूत्र सुगम है।

※ जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।

३८९. जो क्षपक जीव मान संज्वलनका क्षय करनेके बाद एक प्रकृतिका संक्रामक हो गया है उसके माया संज्वलनके क्षपण करनेमें जो अन्तर्मुहूर्त काल लगता है वह एक प्रकृतिके संक्रामकका काल है। किन्तु वह क्रोध और मानके उदयसे क्षपकश्रेणि पर चढ़े हुए जीवके जघन्यरूप होता है और मायाके उदयसे चढ़े हुए जीवके उत्कृष्टरूप होता है ऐसा यहां ग्रहण करना चाहिये।

३९०. इस प्रकार ओघसे सब संक्रमस्थानोंके कालका कथन करके अब आदेशका कथन करनेके लिये उच्चारणाको बतलाते हैं। यथा—आदेशसे नारकियोंमें सत्ताईस और पच्चीस प्रकृतिक संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। छब्बीस प्रकृतिक

१. ता०प्रतौ २७ इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्क० तेत्तीसं सागरो० अंतोमुहुत्तूणाणि। २१ संका० जह० एयस०, उक्क० सागरोवमाणि देसूणाणि। एवं पढमाए। णवरि उक्क० सगट्ठिदी। बिदियादि जाव सत्तमा त्ति एवं चेव। णवरि सगट्ठिदी वत्तव्वा। २१ संका० जह० एयस०, उक्क० अंतोमुहुत्तं।

संक्रामकका काल ओघके समान है। तेईस प्रकृतिक संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्तकम तेतीस सागर है। तथा इक्कीस प्रकृतिक संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम एक सागर है। इसी प्रकार प्रथम पृथिवीमें कहना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण कहना चाहिये। दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक कालका कथन इसी प्रकार करना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि यहां पर उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण कहना चाहिये। तथा इन पृथिवियोंमें इक्कीस प्रकृतिक संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—अन्य गतिका जो जीव सम्यक्त्वकी उद्वेलनामें एक समय शेष रहने पर मर कर नरकमें उत्पन्न हुआ है उसके नरकमें २७ प्रकृतिक संक्रमस्थानका जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है। यह २७ प्रकृतिक संक्रमस्थानकी जघन्य काल विषयक ओघ प्ररूपणा प्रथमादि सातों नरकोंमें घटित हो जाती है। तथा जो सातवें नरकका नारकी जीव जीवनके प्रारम्भमें व अन्तमें २८ प्रकृतियोंकी सत्तावाला मिथ्यादृष्टि रहता है और मध्यमें पूरे काल तक अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना किये बिना वेदकसम्यग्दृष्टि हो जाता है उसके २७ प्रकृतियोंके संक्रामकका उत्कृष्ट काल ३३ सागर प्राप्त होता है। आशय यह है कि ऐसे जीवको जीवन भर २८ प्रकृतियोंकी सत्तावाला बनाये रखनेके साथ सासादन और मिश्र गुणस्थानमें नहीं ले जाना चाहिये। तब जाकर २७ प्रकृतिक संक्रमस्थानका यह उत्कृष्ट काल प्राप्त होता है। सातवें नरकमें यह उत्कृष्ट काल इसी प्रकार घटित करना चाहिये। किन्तु शेष नरकोंमें इस कालको अपनी अपनी आयु प्रमाण कहना चाहिये। इतनी विशेषता है कि छठे नरक तकके जीवोंको अन्तमें मिथ्यात्वमें ले जानेका कोई कारण नहीं है, क्योंकि वहां तकके नारकियोंका सम्यग्दर्शनके रहते हुए भी मरण होता है। २५ प्रकृतियोंके संक्रामकका जघन्य काल एक समय जिस प्रकार ओघ प्ररूपणामें घटित कर आये हैं उसी प्रकार यहाँ भी घटित कर लेना चाहिये। तथा सामान्यसे नारकीकी उत्कृष्ट आयु तेतीस सागर होती है अतः इस स्थानका उत्कृष्ट काल तेतीस सागर कहा है। प्रथमादि नरकोंमें भी इस स्थानके जघन्य और उत्कृष्ट कालको इसी प्रकार प्राप्त कर लेना चाहिये। केवल उत्कृष्ट काल अपनी अपनी आयुप्रमाण कहना चाहिये। छब्बीस प्रकृतिक संक्रमस्थानके जघन्य और उत्कृष्ट कालका जो क्रम ओघसे बतलाया है वह क्रम यहाँ नरकमें भी सामान्यसे या प्रत्येक नरकमें बन जाता है, इसलिये यहाँ इस स्थानका काल ओघके समान होता है यह निर्देश किया है। तेईस प्रकृतिक संक्रमस्थानका जघन्य काल एक समय जिस प्रकार ओघसे घटित कर आये हैं उसी प्रकार यहां नरकमें भी घटित कर लेना चाहिये। किन्तु उत्कृष्ट कालमें कुछ विशेषता है। बात यह है कि सामान्यसे नरकायु तेतीस सागरसे अधिक नहीं होती, अतः तेईस प्रकृतिक संक्रमस्थानका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कम तेतीस सागर और प्रत्येक नरककी अपेक्षा अन्तर्मुहूर्त कम अपनी अपनी उत्कृष्ट आयुप्रमाण प्राप्त होता है। २१ प्रकृतिक संक्रमस्थानका जघन्य काल एक समय सासादन गुणस्थानकी अपेक्षासे और उत्कृष्ट काल कुछ कम एक सागर क्षायिकसम्यग्दर्शनकी अपेक्षासे प्राप्त होता है, अतः सामान्यसे नरकमें व प्रथम नरकमें यह कथन इसी प्रकारसे बन जाता है। किन्तु द्वितीयादि नरकोंमें क्षायिक सम्यग्दृष्टि नहीं पैदा होते, अतः वहाँ उत्कृष्ट काल मिश्र गुणस्थानकी अपेक्षासे घटित करना चाहिये। इसीसे द्वितीयादि नरकोंमें २१ प्रकृतिक संक्रमस्थानका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ३९१. तिरिक्खेसु २७ संका० जह० एयस०, उक्क० तिण्णि पलिदोवमाणि पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागेण[1] सादिरेयाणि। २६ संका० ओघभंगो। २५ संका० जह० एगस०, उक्क० अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा। २३ संका० जह० एयस०, उक्क० तिण्णि पलिदोवमाणि देसूणाणि। २१ संका० जह० एयस०, उक्क० तिण्णि पलिदो०। एवं पंचिंदियतिरिक्खतिय०३। णवरि २७, २५ संका जह० एयस०, उक्क० तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडिपुधत्तेणब्भहियाणि। जोणिणीसु २१ संका० जह० एयस०, उक्क० अंतोमुहुत्तं। पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज०-मणुसअपज्ज० २७, २६, २५ संका० जह० एयस०, उक्क० अंतोमुहुत्तं।

§ ३९२. मणुसतिए २७, २५, २३ पंचिंदियतिरिक्खभंगो। २१ संका० जह०

§ ३९१. तिर्यञ्चोंमें २७ प्रकृतिक संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागसे अधिक तीन पल्य है। २६ प्रकृतिक संक्रामकका काल ओघके समान है। २५ प्रकृतिक संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अनन्त काल है जो कि असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है। २३ प्रकृतिक संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पल्य है। तथा २१ प्रकृतिक संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तीन पल्य है। इसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें २७ और २५ प्रकृतिक संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पूर्वकोटि पृथक्त्व अधिक तीन पल्य है। योनिनी तिर्यञ्चोंमें २१ प्रकृतिक संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें २७, २६ और २५ प्रकृतिक संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—यहां तिर्यंचगतिमें और उसके अवान्तर भेदोंमें सम्भव संक्रमस्थानोंका काल बतलाया गया है सो यहां सम्भव स्थानोंके जघन्य कालका खुलासा जिस प्रकार नरकगतिमें कर आये हैं उसी प्रकार यहां पर भी कर लेना चाहिये। अब रही उत्कृष्ट कालकी बात सो उसका खुलासा करते हैं—कोई एक २८ प्रकृतियोंकी सत्तावाला मिथ्यादृष्टि तिर्यंच है जिसे सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करते हुए पल्यका असंख्यातवां भाग काल हो गया है। फिर यह जीव तीन पल्यकी आयुवाले तिर्यञ्चोंमें उत्पन्न हुआ और वहाँ इनकी उद्वेलनाको पूरा करनेके पूर्व ही वह सम्यग्दृष्टि हो गया और अन्त तक सम्यग्दृष्टि बना रहा तो इस प्रकार तिर्यञ्चोंमें २७ प्रकृतिक संक्रमस्थानका उत्कृष्ट काल पल्यका असंख्यातवाँ भाग अधिक तीन पल्य बन जाता है। सादि-सान्त विकल्पकी अपेक्षा तिर्यञ्चगतिमें निरन्तर रहनेका काल अनन्त काल है। इसीसे पच्चीस प्रकृतिक संक्रमस्थानका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण बतलाया है। तिर्यञ्चोंमें अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनासे युक्त वेदक सम्यक्त्वका उत्कृष्ट काल कुछ कम तीन पल्य प्राप्त होता है। इसीसे यहाँ २३ प्रकृतिक संक्रमस्थानका उत्कृष्ट काल उक्त प्रमाण कहा है। तथा तिर्यञ्चोंमें क्षायिकसम्यग्दृष्टि भी पैदा होते हैं, इसलिये तिर्यञ्चगतिमें २१ प्रकृतिक संक्रमस्थानका उत्कृष्ट काल तीन पल्य कहा है। शेष कथन सुगम है।

§ ३९२. मनुष्यत्रिकमें २७, २५ और २३ प्रकृतिक संक्रामकका काल पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके

१ ता०प्रतौ –पलिदोवमाणि असंखेजभागेण इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एयसमओ, उक्क० तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडितिभागेण सादिरेयाणि । मणुसिणीसु पुव्वकोडी देसूणा । सेसमोघं । णवरि मणुस्सिणी० १४ संका० णत्थि । १२ जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं । अथवा दोण्हं पि ओयरमाणस्स जह० एयसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं ।

§ ३९३. देवेसु २७, २३, २१ संका० जह० एयसमओ, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि । २६ संका० ओघभंगो । २५ जह० एयसमओ, उक्क० एक्कत्तीसं सागरोवमाणि । एवं भवणादि जाव णवगेवज्जा त्ति । णवरि सगट्ठिदी । अण्णं च भवण०-वाण०-जोइसि० २१ जह० एयसमओ, उक्क० अंतोमु० । अणुदिसादि जाव सव्वट्ठा त्ति २७, २३ जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० सगट्ठिदी । २१ जह० जहण्णट्ठिदी, उक्क० उक्कस्सट्ठिदी । णवरि सव्वट्ठे जहण्णुक्कस्सभेदो णत्थि । एवं जाव० ।

समान है । २१ प्रकृतिक संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल एक पूर्वकोटिका त्रिभाग अधिक तीन पल्य है । किन्तु मनुष्यनियोंमें २१ प्रकृतिक संक्रमस्थानका उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटिप्रमाण है । शेष कथन ओघके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्यनियोंमें १४ प्रकृतिक संक्रमस्थान नहीं है और १२ प्रकृतिक संक्रमस्थानका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । अथवा उपशमश्रेणिसे उतरनेवाले मनुष्यिनी जीवकी अपेक्षा दोनों ही स्थानोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

विशेषार्थ—एक पूर्वकोटिकी आयुवाले जिस मनुष्यने त्रिभागमें आयुका बन्ध करके क्षायिक सम्यग्दर्शन उपार्जित किया है और फिर मरकर जो तीन पल्यकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ है उसके इतने काल तक मनुष्योंमें २१ प्रकृतिक संक्रमस्थान देखा जाता है अतः मनुष्योंमें २१ प्रकृतिक संक्रमस्थानका उत्कृष्ट काल एक पूर्वकोटिका त्रिभाग अधिक तीन पल्य कहा है । किन्तु यह अवस्था मनुष्यनियोंके नहीं बन सकती, क्योंकि स्त्रीवेदियोंमें सम्यग्दृष्टि जीव मरकर नहीं उत्पन्न होता है, इसलिये मनुष्यनियोंमें २१ प्रकृतिक संक्रमस्थानका उत्कृष्ट काल कुछ कम एक पूर्वकोटि कहा है । मनुष्यनीके उपशमश्रेणिमें चढ़ते समय १२ प्रकृतिक संक्रमस्थान नहीं प्राप्त होता किन्तु क्षपकश्रेणिमें ही प्राप्त होता है, इसलिए मनुष्यनीमें १२ प्रकृतिक संक्रमस्थानका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है । किन्तु इसके उपशमश्रेणिसे उतरते समय १२ और १४ प्रकृतिक दोनों संक्रमस्थान बन जाते हैं और इन स्थानोंका उपशमश्रेणिमें जघन्य काल एक समय तथा उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है, अतः यहाँ भी इनका उक्त प्रमाण काल कहा है । शेष कथन सुगम है ।

§ ३९३. देवोंमें २७, २३ और २१ प्रकृतिक संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है । २६ प्रकृतिक संक्रामकका भंग ओघके समान है । २५ प्रकृतिक संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल इकतीस सागर है । इसी प्रकार भवनवासियोंसे लेकर नौ ग्रैवेयक तकके देवोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थिति कहनी चाहिये । दूसरे भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें २१ प्रकृतिक संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें २७ और २३ प्रकृतिक संक्रामकका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल अपनी-अपनी स्थितिप्रमाण है । २१ प्रकृतिक संक्रामकका जघन्य काल जघन्य स्थितिप्रमाण है और उत्कृष्ट काल उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सर्वार्थसिद्धिमें अपनी स्थितिका जघन्य और उत्कृष्ट भेद नहीं है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

❀ एत्तो एयजीवेण अंतरं ।

§ ३९४. एत्तो उवरि जहावसरपत्तमेयजीवेणंतरं भणिस्सामो त्ति पइज्जासुत्तमेदं ।

❀ सत्तावीस-छव्वीस-तेवीस-इगिवीससंकामगंतरं केवचिरं कालादो होदि ? जहण्णेण एयसमओ, उक्कस्सेण उवड्ढपोग्गलपरियट्टं ।

§ ३९५. तं जहा—सत्तावीसाए जह० एयसमओ त्ति एदस्स अत्थे भण्णमाणे एओ सत्तावीससंकामओ उवसमसम्माइट्ठी सगद्धाए एयसमओ अत्थि त्ति सासणगुणं पडिवज्जिय एयसमयं पणुवीसं संकमेणंतरिय पुणो मिच्छाइट्ठिभावेण सत्तावीससंकामओ जादो, लद्धं पयदजहण्णंतरं । अहवा सत्तावीससंकामओ मिच्छाइट्ठी समत्तमुव्वेल्लेमाणो

विशेषार्थ—गुणस्थानका परिवर्तन नौवें ग्रैवेयक तक ही सम्भव है और यहीं तक मिथ्यादृष्टि जीव मरकर उत्पन्न होता है, इसलिये पच्चीस प्रकृतिक संक्रमस्थानका उत्कृष्ट काल ३१ सागर कहा है । भवनवासी आदि तीन प्रकारके देवोंमें क्षायिक सम्यग्दृष्टिका उत्पन्न होना सम्भव नहीं है, इसलिये इनमें मिश्र गुणस्थानकी अपेक्षा २१ प्रकृतिक संक्रमस्थानका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है । जो २८ प्रकृतियोंकी सत्तावाला सम्यग्दृष्टि जीव अनुदिश आदिमें उत्पन्न हुआ है और अन्तर्मुहूर्तमें जिसने अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना कर दी है उसके २७ प्रकृतिक संक्रमस्थान का जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है । इसी प्रकार जिसने आयुमें अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहने पर अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना की है उसके तेईस प्रकृतिक संक्रमस्थानका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है । यहाँ यद्यपि भवनत्रिकमें भी २३ प्रकृतिक संक्रमस्थानका उत्कृष्ट काल अपनी-अपनी स्थितिप्रमाण बतलाया है पर यह काल अन्तर्मुहूर्त कम जानना चाहिये, क्योंकि इन देवोंमें सम्यग्दृष्टिकी उत्पत्ति सम्भव नहीं है । तथा अन्य प्रकारसे सतत २३ प्रकृतिक संक्रमस्थान यहाँ बन नहीं सकता है । शेष कथन सुगम है ।

*** अब इससे आगे एक जीवकी अपेक्षा अन्तरका अधिकार है ।**

§ ३९४. अब इस कालानुयोगद्वारके बाद अवसरप्राप्त एक जीवकी अपेक्षा अन्तरका कथन करते हैं इस प्रकार यह प्रतिज्ञा सूत्र है । अर्थात् इस सूत्रद्वारा एक जीवकी अपेक्षा अन्तरके कहनेकी प्रतिज्ञा की गई है ।

*** सत्ताईस, छब्बीस, तेईस और इक्कीस प्रकृतिक संक्रामकका कितना अन्तर काल है ? जघन्य अन्तर काल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर काल उपार्धपुद्गल-परिवर्तनप्रमाण है ।**

§ ३९५. खुलासा इस प्रकार है—सर्वप्रथम सत्ताईस प्रकृतिक संक्रामकका जघन्य अन्तर काल एक समय है इसका अर्थ कहते हैं—किसी एक सत्ताईस प्रकृतिक संक्रामक उपशमसम्यग्दृष्टि जीवने उपशमसम्यक्त्वके कालमें एक समय शेष रहने पर सासादन गुणस्थानको प्राप्त होकर और एक समय तक पच्चीस प्रकृतियोंका संक्रम करके एक समयके लिये सत्ताईस प्रकृतियोंके संक्रमका अन्तर किया । फिर वह मिथ्यादृष्टि होकर सत्ताईस प्रकृतिक संक्रामक हो गया । इस प्रकार प्रकृत स्थानका जघन्य अन्तरकाल एक समय प्राप्त हो गया । अथवा किसी एक सत्ताईस प्रकृतिक संक्रामक मिथ्यादृष्टि जीवने सम्यक्त्वकी उद्वेलना करते हुए सम्यक्त्वके अभिमुख हो कर अन्तरकरण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्मत्ताहिमुहो होऊणंतरं करिय मिच्छत्तपढमट्ठिदिदुचरिमसमए सत्तावीससंकामयभावेण सम्मत्तचरिमफालिं मिच्छत्तस्सुवरि संकामिय तदो चरिमसमयम्मि छव्वीससंकमेणंतरिय सम्मत्तं पडिवण्णपढमसमयम्मि पुणो वि सत्तावीससंकामयभावेण परिणदो तस्स लद्धमंतरं । उक्क० उवड्ढपोग्गलपरियट्टपरूवणा कीरदे । तं कथं? एगो अणादियमिच्छाइट्ठी अद्धपोग्गलपरियट्टस्सादिसमये उवसमसम्मत्तं पडिवज्जिय सव्वलहुं मिच्छत्तं गंतूण सव्व-जहण्णुव्वेल्लणकालेण सम्मत्तमुव्वेल्लिय सत्तावीसाए अंतरमुप्पाइय देसूणमद्धपोग्गल-परियट्टं परियट्टिय सव्वजहण्णंतोमुहुत्तावसेसे सिज्झिदव्वए त्ति उवसमसम्मत्तं पडिवण्णो तस्स विदियसमए सत्तावीसं संकामेमाणस्स लद्धमंतरं होइ ।

§ ३९६. संपहि छव्वीसाए जहण्णेणेयसमयमंतरपरूवणा कीरदे । तं जहा—उव्वेल्लिदसम्मत्तसंतकम्मो छव्वीससंकामओ उवसमसम्मत्ताहिमुहो होदूण मिच्छत्तपढम-ट्ठिदिदुचरिमसमए सम्मामिच्छत्तचरिमफालिं मिच्छत्तसरूवेण संकामिय तदणंतरसमए वि पणुवीससंकमेणंतरिय उवसमसम्मत्तं पडिवण्णपढमसमयम्मि पुणो छव्वीससंकामओ जादो, लद्धमेगसमयमेत्तं जहण्णंतरं । उक्कस्संतरं पुण अद्धपोग्गलपरियट्टादिसमए

क्रिया की। अनन्तर मिथ्यात्वकी प्रथम स्थितिके उपान्त्य समयमें सत्ताईस प्रकृतियोंका संक्रम करते हुए सम्यक्त्वकी अन्तिम फालिका मिथ्यात्वमें संक्रम किया। फिर अन्तिम समयमें उसने छब्बीस प्रकृतियोंके संक्रम द्वारा एक समयके लिये सत्ताईस प्रकृतियोंके संक्रमका अन्तर किया। फिर सम्यक्त्वको प्राप्त करके उसके प्रथम समयमें वह फिरसे सत्ताईस प्रकृतिक संक्रामक हो गया। इस प्रकार इसके सत्ताईस प्रकृतिक संक्रमका जघन्य अन्तर काल एक समय प्राप्त हुआ। अब उपार्ध पुद्गल परिवर्तनप्रमाण उत्कृष्ट अन्तरका कथन करते हैं। यथा—किसी एक अनादि मिथ्या-दृष्टि जीवने अर्धपुद्गलपरिवर्तनके प्रथम समयमें ही उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त कर, अतिशीघ्र मिथ्यात्वमें जाकर, सबसे जघन्य उद्वेलन कालके द्वारा सम्यक्त्वकी उद्वेलना करके सत्ताईस प्रकृतिक संक्रमका अन्तर उत्पन्न किया। फिर वह कुछ कम अर्ध पुद्गल परिवर्तन काल तक परिभ्रमण करता रहा और जब सिद्ध होनेके लिये सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहा तब वह उपशम-सम्यक्त्वको प्राप्त हो गया और उसके दूसरे समयमें वह सत्ताईस प्रकृतियोंका संक्रम करने लगा। इस प्रकार प्रकृत स्थानका उत्कृष्ट अन्तरकाल प्राप्त हो गया।

§ ३९६. अब छब्बीस प्रकृतिक संक्रमस्थानके जघन्य अन्तर एक समयका कथन करते हैं। यथा—जिसने सम्यक्त्वकी उद्वेलना कर दी है ऐसे किसी एक छब्बीस प्रकृतियोंका संक्रमण करनेवाले जीवने सम्यक्त्वके अभिमुख होकर मिथ्यात्वकी प्रथम स्थितिके द्विचरम समयमें सम्यग्मिथ्यात्वकी अन्तिम फालिको मिथ्यात्वरूपसे संक्रमित किया। फिर तदनन्तर समयमें अर्थात् मिथ्यात्व गुणस्थानके अन्तिम समयमें पच्चीस प्रकृतियोंके संक्रमण द्वारा एक समयके लिये छब्बीस प्रकृतियोंके संक्रमणका अन्तर करके उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त किया और उसको प्राप्त करनेके प्रथम समयमें वह फिरसे छब्बीस प्रकृतियोंका संक्रमण करने लगा। इस प्रकार छब्बीस प्रकृतिक संक्रमस्थानका जघन्य अन्तर एक समय प्राप्त हो जाता है। अब उत्कृष्ट अन्तर कालका खुलासा करते हैं—किसी एक जीवने अर्धपुद्गलपरिवर्तनके प्रथम समयमें ही उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त

१. आ०प्रतौ -यट्ट परूवणा इति पाठः।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

उवसमसम्मत्तं पडिवज्जिय सव्वलहुं मिच्छत्तं गंतूण सव्वजहण्णुव्वेल्लणकालेण सम्मत्त-मुव्वेल्लिय छव्वीससंकामओ होदूण सव्वलहुएण कालेण सम्मामिच्छत्तमुव्वेल्लिय पणुवीससंकमेणंतरिय पोग्गलपरियट्टद्धं देसूणं परिब्भमिय अंतोमुहुत्तावसेसे संसारे उवसमसम्मत्तं पडिवज्जिय छव्वीसं संकामेमाणस्स लद्धमंतरं होइ।

§ ३९७. तेवीसाए जहण्णेणेयसमयमेत्तंतरे भण्णमाणे चउवीससंतकम्मिओवसम-सम्माइट्ठी तेवीससंकामओ तदद्धाए एयसमओ अत्थि त्ति सासणभावं गंतूण इगिवीस-संकमेणंतरिय विदियसमए मिच्छत्तगमणेण तेवीससंकामओ जादो, लद्धमंतरं होइ। अहवा तेवीससंकामओ उवसमसेढिमारुहिय अंतरकरणपरिसमत्तिसमणंतरमेवाणुपुव्वी-संकममाढविय एयसमए बावीससंकमेणंतरिय विदियसमए देवेसुववण्णो तेवीससंकामओ जादो, लद्धं जहण्णमंतरमेयसमयमेत्तं। उक्कस्सेणुवड्ढपोग्गलपरियट्टंतरपरूवणं कस्सामो। अद्धपोग्गलपरियट्टादिसमए सम्मत्तं पडिवज्जिय उवसमसम्मत्तकालब्भंतरे चेय अणंताणु०-चउक्कं विसंजोइय तेवीससंकमस्सादिं काऊण उवसमसम्मत्तद्धाए छावलियमेत्तावसेसाए आसाणं पडिवण्णो इगिवीससंकमेणंतरिय पुणो मिच्छत्तं गंतूण उवड्ढपोग्गलपरियट्टमेत्त-

किया। फिर अतिशीघ्र मिथ्यात्वमें जाकर और सबसे जघन्य उद्वेलन कालके द्वारा सम्यक्त्व-की उद्वेलना करके वह छब्बीस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया। फिर अति स्वल्प कालके द्वारा सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करके पच्चीस प्रकृतियोंके संक्रमण द्वारा छब्बीस प्रकृतियोंके संक्रमणका अन्तर किया। फिर वह कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन काल तक परिभ्रमण करता रहा और जब संसारमें रहनेका काल अन्तर्मुहूर्त शेष रहा तब वह उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त होकर एक समयके लिये छब्बीस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया। इस प्रकार प्रकृत स्थानका उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त हो जाता है।

§ ३९७. अब तेईस प्रकृतिक संक्रमस्थानके जघन्य अन्तर एक समयका कथन करते हैं—जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशम सम्यग्दृष्टि जीव तेईस प्रकृतियोंका संक्रम कर रहा है उसने उपशम सम्यक्त्वके कालमें एक समय शेष रहने पर सासादन गुणस्थानको प्राप्त होकर इक्कीस प्रकृतियोंके संक्रमणद्वारा एक समयके लिये तेईस प्रकृतियोंके संक्रमका अन्तर किया। फिर दूसरे समयमें मिथ्यात्वमें चले जानेसे वह फिरसे तेईस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया। इस प्रकार प्रकृत स्थानका जघन्य अन्तर एक समय प्राप्त हो जाता है। अथवा कोई एक तेईस प्रकृतियोंका संक्रमण करनेवाला जीव उपशमश्रेणि पर चढ़ा और अन्तरकरणकी समाप्तिके बाद ही आनुपूर्वी संक्रमका प्रारम्भ करके एक समयके लिये उसने बाईस प्रकृतियोंके संक्रमण द्वारा तेईस प्रकृतियोंके संक्रमका अन्तर किया। फिर दूसरे समयमें वह देवोंमें उत्पन्न होकर तेईस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया। इस प्रकार प्रकृत स्थानका जघन्य अन्तर एक समय प्राप्त हो जाता है। अब इस स्थानके उपार्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण उत्कृष्ट अन्तरका कथन करते हैं—किसी एक जीवने अर्धपुद्गल-परिवर्तन कालके प्रथम समयमें सम्यक्त्वको प्राप्त करके और उपशम सम्यक्त्वके कालके भीतर ही अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना करके तेईस प्रकृतियोंके संक्रमका प्रारम्भ किया। फिर उपशम सम्यक्त्वके कालमें छह आवलि शेष रहने पर वह सासादन गुणस्थानको प्राप्त हुआ और इक्कीस प्रकृतियोंके संक्रम द्वारा तेईस प्रकृतियोंके संक्रमका अन्तर करके वह मिथ्यात्वमें गया। फिर वहां

१. आ०प्रतौ –णेयं समयमेत्तंतरे इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कालमाविद्धकुलालचक्कं व परिभमिय सव्वजहण्णंतोमुहुत्तावसेसे संसारे उवसमसम्मत्तं घेत्तूण वेदगभावं पडिवज्जिय खवगसेढिमारोहणट्ठं अणंताणु० विसंजोइय तेवीससंकामओ जादो, लद्धमुक्कस्संतरं होइ।

§ ३९८. इगिवीसाए जहण्णेणेयसमओ उच्चदे—एगो इगिवीससंतकम्मिओ उवसमसेढिं चढिय अंतरकरणपरिसमत्तीए[1] लोहासंकमवसेणेयसमयं वीससंकमेणंतरिय कालगदो देवो होऊणिगिवीससंकामओ जादो, लद्धं पयदजहण्णंतरं। संपहि उक्कस्संतरं उच्चदे। एगो अणादियमिच्छाइट्ठी अद्धपोग्गलपरियट्टादिसमए पढमसम्मत्तं पडिवज्जिय तक्कालब्भंतरे चेय अणंताणु०चउक्कं विसंजोइय उवसमसम्मत्तद्धाए छावलियमेत्तावसेसाए सासादणभावमासादिय इगिवीससंकामयभावेणावलियमेत्तकालं गालिय तदणंतरसमए पणुवीससंकमेणंतरिय तदो मिच्छत्तेणद्धपोग्गलपरियट्टमेत्तकालं परियट्टिय सव्वजहण्णंतोमुहुत्तमेत्तावसेसे सिज्झिदव्वए दंसणमोहं खविय इगिवीससंकामओ जादो, लद्धमिगिवीससंकामयस्स देसूणद्धपोग्गलपरियट्टमेत्तमुक्कस्संतरं।[2] एवमेदेसिं चउण्हं संकमट्ठाणाणं जहण्णुक्कस्संतरविसयणिण्णयं काऊण संपहि पणुवीससंकमट्ठाणस्स तदुभयणिरूवणट्ठमुवरिमसुत्तं भणइ—

घुमाये गये कुम्हारके चक्केके समान कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण काल तक परिभ्रमण करता रहा और जब संसारमें रहनेका सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल शेष बचा तब वह उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ और वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त करके क्रमसे क्षपकश्रेणि पर चढ़नेके लिये अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करके तेईस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया। इस प्रकार तेईस प्रकृतिक संक्रमस्थानका उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त हो जाता है।

§ ३९८. अब इक्कीस प्रकृतिक संक्रमस्थानके जघन्य अन्तर एक समयका कथन करते हैं—एक इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव उपशमश्रेणि पर चढ़ा और उसने अन्तरकरणकी समाप्ति होनेपर लोभका संक्रम न होनेसे एक समयके लिये बीस प्रकृतियोंके संक्रमणद्वारा इक्कीस प्रकृतियोंके संक्रमका अन्तर किया। फिर वह मरा और देव होकर इक्कीस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया। इस प्रकार प्रकृत स्थानका जघन्य अन्तर एक समय प्राप्त हो जाता है। अब उत्कृष्ट अन्तरका कथन करते हैं—एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीवने अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण कालके प्रथम समयमें उपशमसम्यक्त्व प्राप्त करके उसी कालके भीतर अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना की। फिर उपशमसम्यक्त्वके कालमें छह आवलि शेष रहने पर सासादन गुणस्थानको प्राप्त होकर एक आवलि काल तक इक्कीस प्रकृतियोंका संक्रमण करता रहा। फिर तदनन्तर समयमें पच्चीस प्रकृतियोंके संक्रमद्वारा इक्कीस प्रकृतियोंके संक्रमका अन्तर किया। फिर मिथ्यात्वके साथ कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनकाल तक परिभ्रमण किया और जब सिद्ध होनेके लिये सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहा तब दर्शनमोहनीयका क्षय करके इक्कीस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया। इस प्रकार इक्कीस प्रकृतियोंके संक्रामकका कुछकम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण उत्कृष्ट अन्तरकाल प्राप्त होजाता है। इस प्रकार इन चार संक्रमस्थानोंके जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर कालका निर्णय करके अब पच्चीस प्रकृतिक संक्रमस्थानके उक्त दोनों अन्तर कालोंका निर्णय करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

१. ता०प्रतौ –करणं परिसमत्तीए इति पाठः। २. आ०प्रतौ –मेत्तमिस्संतरं इति पाठः।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

* पणुवीससंकामयंतरं केवचिरं कालादो होइ ?

§ ३९९. सुगमं ।

* जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण वेछावट्टिसागरोवमाणि सादिरेयाणि ।

§ ४००. एत्थ ताव जहण्णंतरं वुच्चदे । तं जहा—एओ सम्मामिच्छाइट्ठी पणुवीससंकामयभावेणावट्ठिदो परिणामपच्चएण सम्मत्तं मिच्छत्तं वा परिणमिय तत्थ सव्वजहण्णंतोमुहुत्तमेत्तकालं सत्तावीससंकमेणंतरिय पुणो सम्मामिच्छत्तमुवणमिय पणुवीससंकामओ जादो, लद्धमंतरं । संपहि उक्कस्संतरपरूवणं कस्सामो—अण्णदरो मिच्छाइट्ठी पणुवीससंकामओ उवसमसम्मत्तं पडिवज्जिय अविवक्खियसंकमट्ठाणेणंतरिय पुणो मिच्छत्तं गंतूण सव्वुक्कस्सेणुव्वेल्लणकालेण सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तमुव्वेल्लमाणो उवसमसम्मत्ताहिमुहो होदूण अंतरकरणं करिय मिच्छत्तपढमट्ठिदिचरिमसमए सम्मामिच्छत्तचरिमफालिं संकामिय तदणंतरसमए सम्मत्तं पडिवज्जिय पढमछावट्ठिं परिभमिय तदवसाणे मिच्छत्तं गंतूण पलिदोवमासंखेज्जभागमेत्तकालं सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमुव्वेल्लणवावारेणच्छिय तदो पयदाविरोहेण सम्मत्तं घेत्तूण विदियछावट्ठिमणुपालिय तदवसाणे पुणो वि मिच्छत्तं गंतूण दीहुव्वेल्लणकालेण सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणि

* पच्चीस प्रकृतिक संक्रामकका कितना अन्तरकाल है ?

§ ३९९. यह सूत्र सुगम है ।

* जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक दो छयासठ सागर है ।

§ ४००. अब यहां सर्व प्रथम जघन्य अन्तरकालका कथन करते हैं । यथा—पच्चीस प्रकृतियोंका संक्रम करनेवाला कोई एक सम्यग्मिथ्यादृष्टि जीव परिणामवश सम्यक्त्वको या मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ और वहाँ उसने सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्त कालतक सत्ताईस प्रकृतियोंके संक्रम द्वारा पच्चीस प्रकृतियोंके संक्रमका अन्तर किया । फिर वह सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होकर पच्चीस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया । इस प्रकार पच्चीस प्रकृतिक संक्रमस्थानका जघन्य अन्तर प्राप्त हो जाता है । अब उत्कृष्ट अन्तरकालका कथन करते हैं—किसी एक पच्चीस प्रकृतियोंके संक्रामक मिथ्यादृष्टि जीवने उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त करके अविवक्षित संक्रमस्थानके द्वारा प्रकृत संक्रमस्थानका अन्तर किया । फिर वह मिथ्यात्वमें जाकर सबसे उत्कृष्ट उद्वेलना कालके द्वारा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करता हुआ उपशम सम्यक्त्वके अभिमुख हुआ । फिर अन्तरकरणको करके मिथ्यात्वकी प्रथम स्थितिके चरम समयमें सम्यग्मिथ्यात्वकी अन्तिम फालिका संक्रमण करके तदनन्तर समयमें सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । फिर प्रथम छयासठ सागर काल तक परिभ्रमण करके उसके अन्तमें मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ । फिर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करते हुए जिससे प्रकृतमें विरोध न पड़े इस ढंगसे सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ । फिर दूसरे छयासठ सागर काल तक सम्यक्त्वका पालन करके उसके अन्तमें फिरसे मिथ्यात्वमें गया और वहाँ सबसे दीर्घ उद्वेलनकालके द्वारा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करके

१. आ०प्रतौ एओ पणुवीस- इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उव्वेल्लिऊण पणुवीससंकामओ जादो, लद्धं तीहि पलिदोवमासंखेज्जभागेहि सादिरेय-वेछावट्ठिसागरोवममेत्तं पणुवीससंकामयस्स उक्कस्संतरं। संपहि बावीसादिसंकमट्ठाणाण-मंतरपरूवणट्ठमुत्तरसुत्तं भणइ—

❀ बावीस-वीस-चोद्दस-तेरस-एक्कारस-दस-अट्ठ-सत्त-पंच-चदु-दोण्णि-संकामयंतरं केवचिरं कालादो होदि ?

§ ४०१. सुगमं।

❀ जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण उवड्ढपोग्गलपरियट्टं।

§ ४०२. बावीसाए ताव जहण्णंतरपरूवणा कीरदे—एक्को चउवीससंतकम्मिओव-सामओ लोभासंकमवसेण बावीसाए संकामओ होदूण पुणो णवुंसयवेदमुवसामिय अंतरिदो उवरिं चढिय पुणो हेट्ठा ओदरिय इत्थिवेदोकड्डणाणंतरं बावीससंकामओ जादो, लद्धमंतरं जहण्णेणंतोमुहुत्तमेत्तं[1]। एवं वीसाए। णवरि इगिवीससंतकम्मियस्स वत्तव्वं। चोद्दससंकामयस्स वि एवं चेव। णवरि चउवीससंतकम्मियस्स छण्णोकसायोव-सामणाए चोद्दससंकमस्सादिं कादूण पुरिसवेदोवसामणाए अंतरिदस्स पुणो हेट्ठा ओदरिय तिविहकोहोकड्डणाणंतरं लद्धमंतरं कायव्वं। एवं तेरससंकामयस्स। णवरि पुरिसवेदोव-

पच्चीस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया। इस प्रकार पच्चीस प्रकृतियोंके संक्रामकका उत्कृष्ट अन्तर पल्यके तीन असंख्यातवें भागोंसे अधिक दो छयासठ सागर प्राप्त होता है। अब बाईस आदि संक्रमस्थानोंके अन्तरका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

*** बाईस, बीस, चौदह, तेरह, ग्यारह, दस, आठ, सात, पाँच, चार और दो प्रकृतिक संक्रामकका कितना अन्तरकाल है ?**

§ ४०१. यह सूत्र सुगम है।

*** जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल उपार्धपुद्गलपरिवर्तन प्रमाण है।**

§ ४०२. अब सर्वप्रथम बाईस प्रकृतिक संक्रमस्थानके जघन्य अन्तरका कथन करते हैं—एक चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशामक जीव लोभका संक्रम न होनेके कारण बाईस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया। फिर जिसने नपुंसकवेदका उपशम करके बाईस प्रकृतियोंके संक्रमका अन्तर किया। फिर ऊपर चढ़कर और उतरकर स्त्रीवेदके अपकर्षणके बाद जो बाईस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया उसके बाईस प्रकृतियोंके संक्रामकका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है। बीस प्रकृतिक संक्रामकका जघन्य अन्तर भी इसी प्रकार प्राप्त होता है। किन्तु यह अन्तर इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके कहना चाहिये। चौदह प्रकृतिक संक्रामकका जघन्य अन्तर भी इसी प्रकार प्राप्त होता है। किन्तु जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव छह नोकषायोंके उपशम द्वारा चौदह प्रकृतियोंके संक्रमका प्रारम्भ करके फिर पुरुषवेदके उपशम द्वारा उसका अन्तर करता है उसके उपशमश्रेणिसे नीचे उतरने पर तीन प्रकारके क्रोधका अपकर्षण होनेके बाद यह अन्तर प्राप्त करना चाहिये। इसी प्रकार तेरह प्रकृतिक संक्रामकका भी जघन्य अन्तर प्राप्त होता है। किन्तु

१. आ० प्रतौ -मुहुत्तं इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सामणाए लद्धप्पसरूवस्स पयदसंकमट्ठाणस्स दुविहकोहोवसामणाए अंतरपारंभो वत्तव्वो। तदो हेट्ठा ओदरिय पुणो वि सव्वलहुं चढिय पुरिसवेदे उवसामिदे लद्धमंतरं कायव्वं। एसो चेव कमो एक्कारससंकमस्स वि। णवरि दुविहकोहोवसामणाए लद्धप्पसरूवस्सेदस्स कोहसंजलणोवसामणाणंतरमंतरिदस्स पुणो ओदरमाणावत्थाए तिविहमाणोकड्डणेण लद्धमंतरं कायव्वं। एवं दससंकामयस्स वि। णवरि कोहसंजलणोवसामणाए लद्धप्पलाहस्सेदस्स दुविहमाणोवसामणेणंतरं कादूणुवरिं चढिय पुणो हेट्ठा ओदरिय पुणो वि सव्वलहुमुवरिं चढिदस्स कोहसंजलणोवसामणाणंतरं लद्धमंतरं कायव्वं। एवमट्ठण्हं संकामयस्स। णवरि दुविहमाणोवसामणाए समुवलद्धसंकमस्सेदस्स माणसंजलणोवसामणेणंतरस्सादिं कादूण पुणो ओदरमाणस्स तिविहमायोकड्डणाए अंतरपरिसमत्ती कायव्वा। एवं सत्तसंकामयस्स वि वत्तव्वं। णवरि माणसंजलणोवसामणाणंतरमुवलद्धसरूवस्सेदस्स दुविहमायोवसामणाए अंतरपारंभं कादूणुवरिं चढिय हेट्ठा ओदरिय पुणो वि सव्वलहु-मुवरिं चढिदस्स सगुद्देसे लद्धमंतरं कायव्वं। एवं चेव पंचसंकामयजहण्णंतरपरूवणा वि। णवरि दुविहमायोवसामणाणंतरमुवजादसरूवस्सेदस्स मायासंजलणोवसामणाणंतर-मंतरिदस्स समयाविरोहेण लद्धमंतरं कायव्वं। एवं चेव चउण्हं संकामयस्स वि वत्तव्वं।

पुरुषवेदका उपशम हो जाने पर जिसने तेरह प्रकृतिक संक्रमस्थान प्राप्त कर लिया है उसके दो प्रकारके क्रोधका उपशम हो जाने पर प्रकृत संक्रमस्थानके अन्तरके प्रारम्भ होनेका कथन करना चाहिये। फिर इस जीवको नीचे उतारकर और अतिशीघ्र फिरसे चढ़ाकर पुरुषवेदका उपशम कर लेनेपर प्रकृत स्थानका अन्तर प्राप्त करना चाहिये। ग्यारह प्रकृतिक संक्रमस्थानके अन्तरका भी इसी क्रमसे कथन करना चाहिये। किन्तु दो प्रकारके क्रोधका उपशम होने पर इस स्थानको प्राप्त कराके फिर क्रोध संज्वजनका उपशम होनेके बाद इस स्थानका अन्तर प्राप्त करे। फिर उपशमश्रेणिसे उतरते समय तीन प्रकारके मानका अपकर्षण कराके इस स्थानका अन्तर प्राप्त करना चाहिये। दस प्रकृतिक संक्रमस्थानका अन्तर भी इसी प्रकार होता है। किन्तु क्रोध संज्वलनका उपशम होने पर इस स्थानको प्राप्त करके फिर दो प्रकारके मानका उपशम होनेके बाद इस स्थानका अन्तर प्राप्त करे। फिर ऊपर चढ़कर और नीचे उतरकर फिरसे अतिशीघ्र ऊपर चढ़े और क्रोधसंज्वलनका उपशम करके अन्तर प्राप्त करे। इसी प्रकार आठ प्रकृतियोंके संक्रामकका भी अन्तर प्राप्त होता है। किन्तु दो प्रकारके मानका उपशम हो जाने पर इस स्थानको प्राप्त करके मानसंज्वलनका उपशम करनेके बाद अन्तरका प्रारम्भ किया। फिर उतरते समय तीन प्रकारकी मायाका अपकर्षण करके अन्तरकी समाप्ति की। इसी प्रकार सात प्रकृतियोंके संक्रामकके अन्तरका कथन करना चाहिये। किन्तु मानसंज्वलनका उपशम हो जाने पर इस स्थानको प्राप्त करके फिर दो प्रकारकी मायाका उपशम हो जाने पर अन्तरका प्रारम्भ किया। फिर ऊपर चढ़कर और नीचे उतरकर फिरसे अतिशीघ्र ऊपर चढ़े और अपने स्थानमें पहुँचकर अन्तर प्राप्त करे। पाँच प्रकृतियोंके संक्रामकके जघन्य अन्तरका कथन भी इसी प्रकार करना चाहिये। किन्तु दो प्रकारकी मायाका उपशम होनेके बाद इस स्थानको प्राप्त करके फिर माया संज्वलनका उपशम होनेके बाद इस स्थानका अन्तर करे और यथाविधि विवक्षित स्थान पर आकर अन्तरको प्राप्त करे। इसी प्रकार चार प्रकृतियोंके संक्रामकका भी अन्तर कहना चाहिये। किन्तु माया संज्वलनका उपशम हो जाने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णवरि मायासंजलणोवसामणाणंतरमासादिदसरूवस्सेदस्स दुविहलोहोवसामणाए अंतरस्सादिं कादूण पुणो ओदरमाणावत्थाए अणियट्टिपढमसमए लद्धमंतरं कायव्वं। एवं दोण्हं संकामयस्स। णवरि इगिवीससंतकम्मियसंबंधेण सव्वजहण्णंतोमुहुत्तमेत्तमंतरमणुगंतव्वं। एवं जहण्णंतरपरूवणा कदा।

§ ४०३. संपहि उक्कस्संतरे भण्णमाणे तत्थ ताव वावीसाए उच्चदे। तं जहा—एको अणादियमिच्छाइट्ठी अद्धपोग्गलपरियट्टादिसमए पढमसम्मत्तमुप्पाइय वेदगसम्मत्तं पडिवज्जिय अणंताणुबंधिविसंजोयणापुरस्सरं दंसणतियमुवसामिय सव्वलहुमुवसमसेढिमारूढो। पुणो ओदरमाणो इत्थिवेदोकड्डणाणंतरं वावीससंकमट्ठाणस्सादिं कादूण अंतरिदो देसूणद्धपोग्गलपरियट्टमेत्तकालं परिभमिऊण तदो अंतोमुहुत्तावसेसे सिज्झिदव्वए त्ति सम्मत्तुप्पायणपुरस्सरं दंसणमोहक्खवणं पट्ठविय मिच्छत्तचरिमफालीपदणाणंतरं वावीससंकामओ जादो, लद्धमंतरं होइ। एवं वीसादिसेससंकमट्ठाणाणं पि उक्कस्संतरं परूवेयव्वं। णवरि सव्वेसिमुवसमसेढीए चढमाणोदरमाणावत्थासु जहासंभवमादिं कादूणंतरिदस्स पुणो उवसमसेढिमारोहणेण लद्धमंतरं कायव्वं। तेरसेकारस-दस-चदु-दोण्णिसंकमट्ठाणाणं च खवगसेढीए लद्धमंतरं कायव्वमिदि। संपहि एक्किस्से संकमट्ठाणस्स अंतराभाव[1]पदुप्पायणट्ठमुत्तरसुत्तमाह—

पर इस स्थानको प्राप्त करके फिर दो प्रकारके लोभका उपशम हो जाने पर अन्तरका प्रारम्भ करे और फिर उपशमश्रेणिसे उतरते समय अनिवृत्तिकरणके प्रथम समयमें अन्तरको प्राप्त करना चाहिये। इसी प्रकार दो प्रकृतियोंके संक्रामकका अन्तर प्राप्त होता है। किन्तु इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीवके सम्बन्धसे इसका अन्तर सबसे जघन्य अन्तर्मुहूर्तप्रमाण जानना चाहिये। इस प्रकार जघन्य अन्तरका कथन समाप्त हुआ।

§ ४०३. अब उत्कृष्ट अन्तरका कथन करते हैं। उसमें भी सर्वप्रथम बाईस प्रकृतिक संक्रमस्थानका अन्तर कहते हैं। यथा—एक अनादि मिथ्यादृष्टि जीवने अर्धपुद्गलपरिवर्तनके प्रथम समयमें प्रथम सम्यक्त्वको प्राप्त करके वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त किया। फिर अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनापूर्वक तीन दर्शनमोहनीयका उपशम करके अतिशीघ्र उपशमश्रेणि पर चढ़ा। फिर वहाँसे उतरते समय स्त्रीवेदका अपकर्षण करके बाईस प्रकृतिक संक्रमस्थानका प्रारम्भ किया और उसका अन्तर करके कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तन कालतक परिभ्रमण करता रहा। फिर सिद्ध होनेमें अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहने पर सम्यक्त्वकी उत्पत्तिपूर्वक दर्शनमोहनीयकी क्षपणाका प्रारम्भ करके मिथ्यात्वकी अन्तिम फालिके पतनके बाद बाईस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया। इस प्रकार बाईस प्रकृतिक संक्रमस्थानका उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त हो जाता है। इसी प्रकार बीस प्रकृतिक आदि शेष संक्रमस्थानोंके उत्कृष्ट अन्तरका भी कथन करना चाहिये। किन्तु उपशमश्रेणि पर चढ़ने या उतरनेकी अवस्थामें सभी स्थानोंको यथासम्भव प्राप्त करके अन्तरका प्रारम्भ करे और फिर अन्तमें उपशमश्रेणि पर आरोहण करके अन्तर ले आवे। तथा तेरह, ग्यारह, दस, चार और दो प्रकृतिक संक्रमस्थानोंका क्षपकश्रेणिमें उत्कृष्ट अन्तर प्राप्त करना चाहिये। अब एक प्रकृतिक संक्रमस्थानके अन्तरका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

१. आ०प्रतौ अंतरभाव- इति पाठः।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

❀ एक्किस्से संकामयस्स णत्थि अंतरं।

§ ४०४. कुदो ? खवयसेढिम्मि लद्धप्पसरूवत्तादो। संपहि उत्तसेससंकमट्ठाणाणमंतरपरूवणं कुणमाणो सुत्तमुत्तरं भणइ—

❀ सेसाणं संकामयाणमंतरं केवचिरं कालादो होइ ?

§ ४०५. सुगमं।

❀ जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण तेत्तीसं सागरोवमाणि सादिरेयाणि[1]।

§ ४०६. एत्थ सेसग्गहणेणूणवीसट्ठारस-बारस-णव-छ-तिगसण्णिदाणमिगिवीससंतकम्मियसंबंधिसंकमट्ठाणाणं गहणं कायव्वं। एदेसिं च जहण्णुक्कस्संतरपरूवणमेदेण सुत्तेण कीरदे। तं जहा—इगिवीससंतकम्मियोवसामगो उवसमसेढीए अंतरकरणसमत्तिसमणंतरमेवाणुपुव्विसंकममाढविय तदो णवुंसयवेदोवसामणाए एगूणवीससंकामओ होदूण इत्थिवेदोवसामणाकरणेणंतरस्सादिं कादूण पुणो तत्थेव लद्धप्पसरूवस्स अट्ठारससंकमस्स छण्णोकसायोवसामणाए अंतरमुप्पादिय तम्मि चेव बारससंकममाढविय पुणो पुरिसवेदोवसमेणंतराविय तदो दुविहकोहोवसामणाणंतरं लद्धप्पसरूवस्स णवण्हं संकमट्ठाणस्स कोहसंजलणोवसामणाणंतरमंतरं पारभिय पुणो तत्थ दुविहमाणोवसामणाए

* एक प्रकृतिक संक्रामकका अन्तरकाल नहीं है।

§ ४०४. क्योंकि इस स्थानकी प्राप्ति क्षपकश्रेणिमें होती है। अब पहले जिन संक्रमस्थानोंका अन्तर कह आये हैं उनके सिवा बचे हुए संक्रमस्थानोंके अन्तरका कथन करते हुए आगेका सूत्र कहते हैं—

* शेष स्थानोंके संक्रामकोंका कितना अन्तरकाल है ?

§ ४०५. यह सूत्र सुगम है।

* जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक तेतीस सागर है।

§ ४०६. इस सूत्रमें जो 'शेष' पद ग्रहण किया है सो उससे इक्कीस प्रकृतिक सत्कर्मसे सम्बन्ध रखनेवाले उन्नीस, अठारह, बारह, नौ, छह और तीन प्रकृतिक संक्रमस्थानोंका ग्रहण करना चाहिये। इस सूत्र द्वारा इन स्थानोंके जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरका कथन किया गया है। खुलासा इस प्रकार है—जो इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला उपशामक जीव उपशमश्रेणिमें अन्तरकरणकी समाप्तिके बाद ही आनुपूर्वी संक्रमका प्रारम्भ करता है। फिर नपुंसकवेदका उपशम कर लेनेपर उन्नीस प्रकृतियोंका संक्रामक हो जाता है और स्त्रीवेदका उपशम करके प्रकृत स्थानके अन्तरका प्रारम्भ करता है। फिर वहीं पर अठारह प्रकृतिक संक्रमस्थानको प्राप्त करके छह नोकषायोंकी उपशामना द्वारा इस स्थानके अन्तरका प्रारम्भ करता है। फिर वहींपर बारह प्रकृतिक संक्रमस्थानको प्राप्त करके पुरुषवेदकी उपशामनाद्वारा इस स्थानका अन्तर करता है। फिर दो प्रकारके क्रोधका उपशम करनेके बाद नौप्रकृतिक संक्रमस्थानको प्राप्त करके संज्वलन क्रोधके उपशमद्वारा इस स्थानके अन्तरका प्रारम्भ करता है। फिर वहींपर दो प्रकारके मानका उपशम हो जाने पर छहप्रकृतिक

१. ता०प्रतौ देसूणाणि इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

लद्धप्पलाहस्स छण्हं संकमस्स माणसंजलणोवसामणविहाणेणंतरमाढविय तत्तो दुविह-मायोवसामणाए तिण्हं संकममाढविय मायासंजलणोवसामणाए तदंतरस्सादिं कादूण उवरिं चढिय पुणो हेट्ठा ओयरमाणो तिविहमाय-तिविहमाण-तिविहकोह-सत्तणोकसायो-कड्डणाणंतरं जहाकमं छण्हं णवण्हं बारसण्हं एगूणवीसाए च संकमट्ठाणाणमंतरं समाणेइ। सेसाणं पुण हेट्ठा ओयरिय पुणो वि सव्वलहुमुवरिं चढिऊण सगसगविसए अंतरं समाणेइ। एदं जहण्णंतरं।

§ ४०७. उक्कस्संतरपरूवणमिदाणिं कस्सामो—देव-णेरइयाणमण्णदरो चउवीस-संतकम्मिओ वेदगसम्माइट्ठी पुव्वकोडाउअमणुस्सेसुप्पज्जिय गब्भादिअट्ठवस्साणमुवरि सव्वलहुं विसुद्धो होऊण संजमं पडिवज्जिय दंसणमोहणीयं खविय उवसमसेढिमारूढो तिण्हमट्ठारसण्हं चढमाणो चेव अंतरमुप्पाइय छण्हं णवण्हं बारसण्हमेगूणवीसाए च ओयरमाणो अंतरमुप्पाइय समोइण्णो देसूणपुव्वकोडिमेत्तकालं संजममणुपालिय कालं कादूण तेत्तीससागरोवमाउएसु देवेसुववण्णो। कमेण तत्तो चुदो संतो पुव्वकोडाउअ-मणुस्सेसुप्पण्णो अंतोमुहुत्तावसेसे उवसमसेढिमारुहिय जहाकमं सव्वेसिमंतरं समाणेदि। णवरि बारसण्हं तिण्हं च संकमट्ठाणस्स खवगसेढीए लद्धमंतरं कायव्वं।

एवमोघेण सव्वसंकमट्ठाणाणमंतरपरूवणा कया।

संक्रमस्थानको प्राप्त करके मानसंज्वलनके उपशमद्वारा इस स्थानके अन्तरका प्रारम्भ करता है। फिर दो प्रकारकी मायाका उपशम हो जाने पर तीन संक्रमस्थानको प्राप्त करता है। फिर ऊपर चढ़ कर और नीचे उतरकर तीन प्रकारकी माया, तीन प्रकारका मान, तीन प्रकारका क्रोध और सात नोकषाय इनका अपकर्षण करने पर क्रमसे छह, नौ, बारह और उन्नीस प्रकृतिक संक्रमस्थानोंके अन्तरको प्राप्त कर लेता है। तथा नीचे उतर कर और फिरसे अतिशीघ्र उपशमश्रेणि पर चढ़कर शेष स्थानोंका भी अपने अपने स्थानमें अन्तर प्राप्त कर लेता है। यह जघन्य अन्तर है।

§ ४०७. अब इस समय उत्कृष्ट अन्तरका कथन करते हैं—देव और नारकियोंमेंसे कोई एक चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला वेदक सम्यग्दृष्टि जीव पूर्व कोटिकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। फिर गर्भसे लेकर आठ वर्ष हो जाने पर अतिशीघ्र विशुद्ध होकर संयमको प्राप्त हुआ। फिर दर्शनमोहनीयका क्षय करके उपशमश्रेणि पर चढ़ा। इस प्रकार उपशमश्रेणि पर चढ़ते हुए तीन और अठारह प्रकृतिक संक्रमस्थानका अन्तर उत्पन्न करके तथा छह, नौ, बारह और उन्नीस प्रकृतिक संक्रमस्थानका उतरते समय अन्तर उत्पन्न करके क्रमसे यह जीव अप्रमत्त व प्रमत्तसंयत हो गया। फिर कुछ कम पूर्व कोटि काल तक संयमका पालन करके मरा और तेतीस सागरकी आयुवाले देवोंमें उत्पन्न हो गया। फिर क्रमसे वहाँसे च्युत होकर पूर्वकोटिकी आयुवाले मनुष्योंमें उत्पन्न हुआ। फिर अन्तर्मुहूर्त शेष रहने पर उपशमश्रेणिपर चढ़कर क्रमसे सब स्थानोंका अन्तर प्राप्त करता है। किन्तु इतनी विशेषता है कि बारह और तीन प्रकृतिक संक्रमस्थानका अन्तर क्षपकश्रेणिमें प्राप्त करना चाहिये।

इस प्रकार ओघसे सब संक्रमस्थानोंके अन्तरका कथन किया।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ४०८. एण्हिमादेसपरूवणट्ठमुच्चारणं वत्तइस्सामो। तं जहा—आदेसेण णिरयगइए णेरइएसु २७, २६, २३ संका० अंतरं केव० ? जह० एगसमओ, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि। एवं २५, २१। णवरि जह० अंतोमुहुत्तं। एवं सव्वणेरइय०। णवरि सगट्ठिदी देसूणा।

§ ४०९. तिरिक्खेसु २७, २६, २३ संकामयंतरमोघं। एवं २१। णवरि जह० अंतोमु०। २५ जह० अंतो०, उक्क० तिण्णि पलिदोवमाणि सादिरेयाणि। एवं पंचिंदि०-तिरिक्खतिय० ३। णवरि सगट्ठिदी। पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज०-मणुसअपज्ज०-अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठे त्ति तिण्हं ट्ठाणाणं[1] णत्थि अंतरं।

§ ४०८. अब आदेशका कथन करनेके लिये उच्चारणाको बतलाते हैं। यथा—आदेशसे नरकगतिमें नारकियोंमें २७, २६ और २३ प्रकृतिक स्थानोंके संक्रामकका अन्तरकाल कितना है? जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। इसी प्रकार २५ और २१ प्रकृतियोंके संक्रामकोंका अन्तरकाल जानना चाहिये। किन्तु इन स्थानोंके संक्रामकोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार सब नारकियोंमें जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि कुछ कम अपनी-अपनी स्थिति कहनी चाहिये।

विशेषार्थ—यहाँ सर्वत्र २७ प्रकृतिक आदि संक्रमस्थानोंका जघन्य अन्तर एक समय ओघके समान घटित कर लेना चाहिये। किन्तु २१ प्रकृतिक संक्रमस्थानके जघन्य अन्तरमें ओघसे कुछ विशेषता है। बात यह है कि नरकगतिमें उपशमश्रेणिका प्राप्त होना सम्भव नहीं है इसलिये यहाँ २१ प्रकृतिक संक्रमस्थानका जघन्य अन्तर एक समय नहीं प्राप्त होकर अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है जो अन्तर्मुहूर्तके भीतर दो बार अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनापूर्वक मिश्र गुणस्थान प्राप्त करानेसे घटित होता है। शेष कथन सुगम है।

§ ४०९. तिर्यञ्चोंमें २७, २६ और २३ प्रकृतियोंके संक्रामकका अन्तरकाल ओघके समान है। इसी प्रकार २१ प्रकृतियोंके संक्रामकका अन्तरकाल जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि इस स्थानका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। तथा २५ प्रकृतियोंके संक्रामकका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तीन पल्य है। इसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें जानना चाहिये। किन्तु अपनी-अपनी स्थिति कहनी चाहिये। पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त, मनुष्य अपर्याप्त और अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें तीन स्थानोंका अन्तर नहीं है।

विशेषार्थ—तिर्यञ्चोंमें २१ प्रकृतिक संक्रमस्थानका जघन्य अन्तर नरकगतिके समान प्राप्त होता है, इसलिये इसका ओघके समान निर्देश न करके अलगसे विधान किया है, क्योंकि तिर्यञ्चगतिमें भी उपशमश्रेणिकी प्राप्ति सम्भव न होनेसे यहाँ २१ प्रकृतिक संक्रमस्थानका जघन्य अन्तर एक समय घटित नहीं हो सकता है। जो २६ प्रकृतियोंकी सत्तावाला तिर्यञ्च जीव २५ प्रकृतियोंका संक्रमण कर रहा है उसने उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त करके २८ प्रकृतियोंकी सत्ता प्राप्त की। फिर वह सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना होनेके पूर्व ही तीन पल्यकी आयुवाले तिर्यञ्चोंमें उत्पन्न हुआ और वहाँ यथासम्भव अतिशीघ्र सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रमके अन्तिम समयमें उपशम सम्यक्त्वपूर्वक वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। फिर पल्यका असंख्यातवाँ भागप्रमाण काल रहने पर वह मिथ्यात्वमें गया और अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहने पर वह

१. आ०प्रतौ णाणाणं इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ४१०. मणुसतियस्स ओघो। णवरि जम्मि अद्धपोग्गलपरियट्टं तम्मि पुव्वकोडिपुधत्तं। जम्मि तेत्तीसं सागरोवमाणि तम्मि पुव्वकोडी देसूणा[1]। णवरि सत्तावीस-छव्वीस-पणुवीस-तेवीस-इगिवीससंका० पंचिंदियतिरिक्खभंगो।

§ ४११. देवाणं णारयभंगो। णवरि एक्कत्तीसं सागरोवमाणि देसूणाणि। एवं

पुनः उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। फिर जीवनके अन्तिम समयमें वह सासादनमें जाकर पच्चीस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया। इस प्रकार पच्चीस प्रकृतिक संक्रामकका उत्कृष्ट अन्तरकाल साधिक तीन पल्य प्राप्त होता है। यहाँ साधिकसे कितना काल लिया गया है इसका कहीं उल्लेख नहीं मिलता, इसलिये यहाँ हमने उसका निर्देश नहीं किया है। तथापि वह पल्यके असंख्यातवें भाग-प्रमाण होना चाहिये। पंचेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्त आदिमें विवक्षित संक्रमस्थानकी प्राप्ति दो बार सम्भव नहीं है, इसलिये यहाँ सम्भव संक्रमस्थानोंके अन्तरका निषेध किया है। शेष कथन सुगम है।

§ ४१०. मनुष्यत्रिकमें अन्तर ओघके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि जहाँ अर्धपुद्गलपरिवर्तनकालप्रमाण अन्तरकाल कहा है वहाँ पूर्वकोटिपृथक्त्वप्रमाण अन्तरकाल कहना चाहिये। और जहाँ तेतीस सागरप्रमाण अन्तरकाल कहा है वहाँ पर कुछ कम एक पूर्व-कोटिप्रमाण अन्तरकाल कहना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि सत्ताईस, छब्बीस, पच्चीस, तेईस और इक्कीस प्रकृतियोंके संक्रामकोंका अन्तर पंचेन्द्रियतिर्यञ्चोंके समान है।

विशेषार्थ—मनुष्य गतिमें सभी संक्रमस्थान सम्भव हैं। उनमेंसे यहाँ २२, २०, १४, १३, ११, १०, ८, ७, ५ और २ प्रकृतिक संक्रमस्थानोंका जघन्य अन्तर तो ओघके समान बन जाता है। किन्तु उत्कृष्ट अन्तर उपार्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण नहीं प्राप्त होता, क्योंकि मनुष्यकी कायस्थिति पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्य है। इसलिये मनुष्योंमें इन स्थानोंका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्वप्रमाण ही प्राप्त होता है, क्योंकि उक्त संक्रमस्थानोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल उपशमश्रेणिकी अपेक्षासे ही घटित किया जा सकता है। इसलिए ऐसे जीवको उत्तम भोगभूमिके मनुष्योंमें उत्पन्न कराना ठीक नहीं है। इसीसे मूलमें यह कहा है कि जिन स्थानोंका उत्कृष्ट अन्तर अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण कहा है उनका वह अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्वप्रमाण कहना चाहिये। इसी प्रकार यद्यपि मनुष्योंमें १९, १८, १२, ९, ६ और ३ इन संक्रमस्थानोंका जघन्य अन्तर भी ओघके समान बन जाता है। तथापि उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पूर्वकोटिवर्षप्रमाण ही प्राप्त होता है, क्योंकि उक्त संक्रमस्थान या तो क्षायिकसम्यग्दृष्टिके उपशमश्रेणिमें पाये जाते हैं या इनमेंसे कुछ स्थान क्षपकश्रेणिमें भी पाये जाते हैं। इसलिये एक पर्यायमें ही दो बार श्रेणिपर चढ़ाकर इन स्थानोंका यथाविधि अन्तर प्राप्त करना चाहिये। विधिका निर्देश पहले ही किया जा चुका है। इसीसे मूलमें यह कहा है कि जिन स्थानोंका उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर कहा है उनका वह अन्तर कुछ कम पूर्वकोटिवर्षप्रमाण कहना चाहिये। अब रहे २७, २६, २५, २३ और २१ प्रकृतिक संक्रमस्थान सो इनका अन्तर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान मनुष्योंमें भी बन जाता है, अतः मनुष्योंमें इनके इन स्थानोंके अन्तरकालको पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान जाननेकी सूचना की है। शेष कथन सुगम है।

§ ४११. देवोंका भंग नारकियोंके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि नारकियोंमें जहां कुछ कम तेतीस सागर उत्कृष्ट अन्तर कहा है वहां इनमें कुछ कम इकतीस सागर उत्कृष्ट

---

१. आ०प्रतौ पुव्वकोडिदेसूणाणि इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भवणादि जाव उवरिमगेवज्जा त्ति। णवरि सगट्ठिदी देसूणा। एवं जाव०।

❀ णाणाजीवेहि भंगविचओ।

§ ४१२. अहियारसंभालणसुत्तमेदं सुगमं। एत्थेव अट्ठपरूवणट्ठमुत्तरसुत्तमोइण्णं—

❀ जेसिं पयडीओ अत्थि तेसु पयदं।

§ ४१३. कुदो? अकम्मेहि अव्ववहारादो।

❀ सव्वजीवा सत्तावीसाए छव्वीसाए पणुवीसाए तेवीसाए एक्कवीसाए एदेसु पंचसु संकमट्ठाणेसु णियमा संकामगा।

§ ४१४. एत्थ सव्वजीवग्गहणमेदिस्से परूवणाए णाणाजीवविसयत्तपदुप्पायणफलं। सत्तावीसादिग्गहणमियरसंकमट्ठाणवुदासट्ठं। णियमग्गहणमणियमवुदासमुहेण पयदट्ठाणसंकामयाणं सव्वकालमत्थित्तजाणावणफलं। तदो एदेसिं पंचण्हं संकमट्ठाणाणं संकामया जीवा सव्वकालमत्थि त्ति भणिदं होइ।

अन्तर कहना चाहिये। इसी प्रकार भवनवासियोंसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंमें जानना चाहिये। किन्तु सर्वत्र कुछ कम अपनी स्थिति कहनी चाहिये। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये।

विशेषार्थ—देवोंमें नौ अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें अन्तर काल नहीं पाया जाता है, क्योंकि यहां पर जो भी संक्रमस्थान पाये जाते हैं उनका एक पर्यायमें दो बार पाया जाना सम्भव नहीं है। इसीसे सामान्य देवोंमें उत्कृष्ट अन्तर काल कुछ कम इकतीस सागरप्रमाण बतलाया है, क्योंकि यह अन्तरकाल नौ ग्रैवेयकतक ही पाया जाता है और उनकी उत्कृष्ट स्थिति इकतीस सागर ही है। शेष कथन सुगम है।

* अब नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचयका अधिकार है।

§ ४१२. अधिकारका निर्देश करनेवाला यह सूत्र सुगम है। अब इसी विषयमें अर्थपदका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र आया है—

* जिनके प्रकृतियोंका सत्त्व है उनका यहाँ अधिकार है।

§ ४१३. क्योंकि कर्मरहित जीवोंसे प्रयोजन नहीं है।

* सब जीव सत्ताईस, छब्बीस, पच्चीस, तेईस और इक्कीस इन पाँच संक्रमस्थानोंमें नियमसे संक्रामक हैं।

§ ४१४. यह प्ररूपणा नाना जीवविषयक है यह दिखलानेके लिये इस सूत्रमें 'सव्व जीव' पदका ग्रहण किया है। इतर संक्रमस्थानोंका निषेध करनेके लिये 'सत्तावीस' आदि पदोंका ग्रहण किया है। अनियमका निषेध करके प्रकृत संक्रमस्थानोंका सर्वकाल अस्तित्व रहता है इस बातका ज्ञान करानेके लिये 'नियम' पदका ग्रहण किया है। इसलिये इन पाँच संक्रमस्थानोंके संक्रामक जीव सर्वदा पाये जाते हैं यह इस सूत्रका भाव है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

❀ सेसेसु अट्ठारससु संकमट्ठाणेसु भजियव्वा ।

§ ४१५. कुदो ? तेसिमद्धुवभावित्तदंसणादो । एत्थ भंगपमाणमेदं—३८७४-२०४८९ । एवमोघो समत्तो ।

*** शेष अठारह संक्रमस्थानोंमें जीव भजनीय हैं ।**

§ ४१५. क्योंकि इन स्थानोंका अध्रुवपना देखा जाता है । यहाँ पर भंगोंका प्रमाण ३८७४२०४८६ है ।

विशेषार्थ—मोहनीय कर्मके २७ प्रकृतिक आदि जो तेईस संक्रमस्थान हैं उनमेंसे २७, २६, २५, २३ और २१ संक्रमस्थानवाले बहुतसे जीव संसारमें सर्वदा पाये जाते हैं, अतः ये पांचों ध्रुवस्थान हैं । तथा शेष स्थानोंकी अपेक्षा यदि हुए तो कभी एक और कभी अनेक जीव होते हैं, इसलिये वे अध्रुवस्थान हैं । अब इन सब स्थानोंके ध्रुव भंगके साथ एक संयोगी आदि कुल भंगोंके प्राप्त करने पर वे सब ३८७४२०४८६ होते हैं । यथा—

१	ध्रुव भंग जो २७, २६, २५, २३ और २१ संक्रमस्थानोंकी अपेक्षासे प्राप्त होता है
२	बाईस संक्रमस्थानके भंग
३	ध्रुवभंग सहित २२ संक्रमस्थानके भंग
३ × २ = ६	बीस संक्रमस्थानके प्रत्येक व संयोगी भंग
३ × ३ = ·	ध्रुवभंग सहित २२ व २० संक्रमस्थानके सब भंग
९ × २ = १८	उन्नीस संक्रमस्थानके प्रत्येक व संयोगी सब भंग
९ × ३ = २७	ध्रुवभंग सहित २३, २० व १९ संक्रमस्थानके सब भंग
२७ × २ = ५४	अठारह संक्रमस्थानके प्रत्येक व संयोगी सब भंग
२७ × ३ = ८१	ध्रुवभंग सहित २२, २०, १९ व १८ संक्रमस्थानके सब भंग
८१ × २=१६२	चौदह संक्रमस्थानके प्रत्येक व संयोगी सब भंग
८१ × ३=२४३	ध्रुवभंग सहित २२ से १४ तकके पूर्वोक्त संक्रमस्थानोंके सब भंग
२४३ × २=४८६	तेरह संक्रमस्थानके प्रत्येक व संयोगी सब भंग
२४३ × ३=७२९	ध्रुवभंग सहित २२ से १३ तकके पूर्वोक्त संक्रमस्थानोंके सब भंग
७२९ × ३=१४५८	बारह संक्रमस्थानके प्रत्येक व संयोगी भंग
७२९ × ३=२१८७	ध्रुवभंग सहित पूर्वोक्त २२ से १२ संक्रमस्थान तकके सब भंग
२१८७ × २=४३७४	ग्यारह संक्रमस्थानके प्रत्येक व संयोगी सब भंग
२१८७ × ३=६५६१	ध्रुवभंग सहित पूर्वोक्त २२ से ११ संक्रमस्थान तकके सब भंग
६५६१ × २=१३१२२	दस संक्रमस्थानके प्रत्येक व संयोगी सब भंग
६५६१ × ३=१९६८३	ध्रुवभंग सहित पूर्वोक्त २२ से १० संक्रमस्थान तकके सब भंग

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ४१६. संपहि आदेसपरूवणट्ठमुच्चारणं वत्तइस्सामो। आदेसेण णेरइयएसु पंचण्हं ट्ठाणाणं संका० णियमा अत्थि। एवं पढमपुढवि-तिरिक्ख३-देवा सोहम्मादि जाव

१९६८३ × २=३९३६६	नौसंक्रमस्थानके प्रत्येक व संयोगी सब भंग
१९६८३ × ३=५९०४९	ध्रुवभंग सहित पूर्वोक्त २२ से ९ संक्रमस्थान तकके सब भंग
५९०४९ × २=११८०९८	आठ संक्रमस्थानके प्रत्येक व संयोगी सब भंग
५९०४९ × ३=१७७१४७	ध्रुवभंग सहित पूर्वोक्त २२ से ८ संक्रमस्थान तकके सब भंग
१७७१४७ × २= ५४२९४	सात संक्रमस्थानके प्रत्येक व संयोगी सब भंग
१७७१४७ × ३=५३१४४१	ध्रुवभंग सहित पूर्वोक्त २२ से ७ संक्रमस्थान तकके सब भंग
५३१४४१ × २=१०६२८८२	छह संक्रमस्थानके प्रत्येक व संयोगी सब भंग
५३१४४१ × ३=१५९४३२३	ध्रुवभंग सहित पूर्वोक्त २२ से ६ संक्रमस्थान तकके सब भंग
१५९४३२३ × २=३१८८६४६	पाँच संक्रमस्थानके प्रत्येक व संयोगी सब भंग
१५९४३२३ × ३ = ४७८२९६९	ध्रुवभंग सहित पूर्वोक्त २२ से ५ संक्रमस्थान तकके सब भंग
४७८२९६९ × २ = ९५६५९३८	चार संक्रमस्थानके प्रत्येक व संयोगी सब भंग
४७८२९६९ × ३=१४३४८९०७	ध्रुव भंगसहित पूर्वोक्त २२से ४ संक्रमस्थान तकके सब भंग
१४३४८९०७ × २ = २८६९७८१४	तीन संक्रमस्थानके प्रत्येक व संयोगी सब भंग
१४३४८९०७ × ३ = ४३०४६७२१	ध्रुव भंगसहित पूर्वोक्त २२ से ३ संक्रमस्थान तकके सब भंग
४३०४६७२१ × २ = ८६०९३४४२	दो संक्रमस्थानके प्रत्येक व संयोगी सब भंग
४३०४६७२१ × ३ = १२९१४०१६३	ध्रुव भंगसहित पूर्वोक्त २२ से २ संक्रमस्थान तकके सब भंग
१२९१४०१६३ × २ = २५८२८०३२६	एक संक्रमस्थानके प्रत्येक व संयोगी सब भंग
१२९१४०१६३ × ३ = ३८७४२०४८९	ध्रुव भंगसहित पूर्वोक्त २२से १ संक्रमस्थान तकके सब भंग

सूचना—२१ संक्रमस्थानको प्रथम मानकर ये उत्तरोत्तर भंग लाये गये हैं। अतः आगे जो २० आदि एक एक संक्रमस्थानके भंग बतलाये गये हैं उनमें उस उस स्थानके प्रत्येक भंग और उस स्थान तकके सब स्थानोंके द्विसंयोगी आदि भंग सम्मिलित हैं। ये भंग विवक्षित स्थानसे पीछेके सब स्थानोंके भंगोंको दोसे गुणा करने पर उत्पन्न होते हैं। तथा इन भंगोंमें पीछे पीछेके स्थानोंके भंग मिला देने पर वहाँ तकके सब भंग होते हैं। ये भंग विवक्षित स्थानसे पीछेके सब स्थानोंके भंगोंको तीनसे गुणा करने पर उत्पन्न होते हैं। पश्चादानुपूर्वी या यत्रतत्रानुपूर्वीके क्रमसे भी ये भंग लाये जा सकते हैं।

इस प्रकार ओघ प्ररूपणा समाप्त हुई।

§ ४१६. अब आदेशका कथन करनेके लिए उच्चारणाको बतलाते हैं। आदेशसे नारकियोंमें पाँच संक्रमस्थानोंके संक्रामक जीव नियमसे हैं। इसी प्रकार प्रथम पृथिवी, तिर्यंचत्रिक, देव और सौधर्म कल्पसे लेकर नौ ग्रैवेयक तकके देवोंमें जानना चाहिए। दूसरी पृथिवीसे लेकर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णवगेवज्जा त्ति। विदियादि जाव सत्तमा त्ति एवं चेव। णवरि इगिवीससंकामया भयणिज्जा। भंगा ३। एवं जोणिणि०-भवण०-वाण०-जोदिसिएसु। पंचिंदियतिरिक्ख-अपज्ज० तिण्णि ट्ठाणाणि णियमा अत्थि। मणुसतिये ओघभंगो। मणुसअपज्ज० सव्वपद-संकामया भयणिज्जा। तत्थ भंगा २६। अणुदिसादि जाव सव्वट्ठा त्ति २७, २३, २१ संकामया णियमा अत्थि। एवं जाव।

§ ४१७. एत्थ ताव भागाभाग-परिमाण-खेत्त-फोसणाणं देसामासयसुत्तेणेदेण सूचिदाणमुच्चारणाणुगमं कस्सामो। तं जहा—भागाभाग० दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य[1]। ओघेण पणुवीससंकामया सव्वजीवाणमणंता भागा। सेससव्वपदसंकामया अणंतिमभागो। एवं तिरिक्खेसु। आदेसेण णेरइय० २५ संका० असंखेज्जा भागा। सेसमसंखे०भागो। एवं सव्वणेरइय-सव्वपंचिंदियतिरिक्ख-मणुस-मणुसअपज्ज[2]०-देवा जाव सहस्सार त्ति। मणुसपज्ज०-मणुसिणी० २५ पय० संका० संखेज्जा भागा। सेसं०

सातवीं पृथिवी तक भी इसी प्रकार जानना चाहिये। किन्तु यहाँ इक्कीस प्रकृतियोंके जीव भजनीय हैं, अतः ध्रुव भंगके साथ तीन भंग होते हैं। इसी प्रकार योनिनीतिर्यँच, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें जानना चाहिये। पंचेन्द्रिय तिर्यँच अपर्याप्तकोंमें तीन स्थानवाले जीव नियमसे हैं। मनुष्यत्रिकमें ओघके समान भंग हैं। मनुष्य अपर्याप्तकोंमें सब सम्भव पदोंके संक्रामक जीव भजनीय हैं। यहाँ भंग २६ होते हैं। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें २७, २३ और २१ प्रकृतिक संक्रमस्थानवाले जीव नियमसे हैं। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिये।

विशेषार्थ—दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकी, योनिनी तिर्यँच, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें २१ प्रकृतिक संक्रमस्थानके एक और नाना जीवोंकी अपेक्षा दो भंग होते हैं तथा इनमें शेष स्थानोंकी अपेक्षा एक ध्रुव भंग मिला देनेपर तीन भंग हो जाते हैं। लब्ध्यपर्याप्त मनुष्योंमें २७, २६ और २५ ये तीन संक्रमस्थान होते हैं जो कि भजनीय हैं, अतः इनके २६ भंग प्राप्त होते हैं। शेष कथन सुगम है। तीन स्थानोंके ध्रुवभंगको छोड़कर शेष २६ भंग किस प्रकार आते हैं इसका ज्ञान पूर्वमें कही गई संदृष्टिसे ही हो जाता है।

§ ४१७. यतः 'णाणाजीवेहि भंगविचओ' यह सूत्र देशामर्षक है, अतः इससे सूचित होनेवाले भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र और स्पर्शन इन अनुयोगद्वारोंकी उच्चारणाका अनुगम करते हैं। यथा—भागाभागानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा पच्चीस प्रकृतियोंके संक्रामक जीव सब जीवोंके अनन्त बहुभागप्रमाण हैं और शेष सब पदोंके संक्रामक जीव अनन्तवें भागप्रमाण हैं। इसी प्रकार तिर्यँचोंमें भागाभाग जानना चाहिये। आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें २५ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं। तथा शेष पदोंके संक्रामक जीव असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। इसी प्रकार सब नारकी, सब पंचेन्द्रिय तिर्यँच, मनुष्य, मनुष्य अपर्याप्त, देव और सहस्रार स्वर्ग तकके देवोंमें भागाभाग जानना चाहिये। मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें २५ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव संख्यात बहुभागप्रमाण हैं। तथा शेष पदोंके संक्रामक जीव संख्यातवें भागप्रमाण हैं। आनत

१. ता०प्रतौ ओघादेसभेदेण इति पाठः। अग्रेऽपि बाहुल्येन ता०प्रतौ एवमेव पाठः।

२. आ०प्रतौ तिरिक्खमणुसअपज्ज० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संखे०भागो। आणदादि जाव णवगेवज्जा त्ति २६ संका० असंखे०भागो। २७ संखेज्जा भागा। सेसं संखे०भागो। अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठा त्ति २७ संखेज्जा भागा। सेसं संखे०भागो। एवं जाव०।

§ ४१८. परिमाणाणु० दु० णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण २७, २६, २३, २१ संका० केत्तिया? असंखेज्जा। २५ संका० के०? अणंता। सेस० संका० संखेज्जा। आदेसेण णेरइय० सव्वपदसंका० असंखेज्जा। एवं सव्वणेरइय०-सव्वपंचिंदिय-तिरिक्ख-मणुसअपज्ज०-देवा जाव अवराइद त्ति। एवं तिरिक्खा०। णवरि २५ संका० अणंता। मणुसेसु २७, २६, २५ संका० असंखेज्जा। सेससंका० संखेज्जा। मणुसपज्ज०-मणुसिणीसु सव्वपदसंका० संखेज्जा। एवं सव्वट्ठे। एवं जाव०।

§ ४१९. खेत्ताणु० दुविहो णि०—ओघेण आदेसेण य। ओघेण पणुवीसंका० केवडि खेत्ते? सव्वलोगे। सेससंका० लोग० असंखे०भागे। एवं तिरिक्खा०। सेसमग्गणासु सव्वपदसंका०[1] लोग० असंखे०भागे। एवं जाव०।

कल्पसे लेकर नौ ग्रैवेयक तकके देवोंमें २६ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। २७ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव संख्यात बहुभागप्रमाण हैं। तथा शेष स्थानोंके संक्रामक जीव संख्यातवें भागप्रमाण हैं। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें २७ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव संख्यात बहुभागप्रमाण हैं। तथा शेष स्थानोंके संक्रामक जीव संख्यातवें भागप्रमाण हैं। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये।

§ ४१८. परिमाणानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघकी अपेक्षा २७, २६, २३ और २१ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव कितने हैं? असंख्यात हैं। २५ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव कितने हैं? अनन्त हैं। शेष संक्रमस्थानोंके संक्रामक जीव कितने हैं? संख्यात हैं। आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें सब पदोंके संक्रामक जीव असंख्यात हैं। इसी प्रकार सब नारकी, सब पंचेन्द्रिय तिर्यंच, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देव तथा अपराजित कल्प तकके देवोंमें जानना चाहिये। इसी प्रकार तिर्यंचोंमें जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें २५ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव अनन्त हैं। मनुष्योंमें २७, २६ और २५ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव असंख्यात हैं। तथा शेष पदोंके संक्रामक जीव संख्यात हैं। मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें सब पदोंके संक्रामक जीव संख्यात हैं। इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धिमें जानना चाहिए। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिये।

§ ४१९. क्षेत्रानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। ओघकी अपेक्षा पच्चीस प्रकृतियोंके संक्रामक जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं। सब लोकमें रहते हैं। तथा शेष पदोंके संक्रामक जीव लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं। इसी प्रकार तिर्यंचोंमें जानना चाहिये। शेष मार्गणाओंमें सब पदोंके संक्रामक जीव लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये।

---

१. ता०प्रतौ पदसंका०, आ०प्रतौ सव्वपदा संका० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ४२०. पोसणाणु० दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण २७, २६ संका० केव० फोसिदं ? लोग० असंखे०भागो अट्ठचोद्दस० सव्वलोगो वा। २५ संका० सव्वलोगो। २३, २१ लोग० असंखे०भागो अट्ठचोद्दस०। सेसं खेत्तभंगो।

§ ४२१. आदेसेण णेरइय० २७, २६, २५ संका० लोग० असंखे०भागो छचोद्दस० देसूणा। २३, २१ संका० खेत्तं। विदियादि जाव सत्तमा त्ति एवं णेय। णवरि सगपोसणं। पढमाए खेत्तभंगो।

§ ४२२. तिरिक्खेसु २७, २६ संका० लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा। २५ संका० खेत्तं। २३ लोग० असंखे०भागो छचोद्दस०। २१ लोग० असंखे०भागो पंचचोद्दस०भागा वा देसूणा। पंचिंदियतिरिक्खतिय० २७, २६, २५ संका० लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा। सेसं तिरिक्खोघं। पंचिं०तिरि०अपज्ज०-मणुस०अपज्ज०

विशेषार्थ—यद्यपि ऐसी कई मार्गणाएं हैं जिनमें २५ प्रकृतियोंके संक्रामकोंका क्षेत्र सब लोक प्राप्त होता है। तथापि यहां केवल तिर्यञ्चोंका ही निर्देश किया है सो इसका कारण यह है कि यहाँ सर्वत्र मुख्यतया चार गतियोंकी अपेक्षासे ही अनुयोगद्वारोंका वर्णन किया जा रहा है। और चार गतियोंमें तिर्यञ्चगतिके जीव ही ऐसे हैं जिनका क्षेत्र सब लोक है। इसीसे यहाँ तिर्यञ्चों-में ही ओघके समान पच्चीस प्रकृतिक संक्रमस्थानवाले जीवोंका क्षेत्र बतलाया है। शेष कथन सुगम है।

§ ४२०. स्पर्शनानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। ओघकी अपेक्षा २७ और २६ प्रकृतिक संक्रमस्थानवाले जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रका, त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। २५ प्रकृतिक संक्रमस्थानवाले जीवोंने सब लोकका स्पर्शन किया है। २३ और २१ प्रकृतिक संक्रमस्थानवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका व त्रसनालीके चौदह भागोंमें से कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा शेष पदोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है।

§ ४२१. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें २७, २६ और २५ प्रकृतिक संक्रमस्थानवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है तथा २३ और २१ प्रकृतिक संक्रमस्थानवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक इसी प्रकार जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि अपना अपना स्पर्शन कहना चाहिये। पहिली पृथिवीमें स्पर्शन क्षेत्रके समान है।

§ ४२२. तिर्यञ्चोंमें २७ और २६ प्रकृतिक संक्रमस्थानवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। २५ प्रकृतिक संक्रमस्थानवाले जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। २३ प्रकृतिक संक्रमस्थानवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग-प्रमाण क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छहभागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। २१ प्रकृतिक संक्रमस्थानवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम पाँच भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें २७, २६ और २५ प्रकृतिक संक्रमस्थानवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। शेष स्थानोंका स्पर्शन सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। पंचेन्द्रिय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिण्णिपदेहि लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा। मणुसतिए २७, २६, २५ संका० पंचिंदियतिरिक्खभंगो। सेसं खेत्तं।

§ ४२३. देवेसु २७, २६, २५ संका० लोग० असंखे०भागो अट्ठ-णवचोद्दस० देसूणा। २३, २१ संका० लोग० असंखे०भागो अट्ठचोद्दस० देसूणा। एवं सोहम्मीसाणे। एवं भवण०-वा०-जोदिसि०। णवरि सगफोसणं कायव्वं। सणक्कुमारादि जाव सहस्सार त्ति सव्वपदसंका० लोग० असंखे०भागो अट्ठचोद्दस० देसूणा। आणदादि जाव अच्चुदा त्ति सव्वपदेहि लोग० असंखे०भागो छचोद्दस० देसूणा। उवरि खेत्तभंगो। एवं जाव०।

§ ४२४. संपहि णाणाजीवसंबंधिकालपरूवणट्ठमुवरिमं चुण्णिसुत्तमाह—

❀ णाणाजीवेहि कालो।

§ ४२५. अहियारसंभालणसुत्तमेदं सुगमं।

❀ पंचण्हं ट्ठाणाणं संकामया सव्वद्धा।

§ ४२६. एत्थ पंचण्हं ट्ठाणाणमिदि वयणेण सत्तावीस-छव्वीस-पणुवीस-

---

तिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें तीन पदवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। मनुष्यत्रिकमें २७, २६ और २५ प्रकृतिक संक्रमस्थानवाले जीवोंका स्पर्शन पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है। तथा शेष पदोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है।

§ ४२३. देवोंमें २७, २६ और २५ प्रकृतिक संक्रमस्थानवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ व कुछ कम नौ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। २३ और २१ प्रकृतिक संक्रमस्थानवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार सौधर्म व ऐशान कल्पमें जानना चाहिये। तथा इसी प्रकार भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिष्क देवोंमें कहना चाहिये। किन्तु सर्वत्र अपना अपना स्पर्शन कहना चाहिये। सनत्कुमार कल्पसे लेकर सहस्रार कल्प तक सब पदोंके संक्रामक देवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। आनतसे लेकर अच्युत तक सब पदोंके संक्रामक देवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इससे आगेके देवोंमें स्पर्शन क्षेत्रके समान है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिये।

§ ४२४. अब नाना जीवसम्बन्धी कालका कथन करनेके लिये आगेका चूर्णिसूत्र कहते हैं—

❀ अब नाना जीवोंकी अपेक्षा कालका अधिकार है।

§ ४२५. अधिकारकी संम्हाल करनेवाला यह सूत्र सुगम है।

❀ पांच संक्रमस्थानोंके जीव सदा पाये जाते हैं।

§ ४२६. इस सूत्रमें जो 'पंचण्हं ट्ठाणाणं' वचन दिया है सो इससे सत्ताईस, छब्बीस, पच्चीस,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तेवीस-इगिवीससंकमट्ठाणाणं गहणं कायव्वं। तेसिं संकामया सव्वकालं होंति त्ति भणिदं होइ। संपहि सेसपदाणं कालणिद्धारणट्ठमुत्तरसुत्तावयारो—

❀ सेसाणं ट्ठाणाणं संकामया जहण्णेण एगसमओ,[1] उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।

§ ४२७. एत्थ सेसग्गहणेण बावीसादीणं संकमट्ठाणाणं गहणं कायव्वं। तेसिं[2] जहण्णकालो एयसमयमेत्तो, उवसमसेढिम्मि विवक्खियसंकमट्ठाणसंकामयत्तेणेय-समयं परिणदाणं केत्तियाणं पि जीवाणं बिदियसमए मरणपरिणामेण तदुवलंभादो। उक्कस्सकालो अंतोमुहुत्तं, तेसिं चेव विवक्खियसंकमट्ठाणसंकामयोवसामयाणमुवरिं[3] चढंताणमण्णेहि चढणोवयरणवावदेहिं अणुसंधिदसंताणाणमविच्छेदकालस्स समालंबणादो। णवरि तेरस-बारस-एक्कारस-दस-चदु-तिण्णि-दोण्णिसंकामयाणं खवगोवसामगे अस्सिऊण उक्कस्सकालपरूवणा कायव्वा। एत्थतणसेसग्गहणेण एक्किस्से वि संकमट्ठाणस्स गहणाइप्पसंगे तण्णिरायरणदुवारेण तत्थतणविसेसपदुप्पायणट्ठमुवरिमसुत्तमोइण्णं—

❀ णवरि एक्किस्से संकामया जहण्णुक्कस्सेणंतोमुहुत्तं।

तेईस और इक्कीस संक्रमस्थानोंका ग्रहण करना चाहिए। उनके संक्रामक जीव सर्वदा होते हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है। अब शेष पदोंके कालका निर्धारण करनेके लिए आगेके सूत्रका अवतार करते हैं—

*** शेष स्थानोंके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।**

§ ४२७. यहाँ पर शेष पदके ग्रहण करनेसे बाईस आदि संक्रमस्थानोंका ग्रहण करना चाहिए। उनका जघन्य काल एक समयमात्र है, क्योंकि उपशमश्रेणिमें विवक्षित संक्रमस्थानके संक्रमरूपसे एक समय तक परिणत हुए कितने ही जीवोंका दूसरे समयमें मरण हो जानेसे उक्त काल उपलब्ध होता है। उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है, क्योंकि विवक्षित संक्रमस्थानोंके संक्रामकभावसे उपशमश्रेणिपर चढ़नेवाले उन्हीं जीवोंका उपशमश्रेणिपर चढ़नेवाले अन्य जीवोंके साथ प्राप्त हुई परम्पराका विच्छेद नहीं होनेरूप कालका अवलम्बन लिया गया है। किन्तु इतनी विशेषता है कि तेरह, बारह, ग्यारह, दस, चार, तीन और दो स्थानोंके संक्रामकोंका क्षपक और उपशामक जीवोंके आश्रयसे उत्कृष्ट कालका कथन करना चाहिए। यहाँ पर सूत्रमें 'शेष' पदके ग्रहण करनेसे एक प्रकृतिक संक्रमस्थानका भी ग्रहण प्राप्त होने पर उसके निराकरण द्वारा उक्त स्थानसम्बन्धी विशेषताका कथन करनेके लिए आगेका सूत्र अवतरित हुआ है—

*** किन्तु इतनी विशेषता है कि एक प्रकृतिक स्थानके संक्रामकोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।**

---

१. ता०प्रतौ एगसमयं इति पाठः। २. आ०प्रतौ तेसिं च इति पाठः। ३. ता०प्रतौ –सामयाण-मुवरिं इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ४२८. एत्थ एक्किस्से संकामयाणं जहण्णकालो कोह-माणाणमण्णदरोदएण चढिदाणं मायासंकामयाणमणणुसंधिदसंताणाणमंतोमुहुत्तमेत्तो होइ। उक्कस्सकालो पुण मायासंकामयाणमणुसंधिदपवाहाणं होइ त्ति वत्तव्वं। एवमोघो समत्तो।

§ ४२९. आदेसेण णेरइय० सव्वपदसंका० सव्वद्धा। एवं पढमपुढवि-तिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खदुग-पंचिं०तिरि०अपज्ज०-देवगदिदेवा सोहम्मादि जाव सव्वट्ठसिद्धि त्ति। विदियादि जाव सत्तमा त्ति एवं चेव। णवरि २१ संका० जह० एयसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। एवं जोणिणी-भवण०-वाण०-जोदिसिया त्ति। मणुसतिए ओघभंगो। मणुसअपज्ज० सव्वपदाणं जह० एयसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। एवं जाव०।

❀ णाणाजीवेहि अंतरं।

४३०. सुगमं।

❀ बावीसाए तेरसण्हं बारसण्हं एक्कारसण्हं दसण्हं चदुण्हं तिण्हं दोण्हमेक्किस्से एदेसिं णवण्हं ठाणाणमंतरं केवचिरं कालादो होदि ?

§ ४३१. सुगमं।

❀ जहण्णेण एयसमओ, उक्कस्सेण छम्मासा।

§ ४२८. यहाँ पर एक प्रकृतिक संक्रामकोंका जघन्य काल क्रोध और मानमें से अन्यतर प्रकृतिके उदयसे चढ़े हुए तथा माया प्रकृतिका संक्रम करनेवाले जीवोंके प्राप्त हुए प्रवाहकी अपेक्षा किये बिना अन्तर्मुहूर्त होता है। परन्तु उत्कृष्ट काल अविच्छिन्न प्रवाहकी विवक्षासे माया प्रकृतिका संक्रम करनेवाले जीवोंके कहना चाहिये। इस प्रकार ओघ प्ररूपणा समाप्त हुई।

§ ४२९. आदेशसे नारकियोंमें सब पदोंके संक्रामक जीवोंका काल सर्वदा है। इसी प्रकार पहिली पृथिवी, सामान्य तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चद्विक, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त, देवगतिमें सामान्य देव और सौधर्म कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें जानना चाहिए। दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि २१ प्रकृतियोंके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इसी प्रकार योनिनी तिर्यञ्च, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें जानना चाहिए। मनुष्यत्रिकमें ओघके समान भङ्ग है। मनुष्य अपर्याप्तकोंमें सब पदोंके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

* अब नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरकालका अधिकार है।

§ ४३०. यह सूत्र सुगम है।

* बावीस, तेरह, बारह, ग्यारह, दस, चार, तीन, दो और एक प्रकृतिक इन नौ स्थानोंके संक्रामकोंका अन्तरकाल कितना है ?

§ ४३१. यह सूत्र सुगम है।

* जघन्य अंतर एक समय है और उत्कृष्ट अंतर छः महीना है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ४३२. बावीसाए ताव जहण्णेणेयसमओ, उक्क० छम्मासमेत्तमंतरं होइ, दंसणमोहक्खवणपट्ठवणाए णाणाजीवावेक्खजहण्णुक्कस्संतराणं तेत्तियमेत्तपरिमाणाणमुवलंभादो। एवं तेरसादीणं पि वत्तव्वं, खवयसेढीए लद्धसरूवाणमेदेसिं णाणाजीवावेक्खाए जहण्णुक्कस्संतराणं तप्पमाणाणमुवलद्धीदो। एत्थ चोदओ भणइ—णेदं घडदे, एक्कारसण्हं चउण्हं च सादिरेयवस्समेत्तुक्कस्संतरदंसणादो। तं जहा—एक्कारसण्हं ताव पुरिसवेदोदएण खवयसेढिमारूढस्स आणुपुव्वीसंकमाणंतरं णवुंसयवेदक्खवणाए परिणदस्स णाणाजीवसमूहस्स एक्कारससंकमो होइ। पुणो इत्थिवेदक्खवणाए अंतरिय छम्मासमंतरमणुपालिय तदवसाणे णवुंसयवेदोदए सेढिमारूढस्स णवुंसय-इत्थिवेदा अक्कमेण खीयंति त्ति एक्कारससंकमाणुप्पत्तीए दसण्हं संकमो समुप्पज्जइ। तदो एत्थ वि छम्मासमंतरं लब्भइ। पुणो इत्थिवेदोदएण चढिदस्स णवुंसयवेदे खीणे पच्छा अंतोमुहुत्तेणित्थिवेदो खीयदि त्ति तत्थेक्कारससंकमस्स लद्धमंतरं होइ। तदो एक्कारससंकामयस्स वासं सादिरेयमुक्कस्संतरं लब्भइ। पुरिसवेदोदएण खवगसेढिं चढिदस्स छण्णोकसायक्खवणाणंतरं चउण्हं संकामयस्सादिं कादूण तदो पुरिसवेदं खविय छम्मासमंतरिय इत्थिवेदोदएण चढिदस्स सत्तणोकसाया जुगवं परिक्खीयंति चदुण्णमणुप्पत्तीए पुणो वि छम्मासमेत्तमंतरं

---

§ ४३२. बाईस प्रकृतिक संक्रमस्थानका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर छः महीना है, क्योंकि दर्शनमोहनीयकी क्षपणाकी प्रस्थापनामें नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर उक्त प्रमाण पाया जाता है। इसी प्रकार तेरह प्रकृतिक आदि संक्रमस्थानोंका भी अन्तरकाल कहना चाहिए, क्योंकि क्षपकश्रेणिमें प्राप्त हुए इन स्थानोंका नाना जीवोंकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर तत्प्रमाण उपलब्ध होता है।

शंका—यहाँ पर शंकाकार कहता है कि यह कथन नहीं बनता, क्योंकि ग्यारह और चार प्रकृतिक स्थानोंका साधिक एक वर्षप्रमाण उत्कृष्ट अन्तर देखा जाता है। यथा—पुरुषवेदके उदयसे क्षपकश्रेणिपर चढ़े हुए तथा आनुपूर्वी संक्रमके बाद नपुंसकवेदकी क्षपणा करनेवाले नाना जीवसमूहके ग्यारह प्रकृतिक संक्रमस्थान होता है। पुनः स्त्रीवेदकी क्षपणाका अन्तर देकर और छः माह तक अन्तरका पालनकर उसके अन्तमें नपुंसकवेदके उदयसे श्रेणिपर चढ़े हुए जीवके स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका युगपत् क्षय होता है, इसलिए ग्यारह प्रकृतिक संक्रमस्थानकी उत्पत्ति न होकर दस प्रकृतिक संक्रमस्थान उत्पन्न होता है। इसलिये यहाँ पर भी छह माहप्रमाण अन्तर पाया जाता है। फिर स्त्रीवेदके उदयसे क्षपकश्रेणि पर चढ़े हुए नाना जीवोंके नपुंसकवेदका क्षय हो जानेपर अन्तर्मुहूर्तके बाद स्त्रीवेदका क्षय होता है, इसलिये यहाँ पर ग्यारह प्रकृतिक संक्रमस्थानका अन्तर प्राप्त हो जाता है। अतः ग्यारह प्रकृतिक संक्रमस्थानका उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्ष प्राप्त होता है। तथा जो नाना जीव पुरुषवेदके उदयसे क्षपकश्रेणि पर चढ़े हैं उनके छह नोकषायोंका क्षय होने पर चार प्रकृतिक संक्रमस्थानका प्रारम्भ होता है। फिर पुरुषवेदका क्षय करके और छह माहका अन्तर प्राप्त करके स्त्रीवेदके उदयसे क्षपकश्रेणि पर चढ़ने पर सात नोकषायोंका एक साथ क्षय होता है। यहाँ पर चार प्रकृतिक संक्रमस्थानकी उत्पत्ति नहीं होनेसे फिर भी छह माहप्रमाण अन्तर

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

होइ। एवं णवुंसयवेदोदएण चढिदस्स वि णाणाजीवसमूहस्स छम्मासंतरसमुप्पत्ती वत्तव्वा। पुणो पुरिसवेदोदएण चढाविदे लद्धमंतरं होइ त्ति चउण्हं पि वासं सादिरेयं उक्कस्संतरभावेण लब्भइ। तदो एदेसिं छम्मासमेत्तंतरपरूवयं सुत्तमिदं ण जुत्तमिदि ? ण, पुरिसवेदोदयक्खवयस्स सुत्ते विवक्खियत्तादो। णवुंसय-इत्थिवेदोदयक्खवयाणं किमट्ठमविवक्खा कया ? ण, बहुलमप्पसत्थवेदोदएण खवयसेढिसमारोहणसंभवाभावपदुप्पायणट्ठं सुत्ते तदविवक्खाकरणादो।

§ ४३३. संपहि उत्तसेसाणमद्धुवभाविसंकमट्ठाणाणमंतरगवेसणट्ठमुवरिमसुत्तावयारो—

❀ सेसाणं णवण्हं संकमट्ठाणाणमंतरं केवचिरं कालादो होइ ?

§ ४३४. सुगमं।

❀ जहण्णेण एयसमओ, उक्कस्सेण संखेज्जाणि वस्साणि।

§ ४३५. एत्थ सेसग्गहणेण २०, १९, १८, १४, ९, ८, ७, ६, ५, एदेसिं संकमट्ठाणाणं संगहो कायव्वो। णवग्गहणेण वि उवरिमसुत्ते भणिस्समाणधुवभावित्तसंकमट्ठाणवुदासो दट्ठव्वो। एदेसिं च उवसमसेढिसंबंधीणं जह० एयसमओ, उक्क०

प्राप्त हो जाता है। इसी प्रकार जो नाना जीव नपुंसकवेदके उदयसे क्षपकश्रेणि पर चढ़ते हैं उनकी अपेक्षा भी छह माहप्रमाण अन्तरकी उत्पत्ति कहनी चाहिये। फिर पुरुषवेदके उदयसे क्षपकश्रेणि पर चढ़ाने पर अन्तर प्राप्त होता है। इस प्रकार चार प्रकृतिक संक्रमस्थानका भी उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्ष प्राप्त होता है, इसलिये इन दोनों स्थानोंके छह माहप्रमाण उत्कृष्ट अन्तरका कथन करनेवाला यह सूत्र युक्त नहीं है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि सूत्रमें पुरुषवेदकी क्षपणा करनेवाले नाना जीव विवक्षित हैं, इसलिए इस अपेक्षासे उक्त स्थानोंका उत्कृष्ट अन्तर छह माहप्रमाण ही प्राप्त होता है।

शंका—यहां पर नपुंसकवेद और स्त्रीवेदके उदयसे क्षपकश्रेणि पर चढ़े हुए जीवोंकी अविवक्षा क्यों की गई है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि अधिकतर अप्रशस्त वेदके उदयसे क्षपकश्रेणिपर चढ़ना सम्भव नहीं है इस बातका कथन करनेके लिये सूत्रमें उक्त जीवोंकी अविवक्षा की गई है।

§ ४३३. अब उक्त संक्रमस्थानोंसे जो शेष अध्रुव संक्रमस्थान बचे हैं उनके अन्तरकालका विचार करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

*** शेष नौ संक्रमस्थानोंका अन्तरकाल कितना है ?**

§ ४३४. यह सूत्र सुगम है।

*** जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल संख्यात वर्ष है।**

§ ४३५. इस सूत्रमें 'शेष' पदके ग्रहण करनेसे २०, १९, १८, १४, ९, ८, ७, ६, और ५ इन संक्रमस्थानोंका संग्रह करना चाहिये। तथा 'णव' पदके ग्रहण करनेसे अगले सूत्रमें जो ध्रुव भावको प्राप्त हुए संक्रमस्थान कहे जानेवाले हैं उनका निराकरण हो जाता है ऐसा यहां जानना चाहिये। उपशमश्रेणिसम्बन्धी इन स्थानोंका जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वासपुधत्तमेत्तमंतरं होइ, तदारोहणविरहकालस्स तेत्तियमेत्तस्स णिव्वाहमुवलद्धीदो। सुत्ते संखेज्जवस्सग्गहणेण वासपुधत्तमेत्तकालविसेसपडिवत्ती। कुदो ? अविरुद्धाइरियवक्खाणादो।

❀ जेसिमविरहिदकालो तेसिं णत्थि अंतरं।

§ ४३६. सुगममेदं सुत्तं।

एवमोघो समत्तो।

§ ४३७. आदेसेण णेरइयसव्वपदाणं णत्थि अंतरं, णिरंतरं। एवं पढमपुढवि-तिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्ख२-पंचिं०तिरि०अपज्ज०-देवगदिदेवा सोहम्मादि जाव सव्वट्ठा त्ति। विदियादि सत्तमा त्ति एवं चेव। णवरि २१ जह० एयसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे०-भागो। एवं जोणिणी-भवण०-वाण०-जोदिसि०। मणुसतिए ओघं। णवरि मणुसिणी० वासपुधत्तं। मणुसअपज्ज० सव्वपदसंका० जह० एयसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे०-भागो। एवं जाव०।

❀ सण्णियासो णत्थि।

§ ४३८. कुदो ? एक्कम्मि संकमट्ठाणे णिरुद्धे सेससंकमट्ठाणाणं तत्थासंभवादो।

§ ४३९. भावो सव्वत्थ ओदइओ भावो।

काल वर्षपृथक्त्व है, क्योंकि उपशमश्रेणिका विरहकाल निर्बाधरीतिसे इतना ही पाया जाता है। अर्थात् अधिकसे अधिक इतने कालतक जीव उपशमश्रेणिपर नहीं चढ़ते हैं। सूत्रमें जो 'संखेज्जवस्स' पदका ग्रहण किया है सो इससे वर्षपृथक्त्वप्रमाण कालविशेषका ज्ञान होता है, क्योंकि अन्य आचार्योंने उपशमश्रेणिका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व ही बतलाया है, अतः यह व्याख्यान उसके अविरुद्ध है।

*** जिनका विरहकाल नहीं पाया जाता उन स्थानोंका अन्तर नहीं है।**

§ ४३६. यह सूत्र सुगम है।

इस प्रकार ओघप्ररूपणा समाप्त हुई।

§ ४३७. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें सब पदोंका अन्तर नहीं है, वे वहाँ निरन्तर पाये जाते हैं। इसी प्रकार प्रथम पृथिवीके नारकी, तिर्यञ्च, पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चद्विक, पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त, देवगतिमें देव और सौधर्म कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें जानना चाहिये। दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवीतक भी इसी प्रकार जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि यहाँ पर २१ प्रकृतिक संक्रमस्थानका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इसी प्रकार योनिनी तिर्यञ्च, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें जानना चाहिये। मनुष्यत्रिकमें अन्तर ओघके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्यनीके वर्षपृथक्त्व अन्तर कहना चहिये। मनुष्य अपर्याप्तकोंमें सब पदोंके संक्रामकोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये।

संक्रमस्थानोंका सन्निकर्ष नहीं है।

§ ४३८. क्योंकि एक संक्रमस्थानके रहते हुए वहाँ पर शेष संक्रमस्थानोंका पाया जाना सम्भव नहीं है।

§ ४३९. भाव सर्वत्र औदयिक है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

❀ अप्पाबहुअं ।

§ ४४०. एत्तो पत्तावसरमप्पाबहुअं परूवइस्सामो त्ति पइज्जासुत्तमेदं ।

❀ सव्वत्थोवा णवण्हं संकामया ।

§ ४४१. कुदो एदेसिं थोवत्तं णव्वदे ? थोवकालसंचिदत्तादो । तं कधं ? इगिवीससंतकम्मिओ उवसमसेढिं चढिय दुविहं कोहं कोहसंजलणचिराणसंतेण सह उवसामिय तण्णवकबंधमुवसामेंतो समऊणदोआवलियमेत्तकालं णवण्हं संकामओ होइ । तदो थोवकालसंचिदत्तादो थोवयरत्तमेदेसिं सिद्धं ।

❀ छण्हं संकामया तत्तिया चेव ।

§ ४४२. कुदो ? माणसंजलणणवकबंधोवसामणापरिणदाणमिगिवीससंतकम्मिओवसामयाणं समऊणदोआवलियमेत्तकालसंचिदाणमिहावलंबणादो । एदेसिं च दोण्हं रासीणं सरिसत्तं चढमाणरासिं पहाणं कादूण भणिदं, ओयरमाणरासिस्स विवक्खाभावादो । तम्हि विवक्खिय छसंकामएहिंतो णवसंकामयाणमद्धाविसेसेण विसेसाहियत्तदंसणादो ।

❀ चोद्दसण्हं संकामया संखेज्जगुणा ।

४४३. जइ वि एदे वि समऊणदोआवलियमेत्तकालसंचिदा तो वि संखेज्जगुणत्त-

---

※ अब अल्पबहुत्वका अधिकार है ।

§ ४४०. अब इससे आगे अवसर प्राप्त अल्पबहुत्वको बतलाते हैं । इस प्रकार यह प्रतिज्ञासूत्र है ।

※ नौ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव सबसे थोड़े हैं ।

§ ४४१. शंका—इनकी अल्पता कैसे जानी जाती है ?

समाधान—क्योंकि इनका अल्पकालमें संचय होता है । यथा—इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव उपशमश्रेणिपर चढ़ कर क्रोध संज्वलनके प्राचीन सत्तामें स्थित सत्कर्मके साथ दो प्रकारके क्रोधका उपशम करके उसके नवकबन्धका उपशम करता हुआ एक समयकम दो आवलि कालतक नौ प्रकृतियोंका संक्रामक होता है, इसलिये थोड़े कालमें संचय होनेसे ये जीव थोड़े होते हैं यह बात सिद्ध हुई ।

※ उनसे छह प्रकृतियोंके संक्रामक जीव उतने ही हैं ।

§ ४४२. क्योंकि जो इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक जीव मान संज्वलनके नवकबन्धका उपशम कर रहे हैं जो कि एक समय कम दो आवलि कालके भीतर संचित होते हैं उनका यहाँ अवलम्बन लिया गया है । किन्तु इन दोनों राशियोंकी समानता उपशमश्रेणिपर चढ़नेवाली राशिकी प्रधानतासे कही गई है, क्योंकि यहाँ उपशमश्रेणिसे उतरनेवाली राशिकी विवक्षा नहीं है । यदि उतरनेवाले जीवोंकी प्रधानतासे विचार किया जाता है तो छह प्रकृतियोंके संक्रामकोंसे नौ प्रकृतियोंके संक्रामकोंका अधिक काल होनेके कारण वे विशेष अधिक देखे जाते हैं ।

※ उनसे चौदह प्रकृतियोंके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं ।

§ ४४३. यद्यपि ये भी एक समय कम दो आवलिप्रमाण कालके भीतर संचित होते हैं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मेदेसिं ण विरुज्झदे, इगिवीससंतकम्मिओवसामएहिंतो चउवीससंतकम्मिओवसामयाणं[1] संखेज्जगुणत्तदंसणादो ।

❀ पंचण्हं संकामया संखेज्जगुणा ।

§ ४४४. कुदो ? इगिवीस–चउवीससंतकम्मिओवसामयाणमंतोमुहुत्तसमयूणदोआवलियसंचिदाणमिहोवलंभादो ।

❀ अट्ठण्हं संकामया विसेसाहिया ।

§ ४४५. किं कारणं ? इगिवीससंतकम्मियोवसामयस्स दुविहमायोवसामणकालादो दुविहमाणोवसामणद्धाए विसेसाहियत्तदंसणादो चउवीससंतकम्मिओवसामगसमऊणदोआवलिसंचयस्स उहयत्त समाणत्तदंसणादो च ।

❀ अट्ठारसण्हं संकामया विसेसाहिया ।

§ ४४६. एत्थ वि कारणं माणोवसामणद्धादो विसेसाहियकोहोवसामणद्धादो वि छण्णोकसाओवसामणकालस्स विसेसाहियत्तं दट्ठव्वं ।

❀ एगूणवीसाए संकामया विसेसाहिया ।

§ ४४७. एत्थ वि कारणमित्थिवेदोवसामणाकालस्स छण्णोकसायोवसामणद्धादो विसेसाहियत्तमणुगंतव्वं ।

तो भी ये संख्यातगुणे होते हैं यह बात विरोधको नहीं प्राप्त होती, क्योंकि प्रकृतमें इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक जीवोंसे चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक जीव संख्यातगुणे देखे जाते हैं ।

* उनसे पाँच प्रकृतियोंके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं ।

§ ४४४. क्योंकि, अन्तर्मुहूर्त कालमें संचित हुए इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक जीवोंका और एक समयकम दो आवलि कालमें संचित हुए चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक जीवोंका यहाँपर ग्रहण किया है ।

* उनसे आठ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं ।

§ ४४५. क्योंकि इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक जीवोंके दो प्रकारकी मायाके उपशामन कालसे दो प्रकारके मानका उपशामन काल विशेष अधिक देखा जाता है । तथा चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामकोंके एक समय कम दो आवलि कालके भीतर होनेवाला संचय उभयत्र समान देखा जाता है ।

* उनसे अठारह प्रकृतियोंके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं ।

§ ४४६. यहाँ विशेष अधिकका कारण यह है कि मानके उपशामन कालसे विशेष अधिक जो क्रोधका उपशामन काल है उससे भी छह नोकषायोंका उपशामन काल विशेष अधिक देखा जाता है ।

* उनसे उन्नीस प्रकृतियोंके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं ।

§ ४४७. यहाँ भी छह नोकषायोंके उपशामन कालसे स्त्रीवेदका उपशामन काल विशेष अधिक होता है यह कारण जानना चाहिये ।

---

१. ता०प्रतौ –सामयाणं इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

❀ चउण्हं संकामया संखेज्जगुणा ।

§ ४४८. कुदो ? संगतोभाविदचदुसंकामयखवयदुविहलोहसंकामयचउवीससंतकम्मिओवसामयरासिस्स पहाणत्तोवलंभादो। तदो जइ वि पुव्विल्लसंचयकालादो एत्थतणसंचयकालो विसेसहीणो तो वि चउवीससंतकम्मियरासिमाहप्पादो संखेज्जगुणो त्ति सिद्धं ।

❀ सत्तण्हं संकामया विसेसाहिया ।

§ ४४९. चउवीससंतकम्मिओवसामयदुविहलोहोवसामणकालादो विसेसाहियदुविहमायोवसामणकालसंचिदत्तादो ।

❀ वीसाए संकामया विसेसाहिया ।

§ ४५०. जइ वि दोण्हमेदेसिं चउवीससंतकम्मिया संकामया तो वि सत्तसंकामयकालादो वीससंकामयकालस्स छण्णोकसायोवसामणद्धपडिबद्धस्स विसेसाहियत्तमस्सिऊण तत्तो एदेसिं विसेसाहियत्तमविरुद्धं ।

❀ एक्किस्से संकामया संखेज्जगुणा ।

§ ४५१. कुदो ? मायासंकामयखवयरासिस्स अंतोमुहुत्तकालसंचिदस्स विवक्खियत्तादो ।

---

* उनसे चार प्रकृतियोंके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं ।

§ ४४८. क्योंकि यहाँ पर चार प्रकृतियोंके संक्रामक क्षपक जीवोंके साथ दो प्रकारके लोभका संक्रम करनेवाले चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक जीवोंकी प्रधानता स्वीकार की गई है। इसलिए यद्यपि पूर्वोक्त स्थानके संचयकालसे इस स्थानका संचय काल विशेष हीन होता है तो भी चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाली राशिकी प्रधानतासे पूर्वोक्त राशिसे यह राशि संख्यातगुणी है यह बात सिद्ध है।

* उनसे सात प्रकृतियोंके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं ।

§ ४४९. क्योंकि जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले उपशामक जीव दो प्रकारके लोभका उपशम कर रहे हैं उनके दो प्रकारके लोभके उपशम कालसे विशेष अधिक जो दो प्रकारकी मायाका उपशम काल है उसमें संचित हुए जीव यहाँ पर लिये गये हैं।

* उनसे बीस प्रकृतियोंके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं ।

§ ४५०. यद्यपि ७ और २० इन दोनों स्थानोंके संक्रामक जीव चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले होते हैं तो भी सात प्रकृतियोंके संक्रामकके कालसे बीस प्रकृतियोंके संक्रामकका काल छह नोकषायोंके उपशामनाकालसे सम्बन्ध रखनेवाला होनेके कारण विशेष अधिक होता है इसलिये सात प्रकृतियोंके संक्रामक जीवोंसे बीस प्रकृतियोंके संक्रामक जीव विशेष अधिक होते हैं यह बात अविरुद्ध है।

* उनसे एक प्रकृतिके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं ।

§ ४५१. क्योंकि मायाकी संक्रामक जो क्षपकराशि अन्तर्मुहूर्त कालके भीतर संचित होती है वह यहाँ विवक्षित है।

---

१. आ०प्रतौ –सामणद्धा पडिबद्धा सविसेसाहियत्त इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

❀ दोण्हं संकामया विसेसाहिया ।

§ ४५२. एक्किस्से संकमणकालादो दोण्हं संकामयकालस्स विसेसाहियत्तोव-लद्धीदो ।

❀ दसण्हं संकामया विसेसाहिया ।

§ ४५३. माणसंजलणखवणद्धादो विसेसाहियछण्णोकसायक्खवणद्धाए लद्ध-संचयत्तादो ।

❀ एक्कारसण्हं संकामया विसेसाहिया ।

§ ४५४. छण्णोकसायक्खवणद्धादो सादिरेयइत्थिवेदक्खवणद्धासंचयस्स संगहादो।

❀ बारसण्हं संकामया विसेसाहिया ।

§ ४५५. तत्तो विसेसाहियणवुंसयवेदक्खवणद्धाए संकलिदसरूवत्तादो[1] ।

❀ तिण्हं संकामया संखेज्जगुणा ।

§ ४५६. अस्सकण्णकरणकिट्टीकरण-कोहकिट्टीवेदगकालपडिबद्धाए तिण्हं संका-मणद्धाए णवुंसयवेदक्खवणकालादो[2] किंचूणतिगुणमेत्ताए संकलिदसरूवत्तादो ।

❀ तेरसण्हं संकामया संखेज्जगुणा ।

---

* उनसे दो प्रकृतियोंके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं ।

§ ४५२. क्योंकि एक प्रकृतिके संक्रमकालसे दो प्रकृतियोंका संक्रमकाल विशेष अधिक उपलब्ध होता है ।

* उनसे दस प्रकृतियोंके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं ।

§ ४५३. क्योंकि मानसंज्वलनके क्षपणाकालसे जो विशेष अधिक छह नोकषायोंका क्षपण-काल है । उसमें इनका संचय प्राप्त होता है ।

* उनसे ग्यारह प्रकृतियोंके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं ।

§ ४५४. क्योंकि छह नोकषायोंके क्षपणाकालसे साधिक स्त्रीवेदके क्षपणाकालमें संचित हुए जीवोंका यहाँ संग्रह किया गया है ।

* उनसे बारह प्रकृतियोंके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं ।

§ ४५५. क्योंकि स्त्रीवेदके क्षपणाकालसे विशेष अधिक नपुंसकवेदके क्षपणाकालमें इनका संचय होता है ।

* उनसे तीन प्रकृतियोंके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं ।

§ ४५६. क्योंकि जो तीन प्रकृतियोंका संक्रमकाल है वह अश्वकर्णकरणकाल, कृष्टीकरण काल और क्रोधकृष्टिवेदककाल इन तीनोंसे सम्बद्ध है जो कि नपुंसकवेदके क्षपणाकालसे कुछ कम तिगुना है, अतः इसमें संचित हुए जीव संख्यातगुणे होते हैं ।

* उनसे तेरह प्रकृतियोंके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं ।

---

१. ता०-आ०प्रत्योः संगलिदसरूवत्तादो इति पाठः । २. आ०प्रतौ -वेदे क्खवणकालादो इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ४५७. अट्ठकसाएसु खविदेसु जावाणुपुव्वीसंकमो णाढविज्जइ ताव पुव्विल्ल-कालादो संखेज्जगुणकालम्मि संचिदत्तादो ।

❀ बावीससंकामया संखेज्जगुणा ।

§ ४५८. दंसणमोहक्खवगो मिच्छत्तं खविय जाव सम्मामिच्छत्तं ण खवेइ ताव पुव्विल्लद्धादो संखेज्जगुणभूदम्मि कालेण एदेसिं संचिदसरूवाणमुवलंभादो ।

❀ छव्वीसाए संकामया असंखेज्जगुणा ।

§ ४५९. कुदो ? सम्मत्तमुव्वेल्लिय सम्मामिच्छत्तमुव्वेल्लेमाणस्स कालो पलिदोव-मासंखेज्जभागमेत्तो । तत्थ संचिदजीवरासिस्स[1] पलिदो० असंखे०भागमेत्तस्स पढम-सम्मत्तग्गहणपढमसमयवट्टमाणजीवेहि सह गहणादो ।

❀ एक्कवीसाए संकामया असंखेज्जगुणा ।

§ ४६०. कुदो ? वेसागरोवमकालसंचिदखइयसम्माइट्ठिरासिस्स पहाणभावेण इह ग्गणादो । को गुणगारो ? आवलि० असंखे०भागो ।

❀ तेवीसाए संकामया असंखेज्जगुणा ।

§ ४६१. कुदो ? छावट्ठिसागरोवमकालब्भंतरसंचिदत्तादो । जइ एवं संखेज्जगुणत्तं

---

§ ४५७. क्योंकि आठ कषायोंका क्षय होने पर जब तक आनुपूर्वी संक्रमका प्रारम्भ नहीं किया जाता है तब तक पूर्वोक्त स्थानके कालसे यह काल संख्यातगुणा हो जाता है, इसलिये इस कालमें संचित हुए जीव भी संख्यातगुणे होते हैं ।

❀ उनसे बाईस प्रकृतियोंके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं ।

§ ४५८. क्योंकि जो दर्शनमोहनीयका क्षपक जीव मिथ्यात्वका क्षय करके जब तक सम्यग्मिथ्यात्वका क्षय नहीं करता है तब तक पूर्वोक्त स्थानके कालसे इस स्थानका काल संख्यातगुणा होता है, इसलिये इस काल द्वारा जो इन जीवोंका संचय होता है वह संख्यातगुणा उपलब्ध होता है ।

❀ उनसे छब्बीस प्रकृतियोंके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं ।

§ ४५९. क्योंकि सम्यक्त्वकी उद्वेलना करके सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करनेवाले जीवका काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है, इसलिये उस कालके भीतर पल्यकी असंख्यातवें भागप्रमाण जीवराशिका संचय पाया जाता है उसका यहाँ पर प्रथम सम्यक्त्वको ग्रहण करके उसके प्रथम समयमें विद्यमान जीवराशिके साथ ग्रहण किया है ।

❀ उनसे इक्कीस प्रकृतियोंके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं ।

§ ४६०. क्योंकि यहाँ पर दो सागर कालके भीतर संचित हुई क्षायिकसम्यग्दृष्टि राशिका प्रधानरूपसे ग्रहण किया है । गुणकार क्या है ? गुणकार आवलिका असंख्यातवाँ भाग है ।

❀ उनसे तेईस प्रकृतियोंके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं ।

§ ४६१. क्योंकि इनका छयासठ सागर कालके भीतर संचय होता है ।

---

१. आ०प्रतौ संचिदा जीवरासिस्स इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पसज्जदे, कालगुणयारस्स तहाभावोवलंभादो त्ति ? ण एस दोसो, उवक्कममाणजीव-पाहम्मेण असंखेज्जगुणत्तासिद्धीदो । तं जहा—खइयसम्माइट्ठीणमेयसमयसंचओ संखेज्ज-जीवमेत्तो । चउवीससंतकम्मिया पुण उक्कस्सेण पलिदो० असंखे०भागमेत्ता एयसमए उवक्कमंता लब्भंति । तम्हा तेहिंतो एदेसिमसंखे०गुणत्तमविरुद्धमिदि । एत्थ वि गुणयारो पलिदो० असंखे०भागमेत्तो ।

❀ सत्तावीसाए संकामया असंखेज्जगुणा ।

§ ४६२. एत्थ वि गुणगारपमाणमावलि० असंखे०भागमेत्तं । कुदो ? अट्ठावीस-संतकम्मियसम्माइट्ठि-मिच्छाइट्ठीणमिह[1] ग्गहणादो ।

❀ पणुवीससंकामया अणंतगुणा ।

§ ४६३. किंचूणसव्वजीवरासिस्स पणुवीससंकामयत्तेण विवक्खियत्तादो ।

एवमोघाणुगमो समत्तो ।

§ ४६४. एत्तो आदेसपरूवणं देसामासियसुत्तसूचिदं वत्तइस्सामो । तं जहा—आदेसेण णेरइय० सव्वत्थोवा २६ संका० । २१ संका० असंखे०गुणा । २३ संका०

शंका—यदि ऐसा है तो पूर्वोक्त राशिसे यह राशि संख्यातगुणी प्राप्त होती है, क्योंकि कालगुणाकार उतना उपलब्ध होता है ?

समाधान—यह कोई दोष नहीं है, क्योंकि उपक्रममाण जीवोंकी प्रधानतासे पूर्वोक्त राशिसे यह राशि असंख्यातगुणी सिद्ध होती है । खुलासा इस प्रकार है—एक समयमें क्षायिकसम्यग्दृष्टियों-का संचय संख्यात ही होता है किन्तु चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाले जीव तो एक समयमें पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण होते हुए पाये जाते हैं, इसलिए उनसे ये जीव असंख्यातगुणे होते हैं इस बातमें कोई विरोध नहीं आता है । यहाँ पर गुणकारका प्रमाण भी पल्यके असंख्यातवें भाग-प्रमाण है ।

*** उनसे सत्ताईस प्रकृतियोंके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं ।**

§ ४६२. यहाँ पर भी गुणकारका प्रमाण आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है, क्योंकि अट्ठाईस प्रकृतियोंकी सत्तावाले सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि जीवोंका यहाँ पर ग्रहण किया है ।

*** उनसे पच्चीस प्रकृतियोंके संक्रामक जीव अनन्तगुणे हैं ।**

§ ४६३. क्योंकि कुछ कम सब जीवराशि पच्चीस प्रकृतियोंकी संक्रामकरूपसे विवक्षित है ।

इस प्रकार ओघानुगम समाप्त हुआ ।

§ ४६४. अब आगे देशामर्षक सूत्रसे सूचित होनेवाले आदेशका कथन करते हैं । यथा—आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें २६ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव सबसे थोड़े हैं । उनसे २१ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे २३ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे

१. ता०-आ०प्रत्योः -इट्ठिम्मि मिच्छाइट्ठीण इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

असंखेज्जगुणा । २७ संकाम० असंखे०गुणा । २५ संका० असंखेगुणा० । एवं पढमाए पंचिंदियतिरिक्खदुगं [देवा] सोहम्मादि जाव सहस्सार त्ति । विदियादि जाव सत्तमा त्ति सव्वत्थोवा २१ संका० । २६ संका० असंखे०गुणा । उवरि णिरओघो । एवं जोणिणी-भवण०-वाण०-जोदिसिया त्ति ।

§ ४६५. तिरिक्खाणं णारयभंगो । णवरि २५ संका० अणंतगुणा । पंचिं०-तिरिक्खअपज्जत्त-मणुसअपज्ज० सव्वत्थोवा २६ संका० । २७ संका० असंखे०गुणा । २५ संका० असंखे०गुणा ।

§ ४६६. मणुस्साणमोघो । णवरि २२ संकामयाणमुवरि २१ संकाम० संखे०-गुणा । २३ संका० संखे०गुणा । २६ संका० असंखे०गुणा । २७ संका० असंखे०गुणा । २५ संका० असंखे०गुणा । एवं पज्जत्तएसु । णवरि सव्वत्थ संखेज्ज०गुणं कायव्वं । एवं मणुसिणीसु । णवरि १४ संका० णत्थि, ओयरमाणविवक्खाभावादो ।

§ ४६७. आणदादि जाव णवगेवज्जा त्ति सव्वत्थोवा २६ संका० । २५ संका० असंखे०गुणा । २१ संका० संखे०गुणा । २३ संका संखे०गुणा । २७ संका० संखे०-

---

२७ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे २५ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव असंख्यात-गुणे हैं । इसी प्रकार प्रथम पृथिवीके नारकी, पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चद्विक, सामान्य देव और सौधर्म कल्पसे लेकर सहस्रार कल्पतकके देवोंमें जानना चाहिये । दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें २१ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव सबसे थोड़े हैं । उनसे २६ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं । इससे आगेका अल्पबहुत्व सामान्य नारकियोंके समान है । इसी प्रकार तिर्यञ्च योनिनी, भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें जानना चाहिये ।

§ ४६५. तिर्यंचोंमें अल्पबहुत्व नारकियोंके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें २५ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव अनन्तगुणे हैं । पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तक और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें २६ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव सबसे थोड़े हैं । उनसे २७ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे २५ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं ।

§ ४६६. मनुष्योंमें अल्पबहुत्व ओघके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें २२ प्रकृतियोंके संक्रामकोंके आगे २१ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं । उनसे २३ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं । उनसे २६ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे २७ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे २५ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं । इसीप्रकार पर्याप्तक मनुष्योंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें सर्वत्र संख्यातगुणा करना चाहिये । इसी प्रकार मनुष्यिनियोंमें अल्पबहुत्व जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्यनियोंमें १४ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव नहीं हैं, क्योंकि यहाँ पर उपशमश्रेणिसे उतरनेवाली मनुष्यनियोंकी विवक्षा नहीं की है ।

§ ४६७. आनत कल्पसे लेकर नौ ग्रैवेयक तकके देवोंमें २६ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव सबसे थोड़े हैं । उनसे २५ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे २१ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं । उनसे २३ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं । उनसे २७

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुणा । अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठा त्ति सव्वत्थोवा २१ संका० । २३ संकामया संखे०-गुणा । २७ संका० संखेज्जगुणा । एवं जाव० ।

एवमप्पाबहुअं समत्तं ।

§ ४६८. एत्थ भुजगार-पदणिक्खेव-वड्ढिसंकमा च कायव्वा, सुत्तसूचिदत्तादो । तं जहा—भुजगारे तत्थ इमाणि तेरस अणियोगद्दाराणि—समुक्कित्तणादि जाव अप्पाबहुए त्ति । समुक्कित्तणाए दुविहो णिद्देसो—ओघेणादेसेण य । ओघेण अत्थि भुज०-अप्प०-अवट्ठि०-अवत्तसंकामया । एवं मणुस० ३ । आदेसेण णेरइय० एवं चेव । णवरि अवत्तव्वपदं णत्थि । एवं सव्वणिरय०-सव्वतिरिक्ख-सव्वदेवा त्ति । णवरि पंचिं०-तिरिक्खअपज्ज०-मणुसअपज्ज०-अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठा त्ति अत्थि अप्प०-अवट्ठि०-संकामया । एवं जाव० ।

§ ४६९. सामित्ताणु० दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण भुज०-अप्पदर०-अवट्ठि०संकमो कस्स ? अण्णदरस्स सम्मादिट्ठि० मिच्छादिट्ठिस्स वा । अवत्त० कस्स ? असंकामओ होऊण परिवदमाणयस्स इगिवीससंतकम्मिओवसंतकसायस्स पढमसमयदेवस्स वा । एवं मणुसतिए । णवरि पढमसमयदेवस्से त्ति ण वत्तव्वं ।

प्रकृतियोंके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें २१ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव सबसे थोड़े हैं। उनसे २३ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं। उनसे २७ प्रकृतियोंके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं। इसीप्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिये।

इस प्रकार अल्पबहुत्व समाप्त हुआ।

§ ४६८. यहाँ पर भुजगार, पदनिक्षेप और वृद्धिसंक्रम इनका कथन करना चाहिए, क्योंकि इनकी सूत्रमें सूचना की गई है। यथा—इनमेंसे भुजगार अनुयोगद्वारमें समुत्कीर्तनासे लेकर अल्पबहुत्व तक तेरह अनुयोगद्वार होते हैं। उनमेंसे समुत्कीर्तनाकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। ओघकी अपेक्षा भुजगार, अल्पतर, अवस्थित और अवक्तव्य संक्रमस्थानोंके संक्रामक जीव हैं। इसी प्रकार मनुष्यत्रिकमें जानना चाहिये। आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें इसी प्रकार जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें अवक्तव्यपद नहीं होता। इसी प्रकार सब नारकी, सब तिर्यञ्च और सब देवोंमें जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त, मनुष्य अपर्याप्त और अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें अल्पतर और अवस्थित संक्रमस्थानोंके संक्रामक जीव हैं। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये।

§ ४६९. स्वामित्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेश निर्देश। ओघसे भुजगार, अल्पतर और अवस्थितरूप संक्रम किसके होता है ? किसी सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टिके होता है। अवक्तव्यसंक्रम किसके होता है ? इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो असंकामक उपशान्तकषाय जीव उपशमश्रेणिसे च्युत हो रहा है उसके होता है। या इक्कीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जो असंकामक उपशान्तकषाय जीव मरकर देवोंमें उत्पन्न होता है, प्रथम समयवर्ती उस देवके होता है। इसी प्रकार मनुष्यत्रिकमें जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आदेसेण णेरइय० भुज०-अप्पद०-अवट्ठि० ओघभंगो। एवं सव्वणेरइय०-सव्वतिरिक्ख-सव्वदेवा त्ति। णवरि पंचिं०तिरि०अपज्ज०-मणुसअपज्ज०-अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठे त्ति अप्पद०-अवट्ठि० कस्स ? अण्णद०। एवं जाव०।

§ ४७०. कालाणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण भुज०-संका० केवचिरं० ? जह० एगसमओ, उक्क० वेसमया। अप्पदर०-अवत्त० जहण्णुक्क० एगसमओ। अवट्ठि०संका० तिण्णि भंगा। तत्थ जो सो सादिओ सपज्जवसिदो तस्स जह० एगसमओ, उक्क० उवड्ढपोग्गलपरियट्टा। आदेसेण णेरइय० भुज०-अप्पद० ओघं। अवट्ठि० जह० एगसमओ, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि। एवं सव्वणेरइय०-सव्वतिरिक्ख०-सव्वदेवे त्ति। णवरि अवट्ठिदस्स सगट्ठिदी वत्तव्वा। पंचिं०तिरिक्ख-अपज्ज०-मणुसअपज्ज० अप्पद० जह० उक्क० एगसमओ। अवट्ठि० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं। अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठा त्ति अप्पद०[1] ओघभंगो। अवट्ठि० जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० सगट्ठिदी। मणुस०३ पंचिंदियतिरिक्खभंगो। णवरि अवत्त० जह० उक्क० एगसमओ। एवं जाव०।

है कि यहाँ पर प्रथम समयवर्ती देवके नहीं कहना चाहिये। आदेशसे नारकियोंमें भुजगार, अल्पतर और अवस्थितरूप संक्रमका भंग ओघके समान है। इसीप्रकार सब नारकी, सब तिर्यंच और सब देवोंमें जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि पंचेन्द्रियतिर्यंचअपर्याप्त, मनुष्य अपर्याप्त और अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें अल्पतर और अवस्थितसंक्रम किसके होता है ? अन्यतरके होता है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये।

§ ४७०. कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे भुजगार पदके संक्रामकका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। अल्पतर और अवक्तव्यपदोंके संक्रामकका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अवस्थित संक्रमस्थानोंके संक्रामकके तीन भंग हैं। उनमेंसे जो सादि-सान्त भंग है उसका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल उपार्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है। आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें भुजगार और अल्पतर पदोंका भंग ओघके समान है। अवस्थित पदके संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। इसी प्रकार सब नारकी, सब तिर्यञ्च और सब देवोंमें जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि सर्वत्र अवस्थित संक्रमस्थानका उत्कृष्ट काल अपनी-अपनी स्थितिप्रमाण कहना चाहिये। पंचेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें अल्पतर पदके संक्रामकका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अवस्थित पदके संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें अल्पतर पदका भंग ओघके समान है। अवस्थितपदके संक्रामकका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल अपनी-अपनी स्थितिप्रमाण है। मनुष्यत्रिकमें पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि अवक्तव्यपदका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिये।

१. ता०प्रतौ [अपद०], आ०प्रतौ अप्पज० इति पाठः।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

§ ४७१. अंतराणु० दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण भुज० जह० एगसमओ, अप्प० जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० दोण्हं पि उवड्ढपोग्गलपरियट्टं। अवट्ठिद० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं। अवत्त० जह० अंतोमु०, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि देसूणदोपुव्वकोडीहि सादिरेयाणि। आदेसेण णेरइय० भुज०-अप्पद० जह० एयसमओ अंतोमुहुत्तं, उक्क० तेत्तीसं सागरो० देसूणाणि। अवट्ठि० जह० एगसमओ, उक्क० तिण्णि समया, पढमट्ठिदिदुचरिमसमए सम्मामि०चरिमफालिं संकामिय सम्मत्तं पडिवण्णम्मि तदुवलंभादो। एवं सव्वणेरइय०। णवरि सगट्ठिदी०। तिरिक्खाण० णारयभंगो। णवरि उक्क० उवड्ढपोग्गलपरियट्टं। पंचिंदियतिरिक्खतिय ३ णारगभंगो। णवरि उक्क० सगट्ठिदी। पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज०-मणुसअपज्ज०-अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठा त्ति अप्पदर० णत्थि अंतरं। अवट्ठि० जह० उक्क० एयसमओ। मणुसतिए ३ भुज०-अप्पद० पंचिं०तिरिक्खभंगो। अवट्ठि० ओघो। अवत्त० जह० अंतोमु०, उक्क० पुव्वकोडी देसूणा। देवाणं णारयभंगो। णवरि उक्क० एक्कत्तीसं सागरो० देसूणाणि। भवणादि जाव णवगेवज्जा त्ति एवं चेव। णवरि सगट्ठिदी देसूणा।

§ ४७१. अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। ओघसे भुजगार पदके संक्रामकका जघन्य अन्तरकाल एक समय है। अल्पतर पदके संक्रामकका जघन्य अन्तकाल अन्तर्मुहूर्त है। तथा इन दोनोंका उत्कृष्ट अन्तरकाल उपार्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है। अवस्थित पदके संक्रामकका जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है। अवक्तव्य पदके संक्रामकका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम दो पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागर है। आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें भुजगार और अल्पतर पदके संक्रामकका जघन्य अन्तरकाल क्रमसे एक समय और अन्तर्मुहूर्त है। तथा उत्कृष्ट अन्तरकाल कुछ कम तेतीस सागर है। अवस्थित पदके संक्रामकका जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल तीन समय है, क्योंकि जो जीव प्रथम स्थितिके द्विचरम समयमें सम्यग्मिथ्यात्वकी अन्तिम फालिका संक्रम करके सम्यक्त्वको प्राप्त होता है उसके अवस्थितपदका यह उत्कृष्ट अन्तर काल पाया जाता है। इसी प्रकार सब नारकी जीवोंमें जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि अपनी-अपनी स्थिति कहनी चाहिये। तिर्यञ्चोंमें अन्तरका कथन नारकियोंके समान करना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि उत्कृष्ट अन्तरकाल उपार्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है। पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें अन्तरका कथन नारकियोंके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी-अपनी स्थितिप्रमाण है। पंचेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्त, मनुष्य अपर्याप्त और अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें अल्पतरपदके संक्रामकका अन्तरकाल नहीं है। अवस्थितपदके संक्रामकका जघन्य अन्तर एक समय है। मनुष्यत्रिकमें भुजगार और अल्पतरपदका अन्तर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है। अवस्थितपदका अन्तर ओघके समान है। अवक्तव्यपदके संक्रामकका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पूर्वकोटिप्रमाण है। देवोंमें अन्तरका कथन नारकियोंके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम इकतीस सागर है। भवनवासियोंसे लेकर नौ ग्रैवेयक तकके देवोंमें इसी प्रकार है। किन्तु इतनी विशेषता है कि सर्वत्र कुछ कम अपनी स्थिति कहनी चाहिये। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं जाव० ।

§ ४७२. णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण अवट्ठि० संका० णियमा अत्थि । सेसपदसंका० भयणिज्जा । भंगा २७ । एवं चदुगदीसु । णवरि मणुसगदीदो अण्णत्थ णव भंगा वत्तव्वा । णवरि पंचिं०-तिरि०अपज्ज०-अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठा त्ति अवट्ठि० णियमा अत्थि । सिया एदे च अप्पदरगो च १ । सिया एदे च अप्पदरगा च २ । धुवसहिदा ३भंगा तिण्णि । मणुस-अपज्ज० अप्पदर-अवट्ठिदाणमट्ठ भंगा । एवं जाव० ।

§ ४७३. भागाभागाणु० दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण भुज०-अप्प०-अवत्त०संका० सव्वजी० केव० ? अणंतभागो । अवट्ठि० सव्वजीव० अणंता भागा । एवं तिरिक्खेसु । णवरि अवत्त० णत्थि । आदेसेण णेरइय० अवट्ठि०संका० असंखेज्जा भागा । सेसमसंखे०भागो । एवं सव्वणेरइय-सव्वपंचिं०तिरिक्ख-मणुस-मणुसअपज्ज०-देवा जाव अवराजिदा त्ति । मणुसपज्ज०-मणुसिणीसु सव्वट्ठेसु अवट्ठि० संखेज्जा भागा । सेसं संखेज्जदिभागो । एवं जाव० ।

तक जानना चाहिये ।

§ ४७२. नाना जीवसम्बन्धी भंगविचयानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघकी अपेक्षा अवस्थित पदके संक्रामक जीव नियमसे हैं । शेष पदोंके संक्रामक जीव भजनीय हैं । भंग २७ होते हैं । इसी प्रकार चारों गतियोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्यगतिके सिवा अन्य गतियोंमें ९ भंग कहने चाहिये । किन्तु पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें और अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें अवस्थित पदवाले जीव नियमसे हैं । कदाचित् अवस्थित पदवाले अनेक जीव हैं और अल्पतर पदवाला एक जीव है १ । कदाचित् अवस्थित पदवाले अनेक जीव हैं और अल्पतर पदवाले अनेक जीव हैं २ । इस प्रकार ध्रुव भंगके साथ तीन भंग हैं । मनुष्य अपर्याप्तकोंमें अल्पतर और अवस्थित पदके आठ भंग होते हैं । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिये ।

§ ४७३. भागाभागानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघकी अपेक्षा भुजगार, अल्पतर और अवक्तव्य पदके संक्रामक जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? अनन्तवें भागप्रमाण हैं । अवस्थित पदके संक्रामक जीव सब जीवोंके अनन्त बहुभागप्रमाण हैं । इसी प्रकार तिर्यञ्चोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चोंमें अवक्तव्यपद नहीं है । आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें अवस्थितपदके संक्रामक जीव असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं । शेष पदोंके संक्रामक जीव असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । इसी प्रकार सब नारकी, सब पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च, मनुष्य, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देव और अपराजित तकके देवोंमें जानना चाहिये । मनुष्य पर्याप्त, मनुष्यिनी और सर्वार्थसिद्धिके देवोंमें अवस्थित पदवाले जीव संख्यात बहुभाग प्रमाण है । शेष पदवाले जीव संख्यातवें भागप्रमाण हैं । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

---

१. आ०प्रतौ त्ति । मणुसअपज० मणुसअपज०मणुसिणीसु इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ४७४. परिमाणाणु० दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण भुज०-अप्प०संका० असंखेज्जा। अवट्ठि० अणंता। अवत्त० संखेज्जा। एवं तिरिक्खा०। णवरि अवत्त० णत्थि। आदेसेण णेरइय० सव्वपदसंका० असंखेज्जा। एवं सव्वणेरइय-सव्वपंचिं०-तिरिक्ख-मणुसअपज्ज०-देवा जाव अवराजिदा त्ति। मणुसेसु भुज०-अवत्त० संखेज्जा। सेसा असंखेज्जा। मणुसपज्ज०-मणुसिणी-सव्वट्ठेसु सव्वपदसंका० संखेज्जा। एवं जाव०।

§ ४७५. खेत्ताणु० दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण अवट्ठि०-संका० सव्वलोगे। सेससंका० लोगस्स असंखे०भागे। एवं तिरिक्खा०। सेससव्वमग्गणासु सव्वपदसंका० लोग० असंखे०भागे। एवं जाव।

§ ४७६. पोसणाणु० दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण भुज०संका० केव० पोसिदं? लोग० असंखे०भागो अट्ठ-बारहचोद्दस० देसूणा। अप्पद० अट्ठचोद्द० देसूणा सव्वलोगो वा। अवट्ठि० सव्वलोगो। अवत्त० लोग० असंखे०भागो। आदेसेण णेरइय० भुज० लोग० असंखे०भागो पंचचोद्दस० देसूणा। अप्पद०-अवट्ठि० लोग०

---

§ ४७४. परिमाणानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। ओघकी अपेक्षा भुजगार और अल्पतर पदके संक्रामक जीव असंख्यात हैं। अवस्थित पदके संक्रामक जीव अनन्त हैं। अवक्तव्य पदके संक्रामक जीव संख्यात हैं। इसी प्रकार तिर्यञ्चोंमें जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें अवक्तव्य पद नहीं है। आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें सब पदोंके संक्रामक जीव असंख्यात हैं। इसी प्रकार सब नारकी, सब पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देव और अपराजित विमान तकके देवोंमें जानना चाहिये। मनुष्योंमें भुजगार और अवक्तव्य पदके संक्रामक जीव संख्यात हैं। शेष पदोंके संक्रामक जीव असंख्यात हैं। मनुष्य पर्याप्त, मनुष्यिनी और सर्वार्थसिद्धिके देवोंमें सब पदोंके संक्रामक जीव संख्यात हैं। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये।

§ ४७५. क्षेत्रानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। ओघकी अपेक्षा अवस्थितपदके संक्रामक जीव सब लोकमें रहते हैं और शेष पदोंके संक्रामक जीव लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं। इसी प्रकार तिर्यञ्चोंमें जानना चाहिये। शेष सब मार्गणाओंमें सब पदोंके संक्रामक जीव लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिये।

§ ४७६. स्पर्शनानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। ओघकी अपेक्षा भुजगार पदके संक्रामक जीवोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम बारह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अल्पतर पदके संक्रामक जीवोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवस्थितपदके संक्रामक जीवोंने सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवक्तव्य पदके संक्रामक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्श किया है। आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें भुजगार पदके संक्रामक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम पाँच भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अल्पतर और अवस्थित पदके संक्रामक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागों-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

असंखे०भागो छचोद्दस० देसूणा। पढमाए खेत्तं। विदियादि जाव सत्तमा त्ति एवं चेव। णवरि सगपोसणं कायव्वं। सत्तमीए भुज० खेत्तं। तिरिक्खेसु भुज० लोग० असंखे०-भागो सत्तचोद्दस० देसूणा। अप्पद० लोगस्स असंखे०भागो सव्वलोगो वा। अवट्ठि० खेत्तं। पंचिंदियतिरिक्खतिय३ भुज० तिरिक्खोघो। अप्पद०-अवट्ठि० लोग० असंखे०-भागो सव्वलोगो वा। एवं मणुसतिए३। णवरि अवत्त० ओघभंगो। पंचिं०तिरि०-अपज्ज०-मणुसअपज्ज० अप्पद०-अवट्ठि० पंचिंदियतिरिक्खभंगो। सव्वपदपरिणददेवेहि अट्ठ-णवचोद्दस०। एवं भवणादि जाव अच्चुदा त्ति। णवरि सगपोसणं। उवरि खेत्तं। एवं जाव०।

§ ४७७. कालाणु० दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण भुज०-अप्पद० जह० एग०, उक्क० आवलि० असंखे०भागो। अवट्ठि० सव्वद्धा। अवत्त० जह० एयसमओ, उक्क० संखेज्जा समया। एवं सव्वणेरइय०-सव्वतिरिक्ख-सव्वदेवा त्ति। णवरि अवत्त० णत्थि। पंचिं०तिरि०अपज्ज० अणुद्दिसादि जाव अवराजिदा त्ति भुज० णत्थि। मणुसेसु भुज० जह० एगसमओ, उक्क० संखेज्जा समया। सेसमोघ-

---

मेंसे कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। पहिली पृथिवीमें स्पर्शन क्षेत्रके समान है। दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक स्पर्शन इसी प्रकार है। किन्तु सर्वत्र अपने अपने स्पर्शनका कथन करना चाहिये। सातवीं पृथिवीमें भुजगारपदका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। तिर्यञ्चोंमें भुजगार पदवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम सात भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अल्पतर पदवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भाग और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। अवस्थित पदका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें भुजगार पदका स्पर्शन सामान्य तिर्यञ्चोंके समान है। अल्पतर और अवस्थित पदवाले जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार मनुष्यत्रिकमें जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि अवक्तव्य पदका स्पर्शन ओघके समान है। पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें अल्पतर और अवस्थित पदका भंग पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है। सब पदोंसे परिणत हुए देवोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण और कुछ कम नौ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार भवनवासियोंसे लेकर अच्युत कल्पतकके देवोंमें जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि अपना-अपना स्पर्शन कहना चाहिये। इससे आगेके देवोंमें स्पर्शन क्षेत्रके समान है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये।

§ ४७७. कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। ओघकी अपेक्षा भुजगार और अल्पतर पदका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अवस्थित पदका काल सर्वदा है। अवक्तव्य पदका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। इसी प्रकार सब नारकी, सब तिर्यञ्च और सब देवोंमें जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें अवक्तव्य पद नहीं है। पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें और अनुदिशसे लेकर अपराजित तकके देवोंमें भुजगार पद नहीं है। मनुष्योंमें भुजगार पदका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। शेष पदोंका काल

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भंगो । एवं मणुसपज्ज०–मणुसिणीसु । णवरि अप्पद० उक्क० संखेज्जा समया । मणुस-अपज्ज० अप्पद० ओघं । अवट्ठि० जह० एयसमओ, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो । सव्वट्ठे अप्पद० जह० एयसमओ, उक्क० संखेज्जा समया । अवट्ठि० ओघभंगो । एवं जाव० ।

§ ४७८. अंतराणु० दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण भुज०-अप्पद० जह० एगस०, उक्क० चउवीसमहोरत्ता सादिरेया । अवट्ठि० णत्थि अंतरं । अवत्त० जह० एयसमओ, उक्क० वासपुधत्तं । एवं मणुसतिए ३ । एवं सव्वणेरइय०-सव्वतिरिक्ख०-सव्वदेवा त्ति । णवरि अवत्त० णत्थि । पंचि०तिरिक्खअपज्ज० भुज० णत्थि । मणुसअपज्ज० अप्पद०-अवट्ठि० जह० एयस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो । अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठा त्ति अप्पद० जह० एगस०, उक्क० वासपुधत्तं पलिदो० असंखे०भागो[1] । अवट्ठि० णत्थि अंतरं । एवं जाव० ।

§ ४७९. भावो सव्वत्थ ओदइओ भावो ।

§ ४८०. अप्पाबहुआणु० दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण

ओघके समान है । इसी प्रकार मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि अल्पतर पदका उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । मनुष्य अपर्याप्तकोंमें अल्पतर पदका काल ओघके समान है । अवस्थित पदका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है । सर्वार्थसिद्धिमें अल्पतर पदका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है । अवस्थित पदका काल ओघके समान है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिये ।

§ ४७८. अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघकी अपेक्षा भुजगार और अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक चौबीस दिनरात है । अवस्थितपदका अन्तरकाल नहीं है । अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है । इसी प्रकार मनुष्यत्रिकमें जानना चाहिये । इसी प्रकार सब नारकी, सब तिर्यंच और सब देवोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें अवक्तव्यपद नहीं है । पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्तकोंमें भुजगारपद नहीं है । मनुष्य अपर्याप्तकोंमें अल्पतर और अवस्थितपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है । अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें अल्पतरपदका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अनुदिशसे अपराजितक वर्षपृथक्त्व और सर्वार्थसिद्धिमें पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है । अवस्थितपदका अन्तर नहीं है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

§ ४७९. भाव सर्वत्र औदयिक है ।

§ ४८०. अल्पबहुत्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेश-निर्देश । ओघकी अपेक्षा अवक्तव्यपदके संक्रामक जीव सबसे थोड़े हैं । उनसे अल्पतरपदके

---

१ आ०प्रतौ संखे०भागो इति पाठः ।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

सव्वत्थोवा अवत्त०संका० । अप्प०संका० असंखे०गुणा । भुज०संका० विसेसा० । अवट्ठि० अणंतगुणा । आदेसेण णेरइय० सव्वत्थोवा अप्पद०संका० । भुज० विसे० । अवट्ठि० असंखे०गुणा । एवं सव्वणेरइय-पंचिं०तिरिक्खतिय३-देवा जाव णवगेवज्जा त्ति । एवं तिरिक्खेसु । णवरि अवट्ठि० अणंतगुणा । पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज०-मणुसअपज्ज०-अणुद्दिसादि जाव अवराजिदा त्ति अप्पदरसंका० थोवा । अवट्ठि० असंखे०गुणा । एवं सव्वट्ठे । णवरि संखेज्जगुणं कायव्वं । मणुसेसु सव्वत्थोवा अवत्त० । भुज० संखे०गुणा । अप्पद० असंखे०गुणा । अवट्ठि० असंखे०गुणा । एवं मणुसपज्ज०-मणुसिणीसु । णवरि संखेज्जगुणं कायव्वं । एवं जाव० ।

एवं भुजगारो समत्तो ।

§ ४८१. पदणिक्खेवे त्ति तिण्णि अणियोगद्दाराणि—समुक्कित्तणा सामित्तमप्पाबहुगं ति । समुक्कित्तणा दुविहा—जहण्णा उक्कस्सा च । उक्कस्से पयदं । दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण अत्थि उक्क० वड्ढी हाणी अवट्ठाणं च । एवं चदुगदीसु । णवरि पंचिं०तिरि०अपज्ज०-मणुसअपज्ज०-अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठा त्ति उक्क० वड्ढी

संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे भुजगारपदके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं। उनसे अवस्थितपदके संक्रामक जीव अनन्तगुणे हैं। आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें अल्पतरपदके संक्रामक जीव सबसे थोड़े हैं। उनसे भुजगारपदके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं। उनसे अवस्थितपदके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार सब नारकी, पंचेन्द्रिय तिर्यंचत्रिक, देव और नौ ग्रैवेयक तकके देवोंमें जानना चाहिये। इसी प्रकार तिर्यञ्चोंमें जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें अवस्थितपदवाले जीव अनन्तगुणे हैं। पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त, मनुष्य अपर्याप्त और अनुदिशसे लेकर अपराजित तकके देवोंमें अल्पतरपदके संक्रामक जीव सबसे थोड़े हैं। उनसे अवस्थितपदके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार सर्वार्थसिद्धिमें जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि उनमें संख्यातगुणा करना चाहिये। मनुष्योंमें अवक्तव्य पदके संक्रामक जीव सबसे थोड़े हैं। उनसे भुजगारपदके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं। उनसे अल्पतरपदके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे अवस्थितपदके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंमें जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें सर्वत्र असंख्यातगुणेके स्थानमें संख्यातगुणा करना चाहिये। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये।

इस प्रकार भुजकार अनुयोगद्वार समाप्त हुआ।

§ ४८१. पदनिक्षेपमें तीन अनुयोगद्वार हैं—समुत्कीर्तना, स्वामित्व और अल्पबहुत्व। समुत्कीर्तना दो प्रकारकी है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघकी अपेक्षा उत्कृष्ट वृद्धि, हानि और अवस्थान है। इसी प्रकार चारों गतियोंमें जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तक, मनुष्य अपर्याप्तक और अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें उत्कृष्ट वृद्धि नहीं है। इसी प्रकार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णत्थि । एवं जाव० । एवं जहण्णं पि णेदव्वं ।

§ ४८२. सामित्तं दुविहं जहण्णुक्कस्सभेदेण । उक्क० पयदं । दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण उक्क० वड्ढी कस्स ? अण्णदरस्स जो उवसामगो मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्ताणि संकामेमाणओ देवो जादो तस्स तेवीसं पयडीओ संकामेमाणस्स उक्क० वड्ढी । तस्सेव से काले उक्कस्समवट्ठाणं । उक्क० हाणी कस्स ? जो खवओ अट्ठ-कसाए खवेदि तस्स उक्क० हाणी । आदेसेण णेरइय० उक्क० वड्ढी कस्स ? अण्णदरस्स जो इगिवीसं संकामेमाणो सत्तावीसं संकामगो जादो तस्स उक्क० वड्ढी । तस्सेव से काले उक्कस्समवट्ठाणं । उक्क० हाणी कस्स ? जो सत्तावीसं संकामेमाणो अणंताणु०-चउक्कं विसंजोएदि तस्स उक्क० हाणी । एवं सव्वणेरइय-सव्वतिरिक्ख-देवा जाव णवगेवज्जा त्ति । णवरि पंचिं०तिरिक्खअपज्ज० उक्क० हाणी कस्स ? जो सत्तावीस-संकामगो छव्वीससंकामगो जादो तस्स उक्कस्सिया हाणी । तस्सेव से काले उक्कस्स-मवट्ठाणं । एवं मणुसअपज्ज० । मणुसतिए उक्क० वड्ढी कस्स ? जो चउवीससंतकम्मिओ उवसमसेढीदो ओयरमाणो चोद्दससंकामणादो इगिवीससंकामगो जादो तस्स उक्क० वड्ढी । हाणी ओघभंगो । एत्थेव उक्कस्समवट्ठाणं । अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठे त्ति उक्क० हाणी कस्स ? जेण सत्तावीसं संकामेमाणेण अणंताणुबंधिचउक्कं विसंजोइदं तस्स उक्क०

अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये । इसी प्रकार जघन्यका भी कथन करना चाहिये ।

§ ४८२. स्वामित्व दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघकी अपेक्षा उत्कृष्ट वृद्धि किसके होती है ? जो उपशामक जीव मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वका संक्रम करता हुआ देव हो गया है उसके तेईस प्रकृतियोंका संक्रम करते हुए उत्कृष्ट वृद्धि होती है । तथा उसीके तदनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है । उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? जो क्षपक आठ कषायोंका क्षय करता है उसके उत्कृष्ट हानि होती है । आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें उत्कृष्ट वृद्धि किसके होती है ? जो इक्कीस प्रकृतियोंका संक्रम करनेवाला जीव सत्ताईस प्रकृतियोंका संक्रामक हो गया है उसके उत्कृष्ट वृद्धि होती है । तथा उसीके तदनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है । उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? सत्ताईस प्रकृतियोंका संक्रामक जो जीव अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना करता है उसके उत्कृष्ट हानि होती है । इसी प्रकार सब नारकी, सब तिर्यञ्च, देव और नौ ग्रवेयक तकके देवोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? जो सत्ताईस प्रकृतियोंका संक्रामक जीव छब्बीस प्रकृतियोंका संक्रामक हो जाता है उसके उत्कृष्ट हानि होती है । तथा उसीके तदनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तकोंमें जानना चाहिये । मनुष्यत्रिकमें उत्कृष्ट वृद्धि किसके होती है ? जो चौबीस प्रकृतियोंकी सत्तावाला जीव उपशमश्रेणिसे उतरते समय चौदह प्रकृतियोंके संक्रमके बाद इक्कीस प्रकृतियोंका संक्रामक हो जाता है उसके उत्कृष्ट वृद्धि होती है । हानिका कथन ओघके समान है । तथा यहीं पर उत्कृष्ट अवस्थान होता है । अनुदिशासे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें उत्कृष्ट हानि किसके होती है ? सत्ताईस प्रकृतियोंका संक्रम करनेवाले जिस जीवने अनन्तानुबन्धी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

हाणी । तस्सेव से काले उक्कस्समवट्ठाणं । एवं जाव० ।

§ ४८३. जह० पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण जह० वड्ढी कस्स ? जो छव्वीससंकामओ सम्मत्तं पडिवण्णो तस्स जहण्णिया वड्ढी। जह० हाणी कस्स ? अण्णदरस्स जेण सत्तावीससंकामगेण सम्मत्तमुव्वेल्लिदं तस्स जह० हाणी। अण्णदरत्थावट्ठाणं। एवं चदुसु वि गदीसु। णवरि पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज०-मणुसअपज्जत्त-अणुदिसादि जाव सव्वट्ठे त्ति जह० हाणी अवट्ठाणं च उक्कस्सभंगो। एवं जाव० ।

§ ४८४. अप्पाबहुअं दुविहं—जह० उक्क०। उक्कस्से पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। तत्थ ओघेण सव्वत्थोवा उक्क० हाणी ८। वड्ढी अवट्ठाणं च दो वि सरिसाणि संखेज्जगुणाणि २१। आदेसेण णेरइय० सव्वत्थोवा उक्क० हाणी ४। वड्ढी अवट्ठाणं च दो वि सरिसाणि विसेसाहियाणि ६[1]। एवं सव्वणेरइय-सव्वतिरिक्खसव्वदेवा त्ति। णवरि पंचिं०तिरिक्खअपज्ज०-अणुदिसादि जाव सव्वट्ठा त्ति उक्क० हाणी अवट्ठाणं च दो वि सरिसाणि। मणुसतिएसु सव्वत्थोवा उक्क० वड्ढी ७। उक्क०[2] हाणी अवट्ठाणं च दो वि सरिसाणि विसेसाहियाणि ८। एवं जाव० ।

चतुष्ककी विसंयोजन किया है उसके उत्कृष्ट हानि होती है। तथा उसीके तदनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये।

§ ४८३. जघन्यका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघकी अपेक्षा जघन्य वृद्धि किसके होती है ? जो छब्बीस प्रकृतियोंका संक्रामक जीव सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ है उसके जघन्य वृद्धि होती है। जघन्य हानि किसके होती है ? सत्ताईस प्रकृतियोंके संक्रामक जिस जीवने सम्यक्त्वकी उद्वेलना की है उसके जघन्य हानि होती है। तथा किसी एकके अवस्थान होता है। इसी प्रकार चारों गतियोंमें जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त, मनुष्य अपर्याप्त और अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें जघन्य हानि और अवस्थानका भंग अपने उत्कृष्टके समान है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये।

§ ४८४. अल्पबहुत्व दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघकी अपेक्षा उत्कृष्ट हानि सबसे थोड़ी है ८। उत्कृष्ट वृद्धि और अवस्थान ये दोनों समान होते हुए संख्यातगुणे हैं २१। आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें उत्कृष्ट हानि सबसे थोड़ी है ४। वृद्धि और अवस्थान ये दोनों समान होते हुए विशेष अधिक हैं ६। इसी प्रकार सब नारकी, सब तिर्यञ्च और सब देवोंमें जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें और अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें उत्कृष्ट हानि और अवस्थान ये दोनों समान हैं। मनुष्यत्रिकमें उत्कृष्ट वृद्धि सबसे थोड़ी है ७। उत्कृष्ट हानि और अवस्थान ये दोनों समान होते हुए विशेष अधिक हैं ८। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये।

१. ता०प्रतौ हियाणि। एवं इति पाठः। २. ता०प्रतौ वड्ढी। उक्क० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ४८५. जहण्णए पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। तत्थोघेण जह० वड्ढी हाणी अवट्ठाणं च तिण्णि वि सरिसाणि १। एवं चदुसु गदीसु। णवरि पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज०-मणुसअपज्ज०-अणुदिसादि जाव सव्वट्ठे त्ति उक्क०भंगो। एवं० जाव०।

एवं पदणिक्खेवो समत्तो।

§ ४८६. वड्ढिसंकमे तत्थ इमाणि तेरस अणियोगद्दाराणि—समुक्कित्तणा जाव अप्पाबहुए त्ति। तत्थ समुक्कित्तणाणु० दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण अत्थि संखेज्जभागवड्ढी हाणी संखे०गुणवड्ढी हाणी अवट्ठा० अवत्तव्वं च। एवं मणुसतिए। सेसं भुजगारभंगो।

§ ४८७. सामित्तं भुजगारभंगो। णवरि संखेज्जगुणवड्ढी हाणी कस्स? अण्णदरस्स सम्माइट्ठिस्स। एवं मणुसतिए ३। सेसं भुजगारभंगो।

§ ४८८. कालो भुजगारभंगो। णवरि संखेज्जगुणवड्ढी जह० एयसमओ, उक्क० वे समया। संखेजगुणहाणी जह० उक्क० एगसमओ। मणुस्स०३ संखे०गु णवड्ढी हाणी जह० उक्क० एयसमओ। सेसं भुजगारभंगो।

---

§ ४८५. जघन्यका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघकी अपेक्षा जघन्य वृद्धि, हानि और अवस्थान ये तीनों ही समान हैं १। इसी प्रकार चारों गतियोंमें जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त, मनुष्य अपर्याप्त और अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें उत्कृष्टके समान भङ्ग है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिये।

इस प्रकार पदनिक्षेप समाप्त हुआ।

§ ४८६. अब वृद्धिसंक्रमका अधिकार है। उसमें समुत्कीर्तनासे लेकर अल्पबहुत्व तक ये तेरह अनुयोगद्वार होते हैं। उनमेंसे समुत्कीर्तनानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। ओघकी अपेक्षा संख्यातभागवृद्धि, संख्यातभागहानि, संख्यातगुणवृद्धि, संख्यातगुणहानि, अवस्थान और अवक्तव्य ये पद हैं। इसी प्रकार मनुष्यत्रिकमें जानना चाहिये। शेष कथन भुजगारके समान है।

§ ४८७. स्वामित्वका भंग भुजगारके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि संख्यातगुणवृद्धि और संख्यातगुणहानि किसके होती है? किसी सम्यग्दृष्टिके होती है। इसी प्रकार मनुष्यत्रिकमें जानना चाहिये। शेष भंग भुजगारके समान है।

§ ४८८. कालका भंग भुजगारके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि संख्यातगुणवृद्धिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। संख्यातगुणहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। मनुष्यत्रिकमें संख्यातगुणवृद्धि और संख्यातगुणहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। शेष भंग भुजगारके समान है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ४८९. अंतराणु० दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण संखे०-गुणवड्ढि-हाणिअंतरं जह० एयस० अंतोमु०, उक्क० उवड्ढपोग्गलपरियट्टं। सेसं भुज०-भंगो। णवरि मणुस०३ संखे०गुणवड्ढि-हाणीणं जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० पुव्वकोडिपुधत्तं।

§ ४९०. णाणाजी० भंगविचओ भागाभागो परिमाणं खेत्तं पोसणं च भुज०-भंगो। णवरि संखे०गुणवड्ढि-हाणिगयविसेसो सव्वत्थ जाणियव्वो।

§ ४९१. कालो भुज०भंगो। णवरि गुणवड्ढी हाणी जह० एयसमओ, उक्क० संखेज्जा समया।

§ ४९२. अंतरं भुज०भंगो। णवरि संखे०गुणवड्ढी जह० एगसमओ, उक्क० वासपुधत्तं। संखे०गुणहाणी जह० एयसमओ, उक्क० छम्मासं। एवं मणुसतिए। णवरि मणुसिणी० संखे०गुणहाणी उक्क० वासपुधत्तं।

§ ४९३. भावो सव्वत्थ ओदइओ०।

§ ४९४. अप्पाबहुआणु० दुविहो णि०—ओघेण आदेसेण य। ओघेण सव्वत्थोवा अवत्त०संका। संखे०गुणवड्ढिसंका० संखे०गुणा। संखे०गुणहाणिसंका० संखे०गुणा।

---

§ ४८९. अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघकी अपेक्षा संख्यातगुणवृद्धिका जघन्य अन्तर एक समय है और संख्यातगुणहानिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। तथा दोनोंका उत्कृष्ट अन्तर उपार्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है। शेष भङ्ग भुजगारके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्यत्रिकमें संख्यातगुणवृद्धि और संख्यातगुणहानिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्वप्रमाण है।

§ ४९०. नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, परिमाण, क्षेत्र और स्पर्शन इनका कथन भुजगारके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि संख्यातगुणवृद्धि और संख्यातगुणहानिगत विशेषताको सर्वत्र जान लेना चाहिये।

§ ४९१. कालका भंग भुजगारके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि गुणवृद्धि और गुणहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है।

§ ४९२. अन्तरका भंग भुजगारके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि संख्यातगुणवृद्धिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण है। संख्यातगुणहानिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है। इसी प्रकार मनुष्यत्रिकमें जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्यनियोंमें संख्यातगुणहानिका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है।

§ ४९३. भाव सर्वत्र औदयिक है।

§ ४९४. अल्पबहुत्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघकी अपेक्षा अवक्तव्यपदके संक्रामक जीव सबसे थोड़े हैं। उनसे संख्यातगुणवृद्धिके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं। उनसे संख्यातगुणहानिके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं। उनसे संख्यात-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संखे० भागहाणि० असंखे० गुणा। संखे० भागवड्ढि० विसे०। अवट्ठि० अणंतगुणा। मणुस्सेसु सव्वत्थोवा अवत्त०। संखे० गुणवड्ढि० संखे० गुणा। संखे० गुणहाणि० संखे० गुणा। संखेभागवड्ढि० संखे० गुणा। संखेज्जभागहाणि० असंखे० गुणा। अवट्ठि० असंखे० गुणा। एवं मणुसपज्ज०-मणुसिणी०। णवरि संखेज्जगुणं कायव्वं। सेससव्वमग्गणासु भुजगारभंगो।

एवं वड्ढी समत्ता। तदो पयडिट्ठाणसंकमो समत्तो।

एवं पयडिसंकमो समत्तो।

भागहानिके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे संख्यातभागवृद्धिके संक्रामक जीव विशेष अधिक हैं। उनसे अवस्थितपदके संक्रामक जीव अनन्तगुणे हैं। मनुष्योंमें अवक्तव्यपदके संक्रामक जीव सबसे थोड़े हैं। उनसे संख्यातगुणवृद्धिके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं। उनसे संख्यातगुणहानिके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं। उनसे संख्यातभागवृद्धिके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं। उनसे संख्यातभागहानिके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे अवस्थितपदके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंमें जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि असंख्यातगुणेके स्थानमें संख्यातगुणा करना चाहिये। शेष सब मार्गणाओंमें भुजगारके समान भंग है।

इसप्रकार वृद्धिके समाप्त होनेपर प्रकृतिसंक्रमस्थान समाप्त हुआ।

इसप्रकार प्रकृतिसंक्रम समाप्त हुआ।

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

ट्ठिदिसंकमो अत्थाहियारो

तस्स णिवेदिय परिसुद्धभावकुसुमंजलिं जिणिंदस्स ।
ठिदिसंकमाहियारं जहाट्ठिदं वण्णइस्सामो ।। १ ।।

❀ ट्ठिदिसंकमो दुविहो—मूलपयडिट्ठिदिसंकमो उत्तरपयडिट्ठिदिसंकमो च ।

§ ४९५. एत्तो ट्ठिदिसंकमो पयडिसंकमाणंतरपरूवणाजोग्गो पत्तावसरो । सो च दुविहो मूलुत्तरपयडिट्ठिदिसंकमभेदेण । तत्थ मूलपयडीए मोहणीयसण्णिदाए जा ट्ठिदी तिस्से संकमो मूलपयडिट्ठिदिसंकमो उच्चइ । एवमुत्तरपयडिट्ठिदिसंकमो च वत्तव्वो । एवं दुविहत्तमावण्णस्स ट्ठिदिसंकमस्स परूवणट्ठमुत्तरपदं भणइ—

❀ तत्थ अट्ठपदं—जा ट्ठिदी ओकड्डिज्जदि वा उक्कड्डिज्जदि वा अण्णपयडिं संकामिज्जइ वा सो ट्ठिदिसंकमो । सेसो ट्ठिदिअसंकमो ।

§ ४९६. एत्थ मूलपयडिट्ठिदीए ओकड्डुक्कड्डणवसेण संकमो । उत्तरपयडिट्ठिदीए पुण ओकड्डुक्कड्डण-परपयडिसंकंतीहि संकमो दट्ठव्वो । एदेणोकड्डणादओ जिस्से ट्ठिदीए

स्थितिसंक्रम अर्थाधिकार

उस जिनेन्द्रको अतिनिर्मल भावरूपी कुसुमोंकी अंजलि अर्पण करके यथास्थित स्थितिसंक्रम अधिकारका वर्णन करूँगा ।। १ ।।

*** स्थितिसंक्रम दो प्रकारका है—मूलप्रकृतिस्थितिसंक्रम और उत्तरप्रकृतिस्थितिसंक्रम ।**

§ ४९५. अब इस प्रकृतिसंक्रम अनुयोगद्वारके बाद स्थितिसंक्रमका कथन अवसर प्राप्त है । मूलप्रकृतिस्थितिसंक्रम और उत्तरप्रकृतिस्थितिसंक्रमके भेदसे वह दो प्रकारका है । उनमेंसे मोहनीय नामक मूल प्रकृतिकी जो स्थिति है उसके संक्रमको मूलप्रकृतिस्थितिसंक्रम कहते हैं । इसी प्रकार उत्तरप्रकृतिस्थितिसंक्रम कहना चाहिये । इस प्रकार दो तरहके स्थितिसंक्रमका कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

*** स्थितिसंक्रमके विषयमें यह अर्थपद है—जो स्थिति अपकर्षित, उत्कर्षित और अन्य प्रकृतिरूपसे संक्रमित होती है वह स्थितिसंक्रम है और शेष स्थिति-असंक्रम है ।**

§ ४९६. यहाँ पर मूलप्रकृतिकी स्थितिका अपकर्षण और उत्कर्षणके कारण संक्रम होता है । किन्तु उत्तरप्रकृतिस्थितिका अपकर्षण, उत्कर्षण और परप्रकृतिसंक्रमके कारण संक्रम जानना

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णत्थि सा द्विदी द्विदिअसंकमो त्ति भण्णदे। एत्थ ताव ओकड्डणासंकमस्स सरूव-णिरूवणट्ठमुवरिमं पबंधमाह—

❀ ओकड्डित्ता कधं णिक्खिवदि ठिदिं।

§ ४९७. द्विदिमोकड्डिऊण हेट्ठा णिक्खिवमाणो कथं णिक्खिवइ त्ति पुच्छिदं होइ? एवं पुच्छिदे उदयावलियबाहिरद्विदिमादिं कादूण सव्वासिं द्विदीणमोकड्डणविहाणं परूवेमाणो उदयावलियबाहिराणंतरद्विदीए ओकड्डणा केरिसी होइ त्ति सिस्साहिप्पाय-मासंकिय पुच्छावक्कमाह—

❀ उदयावलियचरिमसमयअपविट्ठा जा द्विदी सा कथमोकड्डिज्जइ?

§ ४९८. एदिस्से द्विदीए अइच्छावणा णिक्खेवो वा किंपमाणो होइ त्ति पुच्छा कदा भवदि। एवं पुच्छिदत्थविसए णिण्णयजणणट्ठमुवरिमसुत्तमाह।

❀ तिस्से उदयादि जाव आवलियतिभागो ताव णिक्खेवो, आवलियाए वे-तिभागा अइच्छावणा।

§ ४९९. तं जहा—तमोकड्डिय उदयादि जाव आवलियतिभागो ताव णिक्खवदि। आवलियवे-तिभागमेत्तमुवरिमभागे अइच्छावेइ। तदो आवलियतिभागो तिस्से णिक्खेद-

---

चाहिये। इससे यह अभिप्राय भी प्रकट हो जाता है कि जिस स्थितिके अपकर्षण आदिक नहीं होते वह स्थिति स्थिति-असंक्रम कहलाती है। अब यहाँ पर अपकर्षणासंक्रमके स्वरूपका निरूपण करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

* स्थितिका अपकर्षण करके उसका निक्षेप किस प्रकार किया जाता है?

§ ४९७. स्थितिका अपकर्षण करके नीचेकी स्थितिमें निक्षेप करते समय उसका निक्षेप कैसे किया जाता है यह इस सूत्रद्वारा पृच्छा की गई है। इस प्रकारकी पृच्छा करने पर उदयावलिके बाहरकी स्थितिसे लेकर सब स्थितियोंके अपकर्षणकी विधिका निरूपण करते हुए सर्व प्रथम उदया-वलिके बाहर अनन्तर समयमें स्थित स्थितिका अपकर्षण किस प्रकार होता है इस प्रकार शिष्यके अभिप्रायको आशंकारूपसे ग्रहण करके आगेका पृच्छासूत्र कहते हैं—

* जो स्थिति उदयावलिके अन्तिम समयमें प्रविष्ट नहीं हुई है उसका अपकर्षण किस प्रकार होता है?

§ ४९८. इस स्थितिकी अतिस्थापनाका और निक्षेपका क्या प्रमाण है यह इस सूत्रद्वारा पृच्छा की गई है। इस प्रकार पूँछे गये अर्थका निर्णय करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

* उदय समयसे लेकर आवलिके तीसरे भागतक उस स्थितिका निक्षेप होता है और आवलिका शेष दो बटे तीन भाग अतिस्थापनारूप रहता है।

§. ४९९ खुलासा इस प्रकार है—उस स्थितिका अपकर्षण करके उदय समयसे लेकर आवलिके तीसरे भाग तक उसका निक्षेप करता है और आवलिके दो बटे तीन भागप्रमाण ऊपर के हिस्सेको अतिस्थापनारूपसे स्थापित करता है। इसलिए आवलिका तीसरा भाग उस अपकर्षित

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विसओ । आवलियवे-तिभागा च अइच्छावणा त्ति भण्णइ । कधमावलियाए कदजुम्म-संखाए तिभागो घेत्तुं सक्किज्जदे ? ण, रूवूणं काऊण तिहागीकरणादो । तम्हा समयूणा-वलियवे-तिभागा अइच्छावणा । समयूणावलियतिभागो रूवाहिओ णिक्खेवो त्ति णिच्छओ कायव्वो ।

§ ५००. संपहि एदम्मि विसए पदेसणिसेगकमजाणावणट्ठमुत्तरसुत्तमोइण्णं—

❀ उदए बहुअं पदेसग्गं दिज्जइ । तेण परं विसेसहीणं जाव आवलियतिभागो त्ति ।

§ ५०१. सुगममेदं सुत्तं । एवमुदयावलियबाहिराणंतरट्ठिदीए ओकड्डणाविहिं परूविय पुणो तदणंतरोवरिमट्ठिदिओकड्डणाए णाणत्तसंभवं पदुप्पाएदुमुत्तरसुत्तं भणइ—

❀ तदो जा विदिया[1] ट्ठिदी तिस्से वि तत्तिगो चेव णिक्खेवो । अइच्छावणा समयुत्तरा ।

§ ५०२. तदो पुव्वणिरुद्धट्ठिदीदो अणंतरा जा ट्ठिदी उदयावलियबाहिरविदियट्ठिदि त्ति उत्तं होइ । तिस्से वि तत्तिओ चेव णिक्खेवो होइ, तत्थ णाणत्ताभावादो । अइच्छावणा

स्थितिका निक्षेपका विषय है और आवलिका दो बटे तीन भाग अतिस्थापना है ऐसा यहाँ कहा गया है।

शंका—आवलिकी परिगणना कृतयुग्मसंख्यामें की गई है इसलिए उसका तीसरा भाग कैसे ग्रहण किया जा सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि आवलिमेंसे एक समय कम करके उसका तीसरा भाग किया है। इसलिए एक समय कम आवलिके दो बटे तीन भागप्रमाण अतिस्थापना है और एक समय कम आवलिका तीसरा भाग एक अधिक करने पर निक्षेप है ऐसा यहाँ निश्चय करना चाहिये।

§ ५००. अब इस विषयमें प्रदेशोंके निक्षेपके क्रमका ज्ञान करानेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

*** उदयमें बहुतसे प्रदेश दिये जाते हैं । उससे आगे आवलिका तीसरा भाग प्राप्त होने तक विशेषहीन विशेषहीन प्रदेश दिये जाते हैं ।**

§ ५०१. यह सूत्र सुगम है। इस प्रकार उदयावलिके बाहर अनन्तर समीपवर्ती स्थितिकी अपकर्षणविधिका कथन करके अब इस स्थितिसे अनन्तर उपरिम समयवर्ती स्थितिके अपकर्षणमें जो नानात्व सम्भव है उसका कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

*** इस स्थितिके बाद जो दूसरी स्थिति है उसका भी उतना ही निक्षेप होता है। किन्तु अतिस्थापना एक समय अधिक होती है ।**

§ ५०२. उस पूर्व विवक्षित स्थितिसे जो अनन्तर समयवर्ती स्थिति है अर्थात् उदयावलिके बाहर जो द्वितीय समयवर्ती स्थिति है उसका भी उतना ही निक्षेप होता है, क्योंकि उसमें कोई भेद

---

१. ता०प्रतौ जावदिया इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुण समयुत्तरा होइ । उदयावलियबाहिरट्ठिदीए वि एदिस्से अइच्छावणाभावेण पवेसदंसणादो[1] ।

❀ एवमइच्छावणा समुत्तरा। णिक्खेवो तत्तिगो चेव उदयावलिय बाहिरादो आवलियतिभागंतिमट्ठिदि त्ति।

§ ५०३. एवमवट्ठिदेण णिक्खेवेण समयुत्तराए च अवट्ठिदाइच्छावणाए ताव णेदव्वं जाव उदयावलियबाहिरादो जहण्णणिक्खेवमेत्तट्ठिदीओ अइच्छावणाभावेण पइट्ठाओ त्ति । तइत्थीए ट्ठिदीए आइच्छावणा संपुण्णिया आवलिया णिक्खेवो जहण्णओ चेव । कइत्थओ वुण सो ट्ठिदिविसेसो ? उदयावलियबाहिरादो आवलियतिभागंतिमो । एत्थावलियतिभागग्गहणेण समयूणावलियतिभागो समयुत्तरो घेत्तव्वो । तदंतिमग्गहणेण च तदणंतरुवरिमट्ठिदिविसेसो गहेयव्वो । तम्हा उदयावलियबाहिरादो जहण्णणिक्खेवमेत्तीओ ट्ठिदीओ उल्लंघिय ट्ठिदाए ट्ठिदीए संपुण्णावलियमेत्ती अइच्छावणा होइ त्ति सुत्तस्स भावत्थो । संपहि एत्तो उवरि अवट्ठिदाए अइच्छावणाए णिक्खेवो चेव वड्ढदि त्ति परूवेदुमुत्तरसुत्तमाह—

नहीं है । किन्तु अतिस्थापना एक समय अधिक होती है, क्योंकि उदयावलिके बाहरकी स्थितिमें भी इसका अतिस्थापनारूपसे प्रवेश देखा जाता है ।

*** इस प्रकार अतिस्थापना एक एक समय अधिक होती जाती है और निक्षेप उदयावलिके बाहर आवलिके तीसरे भागकी अन्तिम स्थिति तककी स्थितियोंके प्राप्त होने तक उतना ही रहता है।**

§ ५०३. इस प्रकार अतिस्थापनामें उदयावलिके बाहरसे जघन्य निक्षेपप्रमाण स्थितियोंके प्रविष्ट होने तक निक्षेपको अवस्थितरूपसे ले जाना चाहिये और अतिस्थापनाको उत्तरोत्तर एक एक समय अधिकके क्रमसे अनवस्थितरूपसे ले जाना चाहिये । फिर वहाँ जो स्थिति प्राप्त होती है उसकी अतिस्थापना पूरी एक आवलिप्रमाण होती है और निक्षेप जघन्य ही रहता है ।

शंका—जिस स्थितिविशेषके प्राप्त होनेपर अतिस्थापना पूरी एक आवलिप्रमाण होती है वह स्थितिविशेष किस स्थानमें प्राप्त होता है ।

समाधान—उदयावलिके बाहर आवलिके तीसरे भागका जो अन्तिम समय है वहाँ वह स्थितिविशेष प्राप्त होता है ।

यहाँ सूत्रमें जो 'आवलियतिभाग' पदका ग्रहण किया है सो इससे एक समय कम आवलिका एक समय अधिक त्रिभाग लेना चाहिये । और सूत्रमें जो 'तदंतिम' पदका ग्रहण किया है सो इससे तदनन्तर उपरिम स्थितिविशेषका ग्रहण करना चाहिए । अतः उदयावलिके बाहर जघन्य निक्षेपप्रमाण स्थितियोंको उल्लंघन करके जो स्थिति स्थित है उसके प्राप्त होने तक पूरी एक आवलिप्रमाण अतिस्थापना होती है यह इस सूत्रका भावार्थ है । अब इससे आगे अतिस्थापना तो अवस्थित रहती है किन्तु निक्षेप ही बढ़ता है इस बातका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

---

१. ता०–आ०प्रत्योः पदेसदंसणादो इति पाठः ।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

❀ तेण परं णिक्खेवो वड्ढइ। अइच्छावणा आवलिया चेव।

§ ५०४. तत्तो परं णिक्खेवो वड्ढइ, जहण्णणिक्खेवादो समयुत्तरादिकमेण जावुक्कस्सणिक्खेवो ताव वड्ढीए विरोहाभावादो। अइच्छावणा आवलिया चेव, णिव्वाघाद-परूवणाए संतपयडिस्स पज्जत्तादो। संपहि जहण्णणिक्खेवो समयुत्तरकमेण वड्ढंतओ केत्तियमुवरिं चढिऊणावलियमेत्तो होइ त्ति पुच्छिदे उच्चदे—उदयसमयप्पहुडि समयाहियदोआवलियमेत्तमुवरिं घेत्तूण तदित्थसमयावट्ठिदट्ठिदीए अइच्छावणा णिक्खेवो च आवलियमेत्तो होइ। तप्पज्जंताणं च सव्वासिमुदयावलियबाहिरट्ठिदीणमुदयावलिय-ब्भंतरे चेव पदेसणिक्खेवो त्ति तदोकड्डणा असंखेज्जलोगपडिभागीया। तं कधं? विवक्खिदट्ठिदिपदेसग्गमोकड्डुक्कड्डणभागहारगुणिदासंखेज्जलोगभागहारेण खंडिय तत्थेय-खंडं घेत्तूण एत्थोवट्टदि। तदो विसेसहीणं जा उदयावलियचरिमसमओ त्ति। एस कमो जासिमुदयावलियगब्भे चेव पदेसणिक्खेवो तासिं ट्ठिदीणं परूविदो। एत्तो उवरि णाणत्तं वत्तइस्सामो। तं जहा—तदणंतरोवरिमट्ठिदिं दिवड्ढगुणहाणिगुणिदोकड्डुक्कड्डण-भागहारेण खंडिय तत्थेयखंडमेत्तमेत्थोकड्डणदव्वं होइ। पुणो एदमसंखेज्जलोगेहि भागं घेत्तूणेयभागमुदयावलियब्भंतरे देंतो उदए बहुअं[2] देदि। तत्तो विसेसहीणं। एवं ताव जाव

* उससे आगे निक्षेप बढ़ता है और अतिस्थापना एक आवलिप्रमाण ही रहती है।

§ ५०४. फिर उससे आगे निक्षेप बढ़ता है, क्योंकि उत्कृष्ट निक्षेपके प्राप्त होने तक जघन्य निक्षेपसे आगे एक एक समय अधिकके क्रमसे निक्षेपकी वृद्धि होनेमें कोई विरोध नहीं आता है। किन्तु अतिस्थापना एक आवलि ही रहती है, क्योंकि निर्व्याघात प्ररूपणामें सत्त्वप्रकृति पर्याप्त है। जघन्य निक्षेप एक एक समय बढ़ते हुये कितने समय आगे जाकर वह एक आवलिप्रमाण होता है ऐसा पूछने पर कहते हैं—उदय समयसे लेकर एक समय अधिक दो आवलिप्रमाण स्थान आगे जाकर वहाँ अन्तिम समयमें जो स्थिति अवस्थित है उसके प्राप्त होनेपर अतिस्थापना और निक्षेप ये दोनों ही एक आवलिप्रमाण होते हैं। वहाँ तक उदयावलिके बाहर जितनी भी स्थितियाँ हैं उन सब स्थितियोंके प्रदेशोंका उदयावलिके भीतर ही निक्षेप होता है। तथा इन स्थितियोंका अपकर्षण असंख्यातलोकप्रमाण प्रतिभागके क्रमसे होता है। वह कैसे—विवक्षित स्थितिके कर्म परमाणुओंमें अपकर्षण-उत्कर्षण भागहारसे गुणित असंख्यात लोकप्रमाण भागहारका भाग देने पर जो एक भाग लब्ध आवे उसका यहाँ अपवर्तन होता है। उसमें भी उदय समयमें जो द्रव्य प्राप्त होता है उससे उदयावलिके अन्तिम समय तक विशेष हीन विशेष हीन द्रव्य प्राप्त होता है। किन्तु यह क्रम जिन स्थितियोंका द्रव्य उदयावलिके भीतर ही निक्षिप्त होता है उन्हीं स्थितियोंके सम्बन्धमें कहा है। अब इससे आगे नानात्वको बतलाते हैं। यथा—तदनन्तर आगेकी स्थितिमें डेढ़ गुणहानिसे गुणित अपकर्षण-उत्कर्षण भागहारका भाग देने पर जो एक भागप्रमाण द्रव्य लब्ध आता है उतना यहाँ अपकर्षणको प्राप्त हुआ द्रव्य होता है। पुनः इसमें असंख्यात लोकका भाग देने पर जो एक भागप्रमाण द्रव्य प्राप्त होवे उसे उदयावलिके भीतर निक्षिप्त करता हुआ उदय समयमें बहुत देता है। उससे आगे

१. ता०–आ०प्रत्योः तेण पदणिक्खेवो इति पाठः। २. आ०–ता०प्रत्योः त्थोवं इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उदयावलियचरिमसमओ त्ति । पुणो तदणंतरोवरिमाए एक्किस्से उदयावलियबाहिरट्ठिदीए पुव्वोकड्डिददव्वस्सासंखेज्जे भागे णिक्खिवदि, तत्तो उवरि अइच्छावणाविसए णिक्खेवसंभवाभावादो । एसा परूवणा उदयादो समयाहियदोआवलियमेत्तमुल्लंघिय परदो वट्ठिदाए ट्ठिदीए कदा । संपहि उदयादो पहुडि दुसमयाहियदोआवलियमेत्तमुल्लंघिय परदो अवट्ठिदाए वि ट्ठिदीए एसो चेव कमो । णवरि तिस्से ट्ठिदीए ओकड्डणादव्वस्स असंखेज्जलोगपडिभागियभागमुदयावलियब्भंतरे पुव्वं व णिक्खिविय सेसासंखेज्जे भागे घेत्तूणुदयावलियबाहिराणंतरट्ठिदीए बहुअं णिक्खिवदि तदणंतरोवरिमट्ठिदीए तत्तो विसेसहीणं सव्वमेव णिक्खिवदि । सव्वत्थ विसेसहाणिभागहारो पलिदोवमासंखेज्जभागमेत्तो । एवमेगुत्तरकमेण णिक्खेवं वड्डाविय उवरिमट्ठिदीणं पि परूवणा एवं चेव अणुगंतव्वा । सव्वत्थ वि ओकड्डिदट्ठिदिं मोत्तूण तदणंतरहेट्ठिमट्ठिदिप्पहुडि आवलियमेत्ता अइच्छावणा घेत्तव्वा । भागहारविसेसो च सव्वत्थ णायव्वो, सव्वासिं ट्ठिदीणमोकड्डणभागहारस्स सरिसत्ताणुवलंभादो । एवं ताव णेदव्वं जाव उक्कस्सओ णिक्खेवो त्ति । तस्स पमाणाणुगममुवरि कस्सामो । एवं णिव्वाघादेणोकड्डणाए अत्थपदपरूवणा कया । को णिव्वाघादो णाम ? ट्ठिदिखंडयघादस्साभावो ।

§ ५०५. संपहि वाघादविसयाइच्छावणाए परूवणट्ठमिदमाह—

उदयावलिके अन्तिम समयके प्राप्त होने तक विशेषहीन विशेषहीन द्रव्य देता है। फिर इससे आगेकी उदयावलिके बाहरकी एक स्थितिमें पूर्वमें अपकर्षित हुए द्रव्यके असंख्यात बहुभागका निक्षेप करता है, क्योंकि इससे आगेकी स्थितियाँ अतिस्थापनासम्बन्धी हैं अतः उनमें निक्षेप नहीं हो सकता। यह प्ररूपणा उदय समयसे लेकर एक समय अधिक दो आवलियोंको उल्लंघन करके आगे जो स्थिति अवस्थित है उसकी अपेक्षासे की है। अब उदय समयसे लेकर दो समय अधिक दो आवलिप्रमाण स्थितियोंको उल्लंघन करके इससे आगे जो स्थिति स्थित है उसकी अपेक्षासे भी यही क्रम जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि उस स्थितिका जो अपकर्षण द्रव्य है उसमें असंख्यात लोकका भाग देकर जो एक भाग आवे उसे उदयावलिके भीतर पहलेके समान निक्षिप्त करके शेष असंख्यात बहुभागप्रमाण द्रव्यको ग्रहण करके इसमेंसे उदयावलिके बाहर प्रथम स्थितिमें बहुत द्रव्यको निक्षिप्त करता है और उससे अनन्तरवर्ती आगेकी स्थितिमें विशेषहीन सब द्रव्यका निक्षेप करता है। यहाँ सर्वत्र विशेषहानिका भागहार पल्यका असंख्यातवां भागप्रमाण जानना चाहिये। इस प्रकार उत्तरोत्तर एक एक निक्षेपको बढ़ाकर आगेकी स्थितियोंका कथन भी इसी प्रकार जानना चाहिये। मात्र सर्वत्र अपकर्षित स्थितिको छोड़कर उससे नीचे अनन्तरवर्ती स्थितिसे लेकर एक आवलिप्रमाण अतिस्थापना ग्रहण करनी चाहिये। तथा भागहारविशेषको भी सर्वत्र जान लेना चाहिये, क्योंकि सब स्थितियोंका अपकर्षण भागहार एक समान नहीं पाया जाता। इस प्रकार उत्कृष्ट निक्षेपके प्राप्त होने तक कथन करना चाहिये। उत्कृष्ट निक्षेपके प्रमाणका विचार आगे करेंगे। इस प्रकार निर्व्याघातरूपसे अपकर्षणाके अर्थपदका कथन किया।

शंका—निर्व्याघात किसे कहते हैं ?

समाधान—स्थितिकाण्डकघातका अभाव निर्व्याघात कहलाता है।

§ ५०५. अब व्याघातविषयक अतिस्थापनाका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

❀ वाघादेण अइच्छावणा एक्का, जेणावलिया अदिरित्ता होइ ।

§ ५०६. वाघादविसया एक्का अइच्छावणा संभवइ, जेणावलिया अदिरित्ता लब्भइ । तिस्से पमाणणिण्णयमिदाणिं कस्सामो त्ति पइण्णावक्कमेदं ।

❀ तं जहा ।

§ ५०७. सुगममेदं पुच्छावक्कं ।

❀ ट्ठिदिघादं करेंतेण खंडयमागाइदं ।

§ ५०८. जेण ट्ठिदिघादं करेंतेण ट्ठिदिखंडयमागाइदं । तस्स वाघादेणुक्कस्सिया अइच्छावणा आवलियादिरित्ता होइ त्ति सुत्तत्थसंबंधो । जइ वि सव्वत्थेव ट्ठिदिखंडए आवलियादिरित्ता अइच्छावणा लब्भइ तो वि उक्कस्सट्ठिदिखंडयस्सेव गहणमिह कायव्वं, एसा उक्कस्सिया अइच्छावणा वाघादे त्ति उवसंहारवक्कदंसणादो । तं पुण उक्कस्सयं ट्ठिदिखंडयं केवडियं ? जावदिया उक्कस्सिया कम्मट्ठिदी अंतोकोडाकोडीए ऊणिया तत्तियमेत्तमुक्कस्सयं ट्ठिदिखंडयं । किमेदम्मि ट्ठिदिखंडए आगाइदे पढमसमयप्पहुडि सव्वत्थेव उक्कस्सिया अइच्छावणा होइ आहो अत्थि को विसेसो त्ति आसंकिय विसेस-संभवपदुप्पायणट्ठमुवरिमो सुत्तोवण्णासो—

※ व्याघातकी अपेक्षा एक अतिस्थापना होती है, कारण कि वह एक आवलिसे अतिरिक्त होती है ।

§ ५०६ व्याघात विषयक एक अतिस्थापना सम्भव है, कारण कि वह एक आवलिसे अतिरिक्त प्राप्त होती है । अब उसके प्रमाणका निर्णय करते हैं इस प्रकार यह प्रतिज्ञावाक्य है ।

※ यथा—

§ ५०७. यह पृच्छासूत्र सुगम है ।

※ स्थितिका घात करते हुए जिसने स्थितिकाण्डकको ग्रहण किया है ।

§ ५०८. जिसने स्थितिका घात करते हुए स्थितिकाण्डकको ग्रहण किया है उसके व्याघात-की अपेक्षा उत्कृष्ट अतिस्थापना एक आवलिसे अधिक होती है यह इस सूत्रका तात्पर्य है । यद्यपि सर्वत्र ही स्थितिका घात होते समय एक आवलिसे अधिक अतिस्थापना प्राप्त होती है तो भी यहाँ पर उत्कृष्ट स्थितिकाण्डकका ही ग्रहण करना चाहिये, क्योंकि यह उत्कृष्ट अतिस्थापना व्याघातके समय होती है इस प्रकार यह उपसंहार वाक्य देखा जाता है ।

शंका—वह उत्कृष्ट स्थितिकाण्डक कितना है ?

समाधान—जितनी उत्कृष्ट कर्मस्थिति है उसमेंसे अन्तःकोड़ाकोड़ीके कम कर देने पर जो स्थिति शेष रहे उतना उत्कृष्ट स्थितिकाण्डक होता है ।

क्या इस स्थितिकाण्डकके ग्रहण करने पर प्रथम समयसे लेकर सर्वत्र ही उत्कृष्ट अति-स्थापना होती है या इसमें कोई विशेषता है इस प्रकारकी आशंका करके इसमें जो विशेष सम्भव है उसका कथन करनेके लिए आगेके सूत्रका उपन्यास करते हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

❀ तत्थ जं पढमसमए उक्कीरदि पदेसग्गं तस्स पदेसग्गस्स आवलियाए अइच्छावणा।

§ ५०९. तत्थ तम्मि ट्ठिदिखंडए पारद्धे अंतोमुहुत्तमेत्ती उक्कीरणद्धा होइ तत्तियमेत्ताओ च ट्ठिदिखंडयफालीओ पडिसमयघादणपडिबद्धाओ। तत्थ पढमसमए जं पदेसग्गमुक्कीरिज्जइ तस्स अइच्छावणा आवलियाए परिच्छिण्णपमाणा भवदि। अज्ज वि सव्वासिं खंडयभावेण गहिदाणं ट्ठिदीणं सुण्णत्ताभावेण वाघादाभावादो। तदो णिव्वाघादविसया चेव परूवणा एत्थ वि कायव्वा।

❀ एवं जाव दुचरिमसमयअणुक्किण्णखंडगं ति।

§ ५१०. एवं ताव णेदव्वं जाव दुचरिमसमयाणुक्किण्णयं ट्ठिदिखंडयं ति उत्तं होइ। चरिमसमए पुण णाणत्तमत्थि त्ति पदुप्पायिदुमुवरिमो सुत्तविण्णासो—

❀ चरिमसमए जा खंडयस्स अग्गट्ठिदी तिस्से अइच्छावणा खंडयं समयूणं।

§ ५११. उक्कस्सट्ठिदिखंडयघादचरिमसमए जा सा खंडयस्स अग्गट्ठिदी तिस्से अइच्छावणा समयूणखंडयमेत्ती होइ। कुदो ? तम्मि समए ट्ठिदिखंडयंतब्भाविणीणं सव्वासिमेव ट्ठिदीणं वाघादेण हेट्ठा घादणदंसणादो। तम्हा एदिस्से ट्ठिदीए समयूणुक्कस्सखंडयमेत्ती अइच्छावणा होइ त्ति सिद्धं। कुदो समयूणत्तं ? अग्गट्ठिदीए ओकड्डिज्ज-

---

*** वहाँ जो प्रदेशाग्र प्रथम समयमें उत्कीर्ण होता है उस प्रदेशाग्रकी अतिस्थापना एक आवलिप्रमाण होती है।**

§ ५०९. वहाँ उस स्थितिकाण्डकका प्रारम्भ करने पर उत्कीरण काल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण होता है और प्रति समय होनेवाले घातसे सम्बन्ध रखनेवाली स्थितिकाण्डककी फालियाँ भी उतनी ही होती हैं। उसमेंसे प्रथम समयमें जो प्रदेशाग्र उत्कीर्ण होता है उसकी अतिस्थापना एक आवलिप्रमाण होती है, क्योंकि काण्डकरूपसे ग्रहण की गई इन सब स्थितियोंका अभी अभाव नहीं होनेसे इनका व्याघात नहीं होता, इसलिए यहाँ पर भी निर्व्याघातविषयक प्ररूपणा करनी चाहिये।

*** इस प्रकार अनुत्कीर्ण स्थितिकाण्डकके द्विचरम समयके प्राप्त होने तक जानना चाहिए।**

§ ५१०. इस प्रकार द्विचरम समयवर्ती अनुत्कीर्ण स्थितिकाण्डकके प्राप्त होने तक जानना चाहिये यह उक्त कथनका तात्पर्य है। किन्तु अन्तिम समयमें कुछ भेद है इसलिये उसका कथन करनेके लिये आगेके सूत्रका निक्षेप करते हैं—

*** अन्तिम समयमें काण्डककी जो अग्रस्थिति है उसकी अतिस्थापना एक समय कम काण्डकप्रमाण होती है।**

§ ५११. उत्कृष्ट स्थितिकाण्डकघातके अन्तिम समयमें जो काण्डककी अग्रस्थिति होती है उसकी अतिस्थापना एक समयकम काण्डकप्रमाण होती है, क्योंकि उस अन्तिम समयमें स्थितिकाण्डकके भीतर आई हुई सभी स्थितियोंका व्याघातके कारण घात देखा जाता है, इसलिये इस

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

भाणीए अइच्छावणाबहिब्भावदंसणादो ।

❀ एसा उक्कस्सिया अइच्छावणा वाघादे ।

§ ५१२. एसा अणंतरपरूविदा समयूणुक्कस्सट्ठिदिखंडयमेत्ती उक्कस्साइच्छावणा वाघादे ट्ठिदिखंडयविसए चेव होइ, णाण्णत्थे त्ति उत्तं होइ ।

स्थितिकी एक समयकम उत्कृष्ट काण्डकप्रमाण अतिस्थापना होती है यह सिद्ध हुआ ।

शंका—इस अतिस्थापनाको एक समय कम क्यों कहा ?

समाधान—क्योंकि अपकर्षणको प्राप्त होनेवाली अग्रस्थिति अतिस्थापनासे बहिर्भूत देखी जाती है ।

*** यह उत्कृष्ट अतिस्थापना व्याघातके होनेपर होती है ।**

§ ५१२. यह जो पहले एक समयकम उत्कृष्ट स्थितिकाण्डप्रमाण उत्कृष्ट अतिस्थापना कही है वह स्थितिकाण्डकविषयक व्याघातके होनेपर ही होती है, अन्यत्र नहीं होती यह उक्त कथनका तात्पर्य है ।

विशेषार्थ—यहाँ स्थितिसंक्रमके विषयमें विचार करते हुए सर्व प्रथम स्थितिअपकर्षणके स्वरूपका निर्देश किया गया है । स्थितिके घटनेको स्थितिअपकर्षण कहते हैं । यह स्थिति अपकर्षण अव्याघात और व्याघातके भेदसे दो प्रकारका है । स्थितिकाण्डक घातके बिना जो स्थिति घटती है वह अव्याघातविषयक स्थितिअपकर्षण है और स्थितिकाण्डकघातके द्वारा इसके अन्तिम समयमें जो स्थिति घटती है वह व्याघातविषयक स्थितिअपकर्षण है । स्थिति उत्कीरणकाल यद्यपि अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है तथापि यह व्याघातविषयक स्थिति अपकर्षण उसके अन्तिम समयमें ही प्राप्त होता है, क्योंकि स्थितिकाण्डकसम्बन्धी सम्पूर्ण स्थितिका पात अन्तिम समयमें ही देखा जाता है। अतएव स्थिति-काण्डकके उत्कीरणकालके अन्तिम समयके सिवा शेष सब समयोंमें जो अपकर्षण होता है उसे अव्या-घातविषयक स्थितिअपकर्षण जानना चाहिये । अब इन दोनों अवस्थाओंमें होनेवाले स्थिति-अपकर्षणमें निक्षेप और अतिस्थापनाका प्रमाण बतलाते हैं । उत्कर्षित या अपकर्षित द्रव्यको ग्रहण करनेके योग्य जिन स्थितियोंमें उत्कर्षित या अपकर्षित द्रव्यका पतन होता है उनकी निक्षेप संज्ञा है । तथा उत्कर्षण और अपकर्षणको प्राप्त होनेवाली स्थितियों और निक्षेपके मध्यमें स्थित जिन स्थितियोंमें उत्कर्षित या अपकर्षित द्रव्यका निक्षेप नहीं होता है उन स्थितियोंकी अतिस्थापना संज्ञा है । अव्याघात विषयक अपकर्षणके समय जघन्य निक्षेप एक समय कम आवलिका एक समय अधिक त्रिभाग प्रमाण है । यह निक्षेप उदयावलिसे उपरितन प्रथम समयवर्ती स्थितिका अपकर्षण होने पर प्राप्त होता है । उत्कृष्ट निक्षेप एक समय अधिक दो आवलिसे न्यून उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है, क्योंकि उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके बन्धावलिके बाद अग्रस्थितिका अपकर्षण होने पर उक्तप्रमाण उत्कृष्ट निक्षेप पाया जाता है । इसी प्रकार प्रकृतमें जघन्य अतिस्थापना एक समय कम आवलिके दो बटे तीन भागप्रमाण है, क्योंकि उदयावलिके उपरितन प्रथम समयवर्ती स्थितिका अपकर्षण होने पर उक्त प्रमाण अतिस्थापना देखी जाती है । तथा अव्याघातविषयक उत्कृष्ट अतिस्थापना एक आवलिप्रमाण है, क्योंकि उदयावलिके ऊपर एक समय कम आवलिके त्रिभागसे लेकर आगे जितनी भी स्थितियोंका अव्याघातविषयक अपकर्षण होता है वहाँ सर्वत्र एक आवलिप्रमाण अतिस्थापना देखी जाती है । मात्र स्थितिकाण्डकघातके समय जघन्य अतिस्थापना सर्वत्र एक आवलिप्रमाण होती है, क्योंकि स्थितिकाण्डकघातके समय जितनी स्थितियोंका अपकर्षण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ५१३. एवमेदं परूविय संपहि जहण्णुक्कस्सणिक्खेवाइच्छावणादिपदाणमप्पाबहुअणिण्णयं कुणमाणो सुत्तमुत्तरं भणइ—

❀ तदो सव्वत्थोवो जहण्णओ णिक्खेवो ।

§ ५१४. आवलियतिभागपमाणत्तादो ।

❀ जहण्णिया अइच्छावणा दुसमयूणा दुगुणा ।

§ ५१५. जहण्णाइच्छावणा णाम आवलियवे-तिभागा । तदो तत्तिभागादो वे-तिभागाणं दुगुणत्तं होउ णाम, विरोहाभावादो । कथं पुण दुसमयूणत्तं ? उच्चदे— आवलिया णाम कदजुम्मसंखा । तदो तिभागं सुद्धं ण एदि त्ति रूवमवणिय तिभागो घेत्तव्वो, तत्थावणिदरूवेण सह तिभागो जहण्णणिक्खेवो वे-तिभागा अइच्छावणा । एदेण कारणेण समयाहियतिभागे दुगुणिदे जहण्णाइच्छावणादो दुरूवाहियमुप्पज्जइ । तम्हा दुसमयूणा दुगुणा त्ति सुत्ते वुत्तं ।

होता है, उन सम्बन्धी अन्तर्मुहूर्तप्रमाण उत्कीरण कालके उपान्त्य समय तक अपकर्षित होनेवाले द्रव्यका निक्षेप अपने नीचेकी एक आवलिप्रमाण स्थितियोंको अतिस्थापित कर शेष सब स्थितियोंमें होता है। तथा उत्कृष्ट अतिस्थापना एक समय कम काण्डकप्रमाण होती है जो कि स्थितिकाण्डककी अग्र स्थितिकी जाननी चाहिये, क्योंकि जिस समय स्थितिकाण्डककी अन्तिम फालिका पतन होता है उस समय काण्डकके अन्तर्गत स्थित स्थितियोंमें अपकर्षित होनेवाले द्रव्यका निक्षेप होना सम्भव नहीं है। कारण कि उस समय उनका अभाव हो जाता है। इस प्रकार निर्व्याघात और व्याघातविषयक निक्षेप और अतिस्थापना कहाँ कितनी प्राप्त होती है इसका संक्षेपमें विचार किया।

§ ५१३. इस प्रकार अपकर्षणका कथन करके अब जघन्य और उत्कृष्ट निक्षेप तथा जघन्य और उत्कृष्ट अतिस्थापना आदि पदोंके अल्पबहुत्वका निर्णय करते हुए आगेका सूत्र कहते हैं—

*** जघन्य निक्षेप सबसे स्तोक है ।**

§ ५१४. क्योंकि वह आवलिके तीसरे भागप्रमाण है ।

*** उससे जघन्य अतिस्थापना दो समय कम दूनी है ।**

§ ५१५. **शंका**—जघन्य अतिस्थापना एक आवलिके दो बटे तीन भागप्रमाण होती है, इसलिये एक आवलिके तीसरे भागसे दो बटे तीन भाग दूना भले ही रहा आवे, क्योंकि इसमें कोई विरोध नहीं है। किन्तु वह दूनेसे दो समय कम कैसे हो सकती है ?

समाधान—आवलिकी परिगणना कृतयुग्म संख्यामें की गई है, इसलिये उसका शुद्ध तीसरा भाग नहीं आता है, अतः आवलिमेंसे एक कम करके उसका तीसरा भाग ग्रहण करना चाहिये। अब यहां आवलिमेंसे जो एक कम किया गया है उसको त्रिभागमें मिला देने पर जघन्य निक्षेप होता है और एक कम आवलिका दो बटे तीन भागप्रमाण अतिस्थापना होती है। इस कारणसे एक समय अधिक त्रिभागको दूना करने पर जघन्य अतिस्थापनासे यह संख्या दो अधिक पाई जाती है। इसी कारण सूत्रमें निक्षेपकी अपेक्षा अतिस्थापनाको दो समय कम दूनी कहा है।

उदाहरण—आवलि १६;

१६ − १ = १५; १५ ÷ ३ = ५; ५ + १ = ६ जघन्य निक्षेप ।

१६ − ६ = १० जघन्य अतिस्थापना; या ६ + २ = १२ − २ = १० जघन्य अतिस्थापना ।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

❀ णिव्वाघादेण उक्कस्सिया अइच्छावणा विसेसाहिया।

§ ५१६. केत्तियमेत्तेण ? समयाहियदुभागमेत्तेण।

❀ वाघादेण उक्कस्सिया अइच्छावणा असंखेज्जगुणा।

§ ५१७. कुदो ? अंतोकोडाकोडीपरिहीणकम्मट्ठिदिपमाणत्तादो।

❀ उक्कस्सयं ट्ठिदिखंडयं विसेसाहियं।

§ ५१८. अग्गट्ठिदीए वि एत्थ पवेसदंसणादो।

❀ उक्कस्सओ णिक्खेवो विसेसाहिओ।

§ ५१९. कुदो ? उक्कस्सट्ठिदिं बंधिय बंधावलियं वोलाविय अग्गट्ठिदिमोकड्डिऊणा-वलियमेत्तमइच्छाविय उदयपज्जंतं णिक्खिवमाणस्स समयाहियदोआवलियूणकम्म-ट्ठिदिमेत्तुक्कस्सणिक्खेवसंभवोवलंभादो।

❀ उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो विसेसाहिओ।

इस उदाहरणसे स्पष्ट हो जाता है कि जघन्य निक्षेपको दूना करने पर जो १२ प्राप्त हुआ है उसमेंसे २ कम करने पर जघन्य अतिस्थापना होती है।

*** उससे निर्व्याघातसे प्राप्त हुई उत्कृष्ट अतिस्थापना विशेष अधिक है।**

§ ५१६. कितनी अधिक है ? जघन्य अतिस्थापनाके द्वितीय भाग अर्थात् आधेमें एक समयके जोड़ देने पर जितना प्रमाण हो उतनी अधिक है।

उदाहरण—जघन्य अतिस्थापना १०; उसका आधा ५;

५ + १ = ६; १० + ६ = १६ उत्कृष्ट अतिस्थापना।

*** उससे व्याघातविषयक उत्कृष्ट अतिस्थापना असंख्यातगुणी है।**

§ ५१७. क्योंकि इसका प्रमाण अन्तःकोडाकोडीकम कर्मस्थितिप्रमाण है।

उदाहरण—असंख्यात २५६;

१६ × २५६ = ४०९६ व्याघातसे प्राप्त हुई उत्कृष्ट अतिस्थापना।

*** उससे उत्कृष्ट स्थितिकाण्डक विशेष अधिक है।**

§ ५१८. क्योंकि इसमें अग्रस्थितिका भी अन्तर्भाव देखा जाता है।

उदाहरण—४०९६ + १ अग्रस्थिति = ४०९७ उत्कृष्ट स्थितिकाण्डक।

*** उससे उत्कृष्ट निक्षेप विशेष अधिक है।**

§ ५१९. क्योंकि उत्कृष्ट स्थितिको बाँधकर और बन्धावलिको बिताकर फिर अग्रस्थितिका अपकर्षण करके अतिस्थापनाकी एक आवलिको छोड़कर उदय पर्यन्त उस अपकर्षित द्रव्यका निक्षेप करनेवाले जीवके उत्कृष्ट निक्षेपका प्रमाण एक समय अधिक दो आवलिसे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण उपलब्ध होता है।

उदाहरण—कर्मस्थिति ४८००; एक समय अधिक दो आवलि ३३;

४८०० − ३३ = ४७६७ उत्कृष्ट निक्षेप।

*** उससे उत्कृष्ट स्थितिबन्ध विशेष अधिक है।**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ५२०. समयाहियदोआवलियमेत्तट्ठिदीणमेत्थ पवेसदंसणादो ।

§ ५२१. एवमोकड्डणासंकमस्स अट्ठपदपरूवणा समत्ता । संपहि उक्कड्डणासंकमस्स अट्ठपदपरूवणट्ठमुत्तरसुत्तावयारो—

❀ जाओ बज्झंति ट्ठिदीओ तासिं ट्ठिदीणं पुव्वणिबद्धट्ठिदिमहिकिच्च णिव्वाघादेण उक्कड्डणाए अइच्छावणा आवलिया ।

§ ५२२. एदस्स सुत्तस्स अत्थो परूविज्जदे । तं जहा—उक्कड्डणा णाम कम्मपदेसाणं पुव्विल्लट्ठिदीदो अहिणवबंधसंबंधेण ट्ठिदिवड्ढावणं । सा पुण दुविहा—णिव्वाघादविसया वाघादविसया चेदि । जत्थावलियमेत्ताइच्छावणाए आवलियअसंखेज्जदिभागादिणिक्खेव-पडिबद्धाए पडिघादो णत्थि तम्मि णिव्वाघादभावो णाम भवदि, आवलियमेत्ताइच्छावणाए तारिसणिक्खेवसहगदाए पडिघादस्स वाघादत्तेणेह विवक्खियत्तादो । कम्मि विसए एवंविहो विघादो णत्थि ? उच्चदे—जत्थ संतकम्मादो उवरि समउत्तरादिकमेण ट्ठिदिबंधो वड्ढमाणो आवलियासंखेज्जभागसहिदावलियमेत्तो वड्ढिओ होइ तत्तो पहुडि उवरि सव्वत्थेव णिव्वाघादविसओ जाव उक्कस्सट्ठिदिबंधो त्ति । एवंविहणिव्वाघादपरूवणापडिबद्धमेदं सुत्तं । तत्थ जाओ बज्झंति ट्ठिदीओ तासिमुवरि पुव्वणिबद्धट्ठिदी उक्कड्डिज्जदि । तिस्से

---

§ ५२०. क्योंकि उत्कृष्ट निक्षेपके प्रमाणसे एक समय अधिक दो आवलिप्रमाण स्थितियोंकी इसमें वृद्धि देखी जाती है ।

उदाहरण—उत्कृष्ट निक्षेप ४७६७; एक समय अधिक दो आवलि ३३; ४७६७ + ३३ = ४८०० उत्कृष्ट स्थितिबन्ध ।

§ ५२१. इस प्रकार अपकर्षण संक्रमके अर्थपदका कथन समाप्त हुआ । अब उत्कर्षण संक्रमके अर्थपदका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

*** जो स्थितियां बंधती हैं उन स्थितियोंकी, पूर्वमें बंधी हुई स्थितियोंका निर्व्याघातविषयक उत्कर्षण होने पर, अतिस्थापना एक आवलिप्रमाण होती है ।**

§ ५२२. अब इस सूत्रका अर्थ कहते हैं । यथा—नवीन बन्धके सम्बन्धसे पूर्वकी स्थितिमेंसे कर्मपरमाणुओंकी स्थितिका बढ़ाना उत्कर्षण है । उसके दो भेद हैं—निर्व्याघातविषयक और व्याघातविषयक । जहाँ आवलिके असंख्यातवें भाग आदि निक्षेपसे सम्बन्ध रखनेवाली एक आवलिप्रमाण अतिस्थापनाका प्रतिघात नहीं होता वहाँ निर्व्याघातविषयक अतिस्थापना होती है, क्योंकि उस प्रकारके निक्षेपके साथ प्राप्त हुई एक आवलिप्रमाण अतिस्थापनाका प्रतिघात ही यहाँ व्याघातरूपसे विवक्षित है ।

शंका—इस प्रकारका व्याघात कहाँ नहीं होता ?

समाधान—जहाँ सत्कर्मसे ऊपर एक समय अधिक आदिके क्रमसे स्थितिबन्ध वृद्धिको प्राप्त होता हुआ एक आवलिके असंख्यातवें भागसे युक्त एक आवलि बढ़ जाता है वहाँसे लेकर उत्कृष्ट स्थितिबन्धके प्राप्त होने तक सर्वत्र ही निर्व्याघातविषयक उत्कर्षण होता है । इस प्रकारकी निर्व्याघातविषयक प्ररूपणासे सम्बन्ध रखनेवाला यह सूत्र है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उक्कड्डिज्जमाणाए आवलियमेत्ती अइच्छावणा होइ। संपहि एदस्सेवत्थस्स णिण्णयकरणट्ठ-मुदाहरणं वत्तइस्सामो। तत्थ ताव पुव्वणिरुद्धट्ठिदी णाम सत्तरिसागरोवमकोडाकोडीणं बंधपाओग्गा अंतोकोडाकोडीमेत्तदाहट्ठिदी घेत्तव्वा। तिस्से उवरि समयुत्तर-दुसमयुत्तरादि-कमेण बंधमाणस्स जाव आवलिया अण्णेगो च आवलियाए असंखे०भागो ण गदो ताव तिस्से ट्ठिदीए चरिमणिसेयस्स पयदुक्कड्डणा ण संभवइ, वाघादविसए णिव्वाघादपरूवणाए अणवयारादो। तम्हा आवलियाइच्छावणाए तदसंखेज्जभागमेत्तजहण्णणिक्खेवे च पडिवुण्णे संते णिव्वाघादेणुक्कड्डणा पारभइ। एत्तो उवरि अवट्ठिदाइच्छावणाए णिरंतरं णिक्खेववुड्ढी वत्तव्वा जावप्पणो उक्कस्सणिक्खेवो त्ति। एवं कदे दाहट्ठिदीए णिव्वाघाद-जहण्णाइच्छावणसमयूणजहण्णणिक्खेवेहि य ऊणसत्तरिसागरोवमकोडाकोडिमेत्ताणि णिक्खेवट्ठाणाणि[1] दाहट्ठिदिचरिमणिसेयस्स लद्धाणि भवंति। एवमेवदाहट्ठिदि[2]दुचरिम-णिसेयस्स वि वत्तव्वं। णवरि अणंतरादीदणिक्खेवट्ठाणेहिंतो एत्थतणणिक्खेवट्ठाणाणि समयुत्तराणि होंति। एवं सेसासेसहेट्ठिमट्ठिदीणं पादेक्कं णिरुंभणं काऊण समयाहियकमेण णिक्खेवट्ठाणाणमुप्पत्ती वत्तव्वा जाव सव्वमंतोकोडाकोडिमोयरिय आबाहाब्भंतरे समयाहियावलियमेत्तामोदरिदूण[3] ट्ठिदट्ठिदि त्ति। एदिस्से ट्ठिदीए णिव्वाघादजहण्णा-

उक्त सूत्रका यह भाव है कि जो स्थितियाँ बँधती हैं उनमें बँधी हुई स्थितियोंका उत्कर्षण होता है और उत्कर्षणको प्राप्त हुई उस स्थितिकी एक आवलिप्रमाण अतिस्थापना होती है। अब इसी अर्थका निर्णय करनेके लिये उदाहरण बतलाते हैं—प्रकृतमें पूर्वमें बँधी हुई स्थितिसे सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरके बन्ध योग्य अन्तःकोड़ाकोड़ी प्रमाण दाहस्थिति लेनी चाहिए। इस स्थितिके ऊपर बन्ध करनेवाले जीवके एक समय अधिक और दो समय अधिक आदिके क्रमसे जब तक एक आवलि और एक आवलिका असंख्यवाँ भाग नहीं बँध लेता है तब तक उस स्थितिके अन्तिम निषेकका प्रकृत उत्कर्षण सम्भव नहीं है, क्योंकि व्याघातविषयक प्ररूपणामें निर्व्याघात विषयक प्ररूपणा नहीं हो सकती। इसलिये एक आवलिप्रमाण अतिस्थापना और उसके असंख्यातवें भागप्रमाण जघन्य निक्षेपके परिपूर्ण हो जाने पर ही निर्व्याघातविषयक उत्कर्षणका प्रारम्भ होता है। इससे आगे अतिस्थापनाके अवस्थित रहते हुए अपने उत्कृष्ट निक्षेपकी प्राप्ति होने तक निरन्तर क्रमसे निक्षेपकी वृद्धिका कथन करना चाहिये। ऐसा करने पर दाहस्थितिके अन्तिम निषेकके; दाहस्थिति, निर्व्याघातविषयक जघन्य अतिस्थापना और एक समय कम जघन्य निक्षेप इन तीन राशियोंसे न्यून सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण निक्षेपस्थान प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार दाहस्थितिके द्विचरम निषेकका भी कथन करना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि समनन्तरपूर्व कहे गये निक्षेपस्थानोंसे इस स्थानके निक्षेपस्थान एक समय अधिक होते हैं। इसी प्रकार बाकीकी नीचेकी सब स्थितियोंकी प्रत्येक स्थितिको विवक्षित करके अन्तःकोडाकोडीप्रमाण स्थान नीचे जाकर आबाधाके भीतर एक समय अधिक एक आवलिप्रमाण स्थिति नीचे जाकर जो स्थिति स्थित है उसके प्राप्त होने तक एक समय अधिकके क्रमसे निक्षेपस्थानोंकी उत्पत्ति कहनी

१. आ०प्रतौ –मेत्ता णिक्खेवट्ठाणाणि इति पाठः। २. ता०–आप्रत्योः एवमेवेच्छाहट्ठिदी· इति पाठः। ३. ता०प्रतौ –मेत्ता (त्त)मोदरिदूण इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

इच्छावणा सह सव्वुक्कस्सओ णिक्खेवो होइ । तस्स पमाणणिण्णयमुवरि कस्सामो । एत्तो हेट्ठिमाणं पि ट्ठिदीणमेसो चेव णिक्खेवो । णवरि अइच्छावणा समयुत्तरादिकमेण वड्ढदि जाव उदयावलियबाहिरट्ठिदि त्ति । संपहि णिव्वाघादविसयणिक्खेवट्ठाणाणं परूवणट्ठमुवरिमसुत्तमोइण्णं—

❀ एदिस्से अइच्छावणाए आवलियाए असंखेज्जदिभागमादिं कादूण जाव उक्कस्सओ णिक्खेवो त्ति णिरंतरं णिक्खेवट्ठाणाणि ।

§ ५२३. एदिस्से अइच्छावणाए इच्चेदेणाणंतरपरूविदावलियमेत्ताइच्छावणाए परामरसो कदो । तदो एदिस्से अइच्छावणाए जहण्णणिक्खेवो आवलियाए असंखे० भागो होदि त्ति संबंधो कायव्वो । पुव्वणिरुद्धंतोकोडाकोडीमेत्तट्ठिदीदो उवरि समयुत्तरादिकमेण बंधवुड्ढीए आवलियमेत्ताइच्छावणं तदसंखेज्जभागमेत्तणिक्खेवं च वड्ढाविय बंधमाणस्स णिव्वाघादेण जहण्णाइच्छावणा-णिक्खेवा भवंति, ण हेट्ठदो त्ति उत्तं होइ । एदं जहण्णयं णिक्खेवट्ठाणं । एवमादिं काऊण समयुत्तरकमेण णिरंतरं णिक्खेवट्ठाणवुड्ढी वत्तव्वा जाव उक्कस्सओ णिक्खेवो त्ति । एत्थ णिरंतरं णिक्खेवट्ठाणाणि त्ति वयणेण सांतरत्तपडिसेहो कओ, णिव्वाघादे सांतरत्तस्स कारणाणुवलद्धीदो । एवमेदं परूविय संपहि उक्कस्स-

---

चाहिये । इस स्थितिका निर्व्याघातविषयक जघन्य अतिस्थापनाके साथ सबसे उत्कृष्ट निक्षेप होता है । उसके प्रमाणका निर्णय आगे करेंगे । इससे नीचेकी स्थितियोंका भी यही निक्षेप होता है । किन्तु इतनी विशेषता है कि उदयावलिके बाहरकी स्थितिके प्राप्त होने तक इन स्थितियोंकी अतिस्थापना एक एक समय बढ़ती जाती है । अब निर्व्याघातविषयक निक्षेपस्थानोंका कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

*** इस आवलिप्रमाण अतिस्थापनाके एक आवलिके असंख्यातवें भागसे लेकर उत्कृष्ट निक्षेपके प्राप्त होने तक निरन्तर क्रमसे निक्षेपस्थान होते हैं ।**

§ ५२३. सूत्रमें जो 'एदिस्से अइच्छावणाए' पद आया है सो उससे जो पूर्वमें एक आवलिप्रमाण अतिस्थापना कह आये हैं उसका परामर्श किया गया है । इसलिये इस अतिस्थापनाका जघन्य निक्षेप एक आवलिका असंख्यातवाँ भागप्रमाण होता है ऐसा यहाँ पदसम्बन्ध कर लेना चाहिये । पहले जो अन्तःकोडाकोडीप्रमाण स्थिति विवक्षित कर आये हैं उसके ऊपर एक समय अधिक आदिके क्रमसे बन्धकी वृद्धि होने पर एक आवलिप्रमाण अतिस्थापना और उसके असंख्यातवें भागप्रमाण निक्षेपको बढ़ाकर बन्ध करनेवाले जीवके निर्व्याघातविषयक जघन्य अतिस्थापना और जघन्य निक्षेप होते हैं । इससे और कम स्थितिको बढ़ा कर बन्ध करनेवाले जीवके ये निर्व्याघातविषयक जघन्य अतिस्थापना और जघन्य निक्षेप नहीं होते यह उक्त कथनका तात्पर्य है । यह जघन्य निक्षेपस्थान है । इससे लेकर उत्कृष्ट निक्षेपस्थानके प्राप्त होने तक एक एक समय बढ़ाते हुए निरन्तर क्रमसे निक्षेपस्थानोंकी वृद्धि कहनी चाहिये । यहाँ सूत्रमें जो 'णिरंतरं णिक्खेवट्ठाणाणि' वचन आया है सो उससे निक्षेपस्थानोंके सान्तरपनेका निषेध किया है, क्योंकि निर्व्याघातविषयक उत्कर्षणमें सान्तरपनेका कोई कारण नहीं पाया जाता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णिक्खेवपमाणविसयणिद्धारणट्ठं पुच्छासुत्तमाह—

❀ उक्कस्सओ पुण णिक्खेवो केत्तिओ ?

§ ५२४. सुगममेदं पुच्छावक्कं।

❀ जात्तिया उक्कस्सिया कम्मट्ठिदी उक्कस्सियाए आबाहाए समयुत्तरावलियाए च ऊणा तत्तिओ उक्कस्सओ णिक्खेवो।

§ ५२५. समयाहियबंधावलियं गालिय उदयावलियबाहिरट्ठिदट्ठिदीए उक्कड्डिज्जमाणाए एसो उक्कस्सणिक्खेवो परूविदो परिप्फुडमेव, तिस्से समयाहियावलियाए उक्कस्साबाहाए च परिहीणुक्कस्सकम्मट्ठिदिमेत्तुक्कस्सणिक्खेवदंसणादो। तं जहा—उक्कस्सट्ठिदिं बंधिय बंधावलियं गालिय तदणंतरसमए आबाहाबाहिरट्ठिदिट्ठिदपदेसग्गमोकड्डिय उदयावलियबाहिरे णिसिंचदि। एत्थ विदियट्ठिदीए ओकड्डिय णिक्खित्तदव्वमहिकयं, पढमसमयणिसित्तस्स तदणंतरसमए उदयावलियब्भंतरपवेसदंसणादो[1]। तदो विदियसमए उक्कस्ससंकिलेसवसेण उक्कस्सट्ठिदिं बंधमाणो विवक्खियपदेसग्गमुक्कड्डंतो आबाहाबाहिरपढमणिसेयप्पहुडि ताव णिक्खिवदि जाव समयाहियावलियमेत्तेण अग्गट्ठिदिमपत्तो त्ति। कुदो एवं ? तत्तो उवरि तस्स विवक्खियकम्मपदेसस्स सत्तिट्ठिदीए

है। इस प्रकार इसका कथन करके अब उत्कृष्ट निक्षेपके प्रमाणका निश्चय करनेके लिये आगेका पृच्छासूत्र कहते हैं—

❀ उत्कृष्ट निक्षेप कितना है।

§ ५२४. यह पृच्छासूत्र सुगम है।

❀ उत्कृष्ट आबाधा और एक समय अधिक एक आवलि इनसे न्यून जितनी उत्कृष्ट कर्मस्थिति है उतना उत्कृष्ट निक्षेप है।

§ ५२५. एक समय अधिक बन्धावलिको गलाकर उदयावलिके बाहर स्थित स्थितिका उत्कर्षण होने पर यह उत्कृष्ट निक्षेप कहा है यह बात स्पष्ट है, क्योंकि उस स्थितिका एक समय अधिक एक आवलि और उत्कृष्ट आबाधासे न्यून उत्कृष्ट कर्मस्थितिप्रमाण उत्कृष्ट निक्षेप देखा जाता है। खुलासा इस प्रकार है—उत्कृष्ट स्थितिको बाँधकर और बन्धावलिको गलाकर तदनन्तर समयमें आबाधाके बाहरकी स्थितिमें स्थित कर्मपरमाणुओंका अपकर्षण करके उदयावलिके बाहर निक्षेप करता है। यहाँ पर अपकर्षण करके उदयावलिके बाहर दूसरी स्थितिमें निक्षिप्त हुआ द्रव्य विवक्षित है, क्योंकि उदयावलिके बाहर प्रथम समयमें जो द्रव्य निक्षिप्त होता है उसका तदनन्तर समयमें उदयावलिके भीतर प्रवेश देखा जाता है। फिर दूसरे समयमें उत्कृष्ट संक्लेशके कारण उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाला कोई एक जीव विवक्षित प्रदेशाग्रका उत्कर्षण करके उन्हें आबाधाके बाहर प्रथम निषेकसे लेकर अग्रस्थितिसे एक समय अधिक एक आवलिप्रमाण स्थान नीचे उतर कर जो स्थान प्राप्त हो वहाँ तक निक्षिप्त करता है।

शंका—ऐसा क्यों है ?

समाधान—क्योंकि इससे ऊपर उस विवक्षित प्रदेशाग्रकी शक्ति नहीं पाई जाती है।

१. ता० -आ०प्रत्योः -पदेसदंसणादो इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

असंभवादो। तम्हा उक्कस्साबाहाए समयुत्तरावलियाए च ऊणिया कम्मट्ठिदी कम्मणिक्खेवो त्ति सिद्धं। किमेदिस्से चेव एक्किस्से उदयावलियबाहिरट्ठिदीए उक्कस्सणिक्खेवो, आहो अण्णासिं पि ट्ठिदीणमत्थि त्ति एत्थ णिण्णयं[1] कस्सामो। एत्तो उवरिमाणं पि आबाहाब्भंतरब्भुवगमाणं ट्ठिदीणं सव्वासिमेव पयदुक्कस्सणिक्खेवो होइ। णवरि आबाहाबाहियपढमणिसेयट्ठिदीए[2] हेट्ठदो आवलियमेत्ताणमाबाहब्भंतरट्ठिदीणमुक्कस्सओ णिक्खेवो ण संभवइ, तत्थ जहाकममाबाहाबाहिरणिसेयट्ठिदीणमइच्छावणावलियाणुप्पवेसेणुक्कस्सणिक्खेवस्स हाणिदंसणादो।

§ ५२६. एवमेत्तिएण पबंधेण णिव्वाघादविसयजहण्णुक्कस्सणिक्खेवमइच्छावणं च परूविय संपहि वाघादविसए तदुभयं परूवेमाणो सुत्तपबंधमुत्तरं भणइ—

❀ वाघादेण कधं ?

§ ५२७. सुगममेदं पुच्छावक्कं।

❀ जइ संतकम्मादो बंधो समयुत्तरो तिस्से ट्ठिदीए णत्थि उक्कड्डणा।

§ ५२८. संतकम्मादो जइ बंधो समयुत्तरो तिस्से ट्ठिदीए उवरि संतकम्मअग्गट्ठिदीए णत्थि उक्कड्डणा। कुदो ? जहण्णाइच्छावणा-णिक्खेवाणं तत्थासंभवादो।

इसलिये उत्कृष्ट आबाधा और एक समय अधिक एक आवलिसे न्यून कर्मस्थितिप्रमाण कर्मनिक्षेप होता है यह बात सिद्ध हुई।

शंका—क्या उदयावलिके बाहरकी इसी एक स्थितिका उत्कृष्ट निक्षेप होता है या अन्य स्थितियोंका भी उत्कृष्ट निक्षेप होता है ?

समाधान—अब इस प्रश्नका निर्णय करते हैं—इस स्थितिसे ऊपर आबाधाके भीतर जितनी भी स्थितियाँ स्वीकार की गई हैं उन सभीका प्रकृत उत्कृष्ट निक्षेप होता है। किन्तु इतनी विशेषता है कि आबाधाके बाहर प्रथम निषेककी स्थितिसे नीचेकी एक आवलिप्रमाण आबाधाके भीतरकी स्थितियोंका उत्कृष्ट निक्षेप सम्भव नहीं है, क्योंकि वहाँ क्रमसे आबाधाके बाहरकी निषेक स्थितियोंका अतिस्थापनावलिमें प्रवेश हो जानेके कारण उत्कृष्ट निक्षेपकी हानि देखी जाती है।

§ ५२६. इस प्रकार इतने कथन द्वारा निर्व्याघातविषयक जघन्य व उत्कृष्ट निक्षेप और अतिस्थापनाका कथन करके अब व्याघातविषयक इन दोनोंका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

❀ व्याघातकी अपेक्षा उत्कर्षण किस प्रकार होता है ?

§ ५२७. यह पृच्छासूत्र सुगम है।

❀ यदि सत्कर्मसे बन्ध एक समय अधिक हो तो उस स्थितिमें उत्कर्षण नहीं होता है।

§ ५२८. यदि सत्कर्मसे बन्ध एक समय अधिक हो तो उस बंधनेवाली स्थितिमें सत्कर्मकी अग्रस्थितिका उत्कर्षण नहीं होता है, क्योंकि वहाँ पर जघन्य अतिस्थापना और निक्षेप इन

---

१. ता०प्रतौ त्ति (तप्पडि) बद्धणिण्णयं, आ०प्रतौ त्ति बद्धणिण्णयं इति पाठः। २. ता०प्रतौ -बाहिय (र) पढम इति पाठः।

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

❀ जइ संतकम्मादो बंधो दुसमयुत्तरो तिस्से वि संतकम्मअग्गट्ठिदीए णत्थि उक्कड्डणा।

§ ५२९. जइ संतकम्मादो दुसमयुत्तरो बंधो होइ तिस्से वि बंधट्ठिदीए सरूवेण संतकम्मअग्गट्ठिदीए पुव्वणिरुद्धाए उक्कड्डणा णत्थि। कारणं पुव्वं व वत्तव्वं।

❀ एत्थ आवलियाए असंखेज्जदिभागो जहण्णिया अइच्छावणा।

§ ५३०. एवं तिसमयुत्तरादिकमेण बंधउड्ढीए संतीए वि णत्थि चेवुक्कड्डणा जाव आवलि० असंखे०भागमेत्तो ण वड्डिदो त्ति वुत्तं होइ। कुदो एवं? एत्थ जहण्णाइच्छावणाए आवलि० असंखे०भागमेत्तीए तासिं ट्ठिदीणमंतब्भावदंसणादो।

❀ जदि जत्तिया जहण्णिया अइच्छावणा तत्तिएण अब्भहिओ संतकम्मादो बंधो तिस्से वि संतकम्मअग्गट्ठिदीए णत्थि उक्कड्डणा।

§ ५३१. कुदो? एत्थ जहण्णाइच्छावणाए संतीए वि तप्पडिबद्धजहण्णणिक्खेवस्स अज्ज वि संभवाणुवलंभादो। ण च णिक्खेवविसएण विणा उक्कड्डणासंभवो अत्थि, विप्पडिसेहादो। सो पुण जहण्णणिक्खेवो केत्तियो इदि आसंकाए उत्तरमाह—

❀ अण्णो आवलियाए असंखेज्जदिभागो जहण्णओ णिक्खेवो।

दोनोंका अभाव है।

※ यदि सत्कर्मसे बन्ध दो समय अधिक हो तो उस स्थितिमें भी सत्कर्मकी स्थितिका उत्कर्षण नहीं होता है।

§ ५२९. यदि सत्कर्मसे दो समय अधिक स्थितिका बन्ध होता है तो उस बन्ध स्थितिमें भी पूर्वमें विवक्षित सत्कर्मकी अग्रस्थितिका स्वभावसे उत्कर्षण नहीं होता। कारणका कथन पहलेके समान करना चाहिये।

※ यहाँ पर आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण जघन्य अतिस्थापना होती है।

§ ५३०. इस प्रकार तीन समय अधिक आदिसे लेकर आवलिके असंख्यातवें भाग तक बन्धकी वृद्धि होने पर भी उत्कर्षण नहीं होता है यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

शंका—ऐसा क्यों है?

समाधान—क्योंकि यहाँ पर आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण जघन्य अतिस्थापनामें उन बन्ध स्थितियोंका अन्तर्भाव देखा जाता है।

※ जितनी जघन्य अतिस्थापना है यदि सत्कर्मसे उतना अधिक बन्ध होवे तो भी उस बँधी हुई स्थितिमें सत्कर्मकी अग्रस्थितिका उत्कर्षण नहीं होता है।

§ ५३१. क्योंकि यहाँ पर जघन्य अतिस्थापनाके होते हुए भी उससे सम्बन्ध रखनेवाला जघन्य निक्षेप अभी भी नहीं पाया जाता है। और निक्षेपविषयक बन्धस्थितिके बिना उत्कर्षण हो नहीं सकता है, क्योंकि इसके बिना उत्कर्षणका होना निषिद्ध है। परन्तु वह जघन्य निक्षेप कितना है ऐसी आशंकाके होनेपर उत्तरस्वरूप आगेका सूत्र कहते हैं—

※ एक अन्य आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण जघन्य निक्षेप होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ५३२. जहण्णाइच्छावणाए उवरि पुणो वि आवलि० असंखे०भागमेत्तबंध-वुड्ढीए जहण्णणिक्खेवसंभवो होइ त्ति भणिदं होइ। संपहि एत्तो प्पहुडि उक्कड्डुणासंभवो त्ति पदुप्पाएदुमुत्तरसुत्तावयारो—

❀ जइ जहण्णियाए अइच्छावणाए जहण्णएण च णिक्खेवेण एत्तिय-मेत्तेण संतकम्मादो अदिरित्तो बंधो सा संतकम्मअग्गट्ठिदी उक्कड्डिज्जदि।

§ ५३३. कुदो ? एत्थ जहण्णाइच्छावणा-णिक्खेवाणमविकलसरूवेणोवलंभादो। एत्तो उवरि समयुत्तरादिकमेण जा बंधवुड्ढी सा किमइच्छावणाए अंतो णिवदइ आहो णिक्खेवस्से त्ति पुच्छाए उत्तरसुत्तमाह—

❀ तदो समयुत्तरे बंधे णिक्खेवो तत्तिओ चेव, अइच्छावणा वड्ढदि।

§ ५३४. कुदो एवं ? सव्वत्थ णिक्खेववुड्ढीए अइच्छावणावड्ढिपुरस्सरत्तदंसणादो। सा पुण अइच्छावणावुड्ढी उक्कस्सिया केत्तिया त्ति आसंकाए तण्णिण्णयकरणट्ठमुत्तरसुत्तं—

❀ एवं ताव अइच्छावणा वड्ढइ जाव अइच्छावणा आवलिया जादा त्ति।

§ ५३५. सा जहण्णाइच्छावणा समयुत्तरकमेण बंधवुड्ढीए वड्ढमाणिया ताव वड्ढइ जाव उक्कस्सियाइच्छावणा आवलिया संपुण्णा जादा त्ति सुत्तत्थसंबंधो। एत्तो

---

§ ५३२. जघन्य अतिस्थापनाके ऊपर फिर भी आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण बन्धकी वृद्धि होने पर जघन्य निक्षेपका होना सम्भव है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। अब इससे आगे उत्कर्षण सम्भव है ऐसा कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

*** यदि सत्कर्मसे जघन्य अतिस्थापना और जघन्य निक्षेपप्रमाण स्थितिबन्ध अधिक हो तो सत्कर्मकी उस अग्रस्थितिका उत्कर्षण होता है।**

§ ५३३. क्योंकि यहाँ पर जघन्य अतिस्थापना और जघन्य निक्षेप अविकलरूपसे पाये जाते हैं। अब इससे आगे जो एक एक समय अधिकके क्रमसे बन्धकी वृद्धि होती है सो उसका अन्तर्भाव अतिस्थापनामें होता है या निक्षेपमें ऐसी पृच्छाके होने पर उत्तरस्वरूप आगेका सूत्र कहते हैं—

*** तदनन्तर एक समय अधिक स्थितिबन्धके होनेपर निक्षेप उतना ही रहता है। किन्तु अतिस्थापना वृद्धिको प्राप्त होती है।**

§ ५३४. **शंका**—ऐसा क्यों है ?

समाधान—क्योंकि सर्वत्र अतिस्थापनाकी वृद्धिपूर्वक ही निक्षेपकी वृद्धि देखी जाती है।

किन्तु वह अतिस्थापनाकी उत्कृष्ट वृद्धि कितनी होती है ऐसी आशंका होने पर उसका निर्णय करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

*** इस प्रकार अतिस्थापनाके एक आवलिप्रमाण होने तक उसकी वृद्धि होती रहती है।**

§ ५३५. स्थितिबन्धकी वृद्धिके साथ वह जघन्य अतिस्थापना एक एक समय अधिकके क्रमसे बढ़ती हुई पूरी एक आवलिप्रमाण उत्कृष्ट अतिस्थापनाके प्राप्त होने तक बढ़ती जाती है यह

Jain Education International　　　For Private & Personal Use Only　　　www.jainelibrary.org

उवरि वि अइच्छावणा किण्ण वड्ढाविज्जदे ? ण, पत्तपयरिसपज्जंताए पुण वुड्ढिविरोहादो। एत्तो उवरि आवलियमेत्ताइच्छावणं धुवं काऊण समयुत्तरादिकमेण णिक्खेवो वड्ढावेदव्वो त्ति परूवेदुमुत्तरसुत्तमाह—

❀ तेण परं णिक्खेवो वड्ढइ जाव उक्कस्सओ णिक्खेवो त्ति।

§ ५३६. एत्थ ताव पुव्वणिरुद्धसंतकम्मअग्गट्ठिदीए उक्कस्सणिक्खेववुड्ढी समयुत्तरकमेण अइच्छावणावलियाहियहेट्ठिमअंतोकोडाकोडीपरिहीणकम्मट्ठिदिमेत्ता होइ। णवरि बंधावलियाए सह अंतोकोडाकोडी ऊणियव्वा। एसा च आदेसुक्कस्सिया। एत्तो हेट्ठिमाणं संतकम्मदुचरिमादिट्ठिदीणं समयाहियकमेण पच्छाणुपुव्वीए णिक्खेववुड्ढी वत्तव्वा जाव ओघुक्कस्सणिक्खेवं पत्ता त्ति। सो पुण ओघुक्कस्सओ णिक्खेवो केत्तियमेत्तो होइ त्ति णिण्णयविहाणट्ठं ताव पुच्छासुत्तमाह—

❀ उक्कस्सओ णिक्खेवो को होइ ?

§ ५३७. सुगममेदं पुच्छासुत्तं।

❀ जो उक्कस्सियं ठिदिं बंधियूणावलियमदिक्कंतो तमुक्कस्सयट्ठिदिमोकड्डियूण उदयावलियबाहिराए बिदियाए ठिदीए णिक्खिवदि। पुण से

इस सूत्रका अभिप्राय है।

शंका—इससे आगे भी अतिस्थापना क्यों नहीं बढ़ाई जाती है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि परम प्रकर्षको प्राप्त हो जाने पर फिर उसकी वृद्धि होनेमें विरोध आता है।

इससे आगे आवलिप्रमाण अतिस्थापनाको ध्रुव करके एक एक समय अधिकके क्रमसे निक्षेपकी वृद्धि करनी चाहिये ऐसा कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

*** उससे आगे उत्कृष्ट निक्षेपके प्राप्त होनेतक निक्षेपकी वृद्धि होती है।**

§ ५३६. यहाँ पर पूर्वमें विवक्षित सत्कर्मकी अग्रस्थितिके उत्कृष्ट निक्षेपकी वृद्धि एक एक समय अधिकके क्रमसे होती हुई अतिस्थापनावलिसे अधिक जो अधस्तन अन्तःकोड़ाकोड़ी उससे हीन कर्मस्थितिप्रमाण होती है। किन्तु इतनी विशेषता है कि बन्धावलिके साथ अन्तःकोड़ाकोड़ीको कम करना चाहिये। यह आदेशसे उत्कृष्ट वृद्धि है। फिर इससे नीचेकी सत्कर्मकी द्विचरम आदि स्थितियोंकी एक एक समय अधिकके क्रमसे पश्चादानुपूर्वीकी अपेक्षा निक्षेपवृद्धि तब तक कहनी चाहिए जब तक वह ओघसे उत्कृष्ट निक्षेपको न प्राप्त हो जाय। किन्तु ओघकी अपेक्षा वह उत्कृष्ट निक्षेप कितना होता है ऐसा निर्णय करनेके लिए आगेका पृच्छासूत्र कहते हैं—

*** उत्कृष्ट निक्षेप कितना है।**

§ ५३७. यह पृच्छासूत्र सुगम है।

*** जो उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेके बाद एक आवलिको बिताकर उस उत्कृष्ट स्थितिका अपकर्षण करके उदयावलिके बाहर दूसरी स्थितिमें निक्षेप करता है। फिर**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

काले उदयावलियबाहिरे अणंतरठिदिं पावेहिदि त्ति तं पदेसग्गमुक्कड्डियूण समयाहियाए आवलियाए ऊणियाए अग्गट्ठिदीए णिक्खिवदि। एस उक्कस्सओ णिक्खेवो।

§ ५३८. जो सण्णिपंचिंदियपज्जत्तो सागार-जागारसव्वसंकिलेसेहि उक्कस्सदाहं गदो उक्कस्सट्ठिदिं सत्तरिसागरोवमकोडाकोडिपमाणावच्छिण्णं बंधियूण बंधावलियमदिक्कंतो तमुक्कस्सियं ट्ठिदिमोकड्डियूणुदयावलियबाहिरपढमट्ठिदिणिसेयादो विसेसहीणं विदियट्ठिदीए णिसिंचिय तदणंतरसमए अणंतरवदिक्कंतसमयपढमट्ठिदिमुदयावलियब्भंतरं पवेसिय विदियट्ठिदिं च पढमट्ठिदित्तेण परिट्ठविय से काले तं च णिरुद्धट्ठिदिं उदयावलियगब्भं पावेहिदि त्ति ट्ठिदो तम्मि चेव समए तदणंतरसमयोकड्डिदपदेसग्गमुक्कड्डणावसेण तक्कालिय-णवकबंधपडिबद्धुक्कस्सट्ठिदीए णिक्खिवमाणो पच्चग्गबंधपरमाणूणमभावेणुक्कस्साबाहमेत्त-मइच्छाविय तमाबाहाबाहिरपढमणिसेयट्ठिदिमादिं कादूण ताव णिक्खिवदि जाव समयाहियावलिया परिहीणा अग्गट्ठिदी। तस्स तहा णिक्खिवमाणस्स उक्कस्सओ णिक्खेओ होइ। तस्स य पमाणं समयाहियावलियब्भहियाबाहापरिहीणउक्कस्सकम्मट्ठिदिमेत्तं जायदि त्ति एसो सुत्तत्थसमासो।

तदनन्तर समयमें उदयावलिके बाहर अनन्तरवर्ती स्थितिको प्राप्त होगा कि इस स्थितिके कर्मद्रव्यका उत्कर्षण करके उसका एक समय अधिक एक आवलिसे कम अग्रस्थितिमें निक्षेप करता है। यह उत्कृष्ट निक्षेप है।

§ ५३८. जिस संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीवने साकार उपयोगसे उपयुक्त होकर जागृत अवस्थाके रहते हुए सर्वोत्कृष्ट संक्लेशके कारण उत्कृष्ट दाहको प्राप्त होकर सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया। फिर बन्धावलिके व्यतीत हो जानेपर उस उत्कृष्ट स्थितिका अपकर्षण करके उसे उदयावलिके बाहरकी प्रथम स्थितिके निषेकसे विशेष हीन दूसरी स्थितिमें निक्षिप्त किया। फिर तदनन्तर समयमें अनन्तर पूर्व समयवर्ती स्थितिका उदयावलिके भीतर प्रवेश कराके और उस दूसरी स्थितिको प्रथम स्थितिरूपसे स्थापित करके तदनन्तर समयमें विवक्षित स्थितिको उदयावलिके भीतर प्राप्त कराता, इस प्रकार स्थित होकर उसी समयमें इससे पूर्व समयमें अपकर्षणको प्राप्त हुए प्रदेशाग्रका उत्कर्षणके वशसे उसी समय हुए नवीन बन्धसे सम्बन्ध रखनेवाली उत्कृष्ट स्थितिमें निक्षेप किया। यहाँ इस निक्षेपको, आबाधामें नवीन बन्धके परमाणुओंका अभाव होनेसे उत्कृष्ट आबाधाको अतिस्थापनारूपसे स्थापित करके आबाधाके बाहर प्रथम निषेककी स्थितिसे लेकर एक समय अधिक एक आवलिसे न्यून अग्रस्थितिके प्राप्त होने तक करता है। इस तरह जो जीव इस प्रकारका निक्षेप करता है उसके उत्कृष्ट निक्षेप होता है। इस निक्षेपका प्रमाण समयाधिक आवलि और आबाधासे हीन उत्कृष्ट कर्मस्थितिप्रमाण उत्पन्न होता है। इस प्रकार यह सूत्रका तात्पर्य है।

विशेषार्थ—स्थितिसंक्रम तीन प्रकारसे होता है। उनमें दूसरा प्रकार स्थितिउत्कर्षण है। सत्कर्मकी स्थितिके बढ़ानेको स्थिति उत्कर्षण कहते हैं। यह भी व्याघात और अव्याघातके भेदसे दो प्रकारका है। जहाँ सत्कर्मसे नवीन स्थितिबन्ध एक आवलि और एक आवलिके असंख्यातवें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

❀ एवमोकड्डुक्कड्डणाणमट्ठपदं समत्तं ।

§ ५३९. सुगमं । एत्थाबाहापरिहीणुक्कस्ससंकमे अट्ठपदपरूवणा किण्ण कया ? ण, तत्थोकड्डुकड्डणासु व जहण्णुक्कस्साइच्छावणा-णिक्खेवादिविसेसाणमसंभवेण सुगमत्तबुद्धीए तदपरूवणादो । संपहि एवं परूविदमट्ठपदमवलंबणं कऊण ट्ठिदिसंकमं परूवेदुकामो सुत्तमुत्तरमाह—

एत्तो अद्धाछेदो । जहा उक्कस्सियाए ट्ठिदीए उदीरणा तहा उक्कस्सओ ट्ठिदिसंकमो ।

§ ५४०. अप्पणासुत्तमेदं, उक्कस्सट्ठिदिउदीरणापसिद्धस्स धम्मस्स मूलुत्तरपयडि-भेयभिण्णट्ठिदिसंकमुक्कस्सद्धाच्छेदे समप्पणादो । संपहि उत्तरपयडिविसयमेदमप्पणासुत्त मेवं चेव थप्पं काऊण ताव सुत्तेणेदेण सूचिदं मूलपयडिट्ठिदिसंकमविसयं किंचि परूवणं वत्तइस्सामो । तं जहा—मूलपयडिट्ठिदिसंकमे तत्थ इमाणि तेवीसमणियोगद्दाराणि

भाग अधिकके भीतर होनेके कारण अतिस्थापना एक आवलिसे कम पाई जाती है वहाँ व्याघात विषयक उत्कर्षण होता है और जहां एक आवलिप्रमाण अतिस्थापनाके साथ निक्षेप कमसे कम आवलिके असंख्यातवें भागके होनेमें किसी प्रकारका व्याघात नहीं पाया जाता है वहाँ अव्याघात-विषयक अतिस्थापना होती है । अव्याघातविषयक उत्कर्षणमें अतिस्थापना कमसे कम एक आवलिप्रमाण और अधिकसे अधिक उत्कृष्ट आबाधाप्रमाण होती है । तथा निक्षेप कमसे कम आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण और अधिकसे अधिक उत्कृष्ट आबाधा और एक समय अधिक एक आवलिसे न्यून उत्कृष्ट कर्मस्थितिप्रमाण होता है । व्याघातविषयक जघन्य अति-स्थापना कमसे कम आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण और अधिकसे अधिक एक समय कम एक आवलिप्रमाण होती है । तथा निक्षेप मात्र आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण होता है ।

※ इस प्रकार अपकर्षण और उत्कर्षणका अर्थपद समाप्त हुआ ।

§ ५३९. यह सूत्र सुगम है ।

शंका—यहाँ पर आबाधासे हीन उत्कृष्ट संक्रमके विषयमें अर्थपदका कथन क्यों नहीं किया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि वहाँ पर अपकर्षण और उत्कर्षणके समान जघन्य और उत्कृष्ट अतिस्थापना व निक्षेप आदि विशेषोंका पाया जाना सम्भव न होनेसे सुगम समझकर उत्कृष्ट संक्रमके विषयमें अर्थपदका कथन नहीं किया ।

अब इस प्रकार कहे गये अर्थपदका अवलम्बन लेकर स्थितिसंक्रमके कथन करनेकी इच्छासे आगेका सूत्र कहते हैं—

※ अब इससे आगे अद्धाछेदका प्रकरण है—जिस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिकी उदीरणा होती है उसी प्रकार उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम जानना चाहिये ।

§ ५४०. यह अर्पणासूत्र है; क्योंकि इस द्वारा उत्कृष्ट स्थितिकी उदीरणामें प्रसिद्ध हुए धर्मका मूल और उत्तर प्रकृतियोंके भेदसे अनेक प्रकारके स्थितिसंक्रमके उत्कृष्ट अद्धच्छेदमें समर्पण किया गया है । अब उत्तरप्रकृतिविषयक इसी प्रकारके इस अर्पणासूत्रको स्थगित करके सर्व प्रथम इस सूत्रके द्वारा सूचित होनेवाले मूलप्रकृतिविषयक स्थितिसंक्रमका कुछ कथन करते हैं । यथा—मूलप्रकृतिस्थितिसंक्रमके विषयमें अद्धछेदसे लेकर अल्पबहुत्व तक ये तेईस अनुयोगद्वार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अद्धाछेदो जाव अप्पाबहुगे त्ति। तदो भुजगार-पदणिक्खेव-वड्ढि-ट्ठाणाणि च कायव्वाणि।

§ ५४१. तत्थ दुविहो अद्धाच्छेदो जहण्णुक्कस्सभेदेण। उक्क० पयदं। दुविहो णिद्देसो ओघादेसभेदेण। तत्थोघेण मोह० उक्क० ट्ठिदिसंकमद्धाछेदो सत्तरिसागरोवम-कोडाकोडीओ दोहि आवलियाहि ऊणियाओ। एवं चदुसु वि गदीसु। णवरि पंचिंदिय-तिरिक्खअपज्ज०-मणुसअपज्ज० उक्क० ट्ठिदिसंकम० सत्तरिसा०कोडाकोडीओ अंतो-मुहुत्तूणाओ। आणदादि जाव सव्वट्ठा त्ति मोह० उक्क० ट्ठिदिसं० अंतोकोडाकोडीए। एवं जाव०।

§ ५४२. जहण्णए पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मोह० जह० ट्ठिदिसंक०अद्धाच्छेदो एया ट्ठिदी। सा पुण समयाहियावलियाए उवरिमा होइ। एवं मणुसतिए। आदेसेण णेरइय० मोह० जह० ट्ठिदिसं०अद्धा० सागरोवम-

होते हैं। फिर भुजगार, पदनिक्षेप, वृद्धि और स्थान इनका कथन करना चाहिये।

§ ५४१. प्रकृतमें जघन्य और उत्कृष्टके भेदसे अद्धाछेद दो प्रकारका है। उत्कृष्टका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मोहनीयका उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम अद्धाछेद दो आवलिकम सत्तर कोडाकोडी सागरप्रमाण है। इसी प्रकार चारों ही गतियोंमें जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि पंचेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्त जीवोंमें उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम अद्धाच्छेद अन्तर्मुहूर्तकम सत्तर कोडा-कोडी सागरप्रमाण है। तथा आनतसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें मोहनीयका उत्कृष्ट स्थिति-संक्रम अद्धाच्छेद अन्तःकोडाकोडीप्रमाण है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये।

विशेषार्थ—तत्काल बँधे हुए कर्मका बन्धावलिके बाद संक्रम होता है। उसमें भी जो कर्म उदयावलिके भीतर अवस्थित है उसका संक्रम नहीं होता, किन्तु उदयावलिके बाहर अवस्थित कर्मका ही संक्रम होता है। इसीसे प्रकृतमें मोहनीयका उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम अद्धाच्छेद दो आवलि-कम सत्तर कोडाकोडी सागरप्रमाण बतलाया है। यतः मोहनीयका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध चारों गतियोंमें होता है, अतः चारों गतियोंमें यह उत्कृष्ट अद्धाच्छेद प्राप्त हो जाता है। ऐसा नियम है कि अपर्याप्त अवस्थामें उत्कृष्ट स्थितिबन्ध नहीं होता। किन्तु जो जीव उत्कृष्ट स्थितिबन्ध करके और अन्तर्मुहूर्तके भीतर मर कर अपर्याप्त अवस्था प्राप्त कर लेता है उसके अपर्याप्त अवस्थामें अन्तर्मुहूर्त कम उत्कृष्ट स्थिति अद्धाच्छेद पाया जाता है। इसीसे प्रकृतमें पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्त जीवोंमें उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम अद्धाच्छेद अन्तर्मुहूर्तकम सत्तर कोडाकोडी सागर प्रमाण बतलाया है। तथा आनतादिमें उत्कृष्ट स्थिति किसी भी हालतमें अन्तःकोडाकोडीसे अधिक नहीं होती। इसीसे वहाँ उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम अद्धाच्छेद अन्तःकोडाकोडीप्रमाण बतलाया है। इसी प्रकार आगेकी मार्गणाओंमें उत्कृष्ट स्थितिका विचार करके उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम अद्धाच्छेद ले आना चाहिये।

§ ५४२. अब जघन्यका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। ओघसे मोहनीयका जघन्य स्थितिसंक्रम अद्धाच्छेद एक स्थितिप्रमाण है। किन्तु वह स्थिति एक समय अधिक एक आवलिसे ऊपरकी होती है। इसी प्रकार मनुष्यत्रिकमें जानना चाहिये। आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मोहनीयका जघन्य स्थितिसंक्रम अद्धाच्छेद एक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सहस्सस्स सत्त-सत्तभागा पलिदो० संखे०भागूणा । एवं पढमपुढवि-देव०-भवण०वाणवेंतरा त्ति । बिदियादि जाव सत्तमा त्ति मोह० जह० ट्ठिदिसंक०अद्धा० अंतोकोडा० । एवं जोदिसियपहुडि जाव सव्वट्ठा त्ति । सव्वतिरिक्ख-मणुसअपज्ज० मोह० जह० ट्ठिदि०-अद्धा० सागरोवमं पलिदो० असंखे०भागूणयं । एवं जाव० ।

§ ५४३. सव्व-णोसव्व-उक्कस्साणुकस्स-जहण्णाजहण्णट्ठिदिसंकमाणमोघादेसपरूवणाए ट्ठिदिविहत्तिभंगो ।

§ ५४४. सादिअणादि-धुवअद्धुवाणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मोह० उक्क०-अणुक्क०-जह० ट्ठिदिसंकमाए किं सादिया ४ ? सादि-अद्धुवा । अजहण्णट्ठिदिसं० किं सादि० ४ ? सादी अणादी धुवो अद्धुवो वा । आदेसेण सव्व-मग्गणासु उक्क०-अणुक्क०-जह०-अजहण्णसंका० किं सादि० ४ ? सादि-अद्धुवा ।

हजार सागरके सात भागोंमेंसे पल्यका संख्यातवाँ भागकम सात भागप्रमाण है । इसी प्रकार प्रथम पृथिवीके नारकी, सामान्य देव, भवनवासी और व्यन्तर देवोंमें जानना चाहिये । दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें मोहनीयका जघन्य स्थितिसंक्रम अद्धाच्छेद अन्तःकोडाकोडीप्रमाण है । इसी प्रकार ज्योतिषियोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें जानना चाहिये । सब तिर्यञ्च और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें मोहनीयका जघन्य स्थितिसंक्रम अद्धाच्छेद पल्यका असंख्यातवाँ भाग कम एक सागर प्रमाण है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—आगे जघन्य स्वामित्वका निर्देश किया है । उसे ध्यानमें रखकर यह अद्धाच्छेद घटित कर लेना चाहिये । विशेष वक्तव्य न होनेसे यहाँ पर उसका अलगसे स्पष्टीकरण नहीं किया है ।

§ ५४३. सर्व, नोसर्व, उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य इन सब स्थितिसंक्रमोंका ओघ और आदेशकी अपेक्षासे कथन जैसा स्थितिविभक्तिके समय कर आये हैं उसी प्रकार यहाँ भी करना चाहिये ।

§ ५४४. सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुवानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघकी अपेक्षा मोहनीयका उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट और जघन्य स्थितिसंक्रम क्या सादि है, क्या अनादि है, क्या ध्रुव है या क्या अध्रुव है ? सादि और अध्रुव है । अजघन्य स्थितिसंक्रम क्या सादि है, क्या अनादि है, क्या ध्रुव है या क्या अध्रुव है ? सादि, अनादि, ध्रुव और अध्रुव है । आदेशकी अपेक्षा सब मार्गणाओंमें उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य और अजघन्य स्थितिसंक्रम क्या सादि है, क्या अनादि है, क्या ध्रुव है या क्या अध्रुव है ? सादि और अध्रुव है ।

विशेषार्थ—ओघसे उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट और जघन्य स्थितिसंक्रम अद्धाच्छेद कदाचित् होते हैं यह स्पष्ट ही है, इसलिए इन्हें सादि और अध्रुव कहा है । किन्तु क्षपकश्रेणिमें जघन्य स्थितिसंक्रम अद्धाच्छेद होनेके पूर्व अजघन्य स्थितिसंक्रम अद्धाच्छेद अनादि कालसे होता आ रहा है, इसलिए तो इसे अनादि कहा है तथा क्षायिकसम्यग्दृष्टि उपशामकके उपशमश्रेणिमें जघन्य स्थितिसंक्रम अद्धाच्छेद होनेके बाद उतरते समय अजघन्य स्थितिसंक्रम अद्धाच्छेद सादि होता है, इसलिए इसे सादि कहा है । और भव्योंके यह अध्रुव तथा अभव्योंके ध्रुव होता है, इसलिए इसे ध्रुव और अध्रुव कहा है । इस प्रकार अजघन्य स्थितिसंक्रम अद्धाच्छेद चारों प्रकारका बन जाता है यह स्पष्ट ही है । शेष कथन सुगम है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ५४५. सामित्तं दुविहं—जह० उक्क० । उक्कस्से पयदं । दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मोह० उक्क० ट्ठिदिसं० कस्स ? अण्णद० मिच्छा० उक्क०ट्ठिदिं बंधिदूणावलियादीदं संकामेमाणस्स । एवं चउगदीसु । णवरि पंचिं०तिरिक्ख-अपज्ज०-मणुसअपज्ज०-आणदादि जाव सव्वट्ठा त्ति ट्ठिदिविहत्तिभंगो । एवं जाव० ।

§ ५४६. जहण्णए पयदं । दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मोह० जह० ट्ठिदिसं० कस्स ? खवयस्स समयाहियावलियचरिमसमयसंकामयस्स । एवं मणुसतिए० । आदेसेण णेरइय० मोह० जह० ट्ठिदिसं० कस्स ? अण्णदरस्स असण्णि-पच्छायदुसमयाहियावलियतब्भवत्थस्स । एवं पढमाए देव-भवण०-वाणवेंतरा त्ति । विदियादि जाव सत्तमा त्ति ट्ठिदिविहत्तिभंगो । णवरि सत्तमाए समट्ठिदिं बंधिदूणावलि-यादीदस्स सामित्तं वत्तव्वं । तिरिक्खेसु विहत्तिभंगो । णवरि समट्ठिदिं बंधिदूणावलि-यादीदस्स सामित्तं दादव्वं । सव्वपंचिंदियतिरिक्ख-मणुसअपज्ज० मोह० जह० ट्ठिदिसं० कस्स ? अण्णदरस्स हदसमुप्पत्तियं कादूणागदबादरेइंदियपच्छायदस्स आवलिय-उववण्णल्लयस्स । जोदिसियप्पहुडि जाव सव्वट्ठे त्ति ट्ठिदिविहत्तिभंगो । एवं जाव० ।

§ ५४५. स्वामित्व दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघकी अपेक्षा मोहनीयका उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम किसके होता है ? जो मिथ्यादृष्टि जीव उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके एक आवलिके बाद उसका संक्रम करता है उसके होता है । इसी प्रकार चारों गतियोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त, मनुष्य अपर्याप्त और आनतसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमके स्वामित्वका कथन स्थितिविभक्तिके समान है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

§ ५४६. जघन्यका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघकी अपेक्षा मोहनीयका जघन्य स्थितिसंक्रम किसके होता है ? जो क्षपक एक समय अधिक एक आवलिके शेष रहते हुए उसके अन्तिम समयमें मोहनीयका संक्रम कर रहा है उसके जघन्य स्थिति-संक्रम होता है । इसीप्रकार मनुष्यत्रिकमें जानना चाहिए । आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मोहनीयका जघन्य स्थितिसंक्रम किसके होता है ? जिस असंज्ञी पंचेन्द्रियको मर कर नारकियोंमें उत्पन्न हुए दो समय अधिक एक आवलि हुआ है उसके होता है । इसी प्रकार प्रथम पृथिवीके नारकी, देव, भवनवासी देव और व्यन्तर देवोंमें जानना चाहिए । दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें स्वामित्वका भंग स्थितिविभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सातवीं पृथिवीमें सत्त्वके समान स्थितिबन्ध करनेके बाद जिसे एक आवलि काल व्यतीत हुआ है उसके मोहनीयके स्थितिसंक्रमका जघन्य स्वामित्व कहना चाहिये । तिर्यञ्चोंमें स्वामित्वका भंग स्थितिविभक्ति के समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि जिसे सत्त्वके समान स्थिति बाँधनेके बाद एक आवलि काल व्यतीत हुआ है उसे मोहनीयके स्थितिसंक्रमका जघन्य स्वामित्व देना चाहिये । सब पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें मोहनीयका जघन्य स्थितिसंक्रम किसके होता है ? जिस बादर एकेन्द्रियको हतसमुत्पत्ति करनेके बाद मर कर उक्त जीवोंमें उत्पन्न हुए एक आवलि काल हुआ है उसके होता है । ज्योतिषी देवोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें जघन्य स्वामित्वका भंग स्थिति-विभक्तिके समान है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विशेषार्थ—उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम दो आवलिकम सत्तर कोडाकोडीसागरप्रमाण होता है जो बन्धावलिके बाद अनन्तर समयमें उस जीवके प्राप्त होता है जिसने मोहनीयका उत्कृष्ट स्थिति-बन्ध किया है। इसीसे यहाँ पर उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके एक आवलिके बाद उत्कृष्ट स्थिति संक्रमका स्वामी बतलाया है। यह अवस्था चारों गतियोंके जीवोंमें प्राप्त होती है इस लिये चारों गतियोंमें उत्कृष्ट स्वामित्वके कथन करनेकी ओघके समान सूचना की है। किन्तु पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त, मनुष्य अपर्याप्त और आनतसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देव ये मार्गणाएँ उक्त व्यवस्थाकी अपवाद हैं। इन मार्गणाओंमें आदेश उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिके स्वामित्वके समान ही आदेश उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका स्वामित्व प्राप्त होता है, अतः इन मार्गणाओंमें उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमके स्वामित्वको उत्कृष्ट स्थितिविभक्तिके स्वामित्वके समान जाननेकी सूचना की है। इसी प्रकार इन्द्रिय आदि शेष मार्गणाओंमें भी उत्कृष्ट स्वामित्व घटित कर लेना चाहिये। यह तो उत्कृष्ट स्वामित्वके कथनका खुलासा हुआ। अब जघन्य स्वामित्वके कथनका खुलासा करते हैं—जिस क्षपकके सूक्ष्म लोभका सत्त्व एक समय अधिक एक आवलिप्रमाण शेष रहा है उसके उदयावलिके ऊपरकी एक समय प्रमाण स्थितिका अपकर्षण होकर एक समयकम आवलिके एक समय अधिक त्रिभागमें निक्षेप होता है। यह जघन्य संक्रम है, इसलिये इसका स्वामी उस क्षपक सूक्ष्मसम्पराय संयतको बतलाया है जिसके दसवें गुणस्थानका एक समय अधिक एक आवलिप्रमाण काल शेष है। यह ओघ प्ररूपणा सामान्य, पर्याप्त और मनुष्यनी इन तीन प्रकारके मनुष्योंमें अविकल घटित हो जाती है, इसलिए इन मार्गणाओंमें स्वामित्वका कथन ओघके समान किया है। जो असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव दो विग्रहसे नरकमें उत्पन्न होता है उसके यद्यपि शरीर ग्रहण करने पर संज्ञी पंचेन्द्रियके योग्य स्थितिबन्ध होने लगता है तथापि शरीर ग्रहण करनेके समयसे लेकर एक आवलि काल तक नवीन बन्धका संक्रम नहीं होता, इसलिये इसे नरकमें दो समय अधिक एक आवलिकालके अन्तिम समयमें जघन्य स्थितिसंक्रमका स्वामी बतलाया है। यह असंज्ञी जीव प्रथम पृथिवीके नारकी, सामान्य देव, भवनवासी और व्यन्तर इन चार मार्गणाओंमें उत्पन्न होता हुआ देखा जाता है इसलिये इनमें जघन्य स्थितिसंक्रमके स्वामित्वका कथन सामान्य नारकियोंके समान किया है। दूसरी पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवी तकके नारकियोंमें जिनके जघन्य स्थिति प्राप्त होती है उन्हींके जघन्य स्थितिसंक्रम प्राप्त होता है, इसलिये इन मार्गणाओंमें जघन्य स्थितिसंक्रमके स्वामित्वको जघन्य स्थितिविभक्तिके स्वामित्वके समान बतलाया है। किन्तु सातवीं पृथिवीमें कुछ विशेषता है। बात यह है कि सातवीं पृथिवीमें जघन्य स्थिति उस जीवके होती है जो उत्कृष्ट आयु लेकर उत्पन्न हुआ और जिसने अन्तर्मुहूर्त कालके पश्चात् उपशमसम्यक्त्वपूर्वक अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना की है। फिर आयुमें अन्तर्मुहूर्त शेष रहने पर मिथ्यात्वमें जाकर जिसने कुछ काल तक स्थितिसत्त्वसे कम स्थितिबन्ध किया है। तथापि ऐसे जीवके जघन्य स्थितिसंक्रम प्राप्त करना सम्भव नहीं है, इसलिये जब यह जीव स्थिति सत्त्वके समान स्थितिबन्ध करता है तब इसके एक आवलि कालके बाद जघन्य स्थितिसंक्रम होता है। यहाँ एक आवलिके अन्तमें जघन्य स्थितिसंक्रम इसलिये ग्रहण किया गया है,क्योंकि इतना काल व्यतीत होने पर स्थितिसंक्रममें उतनी कमी देखी जाती है। इसीप्रकार तिर्यञ्चोंमें भी समान स्थितिका बन्ध कराके एक आवलिके बाद जघन्य स्वामित्वको प्राप्त करना चाहिये। तिर्यञ्चोंमें यह जघन्य स्वामित्व हतसमुत्पत्तिक एकेन्द्रियके प्राप्त होता है। यहाँ इतना विशेष जानना चाहिये कि हतसमुत्पत्तिक बादर एकेन्द्रियका अपनी स्थितिके साथ सब पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें उत्पन्न होना शक्य है, इसलिये इन मार्गणाओंमें उक्त प्रकारके उत्पन्न हुए जीवके एक आवलिके अन्तमें जघन्य स्वामित्वका विधान किया है। तथा ज्योतिषी देवोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें जघन्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ५४७. कालाणुगमेण दुविहो णिद्देसो जहण्णुक्कस्सभेएण। तत्थुक्कस्से ताव पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मोह० उक्क० ट्ठिदिसं० केव० ? जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमु०। अणुक्क० ट्ठिदिसं० जह० अंतोमु०, उक्क० अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा।

§ ५४८. आदेसेण णेरइय० मोह० उक्क० ट्ठिदिसं० ओघभंगो। अणुक्क० जह० एयसमओ, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि। एवं सव्वणेरइय०-तिरिक्ख०-पंचिंदियतिरिक्खतिए३ मणुसतिय३-देवा भवणादि जाव सहस्सार त्ति। णवरि अणु० उक्क० सगट्ठिदी। पंचिं०तिरि०अपज्ज०-मणुसअपज्ज० मोह० उक्क० ट्ठिदिसं० जह० उक्क० एयसमओ। अणु० जह० खुद्दा० समयूणं, उक्क० अंतोमु०। आणदादि जाव सव्वट्ठे त्ति मोह० उक्क० ट्ठिदिसं० जहण्णुक्क० एयस०। अणु० जह० जहण्णट्ठिदी समयूणा, उक्क० उक्क०ट्ठिदी संपुण्णा। एवं जाव०।

स्थितिविभक्तिवालेके ही जघन्य स्थितिसंक्रमका स्वामित्व प्राप्त होता है, इसलिए इन मार्गणाओंमें जघन्य स्थितिसंक्रमका स्वामित्व जघन्य स्थितिविभक्तिके स्वामित्वके समान कहा है। गति मार्गणामें जिस प्रकार जघन्य स्वामित्वका निर्देश किया है उसी प्रकार वह अनाहारक मार्गणा तक यथायोग्य घटित कर प्राप्त किया जा सकता है, इसलिये उसका अलगसे कथन न करके संकेतमात्र कर दिया है।

§ ५४७. कालानुगमकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्टके भेदसे निर्देश दो प्रकारका है। उनमेंसे उत्कृष्टका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश आदेशनिर्देश। ओघकी अपेक्षा मोहनीयके उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल अनन्तकाल है जो असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है।

विशेषार्थ—मोहनीयकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिका काल उक्त प्रमाण होनेसे यहाँ उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका भी काल उक्त प्रमाण बतलाया है।

§ ५४८. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मोहनीयके उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका काल ओघके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। इसी प्रकार सब नारकी, तिर्यञ्च, पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिक, मनुष्यत्रिक, देव और भवनवासी देवोंसे लेकर सहस्रार कल्प तकके देवोंमें जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है। पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें मोहनीयके उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय कम क्षुल्लक भवग्रहणप्रमाण है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। आनतसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें मोहनीयके उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय कम जघन्य स्थितिप्रमाण है और उत्कृष्ट काल पूरी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। इसीप्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये।

विशेषार्थ—जो ओघसे उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम और उसका काल बतलाया है। उसका नरकमें पाया जाना सम्भव है इसलिये नारकियोंमें भी उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका काल ओघके समान कहा

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

§ ५४९. जहण्णे पयदं । दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मोह० जह० ट्ठिदिसंक० केव० । जहण्णुक्क० एयसमओ । अज० तिण्णि भंगा । तत्थ जो सो सादिओ सपज्जवसिदो तस्स जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० तेत्तीसं सागरो० देसूणदोपुव्वकोडीहि सादिरेयाणि ।

है । जो नारकी मरनेके पूर्व समयमें उत्कृष्ट स्थितिका संक्रम करके अन्तिम समयमें अनुत्कृष्ट स्थितिका संक्रम करता है उसके अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय पाया जाता है । तथा जो नारकी तेतीस सागर काल तक उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध न करके अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करता रहता है उसके अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट काल तेतीस सागर पाया जाता है । इसीसे यहाँ अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल तेतीस सागरप्रमाण कहा है । आगे सब नरकोंके नारकी आदि और जितनी मार्गणाओंका निर्देश किया है उनमें और सब काल तो पूर्ववत् घटित हो जाता है किन्तु अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट काल जुदा-जुदा प्राप्त होता है, क्योंकि इन मार्गणाओंका अवस्थान काल भिन्न-भिन्न प्रकारका है । इसीलिये इन मार्गणाओंमें इस अपवादके साथ शेष कथनका निर्देश सामान्य नारकियोंके समान किया है । पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्त इन दो मार्गणाओंमें उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम उन जीवोंके होता है जो अन्य गतिमें उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके अन्तर्मुहूर्त बाद इन मार्गणाओंमें उत्पन्न हुए हैं । यतः इनके उत्कृष्ट स्थिति एक समय तक ही पाई जा सकती है, अतः इनके उत्कृष्ट स्थिति संक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है । तथा इन मार्गणाओंमें अनुत्कृष्ट स्थिति कमसे कम एक समय कम खुद्दाभवग्रहणप्रमाण और अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्तप्रमाण पाई जाती है, अतः इनमें अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय कम खुद्दाभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण कहा है । आनतादिकमें भी उत्कृष्ट स्थिति एक समय तक और अनुत्कृष्ट स्थिति कमसे कम एक समय कम अपनी-अपनी जघन्य आयु तक और अधिकसे अधिक उत्कृष्ट आयु तक पाई जा सकती है । इसीसे इन मार्गणाओंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्टकाल उक्तप्रमाण कहा है । आगेकी मार्गणाओंमें भी इसी प्रकार यथायोग्य कालका विचार कर लेना चाहिये ।

§ ५४९. अब जघन्यका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघकी अपेक्षा मोहनीयके जघन्य स्थितिसंक्रमका कितना काल है ? जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अजघन्य स्थितिसंक्रमके तीन भंग हैं । उनमें जो सादि-सान्त भंग है उसकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल कुछ कम दो पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागर है ।

विशेषार्थ—क्षपक जीवके सूक्ष्म लोभका सत्त्व एक समय अधिक एक आवलि प्रमाण रह जाने पर उसका अपकर्षण एक समय तक ही होता है इसीसे मोहनीयके जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है । अजघन्य स्थितिसंक्रमके अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त ये तीन विकल्प होते हैं । पहिला विकल्प अभव्योंके होता है, क्योंकि उन्हें जघन्य स्थितिसंक्रमकी प्राप्ति कभी भी सम्भव नहीं है । दूसरा विकल्प भव्योंके होता है, क्योंकि उनके अनादि कालसे यद्यपि अजघन्य स्थितिसंक्रमका क्रम चला आ रहा है पर कालान्तरमें उसका अन्त देखा जाता है । तीसरा विकल्प उन क्षायिक सम्यग्दृष्टि भव्योंके होता है जिन्होंने उपशमश्रेणि पर चढ़ असंक्रामक होकर उतरते हुए सूक्ष्मलोभ गुणस्थानमें इसका प्रारम्भ किया है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ५५०. आदेसेण णेरइय० मोह० जह० ट्ठिदि० जह० उक्क० एयसमओ। अज० जह० समयाहियावलिया, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि। एवं पढमाए। णवरि सगट्ठिदी। विदियादि जाव सत्तमि त्ति जह० जहण्णुक्क० एयसमओ। अज० जह० जहण्णट्ठिदी, उक्क० उक्कस्सट्ठिदी। णवरि सत्तमीए जह० जहण्णेणेयसमओ, उक्क० अंतोमु०। अज० जह० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी।

यह सादि-सान्त विकल्प जघन्य और उत्कृष्टके भेदसे दो प्रकारका है। इनमेंसे जघन्य विकल्प उन जीवोंके होता है जो क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव अन्तर्मुहूर्तके भीतर दो बार श्रेणि पर चढ़े हैं। इसीसे सादि-सान्त विकल्पका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। तथा सादि-सान्त विकल्पका जो उत्कृष्ट भेद है सो उसका काल जो कुछ कम दो पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागर कहा है सो वह क्षायिक सम्यग्दर्शनके उत्कृष्ट कालकी अपेक्षासे कहा है। यहाँ क्षायिक सम्यग्दर्शनके उत्कृष्ट कालके प्रारम्भमें उपशमश्रेणि पर चढ़ा कर व उतरते समय अजघन्य स्थितिसंक्रमका प्रारम्भ करावे तथा उसके अन्तमें क्षपकश्रेणि पर चढ़ा कर अजघन्य स्थितिसंक्रमका अन्त करावे। इस प्रकार अजघन्य स्थितिसंक्रमका उक्तप्रमाण उत्कृष्ट काल प्राप्त हो जाता है।

§ ५५०. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मोहनीयके जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय अधिक एक आवलिप्रमाण है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। इसी प्रकार प्रथम पृथिवीमें है। किन्तु इतनी विशेषता है कि यहाँ अजघन्य स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है। दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तक जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। तथा अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल जघन्य स्थितिप्रमाण है और उत्कृष्ट काल उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। किन्तु इतनी विशेषता है कि सातवीं पृथिवीमें जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है तथा अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है।

विशेषार्थ—सामान्यसे नरकमें मोहनीयका जघन्य स्थितिसंक्रम एक समय तक ही होता है, क्योंकि जो असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव नरकमें उत्पन्न होता है उसके शरीर ग्रहणके बाद एक आवली कालके अन्तिम समयमें यह जघन्य संक्रम देखा जाता है। इसीसे यहाँ जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल जो एक समय अधिक एक आवलि कहा है सो यह काल भी उस नारकीके प्राप्त होता है जो असंज्ञी पर्यायसे आकर नरकमें उत्पन्न हुआ है। ऐसे जीवके नरकमें उत्पन्न होनेके समयसे लेकर एक समय अधिक एक आवलि काल तक अजघन्य स्थितिसंक्रम बना रहता है और इसके बाद यह नियमसे एक समयके लिये जघन्य स्थितिसंक्रमको प्राप्त हो जाता है। इसीसे यहाँ अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय अधिक एक आवलिप्रमाण कहा है। तथा अजघन्य स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट काल नरककी उत्कृष्ट आयुकी अपेक्षासे कहा है, क्योंकि इतने काल तक नारकीके अजघन्य स्थितिके प्राप्त होनेमें कोई बाधा नहीं आती है। अजघन्य स्थितिसंक्रमके उत्कृष्ट कालके सिवा शेष सब काल प्रथम नरकमें घटित होते हैं, इसलिये प्रथम नरकमें उक्त कालोंको सामान्य नारकियोंके समान कहा है। किन्तु प्रथम नरककी उत्कृष्ट स्थिति एक सागरप्रमाण होनेके कारण यहां अजघन्य स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट काल एक सागर ही प्राप्त होता है। दूसरी पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवी तक जो जीव उत्कृष्ट आयुके साथ वहाँ उत्पन्न हुआ है। फिर अन्तर्मुहूर्तमें जिसने उपशमसम्यक्त्वपूर्वक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ५५१. तिरिक्खेसु मोह० जह० जह० एयस०, उक्क० अंतोमु० । अज० ज० एयस०, उक्क० असंखेज्जा लोगा । पंचिं०तिरि०तिय३ जह० ट्ठिदि०संक० जह० उक्क० एयस० । अज० जह० आवलिया समयूणा, उक्क० सगट्ठिदी । पंचिंदि०तिरि०अपज्ज०-मणुसअपज्ज० जह० ट्ठिदिसं जह० उक्क० एयस० । अज० जहण्णेणावलिया समयूणा, उक्क० अंतोमु० ।

अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना कर ली है उसके नरकायुके अन्तिम समयमें जघन्य स्थितिसंक्रम प्राप्त होता है। इसीसे यहाँ जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। यहाँ अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल वहांकी जघन्य स्थितिप्रमाण और उत्कृष्ट काल उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है यह बात स्पष्ट ही है। सातवीं पृथिवीमें भी जो जीवन भर सम्यक्त्वके साथ रहा है। किन्तु अन्तमें अन्तर्मुहूर्त कालके शेष रहने पर जो मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ है। ऐसा जीव यदि सत्कर्मस्थितिके समान एक समयके लिये स्थितिबन्ध करता है तो इसके जघन्य स्थितिसंक्रम एक समय तक होता है और यदि सत्कर्मस्थितिके समान अन्तर्मुहूर्ततक स्थितिबन्ध करता है तो इसके जघन्य स्थितिसंक्रम अन्तर्मुहूर्ततक होता है। इसीसे यहाँ जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण कहा है। किन्तु इसी जीवके बादमें अन्तर्मुहूर्त काल तक अजघन्य स्थितिसंक्रम होता है। इसीसे यहाँ अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। तथा यहाँ अजघन्य स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट काल उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है।

§ ५५१. तिर्यंचोंमें मोहनीयके जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण है। पंचेन्द्रिय तिर्यंचत्रिकमें जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय कम एक आवलिप्रमाण है और उत्कृष्ट काल अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्त जीवोंमें जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समयकम एक आवलिप्रमाण है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—जो एकेन्द्रिय जीव हतसमुत्पत्तिक क्रियाको करके स्थितिसत्कर्मके समान एक समयके लिये स्थितिका बन्ध करता है उसके एक समय तक जघन्य स्थितिसंक्रम होता है। तथा जो अन्तर्मुहूर्त तक स्थितिसत्कर्मके समान स्थितिबन्ध करता है उसके अन्तर्मुहूर्त तक जघन्य स्थितिसंक्रम होता है। यही कारण है कि तिर्यंचोंमें जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। जो तिर्यंच जघन्य स्थितिसंक्रमको करके एक समय तक अजघन्य स्थितिसंक्रमको प्राप्त होता है और दूसरे समयमें मर कर अन्य गतिमें चला जाता है उसके अजघन्य स्थितिसंक्रम एक समय तक देखा जाता है। इसीसे यहाँ अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय कहा है। ऐसा नियम है कि एकेन्द्रियोंमें जघन्य स्थिति बादर जीवोंके ही प्राप्त होती है, सूक्ष्म जीवोंके नहीं। सूक्ष्म जीवोंके तो निरन्तर अजघन्य स्थिति ही पाई जाती है। और सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्यायमें निरन्तर रहनेका काल असंख्यात लोकप्रमाण है। इसीसे यहाँ अजघन्य स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट काल असंख्यात लोकप्रमाण कहा है। जो एकेन्द्रिय जीव हतसमुत्पत्तिक क्रियाको करके पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें उत्पन्न होता है उसके वहाँ उत्पन्न होनेके प्रथम

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ५५२. मणुसतिए जह० ओघभंगो। अज० जह० एयस०, उक्क० सगट्ठिदी। कथमेयसमयोवलद्धी? ण, असंकमादो अजहण्णसंकमे पडिय तत्थेयसमयमच्छिय विदिसमए कालगदस्स तदुवलंभादो। देवेसु णारयभंगो। एवं भवण०-वाण०। णवरि सगट्ठिदी। जोदिसियादि जाव सव्वट्ठे त्ति ट्ठिदिविहत्तिभंगो। एवं जाव०।

समयसे लेकर एक आवलिके अन्तमें एक समयके लिये जघन्य स्थितिसंक्रम देखा जाता है। इसीसे पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा इसी जीवके जघन्य स्थितिसंक्रमके प्राप्त होनेके पूर्व एक समय कम एक आवलि काल तक अजघन्य स्थितिसंक्रम होता रहता है। इसीसे यहाँ अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय कम एक आवलिप्रमाण कहा है। इनमें अजघन्य स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट काल अपनी-अपनी कायस्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है। पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्त जीवोंके भी जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय और अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय कम एक आवलिप्रमाण पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकके समान घटित कर लेना चाहिये। तथा यहाँ जो अजघन्य स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण कहा है सो यह इन जीवोंकी उत्कृष्ट कायस्थितिकी अपेक्षासे कहा है ऐसा जानना चाहिये।

§ ५५२. मनुष्यत्रिकमें जघन्य स्थितिसंक्रमका काल ओघके समान है। अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है।

शंका—यहाँ अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय कैसे उपलब्ध होता है?

समाधान—नहीं, क्योंकि जो असंक्रमसे अजघन्य स्थितिसंक्रमको प्राप्त होकर और एक समय वहाँ रह कर दूसरे समयमें मर गया है उसके अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय उपलब्ध होता है।

देवोंमें जघन्य और अजघन्य स्थितिसंक्रमका काल नारकियोंके समान है। इसी प्रकार भवनवासी और व्यन्तरोंमें जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि अपनी अपनी स्थिति कहनी चाहिए। तथा ज्योतिषियोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें जघन्य और अजघन्य स्थितिसंकमका भंग जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिके समान है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये।

विशेषार्थ—ओघसे जघन्य स्थितिसंकमका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समयप्रमाण सूक्ष्मसम्पराय गुणस्थानमें प्राप्त होता है जिसका प्राप्त होना मनुष्यत्रिकके ही सम्भव है। इसीसे यहाँ मोहनीयके जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल ओघके समान कहा है। यहाँ अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय क्यों है इसका खुलासा मूलमें किया ही है। तथा अजघन्य स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है। सामान्य देव, भवनवासी और व्यन्तर इन तीन प्रकारके देवोंमें असंज्ञी जीव मर कर उत्पन्न हो सकते हैं, इसलिये इनमें जघन्य और अजघन्य स्थितिसंक्रमका काल नारकियोंके समान बन जाता है। किन्तु इनकी भवस्थिति जुदी जुदी होनेसे यहाँ अजघन्य स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण प्राप्त होता है। अब रहे ज्योतिषी और सौधर्म कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देव सो इनमें जिस प्रकार जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिका काल बतलाया है उसी प्रकार जघन्य और अजघन्य स्थितिसंक्रमका भी काल घटित कर लेना चाहिये। उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है। यही कारण है कि यहाँ जघन्य और अजजन्य स्थितिसंक्रमका काल जघन्य और अजघन्य स्थितिविभक्तिके कालके समान कहा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ५५३. अंतरं दुविहं जहण्णुकस्सभेएण। उक्क० पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मोह० उक्क० ट्ठिदिसं० अंतरं जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्क० अणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा। अणु० ज० एयस०, उक्क० अंतोमु०।

§ ५५४. आदेसेण णेरइय० मोह० उक्क० जह० अंतोमु०, उक्क० तेत्तीसं सागरो० देसूणाणि। अणु० ओघं। एवं सव्वणेरइय०। णवरि सगट्ठिदी देसूणा।

§ ५५५. तिरिक्खेसु ओघभंगो। पंचिं०तिरिक्खतिय३ उक्क० ज० अंतोमु०, उक्क० पुव्वकोडिपुधत्तं। अणु० ओघो। एवं मणुस०३। पंचिं०तिरि०अपज्ज०-मणुसअपज्ज० उक्क० अणु० णत्थि अंतरं। एवमाणदादि जाव सव्वट्ठे त्ति।

---

§ ५५३. अन्तर दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघकी अपेक्षा मोहनीयके उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्तप्रमाण और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है। अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है। इसीसे उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। एकेन्द्रियादि पर्यायमें रहकर यह जीव अनन्त काल तक अनुत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करता रहता है जिससे इसे इतने काल तक उत्कृष्ट स्थितिकी प्राप्ति नहीं होती। इसीसे यहाँ उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट अन्तर अनन्त कालप्रमाण कहा है। उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसीसे यहाँ अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्तप्रमाण कहा है।

§ ५५४. आदेशसे नारकियोंमें मोहनीयके उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागर है। तथा अनुत्कृष्टका भंग ओघके समान है। इसी प्रकार सब नारकियोंमें जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है।

विशेषार्थ—अनुत्कृष्ट स्थितिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त होनेसे उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। जिस नारकीने आयुके प्रारम्भमें और अन्तमें उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम किया है और मध्यमें जो अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रम करता रहा उसके उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तेतीस सागरप्रमाण पाया जाता है। इसीसे यहाँ उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट अन्तर उक्तप्रमाण कहा है। उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसीसे यहाँ अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त ओघके समान कहा है। शेष कथन सुगम है।

§ ५५५. तिर्यञ्चोंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका अन्तर ओघके समान है। पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्वप्रमाण है। तथा अनुत्कृष्टका अन्तर ओघके समान है। मनुष्यत्रिकमें इसी प्रकार जानना चाहिये। तथा पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्त जीवोंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका अन्तरकाल नहीं है। आनतसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तक भी इसी प्रकार जानना चाहिये।

विशेषार्थ—पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिककी उत्कृष्ट कायस्थिति पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्य है। किन्तु भोगभूमिमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका प्राप्त होना सम्भव नहीं है इसी से यहाँ उत्कृष्ट

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ५५६. देवगदीए देवेसु उक्क० जह० अंतोमु०, उक्क० अट्ठारससागरो० सादिरेयाणि । अणु० ओघभंगो । भवणादि जाव सहस्सारे त्ति उक्क० ट्ठिदिसं० जह० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी देसूणा । अणु० ओघो । एवं जाव० ।

§ ५५७. जहण्णए पयदं । दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण जह० ट्ठिदिसं० णत्थि अंतरं । अज० ज० एयस०, उक्क० अंतोमुहुत्तं, उवसमसेढीए तदुवलद्धीदो। एवं मणुसतिय०३ । णवरि अज० अंतरं जहण्णु० अंतोमु० ।

§ ५५८. आदेसेण णेरइय० जह० णत्थि अंतरं । अज० जहण्णुक्क० एयसमओ ।

स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्वप्रमाण कहा है । मनुष्यत्रिकमें भी अनुत्कृष्ट-स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट अन्तरकाल इसी प्रकार घटित कर लेना चाहिये । पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तमें दो बार उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका प्राप्त होना या उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका अन्तर देकर दो बार अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका प्राप्त होना सम्भव नहीं है । इसीसे इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमके अन्तरका निषेध किया है । यही बात आनतसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तक जाननी चाहिये । इसीसे वहाँ भी उक्त दो प्रकारके स्थितिसंक्रमोंके अन्तरका निषेध किया है । शेष कथन सुगम है ।

§ ५५६. देवगतिमें देवोंमें उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक अठारह सागर है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका अन्तर ओघके समान है । भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार कल्प तकके देवोंमें उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका अन्तर ओघके समान है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—देवोंमें ओघ उत्कृष्ट स्थिति सहस्रार कल्प तक पाई जाती है । इसीसे यहाँ उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट अन्तर साधिक अठारह सागर प्रमाण कहा है । शेष कथन सुगम है ।

§ ५५७. जघन्यका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघसे जघन्य स्थितिसंक्रमका अन्तरकाल नहीं है । अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है, क्योंकि इसकी उपलब्धि उपशमश्रेणिमें होती है । इसी प्रकार मनुष्यत्रिकमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्यत्रिकमें अजघन्य स्थिति-संक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है ।

विशेषार्थ—मोहनीयका जघन्य स्थितिसंक्रम क्षपकश्रेणिमें प्राप्त होता है । किन्तु एक जीवके क्षपकश्रेणिका दो बार प्राप्त होना सम्भव नहीं है । इसीसे यहाँ जघन्य स्थितिसंक्रमके अन्तरका निषेध किया है । जो जीव उपशमश्रेणिमें एक समय तक मोहनीयकी अजघन्य स्थितिका असंक्रामक होता है और दूसरे समयमें मर कर देव हो जाता है उसके मोहनीयकी अजघन्य स्थितिके संक्रमका जघन्य अन्तर एक समय पाया जाता है । तथा उपशान्तमोहका काल अन्तर्मुहूर्त होनेके कारण अजघन्य स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है । यह ओघप्ररूपणा मनुष्यत्रिकमें घटित हो जाती है, इसलिये मनुष्यत्रिकमें इस कथनको ओघके समान कहा है । किन्तु मनुष्यत्रिकमें अजघन्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय नहीं घटित होता, क्योंकि ओघसे एक समय अन्तर दो गतियोंकी अपेक्षासे प्राप्त होता है । इसलिये यहाँ उत्कृष्ट अन्तरके समान जघन्य अन्तर भी अन्तर्मुहूर्त जानना चाहिये ।

§ ५५८. आदेशसे नारकियोंमें जघन्य स्थितिसंक्रमका अन्तर नहीं है । अजघन्य स्थिति

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं पढमाए सव्वपंचिंदियतिरिक्ख-मणुसअपज्ज०-देवा भवण०-वाणवेंतरे त्ति । विदियादि जाव छट्ठि त्ति जहण्णाजह० णत्थि अंतरं । जोदिसियादि जाव सव्वट्ठा त्ति एवं चेव । सत्तमाए जह० णत्थि अंतरं । अज० जह० एयस०, उक्क० अंतोमु० । तिरिक्खगईए तिरिक्खेसु जह० ज० अंतोमु०, उक्क० असंखेज्जा लोगा । अज० जह० एयस०, उक्क० अंतोमु० । एवं जाव० ।

संक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है। इसी प्रकार पहली पृथिवीके नारकी, सब पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देव, भवनवासी और व्यन्तर देवोंमें जानना चाहिये। दूसरी पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवी तकके नारकियोंमें जघन्य और अजघन्य स्थितिसंक्रमका अन्तर नहीं है। ज्योतिषियोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें भी इसी प्रकार जानना चाहिये। सातवीं पृथिवीमें जघन्य स्थितिसंक्रमका अन्तर नहीं है। अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। तिर्यञ्चगतिमें तिर्यञ्चोंमें जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर असंख्यात लोकप्रमाण है। अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये।

विशेषार्थ—जो असंज्ञी नरकमें उत्पन्न होता है उसीके एक समयके लिये जघन्य स्थितिसंक्रमका प्राप्त होना सम्भव है। इसीसे यहाँ जघन्य स्थितिसंक्रमके अन्तरका निषेध करके अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय बतलाया है। प्रथम नरकके नारकी, सब पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देव, भवनवासी देव और व्यन्तर देव इनमें भी यथासम्भव जो असंज्ञी या एकेन्द्रिय जीव मर कर उत्पन्न होते हैं उन्हींके एक समयके लिये जघन्य स्थिति संक्रमका पाया जाना सम्भव है। इससे यहाँ भी सामान्य नारकियोंके समान जघन्य स्थितिसंक्रमके अन्तरका निषेध करके अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय बतलाया है। दूसरी पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवी तकके जिन नारकियोंमें जघन्य स्थितिसंक्रम पाया जाता है वह भवके अन्तिम समयमें ही पाया जाता है, इस लिये यहाँ जघन्य और अजघन्य दोनों प्रकारके स्थितिसंक्रमोंके अन्तरका निषेध किया है। ज्योतिषियोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें भी जिनके जघन्य स्थितिसंक्रम पाया जाता है वह भवके अन्तिम समयमें ही पाया जाता है, इस लिये इन मार्गणाओंमें भी जघन्य और अजघन्य स्थितिसंक्रमके अन्तरका निषेध किया है। सातवीं पृथिवीमें जिनके जघन्य स्थितिसंक्रम होता है वह आयुमें अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहने पर कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक अन्तर्मुहूर्त तक होता है। इसलिये इनके जघन्य स्थितिसंक्रमके अन्तरका निषेध करके अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तर काल अन्तर्मुहूर्त कहा है। तिर्यञ्चगतिमें अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण और उत्कृष्ट काल असंख्यात लोक प्रमाण बतलाया है। इसीसे इनके जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण और उत्कृष्ट अन्तरकाल असंख्यात लोकप्रमाण कहा है। तथा तिर्यञ्चगतिमें जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त बतलाया है। इसीसे यहाँ अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तरकाल एक समय और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त कहा है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक यथायोग्य अन्तरकाल जान लेना चाहिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ५५९. णाणाजीवेहि भंगविचओ दुविहो जहण्णु०ट्ठिदिसं०विसयभेदेण। एत्थुकस्से पयदं। तत्थट्ठपदं—जे उकस्सियाए ट्ठिदीए संकामगा ते अणुकस्सियाए ट्ठिदीए असंकामगा इच्चादि। एदेणट्ठपदेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मोह० उक्क०ट्ठिदीए सिया सव्वे असंकामगा। सिया एदे च संकामओ च १। सिया एदे च संकामया च २। धुवसहिदा ३ भंगा। अणुक० संकामयाणं पि एवं चेव। णवरि विवरीयं कायव्वं। एवं चदुसु गदीसु। णवरि मणुसअपज्ज० उक्क० अणुक्क० अट्ठ भंगा। एवं जाव०

§ ५५९. नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचयके दो भेद हैं—जघन्य स्थितिसंक्रमविषयक और उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमविषयक। यहाँ उत्कृष्टका प्रकरण है। इस विषयमें यह अर्थपद है—जो उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक होते हैं वे अनुत्कृष्ट स्थितिके असंक्रामक होते हैं आदि। इस अर्थपदके अनुसार निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघकी अपेक्षा मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके कदाचित् सब जीव असंक्रामक होते हैं। कदाचित् मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके बहुत जीव असंक्रामक होते हैं और एक जीव संक्रामक होता है १। कदाचित् मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके बहुत जीव असंक्रामक होते हैं और बहुत जीव संक्रामक होते हैं २। इस प्रकार ध्रुवसहित तीन भंग होते हैं ३। अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंके भी इसी प्रकार तीन भंग होते हैं। किन्तु इतनी विशेषता है कि यहाँ विपरीत-रूपसे कथन करना चाहिये। इसी प्रकार चारों गतियोंमें जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्य अपर्याप्तकोंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमवालोंकी अपेक्षा आठ भंग होते हैं। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये।

विशेषार्थ—नियम यह है कि जो उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक होते हैं वे अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक नहीं होते और जो अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक होते हैं वे उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक नहीं होते। इस हिसाबसे यद्यपि उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंसे अनुत्कृष्ट स्थितिके असंक्रामक और अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंसे उत्कृष्ट स्थितिके असंक्रामक जीव जुदे नहीं ठहरते। तथापि एक बार उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंको और दूसरी बार अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंको मुख्य करके भंगोंका संग्रह करने पर तीन-तीन भंग प्राप्त होते हैं। जो मूलमें गिनाये ही हैं। बात यह है कि उत्कृष्ट स्थितिका संक्रामक जीव कदाचित् एक भी नहीं रहता, कदाचित् एक होता है और कदाचित् अनेक होते हैं। इन तीन विकल्पोंको मुख्य करके भंग कहने पर वे इस प्रकारसे प्राप्त होते हैं—(१) कदाचित् सब जीव मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके असंक्रामक होते हैं। (२) कदाचित् बहुत जीव मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके असंक्रामक और एक जीव संक्रामक होता है। (३) कदाचित् बहुत जीव मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके असंक्रामक और बहुत जीव संक्रामक होते हैं। ये तो उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकों और असंक्रामकोंकी अपेक्षासे भंग हुए। और जब अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकों और असंक्रामकोंको प्रमुख कर दिया जाता है तब इनकी अपेक्षासे ये तीन भंग प्राप्त होते हैं—(१) कदाचित् सब जीव मोहनीयकी अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक होते हैं। (२) कदाचित् बहुत जीव मोहनीयकी अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक होते हैं और एक जीव असंक्रामक होता है। (३) कदाचित् बहुत जीव मोहनीयकी अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक होते हैं और बहुत जीव असंक्रामक होते हैं। इसी प्रकार चारों गतियोंमें ये तीन तीन भंग होते हैं। किन्तु लब्ध्यपर्याप्त मनुष्य यह सान्तर मार्गणा है, इसलिए इसमें प्रत्येककी अपेक्षा आठ आठ भंग होते हैं। यथा—(१) कदाचित् एक जीव मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका संक्रामक होता है। (२) कदाचित् नाना बजी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ५६०. जहण्णए पयदं। तहा चेव अट्ठपदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मोह० जह० ट्ठिदिसं० भयणिज्जा। पुणो अज० धुवं काऊण तिण्णि भंगा[1]। एवं चदुगदीसु। णवरि तिरिक्खेसु जह० अज० णियमा अत्थि। मणुसअपज्ज० जह० अज० संका० भयणिज्जा। पुणो भंगा[1] अट्ठ ८। एवं जाव०।

मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक होते हैं। (३) कदाचित् एक जीव मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका असंक्रामक होता है। (४) कदाचित् नाना जीव मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके असंक्रामक होते हैं। (५) कदाचित् एक जीव मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका संक्रामक और एक जीव असंक्रामक होता है। (६) कदाचित् एक जीव मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका संक्रामक और नाना जीव असंक्रामक होते हैं। (७) कदाचित् नाना जीव मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक और एक जीव असंक्रामक होता है। (८) कदाचित् नाना जीव मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक और नाना जीव असंक्रामक होते हैं। ये उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकों और असंक्रामकोंकी अपेक्षासे आठ भंग कहे हैं। इसी प्रकार अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकों और असंक्रामकोंकी अपेक्षासे भी आठ भंग कहने चाहिये। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक यथायोग्य भंग ले आना चाहिये।

§ ५६०. अब जघन्यका प्रकरण है। अर्थपद पूर्वोक्त प्रकार है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। ओघसे मोहनीयकी जघन्य स्थितिके संक्रामक जीव भजनीय हैं। फिर अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंको ध्रुव करके तीन भंग होते हैं। इसी प्रकार चारों गतियोंमें जान लेना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चोंमें जघन्य स्थितिके संक्रमवाले और अजघन्य स्थितिके संक्रमवाले जीव नियमसे हैं। मनुष्य अपर्याप्तकोंमें जघन्य और अजघन्य स्थितिके संक्रमवाले भजनीय हैं। आठ भंग होते हैं। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये।

विशेषार्थ—ओघसे मोहनीयकी जघन्य स्थितिका संक्रम क्षपणश्रेणिमें होता है। किन्तु क्षपकश्रेणिमें एक तो सदा जीवोंका पाया जाना सम्भव नहीं है। यदि पाये भी जाते हैं तो कदाचित् एक जीव पाया जाता है और कदाचित् नाना जीव पाये जाते हैं। इसीसे मोहनीयकी जघन्य स्थितिके संक्रामकोंको भजनीय कहा है। यहाँ एक जीव और नाना जीवोंकी अपेक्षा तीन भंग होंगे। भंगोंका क्रम वही है जिसका उल्लेख उत्कृष्टकी अपेक्षा तीन भंग बतलाते समय कर आये हैं। किन्तु अजघन्य स्थितिके संक्रामक जीव नियमसे पाये जाते हैं, अतः इस अपेक्षासे तीन भंग होते हैं—(१) कदाचित् अजघन्य स्थितिके संक्रामक सब जीव होते हैं। (२) कदाचित् बहुत जीव अजघन्य स्थितिके संक्रामक और एक जीव असंक्रामक होता है। (३) कदाचित् बहुत जीव अजघन्य स्थितिके संक्रामक और बहुत जीव असंक्रामक होते हैं। यह ओघ प्ररूपणा चारों गतियोंमें बन जाती है, इसलिये चारों गतियोंके कथनको ओघके समान कहा है। किन्तु तिर्यञ्चगति इसका अपवाद है। बात यह है कि तिर्यञ्चगतिमें जघन्य स्थिति और अजघन्य स्थितिके संक्रामक नाना जीव सदा पाये जाते हैं। इसलिये वहाँका कथन भिन्न प्रकारका है। मनुष्य अपर्याप्तक सान्तर मार्गणा होनेसे वहाँ जिस प्रकार उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रामकोंकी अपेक्षा आठ-आठ भंग कहे हैं उसी प्रकार यहाँ भी जानना चाहिये। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक अपनी-अपनी विशेषताको जानकर भंगोंका कथन करना चाहिये।

इस प्रकार भंगविचयानुगम समाप्त हुआ।

१. ता० -आ०प्रत्योः पुणो अज० धुवं भंगा इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ५६१. भागाभा० दुविहो जह०-उक्क०ट्ठिदिसंका०विसयभेदेण । उक्कसे ताव पयदं । दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मोह० उक्क० ट्ठिदिसंकामया सव्वजीवाणं केव० भागो ? अणंतिमभागो । अणु० ट्ठिदिसंका० सव्वजी० केव० भागो ? अणंता भागा । एवं तिरिक्खोघं आदेसेण णेरइय० उक्क० ट्ठिदिसं० सगसव्वजी० केव० ? असंखे०भागो । अणु० असंखेज्जा भागा । एवमसंखेज्जरासीणं । संखेज्जरासीणं पि एवं चेव । णवरि सगपडिभागिओ भागो कायव्वो । एवं जाव० ।

§ ५६२. जह० पयदं । दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मोह० जह० ट्ठिदिसं० सव्वजीवाणं केव० भागो ? उक्कस्सभंगो । अज० अणुक्कस्सभंगो । एवं सव्वत्थ गदिमग्गणाए । णवरि तिरिक्खेसु णारयभंगो । एवं जा० ।

§ ५६३. परिमाणं दुविहं—जह० उक्क० । तत्थुक्कस्सए पयदं । दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मोह० उक्क० ट्ठिदिसं० केत्तिया ? असंखेज्जा । अणु० अणंता । एवं तिरिक्खोघो । आदेसेण णेरइय० मोह० उक्क० अणुक्क० असंखेज्जा । एवं सव्वणेरइय०-सव्वपंचिंदियतिरिक्ख०-मणुस०अपज्ज०-भवणादि जाव सहस्सार त्ति ।

---

§ ५६१. भागाभाग दो प्रकारका है—जघन्य स्थितिसंक्रमविषयक और उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमविषयक । सर्वप्रथम उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघकी अपेक्षा मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? अनन्तवें भागप्रमाण हैं । अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? अनन्त बहुभागप्रमाण हैं । इसीप्रकार सामान्य तिर्यंचोंमें भागाभाग जानना चाहिये । आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक जीव सब जीवोंके असंख्यात बहुभागप्रमाण हैं । जिन राशियोंकी संख्या असंख्यात है उनका इसी प्रकार भागाभाग जानना चाहिये । तथा जिन राशियोंकी संख्या संख्यात है उनका भी इसी प्रकार भागाभाग जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि यहाँ अपने प्रतिभागके अनुसार भागाभाग प्राप्त करना चाहिये । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

§ ५६२. जघन्यका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघकी अपेक्षा मोहनीयकी जघन्य स्थितिके संकामक जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? इनका भागाभाग उत्कृष्टके समान है । अजघन्य स्थितिके संक्रमकोंका भागाभाग अनुत्कृष्टके समान है । इसी प्रकार सर्वत्र गतिमार्गणामें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चोंमें भागाभाग नारकियोंके समान है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

§ ५६३. परिमाण दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक जीव कितने हैं ? असंख्यात हैं । अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक जीव अनन्त हैं । इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्चोंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका परिमाण जानना चाहिये । आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक जीव असंख्यात हैं । इसी प्रकार सब नारकी, सब पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च, मनुष्य अपर्याप्त और भवनवासी देवोंसे लेकर सहस्रार कल्प तकके देवोंमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मणुसेसु उक्क० संखेज्जा। अणु० असंखेज्जा। एवमाणदादि जाव अवराइदा त्ति। मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु सव्वट्ठे च उक्कस्साणुक्क० संका० संखेज्जा। एवं जाव०।

§ ५६४. जह० पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मोह० जह० ट्ठिदिसं० केत्तिया ? संखेज्जा। अज० अणंता। आदेसेण णेरइय० जह० अज० असंखेज्जा। एवं पढमाए। सत्तमाए च एवं चेव। सव्वपंचिं०तिरि०-मणुसअपज्ज०-देवगईए देवा भवण० वाणवेंतरे त्ति विदियादि जाव छट्ठि त्ति जह० संखेज्जा, अज० असंखेज्जा। एवं मणुस-जोइसियादि जाव अवराइद त्ति। तिरिक्खेसु जह० अज० अणंता। मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु सव्वट्ठे च जह० अज० संखेज्जा। एवं जाव०।

§ ५६५. खेत्तं दुविहं—जह०विसयमुक्क०विसयं च। उक्कस्सए पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मोह० उक्क० ट्ठिदिसं० केव० ? लोगस्स असंखे०भागे। अणु० सव्वलोगे। एवं तिरिक्खोघो। सेसगइमग्गणाभेदेसु उक्क० अणुक्क० लोग० असंखे०भागे। एवं जाव०।

उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका परिमाण जानना चाहिये। मनुष्योंमें उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक जीव संख्यात हैं। अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक जीव असंख्यात हैं। इसी प्रकार आनत कल्पसे लेकर अपराजित तकके देवोंमें जानना चाहिये। मनुष्य पर्याप्त, मनुष्यिनी और सर्वार्थ-सिद्धिके देवोंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका परिमाण संख्यात है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये।

§ ५६४. जघन्यका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। ओघसे मोहनीयकी जघन्य स्थितिके संक्रामक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। अजघन्य स्थितिके संक्रामक जीव अनन्त हैं। आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें जघन्य और अजघन्य स्थितिके संक्रामक जीव असंख्यात हैं। पहली और सातवीं पृथिवीमें इसी प्रकार जानना चाहिये। तथा सब पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च, मनुष्य अपर्याप्त, देवगतिमें सामान्य देव, भवनवासी देव और व्यन्तर देवोंमें भी इसी प्रकार जानना चाहिये। दूसरी से लेकर छठी पृथिवी तकके नारकियोंमें जघन्य स्थितिके संक्रामक जीव संख्यात हैं और अजघन्य स्थितिके संक्रामक जीव असंख्यात हैं। इसी प्रकार सामान्य मनुष्य और ज्योतिषी देवोंसे लेकर अपराजित तकके देवोंमें जानना चाहिये। तिर्यञ्चोंमें जघन्य और अजघन्य स्थितिके संक्रामक जीव अनन्त हैं। मनुष्य पर्याप्त, मनुष्यनी और सर्वार्थसिद्धिके देवोंमें जघन्य और अजघन्य स्थितिके संक्रामक जीव संख्यात हैं। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये।

§ ५६५. क्षेत्र दो प्रकारका है—जघन्य स्थितिके संक्रामकोंसे सम्बन्ध रखनेवाला और उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंसे सम्बन्ध रखनेवाला। उत्कृष्टका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। ओघसे मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक जीव कितने क्षेत्रमें रहते हैं ? लोकके असंख्यातवें भाग क्षेत्रमें रहते हैं। अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक जीव सब लोकमें रहते हैं। इसी प्रकार सामान्य तिर्यञ्चोंमें जानना चाहिये। तथा गति मार्गणाके शेष जितने भेद हैं उनमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक जीव लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ५६६. जह० पयदं । दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण उक्कस्सभंगो । एवं सव्वासु गईसु । णवरि तिरिक्खोघे जह० लोग० संखे०भागो। एवं जाव० ।

§ ५६७. पोसणं दुविहं—जहण्णविसयमुक्कस्सविसयं च । उक्कस्से ताव पयदं । दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मोह० उक्क०ट्ठिदिसंकामएहि केव० पोसिदं ? लोग० असंखे०भागो अट्ठ-तेरहचोद्दस० देसूणा । अणु० सव्वलोगो ।

---

§ ५६६. जघन्यका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघसे जघन्यका भंग उत्कृष्टके समान है । इसी प्रकार सब गतियोंमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि सामान्य तिर्यञ्चोंमें जघन्य स्थितिके संक्रामक जीव लोकके संख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रमें रहते हैं । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—यहाँ उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक जीव संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें कुछ ही होते हैं । इसलिए उनका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण बतलाया है । तथा शेष सब संसारी जीव अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक होते हैं, अतः उनका क्षेत्र सब लोकप्रमाण बतलाया है । तिर्यञ्चोंमें यह प्ररूपणा ओघके समान बन जाती है, अतः उनके कथनको ओघके समान कहा है । तिर्यञ्चोंके सिवा गति मार्गणाके और जितने भेद हैं, सामान्यतः उनका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण होनेसे उनमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका क्षेत्र उक्त प्रमाण कहा है । इसी प्रकार जघन्य और अजघन्य स्थितिसंक्रमकी अपेक्षासे चारों गतियोंमें क्षेत्र घटित कर लेना चाहिये । किन्तु तिर्यञ्चोंमें जघन्य स्थितिके संक्रामक जीवोंका क्षेत्र लोकके संख्यातवें भागप्रमाण है इतना यहाँ विशेष जानना चाहिये जो बादर पर्याप्त वायुकायिक जीवोंकी अपेक्षा प्राप्त होता है ।

§ ५६७. स्पर्शन दो प्रकारका है—जघन्यस्थितिके संक्रामकोंसे सम्बन्ध रखनेवाला और उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंसे सम्बन्ध रखनेवाला । यहाँ सर्व प्रथम उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघसे मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंने कितने क्षेत्रका स्पर्शन किया है ? लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भाग और कुछ कम तेरह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंने सब लोकका स्पर्शन किया है ।

विशेषार्थ—यहाँ मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका जो लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण स्पर्शन बतलाया है वह वर्तमान कालकी मुख्यतासे बतलाया है, क्योंकि मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका संक्रम सातों नरकोंके नारकी, संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यञ्च, पर्याप्त मनुष्य व बारहवें स्वर्गतकके देवोंके ही सम्भव है पर इन सबका वर्तमान क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही है । तथा त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे जो कुछ कम आठ और कुछ कम तेरह भागप्रमाण स्पर्शन बतलाया है वह अतीत कालकी अपेक्षासे बतलाया है, क्योंकि विहारवत्स्वस्थान, वेदना, कषाय और वैक्रियिक पदसे परिणत हुये मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक जीवोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है और मारणान्तिक समुद्घातसे परिणत हुए मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक जीवोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम तेरह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । यहाँ तैजस, आहारक और उपपाद ये तीन पद सम्भव नहीं । यद्यपि स्वस्थानस्वस्थान पद होता है । पर इसकी अपेक्षा स्पर्शन लोकके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ५६८. आदेसेण णेरइय० उक्क० अणुक्क० लोगस्स असंखे०भागो छचोद्दस० देसूणा। पढमाए खेत्तं। विदियादि जाव सत्तमि त्ति उक्क० अणुक्क० सगपोसणं।

§ ५६९. तिरिक्खेसु उक्क० लोग० असंखे०भागो छचोद्दस० देसूणा। अणु० सव्वलोगो। पंचिंदियतिरिक्खतिए ३ मणुसतिए च एवं चेव। णवरि अणु० लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा। पंचि०तिरि०अपज्ज०-मणु०अपज्ज० उक्क० खेत्तं। अणुक्क० लोग० असंखे०भागो सव्वलोगो वा।

असंख्यातवें भागप्रमाण ही प्राप्त होता है। ओघसे अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन सब लोक है यह स्पष्ट ही है।

§ ५६८. आदेशसे नारकियोंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रोंका और त्रसनालीके चौदह भागमेंसे कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। पहली पृथिवीमें स्पर्शन क्षेत्रके समान है। दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन अपने-अपने नरकके स्पर्शनके समान जानना चाहिये।

विशेषार्थ—सामान्यसे नारकियोंका और प्रत्येक नरकके नारकियोंका जो स्पर्शन बतलाया है वही यहाँ सामान्य नारकियोंमें और प्रत्येक नरकके नारकियोंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक जीवोंकी अपेक्षासे प्राप्त होता है, इसलिये सामान्य नारकियोंका और प्रत्येक नरकके नारकियोंका जिस प्रकारसे स्पर्शन घटित करके बतलाया है उसी प्रकार यहाँ भी घटित कर लेना चाहिये।

§ ५६९. तिर्यञ्चोंमें उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंने सब लोकका स्पर्शन किया है। पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें और मनुष्यत्रिकमें इसी प्रकार स्पर्शन जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और सब लोकका स्पर्शन किया है। पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और सब लोक क्षेत्रका स्पर्शन किया है।

विशेषार्थ—तिर्यञ्चोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका संक्रम संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यञ्च ही करते हैं और इनका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है, अतः तिर्यञ्चोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण बतलाया है। तथा इनका अतीत कालीन स्पर्शन जो त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भागप्रमाण बतलाया है सो इसका कारण यह है कि ऐसे तिर्यञ्चोंने मारणान्तिक समुद्घातद्वारा नीचे कुछ कम छह राजुप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है, क्योंकि जो तिर्यञ्च मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका संक्रम कर रहे हैं उनका संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त तिर्यञ्च, मनुष्य और नारकियोंमें ही मारणान्तिक समुद्घात करना सम्भव है। मोहनीयकी अनुत्कृष्ट स्थितिका संक्रम सब तिर्यञ्चोंके सम्भव है और वे सब लोकमें पाये जाते हैं, अतः मोहनीयकी अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक तिर्यञ्चोंका स्पर्शन सब लोकप्रमाण बतलाया है। सामान्य तिर्यञ्चोंमें जो उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन कहा है वह पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिककी मुख्यतासे ही कहा है। तथा मनुष्यत्रिकमें भी यह स्पर्शन इसी प्रकारसे प्राप्त होता है, अतः इन तीन

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ५७०. देवगदीए देवेसु उक्क० अणुक्क० लोग० असंखे०भागो० अट्ठ-णव-चोद्दसभागा वा देसूणा। एवं सोहम्मीसाणे। भवण०-वाण०-जोदिसि० उक्क० अणुक्क० लोग० असंखे० भागो अद्धुट्ठ-अट्ठ-णवचोद्दस० देसूणा। सणक्कुमारादि जाव सहस्सार त्ति उक्क० अणुक्क० लोग० असंखे०भागो अट्ठचोद्दस० देसूणा। आणदादि जाव अच्चुदा त्ति उक्क० खेत्तं। अणुक्क० लोग० असंखे०भागो छचोद्दस० देसूणा। उवरि खेत्तभंगो। एवं जाव०।

प्रकारके तिर्यंचोंमें और तीन प्रकारके मनुष्योंमें उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन सामान्य तिर्यञ्चोंके समान बतलाया है। किन्तु उक्त तीन प्रकारके तिर्यञ्चोंमें और तीन प्रकारके मनुष्योंमें अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंके स्पर्शनमें कुछ विशेषता है। बात यह है कि इन तीन प्रकारके तिर्यंचों और तीन प्रकारके मनुष्योंका वर्तमान स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अतीतकालीन स्पर्शन सब लोक है, अतः इनमें अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रमवालोंका स्पर्शन उक्त प्रमाण बतलाया है। जो तिर्यञ्च या मनुष्य मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च लब्ध्यपर्याप्तकोंमें या लब्ध्यपर्याप्त मनुष्योंमें उत्पन्न होते हैं उन्हींके प्रथम समयमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका संक्रम पाया जाता है। अब जब इनके वर्तमानकालीन और अतीतकालीन स्पर्शनका विचार करते हैं तो वह लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही प्राप्त होता है। इसीसे यहाँ इन दोनों मार्गणाओंमें उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण बतलाया है। वैसे पंचेन्द्रिय लब्ध्यपर्याप्तक तिर्यञ्चोंका और लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योंका वर्तमानकालीन स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अतीतकालीन स्पर्शन सब लोक बतलाया है जो इनके अनुत्कृष्ट स्थितिका संक्रम होते हुए सम्भव है। इसीसे यहाँ इन दोनों मार्गणाओंमें अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका वर्तमान कालीन स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अतीतकालीन स्पर्शन सब लोकप्रमाण बतलाया है।

§ ५७०. देवगतिमें देवोंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम नौ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इसी प्रकार सौधर्म और ऐशान कल्पमें जानना चाहिये। भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम साढ़े तीन, कुछ कम आठ और कुछ कम नौ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। सनत्कुमारसे लेकर सहस्रार कल्प तकके देवोंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। आनत कल्पसे लेकर अच्युत कल्प तकके देवोंमें उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। तथा इनमें अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक जीवोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है। इससे आगेके देवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये।

विशेषार्थ—सामान्य देवोंका व भवनवासी आदि देवोंका जो वर्तमानकालीन व अतीतकालीन स्पर्शन बतलाया है वही यहाँ उत्कृष्ट व अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक उक्त देवोंका स्पर्शन जानना चाहिये जो मूलमें बतलाया ही है। अन्तर केवल आनतादिक चार कल्पोंके देवोंमें उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंके स्पर्शनमें है। बात यह है कि आनतादिक चार कल्पोंमें जो स्वयोग्य उत्कृष्ट

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

§ ५७१. जहण्णए पयदं । दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मोह० जह० अज० खेत्तभंगो । आदेसेण णेरइय० जह० खेत्तं । अज० छचोद्दस० । पढमाए खेत्तं । विदियादि जाव सत्तमा त्ति जह० खेत्तं । अज० सगपोसणं । तिरि० जह० अज० खेत्तं । सव्वपंचिंदियतिरिक्ख-सव्वमणुस० जह० लोग० असंखे०भागो । अज० लो० असं०भागो सव्वलोगो वा । देवेसु जह० खेत्तं । अज० लोग० असंखे०भागो अट्ठ-णवचोद्द० देसूणा । एवं सोहम्मीसाणे । भवण-वाण-जोदिसि० जह० खेत्तं । अज० अणु०भंगो । सणक्कुमारादि जाव अच्चुदा त्ति एवं चेव । उवरि खेत्तं । एवं जाव० ।

स्थितिवाले द्रव्यलिंगी मुनि उत्पन्न होते हैं उन्हीं देवोंके प्रथम समयमें उत्कृष्ट स्थितिका संक्रम पाया जाता है । पर ऐसे देव संख्यात ही होते हैं, अतः इनका वर्तमानकालीन व अतीतकालीन स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है । इसीसे यहाँ इन चार कल्पोंमें उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण बतलाया है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक यथायोग्य स्पर्शन जानना चाहिये ।

§ ५७१. जघन्यका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघसे मोहनीयकी जघन्य और अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । आदेशसे नारकियोंमें जघन्य स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । तथा अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंने त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । पहली पृथिवीमें स्पर्शन क्षेत्रके समान है । दूसरीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें जघन्य स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन क्षेत्र समान है । तथा अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन अपने अपने नरकके स्पर्शनके समान है । तिर्यञ्चोंमें जघन्य और अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । सब पंचेन्द्रिय तिर्यंच और सब मनुष्योंमें जघन्य स्थितिके संक्रामकोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और सब लोकप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । देवोंमें जघन्य स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंने लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण क्षेत्रका और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ व कुछ कम नौ भागप्रमाण क्षेत्रका स्पर्शन किया है । इसी प्रकार सौधर्म और ऐशान कल्पमें जानना चाहिये । भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषी देवोंमें जघन्य स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है । अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंके स्पर्शनके समान है । सनत्कुमारसे लेकर अच्युत कल्प तकके देवोंमें इसी प्रकार स्पर्शन जानना चाहिये । इससे आगेके देवोंमें स्पर्शन क्षेत्रके समान है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—मोहनीयकी जघन्य स्थितिके संक्रामकोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंका क्षेत्र सब लोक बतलाया है । इनका स्पर्शन भी इतना ही है । अतः इनके स्पर्शनको क्षेत्रके समान कहा है । सामान्यसे नारकियोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिके संक्रामकोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण बतलाया है, स्पर्शन भी इतना ही प्राप्त होता है, क्योंकि जो अपने योग्य जघन्य स्थितिवाले असंज्ञी जीव नरकमें उत्पन्न होते हैं उन्हीं नारकियोंके जघन्य स्थितिसंक्रम पाया जाता है । किन्तु असंज्ञी जीव प्रथम नरकमें ही उत्पन्न होते हैं और प्रथम नरकका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागसे अधिक नहीं है, अतः सामान्यसे नारकियोंमें जघन्य स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान बतलाया है । अजघन्य स्थितिके संक्रामक नारकियोंमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जघन्य स्थितिके संक्रामक नारकियोंके सिवा शेष सब नारकियोंका समावेश हो जाता है। और इनका वर्तमानकालीन स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण तथा अतीतकालीन स्पर्शन त्रस नालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम छह भागप्रमाण है। इसीसे अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन उक्तप्रमाण बतलाया है। प्रथम पृथिवीके नारकियोंका स्पर्शन उनके क्षेत्रके समान ही है। अतः यहाँ प्रथम पृथिवीमें जघन्य और अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान बतलाया है। दूसरेसे लेकर छठे नरक तक जघन्य स्थितिसंक्रम उन सम्यग्दृष्टि नारकियोंके अन्तिम समयमें होता है जिन्होंने वहाँ उत्पन्न होनेके अन्तर्मुहूर्त बाद सम्यक्त्वको प्राप्त कर लिया है और अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना कर ली है। तथा सातवें नरकमें जघन्य स्थितिसंक्रम उन मिथ्यादृष्टि नारकियोंके सम्भव है जो जीवन भर सम्यग्दृष्टि रहे हैं पर अन्तमें मिथ्यादृष्टि हो गये हैं। अब यदि इन जीवोंके स्पर्शनका विचार किया जाता है तो वह लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है। और इनका क्षेत्र भी इतना ही है, अतः उक्त नरकोंमें जघन्य स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान बतलाया है। अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंमें जघन्य स्थितिके संक्रामकोंके सिवा शेष सब नारकियोंका समावेश हो जाता है। अतः इनका स्पर्शन अपने-अपने नरकके स्पर्शनके समान बतलाया है। तिर्यंचोंमें जघन्य स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन लोकके संख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है, क्योंकि जघन्य स्थितिका संक्रम बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकोंमें ही सम्भव है। तथा अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंमें एकेन्द्रिय मुख्य हैं और उनका स्पर्शन सब लोकप्रमाण है। इन दोनोंका क्षेत्र भी इतना ही है। अतः इनका स्पर्शन क्षेत्रके समान बतलाया है। पंचेन्द्रिय आदि तिर्यञ्चोंमें और लब्ध्यपर्याप्तक मनुष्योंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिका संक्रम उन्हींके सम्भव है जो एकेन्द्रिय पर्यायसे आकर यहाँ उत्पन्न हुए हैं। अब यदि इनके क्षेत्रका विचार किया जाता है तो वह लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होता है, स्पर्शनमें भी इससे विशेष अन्तर नहीं पड़ता, अतः इनका जघन्य स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण बतलाया है। मनुष्यत्रिकमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिके संक्रामक क्षपक सूक्ष्मसंपराय जीव होते हैं और उनका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है यह स्पष्ट ही है। इसीसे यहाँ तीन प्रकारके मनुष्योंमें भी जघन्य स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है यह बतलाया है। तथा इन सबमें अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और सब लोक है यह स्पष्ट ही है। जो असंज्ञी जीव मर कर देवोंमें उत्पन्न होते हैं उन्हीं देवोंके जघन्य स्थितिका संक्रम सम्भव है। अब यदि इनके स्पर्शनका विचार किया जाता है तो वह लोकके असंख्यातवें भागसे अधिक नहीं प्राप्त होता। क्षेत्र भी इतना ही है। अतः देवोंमें मोहनीयकी जघन्य स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान बतलाया है। अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंमें जघन्य स्थितिके संक्रामकोंके सिवा शेष सब देवोंका ग्रहण हो जाता है। और सामान्यसे देवोंका स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण और त्रसनालीके चौदह भागोंमेंसे कुछ कम आठ और कुछ कम नौ भागप्रमाण है। इसीसे यहाँ अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंका स्पर्शन उक्तप्रमाण बतलाया है। सौधर्म और ऐशान कल्पमें यह स्पर्शन उक्त प्रकारसे बन जाता है अतः यहाँ इस स्पर्शनको उक्त प्रकारसे जाननेकी सूचना की है। भवनवासी, व्यन्तर और ज्योतिषियोंमें जो जघन्य स्थितिके संक्रामक जीव होते हैं उनका यदि स्पर्शन देखा जाता है तो वह लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण ही प्राप्त होता है। क्षेत्र भी इतना ही है, अतः इनके स्पर्शनको क्षेत्रके समान कहा है। तथा इनमें अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंके समान बहुभाग राशि अजघन्य स्थितिकी संक्रामक है। इसलिये इनके स्पर्शनको एक समान कहा है। इसी प्रकार सनत्कुमारसे लेकर अच्युत कल्प तक जानना चाहिये। तथा इससे आगेके जघन्य और अजघन्य स्थितिके संक्रामक देवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है यह स्पष्ट ही है। इसी प्रकार विचार करके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ५७२. णाणाजीवेहि कालो दुविहो जहण्णुकस्सट्ठिदिसंकमविसयभेदेण। तत्थुकस्से ताव पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मोह० उक्क० ट्ठिदिसंका० केवचिरं०? जह० एयस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। अणु० सव्वद्धा। एवं सव्वणिरय-सव्वतिरिक्ख-देवा भवणादि जाव सहस्सार त्ति। णवरि पंचिं०तिरि०-अपज्ज० उक्क० ट्ठिदिसं० जह० एयस०, उक्क० आवलि० असंखे०भागो। अणु० ओघो।

§ ५७३. मणुसतिए उक्क० जह० एयस०, उक्क० अंतोमुहुत्तं। अणु० ओघभंगो। मणुसअपज्ज० उक्क० जह० एयसमओ, उक्क० आवलि० असंखे०भागो। अणु० जह०

अनाहारक मार्गणा तक यथायोग्य स्पर्शनका विचार कर लेना चाहिये।

§ ५७२. नाना जीवोंकी अपेक्षा काल दो प्रकारका है—जघन्य स्थितिके संक्रामकोंको विषय करनेवाला और उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंको विषय करनेवाला। सर्व प्रथम उत्कृष्टका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। ओघकी अपेक्षा मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका कितना काल है? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका काल सर्वदा है। इसी प्रकार सब नारकी, सब तिर्यञ्च, सामान्य देव और भवनवासी देवोंसे लेकर सहस्रार कल्प तकके देवोंमें जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका काल ओघके समान है।

विशेषार्थ—नाना जीवोंकी अपेक्षा मोहनीयकी स्थितिका बन्ध कमसे कम एक समय तक और अधिकसे अधिक पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण काल तक होता है। इसके बाद एक भी जीव मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्धक नहीं रहता। इसीसे यहाँ मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है, क्योंकि उत्कृष्ट स्थितिका संक्रम उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अविनाभावी है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिवाले जीव सर्वदा पाये जाते हैं, इससे अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका काल सर्वदा बतलाया है। सब नारकी, सब तिर्यञ्च, सामान्य देव और भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार कल्प तकके देव ये मार्गणाएँ ऐसी हैं जिनमें यह ओघप्ररूपणा अविकल घटित हो जाती है, अतः उनके कथनको ओघके समान बतलाया है। किन्तु पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंके उत्कृष्ट कालमें कुछ विशेषता है। बात यह है कि जो संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके इनमें उत्पन्न होते हैं उन्हींके यह उत्कृष्ट स्थितिका संक्रम पाया जाता है। पर ऐसे जीव पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण कालतक ही उत्पन्न हो सकते हैं। इसके बाद नियमसे अन्तर पड़ जाता है। इसलिये पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण बतलाया है। इनमें जघन्य कालका कथन सुगम है।

§ ५७३. मनुष्यत्रिकमें उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका काल ओघके समान है। मनुष्य अपर्याप्तकोंमें उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय कम खुद्दाभव-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खुद्दा० समयूणं, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। आणदादि जाव सव्वट्ठे त्ति उक्क० जह० एयसमओ, उक्क० संखेज्जा समया। अणु० सव्वद्धा। एवं जाव०।

§ ५७४. जहण्णए पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मोह० जह० ट्ठिदिसंका० केव० ? जह० एयसमओ, उक्क० संखेज्जा समया। अज० सव्वद्धा। एवं मणुसतिय०। विदियादि जाव छट्ठि त्ति जोदिसियादि जाव सव्वट्ठा त्ति च।

ग्रहणप्रमाण है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। आनत कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। तथा अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका काल सर्वदा है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिये।

विशेषार्थ—एक जीवकी अपेक्षा उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त बतलाया है। यतः उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करनेवाले मनुष्य संख्यात होते हैं, अतः इनमें उत्कृष्ट स्थितिका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्तसे अधिक नहीं प्राप्त होता। यतः उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अविनाभावी है अतः मनुष्यत्रिकमें उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त बतलाया है। तथा मनुष्यत्रिकमें अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक जीव सदा पाये जाते हैं, अतः इनका काल सर्वदा बतलाया है। मनुष्य अपर्याप्तकोंमें उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल तो पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके समान घटित कर लेना चाहिये। हां इनके अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंके कालमें कुछ विशेषता है। बात यह है कि यह सान्तर मार्गणा है और इसका जघन्य काल खुद्दाभवग्रहणप्रमाण और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इसीसे यहाँ अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल उक्तप्रमाण प्राप्त होता है। यहाँ जघन्य कालमें जो एक समय कम किया है सो वह उत्कृष्ट स्थितिके संक्रमकी अपेक्षासे किया है। आनतादिकमें उत्कृष्ट स्थिति उत्पन्न होनेके प्रथम समयमें सम्भव है। किन्तु यहाँ उत्कृष्ट स्थितिवाले मनुष्य ही उत्पन्न होते हैं और वे संख्यात होते हैं, अतः यहाँ उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय बतलाया है। यहाँ अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका काल सर्वदा है यह स्पष्ट ही है। इसी प्रकार अपनी-अपनी विशेषताको जानकर अनाहारक मार्गणा तक यथायोग्य उत्कृष्ट और अनुत्कृष्टस्थितिके संक्रामकोंका काल जान लेना चाहिये।

§ ५७४. जघन्यका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। ओघसे मोहनीयकी जघन्य स्थितिके संक्रामकोंका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंका काल सर्वदा है। इसी प्रकार मनुष्यत्रिकमें, दूसरी पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवी तकके नारकियोंमें और ज्योतिषी देवोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें जानना चाहिये ?

विशेषार्थ—ओघसे मोहनीयका जघन्य स्थितिसंक्रम क्षपक जीवके सूक्ष्मसम्पराय गुणस्थानमें एक समय अधिक एक आवलि कालके शेष रहने पर होता है। यतः क्षपकश्रेणि पर चढ़नेका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है अतः ओघसे जघन्य स्थितिके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय कहा है। ओघसे अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंका काल सर्वदा है यह स्पष्ट ही है। मूलमें जो मनुष्यत्रिक, दूसरी पृथिवीसे

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

§ ५७५. आदेसेण णेरइय० जह० ट्ठिदिसं० जह० एयसमओ, उक्क० आवलि० असंखे०भागो। अज० ओघो। एवं पढमाए सव्वपंचिंदियतिरिक्ख-देव०-भवण०-वाणवेंतर त्ति। सत्तमाए जह० जह० एयस०, उक्क० पलिदो० असंखे० भागो। अज० ओघो।

लेकर छठी पृथिवी तकके नारकी और ज्योतिषी देवोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देव जो ये मार्गणाएँ गिनाई हैं सो इनमें जघन्य और अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंका काल ओघके समान बन जाता है। इसके कारण भिन्न भिन्न हैं। मनुष्यत्रिकका कारण तो ओघके समान ही है, क्योंकि क्षपकश्रेणिकी प्राप्ति मनुष्यत्रिकके ही होती है। दूसरी पृथिवीसे लेकर छठी पृथिवी तकके नारकियोंमें और ज्योतिषी देवोंमें यह कारण है कि जो उत्कृष्ट आयुके साथ उत्पन्न हों और उत्पन्न होनेके पश्चात् अन्तर्मुहूर्त कालके भीतर सम्यग्दृष्टि होकर अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना कर लें उनके अन्तिम समयमें जघन्य स्थितिसंक्रम होता है। ऐसे जीव मर कर मनुष्योंमें ही उत्पन्न होते हैं अतः उनका प्रमाण संख्यात ही होगा। यही कारण है कि इन मार्गणाओंमें जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय बतलाया है। सौधर्म कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें उन्हींके भवके अन्तिम समयमें जघन्य स्थितिसंक्रम होता है जो पहले मनुष्य पर्यायमें दो बार उपशमश्रेणि पर चढ़े हों और फिर दर्शनमोहनीयकी क्षपणा करके उत्कृष्ट आयुके साथ उक्त देवोंमें उत्पन्न हुए हों। यतः ये भी मर कर पर्याप्त मनुष्योंमें ही उत्पन्न होते हैं अतः इनका प्रमाण संख्यात ही प्राप्त होता है। यही कारण है कि इनमें भी जघन्य स्थितिके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय कहा है। इन सब मार्गणाओंमें अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंका काल सर्वदा है यह स्पष्ट ही है।

§ ५७५. आदेशसे नारकियोंमें जघन्य स्थितिके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंका काल सर्वदा है। इसी प्रकार पहली पृथिवीके नारकियोंमें तथा सब पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च, सामान्य देव, भवनवासी देव और व्यन्तर देवोंमें जानना चाहिये। सातवीं पृथिवीमें जघन्य स्थितिके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंका काल ओघके समान है।

विशेषार्थ—नरकमें जो असंज्ञी पंचेन्द्रिय अपने योग्य जघन्य स्थितिके साथ उत्पन्न होते हैं उन्हींके जघन्य स्थितिका संक्रम पाया जाता है। इनके वहाँ निरन्तर उत्पन्न होनेका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इसीसे यहाँ सामान्य नारकियोंमें जघन्य स्थितिके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है। प्रथम नरकके नारकी, पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च, सामान्य देव, भवनवासी देव और व्यन्तर देव इन मार्गणाओंमें यह काल इसी प्रकार प्राप्त होता है, इसलिये इनमें जघन्य और अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंका काल सामान्य नारकियोंके समान कहा है। इतनी विशेषता है कि पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चोंमें एकेन्द्रियोंको उत्पन्न कराकर यह काल प्राप्त करना चाहिये। कुछ ऐसे काल हैं जो नाना जीवोंकी अपेक्षा उत्कृष्टरूपसे पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण बतलाये हैं। उदाहरणार्थ सासादनसम्यग्दृष्टिका काल, सम्यग्मिथ्यादृष्टिका काल, अनन्तानुबन्धीका विसंयोजनाकाल, मिथ्यात्वको प्राप्त होनेका काल आदि। सातवें नरकमें जघन्य स्थिति उन्हीं जीवोंके होती है जो जीवन भर सम्यग्दृष्टि रहकर अन्तमें अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहने पर मिथ्यात्वको प्राप्त हुए हैं। इनके इस प्रकार मिथ्यात्वको प्राप्त होनेका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है, अतः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ५७६. तिरिक्खेसु जह० अज० सव्वद्धा। मणुसअपज्ज० जह० जह० एयस०, उक्क० आवलि० असंखे०भागो। अज० जह० आवलिया समयूणा, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। एवं जाव।

§ ५७७. अंतरं दुविहं—जह० उक्क०। उक्कस्सए ताव पयदं। दुविहो णिद्देसो ओघादेसभेदेण। तत्थोघेण मोह० उक्क० ट्ठिदिसंक० अंतरं केव०? जह० एयस०, उक्क० अंगुलस्स असंखे०भागो असंखेज्जाओ ओसप्पिणि-उस्सप्पिणीओ। अणु० णत्थि अंतरं। एवं चदुसु वि गदीसु। णवरि मणुसअपज्ज० अणु० जह० एयस०, उक्क० पलिदो० असंखे०भागो। एवं जाव०।

यहाँ जघन्य स्थितिके संक्रामकोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल क्रमसे उक्तप्रमाण कहा है। इन सब मार्गणाओंमें अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंका काल ओघके समान सर्वदा है यह स्पष्ट ही है।

§ ५७६. तिर्यञ्चोंमें जघन्य और अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंका काल सर्वदा है। मनुष्य अपर्याप्तकोंमें जघन्य स्थितिके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। तथा अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय कम एक आवलिप्रमाण है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये।

विशेषार्थ—तिर्यञ्चोंमें एकेन्द्रियोंकी प्रधानता है और इनमें जघन्य तथा अजघन्य स्थितिके संक्रामक जीव सदा पाये जाते हैं। इसीसे इनमें जघन्य तथा अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंका काल सर्वदा कहा है। पहले मनुष्य अपर्याप्तकोंमें उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल घटित करके बतला आये हैं। उसी प्रकार यहाँ जघन्य और अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल घटित कर लेना चाहिये। शेष कथन सुगम है।

§ ५७७. अन्तर दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। सर्व प्रथम उत्कृष्टका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका कितना अन्तरकाल है। जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है जो असंख्यातासंख्यात अपसर्पिणी-उत्सर्पिणी कालप्रमाण है। तथा ओघसे अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका अन्तर काल नहीं है। इसी प्रकार चारों गतियोंमें जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्य अपर्याप्तकोंमें अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये।

विशेषार्थ—महाबन्धमें उत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण बतलाया है। यतः उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम उत्कृष्ट स्थितिबन्धका अविनाभावी है, अतः यहाँ मोहनीयके उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अंगुलके असंख्यातवें भाग प्रमाण बतलाया है। तथा यहाँ अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका अन्तरकाल नहीं है यह स्पष्ट ही है। यह ओघप्ररूपणा चारों गतियोंमें बन जाती है, अतः वहाँ इस प्ररूपणाको ओघके समान कहा है। किन्तु मनुष्य अपर्याप्त यह सान्तर मार्गणा है और इसका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भाग-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ५७८. जहण्णए पयदं । दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मोह० जह० ट्ठिदिसंका० अंतरं जह० एयसमओ, उक्क० छम्मासं । अज० णत्थि अंतरं । एवं मणुसतिए । णवरि मणुसिणीसु वासपुधत्तं । आदेसेण सव्वत्थ उक्क०-भंगो । णवरि तिरिक्खोघे जह० अज० णत्थि अंतरं । एवं जाव० ।

§ ५७९. भावो सव्वत्थ ओदइओ भावो ।

§ ५८०. अप्पाबहुअं दुविहं—ट्ठिदि-जीवप्पाबहुअभेदेण । ट्ठिदिअप्पाबहुअं दुविहं जहण्णुक्कस्सट्ठिदिसंतकम्मविसयभेदेण । तत्थुकस्से ताव पयदं । दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण उक्कस्सट्ठिदिसंकमो थोवो । जट्ठिदिसंकमो[1] विसेसाहिओ ।

प्रमाण है । इसीसे यहाँ अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कहा है । अनाहारक मार्गणा तक इसी प्रकार यथायोग्य अन्तरकाल घटित कर लेना चाहिये ।

§ ५७८ जघन्यका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघकी अपेक्षा मोहनीयकी जघन्य स्थितिके संक्रामकोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है । तथा अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंका अन्तरकाल नहीं है । इसी प्रकार मनुष्यत्रिकमें जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्यनियोंमें जघन्य स्थितिके संक्रामकोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है । आदेशकी अपेक्षा सर्वत्र उत्कृष्टके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सामान्य तिर्यञ्चोंमें जघन्य और अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंका अन्तरकाल नहीं है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—ओघसे मोहनीयकी जघन्य स्थितिका संक्रम क्षपकश्रेणिमें प्राप्त होता है और क्षपकश्रेणिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है । इसीसे यहाँ जघन्य स्थितिके संक्रामकोंका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना बतलाया है । ओघसे अजघन्य स्थितिके संक्रामकोंका अन्तर नहीं है यह स्पष्ट ही है । यतः क्षपकश्रेणिकी प्राप्ति मनुष्यत्रिकमें सम्भव है, अतः यहाँ भी यह अन्तर ओघके समान बतलाया है । किन्तु मनुष्यिनीके क्षपकश्रेणिका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व पाया जाता है, अतः इस मार्गणामें जघन्य स्थितिके संक्रामकोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण बतलाया है । तथा आदेशकी अपेक्षा सर्वत्र जघन्य स्थितिके संक्रामकोंका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंके जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरके समान पाया जाता है, इसलिये इस कथनको उत्कृष्टके समान कहा है । किन्तु सामान्य तिर्यञ्चोंमें जघन्य और अजघन्य दोनों प्रकारकी स्थितिके संक्रामक जीव सदा पाये जाते हैं, अतः इनका अन्तरकाल नहीं है यह बतलाया है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक यथायोग्य अन्तर काल घटित कर लेना चाहिये ।

§ ५७९. भाव सर्वत्र औदयिक है ।

§ ५८०. अल्पबहुत्व दो प्रकारका है—स्थितिअल्पबहुत्व और जीवअल्पबहुत्व । स्थिति अल्पबहुत्व दो प्रकारका है—जघन्य स्थितिसत्कर्मविषयक और उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मविषयक । इनमेंसे सर्व प्रथम उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघकी अपेक्षा उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम थोड़ा है । यत्स्थिति संक्रम विशेष अधिक है ।

१. ता०-आ०प्रत्योः जहण्णट्ठिदिसंकमो इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

केत्तियमेत्तेण ? आवलियमेत्तेण । एवं चदुसु गदीसु । एवं जाव० ।

§ ५८१. जहण्णए पयदं । दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थोघेण जहण्णओ ट्ठिदिसंकमो थोवो, एयणिसेयपमाणत्तादो । जट्ठिदी असंखे०गुणा, समयाहियावलियपमाणत्तादो । एवं मणुसतिए । आदेसेण णेरइय० सव्वत्थोवो जह०ट्ठिदिसंकमो । जट्ठिदिसंकमो विसेसाहिओ । एवं सव्वासु गईसु । एवं जाव० ।

§ ५८२. जीवप्पाबहुअं दुविहं जहण्णुक०ट्ठिदिसंकामयविसयभेदेण । उक्कस्सए ताव पयदं । दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थ ओघेण उक्क० ट्ठिदिसंका० थोवा । अणु० अणंतगुणा । एवं तिरिक्खोघे । आदेसेण णेरइय० मोह० उक्क०

कितना विशेष अधिक है ? एक आवलिप्रमाण अधिक है । इसी प्रकार चारों गतियोंमें जानना चाहिये । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—मोहनीयका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होनेपर बन्धावलिके बाद उदयावलिप्रमाण निषेकोंको छोड़कर शेषका संक्रम होता है । इसलिये उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमसे यत्स्थिति एक आवलिप्रमाण अधिक प्राप्त होती है । यहाँ संक्रम दो आवलि कम उत्कृष्ट स्थितिका हुआ है किन्तु यत्स्थिति एक आवलि कम उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण पाई जाती है । इसीसे प्रकृतमें उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमसे यत्स्थितिको एक आवलि अधिक बतलाया है । इसी प्रकार चारों गतियोंमें यह अल्पबहुत्व जानना चाहिये । आगे अनाहारक मार्गणा तक भी इसका इसी प्रकार यथायोग्य विचार करके कथन करना चाहिये ।

§ ५८१. जघन्यका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा जघन्य स्थितिसंक्रम स्तोक है, क्योंकि उसका प्रमाण एक निषेक है । उससे यत्स्थिति असंख्यातगुणी है, क्यों कि उसका प्रमाण एक समय अधिक एक आवलिप्रमाण है । इसी प्रकार मनुष्यत्रिकमें जानना चाहिये । आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें जघन्य स्थितिसंक्रम सबसे स्तोक है । उससे यत्स्थिति विशेष अधिक है । इसी प्रकार सब गतियोंमें जानना चाहिये । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—क्षपक जीवके सूक्ष्मसम्परायका एक समय अधिक एक आवलिप्रमाण काल शेष रह जाने पर जघन्य स्थितिसंक्रम प्राप्त होता है । यहाँ जघन्य स्थितिसंक्रमका प्रमाण एक निषेक है और यत्स्थितिका प्रमाण एक समय अधिक एक आवलि है । इसीसे प्रकृतमें जघन्य स्थितिसंक्रमसे यत्स्थिति असंख्यातगुणी बतलाई है । यह अल्पबहुत्व मनुष्यत्रिकमें घटित हो जाता है, इसलिये उनमें इस अल्पबहुत्वको ओघके समान बतलाया है । तथा नारकी आदि शेष मार्गणाओंमें जघन्य स्थितिसंक्रमसे यत्स्थिति एक आवलि अधिक होती है यह स्पष्ट ही है । इसीसे वहाँ जघन्य स्थितिसंक्रमसे यत्स्थितिको विशेष अधिक बतलाया है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक यथायोग्य अल्पबहुत्वको जान लेना चाहिये ।

§ ५८२. जीवअल्पबहुत्व दो प्रकारका है—जघन्य स्थितिके संक्रामकोंसे सम्बन्ध रखनेवाला और उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंसे सम्बन्ध रखनेवाला । सर्वप्रथम उत्कृष्टका प्रकरण है । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघकी अपेक्षा उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक जीव थोड़े हैं । अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक जीव अनन्तगुणे हैं । इसी प्रकार सामान्य

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ट्ठिदिसं० थोवा। अणु० ट्ठिदिसं० असंखे०गुणा। एवं सव्वणेरइय-सव्वपंचिंदिय-तिरिक्ख-मणुस-मणुसअपज्जं०-देवा जाव अवराइदा त्ति। मणुसपज्ज०-मणुसिणीसु सवट्ठ०देवेसु एवं चेव। णवरि संखेज्जगुणं कायव्वं। एवं जाव०।

§ ५८३. जह० पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघादेसं सव्वमुक्कस्सभंगो। णवरि तिरिक्खा णारयभंगो।

एवं मूलपयडिट्ठिदिसंकमे तेवीसमणिओगद्दाराणि समत्ताणि।

§ ५८४. भुजगारसंकमे त्ति तत्थ इमाणि तेरस अणियोगद्दाराणि—समुक्कित्तणा जाव अप्पाबहुए त्ति। समुक्कित्तणाणु० दुविहो णिद्देसो ओघादेसभेदेण। ओघेण अत्थि मोह० भुजगार-अप्पदर-अवट्ठिद-अवत्तव्वट्ठिदिसंकामया। एवं मणुसतिए। आदेसेण सव्वगइमग्गणाविसेसेसु ट्ठिदिविहत्तिभंगो। एवं जाव०।

तिर्यञ्चोंमें जानना चाहिये। आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मोहनीयकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक जीव थोड़े हैं। अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार सब नारकी, सब पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च, सामान्य मनुष्य, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देव और अपराजित तकके देवोंमें जानना चाहिये। मनुष्यपर्याप्त, मनुष्यनी और सर्वार्थसिद्धिके देवोंमें इसी प्रकार जानना चाहिये। किन्तु यहाँ संख्यातगुणा करना चाहिये। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिये।

§ ५८३. जघन्यका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। यहाँ ओघ और आदेश दोनोंका कथन उत्कृष्टके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि तिर्यञ्चोंका भंग नारकियोंके समान है। अर्थात् जघन्य स्थितिके संक्रामक तिर्यंचोंसे अजघन्य स्थितिके संक्रामक तिर्यञ्च असंख्यातगुणे हैं।

इसी प्रकार मूलप्रकृतिस्थितिसंक्रममें तेईस अनुयोगद्वार समाप्त हुए।

§ ५८४. भुजगारसंक्रमका प्रकरण है। उसमें समुत्कीर्तनासे लेकर अल्पबहुत्व तक ये तेरह अनुयोगद्वार जानने चाहिये। समुत्कीर्तनानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। ओघकी अपेक्षा मोहनीयकी भुजगार, अल्पतर, अवस्थित और अवक्तव्य स्थितिके संक्रामक जीव हैं। इसी प्रकार मनुष्यत्रिकमें जानना चाहिये। आदेशकी अपेक्षा गतिमार्गणाके सब भेदोंमें स्थितिविभक्तिके समान कथन जानना चाहिये। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये।

विशेषार्थ—भुजगार अनुयोगद्वारमें भुजगार, अल्पतर, अवस्थित और अवक्तव्य इन चारोंका विचार किया जाता है। इसके अवान्तर अधिकार तेरह हैं। वे ये हैं—समुत्कीर्तना, स्वामित्व, एक जीवकी अपेक्षा काल, अन्तर, नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव और अल्पबहुत्व। सर्व प्रथम यहां समुत्कीर्तनाका विचार करते हैं। ओघसे भुजगारस्थितिके संक्रामक अल्पतरस्थितिके संक्रामक, अवस्थितस्थितिके संक्रामक और अवक्तव्यस्थितिके संक्रामक जीव हैं। जो कम स्थितिका संक्रम करके अनन्तर समयमें अधिक स्थितिका संक्रम करे उसे भुजगारस्थितिका संक्रामक कहते हैं। जो अधिक स्थितिका संक्रम करके

१ ता० -आ०प्रत्योः -तिरिक्ख-मणुसअपज्ज० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ५८५. सामित्ताणु० दुविहो णिद्देसो— ओघेण आदेसेण य। ओघेण मोह० भुज०-अवट्ठि०संकमो कस्स ? अण्णद० मिच्छाइट्ठिस्स। अप्प०संकमो कस्स ? अण्णद० सम्माइट्ठिस्स वा मिच्छाइट्ठिस्स वा। अवत्तव्वसंकमो कस्स ? अण्णद० उवसामणादो परिवदमाणयस्स पढमसमयदेवस्स वा। एवं मणुसतिए। णवरि पढमसमयदेवालावो ण कायव्वो। आदेसेण सव्वगइमग्गणावयवेसु ओघभंगो। णवरि अवत्तव्वपदसामित्तं णत्थि। अण्णं च पंचिं०तिरि०अपज्ज०-मणुसअपज्ज० भुज०-अप्प०-अवट्ठि० कस्स ? अण्णदरस्स। आणदादि जाव उवरिमगेवज्जे त्ति अप्पदरपदमोघभंगो। अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठे त्ति अप्पद० कस्स ? अण्णद०। एवं जाव०।

§ ५८६. कालाणु० दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मोह०

अनन्तर समयमें कम स्थितिका संक्रम करे उसे अल्पतरस्थितिका संक्रामक कहते हैं। जिसके पहले समयके समान ही दूसरे समयमें स्थितिका संक्रम हो उसे अवस्थितसंक्रामक कहते हैं और जो असंक्रामक होनेके बाद पुनः संक्रामक होता है उसे अवक्तव्यस्थितिका संक्रामक कहते हैं। ओघसे इन चारों प्रकारके जीवोंका पाया जाना सम्भव है, इसलिये ओघसे भुजगार, अल्पतर, अवस्थित और अवक्तव्य स्थितिके संक्रामक जीव हैं यह कहा है। मनुष्यत्रिकमें यह व्यवस्था घटित हो जाती है, अतः इनके कथनको ओघके समान कहा है। इनके सिवा गतिमार्गणाके और जितने भेद हैं उनमें स्थितिविभक्तिके समान भुजगार, अल्पतर और अवस्थित ये तीन भेद ही सम्भव हैं तथा आनतसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तक एक अल्पतर पद ही सम्भव है। इस लिये इनके कथनको स्थितिविभक्तिके समान कहा है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक यथायोग्य जानना चाहिये।

§ ५८५. स्वामित्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। ओघकी अपेक्षा मोहनीयकी भुजगार और अवस्थितस्थितिका संक्रम किसके होता है ? किसी एक मिथ्यादृष्टिके होता है। अल्पतरस्थितिका संक्रम किसके होता है ? किसी एक सम्यग्दृष्टि या मिथ्यादृष्टिके होता है। अवक्तव्यस्थितिका संक्रम किसके होता है ? जो उपशामक उपशामनासे च्युत हो रहा है उसके होता है। या जो उपशामक मर कर देव हुआ है उसके प्रथम समयमें होता है। इसी प्रकार मनुष्यत्रिकमें जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि 'जो उपशामक मर कर प्रथम समयवर्ती देव है उसके होता है' यह आलाप यहाँ नहीं कहना चाहिये। आदेशकी अपेक्षा गतिमार्गणाके सब भेदोंमें ओघके समान जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि यहाँ अवक्तव्यपदका स्वामित्व नहीं है। इसके सिवा इतनी विशेषता और है कि पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्त जीवोंमें भुजगार, अल्पतर और अवस्थित स्थितिका संक्रम किसके होता है। किसी एकके होता है। आशय यह है कि इन दो मार्गणाओंमें एक मिथ्यादृष्टि गुणस्थान ही होता है, अतः यहाँ मिथ्यादृष्टिके ही तीनों पद घटित करने चाहिए। आनतसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंमें अल्पतरपदका कथन ओघके समान है। आशय यह है कि इनमें मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि दोनों प्रकारके जीव होते हुए भी यहाँ मात्र एक अल्पतर पद ही पाया जाता है। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें अल्पतरस्थितिका संक्रम किसके होता है। किसीके भी होता है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिये।

§ ५८६. कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भुज०संकामओ केव० ? जह० एयसमओ, उक्क० चत्तारि समया । अप्पद० जह० एयस०, उक्क० तेवट्ठिसागरोवमसदं सादिरेयतिवलिदोवमेहि[1] सादिरेयं । अवट्ठि० जह० एयस०, उक्क० अंतोमु० । अवत्तव्व० जहण्णुक्क० एयसमओ ।

§ ५८७. आदेसेण णेरइय० भुज० ज० एयसमओ, उक्क० तिण्णि समया ।

ओघकी अपेक्षा मोहनीयकी भुजगारस्थितिके संक्रामकका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल चार समय है। अल्पतरस्थितिके संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त और तीन पल्य अधिक एक सौ त्रेसठ सागर है। अवस्थित स्थितिके संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। तथा अवक्तव्यका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है।

विशेषार्थ—किसी एक जीवने एक समय तक भुजगारस्थितिका संक्रम किया और दूसरे समयमें वह अल्पतर या अवस्थितस्थितिका संक्रम करने लगा तो भुजगार स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है। तथा जब कोई एक एकेन्द्रिय जीव पहले समयमें अद्धाक्षयसे स्थितिको बढ़ा कर बाँधता है, दूसरे समयमें संक्लेशक्षयसे स्थितिको बढ़ा कर बाँधता है, तीसरे समयमें मरकर और एक विग्रहसे संज्ञियोंमें उत्पन्न होकर असंज्ञियोंके योग्य स्थितिको बढ़ाकर बाँधता है और चौथे समयमें शरीरको ग्रहण करके संज्ञीके योग्य स्थितिको बढ़ाकर बाँधता है तब उसके भुजगार स्थितिबन्धके चार समय पाये जानेके कारण प्रथम समयसे एक आवलिके बाद भुजगार-स्थितिसंक्रमके भी चार समय पाये जाते हैं, इसलिये भुजगार स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल चार समय बतलाया है। जो जीव एक समय तक अल्पतरस्थितिका संक्रम करके दूसरे समयमें भुजगार या अवस्थितस्थितिका संक्रम करने लगता है उसके अल्पतरस्थितिके संक्रमका जघन्य काल एक समय पाया जाता है! तथा जिस जीवने अन्तर्मुहूर्त तक अल्पतर स्थितिका संक्रम किया। फिर वह तीन पल्यकी आयु लेकर भोगभूमिमें उत्पन्न हुआ और वहाँ आयुमें अन्तर्मुहूर्त कालके शेष रहने पर उसने सम्यक्त्वको ग्रहण किया। फिर वह छयासठ सागर तक सम्यक्त्वके साथ परिभ्रमण करता रहा। पश्चात् अन्तर्मुहूर्त काल तक सम्यग्मिथ्यात्वमें रहा और अन्तर्मुहूर्तके बाद पुनः सम्यक्त्वको प्राप्त करके दूसरी बार छयासठ सागर काल तक सम्यक्त्वके साथ परिभ्रमण करता रहा। पश्चात् मिथ्यात्वमें गया और इकतीस सागरकी आयुवाले देवोंमें उत्पन्न हो गया। फिर वहाँसे च्युत होकर और मनुष्योंमें उत्पन्न होकर अन्तर्मुहूर्त काल तक अल्पतर स्थितिका संक्रम किया। फिर वह भुजगारस्थितिका संक्रम करने लगा। इस प्रकार इस कालका योग अन्तर्मुहूर्त और तीन पल्य अधिक एक सौ त्रेसठ सागर होता है अतः प्रकृतमें अल्पतर स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त और तीन पल्य अधिक एकसौ त्रेसठ सागरप्रमाण कहा है। एक स्थितिबन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त बतलाया है। स्थितिसंक्रम स्थितिबन्धका अविनाभावी होनेसे उसका भी इतना ही काल प्राप्त होता है। इसीसे यहाँ अवस्थितस्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त बतलाया है। अवक्तव्यस्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है यह स्पष्ट ही है।

§ ५८७. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें भुजगार स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय

१. ता० -आ०प्रत्योः सादिरेयं तिवलिदोवमेहि इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अप्पद० ज० एयस०, उक० तेत्तीसं सागरो० देसूणाणि । अवट्ठिदकालो ओघभंगो । एवं पढमाए । विदियादि जाव सत्तमा त्ति विहत्तिभंगो ।

§ ५८८. तिरिक्खेसु भुज० जह० एयसमओ, उक० चत्तारि समया । अवट्ठि० ओघं । अप०[1] जह० एयस०; उक० तिण्णि पलिदोवमाणि अंतोमुहुत्ताहियाणि । एवं पंचिंदियतिरिक्खतिए । पचिं०तिरि०अपज्ज०-मणुसअपज्ज० भुज० जह० एयस०, उक० चत्तारि समया । अप्पद०-अवट्ठि० जह० एयस०, उक० अंतोमु० ।

है और उत्कृष्ट काल तीन समय है । अल्पतर स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है । तथा अवस्थितका काल ओघके समान है । इसी प्रकार पहली पृथिवीमें जानना चाहिये । दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें भुजगार आदिका काल स्थितिविभक्तिके भुजगार आदिके समान है ।

विशेषार्थ—जो असंज्ञी जीव दो विग्रहसे नरकमें उत्पन्न होता है उसके यदि दूसरे समयमें अद्धाक्षयसे, तीसरे समयमें शरीरको ग्रहण करनेसे और चौथे समयमें संक्लेशक्षयसे भुजगार स्थितिबन्ध होता है तो उसके भुजगारस्थितिके तीन समय पाये जानेके कारण भुजगारस्थिति-संक्रमके भी तीन समय पाये जाते हैं । इसीसे नरकमें भुजगार स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट काल तीन समय बतलाया है । अथवा अद्धाक्षय और संक्लेशक्षयसे स्थिति बढ़ाकर बाँधनेवाले नारकीके दो भुजगार समय होते हैं ऐसा भी उच्चारणाका पाठ है । पर उसकी यहाँ विवक्षा नहीं की है । जिस जीवने नरकमें उत्पन्न होकर अन्तर्मुहूर्तके भीतर सम्यक्त्वको प्राप्त कर लिया है और अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहने पर जो मिथ्यात्वको प्राप्त हो गया है उसके नरकमें अल्पतरस्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर पाया जाता है । पहले नरकमें यह ओघ व्यवस्था बन जाती है, अतः वहाँके कथनको ओघके समान कहा है । किन्तु इतनी विशेषता है कि यहाँ अल्पतरस्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट काल कुछ कम एक सागरप्रमाण ही कहना चाहिये । दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं तक भुजगार स्थितिविभक्ति आदिके कथनसे भुजगारस्थितिसंक्रम आदिके कथनमें कोई अन्तर नहीं है, इसलिये भुजगारस्थितिसंक्रम आदिका काल भुजगारस्थितिविभक्ति आदिके कालके समान बतलाया है । शेष कथन सुगम है ।

§ ५८८. तिर्यञ्चोंमें भुजगारस्थितिके संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल चार समय है । अवस्थितस्थितिसंक्रमका काल ओघके समान है । अल्पतरस्थितिके संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त अधिक तीन पल्य है । इसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें जानना चाहिये । पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकमें भुजगारस्थितिके संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल चार समय है । अल्पतर और अवस्थितस्थितिके संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है ।

विशेषार्थ—तिर्यञ्चोंमें भुजगारस्थितिके संक्रामकका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल चार समय जिस प्रकार ओघप्ररूपणामें घटित करके बतला आये हैं उसी प्रकार यहाँ भी घटित कर लेना चाहिये । उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है । अवस्थितस्थितिके संक्रामकका

---

१. ता०-आ०प्रत्योः अपज्ज० इति पाठः ।

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

§ ५८९. मणुसतिय०३ भुज० जह० एयस०, उक्क० चत्तारि समया। अप्पद०[1] जह० एयस०, उक्क० तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडितिभागब्भहियाणि । मणुसिणीसु अंतोमुहुत्ताहियाणि । अवट्ठिदमोघभंगो । अवत्तव्वं जहण्णु० एयसमओ ।

§ ५९०. देवेसु भुज० जह० एयस०, उक्क० तिण्णि समया । अप्पद०-अवट्ठि० विहत्तिभंगो । एवं भवण०-वाणवेंतर० । णवरि सगट्ठिदी । जोदिसियादि जाव सव्वट्ठा त्ति विहत्तिभंगो । एवं जाव० ।

जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त ओघमें जिस प्रकारसे बतलाया है उसी प्रकार यहाँ भी प्राप्त होता है। इसीसे इस कथनको ओघके समान कहा है। अब रहा अल्पतरस्थितिके संक्रामकका जघन्य और उत्कृष्ट काल सो इसके जघन्य काल एक समयका ज्ञान करना तो सरल है। किन्तु उत्कृष्ट काल उस तिर्यञ्चके प्राप्त होता है जो पूर्व पर्यायमें अन्तर्मुहूर्तकाल तक अल्पतरस्थितिका संक्रम करके तीन पल्यकी आयुके साथ उत्तम भोगभूमिमें उत्पन्न हो जाता है। इसीसे यहाँ अल्पतर स्थितिके संक्रामकका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त अधिक तीन पल्य बतलाया है। यह पूर्वोक्त काल पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें अच्छी तरहसे घट जाता है, इसलिये इनमें भुजगार स्थिति आदिके संक्रामकोंका काल सामान्य तिर्यञ्चोंके समान बतलाया है। पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च लब्ध्यपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्त इनमें भुजगार स्थितिके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल चार समय तथा अवस्थितस्थितिके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त पूर्ववत् ही है। अब रहा अल्पतरस्थितिके संक्रामकोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल सो इनके जघन्य कालमें कोई विशेषता नहीं है। इसे भी पहलेके समान जानना चाहिये। हाँ उत्कृष्ट काल जो अन्तर्मुहूर्त कहा है सो यह उनकी आयुके उत्कृष्ट कालकी अपेक्षासे कहा है।

§ ५८९. मनुष्यत्रिकमें भुजगारस्थितिके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल चार समय है। अल्पतरस्थितिके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पूर्वकोटिके त्रिभागसे अधिक तीन पल्य है। किन्तु मनुष्यनियोंमें यह उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त अधिक तीन पल्य है। अवस्थितका काल ओघके समान है। तथा अवक्तव्यका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है।

विशेषार्थ—मनुष्यत्रिकमें जिसने त्रिभागमें मनुष्यायुका बन्ध करके क्षायिकसम्यग्दर्शन उपार्जित किया है उसीके अल्पतरस्थितिके संक्रामकोंका उत्कृष्ट काल पूर्वकोटिके त्रिभागसे अधिक तीन पल्य पाया जाता है। इसीसे प्रकृतमें इस कालको उक्त प्रमाण बतलाया है। किन्तु मनुष्यिनीके यह काल अन्तर्मुहूर्त अधिक तीन पल्य ही पाया जाता है, क्योंकि सम्यग्दृष्टि जीव मर कर मनुष्यिनियोंमें नहीं उत्पन्न होता है। शेष कथन सुगम है, क्योंकि शेष कालोंका खुलासा अनेक बार किया जा चुका है। उसी प्रकार यहाँ भी कर लेना चाहिये।

§ ५९०. देवोंमें भुजगारस्थितिके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तीन समय है। तथा अल्पतर और अवस्थितस्थितिके संक्रामकोंका काल स्थितिविभक्तिके समान है। इसी प्रकार भवनवासी और व्यन्तर देवोंमें जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें अल्पतरस्थितिके संक्रामकोंका उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण कहना चाहिये। ज्योतिषी देवोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें भुजगारस्थिति आदिके संक्रामकोंका काल स्थितिविभक्तिके समान है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये।

१. आ०प्रतौ अपज० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ५९१. अंतराणु० दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण भुज०-अप्प०-अवट्ठि० विहत्तिभंगो। अवत्तव्व० जह० अंतोमु०, उक्क० तेत्तीसं सागरो० किंचूणदोपुव्वकोडीहि सादिरेयाणि। सेसमग्गणासु विहत्तिभंगो। णवरि मणुसतिय० अवत्त० जह० अंतोमु०, उक्क० पुव्वकोडी देसूणा।

§ ५९२. णाणाजीव० भंगविचयाणु० दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य।

विशेषार्थ—सामान्यसे देवों, व्यन्तरों और भवनवासियोंमें असंज्ञी जीव मर कर उत्पन्न होते हैं, इसलिये इनमें भुजगारस्थितिके संक्रामकोंका उत्कृष्ट काल तीन समय बन जाता है। तथा भवनवासी और व्यन्तरोंमें अल्पतरस्थितिके संक्रामकोंका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण कहते समय उसे अन्तर्मुहूर्त कम कहना चाहिये। शेष कथन सुगम है।

§ ५९१. अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। ओघकी अपेक्षा भुजगार, अल्पतर और अवस्थितस्थितिके संक्रामकोंका अन्तर स्थितिविभक्तिके समान है। अवक्तव्यस्थितिके संक्रामकोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागर है। शेष मार्गणाओंमें भुजगारस्थिति आदिके संक्रामकोंका अन्तर स्थितिविभक्तिके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्यत्रिकमें अवक्तव्यस्थितिके संक्रामकोंका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पूर्वकोटिप्रमाण है।

विशेषार्थ—स्थितिविभक्तिमें भुजगार और अवस्थितस्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर तीन पल्य और अन्तर्मुहूर्त अधिक एक सौ त्रेसठ सागर बतलाया है। तथा अल्पतरस्थितिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त बतलाया है। यहाँ भी यह इसी प्रकारसे प्राप्त होता है, इसलिये इस कथनको स्थितिविभक्तिके समान कहा है। जो क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव अन्तर्मुहूर्त कालके भीतर दो बार उपशमश्रेणि पर चढ़ता है उसके अवक्तव्य स्थिति संक्रमका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है। तथा एक पूर्वकोटिकी आयुवाले जिस मनुष्यने आठ वर्षका होनेपर क्षायिक सम्यक्त्व पूर्वक उपशमश्रेणिको प्राप्त किया है। फिर जो मर कर तेतीस सागरकी आयुवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ है। फिर वहाँसे आकर जो एक पूर्वकोटिकी आयुके साथ मनुष्य हुआ है और आयुमें अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहने पर जो पुनः उपशमश्रेणि पर चढ़ा है उसके अवक्तव्य स्थितिके संक्रामकका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागर पाया जाता है। इसीसे प्रकृतमें अवक्तव्यस्थितिके संक्रामकका जघन्यअन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो पूर्वकोटि अधिक तेतीस सागर कहा है। अब रहीं नरकगति आदि चार गतिमार्गणाएँ सो इनमें सब अन्तरकाल स्थितिविभक्तिके अन्तर कालके समान बन जाता है, अतः इस अन्तरको स्थितिविभक्तिके समान कहा है। किन्तु यहाँ मनुष्यत्रिकमें अवक्तव्यस्थितिसंक्रम भी सम्भव है इतना विशेष जानना चाहिये। अब यदि मनुष्यत्रिकमेंसे किसी एक क्षायिकसम्यग्दृष्टि जीवको अन्तर्मुहूर्त कालके भीतर दो बार उपशमश्रेणि पर चढ़ाया जाता है तो यह अन्तर प्राप्त होता है और यदि भवके प्रारम्भमें आठ वर्षका होने पर और भवके अन्तमें अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहने पर उपशमश्रेणि पर चढ़ाया जाता है तो यह अन्तर कुछ कम पूर्वकोटिप्रमाण प्राप्त होता है। इसीसे यहाँ अवक्तव्यस्थितिके संक्रामकका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम पूर्वकोटिप्रमाण बतलाया है।

§ ५९२. नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचयानुगमसे निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश

Jain Education International	For Private & Personal Use Only	www.jainelibrary.org

ओघेण भुज०-अप्प०-अवट्ठि०संकामया णियमा अत्थि। सिया एदे च अवत्तव्वओ च १। सिया एदे च अवत्तव्वया च २। धुवसहिदा तिण्णि भंगा ३। मणुसतिए अप्प०-अवट्ठि० णियमा अत्थि, सेसपदा भयणिज्जा। भंगा णव ९।

§ ५९३. आदेसेण णेरइय० अप्प०-अवट्ठि०संका० णियमा अत्थि। भुज०संका० भजियव्वा। भंगा ३। एवं सव्वणेरइय-सव्वपंचिंदियतिरिक्ख-देवा जाव सहस्सार त्ति। तिरिक्खेसु भुज०-अप्प०-अवट्ठिदसंकामया णियमा अत्थि। मणुसअपज्ज० सव्वपदा भयणिज्जा। भंगा छव्वीस २६। आणदादि जाव सव्वट्ठा त्ति अप्पद०संका० णियमा अत्थि। एवं जाव०।

और आदेशनिर्देश। ओघकी अपेक्षा भुजगार, अल्पतर और अवस्थितस्थितिके संक्रामक जीव नियमसे हैं। कदाचित् ये बहुत जीव हैं और एक जीव अवक्तव्यस्थितिका संक्रामक है १। कदाचित् ये बहुत जीव हैं और बहुत जीव अवक्तव्यस्थितिके संक्रामक हैं २। इन दो भंगोंमें ध्रुवपदके मिला देने पर तीन भंग होते हैं। मनुष्यत्रिकमें अल्पतर और अवस्थितस्थितिके संक्रामक जीव नियमसे हैं। शेष पद भजनीय हैं। भंग ९ होते हैं।

विशेषार्थ—भुजगार आदि कुल चार पद हैं। जिनमेंसे ओघकी अपेक्षा तीन पदवाले जीव तो नियमसे पाये जाते हैं किन्तु अवक्तव्य पदवाले जीव भजनीय हैं। इस पदकी अपेक्षा कदाचित् एक और कदाचित् नाना जीव होते हैं, इसलिये दो भंग तो ये हुए और इनमें एक ध्रुव भंगके मिलाने पर तीन भंग होते हैं। किन्तु मनुष्यत्रिकमें अल्पतर और अवस्थित ऐसे दो पदवाले जीव तो सदा पाये जाते हैं, किन्तु शेष दो पदवाले जीव भजनीय हैं। अतः यहाँ एक जीव और नाना जीवोंकी अपेक्षा एकसंयोगी और द्विसंयोगी कुल भंगोंका विचार करने पर ध्रुव पदके साथ कुल नौ भंग होते हैं।

§ ५९३. आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें अल्पतर और अवस्थितस्थितिके संक्रामक जीव नियमसे हैं। भुजगारस्थितिके संक्रामक जीव भजनीय हैं। भंग तीन होते हैं। इसी प्रकार सब नारकी, सब पंचेन्द्रिय तिर्यंच, सामान्य देव और सहस्रार कल्प तकके देवोंमें जानना चाहिये। तिर्यञ्चोंमें भुजगार, अल्पतर और अवस्थितस्थितिके संक्रामक जीव नियमसे हैं। मनुष्य अपर्याप्तकोंमें सब पद भजनीय हैं। भंग २६ होते हैं। आनत कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें अल्पतरस्थितिके संक्रामक जीव नियमसे हैं। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये।

विशेषार्थ—नारकियोंमें कुल तीन पद हैं जिनमेंसे दो ध्रुव हैं और एक भजनीय है, अतः यहां तीन भंग कहे हैं। सब नारकी आदि और जितनी मार्गणाऐं मूलमें बतलाई हैं उनमें भी यही बात जाननी चाहिये। सामान्य तिर्यञ्चोंमें तीनों पद ध्रुव हैं, अतः वहाँ एक ही भंग है। मनुष्य अपर्याप्तकोंमें तीन पद होते हैं पर वे तीनों ही भजनीय हैं, अतः वहाँ एक जीव और नाना जीवोंकी अपेक्षासे एकसंयोगी, द्विसंयोगी और त्रिसंयोगी भंग प्राप्त करने पर वे २६ होते हैं। आनत कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तक एक अल्पतरपद ही पाया जाता है, अतः वहाँ इसकी अपेक्षा एक ध्रुव भंग ही है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ५९४. भागाभागो विहत्तिभंगो। णवरि ओघपरूवणाए अवत्तव्वसंका० सव्वजी० केव० भागो ? अणंतिमभागो । मणुस० अवत्त० केव० ? असंखे०भागो । मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु संखे०भागो ।

§ ५९५. परिमाणं विहत्तिभंगो । णवरि अवत्तव्वसंकामया केत्तिया ? संखेज्जा ।

§ ५९६. खेत्तं पोसणं च विहत्तिभंगो। णवरि अवत्तव्वसंकामया० लोगस्स असंखे०-भागो ।

§ ५९७. कालो विहत्तिभंगो । णवरि अवत्त० जह० एयसमओ, उक्क० संखेज्जा समया ।

§ ५९८. अंतरं विहत्तिभंगो । णवरि अवत्त० जह० एयस०, उक्क० वासपुधत्तं ।

§ ५९९. भावो सव्वत्थ ओदइयो भावो ।

§ ६००. अप्पाबहुआणु० दुविहो णि०—ओघेण आदेसेण । ओघेण सव्वत्थोवा अवत्तव्वसंका० । भुज०संका० अणंतगुणा । अवट्ठिदसंका० असंखे०गुणा । अप्पद०-

---

§ ५९४. भागाभागका कथन स्थितिविभक्तिके समान करना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि ओघकी अपेक्षा प्ररूपणा करते समय अवक्तव्यस्थितिके संक्रामक जीव सब जीवोंके कितने भागप्रमाण हैं ? अनन्तवें भागप्रमाण हैं। मनुष्योंमें अवक्तव्यस्थितिके संक्रामक जीव कितने भागप्रमाण हैं ? असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यनियोंमें अवक्तव्यस्थितिके संक्रामक जीव संख्यातवें भागप्रमाण हैं।

विशेषार्थ—भुजगार अनुयोगद्वारसम्बन्धी स्थितिविभक्तिमें भुजगार अल्पतर, और अवस्थित कुल तीन पद सम्भव है। किन्तु यहाँ एक अवक्तव्य पद बढ़ जाता है। इसलिये इसकी अपेक्षा जहाँ विशेषता सम्भव थी वह यहाँ बतला दी है। शेष कथन स्थितिविभक्तिके समान है।

§ ५९५. परिमाणका कथन स्थितिविभक्तिके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि अवक्तव्यस्थितिके संक्रामक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं।

§ ५९६. क्षेत्र और स्पर्शनका कथन स्थितिविभक्तिके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि अवक्तव्यस्थितिके संक्रामकोंका क्षेत्र और स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है।

§ ५९७. कालका कथन स्थितिविभक्तिके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि अवक्तव्य स्थितिके संक्रामोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। उपशमश्रेणि पर निरन्तर चढ़नेका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल संख्यात समय होनेसे उतरते समय यह काल प्राप्त होता है।

§ ५९८. अन्तरका कथन स्थितिविभक्तिके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि अवक्तव्य स्थितिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है। उपशमश्रेणिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व होनेसे जघन्य और उत्कृष्ट उक्त अन्तर प्राप्त होता है।

§ ५९९. भाव सर्वत्र औदयिक है।

§ ६००. अल्पबहुत्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेश-निर्देश। ओघकी अपेक्षा अवक्तव्यस्थितिके संक्रामक जीव सबसे थोड़े हैं। उनसे भुजगारस्थितिके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संका० संखे०गुणा। मणुस्सेसु सव्वत्थोवा अवत्तव्वसंका०। भुज०संका० असंखे०-गुणा। अवट्ठिदसंका० असंखे०गुणा। अप्प०संका० संखे०गुणा। एवं मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु। णवरि सव्वत्थ संखेज्जगुणालावो कायव्वो। सेसं विहत्तिभंगो।

एवं भुजगारो समत्तो।

§ ६०१. पदणिक्खेवे तत्थ इमाणि तिण्णि अणियोगद्दाराणि—समुक्कित्तणा सामित्तमप्पाबहुजं च। तत्थोघादेससमुक्कित्तणाए विहत्तिभंगो।

§ ६०२. सामित्तं दुविहं—जहण्णमुक्कस्सं च। उक्क० ताव पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण। ओघेण उक्कस्सिया वड्ढी विहत्तिभंगो। णवरि उक्कस्सट्ठिदिं बंधियूणावलियादीदस्स। तस्सेव से काले उक्कस्समवट्ठाणं। उक्कस्सिया हाणी विहत्तिभंगो। एवं सव्वणेरइय०-तिरिक्ख०-पंचिं०तिरिक्खतिय३-मणुसतिय३-देवा जाव सहस्सार त्ति। पंचिं०तिरि०अपज्ज०-मणुसअपज्ज० उक्क० वड्ढी कस्स? अण्णदरस्स तप्पाओग्ग-जहण्णट्ठिदिसंका० तप्पाओग्गुक्कस्सट्ठिदिं बंधियूणावलियादीदस्स। तस्सेव से काले उक्कस्स-मवट्ठाणं। हाणी विहत्तिभंगो। आणदादि सव्वट्ठा त्ति विहत्तिभंगो। एवं जाव०।

संक्रामक जीव अनन्तगुणे हैं। उनसे अवस्थितस्थितिके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे अल्पतरस्थितिके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं। मनुष्योंमें अवक्तव्यस्थितिके संक्रामक जीव सबसे थोड़े हैं। उनसे भुजगारस्थितिके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे अवस्थितस्थितिके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे अल्पतरस्थितिके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं। इसी प्रकार मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि इन दो मार्गणाओंमें सर्वत्र संख्यातगुणा करना चाहिये। शेष कथन स्थितिविभक्तिके समान है।

इस प्रकार भुजगार अनुयोगद्वार समाप्त हुआ।

§ ६०१. पदनिक्षेपके विषयमें ये तीन अनुयोगद्वार होते हैं—समुत्कीर्तना, स्वामित्व और अल्पबहुत्व। इनमेंसे ओघ और आदेशकी अपेक्षा समुत्कीर्तनाका कथन स्थितिविभक्तिके समान है।

§ ६०२. स्वामित्व दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। सर्वप्रथम उत्कृष्टका प्रकरण है। उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। ओघकी अपेक्षा उत्कृष्ट वृद्धिका भंग स्थितिविभक्तिके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके जिसे एक आवलि काल हो गया है उसके यह उत्कृष्ट वृद्धि होती है। तथा उसीके तदनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है। उत्कृष्ट हानिका भंग स्थितिविभक्तिके समान है। इसी प्रकार सब नारकी, सामान्य तिर्यञ्च, पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिक, मनुष्यत्रिक, सामान्य देव और सहस्रार कल्प तकके देवोंमें जानना चाहिये। पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें उत्कृष्ट वृद्धि किसके होती है? जो तत्प्रायोग्य जघन्य स्थितिका संक्रम कर रहा है। फिर जिसने तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके एक आवलि काल बिता दिया है उसके उत्कृष्ट वृद्धि होती है। फिर तदनन्तर समयमें उसीके उत्कृष्ट अवस्थान होता है। तथा उत्कृष्ट हानिका भंग स्थितिविभक्तिके समान है। आनतसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ६०३. जहण्णए पयदं। दुविहो णि०—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मोह० जह० वड्ढी कस्स? अण्णदरस्स जो समयूणट्ठिदिसंकमादो उक्क० ट्ठिदिं संकामेदि तस्स जह० वड्ढी। जह० हाणी कस्स? अण्णद० जो उक्क० ट्ठिदिं संकामेमाणो समयूणुक्कस्सट्ठिदिं संका० जादो तस्स जहण्णिया हाणी। एयदरत्थ अवट्ठाणं। एवं चदुगदीसु। णवरि आणदादि सव्वट्ठा त्ति जह० हाणी कस्स? अण्णद० अधट्ठिदिं गालेमाणयस्स। एवं जाव०।

§ ६०४. अप्पाबहुअं विहत्तिभंगो।

एवं पदणिक्खेवो त्ति समत्तमणियोगद्दारं।

§ ६०५. वड्ढिसंकामगे त्ति तत्थ इमाणि तेरस अणियोगद्दाराणि १३—समुक्कित्तणा जाव अप्पाबहुए त्ति। समुक्कित्तणदाए दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मोह० अत्थि तिण्णिवड्ढि-चत्तारिहाणि-अवट्ठि०-अवत्तव्वसंकामया। एवं मणुस०३। सेसं विहत्तिभंगो।

§ ६०६. सामित्तं विहत्तिभंगो। णवरि अवत्त० अण्ण० उवसामगस्स[1] परिवद-

---

विशेषार्थ—जिसका बन्ध होता है उसका एक आवलि काल जानेके बाद ही संक्रम होता है और यह संक्रमका प्रकरण है। इसीसे ओघकी अपेक्षा वर्णन करते समय उत्कृष्ट वृद्धि उत्कृष्ट स्थितिबन्धके होनेके बाद एक आवलि कालके बाद बतलाई है। अन्यत्र जहाँ बन्धके बाद एक आवलि काल बाद उत्कृष्ट वृद्धि बतलाई है वहाँ यही कारण जानना चाहिये। शेष कथन सुगम है।

§ ६०३. जघन्यका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। ओघकी अपेक्षा मोहनीयकी जघन्य वृद्धि किसके होती है? जो एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिका संक्रम करनेके बाद उत्कृष्ट स्थितिका संक्रम करता है उसके जघन्य वृद्धि होती है। जघन्य हानि किसके होती है? उत्कृष्ट स्थितिका संक्रम करनेवाला जो जीव तदनन्तर एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिका संक्रम करता है उसके जघन्य हानि होती है। तथा किसी एक जगह जघन्य अवस्थान होता है। इसी प्रकार चारों गतियोंमें जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि आनत कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें जघन्य हानि किसके होती है? अधःस्थितिको गलानेवाले किसी भी जीवके होती है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये।

§ ६०४. अल्पबहुत्वका भंग स्थितिविभक्तिसे सम्बन्ध रखनेवाले पदनिक्षेपके अल्पबहुत्वके समान है।

इस प्रकार पदनिक्षेप अनुयोगद्वार समाप्त हुआ।

§ ६०५. वृद्धिसंक्रामक नामक अनुयोगद्वारमें समुत्कीर्तनासे लेकर अल्पबहुत्वतक तेरह अनुयोगद्वार होते हैं। समुत्कीर्तनाकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। ओघकी अपेक्षा मोहनीयकी तीन वृद्धि, चार हानि, अवस्थित और अवक्तव्य पदके संक्रामक जीव हैं। इसी प्रकार मनुष्यत्रिकमें जानना चाहिये। शेष भंग स्थितिविभक्तिके समान है।

§ ६०६. स्वामित्वका भंग स्थितिविभक्तिके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि जो

---

१. ता०प्रतौ उपसामगो [गस्स], आ०प्रतौ उवसामगो इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

माणयस्स पढमसमयदेवस्स वा। एवं मणुसतिए। णवरि पढमसमयदेवालावो ण कायव्वो।

§ ६०७. कालाणु० दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण तिण्णिवड्ढि-चत्तारिहाणि-अवट्ठि०संका० कालो विहत्तिभंगो। णवरि संखे०भागहाणि—अवत्त० जहण्णु० एयसमओ।

§ ६०८. सव्वणेर०-सव्वदेवेसु विहत्तिभंगो। तिरिक्खाणं च विहत्तिभंगो। पंचिं०-तिरिक्ख०३ असंखे०भागवड्ढि-संखेज्जगुणवड्ढि० जह० एयसमओ, उक्क० वे समया। संखेज्जभागवड्ढि-हाणि-संखेज्जगुणहाणिसंका० जहण्णु० एयसमओ। असंखे०भागहाणि-अवट्ठि० तिरिक्खोघं। एवं पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज०। णवरि असंखे०भागहाणी० जह० एयसमओ, उक्क० अंतोमु०। एवं मणुसअपज्ज०। मणुस० पंचिं०तिरिक्खभंगो। णवरि

उपशामक जीव उपशमश्रेणिसे च्युत हो रहा है या जो उपशामक मर कर प्रथम समयवर्ती देव है उसके अवक्तव्य पद होता है। इसी प्रकार मनुष्यत्रिकमें जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि यहाँ प्रथम समयवर्ती देवके अवक्तव्य पद होता है यह आलाप नहीं करना चाहिये।

§ ६०७. कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। ओघकी अपेक्षा तीन वृद्धि, चार हानि और अवस्थितके संक्रामकोंका काल स्थितिविभक्तिके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि संख्यातभागहानि और अवक्तव्यका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है।

विशेषार्थ—इन सब वृद्धियों और हानियोंके काल स्थितिविभक्तिमें घटित करके बतला आये हैं उसी प्रकार प्रकृतमें घटित कर लेना चाहिये। किन्तु स्थितिविभक्तिमें स्थितिसत्त्वकी अपेक्षासे वह काल बतलाया है। यहाँ उसका कथन स्थितिसंक्रमकी अपेक्षासे करना चाहिये। तथापि वहाँ संख्यातभागहानिका उत्कृष्ट काल जो दो समय कम उत्कृष्ट संख्यातप्रमाण बतलाया है वह यहाँ नहीं प्राप्त होता, क्योंकि जिस स्थितिसत्त्वके सद्भावमें संख्यातभागहानिका यह उत्कृष्ट काल घटित किया गया है वहाँ संक्रम नहीं होता। इसलिये स्थितिसंक्रमकी अपेक्षा संख्यातभागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय प्रमाण ही प्राप्त होता है ऐसा जानना चाहिये। स्थितिसत्त्वके सिवा यहाँ स्थितिसंक्रममें एक पद और होता है जिसे अवक्तव्य पद कहते हैं। यह या तो उपशमश्रेणिसे च्युत होनेवाले क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीवके एक समयके लिये होता है या जो उपशान्तमोह क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव मर कर देव होता है, उसके प्रथम समयमें होता है, अतः इसका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय बतलाया है।

§ ६०८. सब नारकी और सब देवोंमें स्थितिविभक्तिके समान काल है। तिर्यञ्चोंमें भी काल स्थितिविभक्ति के समान है। पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें असंख्यात भागवृद्धि और संख्यात गुणवृद्धिके संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। संख्यातभाग-वृद्धि, संख्यातभागहानि और संख्यातगुणहानिके संक्रामकका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। असंख्यात भागहानि और अवस्थितके संक्रामकका काल सामान्य तिर्यंचोंके समान है। इसी प्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें असंख्यात भागहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तकोंमें जानना चाहिये। मनुष्य त्रिकमें पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चके समान काल है। किन्तु इतनी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

असंखे०भागहाणि० जह० एयसमओ, उक्क० तिण्णि पलिदोवमाणि पुव्वकोडितिभागेण सादिरेयाणि । अवत्त० जहण्णु० एयसमओ । एवं जाव० ।

विशेषता है कि इनमें असंख्यातभागहानिके संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल पूर्वकोटिका त्रिभाग अधिक तीन पल्य है। अवक्तव्यस्थितिके संक्रामकका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिये।

विशेषार्थ—स्थितिविभक्तिमें सब नारकियोंके असंख्यातभागवृद्धिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय, दो वृद्धि और दो हानियोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय, असंख्यातभागहानिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल कुछ कम अपनी-अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण तथा अवस्थितका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त बतलाया है। सब देवों और सामान्य तिर्यञ्चोंमें भी इसी प्रकार जहां जितने पद सम्भव हैं उनका यथायोग्य काल बतलाया है। प्रकृतमें इन मार्गणाओंमें अपने-अपने पदोंका उक्त काल इसी प्रकार बन जाता है। इसीसे यहां इस सब कथनको स्थितिविभक्तिके समान कहा है। इस कालका विशेष खुलासा स्थितिविभक्तिमें किया ही है, अतः वहांसे जान लेना चाहिये। पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें अद्धाक्षय और संक्लेशक्षय दोनों प्रकारसे असंख्यातभागवृद्धिरूप संक्रम सम्भव है, इसीसे इनमें इसका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय बतलाया है। जो एकेन्द्रिय जीव एक विग्रहसे संज्ञी तिर्यञ्चोंमें उत्पन्न होता है उसके प्रथम समयमें असंज्ञीके योग्य और शरीरग्रहणके समयमें संज्ञीके योग्य स्थितिबन्ध होता है। अतः पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें संख्यातगुणवृद्धिरूप संक्रमका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल दो समय बतलाया है। पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें संख्यातभागवृद्धि संक्लेशक्षयसे ही होती है, अतः इसका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय बतलाया है। संख्यातभागहानि और संख्यातगुणहानि स्थितिकाण्डकघातकी अन्तिम फालिके पतनके समय होता है, अतः इनका भी जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय बतलाया है। सामान्य तिर्यञ्चोंमें असंख्यातभागहानिका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त अधिक तीन पल्य तथा अवस्थितका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त बतलाया है। यह पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें भी बन जाता है, अतः पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें इन दो पदोंके कालको सामान्य तिर्यञ्चोंके समान कहा है। पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें अपने सम्भव पदोंका जो काल बतलाया है वह पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें भी बन जाता है, अतः इनमें सब पदोंका काल पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकके सब पदोंके समान बतलाया है। केवल असंख्यातभागहानिके उत्कृष्ट कालमें कुछ विशेषता है। बात यह है कि पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तका उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्तसे अधिक नहीं होता है, इसलिये यहां इस पदका अन्तमुहूर्त ही काल प्राप्त होता है। कालकी यह व्यवस्था मनुष्य अपर्याप्तकोंमें भी जाननी चाहिये, क्योंकि पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंके कालसे इनके कालमें कोई विशेषता नहीं है। मनुष्यत्रिकमें और सब पदोंके काल तो पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चके समान बन जाते हैं। किन्तु असंख्यातभागहानिके उत्कृष्ट कालमें कुछ विशेषता है। बात यह है कि जिस मनुष्यने आगामी भवकी मनुष्यायुका बन्ध करनेके बाद क्षायिकसम्यग्दर्शनको उत्पन्न कर लिया है उसके पूर्वकोटिका त्रिभाग अधिक तीन पल्यप्रमाण कालतक असंख्यातभागहानि पाई जाती है। इसी से यहां मनुष्यत्रिकमें यह काल उक्तप्रमाण बतलाया है। किन्तु मनुष्यनियोंमें यह काल अन्तमुहूर्त अधिक तीन पल्य ही पाया जाता है, क्योंकि सम्यग्दृष्टि जीव मर कर मनुष्यिनियोंमें उत्पन्न नहीं होते हैं। यह बात भुजगारस्थितिसंक्रममें अल्पतर पदके बतलाये गये कालसे जानी जाती है। मनुष्यत्रिकमें अवक्तव्यपद भी सम्भव है सो उसका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय ओघके समान यहां भी घटित कर लेना चाहिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ६०९. अंतराणु० दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण सव्वविहत्तिभंगो। णवरि अवत्त० जह० अंतोमु०, उक्क० तेत्तीसं सागरो० सादिरेयाणि। सव्वणेरइय०-सव्वदेवा त्ति विहत्तिभंगो। तिरिक्खाणं पि विहत्तिभंगो। पंचिंदियतिरिक्ख०३ विहत्तिभंगो। णवरि संखे०गुणवड्ढि० जह० एयसमओ, उक्क० पुव्वकोडिपुधत्तं। पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज०-मणुसअपज्ज० असंखे०भागवड्ढि—हाणि-संखे०गुणवड्ढि-अवट्ठि० जह० एयसमओ, उक्क० अंतोमु०। संखे०भागवड्ढि-हाणि-संखे०गुणहाणि० जहण्णुक्क० अंतोमु०। मणुस३ विहत्तिभंगो। णवरि संखे०गुणवड्ढि० जह० एयसमओ, उक्क० पुव्वकोडी देसूणा। अवत्त० जह० अंतोमु०, उक्क० पुव्वकोडी देसूणा। एवं जाव०।

§ ६०९. अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। ओघकी अपेक्षा सब पदोंका अन्तर स्थितिविभक्तिके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक तेतीस सागर है। सब नारकी और सब देवोंमें सब पदोंका अन्तर स्थितिविभक्तिके समान है। तिर्यंचोंमें भी सब पदोंका अन्तर स्थितिविभक्तिके समान है। पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें सब पदोंका अन्तर स्थितिविभक्तिके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें संख्यातगुणवृद्धिके संक्रामकोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्वप्रमाण है। पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकों और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यातभागहानि, संख्यातगुणवृद्धि और अवस्थितपदके संक्रामकोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। संख्यातभागवृद्धि, संख्यातभागहानि और संख्यातगुणहानिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। मनुष्य त्रिकमें सब पदोंका अन्तर स्थितिविभक्तिके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि संख्यात गुणवृद्धिके संक्रामकोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है। तथा अवक्तव्य पदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिए।

विशेषार्थ—पंचेन्द्रिय तिर्यंचत्रिकमें संख्यातगुणवृद्धिका जघन्य अन्तर एक समय बतलाया है। इसका कारण यह है कि जो एकेन्द्रिय दो विग्रह द्वारा अपने योग्य स्थितिके साथ उक्त जीवोंमें उत्पन्न होता है वह प्रथम समयमें असंज्ञीके योग्य संख्यातगुणी स्थितिको बढ़ाकर बांधता है, दूसरे समयमें अन्य पदके साथ स्थितिबन्ध करता है और तीसरे समयमें शरीरग्रहणके साथ संज्ञीके योग्य संख्यातगुणी स्थिति बढ़ाकर बांधता है। इस प्रकार उसके संख्यातगुणवृद्धिके संक्रामकका जघन्य अन्तर एक समय पाया जाता है। पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें भी इसी प्रकारसे संख्यातगुणवृद्धिका जघन्य अन्तर एक समय प्राप्त होता है। तथा मनुष्यत्रिकमें भी संख्यातगुणवृद्धिका जघन्य अन्तर एक समय उक्त प्रकारसे ही प्राप्त होता है। मनुष्यत्रिकमें जो मनुष्य अन्तर्मुहूर्तके भीतर दो बार उपशमश्रेणि पर चढ़ता है उसके अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है। तथा जो पूर्वकोटिके प्रारम्भमें आठ वर्षका होकर उपशमश्रेणि पर चढ़ता है और फिर जो जीवनके अन्तमें उपशमश्रेणि पर चढ़ता है उसके अवक्तव्यपदका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम एक पूर्वकोटि वर्षप्रमाण पाया जाता है। इस प्रकार अन्तर सम्बन्धी विशेषताओंका निर्देश यहां पर कर दिया है। शेष सब स्थानोंमें सब पदोंका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर स्थिति विभक्तिमें बतलाये गये वृद्धि अनुयोगद्वारमें प्रतिपादित अन्तरके समान है, अतः यहां हम ने उसका अलगसे निर्देश नहीं किया है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ६१०. णाणाजीवभंगविचओ भागाभागं परिमाणं खेत्तं पोसणं कालो अंतरं भावो च विहत्तिभंगो। णवरि सव्वत्थ अवत्त०परूवणा जाणिऊण कायव्वा।

§ ६११. अप्पाबहुगाणु० दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण सव्वत्थोवा अवत्त०संका०। असंखे०गुणहाणिसंका० संखे०गुणा। सेसं विहत्तिभंगो। एवं मणुसतिए ३। सेसं० विहत्तिभंगो।

एवं वड्ढिपरूवणा गया।

§ ६१२. एत्थ ट्ठाणपरूवणाए सत्तरिसागरो०कोडाकोडिं बंधियूण बंधावलियादीदमोकड्डणाए संकमेमाणयस्स तमेगं ट्ठिदिसंकमट्ठाणं। एत्तो समयूण-दुसमयूणादिकमेण अणुक्कस्ससंकमट्ठाणवियप्पा ओयारेयव्वा जाव णिव्वियप्पंतोकोडाकोडि त्ति। तदो धुवट्ठिदीदो हेट्ठा हदसमुप्पत्तियकम्मालंबणेणोदारेयव्वं जाव बादरेइंदियपज्जत्तधुवट्ठिदि त्ति। पुणो खवयपाओग्गाणि वि ठाणाणि सागरोवमट्ठिदिसंतकम्मपढमट्ठिदिखंडयप्पहुडि जहासंभवमोयारेयव्वाणि जाव सुहुमसांपराइयखवगसमयाहियावलिया त्ति। एदाणि च संकमट्ठाणाणि किंचूणसत्तरिसागरोवमकोडाकोडिमेत्ताणि, उक्कस्सट्ठिदिसंकमादो जाव एइंदियधुवट्ठिदि त्ति णिरंतरसरूवेण तदुप्पत्तिदंसणादो। तत्तो हेट्ठा खवगपाओग्गट्ठाणाणं सांतर-णिरंतरकमेण अंतोमुहुत्तमेत्ताणमुप्पत्तिउवलंभादो।

एवं मूलपयडिट्ठिदिसंकमो समत्तो।

---

§ ६१०. नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर और भाव इनका भंग स्थितिविभक्तिके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि यहां अवक्तव्यपद भी होता है, इसलिये इसका कथन सर्वत्र जान कर करना चाहिये।

§ ६११. अल्पबहुत्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। ओघकी अपेक्षा अवक्तव्यस्थितिके संक्रामक जीव सबसे थोड़े हैं। उनसे असंख्यात गुणहानिके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं। शेष पदोंका अल्पबहुत्व स्थितिविभक्तिके समान है। इसी प्रकार मनुष्यत्रिकमें जानना चाहिए। शेष भंग स्थितिविभक्तिके समान है।

इस प्रकार वृद्धि प्ररूपणाका कथन समाप्त हुआ।

§ ६१२. यहाँ स्थान प्ररूपणाका कथन करनेपर जो जीव सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण स्थितिको बाँधकर बन्धावलिके बाद अपकर्षण करके उसका संक्रमण करता है उसके एक स्थितिसंक्रमस्थान होता है। इसके बाद एक समय कम, दो समय कम आदिके क्रमसे अनुत्कृष्ट संक्रमस्थानोंके विकल्प निर्विकल्प अन्तःकोड़ाकोड़ीप्रमाण स्थितिके प्राप्त होनेतक अवतरित करने चाहिए। फिर ध्रुवस्थितिसे नीचे बादर एकेन्द्रिय पर्याप्तकी ध्रुवस्थितिके प्राप्त होनेतक हतसमुत्पत्तिक कर्मके सहारेसे संक्रमस्थानोंको प्राप्त कर ले आना चाहिये। फिर एक सागरप्रमाण स्थितिसत्कर्मके प्रथम स्थितिकाण्डकसे लेकर सूक्ष्मसाम्पराय क्षपकके एक समय अधिक एक आवलिप्रमाण स्थितिके शेष रहने तक यथासम्भव क्षपकके योग्य संक्रमस्थान ले आने चाहिये। ये संक्रमस्थान कुछ कम सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण होते हैं, क्योंकि उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमस्थानसे लेकर एकेन्द्रियके योग्य ध्रुवस्थिति तक निरन्तर क्रमसे इन स्थानोंकी उत्पत्ति देखी जाती है। और उससे नीचे क्षपक योग्य अन्तर्मुहूर्त प्रमाण स्थानोंकी सान्तर-निरन्तर क्रमसे उत्पत्ति देखी जाती है।

इस प्रकार मूलप्रकृति स्थितिसंक्रम समाप्त हुआ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ६१३. संपहिउत्तरपयडिट्ठिदिसंकमो पत्तावसरो। तत्थ इमाणि चउवीसमणियोगद्दाराणि—अद्धाछेदो सव्वसंकमो णोसव्वसंकमो उक्कस्ससंकमो अणुक्कस्ससंकमो जहण्णसंकमो अजहण्णसंकमो सादियसंकमो अणादियसंकमो धुवसंकमो अद्धुवसंकमो एयजीवेण सामित्तं कालो अंतरं णाणजीवभंगविचओ भागाभागो परिमाणं खेत्तं पोसणं कालो अंतरं सण्णियासो भावाणुगमो अप्पाबहुगाणुगमो चेदि। भुजगारादीणि च ४। तत्थ दुविहो अद्धाछेदो जहण्णुक्कस्सट्ठिदिसंकमविसयभेदेण। एत्थ ताव पुव्विल्लमप्पणासुत्तमवलंबणं काऊणुक्कस्सट्ठिदिसंकमद्धाछेदे उक्कस्सट्ठिदिउदीरणाभंगमणुवत्तइस्सामो। तं जहा—दुविहो तस्स णिद्देसो ओघादेसभेदेण। ओघेण मिच्छत्त-सोलसकसायाणमुक्कस्सओ ट्ठिदिसंकमद्धाछेदो सत्तरि-चत्तालीससागरोवमकोडाकोडीओ दोहि आवलियाहि ऊणाओ। णवणोक० उक्कस्सट्ठिदिसंकम०अद्धाछेदो चत्तालीसं सागरोवमकोडाकोडीओ तीहि आवलियाहि परिहीणाओ[1]। सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमुक्कस्सट्ठिदिसं०अद्धा० सत्तरि-सागरोवमकोडा० अंतोमुहुत्तूणाओ। एवं चदुसु गदीसु। णवरि पंचिं०तिरि०अपज्ज०-मणुस०अपज्ज० अट्ठावीसं पयडीणमुक्कस्सट्ठिदिसं०अद्धा० सत्तरि-चत्तालीसं सागरो०कोडा० अंतोमुहुत्तूणाओ। आणदादि जाव सव्वट्ठा त्ति सव्वासिं पयडीणमुक्कस्सट्ठिदिसं०अद्धा० अंतोकोडा०। एवं जाव०।

§ ६१३. अब उत्तर प्रकृति स्थितिसंक्रमका कथन अवसर प्राप्त है। उसमें ये चौबीस अनुयोगद्वार होते हैं—अद्धाच्छेद, सर्वसंक्रम, नोसर्वसंक्रम, उत्कृष्टसंक्रम, अनुत्कृष्टसंक्रम, जघन्यसंक्रम, अजघन्यसंक्रम, सादिसंक्रम, अनादिसंक्रम, ध्रुवसंक्रम, अध्रुवसंक्रम, एक जीवकी अपेक्षा स्वामित्व, काल, अन्तर, नानाजीवोंकी अपेक्षा भंगविचय, भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, सन्निकर्ष, भावानुगम और अल्पबहुत्वानुगम। तथा भुजगार आदि चार। उनमेंसे अद्धाच्छेद दो प्रकारका है—जघन्य स्थितिसंक्रमको विषय करनेवाला और उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमको विषय करनेवाला। अब यहां पूर्वके अर्पणासूत्रका अवलम्बन लेकर उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम विषयक अद्धाच्छेद उत्कृष्ट स्थिति उदीरणाविषयक अद्धाच्छेदके समान है यह बतलाते हैं। यथा—उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमविषयक अद्धाच्छेदका निर्देश दो प्रकारका है--ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। ओघकी अपेक्षा मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम अद्धाच्छेद दो आवलि कम सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण है। सोलह कषायोंका उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम अद्धाच्छेद दो आवलि कम चालीस कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है। तथा नौ नोकषायोंका उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम अद्धाच्छेद तीन आवलि कम चालीस कोड़ाकोड़ी सागर है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम अद्धाच्छेद अन्तर्मुहूर्त कम सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण है। इसी प्रकार चारों गतियोंमें जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें अट्ठाईस प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम अद्धाच्छेद अन्तर्मुहूर्तकम सत्तर और चालीस कोड़ाकोड़ी सागर है। आनतसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें सभी प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम अद्धाच्छेद अन्तः कोड़ाकोड़ी सागर प्रमाण है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिये।

१. ता०आ०प्रत्योः —कोडीहि परिहीणाओ इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ६१४. संपहि जहण्णट्ठिदिसंकमद्धाच्छेदपरूवणट्ठमुवरिमसुत्तसंबंधमवलंबेमो[1]—

❀ एत्तो जहण्णयं वत्तइस्सामो ।

§ ६१५. पइज्जासुत्तमेदं जहण्णट्ठिदिसंकमद्धाच्छेदपरूवणाविसयं सुगमं ।

विशेषार्थ—मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध सत्तर कोडीकोडी सागरप्रमाण होता है, किन्तु इसका संक्रम बन्धावलिके बाद उदयावलिके ऊपरके निषेकोंका ही होता है, अतः इसका उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमअद्धाच्छेद दो आवलिकम सत्तर कोडाकोडी सागरप्रमाण बतलाया है। सोलह कषायोंका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध चालीस कोडाकोडी सागरप्रमाण होता है, अतः इसका भी उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम पूर्वोक्त कारणसे दो आवलि कम चालीस कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण ही कहा है। अब रहे नौ नोकषाय सो इनकी बन्धकी अपेक्षा उत्कृष्ट स्थिति विविध प्रकारकी बतलाई है। हां संक्रमकी अपेक्षा इनकी उत्कृष्ट स्थिति एक आवलि कम चालीस कोड़ाकोड़ी सागर प्राप्त होती है, अतः इनका उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमअद्धाच्छेद तीन आवलिकम चालीस कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण जानना चाहिये, क्योंकि जो उत्कृष्ट स्थिति संक्रमसे प्राप्त होती है उसका संक्रमावलिके बाद ही संक्रम होता है। उसमें भी उदयावलिप्रमाण निषेकोंका संक्रम नहीं होता, अतः नौ नोकषायोंका उत्कृष्ट स्थितिसंकमअद्धाच्छेद तीन आवलिकम चालीस कोडाकोडी सागरप्रमाण होता है यह बात सिद्ध हुई। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका अन्तर्मुहूर्तकम सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम अद्धाच्छेद होता है, क्योंकि मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके जिस जीवने अन्तर्मुहूर्तमें वेदक सम्यक्त्वको प्राप्त कर लिया है उसके सम्यक्त्वको प्राप्त करनेके समयमें ही मिथ्यात्वकी अन्तर्मुहूर्तकम उक्त स्थिति सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वमें संक्रमित हो जाती है और फिर इस स्थितिका संक्रम होने लगता है। तथापि यह संक्रम उदयावलिके ऊपरके निषेकोंका ही होता है। अतः सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम-अद्धाच्छेद अन्तर्मुहूर्तकम सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण है यह सिद्ध होता है। यतः यह स्थिति-संक्रमअद्धाच्छेद चारों गतियोंमें घटित हो जाता है अतः उसके कथनको ओघके समान जानना चाहिये। किन्तु कुछ मार्गणाएं इसकी अपवाद हैं। बात यह है कि पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकी उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मुहूर्त कम प्राप्त होती है, क्योंकि इन मार्गणाओंमें उत्कृष्ट स्थितिबन्ध सम्भव नहीं है। अतः जो जीव उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके अन्तर्मुहूर्तके भीतर इन दो मार्गणाओंमें उत्पन्न होते हैं उन्हींके यह उत्कृष्ट स्थिति पाई जाती है। तथापि ऐसे जीव इनमें अन्तर्मुहूर्त बाद ही उत्पन्न होते हैं, अतः यहां ओघ उत्कृष्ट स्थितिको अन्तर्मुहूर्त कम कर देना चाहिये। यही कारण है कि इन दो मार्गणाओंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम-अद्धाच्छेद अन्तर्मुहूर्तकम सत्तर कोडाकोडी सागरप्रमाण और शेष पच्चीस प्रकृतियोंका अन्तर्मुहूर्त कम चालीस कोडाकोडी सागरप्रमाण बतलाया है। तथा अनतादिकमें अन्तःकोडाकोडी सागरप्रमाण ही उत्कृष्ट स्थिति होती है, अतः यहाँ सब प्रकृतियोंका उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमअद्धाच्छेद उक्तप्रमाण बतलाया है।

§ ६१४. अब जघन्य स्थितिसंक्रमअद्धाच्छेदका कथन करनेके लिये आगेके सूत्रोंके सम्बन्धका अवलम्ब लेते हैं—

❀ इससे आगे जघन्य स्थितिसंक्रमअद्धाच्छेदको बतलाते हैं।

§ ६१५. यह प्रतिज्ञा सूत्र है। इसमें जघन्य स्थितिसंक्रमअद्धाच्छेदके कथन करनेकी सूचना की गई है। यह सुगम है।

1. आ॰प्रतौ —मवलंवेयव्वो इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

❀ मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्त-बारसकसाय-इत्थि-णवुंसयवेदाणं जहण्णट्ठिदिसंकमो पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।

§ ६१६. कुदो ? मिच्छत्त-सम्मामिच्छत्ताणं दंसणमोहक्खवणाचरिमफालीए अणंताणुबंधीणं विसंजोयणाचरिमफालिसंकमे अट्ठकसायाणं च खवयस्स तेसिं चेव पच्छिमट्ठिदिखंडयचरिमफालिसंकमकाले इत्थि-णवुंसयवेदाणं पि चरिमट्ठिदिखंडयम्मि सुत्तुत्तपमाणजहण्णट्ठिदिसंकमसंभवोवलद्धीदो। एवमेदेसिं कम्माणं जहण्णट्ठिदिसंकमद्धाछेदं परूविय संपहि सम्मत्त-लोहसंजलणाणं तण्णिण्णयविहाणट्ठमुत्तरसुत्तमाह—

❀ सम्मत्त-लोहसंजलणाणं जहण्णट्ठिदिसंकमो एया ट्ठिदी।

§ ६१७. सम्मत्तस्स दंसणमोहक्खवणाए समयाहियावलियमेत्तसेसे लोहसंजलणस्स वि सुहुमसांपराइयक्खवणद्धाए समयाहियावलियासेसाए ओकड्डणासंकमवसेण पयदद्धाछेदसंभवो वत्तव्वो। सेसकम्माणं जहण्णट्ठिदिअद्धाच्छेदणिद्धारणट्ठमुवरिमो सुत्तपबंधो—

❀ कोहसंजलणस्स जहण्णट्ठिदिसंकमो बे मासा अंतोमुहुत्तूणा।

---

* मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, बारह कषाय, स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका जघन्य स्थितिसंक्रमअद्धाच्छेद पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है।

§ ६१६. क्योंकि दर्शनमोहनीयकी क्षपणाके कालमें मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अन्तिम फालिका पतन होते समय, अनन्तानुबन्धियोंकी विसंयोजनाकी अन्तिम फलिका संक्रम होते समय, क्षपक जीवके आठ कषायोंकी अन्तिम स्थितिकाण्डककी अन्तिम फालिका संक्रम होते समय और स्त्रीवेद व नपुंसकवेदके अन्तिम स्थितिकाण्डकके पतनके समय सूत्रमें कहे अनुसार जघन्य स्थितिसंक्रम पाया जाता है। आशय यह है कि अपनी अपनी क्षपणाके समय जब इन कर्मोंके अन्तिम स्थितिकाण्डककी अन्तिम फालिका पतन होता है तब यह जघन्य स्थितिसंक्रमअद्धाच्छेद होता है। इस प्रकार इन कर्मोंके जघन्य स्थितिसंक्रमअद्धाच्छेदका कथन करके अब सम्यक्त्व और लोभ संज्वलनके इस जघन्य स्थितिसंक्रमअद्धाच्छेदका निर्णय करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

* सम्यक्त्व और लोभ संज्वलनका जघन्य स्थितिसंक्रमअद्धाच्छेद एक स्थितिप्रमाण है।

§ ६१७. क्योंकि दर्शनमोहकी क्षपणामें एक समय अधिक एक आवलिप्रमाण काल शेष रहने पर सम्यक्त्वका और सूक्ष्मसाम्पराय क्षपकके कालमें एक समय अधिक एक आवलिप्रमाण काल शेष रहने पर लोभ संज्वलनका अपकर्षणसंक्रमके कारण प्रकृत अद्धाच्छेद सम्भव है यह कहना चाहिये। अब शेष कर्मोंके जघन्य स्थितिसंक्रमअद्धाच्छेदका निश्चय करनेके लिये आगेके सूत्रोंका निर्देश करते हैं—

* क्रोधसंज्वलनका जघन्य स्थितिसंक्रमअद्धाच्छेद अन्तर्मुहूर्त कम दो महीना है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ६१८. खवयस्स चरिमट्ठिदिबंधचरिमफालिसंकमणावत्थाए तदुवलंभादो । कुदो अंतोमुहुत्तूणत्तं ? ण, आबाहाबाहिरस्सेव णवकबंधस्स तत्थ संकंतीए तदूणत्ताविरोहादो ।

❀ माणसंजलणस्स जहण्णट्ठिदिसंकमो मासो अंतोमुहुत्तूणो ।

§ ६१९. सुगमं ।

❀ मायासंजलणस्स जहण्णट्ठिदिसंकमो अद्धमासो अंतोमुहुत्तूणो ।

§ ६२०. सुगमं ।

❀ पुरिसवेदस्स जहण्णट्ठिदिसंकमो अट्ठ वस्साणि अंतोमुहुत्तूणाणि ।

§ ६२१. सुगमं ।

❀ छण्णोकसायाणं जहण्णट्ठिदिसंकमो संखेज्जाणि वस्साणि ।

§ ६२२. कुदो ? तेसिं चरिमट्ठिदिखंडयायामस्स तप्पमाणत्तादो । एवमोघेण अट्ठावीसमोहपयडीणं जहण्णट्ठिदिसंकमद्धाच्छेदं परूविय संपहि आदेसपरूवणाए बीजपडिभूदमुवरिमसुत्तमाह—

❀ गदीसु अणुमग्गियव्वो ।

---

§ ६१८. क्योंकि क्षपक जीवके अन्तिम स्थितिबन्धकी अन्तिम फालिका संक्रम होनेकी अवस्थामें यह अद्धाच्छेद पाया जाता है ।

शंका—इसे दो महीनासे अन्तर्मुहूर्त कम क्यों बतलाया है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि आबाधाकालके बाहरके नवकबन्धका ही वहां संक्रम होता है, इसलिये इसे दो महीनासे अन्तर्मुहूर्त कम कहनेमें कोई विरोध नहीं आता है ।

*** मानसंज्वलनका जघन्य स्थितिसंक्रमअद्धाच्छेद अन्तर्मुहूर्त कम एक महीना है ।**

§ ६१९. यह सूत्र सुगम है ।

*** मायासंज्वलनका जघन्य स्थितिसंक्रमअद्धाच्छेद अन्तर्मुहूर्त कम आधा महीना है ।**

§ ६२०. यह सूत्र सुगम है ।

*** पुरुषवेदका जघन्य स्थितिसंक्रमअद्धाच्छेद संख्यात वर्ष है ।**

§ ६२१. यह सूत्र सुगम है ।

*** छह नोकषायोंका जघन्य स्थितिसंक्रमअद्धाच्छेद संख्यात वर्ष है ।**

§ ६२२. क्योंकि इनके अन्तिम स्थितिकाण्डकका आयाम संख्यात वर्षप्रमाण ही पाया जाता है । इस प्रकार ओघसे मोहनीयकी अट्ठाईस प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिसंक्रमअद्धाच्छेदका कथन करके अब आदेशप्ररूपणा के बीजभूत आगेका सूत्र कहते हैं—

*** चारों गतियोंमें जघन्य स्थितिसंक्रमअद्धाच्छेदका विचार कर लेना चाहिए ।**

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

§ ६२३. एदीए दिसाए णिरयादिगदीसु वि जहण्णट्ठिदिअद्धाछेदो अणुमग्गणिज्जो त्ति वुत्तं होइ। एदेण सूचिदमादेसपरूवणमुच्चारणाणुसारेण वत्तइस्सामो। तं जहा— आदेसेण णेरइय० मिच्छ०-बारसक०-णवणोक० ट्ठिदिविहत्तिभंगो। सम्म०-सम्मामि०-अणंताणु०४ ओघो। एवं पढमाए। बिदियादि जाव सत्तमा त्ति मिच्छत्त-बारसक०-णवणोकसायाणि ट्ठिदिविहत्तिभंगो। सम्म०-सम्मामि०-अणंताणु०४ जहण्णट्ठिदिसंक०-अद्धा० पलिदो० असंखे०भागो।

§ ६२४. तिरिक्ख-पंचिं०तिरिक्खतिय०३ मिच्छत्त-बारसक०-णवणोक० जह० ट्ठिदिसं०अद्धा० सागरो० सत्त-सत्त० चत्तारि-सत्त० पलिदो० असंखे०भागेणूणया। सम्म०-सम्मामि०-अणंताणु०४ ओघभंगो। णवरि जोणिणीसु सम्मत्त० सम्मामिच्छत्त-

---

§ ६२३. इसी पद्धतिसे नरक आदि गतियोंमें भी जघन्य स्थितिसंक्रमअद्धाच्छेदका विचार कर लेना चाहिये यह इस सूत्रका तात्पर्य है। अब इस सूत्रद्वारा सूचित हुई आदेश प्ररूपणाको उच्चारणाके अनुसार बतलाते हैं। यथा—आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंका जघन्य स्थितिसंक्रमअद्धाच्छेद स्थितिविभक्तिके समान है। सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका जघन्य स्थितिसंक्रमअद्धाच्छेद ओघके समान है। इसी प्रकार पहली पृथिवीमें जानना चाहिये। दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंका जघन्य स्थितिसंक्रमअद्धाच्छेद स्थितिविभक्तिके समान है। तथा सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका जघन्य स्थितिसंक्रमअद्धाच्छेद पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है।

विशेषार्थ—सामान्यसे नारकियोंमें और प्रथम नरकके नारकियोंमें सम्यक्त्वकी क्षपणा, सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना सम्भव होनेके कारण यहां इन तीनोंका जघन्य स्थितिसंक्रमअद्धाच्छेद ओघके समान बतलाया है। इसी प्रकार द्वितीयादि शेष नरकोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना होनेके कारण तथा अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना सम्भव होनेके कारण यहां इनका जघन्य स्थितिसंक्रमअद्धाच्छेद पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण बतलाया है। इसके सिवा सब नरकोंमें शेष कर्मोंका जहां जितना जघन्य स्थितिसत्त्व सम्भव है वहां उतना संक्रम पाया जाता है, अतः सर्वत्र शेष प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिसंक्रम अद्धाच्छेद स्थितिविभक्तिके समान बतलाया है। किन्तु यहां इतना विशेष जानना चाहिये कि जहां जितना जघन्य स्थितिसत्त्व होगा उससे यह जघन्य स्थितिसंक्रमअद्धाच्छेद एक आवलिप्रमाण कम ही होगा, क्योंकि जो निषेक उदयावलिके भीतर प्रविष्ट हो जाते हैं उनका संक्रम नहीं होता है।

§ ६२४. तिर्यञ्च सामान्य और पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रम अद्धाच्छेद एक सागरके सात भागोंमेंसे पल्यका असंख्यातवां भाग कम सात भागप्रमाण है। तथा बारह कषाय और नौ नोकषायोंका जघन्य स्थितिसंक्रमअद्धाच्छेद एक सागरके सात भागोंमेंसे पल्यका असंख्यातवां भाग कम चार भागप्रमाण है। सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका जघन्य स्थितिसंक्रमअद्धाच्छेद ओघके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि योनिनी तिर्यञ्चोंमें सम्यक्त्वका जघन्य स्थितिसंक्रमअद्धाच्छेद सम्यग्मिथ्यात्वके जघन्य स्थितिसंक्रमअद्धाच्छेदके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भंगो। पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज०–मणुसअपज्जत्तएसु जोणिणीभंगो। णवरि अणंताणु०–चउक्कं सह कसाएहि भाणियव्वं।

§ ६२५. मणुसतिए ओघं। णवरि मणुसिणीसु पुरिसवेदस्स छण्णोकसाय-भंगो। देवेसु णारयभंगो। एवं भवण०–वाणवेंत०। णवरि सम्मत्त० जह० पलिदो० असंखे०भागो। जोदिसियाणं विदियपुढविभंगो। सोहम्मादि जाव णवगेवज्जा त्ति सो चेव भंगो। णवरि सम्मत्तस्स ओघं। अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठे त्ति २३ पयडीणं जहण्णट्ठिदिसं०अद्धा० अंतोकोडाकोडी। सम्मत्ताणंताणुबंधीणमोघभंगो। एवं जाव०।

समान है। पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें सब प्रकृतियोंका जघन्य स्थिति-संक्रमअद्धाच्छेद योनिनी तिर्यञ्चोंके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें अनन्तानुबन्धी चतुष्कका भंग कषायोंके साथ कहना चाहिये।

विशेषार्थ—सामान्य तिर्यञ्चोंमें और पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंका जघन्य स्थितिसंक्रमअद्धाच्छेद कहते समय एकेन्द्रियोंकी व जो एकेन्द्रिय पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें उत्पन्न हुए हैं उनकी प्रधानता है। इस अपेक्षासे मूलमें उक्त प्रकृतियोंका जो जघन्य स्थितिसंक्रमअद्धाच्छेद बतलाया है वह बन जाता है। अब रहीं सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्क ये छह प्रकृतियां सो इन मार्गणाओंमें सम्यक्त्वकी क्षपणा करनेवाला जीव भी उत्पन्न होता है और यहां सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना व अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजना भी सम्भव है, अतः इन छह प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिसंक्रमअद्धाच्छेद ओघके समान बतलाया है। किन्तु योनिनी तिर्यञ्चोंमें कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव मरकर नहीं उत्पन्न होते, अतः वहां सम्यक्त्वका जघन्य स्थितिसंक्रमअद्धाच्छेद ओघके समान नहीं प्राप्त होता। किन्तु उद्वेलनाकी अपेक्षा जो जघन्य स्थितिसंक्रमअद्धाच्छेद सम्भव है वह यहां प्राप्त होता है, अतः इस मार्गणामें सम्यक्त्वका जघन्य स्थितिसंक्रमअद्धाच्छेद सम्यग्मिथ्यात्वके जघन्य स्थिति-संक्रमअद्धाच्छेदके समान बतलाया है। पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें सब व्यवस्था योनिनी तिर्यञ्चोंके समान बन जाती है, इसलिये इनके कथनको उनके समान कहा है। किन्तु इन दो मार्गणाओंमें अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना नहीं होती, अतः यहां अनन्तानुबन्धीचतुष्कका जघन्य स्थितिसंक्रमअद्धाच्छेद शेष कषायोंके समान प्राप्त होनेके कारण वैसा बतलाया है।

§ ६२५. मनुष्यत्रिकमें सब प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिसंक्रमअद्धाच्छेद ओघके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्यनियोंमें पुरुषवेदका जघन्य स्थितिसंक्रमअद्धाच्छेद छह नोकषायोंके समान है। देवोंमें जघन्य स्थितिसंक्रमअद्धाच्छेदका भंग नारकियोंके समान है। इसी प्रकार भवनवासी और व्यन्तर देवोंमें जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें सम्यक्त्व का जघन्य स्थितिसंक्रमअद्धाच्छेद पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। ज्योतिषी देवोंमें जघन्य स्थितिसंक्रमअद्धाच्छेदका भंग दूसरी पृथिवीके समान है। सौधर्म कल्पसे लेकर नौ ग्रैवेयक तकके देवोंमें वही भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि यहां सम्यक्त्वका जघन्य स्थितिसंक्रमअद्धाच्छेद-का भंग ओघके समान है। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें तेईस प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिसंक्रमअद्धाच्छेद अन्तःकोडाकोडी सागरप्रमाण है। तथा सम्यक्त्व और अनन्तानुबन्धियोंके जघन्य स्थितिसंक्रमअद्धाच्छेदका भंग ओघके समान है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिये।

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

§ ६२६. सव्व-णोसव्व-उक्कस्साणुक्कस्स-जहण्णाजहण्णट्ठिदिसंक० ट्ठिदिविहत्ति-भंगो।

§ ६२७. सादि-अणादि-धुव-अद्धुवाणु० दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मिच्छत्तस्स उक्क०-अणुक्क०-जहण्णट्ठिदिसंकमो किं सादिया ४ ? सादी अद्धुवो। अज० अणादी धुवो अद्धुओ वा। सोलसक०-णवणोकसायाणमुक्क०-अणुक्क-जहण्णाणं मिच्छत्तभंगो। अज० चत्तारि भंगा। सम्मत्त०-सम्मामि० उक्कस्साणुक्क०-जहण्णाजह०-संकमा सादि-अद्धुवा। आदेसेण सव्वं सव्वत्थ सादि-अद्धुवमेव।

विशेषार्थ—ओघसे जो सब प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिसंक्रमअद्धाच्छेद कहा है वह मनुष्यत्रिकमें अविकल घट जाता है, इसलिये इनके कथनको ओघके समान कहा है। किन्तु मनुष्यनियोंमें छह नोकषायोंके साथ ही पुरुषवेदकी क्षपणा होती है, अतः इनके पुरुषवेदका जघन्य स्थितिसंक्रमअद्धाच्छेद छह नोकषायोंके समान बतलाया है। नारकियोंमें सब प्रकृतियोंका जो जघन्य स्थितिसंक्रमअद्धाच्छेद बतलाया है वह सामान्य देवोंमें तथा भवनवासी और व्यन्तर देवोंमें अविकल घट जाता है, इसलिये इनके कथनको सामान्य नारकियोंके समान बतलाया है। किन्तु भवनवासी और व्यन्तर देवोंमें कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव मर कर नहीं उत्पन्न होते, अतः वहां सम्यक्त्व प्रकृतिका जघन्य स्थितिसंक्रमअद्धाच्छेद पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण बतलाया है। सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिसंक्रमअद्धाच्छेदकी अपेक्षा दूसरी पृथिवी और ज्योतिषियोंकी स्थिति एक सी है, अतः एतद्विषयक ज्योतिषियोंका कथन दूसरी पृथिवीके नारकियोंके समान बतलाया है। यह अवस्था सौधर्म कल्पसे लेकर नौ ग्रैवेयक तक बन जाती है, अतः वहां जघन्य स्थिति-संक्रमका भंग भी इसी प्रकार बतलाया है। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें कृतकृत्य वेदक सम्यग्दृष्टि जीव भी मरकर उत्पन्न होते हैं, अतः यहां सम्यक्त्वका जघन्य स्थितिसंक्रमअद्धाच्छेद ओघके समान बतलाया है। अनुदिशादिकमें अनन्तानुबन्धी और सम्यक्त्वके सिवा शेष सब कर्मोंकी जघन्य स्थिति अन्तःकोडाकोडी सागरप्रमाण पाई जाती है, अतः यहां सम्यक्त्व और अनन्तानुबन्धीके सिवा शेष सब प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिसंक्रमअद्धाच्छेद अन्तःकोड़ाकोड़ी सागर-प्रमाण बतलाया है। तथा यहां कृतकृत्यवेदक सम्यग्दृष्टि जीव भी उत्पन्न होते हैं और अनन्तानु-बन्धीकी विसंयोजना भी पाई जाती है, अतः इनका जघन्य स्थितिसंक्रम ओघके समान बतलाया है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक यथायोग्य सब प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिसंक्रमअद्धाच्छेद घटित कर जान लेना चाहिये।

§ ६२६. सर्वस्थितिसंक्रमअद्धाच्छेद, नोसर्वस्थितिसंक्रमअद्धाच्छेद, उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम अद्धाच्छेद, अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमअद्धाच्छेद, जघन्य स्थितिसंक्रमअद्धाच्छेद और अजघन्य स्थितिसंक्रमअद्धाच्छेद इनका कथन जैसा स्थितिविभक्तिमें किया है वैसा यहां करना चाहिये।

§ ६२७. सादि, अनादि, ध्रुव अध्रुवानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। ओघकी अपेक्षा मिथ्यात्वका उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट और जघन्य स्थितिसंक्रम क्या सादि है, क्या अनादि है; क्या ध्रुव है या क्या अध्रुव है ? सादि और अध्रुव है। अजघन्य स्थितिसंक्रम अनादि, ध्रुव और अध्रुव है। सोलह कषाय और नौ नोकषायोंके उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट और जघन्यका भंग मिथ्यात्वके समान है। अजघन्यके चार भंग हैं। सम्यक्त्व और सम्यग्मि-थ्यात्वका उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट जघन्य और अजघन्य स्थितिसंक्रम सादि और अध्रुव है। तथा आदेशकी अपेक्षा सब पद सभी गति मार्गणाओंमें सादि और अध्रुव हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

❀ सामित्तं ।

§ ६२८. एत्तो सामित्ताणुगमं कस्सामो त्ति पइज्जासुत्तमेदं सुगमं ।

❀ उक्कस्सहिदिसंकामयस्स सामित्तं जहा उक्कस्सियाए ट्ठिदीए उदीरणा तहा णेदव्वं ।

§ ६२९. संपहि एत्थुक्कस्सट्ठिदिसंकमसामित्तं सुत्तसमप्पिदमुच्चारणाबलेण वत्तइस्सामो । तं जहा—सामित्तं दुविहं—जह० उक्क० च । उक्कस्से पयदं । दुविहो णि०—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छत्त-सोलसक० उक्क०ट्ठिदिसं० कस्स ? अण्णदर० मिच्छाइट्ठिस्स उक्कस्सट्ठिदिं बंधिदूणावलियादीदस्स । एवं[1] णवणोकसाय० । णवरि कसायुक्कस्सट्ठिदिं पडिच्छियूणावलियादीदस्स । सम्मत्त०-सम्मामि० उक्क०ट्ठिदिसं० कस्स ?

विशेषार्थ—मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रम कदाचित्क है । तथा जघन्य स्थितिसंक्रम क्षपणाके समय ही होता है, अतः इन प्रकृतियोंके ये तीनों स्थितिसंक्रम सादि और अध्रुव कहे हैं । किन्तु अजघन्य स्थितिसंक्रममें कुछ विशेषता है । बात यह है कि मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रम प्राप्त होनेके पूर्वतक अजघन्य स्थितिसंक्रम रहता है, इसलिये तो वह अनादि है । तथा भव्यकी अपेक्षा अध्रुव और अभव्यकी अपेक्षा ध्रुव है । अब रहे सोलह कषाय और नौ नोकषाय सो इनमें से अनन्तानुबन्धी विसंयोजना प्रकृति होनेके कारण इसके अजघन्य स्थितिसंक्रमके सादि आदि चारों विकल्प बन जाते हैं । इसी प्रकार शेष इक्कीस प्रकृतियोंका उपशमश्रेणिमें संक्रमका अभाव हो कर अजघन्य स्थितिसंक्रम पुनः चालू होता है, अतः इनके अजघन्य स्थितिसंक्रमके भी सादि आदि चारों विकल्प बन जाते हैं । इस प्रकार मिथ्यात्व आदि २६ प्रकृतियोंका विचार हुआ । अब रही सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व ये दो प्रकृतियाँ सो ये प्रकृतियाँ ही जब कि सादि और सान्त हैं तब इनके उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम आदि चारों संक्रम सादि और सान्त हैं ऐसा होनेमें कोई आपत्ति नहीं है । नरक गति आदि चारों गतियाँ प्रत्येक जीवकी अपेक्षा सादि और अध्रुव हैं, इसलिए इनमें सब प्रकृतियोंके सादि और अध्रुव ये दो भंग ही बनते हैं यह स्पष्ट ही है ।

*** अब स्वामित्वका अधिकार है ।**

§ ६२८. इससे आगे स्वामित्वानुगमका विचार करते हैं । इस प्रकार यह प्रतिज्ञा सूत्र है जो सुगम है ।

*** उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका स्वामित्व उत्कृष्ट स्थितिकी उदीरणाके स्वामित्वके समान जानना चाहिए ।**

§ ६२९. अब यहाँ जो सूत्रमें उत्कृष्ट स्थितिके संक्रमके स्वामित्वका संकेत किया है सो उसे उच्चारणाके बलसे बतलाते हैं । यथा—स्वामित्व दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट । उत्कृष्टका प्रकरण है । निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघसे मिथ्यात्व और सोलह कषायोंका उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम किसके होता है ? जिस मिथ्यादृष्टिको उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किए एक आवलि हुआ है उसके होता है । इसी प्रकार नौ नोकषायोंका जानना चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है कि कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका संक्रम किये जिसे एक आवलिकाल हो

---

१. आ० प्रतौ सव्वं इति पाठः ।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

अण्णद० जो पुव्ववेदगो सम्मत्त-सम्मामि०संतकम्मिओ मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदिं बंधियूणंतो-मुहुत्तपडिभग्गो ट्ठिदिघादमकाऊण सम्मत्तं पडिवण्णो तस्स विदियसमयसम्माइट्ठिस्स। एवं चदुसु गदीसु। णवरि पंचिंदियतिरि०अपज्ज०-मणुसअपज्ज०-आणदादि जाव सव्वट्ठे त्ति ट्ठिदिविहत्तिभंगो। एवं जाव०।

❀ जहण्णयमेयजीवेण सामित्तं कायव्वं।

§ ६३०. सुगमं।

❀ मिच्छत्तस्स जहण्णओ ट्ठिदिसंकमो कस्स ?

§ ६३१. सुगमं।

❀ मिच्छत्तं खवेमाणयस्स अपच्छिमट्ठिदिखंडयचरिमसमयसंकामयस्स तस्स जहण्णयं।

§ ६३२. मिच्छत्तं खवेमाणस्से त्ति विसेसणेण तदुवसामणादिवावारंतरेसु पयट्टस्स सामित्ताभावो पदुप्पाइदो। अपच्छिमट्ठिदिखंडयवयणेण तदण्णट्ठिदिखंडयपडिसेहो कओ। चरिमसमयसंकामयविसेसणेण दुचरिमादिसमयसंकामयस्स सामित्तसंबंधो पडिसिद्धो। सेसं सुगमं।

गया है उसके यह नौ नोकषायोंका उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम होता है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम किसके होता है ? जो जीव पूर्वमें वेदक होकर सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका सत्कर्मवाला है और इसके बाद जिसे मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके वहाँसे निवृत्त हुए अन्तर्मुहूर्त काल हो गया है वह जीव स्थितिघात किये बिना यदि सम्यक्त्वको प्राप्त होता है तो उस सम्यग्दृष्टिके दूसरे समयमें यह उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम होता है। इसी प्रकार चारों गतियोंमें जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि पंचेन्द्रिय तिर्यंच अपर्याप्त, मनुष्य अपर्याप्त और आनत कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रमका स्वामित्व स्थिति-विभक्तिके समान है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये।

*** अब एक जीवकी अपेक्षा जघन्य स्वामित्वका कथन करना चाहिये।**

§ ६३०. यह सूत्र सुगम है।

*** मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रम किसके होता है।**

§ ६३१. यह सूत्र सुगम है।

*** जो मिथ्यात्वकी क्षपणा करनेवाला जीव अन्तिम स्थितिकाण्डकके अन्तिम समयमें उसका संक्रम कर रहा है उसके मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रम होता है।**

§ ६३२. जो जीव मिथ्यात्वके उपशामना आदि दूसरे व्यापारोंमें लगा है उसके प्रकृत स्वामित्व नहीं होता है यह बतलानेके लिए सूत्रमें 'मिच्छत्तं खवेमाणस्स' पद दिया है। 'अपच्छिम-ट्ठिदिखंडय' वचन द्वारा इसके सिवा शेष स्थितिकाण्डकोंका प्रतिषेध किया है। तथा 'चरिमसमय-संकामय' इस विशेषण द्वारा जो जीव अन्तिम स्थितिकाण्डकके संक्रमके द्विचरम आदि समयोंमें विद्यमान है उसके स्वामित्वका निषेध किया है। शेष कथन सुगम है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

❀ सम्मत्तस्स जहण्णट्ठिदिसंकमो कस्स ?

§ ६३३. सुगमं।

❀ समयाहियावलियअक्खीणदंसणमोहणीयस्स ।

§ ६३४. समयाहियावलियाए अक्खीणदंसणमोहणीयं जस्स सो समयाहियावलिय-अक्खीणदंसणमोहणीओ। तस्स पयदजहण्णसामित्तं होइ त्ति सुत्तत्थसंबंधो। सेसं सुगमं।

❀ सम्मामिच्छत्तस्स जहण्णट्ठिदिसंकमो कस्स ?

§ ६३५. पुच्छासुत्तमेदं सुगमं।

❀ अपच्छिमट्ठिदिखंडयं चरिमसमयसंछुहमाणयस्स तस्स जहण्णयं।

§ ६३६. एदस्स सुत्तस्स वक्खाणे कीरमाणे जहा मिच्छत्तजहण्णट्ठिदिसं० सामित्तसुत्तस्स वक्खाणं कयं तहा कायव्वं, दंसणमोहक्खवणाचरिमफालीए सामित्त-विहाणं पडि तत्तो एदस्स विसेसाणुवलंभादो।

❀ अणंताणुबंधीणं जहण्णट्ठिदिसंकमो कस्स ?

§ ६३७. सुगमं।

❀ विसंजोएंतस्स तेसिं चेव अपच्छिमट्ठिदिखंडयं चरिमसमय-संकामयस्स।

---

* सम्यक्त्वका जघन्य स्थितिसंक्रम किसके होता है ?

§ ६३३. यह सूत्र सुगम है।

* जिसके दर्शनमोहनीयका क्षय होनेमें एक समय अधिक एक आवलि काल शेष है उसके सम्यक्त्वका जघन्य स्थितिसंक्रम होता है।

§ ६३४. जिसके दर्शनमोहनीयका क्षय होनेमें एक समय अधिक एक आवलि काल शेष है वह समयाधिकआवलिअक्षीणदर्शनमोहनीय है। उसके प्रकृत जघन्य स्वामित्व होता है यह इस सूत्रका तात्पर्य है। शेष कथन सुगम है।

* सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रम किसके होता है ?

§ ६३५. यह पृच्छासूत्र सुगम है।

* जो अन्तिम स्थितिकाण्डकका उसके अन्तिम समयमें संक्रम कर रहा है उसके सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रम होता है।

§ ६३६. इस सूत्रका व्याख्यान करनेपर जिस प्रकार मिथ्यात्वके जघन्य स्थितिसंक्रमके स्वामित्वविषयक सूत्रका व्याख्यान किया है उसी प्रकार करना चाहिये, क्योंकि वहाँ जो दर्शन-मोहनीयकी क्षपणाकी अपेक्षा अन्तिम फालिका पतन होते समय जघन्य स्वामित्वका विधान किया है इसकी अपेक्षा उससे इसमें कोई विशेषता नहीं पाई जाती।

§ * अनन्तानुबन्धियोंका जघन्य स्थितिसंक्रम किसके होता है।

§ ६३७. यह सूत्र सुगम है।

* जो विसंयोजना करनेवाला जीव अनन्तानुबन्धियोंके अन्तिम स्थितिकाण्डकका अन्तिम समयमें संक्रम कर रहा है उसके अनन्तानुबन्धियोंका जघन्य स्थितिसंक्रम होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ६३८. अणंताणुबंधिविसंजोयणाए पयट्टस्स चरिमट्ठिदिखंडयचरिमफालिसंकामयस्स पयदजहण्णसामित्तं होइ त्ति सुत्तत्थो । सेसं सुगमं ।

❀ अट्ठण्हं कसायाणं जहण्णट्ठिदिसंकमो कस्स ?

§ ६३९. सुगमं ।

❀ खवयस्स तेसिं चेव अपच्छिमट्ठिदिखंडयं चरिमसमयसंछुहमाणयस्स जहण्णयं ।

§ ६४०. खवयस्स चेव तेसिं जहण्णसामित्तं होइ त्ति सुत्तत्थसंबंधो । सो च कदमाए अवत्थाए सामिओ होइ त्ति पुच्छिदे तदुद्देसजाणावणट्ठमिदं उत्तं—'तेसिं चेव' इच्चादि । तेसिं चेव अट्ठकसायाणमपच्छिमे चरिमे ट्ठिदिखंडए वट्टमाणो विवक्खियजहण्णट्ठिदिसंकमसामिओ होइ । तत्थ वि चरिमसमयसंछुहमाणओ चेव, हेट्ठा एगेगणिसेगेण सह दुचरिमादिफालीणमुवलंभेण जहण्णभावाणुप्पत्तीदो । तदो अंतोमुहुत्तमेत्ततदुक्कीरणद्धागालणेण सामित्तविहाणं सुसंबद्धमिदि ।

❀ कोहसंजलणस्स जहण्णट्ठिदिसंकमो कस्स ?

§ ६४१. सुगमं ।

❀ खवयस्स कोहसंजलणस्स अपच्छिमट्ठिदिबंधचरिमसमयसंछुहमाणयस्स तस्स जहण्णयं ।

---

§ ६३८. अनन्तानुबन्धियोंकी विसंयोजनामें प्रवृत्त हुआ जो जीव अन्तिम स्थितिकाण्डककी अन्तिम फालिका संक्रम कर रहा है उसके प्रकृत जघन्य स्वामित्व होता है यह इस सूत्रका तात्पर्य है । शेष कथन सुगम है ।

§ * आठ कषायोंका जघन्य स्थितिसंक्रम किसके होता है ?

§ ६३९. यह सूत्र सुगम है ।

* जो क्षपक जीव उन्हींके अन्तिम स्थितिकाण्डकका अन्तिम समयमें संक्रम कर रहा है उसके आठ कषायोंका जघन्य स्थितिसंक्रम होता है ।

§ ६४०. क्षपक जीवके ही उन प्रकृतियोंका जघन्य स्वामित्व होता है यह इस सूत्रका तात्पर्य है । किन्तु वह क्षपक जीव किस अवस्थामें स्वामी होता है ऐसी पृच्छा होने पर स्वामित्वविषयक स्थानका ज्ञान करानेके लिये 'तेसिं चेव' इत्यादि सूत्रवाक्य कहा है । आशय यह है कि जो उन्हीं आठ कषायोंके अन्तिम स्थितिकाण्डकमें विद्यमान है वह विवक्षित जघन्य स्थितिसंक्रमका स्वामी होता है । उसमें भी अन्तिम समयमें संक्रम करनेवाला जीव उसका स्वामी होता है, क्योंकि इससे नीचे एक एक निषेकके साथ द्विचरम आदि फालियोंकी प्राप्ति होनेसे वहाँ जघन्य स्थितिसंक्रमका प्राप्त होना सम्भव नहीं है । इसलिये अन्तर्मुहूर्तप्रमाण उत्कीरण कालको गलानेके बाद स्वामित्वका विधान करना सुसम्बद्ध है ।

* क्रोधसंज्वलनका जघन्य स्थितिसंक्रम किसके होता है ?

§ ६४१. यह सूत्र सुगम है ।

* जो क्षपक जीव क्रोधसंज्वलनके अन्तिम स्थितिबन्धका अन्तिम समयमें संक्रम कर रहा है उसके क्रोधसंज्वलनका जघन्य स्थितिसंक्रम होता है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ६४२. खवयस्से त्ति वयणेणोवसामयादीणं पडिसेहो कओ। तत्थ वि अणियट्टिखवयस्सेव, अण्णत्थ तज्जहण्णभावाणुववत्तीदो। होंतो वि सोदएणेव सेढिमारूढस्स होइ। माणादीणमुदएण चढिदस्स कोहसंजलणचरिमफालीए अंतोमुहुत्तूणवेमाससरूवेणाणुवलंभादो। कुदो एवं ? तत्थ तदो हेट्ठिमसंखेज्जगुणट्ठिदिबंधविसए चेव तण्णिल्लेवणुवलंभादो। सोदएण वि चढिदस्स अपच्छिमट्ठिदिबंधसंकामणदाए चेव सामित्तसंभवो, दुचरिमादिट्ठिदिबंधाणमेत्तो विसेसाहियाणं संकामणावत्थाए जहण्णसामित्तविरोहादो। तत्थ वि चरिमसमयसंछुहमाणयस्सेव पयदजहण्णसामित्तं णेदरत्थ। किं कारणं हेट्ठिमहेट्ठिमफालीणमणंतराणंतरोवरिमफालीहिंतो एगेगणिसेगवुड्ढिदंसणेण तत्थ जहण्णसामित्तविहाणाणुववत्तीदो। कुदो वुण समाणट्ठिदिबंधविसयाणमेदासिं फालीणमेवं विसरिसभावो चे ? ण, दुचरिमादिसमयपबद्धचरिमफालीणं हेट्ठिमहेट्ठिमसमएसु चेव परिच्छिण्णाबाहाणं संबंधेण तहाभावसिद्धीदो। तदो चरिमसमयणवकबंधचरिमफालिविसए चेव जहण्णसामित्तमिदि णिरवज्जं। एवं ताव सोदएणेव चढिदस्स खवयस्स कोधवेदगद्धाचरिमसमयणवकबंधमावलियादीदं संकामेमाणयस्स समयूणा-

§ ६४२. 'खवयस्स' इस वचन द्वारा उपशामक आदिका निषेध किया है। उसमें भी अनिवृत्तिक्षपकके ही यह जघन्य स्वामित्व होता है, क्योंकि अन्यत्र प्रकृत जघन्य स्वामित्व नहीं प्राप्त हो सकता। अनिवृत्तिक्षपकके प्रकृत जघन्य स्वामित्व होता हुआ भी स्वोदयसे जो क्षपकश्रेणि पर चढ़ता है उसीके होता है, क्योंकि मान आदिके उदयसे जो क्षपकश्रेणि पर चढ़ता है उसके क्रोधसंज्वलनकी अन्तिम फालि अन्तर्मुहूर्त कम दो महीनाप्रमाण नहीं पाई जाती है।

शंका—ऐसा क्यों है ?

समाधान—क्योंकि वहां पर उससे नीचे संख्यातगुणे स्थितिबन्धके रहते हुए ही संज्वलन क्रोधका अभाव उपलब्ध होता है।

स्वोदयसे चढ़े हुए जीवके भी अन्तिम स्थितिबन्धका संक्रम होते समय ही प्रकृत स्वामित्व सम्भव है, क्योंकि द्विचरम आदि स्थितिबन्ध इससे विशेष अधिक होते हैं, अतः उनका संक्रम होते समय जघन्य स्वामित्व होनेमें विरोध आता है। उसमें भी जो अन्तिम समयमें संक्रम कर रहा है उसीके प्रकृत जघन्य स्वामित्व होता है अन्यके नहीं, क्योंकि इससे नीचे नीचेकी जितनी भी फालियां हैं उनमें आगे आगेकी फालियोंसे एक एक निषेककी वृद्धि देखी जानेके कारण वहां जघन्य स्वामित्वका विधान नहीं बन सकता है।

शंका—जबकि इन फालियोंका स्थितिबन्ध समान होता है तब इनमें इस प्रकारकी विसदृशता कैसे होती है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि नीचे नीचेके समयोंमें ही जिनकी आबाधा समाप्त होती है ऐसी द्विचरम आदि समयप्रबद्ध सम्बन्धी अन्तिम फालियोंके सम्बन्धसे इस प्रकारकी विसदृशता सिद्ध हो जाती है।

इसलिये अन्तिम समयके नवकबन्धकी अन्तिम फालिके आश्रयसे ही जघन्य स्वामित्व होता है यह युक्तियुक्त है। इस प्रकार जो क्षपक स्वोदय से ही क्षपकश्रेणि पर चढ़कर क्रोधवेदकके कालके अन्तिम समयमें नवकबन्ध करके एक आवलिके बाद उसका संक्रम करने लगा है और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

वलियमेत्तफालीओ गालिय चरमफालिं संकामणे वावदस्स कोहसंजलणस्स जहण्णओ ट्ठिदिसंकमो होइ त्ति। एदं णिद्धारिय संपहि सेसदोसंजलणाणं पुरिसवेदस्स च एसो चेव भंगो त्ति समप्पणं कुणमाणो सुत्तमुत्तरं भणइ—

❀ एवं माण-मायासंजलण-पुरिसवेदाणं।

§ ६४३. एदेसिं च कम्माणमेवं चेव जहण्णसामित्तं दायव्वं, सोदएण चढिदस्स खवयस्स अणियट्टिट्ठाणे सगसगवेदगद्धाचरिमसमयणवकबंधचरिमफालिसंकमावत्थाए जहण्णट्ठिदिसंकमसंभवं पडि विसेसाभावादो। णवरि माणसंजलणस्स अंतोमुहुत्तूण-मासपरिमाणाए णवकबंधचरिमफालीए मायासंजलणस्स वि अंतोमुहुत्तपरिहीणद्धमास-मेत्तीए णवकबंधचरिमफालीए पुरिसवेदस्स य तदूणट्ठवस्समेत्तणवकबंधचरिमफालिविसए जहण्णसामित्तमिदि एसो विसेसलेसो जाणियव्वो।

❀ लोहसंजलणस्स जहण्णट्ठिदिसंकमो कस्स ?

§ ६४४. सुगममेदं पुच्छासुत्तं।

❀ आवलियसमयाहियसकसायस्स खवयस्स।

फिर जो एक समय कम एक आवलिप्रमाण फालियोंको गलाकर अन्तिम फालिका संक्रम कर रहा है उसके क्रोधसंज्वलनका जघन्य स्थितिसंक्रम होता है। इस प्रकार क्रोधसंज्वलनके जघन्यस्थितिसंक्रमका निर्णय करके अब शेष दो संज्वलन और पुरुषवेदका जघन्य स्थितिसंक्रमविषयक स्वामित्व इसी प्रकार होता है इस बातका समर्थन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

*** इसी प्रकार मानसंज्वलन, मायासंज्वलन और पुरुषवेदके जघन्य स्थितिसंक्रमका स्वामित्व जानना चाहिये।**

§ ६४३. इन कर्मोंका भी इसी प्रकार जघन्य स्वामित्व देना चाहिये, क्योंकि स्वोदयसे क्षपकश्रेणिपर चढ़े हुए क्षपक जीवके अनिवृत्तिकरण गुणस्थानमें अपने अपने वेदककालके अन्तिम समयमें प्राप्त हुए नवकबन्धकी अन्तिम फालिकी संक्रमावस्थाके प्राप्त होने पर इन कर्मोंका जघन्य स्थितिसंक्रम होता है, इसलिये संज्वलनक्रोधके जघन्य स्थितिसंक्रमके स्वामित्वके कथनसे इनके स्वामित्वके कथनमें कोई विशेषता नहीं है। किन्तु इतनी विशेषता है कि मानसंज्वलनका अन्तर्मुहूर्त कम एक महीनाप्रमाण नवकबन्धकी अन्तिम फालिके प्राप्त होने पर मायासंज्वलनका भी अन्तर्मुहूर्त कम आधे महीनाप्रमाण नवकबन्धकी अन्तिम फालिके प्राप्त होने पर और पुरुषवेदका अन्तर्मुहूर्त कम आठ वर्षप्रमाण नवकबन्धकी अन्तिम फालिके प्राप्त होने पर जघन्य स्वामित्व प्राप्त होता है ऐसा यहां विशेष अभिप्राय जानना चाहिये।

*** लोभसंज्वलनका जघन्य स्थितिसंक्रम किसके होता है ?**

§ ६४४. यह पृच्छासूत्र सुगम है।

*** जिस क्षपक जीवके सकषायभावमें एक समय अधिक एक आवलि काल शेष है उसके लोभसंज्वलनका जघन्य स्थितिसंक्रम होता है।**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ६४५. आवलिया समयाहिया जस्स सकसायस्स सो आवलियसमयाहियसकसाओ। तस्स पयदजहण्णसामित्तं दट्ठव्वं। सकसायवयणेणेत्थ सुहुमसांपराइओ विवक्खिओ; सेसाणं समयाहियावलियविसेसणाणुववत्तीए। सो चेव खवयत्तेण विसेसिज्जदे, अखवयस्स पयदजहण्णसामित्तविरोहादो।

❀ इत्थिवेदस्स जहण्णट्ठिदिसंकमो कस्स ?

§ ६४६. सुगमं।

❀ इत्थिवेदोदयक्खवयस्स तस्स अपच्छिमट्ठिदिखंडयं संछुहमाणयस्स तस्स जहण्णयं।

§ ६४७. एत्थित्थिवेदोदयक्खवयस्से त्ति वयणं सेसवेदोदयक्खवयपडिसेहफलं। णिरत्थयमिदं विसेसणं, अण्णवेदोदएण वि चढिदस्स खवयस्स जहण्णट्ठिदिसंकमाविरोहादो। ण च सोदय-परोदएहि चढिदाणं खवयाणमित्थिवेदचरिमट्ठिदिखंडयम्मि विसरिसभावो अत्थि, णवुंसयवेदस्सेव तदणुवलंभादो। तम्हा अण्णदरवेदोदइल्लस्स खवयस्से त्ति सामित्तणिद्देसो कायव्वो त्ति। एत्थ परिहारो—सच्चमेदमुदाहरणमेत्तं तु इत्थिवेदोदयक्खवयावलंबणं णेदं तंतमिदि घेत्तव्वं। परोदएणेव सामित्तं कायव्वं, सोदएण पढमट्ठिदीए

---

§ ६४५. जिस सकषाय जीवके एक समय अधिक एक आवलि काल शेष है वह आवलिसमयाधिकसकषाय जीव है। उसके प्रकृत जघन्य स्वामित्व जानना चाहिये। इस सूत्रमें 'सकसाय' इस वचन द्वारा सूक्ष्मसाम्परायिक जीव लिया गया है, क्योंकि शेष जीवोंके 'जिनके एक समय अधिक एक आवलि काल शेष है' यह विशेषण नहीं बन सकता। उसमें भी वह जीव क्षपक ही होता है यह बतलानेके लिये क्षपक यह विशेषण दिया है, क्योंकि अक्षपक जीवके प्रकृत जघन्य स्वामित्वके होनेमें विरोध आता है।

* स्त्रीवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम किसके होता है।

§ ६४६. यह सूत्र सुगम है।

* जो स्त्रीवेदके उदयवाला क्षपक जीव स्त्रीवेदके अन्तिम स्थितिकाण्डकका संक्रम कर रहा है उसके स्त्रीवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम होता है।

§ ६४७. शेष वेदके उदयवाले क्षपक जीवका निषेध करनेके लिये यहां सूत्रमें 'इत्थिवेदोदयखवयस्स' वचन दिया है।

शंका—'इत्थिवेदोदयखवयस्स' विशेषण निरर्थक है, क्योंकि अन्य वेदके उदयसे चढ़े हुए क्षपक जीवके भी जघन्य स्थितिसंक्रमके होनेमें कोई विरोध नहीं आता है। स्वोदय या परोदय किसी भी प्रकारसे चढ़े हुए क्षपक जीवोंके स्त्रीवेदके अन्तिम स्थितिखण्डमें किसी प्रकारकी विसदृशता नहीं होती, क्योंकि जिस प्रकार स्वोदय और परोदयसे चढ़े हुए जीवके नपुंसकवेदके अन्तिम स्थितिकाण्डकमें विसदृशता होती है उस प्रकार यहाँ विसदृशता नहीं पाई जाती, इसलिये प्रकृतमें स्त्रीवेदके उदयवाले क्षपक जीवके ऐसा निर्देश न करके 'किसी भी वेदके उदयवाले क्षपक जीवके' इसप्रकार स्वामित्वका निर्देश करना चाहिये ?

समाधान—यहाँ स्त्रीवेदके उदयवाले क्षपकका अवलम्ब लिया गया है सो यह उदाहरणमात्र है, सिद्धान्त नहीं है यह बात सत्य है ऐसा यहां ग्रहण करना चाहिये।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

ओकड्डणासंकमसंभवादो जहण्णभावाणुववत्तीदो त्ति चे ? ण, संकमपाओग्गपढमट्ठिदिं गालिय आवलियपविट्ठपढमट्ठिदियस्स जहण्णसामित्तविहाणेण तद्दोसपरिहारो। पढमट्ठिदीए संकमाभावे वि जट्ठिदिबहुगो होइ त्ति णासंकणिज्जं, एत्थ जट्ठिदिविवक्खाए अभावादो, णिसेयट्ठिदीए चेव पाहण्णियादो। तम्हा सोदएण वा परोदएण वा पयदसामित्तमविरुद्धं सिद्धं।

❀ णवुंसयवेदस्स जहण्णट्ठिदिसंकमो कस्स ?

§ ६४८. सुगमं।

❀ णवुंसयवेदोदयक्खवयस्स तस्स अपच्छिमट्ठिदिखंडयं संछुहमाणयस्स तस्स जहण्णयं।

§ ६४९. एत्थ णवुंसयवेदोदयखवयस्सेव पयदजहण्णसामित्तं होइ त्ति अण्णजोगववच्छेदेण सेसवेदोदयक्खवयाणं सामित्तसंबंधपडिसेहो कायव्वो। किमट्ठं तप्पडिसेहो कीरदे ? ण, तत्थ णउंसयवेदस्स पुव्वमेव अंतोमुहुत्तमत्थि त्ति खीयमाणस्स चरिमट्ठिदि-

---

शंका—यहाँ परोदयसे ही स्वामित्व प्राप्त करना चाहिये, क्योंकि स्वोदयसे प्रथम स्थितिका अपकर्षणसंक्रम सम्भव होनेसे वहाँ जघन्यपना नहीं बन सकता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि संक्रमके योग्य प्रथम स्थितिको गला कर जिसके प्रथम स्थिति आवलिके भीतर प्रविष्ट हो गई है उसके जघन्य स्वामित्वका विधान करनेसे उक्त दोषका परिहार हो जाता है।

शंका—प्रथम स्थितिके संक्रमका अभाव हो जाने पर भी यत्स्थिति बहुत होती है, इसलिये स्वोदयसे चढ़े हुए जीवके जघन्य स्वामित्व नहीं बन सकता है ?

समाधान—ऐसी आशंका करना ठीक नहीं है, क्योंकि यहाँ पर यत्स्थितिकी विवक्षा नहीं की गई है। किन्तु निषेकस्थितिकी ही प्रधानता है, इसलिये स्वोदय या परोदय किसी प्रकार भी चढ़े हुए जीवके प्रकृत स्वामित्वके प्राप्त होनेमें कोई विरोध नहीं आता है यह बात सिद्ध हुई।

*** नपुंसकवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम किसके होता है।**

§ ६४८ यह सूत्र सुगम है।

*** जो नपुंसकवेदके उदयवाला क्षपक जीव अन्तिम स्थितिकाण्डकका संक्रम कर रहा है उसके नपुंसकवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम होता है ?**

§ ६४९. यहां नपुंसकवेदके उदयवाले क्षपक जीवके ही प्रकृत जघन्य स्वामित्व होता है इस प्रकार अन्ययोगव्यवच्छेदद्वारा शेष वेदोंके उदयवाले क्षपक जीवोंके प्रकृत स्वामित्वका निषेध करना चाहिए।

शंका—किस लिये यहां अन्य वेदके उदयवाले क्षपक जीवोंके प्रकृत जघन्य स्वामित्वका निषेध करते हैं ?

समाधान—नहीं, क्योंकि अन्य वेदके उदयसे क्षपकश्रेणि पर चढ़े हुए जीवके नपुंसकवेद-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

खंडयस्स सोदयक्खवयस्स चरिमट्ठिदिखंडयामादो असंखेज्जगुणत्तदंसणादो । तदो सोदएणेव णवुंसयवेदस्स जहण्णसामित्तमिदि सिद्धं ।

❀ छण्णोकसायाणं जहण्णट्ठिदिसंकमो कस्स ?

§ ६५०. सुगमं ।

❀ खवयस्स तेसिमपच्छिमट्ठिदिखंडयं संछुहमाणयस्स तस्स जहण्णयं।

§ ६५१. एत्थ खवयस्से त्ति वयणमक्खवयवुदासदुवारेणाणियट्टिखवयस्स जहण्णसामित्तपदुप्पायणफलं, अण्णत्थ तज्जहण्णभावाणुवलद्धीदो । तेसिं छण्णोकसायाणमपच्छिमं सव्वपच्छिमं ट्ठिदिखंडयं संछुहमाणयस्स संकामेमाणयस्स पयदजहण्णसामित्तं होइ । एत्थ चरिमफालिविसेसणं ण कयं, चरिमट्ठिदिखंडयचरिमफालीसु चेव सामित्तविहाणे विप्पडिसेहाभावादो ।

§ ६५२. एवमोघेण जहण्णसामित्तं सव्वासिं मोहपयडीणं परूविदं । एत्तो ओघादेसपरूवणट्ठमुच्चारणावलंबणं कस्सामो । तं जहा—जह० पयदं । दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छ० जह० ट्ठिदिसं० कस्स ? अण्णद० दंसणमोहक्खवयस्स चरिमट्ठिदिखंडयचरिमसमयसंकामयस्स । एवं सम्मामि० । सम्म० जह० ट्ठिदिसं०

का अन्तिम स्थितिकाण्डक अन्तर्मुहूर्त पहले ही क्षय हो जाता है, इसलिये वह स्वोदयसे चढ़े हुए क्षपक जीवके अन्तिम स्थितिकाण्डकके आयामसे असंख्यातगुणा देखा जाता है। अतः स्वोदयसे ही नपुंसकवेदका जघन्य स्वामित्व प्राप्त होता है यह बात सिद्ध हुई।

※ छह नोकषायोंका जघन्य स्थितिसंक्रम किसके होता है ?

§ ६५०. यह सूत्र सुगम है।

※ जो क्षपक उनके अन्तिम स्थितिकाण्डकका संक्रम कर रहा है उसके छह नोकषायोंका जघन्य स्थितिसंक्रम होता है।

§ ६५१. यहाँ सूत्रमें 'खवयस्स' वचन अक्षपकके निराकरण द्वारा अनिवृत्तिक्षपकके जघन्य स्वामित्वका कथन करनेके लिये दिया है, क्योंकि अन्यत्र उसका जघन्य स्वामित्व नहीं उपलब्ध होता। इन छह नोकषायोंके अन्तिम स्थितिकाण्डकका 'संछुहमाणयस्स' अर्थात् संक्रम करनेवाले जीवके प्रकृत जघन्य स्वामित्व होता है। यहां सूत्रमें 'चरिमफालि' विशेषण नहीं दिया है तो भी अन्तिम स्थितिकाण्डककी अन्तिम फालियोंके प्राप्त होने पर ही जघन्य स्वामित्वका विधान करनेमें कोई विरोध नहीं है।

§ ६५२. इस प्रकार ओघसे सब मोहप्रकृतियोंके जघन्य स्वामित्वका कथन किया। अब आगे ओघ और आदेशका कथन करनेके लिये उच्चारणाका अवलम्ब लेते हैं। यथा—जघन्यका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। ओघसे मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रम किसके होता है? जो दर्शनमोहका क्षपक जीव अन्तिम स्थितिकाण्डकका अन्तिम समयमें संक्रम कर रहा है उसके होता है। इसी प्रकार सम्यग्मिथ्यात्वके जघन्य स्थितिसंक्रमका स्वामित्व जानना चाहिये। सम्यक्त्वका जघन्य स्थितिसंक्रम किसके होता है? जिसे दर्शनमोहकी क्षपणा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कस्स ? अण्णद० समयाहियावलियअक्खीणदंसणमोहणीयस्स। अणंताणु०४ जह० ट्ठिदिसं० कस्स ? अण्णद० अणंताणु०४ विसंजोएमाणस्स चरिमट्ठिदिखंडए चरिमसमय-संकामेंतस्स। अट्ठक० जह० कस्स ? अण्णद० खवयस्स चरिमे ट्ठिदिखंडए चरिमसमय-संकामेंतस्स। इत्थि०-णवुंस०-छण्णोक० जह० ट्ठिदिसंका० कस्स ? अण्णद० खवयस्स चरिमे ट्ठिदिखंडए वट्टमाणयस्स। णवरि णवुंस० जह० णवुंसयवेदोदयक्खवयस्स। एदेण णव्वदे जहा इत्थिवेदस्स परोदएण वि सामित्तमविरुद्धमिदि। कोध-माण-माया-संजल०-पुरिसवेद० जह० ट्ठिदिसं० कस्स ? अण्णद० खवयस्स चरिमट्ठिदिबंधे चरिम-समयसंकामेंतस्स। णवरि अप्पप्पणो वेद-कसायस्स सेढिमारूढस्स। लोहसंज० जह० ट्ठिदिसं कस्स ? अण्णद० खवयस्स समयाहियावलियचरिमसमयसकसायस्स।

§ ६५३. आदेसेण णेरइय० मिच्छ०-बारसक०-भय-दुगुंछ० जह० ट्ठिदिसं० कस्स? अण्णदरस्स असण्णिपच्छायदस्स हदसमुप्पत्तियदुसमयाहियावलियउववण्णल्लयस्स। सत्तणोक० ट्ठिदिविहत्तिभंगो, पडिवक्खबंधगद्धागालणेण अंतोमुहुत्तूणुववण्णल्लयस्स सामित्तविहाणं पडि भेदाभावादो। णवरि सगबंधपारंभादो आवलियचरिमसमए सामित्त-

---

करनेमें एक समय अधिक एक आवलि काल शेष है ऐसे अन्यतर जीवके होता है। अनन्तानुबन्धी चतुष्कका जघन्य स्थितिसंक्रम किसके होता है ? अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना करनेवाला जो जीव अन्तिम स्थितिकाण्डकके अन्तिम समयमें संक्रम कर रहा है उसके होता है। आठ कषायोंका जघन्य स्थितिसंक्रम किसके होता है ? जो क्षपक जीव उनके अन्तिम स्थितिकाण्डकका अन्तिम समयमें संक्रम कर रहा है उसके होता है। स्त्रीवेद, नपुंसकवेद और छह नोकषायोंका जघन्य स्थितिसंक्रम किसके होता है। जो अन्यतर क्षपक जीव अन्तिम स्थितिकाण्डकमें विद्यमान है उसके होता है। किन्तु इतनी विशेषता है कि नपुंसकवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम नपुंसकवेदके उदयवाले क्षपक जीवके ही होता है। इससे ज्ञात होता है कि स्त्रीवेदका जघन्य स्वामित्व परोदयसे प्राप्त होनेमें भी कोई विरोध नहीं आता है। क्रोधसंज्वलन, मानसंज्वलन, मायासंज्वलन और पुरुष-वेदका जघन्य स्थितिसंक्रम किसके होता है! जो अन्यतर क्षपक जीव अन्तिम स्थितिबन्धका अन्तिम समयमें संक्रम कर रहा है उसके होता है। किन्तु इतनी विशेषता है कि वेद और कषायोंमें से स्वोदयसे श्रेणिपर चढ़े हुए जीवके यह जघन्य स्वामित्व होता है। लोभ संज्वलनका जघन्य स्थितिसंक्रम किसके होता है ? जो अन्यतर क्षपक जीव एक समय अधिक एक आवलि कालरूप अन्तिम समयमें सकषायभावसे स्थित है उसके होता है।

§ ६५३. आदेशसे नारकियोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय, भय और जुगुप्साका जघन्य स्थितिसंक्रम किसके होता है ? हतसमुत्पत्तिक क्रियाको करके जो अन्यतर जीव असंज्ञी पर्यायसे आकर नरकमें उत्पन्न हुआ है उसके दो समय अधिक एक आवलि कालके होने पर उक्त प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिसंक्रम होता है। सात नोकषायोंके जघन्य स्थितिसंक्रमका स्वामित्व स्थितिविभक्तिके समान है, क्योंकि नरकमें उत्पन्न होनेके बाद प्रतिपक्ष प्रकृतियोंके बन्धकालके गलानेमें जो अन्तर्मुहूर्त काल लगता है उतनी स्थिति विवक्षित नोकषायोंकी और कम हो जाती है और तब जाकर उनका जघन्य स्थितिसत्त्व प्राप्त होता है। इनका जघन्य स्थितिसंक्रम भी अन्तर्मुहूर्त बाद ही प्राप्त होता है इस अपेक्षासे इन दोनोंके जघन्य स्वामित्वके कथनमें कोई भेद नहीं है। किन्तु इतनी विशेषता है कि जिस प्रकृतिका जघन्य स्वामित्व प्राप्त करना हो उसका बन्ध प्रारम्भ हो जानेके बाद एक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मेत्थ दट्ठव्वं । समत्त-अणंताणु०४ ओघभंगो । सम्मामि० उव्वेल्लमाणस्स चरिमट्ठिदिखंडए चरिमसमयसंकामे० । एवं पढमाए । विदियादि जाव छट्ठि त्ति मिच्छ०-बारसक०-णवणोक० ट्ठिदिविहत्तिभंगो । सम्मत्त०-सम्मामि०-अणंताणु०४ जह० ट्ठिदिसं० कस्स ? अण्णद० उव्वेल्लमाणस्स विसंजोएंतस्स च चरिमे ट्ठिदिखंडए चरिमसमयसंका० । सत्तमाए मिच्छत्त०-बारसक०-भय-दुगुंछ० जह० ट्ठिदिविहत्तिभंगो । णवरि संतकम्मं वोलेऊणावलियादीदस्स भय-दुगुंछाणं दोआवलियादीदस्स । सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०४ विदियपुढविभंगो । सत्तणोकसायाणं ट्ठिदिविहत्तभंगो, संतसमाणबंधादो अंतोमुहुत्तादीदस्स पडिवक्खबंधगद्धागालणेण सामित्तं पडि तत्तो भेदाभावादो । णवरि सगबंधावलियचरिमसमए सामित्तं गहेयव्वं ।

§ ६५४. तिरिक्खेसु मिच्छ०-बारसक०-भय-दुगुंछ० ठिदिविहत्तिभंगो । णवरि संतकम्मं वोलेऊणावलियादीदस्स भय-दुगुंछाणं दोआवलियादीदस्स । सम्मत्त०-सम्मामि०-अणंताणु०४ णारयभंगो । सत्तणोक० ट्ठिदिविहत्तिभंगो । णवरि सण्णिपंचिंदियतिरिक्ख-

आवलिके अन्तिम समयमें प्रकृत जघन्य स्वामित्व जानना चाहिये । सम्यक्त्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कके जघन्य स्थितिसंक्रमका स्वामी ओघके समान है । जो सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करनेवाला जीव अन्तिम स्थितिकाण्डकके अन्तिम समयमें संक्रम कर रहा है उसके सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रम होता है । इसी प्रकार पहली पृथिवीमें जानना चाहिये । दूसरीसे लेकर छठी पृथिवीतकके नारकियोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंके जघन्य स्थितिसंक्रमका स्वामी स्थितिविभक्तिके समान है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका जघन्य स्थितिसंक्रम किसके होता है ? जो सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करनेवाला और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना करनेवाला जीव अन्तिम स्थितिकाण्डकके अन्तिम समयमें संक्रम कर रहा है उसके होता है । सातवीं पृथिवीमें मिथ्यात्व, बारह कषाय, भय और जुगुप्साके जघन्य स्थितिसंक्रमका स्वामी स्थितिविभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि जिसे सत्कर्मके समान स्थितिबन्ध होनेके बाद एक आवलि काल हुआ है उसके मिथ्यात्व और बारह कषायोंका जघन्य स्थितिसंक्रम होता है तथा भय और जुगुप्साका सत्कर्मके समान स्थितिबन्ध होनेके बाद दो आवलि काल व्यतीत हुआ है उसके भय और जुगुप्साका जघन्य स्थितिसंक्रम होता है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कके जघन्य स्थितिसंक्रमका स्वामी दूसरी पृथिवीके समान है । तथा सात नोकषायोंके जघन्य स्थितिसंक्रमका स्वामी स्थितिविभक्तिके समान है, क्योंकि सत्कर्मके समान बन्धके द्वारा जिसने अन्तर्मुहूर्त काल बिता दिया है उसके प्रतिपक्ष प्रकृतियोंके बन्धक कालको गलानेकी अपेक्षा स्वामित्वके प्रति उससे इसमें कोई भेद नहीं है । किन्तु इतनी विशेषता है कि अपनी बन्धावलिके अन्तिम समयमें यह जघन्य स्वामित्व ग्रहण करना चाहिये ।

§ ६५४. तिर्यञ्चोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय, भय और जुगुप्साके स्थितिसंक्रमका जघन्य स्वामी स्थितिविभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सत्कर्मके समान स्थितिबन्ध होनेके बाद एक आवलि होने पर मिथ्यात्व और बारह कषायोंका तथा सत्कर्मके समान स्थितिबन्ध होनेके बाद दो आवलि काल जाने पर भय और जुगुप्साका प्रकृत जघन्य स्वामित्व कहना चाहिये । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कके जघन्य स्थितिसंक्रमका स्वामी नारकीके समान है । सात नोकषायोंके जघन्य स्थितिसंक्रमका स्वामी स्थितिविभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पजत्तएसुप्पज्जिय सव्वुक्कस्सपडिवक्खबंधगद्धं गालिय सगबंधपारंभादो आवलियचरिम-समए सामित्तं वत्तव्वं ।

§ ६५५. पंचिंदियतिरिक्ख०३ मिच्छ०-बारसक०-भय-दुगुंछ० जह० ट्ठिदिसं० कस्स ? अण्णद० बादरेइंदियपच्छायदस्स हदसमुप्पत्तियआवलियउववण्णल्लयस्स । सम्मत्त०-सम्मामि०-अणंताणु०४ णारयभंगो । सत्तणोक० जह० ट्ठिदिसं० कस्स ? अण्णद० हदसमुप्पत्तियबादरेइंदियपच्छायदस्स अंतोमुहुत्तुववण्णल्लयस्स अप्पप्पणो कसायं बंधियूणावलियादीदस्स । जोणिणीसु सम्म० सम्मामि०भंगो । पंचिं०तिरिक्ख-अपज्जत्त-मणुसअपज्ज० जोणिणीभंगो । णवरि अणंताणु०४ मिच्छ०भंगो ।

§ ६५६. मणुस३ ओघं । णवरि मणुसिणीसु पुरिसवेद० छण्णोकसायभंगो ।

§ ६५७. देवाणं णारयभंगो । एवं भवण०-वाण० । णवरि सम्म० सम्मामि०-भंगो । जोदिसि० विदियपुढविभंगो । सोहम्मादि जाव णवगेवज्जा त्ति ट्ठिदिविहत्तिभंगो । णवरि सम्म०-सम्मामि०-अणंताणु०४ णारयभंगो । अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठा त्ति

है कि संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्तकोंमें उत्पन्न कराके और प्रतिपक्ष प्रकृतियोंके सर्वोत्कृष्ट बन्धकालको गला कर विवक्षित नोकषायके बन्धका प्रारम्भ करावे । फिर जब एक आवलि काल हो जाय तब उसके अन्तिम समयमें प्रकृत स्वामित्व कहना चाहिये ।

§ ६५५. पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें मिथ्यात्व, बारह कषाय, भय और जुगुप्साका जघन्य स्थितिसंक्रम किसके होता है ? जो हतसमुत्पत्तिकक्रियाको करनेके साथ बादर एकेन्द्रिय पर्यायसे आकर यहाँ उत्पन्न हुआ है उसके यहाँ उत्पन्न होने पर एक आवलि कालके अन्तमें उक्त प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिसंक्रम होता है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कके जघन्य स्थितिसंक्रमका स्वामी नारकियोंके समान है । सात नोकषायोंका जघन्य स्थितिसंक्रम किसके होता है ? हतसमुत्पत्तिकक्रियाको करनेके साथ बादर एकेन्द्रिय पर्यायसे आकर यहां उत्पन्न हुए जिस अन्यतर जीवको एक अन्तर्मुहूर्त काल हो गया है उसके तदनन्तर विवक्षित नोकषायका बन्ध होनेके बाद एक आवलि कालके अन्तमें सात नोकषायोंका जघन्य स्थितिसंक्रम होता है । योनिनी तिर्यञ्चोंमें सम्यक्त्वका भंग सम्यग्मिथ्यात्वके समान है । पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिसंक्रमका स्वामी योनिनी तिर्यञ्चोंके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भंग मिथ्यात्वके समान है ।

§ ६५६. मनुष्यत्रिकमें सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिसंक्रमका स्वामी ओघके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्यनियोंमें पुरुषवेदका भंग छह नोकषायोंके समान है ।

§ ६५७. देवोंमें सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिसंक्रमका स्वामी नारकियोंके समान है । इसी प्रकार भवनवासी और व्यन्तर देवोंके जानना चाहिये । किन्तु इतनी विशेषता है कि यहां सम्यक्त्वका भंग सम्यग्मिथ्यात्वके समान है । ज्योतिषियोंमें सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिसंक्रमका स्वामी दूसरी पृथिवीके समान है । सौधर्म कल्पसे लेकर नौ ग्रैवेयक तकके देवोंमें सब प्रकृतियोंका भंग स्थितिविभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भंग नारकियोंके समान है । अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें सब प्रकृतियोंका भंग स्थितिविभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें सम्यक्त्व

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ट्ठिदिविहत्तिभंगो। णवरि सम्म०-अणंताणु०४ णारयभंगो। एवं जाव०।

एवं जहण्णयं सामित्तं समत्तं।

❀ एयजीवेण कालो।

§ ६५८. एत्तो एयजीवविसेसिदो कालो परूवणिज्जो। सो पुण दुविहो—जहण्णओ उक्कस्सओ च। तत्थुक्कस्सओ ताव उक्कस्सट्ठिदिउदीरणाकालादो ण भिज्जदि त्ति तदप्पणाकरणट्ठमुवरिमसुत्तविण्णासो—

❀ जहा उक्कस्सिया ट्ठिदिउदीरणा तहा उक्कस्सओ ट्ठिदिसंकमो।

§ ६५९. सुगममेदमप्पणासुत्तं। संपहि एदिस्से अप्पणाए फुडीकरणट्ठमुच्चारणं वत्तइस्सामो। तं जहा—तत्थ दुविहो णिद्देसो—ओघेणादेसेण य। ओघेण मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक० उक्क० ट्ठिदिसंका० केव० ? जह० एयसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं। चदुणोक० आवलिया। अणुक्क० जह० अंतोमु०, णवणोक० एयसमओ, उक्क० अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं। सम्म०-सम्मामि० उक्क० ट्ठिदिसंका० जहण्णु० एयसमओ। अणु० जह० अंतोमु०, उक्क० वेछावट्ठिसागरो० सादिरेयाणि।

और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भंग नारकियोंके समान है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिये।

इस प्रकार जघन्य स्वामित्व समाप्त हुआ।

※ अब एक जीवकी अपेक्षा कालका अधिकार है।

§ ६५८. अब इससे आगे एक जीवकी अपेक्षा कालका कथन करना चाहिये। वह दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उनमें उत्कृष्ट कालका उत्कृष्ट स्थितिउदीरणाके कालसे कोई भेद नहीं है, इसलिये उसकी प्रमुखतासे कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

※ जिस प्रकार उत्कृष्ट स्थिति उदीरणा होती है उसी प्रकार उत्कृष्ट स्थिति-संक्रम है।

§ ६५९. यह अर्पणासूत्र सुगम है। अब इस अर्पणाका स्पष्टीकरण करनेके लिये उच्चारणाको बतलाते हैं। यथा—निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। ओघसे मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंके उत्कृष्ट स्थितिसंक्रामकका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। किन्तु चार नोकषायोंका उत्कृष्ट काल एक आवलि है। मिथ्यात्व और सोलह कषायोंके अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रामकका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और नौ नोकषायोंका जघन्य काल एक समय है। तथा सभीका उत्कृष्ट काल अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट स्थितिसंक्रामकका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रामकका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल साधिक दो छयासठ सागर है।

विशेषार्थ—मिथ्यात्व और सोलह कषायोंकी बन्धसे और नौ नोकषायोंकी संक्रमसे उत्कृष्ट स्थिति प्राप्त होती है। यतः उत्कृष्ट स्थितिके बन्धका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है अतः इन सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

§ ६६०. आदेसेण णेरइय० सोलसक०-पंचणोक०-चदुणोक० उक्क० ट्ठिदिसं० जह० एयसमओ, उक्क० अंतोमु० आवलिया। अणु० जह० एयस०, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि। सम्म०-सम्मामि० उक्क० ट्ठिदिसंका० जहण्णु० एयसमओ। अणुक्क०

काल अन्तमुहूर्त बतलाया है। किन्तु स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य और रतिका उत्कृष्ट स्थितिके बन्धके समय बन्ध न होकर उत्कृष्ट स्थितिबन्धके रुक जानेके बाद ही इनका बन्ध होता है, इसलिये इनमें एक आवलिप्रमाण उत्कृष्ट स्थितिका ही संक्रम देखा जाता है, अतः इनके उत्कृष्ट स्थितिसंक्रामकका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त न प्राप्त होकर एक आवलिप्रमाण प्राप्त होता है। इसीसे इनकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका उत्कृष्ट काल एक आवलिप्रमाण बतलाया है। मिथ्यात्व और सोलह कषायोंके अनुत्कृष्ट स्थितिबन्धका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है। इसीसे यहाँ इनकी अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त बतलाया है। क्रोधादि कषायोंका एक एक समयके अन्तरसे उत्कृष्ट स्थितिबन्धका होना सम्भव है और जब क्रोधादि कषायोंका इस प्रकारसे बन्ध होता है तब नौ नोकषायोंका अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रम एक समयके लिये बन जाता है। इसीसे इनकी अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य काल एक समय बतलाया है। तथा इन सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जो उत्कृष्ट काल असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण बतलाया है सो वह एकेन्द्रियोंकी अपेक्षासे जान लेना चाहिये, क्योंकि जब कोई जीव इतने काल तक एकेन्द्रिय पर्यायमें रहता है तब उसके इतने काल तक न तो उत्कृष्ट स्थितिबन्ध पाया जाता है और न ही उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम ही सम्भव है। अतः इन सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका उत्कृष्ट काल असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण कहा है। जो जीव मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध करके अन्तर्मुहूर्तमें वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त होता है उसके सम्यक्त्वको ग्रहण करनेके प्रथम समयमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थिति होकर दूसरे समयमें एक समय तक इस उत्कृष्ट स्थितिका संक्रम होता है। इसीसे यहाँ सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय बतलाया है। जो जीव सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्ताको प्राप्त करके अन्तर्मुहूर्तमें उनकी क्षपणा कर देता है उसके इनकी अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त पाया जाता है। तथा जो जीव सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके उद्वेलनाकालके अन्तिम समयमें सम्यक्त्वको प्राप्त होता है और छयासठ सागर काल तक सम्यक्त्वके साथ रह कर पुनः मिथ्यात्वमें जाकर उक्त दोनों प्रकृतियोंकी उद्वेलना करने लगता है। तथा अपनी अपनी उद्वेलनाके अन्तिम समयमें सम्यक्त्वको प्राप्त करके पुनः छयासठ सागर काल तक सम्यक्त्वके साथ रहता है। फिर अन्तमें मिथ्यात्वमें जाकर उक्त दोनों प्रकृतियोंकी उद्वेलना करता है उसके इनकी अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका उत्कृष्ट काल साधिक दो छयासठ सागर पाया जाता है। इसीसे यहाँ इनकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय तथा अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य काल एक अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट काल साधिक दो छयासठ सागर बतलाया है।

§ ६६०. आदेशसे नारकियोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, पाँच नोकषाय और चार नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य काल एक समय तथा चार नोकषायोंके सिवा शेषका उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त और चार नोकषायोंका उत्कृष्ट काल एक आवलि है। तथा इन सबकी अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है, तथा अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। इसी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जह० एयस०, उक्क० तेत्तीसं सागरो०। एवं सव्वणेरइय०-पंचिं०तिरिक्ख३-मणुस०३-देवा जाव सहस्सार त्ति। णवरि सव्वेसिमणुक्क० जह० एयसमओ, उक्क० सगट्ठिदी।

§ ६६१. तिरिक्खेसु मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक० उक्क० ट्ठिदिसंका० जह० एयस०, उक्क० अंतोमु० आवलिया। अणु० जह० एयस०, उक्क० अणंतकालमसंखेज-पोग्गलपरियट्टं। सम्म०-सम्मामि० उक्क० ट्ठिदिसंका० जहण्णु० एयस०। अणुक्क० जह० एयसमओ, उक्क० तिण्णि[1] पलिदो० सादिरेयाणि। पंचिं०तिरि०अपज्ज० मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक० उक्क० ट्ठिदिसं० जहण्णु० एयसमओ। अणु० जह० खुद्दाभव०

प्रकार सब नारकी, पंचेन्द्रिय तिर्यंचत्रिक, मनुष्यत्रिक, सामान्य देव और सहस्रार कल्प तकके देवोंमें जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि इन सभीमें अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है।

विशेषार्थ—यहाँ और सब काल तो जिस प्रकार ओघप्ररूपणामें घटित करके बतला आये हैं उसी प्रकार जान लेना चाहिये। किन्तु सब प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकके उत्कृष्ट कालमें और कुछ प्रकृतियोंके जघन्य कालमें कुछ विशेषता है। बात यह है कि जिस मार्गणाकी जितनी कायस्थिति सम्भव है वहाँ उतने काल तक सभी प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थिति और उसके संक्रमका पाया जाना सम्भव है, अतः सर्वत्र अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण कहा है। जिस मार्गणामें भवस्थिति और कायस्थितिमें अन्तर नहीं है वहाँ भवस्थितिको ही कायस्थिति जानना चाहिये। और जिस मार्गणामें इनमें अन्तर है वहाँ कायस्थिति लेनी चाहिये। अब जघन्य कालका खुलासा करते हैं। बात यह है कि जिस जीवने भवके उपान्त्य समयमें उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम करके अन्तिम समयमें एक समयके लिये मिथ्यात्व और सोलह कषायोंका अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रम किया और दूसरे समयमें मरकर अन्य गतिको प्राप्त हो गया उसके उक्त प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय पाया जाता है। इसी प्रकार जिसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके संक्रममें एक समय शेष रहने पर जो विवक्षित गतिको प्राप्त हुआ है उसके उस गतिमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है। इसीसे इन मार्गणाओंमें उक्त प्रकृतियोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य काल एक समय बतलाया है।

§ ६६१. तिर्यंचोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल चार नोकषायोंके सिवा शेष सबका अन्तर्मुहूर्त है तथा चार नोकषायोंका एक आवलिप्रमाण है। अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है तथा अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक तीन पल्यप्रमाण है। पंचेन्द्रियतिर्यंच अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य

---

१. आ०प्रतौ ट्ठिदिसंका० जहण्णु० एयस० उक्क०, तिण्णि इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समयूणं, उक्क० अंतोमु० । सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० ट्ठिदिसं० जहण्णु० एयसमओ । अणु० जह० एयसमओ, उक्क० अंतोमु० । एवं मणुसअपज्जत्तएसु ।

§ ६६२. आणदादि जाव उवरिमगेवज्जा त्ति मिच्छ०-बारसक०-णवणोक० उक्क० ट्ठिदिसं० जहण्णु० एयसमओ । अणु० जह० जहण्णट्ठिदी समयूणा, उक्क० सगट्ठिदी । सं०-सम्मामि०[1]-अणंताणु०४ उक्क० ट्ठिदिसं० जहण्णुक्क० एयस० । अणुक्क० ज० एयस०, उक्क० सगट्ठिदी । अणुद्दिसादि सव्वट्ठा त्ति एवं चेव । णवरि सम्मामि० मिच्छत्तभंगो । अणंताणु०४ उक्क० ट्ठिदिसं० जहण्णु० एयसमओ । अणुक्क० जह० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी । एवं जाव० ।

एवमुक्कस्सकालाणुगमो समत्तो ।

❀ एत्तो जहण्णट्ठिदिसंकमकालो ।

§ ६६३. एत्तो उक्कस्सट्ठिदिसंकमकालविहासणादो अणतरमवसरपत्तो जहण्णट्ठिदि-संकमकालो विहासियव्वो त्ति पइज्जावयणमेदं ।

काल एक समय कम खुद्दाभवग्रहणप्रमाण है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तकोंमें जानना चाहिये ।

§ ६६२. आनतादिकसे लेकर उपरिम ग्रैवेयक तकके देवोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य काल एक समय कम जघन्य स्थितिप्रमाण है और उत्कृष्ट काल अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें इसी प्रकार है । किन्तु इतनी विशेषता है कि यहाँ सम्यग्मिथ्यात्वका भंग मिथ्यात्वके समान है । अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है । तथा अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये ।

विशेषार्थ—पूर्वमें ओघसे और नरकगतिमें कालका स्पष्टीकरण कर आये हैं । उसे ध्यानमें रखकर और अपने अपने स्वामित्वको जानकर तिर्यञ्चगति आदिमें कालका स्पष्टीकरण कर लेना चाहिए । खास विशेषता न होनेसे यहाँ अलगसे स्पष्टीकरण नहीं किया है ।

इस प्रकार उत्कृष्ट कालानुगम समाप्त हुआ ।

* अब आगे जघन्य स्थितिसंक्रमके कालका अधिकार है ।

§ ६६३. अब इस उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमके कालका व्याख्यान करनेके बाद अवसर प्राप्त जघन्य स्थितिसंक्रमके कालका व्याख्यान करना चाहिये इस प्रकार यह प्रतिज्ञावचन है ।

१. आ०प्रतौ समयूणा, उक्क० ट्ठिदिसंकमो [उक्कस्सट्ठिदी] [सम्मत्त] सम्मामि० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

❀ अट्ठावीसाए पयडीणं जहण्णट्ठिदिसंकमकालो केवचिरं कालादो होदि ? जहण्णुक्कस्सेण एयसमओ।

§ ६६४. अट्ठावीससंखाए परिच्छिण्णाणं मोहपयडीणं जहण्णट्ठिदिसंकमकालो एयजीवविसओ कियचिरं होइ त्ति आसंकिय तण्णिद्देसो कओ—जहण्णु० एयसमओ त्ति। होउ णाम जेसिं कम्माणं जहण्णट्ठिदिसंकमस्स चरिमफालिविसए समयाहियावलियाए च सामित्तं तेसिं जहण्णुक्कस्सेणेयसमयकालणियमो, ण सेसाणमिच्चासंकाए तत्थतणविसेस-संभवपदुप्पायणट्ठमिदमाह—

❀ णवरि इत्थि-णवुंसयवेद-छण्णोकसायाणं जहण्णट्ठिदिसंकमकालो केवचिरं कालादो होदि ? जहण्णुक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।

§ ६६५. एदेसिमट्ठण्हं णोकसायाणं चरिमट्ठिदिखंडए लद्धजहण्णसामित्ताणं जहण्णट्ठिदिसंकमजहण्णुक्कस्सकालो अंतोमुहुत्तपमाणो होइ त्ति सुत्तत्थसंगहो। छण्णोकसायाणं ताव जहण्णुक्कस्सकालो एयवियप्पो[1] चेव, चरिमट्ठिदिखंडयुक्कीरणद्धा-पडिबद्धणिव्वियप्पंतोमुहुत्तपमाणत्तादो। णवुंसयवेदस्स पढमट्ठिदिविवक्खाए आवलियमेत्तो। तदविवक्खाए चरिमट्ठिदिखंडयुक्कीरणद्धामेत्तो जहण्णुक्कस्सकालो[2] होइ।

※ अट्ठाईस प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिसंक्रमका काल कितना है ? जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है।

§ ६६४ यहाँ मोहनीयकी अट्ठाईस प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिसंक्रमका एक जीवकी अपेक्षा कितना काल है ऐसी आशंका करके उसका निर्देश जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है इस रूपसे किया है। जिन कर्मोंके जघन्य स्थितिसंक्रमका स्वामित्व अन्तिम फालिके पतनके समय या एक समय अधिक एक आवलि कालके शेष रहने पर प्राप्त होता है उनके जघन्य और उत्कृष्ट कालका नियम एक समयप्रमाण भले ही रहा आओ किन्तु शेष कर्मोंकी जघन्य स्थितिके संक्रमके कालका यह नियम नहीं प्राप्त होता इस प्रकार इस आशंकाके होने पर यहाँ जो विशेष काल सम्भव है उसका कथन करनेके लिये आगेका सूत्र कहते हैं—

※ किन्तु इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेद, नपुंसकवेद और छह नोकषायोंके जघन्य स्थितिसंक्रमका काल कितना है ? जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।

§ ६६५. अन्तिम स्थितिकाण्डकके समय जघन्य स्वामित्वको प्राप्त होनेवाली इन आठ नोकषायोंके जघन्य स्थितिसंक्रामकका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तमुहूर्तप्रमाण है यह इस सूत्रका तात्पर्य है। उनमेंसे छह नोकषायोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक ही प्रकारका है, क्योंकि इनके अन्तिम स्थितिकाण्डकके उत्कीरणाकालसे सम्बन्ध रखनेवाला अन्तमुहूर्त एक ही प्रकारका है। नपुंसकवेदका जघन्य और उत्कृष्ट काल प्रथम स्थितिकी अपेक्षा एक आवलिप्रमाण है और उसकी विवक्षा नहीं करनेपर अन्तिम स्थितिकाण्डकके उत्कीरणाकालप्रमाण है। स्त्रीवेदका

---

१. अ०प्रतौ एयवियप्पा इति पाठः।

२. आ०प्रतौ –युक्कीरणद्धापडिबद्धणिव्वियप्पंतो जहण्णुक्कस्सकालो इति पाठः।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

इत्थिवेदस्स सोदएण चढिदस्स एसो चेव भंगो। परोदएण वि चढिदस्स छण्णोकसाय-भंगो त्ति। एवमोघेण सव्वकम्माणं जहण्णट्ठिदिसंकमकालो सुत्ताणुसारेण परूविदो। एदेण सूचिदमजहण्णट्ठिदिसंकमकालमणुवण्णइस्सामो—मिच्छ० अज० ट्ठिदिसं० अणादिओ अपज्जवसिदो अणादिओ सपज्जवसिदो वा। सम्म०-सम्मामि० अज० जह० अंतोमु०, उक्क० वेछावट्ठिसागरो० तीहि पलिदो० असंखे०भागेहि सादिरेयाणि। सोलसक०-णवणोक० अज० तिण्णि भंगा। तत्थ जो सो सादिओ सपज्जवसिदो जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं।

एवमोघपरूवणा समत्ता।

स्वोदयसे चढ़े हुए जीवकी अपेक्षा यही भङ्ग है। तथा परोदयसे चढ़े हुए जीवकी अपेक्षा भी छह नोकषायोंके समान भङ्ग है। इस प्रकार ओघसे सब कर्मोंके जघन्य स्थितिसंक्रामकका काल सूत्रके अनुसार कहा। अब इससे सूचित होनेवाले अजघन्य स्थितिसंक्रामकका काल बतलाते हैं—मिथ्यात्वके अजघन्य स्थितिसंक्रामकका काल अनादि-अनन्त या अनादि-सान्त है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके अजघन्य स्थितिसंक्रामकका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल पल्यके तीन असंख्यातवें भागोंसे अधिक दो छयासठ सागरप्रमाण है। सोलह कषाय और नौ नोकषायोंके अजघन्य स्थितिसंक्रमके तीन भङ्ग हैं। उनमेंसे जो सादि-सान्त भङ्ग है उसकी अपेक्षा जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है।

विशेषार्थ—यहाँ मोहनीयकी अट्ठाईस प्रकृतियोंके जघन्य और अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल बतलाया गया है। इन अट्ठाईस प्रकृतियोंमेंसे मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क और मध्यकी आठ कषाय ये चौदह प्रकृतियां ऐसी हैं जिनका जघन्य स्थिति-संक्रम अन्तिम स्थितिकाण्डककी अन्तिम फालिके पतनके समय प्राप्त होता है। क्रोधसंज्वलन, मानसंज्वलन, मायासंज्वलन और पुरुषवेद ये चार प्रकृतियां ऐसी हैं जिनका जघन्य स्थितिसंक्रम अन्तिम स्थितिबन्धके संक्रमके अन्तिम समयमें प्राप्त होता है और सम्यक्त्व तथा संज्वलन लोभ ये दो प्रकृतियां ऐसी हैं जिनका जघन्य स्थितिसंक्रम इनकी क्षपणामें एक समय अधिक एक आवलि काल शेष रहने पर प्राप्त होता है। यह उक्त प्रकारसे विचार करने पर इन प्रकृतियोंके जघन्य स्थिति-संक्रमका केवल एक समय काल प्राप्त होता है, अतः इनके जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय बतलाया है। अब रहीं शेष छह नोकषाय, स्त्रीवेद और नपुंसकवेद ये आठ प्रकृतियाँ सो इनका जघन्य स्थितिसंक्रम अन्तिम स्थितिकाण्डकके पतनके समय प्राप्त होनेसे चूर्णिकारने इनके जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त बतलाया है। यहां इतनी विशेषता है कि छह नोकषायोंकी अपनी क्षपणाके समय प्रथम स्थिति सम्भव न होनेसे इनके जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक प्रकारका ही प्राप्त होता है। किन्तु स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका यह काल दो प्रकारसे प्राप्त किया जा सकता है। प्रथम प्रकारमें प्रथम स्थितिकी प्रधानता है और दूसरे प्रकारमें प्रथम स्थितिकी विवक्षा न रहकर केवल अन्तिम स्थिति-काण्डकके उत्कीरणकालकी विवक्षा रहती है। जिसका निर्देश स्वयं टीकाकारने किया ही है। इस प्रकार ओघसे जघन्य स्थितिसंक्रमके कालका विचार करके अब अजघन्य स्थितिसंक्रमके जघन्य और उत्कृष्ट कालका विचार करते हैं—मिथ्यात्वकी अजघन्य स्थितिके दो प्रकार ही सम्भव हैं—अनादि-अनन्त और अनादि-सान्त। अभव्य जीवोंके और अभव्योंके समान भव्य जीवोंके अनादि-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ६६६. संपहि आदेसपरूवणट्ठमुच्चारणं वत्तइस्सामो। तं जहा—आदेसेण णेरइय० मिच्छ०-बारसक०-भय-दुगुंछ० जह० ट्ठिदिसं० जहण्णु० एयसमओ। अज० जह० समयाहियावलिया, उक्क० तेत्तीसं सागरो०। एवं सत्तणोक०। णवरि अज० जह० अंतोमु०। सम्म०-सम्मामि०-अणंताणु०४ जह० जहण्णु० एयस०। अज० जह० एयसमओ, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि। एवं पढमाए। णवरि सगट्ठिदी। विदियादि जाव सत्तमा त्ति ट्ठिदिविहत्तिभंगो।

अनन्त विकल्प होता है और शेष सभी भव्योंके अनादि-सान्त विकल्प होता है। यतः स्थितिके ये दो विकल्प प्राप्त होते हैं अतः इनका संक्रमकाल भी दो ही प्रकारका जानना चाहिये। इसीसे यहाँ मिथ्यात्वके अजघन्य स्थितिसंक्रमका काल पूर्वोक्त विधिसे दो प्रकारका बतलाया है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्ता प्राप्त होनेके बाद उनकी क्षपणा द्वारा कमसे कम अन्तर्मुहूर्तकालके भीतर जघन्य स्थिति प्राप्त हो जाती है, अतः इन दो प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त बतलाया है। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट सत्त्रकाल पल्यके तीन असंख्यातवें भाग अधिक दो छयासठ सागर होता है। इसीसे यहाँ इन दो प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट काल उक्तप्रमाण बतलाया है। अब रहीं सोलह कषाय और नौ नोकषाय ये पच्चीस प्रकृतियाँ सो इनके अजघन्य स्थितिसंक्रमके तीन भङ्ग प्राप्त होते हैं—अनादि-अनन्त, अनादि-सान्त और सादि-सान्त। अनादि-अनन्त विकल्प अभव्योंके या अभव्योंके समान भव्योंके होता है। अनादि-सान्त विकल्प उन भव्योंके होता है जिन्होंने अभीतक उपशमश्रेणिको नहीं प्राप्त किया है और सादि-सान्त विकल्प उन भव्योंके होता है जो उपशमश्रेणिपर चढ़कर पुनः उससे च्युत हुए हैं। प्रकृतमें इसी तीसरे विकल्पकी अपेक्षा जघन्य और उत्कृष्ट काल बतलाया है। जो जीव अन्तर्मुहूर्तके भीतर दो बार उपशमश्रेणिपर चढ़ता है उसके अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है। तथा जो जीव अर्धपुद्गलपरिवर्तन कालके आदि और अन्तमें श्रेणीपर चढ़ता है उसके अजघन्य स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट काल कुछकम अर्धपुद्गलपरिवर्तन-प्रमाण प्राप्त होता है।

इस प्रकार ओघप्ररूपणा समाप्त हुई।

§ ६६६. अब आदेशका कथन करनेके लिए उच्चारणाको बतलाते हैं। यथा—आदेशकी अपेक्षा नारकियोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय, भय और जुगुप्साके जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय अधिक एक आवलि है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। इसी प्रकार सात नोकषायोंके विषयमें जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है। सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कके जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। इसी प्रकार पहली पृथिवीमें जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि यहाँ अजघन्य स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण कहना चाहिये। दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें स्थितिविभक्तिके समान भङ्ग है।

विशेषार्थ—नरकमें मिथ्यात्व, बारह कषाय, भय और जुगुप्साका जघन्य स्थितिसंक्रम एक समय अधिक एक आवलिके बाद एक समयके लिए प्राप्त होता है, अतः इनके जघन्य स्थिति-संक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा इस जघन्य स्थितिसंक्रमके पूर्व एक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ६६७. तिरिक्खेसु ट्ठिदिवि०भंगो । पंचिं०तिरिक्ख३ मिच्छ०-बारसक०-भय-दुगुंछ० जह० ट्ठिदिसंका० जहण्णु० एयस० । अज० जह० आवलिया समयूणा, उक्क० सगट्ठिदी[1] । सम्म०-सम्मामि०-अणंताणु०-सत्तणोक० ट्ठिदिविहत्तिभंगो । पंचिं०-तिरि०अपज्ज०-मणुसअपज्ज० मिच्छ०-सोलसक०-भय-दुगुंछ० जह० जहण्णुक्क० एग-

समय अधिक एक आवलि कालतक उक्त प्रकृतियोंका अजघन्य स्थितिसंक्रम होता है, अतः यहाँ उनके अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय अधिक एक आवलिप्रमाण कहा है। उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है यह स्पष्ट ही है। यद्यपि सात नोकषायोंकी अपेक्षा यह काल इसी प्रकार बन जाता है। पर इनके अजघन्य स्थितिसंक्रमके जघन्य कालमें कुछ विशेषता है। बात यह है कि यहाँ सात नोकषायोंके जघन्य स्थितिसंक्रमका काल नरकमें उत्पन्न होनेके अन्तर्मुहूर्त बाद प्राप्त होता है अतः इनके अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण कहा है। नरकमें सम्यक्त्वका जघन्य स्थितिसंक्रम उसकी क्षपणामें एक समय अधिक एक आवलि कालके शेष रहनेपर एक समयके लिए प्राप्त होता है। सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रम उद्वेलनाके समय अन्तिम स्थितिकाण्डककी अन्तिम फालिके पतनके समय प्राप्त होता है। तथा अनन्तानुबन्धी-चतुष्कका जघन्य स्थितिसंक्रम विसंयोजनाके समय अन्तिम स्थितिकाण्डककी अन्तिम फालिके पतनके समय प्राप्त होता है। अतः यहाँ इनके जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय बतलाया है। जो सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करनेवाला अन्य गतिका जीव इनके अजघन्य स्थितिसंक्रममें एक समय शेष रहनेपर नरकमें उत्पन्न होता है उसके इनका एक समयके लिए अजघन्य स्थितिसंक्रम होता है। तथा जिस नारकीने अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी विसंयोजना की है वह यदि सासादनमें जाकर और एक आवलि कालके बाद एक समयके लिये इसकी अजघन्य स्थितिका संक्रामक होकर मर जाता है तो उसके अनन्तानुबन्धीचतुष्कके अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय देखा जाता है। इसीसे यहाँ इन सम्यक्त्व आदि छह प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय बतलाया है। तथा इनके अजघन्य स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट काल तेतीस सागर स्पष्ट ही है। यह सब काल प्रथम पृथिवीमें भी बन जाता है अतः प्रथम पृथिवीके कथनको सामान्य नारकियोंके समान बतलाया है। किन्तु यहाँ उत्कृष्ट आयु एक सागर ही पाई जाती है, अतः यहाँ सब प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट काल अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण बतलाया है। स्थितिविभक्तिमें सब प्रकृतियोंकी जघन्य और अजघन्य स्थितिका द्वितीयादि नरकोंमें जो काल बतलाया है वह यहाँ स्थितिसंक्रमकी अपेक्षासे अविकल घटित हो जाता है अतः दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें सब भङ्ग स्थिति-विभक्तिके समान कहा है।

§ ६६७. तिर्यंचोंमें स्थितिविभक्तिके समान भङ्ग है। पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्चत्रिकमें मिथ्यात्व, बारह कषाय, भय और जुगुप्साके जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय कम एक आवलिप्रमाण है और उत्कृष्ट काल उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, अनन्तानुबन्धीचतुष्क और सात नोकषायों-का भङ्ग स्थितिविभक्तिके समान है। पञ्चेन्द्रियतिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्साके जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट

१. ता० -आ०प्रत्योः सगट्ठिदी समयूणा इति पाठः।

समओ। अज० जह० आवलि० समयूणा, उक्क० अंतोमु०। सम्म०-सम्मामि०-सत्तणोक० ट्ठिदिविहत्तिभंगो।

§ ६६८. मणु०३ मिच्छ० जह० ट्ठिदिसं० जहण्णु० एयस०। अज० जह० खुद्दाभव० अंतोमु०, उक्क० सगट्ठिदी। सम्म०-सम्मामि०-सोलसक०-पुरिसवेद० जह० ट्ठिदिसं० जहण्णु० एयस०। अज० जह०[1] एयस०, उक्क० सगट्ठिदी। एवमट्ठणोक०। णवरि जह० जहण्णु० अंतोमु०। मणुसिणीसु पुरिसवेद० छण्णोक०भंगो। देवाणं णारयभंगो। एवं भवण०-वाणवेंत०। णवरि सगट्ठिदी। जोदिसियादि० सव्वट्ठा त्ति ट्ठिदिविहत्तिभंगो। एवं जाव०।

काल एक समय है। अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समयकम एक आवलिप्रमाण है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—जो बादर एकेन्द्रिय जीव मरकर पंचेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें उत्पन्न होते हैं उनके वहाँ उत्पन्न होनेके एक आवलि कालके अन्तिम समयमें मिथ्यात्व आदि पन्द्रह प्रकृतियोंका जघन्य स्थिति-संक्रम होता है, इसलिए इन तीन प्रकारके तिर्यञ्चोंमें उक्त प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय कहा है। तथा इस एक समय कालको एक आवलिमेंसे कम करने पर इनमें इन्हीं प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय कम एक आवलिप्रमाण होनेसे यह तत्प्रमाण कहा है। इनमें उक्त प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है। शेष कथन सुगम है। तात्पर्य यह है कि यहाँ जो भी काल कहा है उसे स्वामित्वको देखकर घटित कर लेना चाहिए।

§ ६६८. मनुष्यत्रिकमें मिथ्यात्वके जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल खुद्दाभवग्रहणप्रमाण और अन्तर्मुहूर्त-प्रमाण है तथा उत्कृष्ट काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है। सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सोलह कषाय और पुरुषवेदके जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अपनी स्थितिप्रमाण है। इसी प्रकार आठ नोकषायोंके विषयमें जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। मनुष्यनियोंमें पुरुषवेदका भंग छह नोकषायोंके समान है। देवोंमें नारकियोंके समान भंग है। इसी प्रकार भवनवासी और व्यन्तर देवोंमें जानना चाहिये। किन्तु इतनी विशेषता है कि यहां अजघन्य स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण कहना चाहिये। ज्योतिषियोंसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये।

विशेषार्थ—ओघसे जो प्रत्येक प्रकृतिके स्थितिसंक्रमका स्वामित्व बतलाया है उसी प्रकार मनुष्यत्रिकमें सम्भव होनेसे यहाँ कालका विचार उसीके अनुसार कर लेना चाहिए। मात्र सब प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिसंक्रमका काल अपनी अपनी उत्कृष्ट स्थितिप्रमाण है यह स्पष्ट ही है। तथा मनुष्यिनियोंमें पुरुषवेदका भंग छह नोकषायोंके समान है इतनी विशेषता यहां अलगसे जान लेनी चाहिए। इसका कारण यह है कि इनमें छह नोकषायोंके स्थितिसंक्रमके स्वामित्वसे पुरुषवेदके स्थितिसंक्रमके स्वामित्वमें कोई भेद नहीं है। शेष कथन सुगम है।

---

१. आ०प्रतौ अज० जहण्णु० इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

❀ एत्तो अंतरं।

§ ६६९. एत्तो उवरि अंतरं वत्तइस्सामो त्ति पइज्जासुत्तमेदं। तं पुण दुविहं जहण्णुक्कस्सट्ठिदिसंकमविसयभेदेण। तत्थुक्कस्सट्ठिदिसंकामयंतरं उक्कस्सट्ठिदिउदीरणंतरेण समाणपरूवणमिदि तेण तप्पहाणं कुणमाणो सुत्तमुत्तरं भण्णइ—

❀ **उक्कस्सयट्ठिदिसंकामयंतरं जहा उक्कस्सट्ठिदिउदीरणाए अंतरं तहा कायव्वं।**

§ ६७०. सुगममेदमप्पणासुत्तं। संपहि एदेण समप्पिदत्थविवरणमुच्चारणाणुसारेण वत्तइस्सामो। तं जहा—उक्क० पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मिच्छ०-बारसक० उक्क० ट्ठिदिसंका० अंतरं के० ? जह० अंतोमु०, णवणोक० एयस०, उक्क० सव्वेसिमणंतकालमसंखेज्जा पोग्गलपरियट्टा। अणु० जह० एयस०, उक्क० अंतोमु०। सम्म०-सम्मामि० उक्क० अणुक्क० ट्ठिदिसंका० जह० अंतोमु० एयस०, उक्क० उवड्ढपोग्गलपरियट्टा। अणंताणु०४ उक्क० ट्ठिदिसं० जह० अंतोमु०, उक्क० अणंतकालमसंखेज्जपोग्गलपरियट्टं। अणु० जह० एयसमओ, उक्क० वेछावट्ठिसागरो० देसूणाणि। आदेसेण सव्वासु गदीसु ट्ठिदिविहत्तिभंगो। णवरि मणुसतिए चदुणोकसायाणमणुक्कस्सु-

* अब इससे आगे अन्तरका अधिकार है।

§ ६६९. अब इस कालप्ररूपणाके बाद अन्तर प्ररूपणाको बतलाते हैं। इस प्रकार यह प्रतिज्ञासूत्र है। वह दो प्रकारका है—जघन्य स्थितिसंक्रमको विषय करनेवाला और उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमको विषय करनेवाला। उनमेंसे उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकके अन्तरका कथन उत्कृष्ट स्थितिकी उदीरणाके अन्तरके समान है, इसलिये उसकी प्रधानतासे आगेका सूत्र कहते हैं—

* **जिस प्रकार उत्कृष्ट स्थितिकी उदीरणाका अन्तर है उसी प्रकार उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका अन्तर प्राप्त करना चाहिये।**

§ ६७०. यह अर्पणासूत्र सुगम है। अब इसके द्वारा जो अर्थका विवरण प्राप्त होता है उसे उच्चारणाके अनुसार बतलाते हैं। यथा—उत्कृष्टका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। ओघकी अपेक्षा मिथ्यात्व और बारह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका अन्तर कितना है ? जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है, नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य अन्तर एक समय है तथा इन सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है। अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य अन्तर क्रमसे अन्तर्मुहूर्त और एक समय है। तथा उत्कृष्ट अन्तर उपार्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है। अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अनन्त काल है जो असंख्यात पुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है। अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छ्यासठ सागर है। आदेशकी अपेक्षा सब गतियोंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्यत्रिकमें चार नोकषायोंकी अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकका उत्कृष्ट

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

क्कस्संतरमंतोमुहुत्तं । एवं जाव० ।

❀ एत्तो जहण्णयमंतरं ।

§ ६७१. एत्तो उक्कस्सट्ठिदिसंकामयंतरविहासणादो उवरि जहण्णट्ठिदिसंकामयंतरं कस्सामो त्ति पइज्जासुत्तमेदं ।

अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिये।

विशेषार्थ—ओघसे मिथ्यात्व और बारह कषायोंका उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम होनेके बाद पुनः वह अन्तर्मुहूर्तके अन्तरसे ही प्राप्त हो सकता है, क्योंकि एक बार इनका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होकर पुनः यह अन्तर्मुहूर्तके बाद ही होता है और संक्रम बन्धके अनुसार होता है, अतः यहाँ उक्त प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त कहा है। मात्र नौ नोकषायोंके उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर एक समय बन जाता है। कारण कि क्रोधादि कषायोंमेंसे एकके बाद दूसरेका एक एक समयके अन्तरसे उत्कृष्ट स्थितिबन्ध होकर तथा एक एक समयके अन्तरसे उनका नौ नोकषायोंमें संक्रम होकर नौ नोकषायोंका भी एक एक समयके अन्तरसे उत्कृष्ट स्थिति-संक्रम सम्भव है। इन सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट अन्तर अनन्तकाल है यह स्पष्ट ही है। इन सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त होनेसे इनके अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है। जो जीव अन्तर्मुहूर्तके अन्तरसे दो बार वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त होता है और मिथ्यात्वमें दोनों बार वेदकसम्यक्त्व होनेके पूर्व मिथ्यात्व प्रकृतिका उत्कृष्ट स्थितिबन्ध करके उसका काण्डकघात नहीं करता उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त देखा जाता है तथा जो उपशमसम्यग्दृष्टि जीव एक समयके लिए सासादन सम्यग्दृष्टि होकर दूसरे समयमें मिथ्यादृष्टि हो जाता है उसके उक्त दोनों प्रकृतियोंके अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर एक समय देखा जाता है, इसलिए तो इन दोनों प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर एक समय कहा है। तथा इन दोनों प्रकृतियोंकी उपार्धपुद्गलपरिवर्तनकाल तक सत्ता न हो कर उसके प्रारम्भमें और अन्तमें इनका उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रम हो यह सम्भव है, इसलिए इनके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट अन्तर उपार्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण कहा है। अनन्तानु-बन्धीचतुष्कका शेष सब अन्तर कथन तो बारह कषायोंके समान होनेसे उसी प्रकार घटित कर लेना चाहिए। मात्र इनके अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमके उत्कृष्ट अन्तरमें कुछ फरक है। बात यह है कि जो वेदकसम्यग्दृष्टि जीव अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना कर देता है उसके कुछ कम दो छयासठ सागर काल तक इनकी सत्ता नहीं पाई जाती, इसलिए इनके अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट अन्तर उक्त कालप्रमाण कहा है। यहाँ चारों गतियोंमें सब प्रकृतियोंके स्थितिसंक्रमका अन्तरकाल स्थितिविभक्तिके समान बतलाकर मनुष्यत्रिकमें चार नोकषायोंके अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट अन्तरकाल एक आवलि या एक आवलिका असंख्यातवाँ भाग न कह कर जो अन्तर्मुहूर्त कहा है सो उसका कारण यह है कि उपशमश्रेणिमें हास्य, रति, स्त्रीवेद और पुरुषवेदका अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रम अन्तर्मुहूर्त काल तक नहीं होता।

❀ इससे आगे जघन्य अन्तरकालका अधिकार है।

§ ६७१. इससे अर्थात् उत्कृष्ट स्थितिसंक्रामकके अन्तरका कथन करनेके बाद जघन्य स्थिति-संक्रामकका अन्तर कहेंगे इस प्रकार यह प्रतिज्ञासूत्र है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

❀ सव्वासिं पयडीणं णत्थि अंतरं।

§ ६७२. सव्वासिं मोहपयडीणं जहण्णट्ठिदिसंकामयस्स णत्थि अंतरं, खवयचरिमफालीए चरिमट्ठिदिखंडए समयाहियावलियाए च लद्धजहण्णसामित्ताणमंतरसंबंधस्स अच्चंताभावेण णिसिद्धत्तादो। एदेण सामण्णवयणेणाणंताणुबंधीणं पि अंतराभावे पसत्ते तण्णिवारणमुहेणंतरसंभवपदुप्पायणट्ठमुत्तरसुत्तं—

❀ णवरि अणंताणुबंधीणं जहण्णट्ठिदिसंकामयंतरं जहण्णेण अंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण उवड्ढपोग्गलपरियट्टं।

§ ६७३. विसंजोयणाचरिमफालीए लद्धजहण्णभावस्साणंताणु०चउक्कस्स ट्ठिदिसंकमस्स सव्वजहण्णविसंजुत्त-संजुत्तकालेहि अंतरिय पुणो वि विसंजोयणाए कादुमाढत्ताए चरिमफालिविसए लद्धमंतोमुहुत्तं होइ। उक्कस्सेण उवड्ढपोग्गलपरियट्टपरूवणा सुगमा।

एवमोघेण जहण्णंतरं गयं।

❀ सब प्रकृतियोंका अन्तरकाल नहीं है।

§ ६७२. सब मोहप्रकृतियोंके जघन्य स्थितिसंक्रामकका अन्तरकाल नहीं है, क्योंकि इनका अपने व्ययके अन्तिम स्थितिकाण्डकके अन्तिम फालिके पतन होते समय और एक समय अधिक एक आवलि काल रहनेपर जघन्य स्वामित्व प्राप्त होता है, इसलिए उनके अन्तरकालका अत्यन्त अभाव होनेसे उसका निषेध किया है। इस सामान्य वचनसे अनन्तानुबन्धियोंका भी अन्तराभाव प्राप्त हुआ, इसलिए उसके निषेध द्वारा उनका अन्तरकाल सम्भव है इसका कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

❀ किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धियोंके जघन्य स्थितिके संक्रामकका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर उपार्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है।

§ ६७३. क्योंकि विसंयोजनाकी अन्तिम फालिके पतनके समय जिसने अपने स्थितिसंक्रामकका जघन्यपना प्राप्त किया है ऐसे अनन्तानुबन्धीचतुष्कका सबसे जघन्य विसंयोजना और संयोजनाके काल द्वारा अन्तर करके पुनः उसे विसंयोजना करनेके लिए ग्रहण करनेपर चरम फालिके पतनके समय तक अन्तर्मुहूर्त काल होता है। इसके उपार्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण उत्कृष्ट अन्तरकालकी प्ररूपणा सुगम है।

विशेषार्थ—सम्यक्त्वप्रकृति और संज्वलन लोभका जघन्य स्थितिसंक्रम अपनी अपनी क्षपणामें एक समय अधिक एक आवलि काल शेष रहने पर होता है और शेष प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिसंक्रम अपनी अपनी क्षपणाके समय अन्तिम स्थितिकाण्डककी अन्तिम फालिके पतनके समय होता है, इसलिए ओघसे इनके जघन्य स्थितिसंक्रामकके अन्तरकालका निषेध किया है। किन्तु अनन्तानुबन्धीचतुष्क इस विधिका अपवाद है। कारण कि उसकी विसंयोजना होनेके बाद अन्तर्मुहूर्त कालके भीतर ही पुनः संयोजनापूर्वक विसंयोजना हो सकती है। तथा दो बार विसंयोजनारूप क्रिया होनेमें उपार्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण कालका व्यवधान भी हो सकता है, इसलिए इनकी जघन्य स्थितिके संक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल उक्तप्रमाण बन जानेसे वह उक्त कालप्रमाण कहा है।

इस प्रकार ओघसे जघन्य अन्तरकाल समाप्त हुआ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ६७४. एत्तो अजहण्णट्ठिदिसंकमंतरं देसामासयसुत्तेणेदेणेव सूचिदमिदाणिमणुमग्गइस्सामो—मिच्छ० अज० णत्थि अंतरं। सम्म०-सम्मामि० अज० जह० एगसमओ, उक्क० उवड्ढपोग्गलपरियट्टं। अणंताणु०४ अज० जह० अंतोमु०, उक्क० वेछावट्ठिसागरो० देसूणाणि। बारसक०-णवणोक० अज० जह० एयस०, उक्क० अंतोमु०।

एवमोघो समत्तो।

§ ६७५. आदेसेण सव्वणेरइय०-सव्वतिरिक्ख-मणुसअपज०-सव्वदेवा त्ति ट्ठिदिविहत्तिभंगो। मणुस३ मिच्छ० जह० अज० णत्थि अंतरं। सम्मा०-सम्मामि० जह० णत्थि अंतरं। अजह० ज० एगस०, उक्क० तिण्णि पलिदो० पुव्वकोडिपुधत्तेण-

---

§ ६७४. अब इसी देशामर्षक सूत्रसे सूचित होनेवाले अजघन्य स्थितिसंक्रमके अन्तरकालका इस समय विचार करते हैं—मिथ्यात्वके अजघन्य स्थितिसंक्रामकका अन्तरकाल नहीं है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके अजघन्य स्थितिसंक्रामकका जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल उपार्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है। अनन्तानुबन्धीचतुष्कके अजघन्य स्थितिसंक्रामकका जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तरकाल उपार्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है। बारह कषाय और नोकषायोंके अजघन्य स्थितिसंक्रामकका जघन्य अन्तरकाल एक समय है और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है।

विशेषार्थ—मिथ्यात्वकी क्षपणा होनेके पूर्व तक उसका सर्वदा अजघन्य स्थितिसंक्रम होता रहता है, इसलिए उसका निषेध किया है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका यथाविधि कमसे कम एक समयके लिए और अधिकसे अधिक उपार्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण कालके लिए अन्तर होकर अजघन्य स्थितिसंक्रम सम्भव है, इसलिए इनके अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर उपार्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण कहा है। अनन्तानुबन्धीचतुष्कका कमसे कम अन्तर्मुहूर्त काल तक और अधिकसे अधिक कुछ कम दो छयासठ सागर कालतक विसंयोजना होकर अभाव रहता है। तथा विसंयोजनाके पूर्वमें तथा संयोजना होनेके बादमें इनका अजघन्य स्थितिसंक्रम होता रहता है, इसलिए इनके अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम दो छयासठ सागर कहा है। बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी उपशमना होनेके बाद जो एक समय वहीं रुककर दूसरे समयमें मरकर देव हो जाते हैं उनके इन प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर एक समय प्राप्त होता है और जो इनकी उपशमना करके तथा उपशमश्रेणिसे उतरते समय यथास्थान पुनः इनका अजघन्य स्थितिसंक्रम करने लगते हैं उनके इनके अजघन्य स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त प्राप्त होता है, इसलिए इनके अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त कहा है।

इस प्रकार ओघप्ररूपणा समाप्त हुई।

§ ६७५. आदेशसे सब नारकी, सब तिर्यञ्च, मनुष्य अपर्याप्त और सब देवोंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है। मनुष्यत्रिकमें मिथ्यात्वके जघन्य और अजघन्य स्थितिसंक्रामकका अन्तरकाल नहीं है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके जघन्य स्थितिसंक्रामकका अन्तरकाल नहीं है। अजघन्य स्थितिसंक्रामकका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्यप्रमाण है। अनन्तानुबन्धीचतुष्कके जघन्य स्थितिसंक्रामकका जघन्य अन्तर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ब्भहियाणि । अणंताणु०४ ज० जह० अंतोमु०[1], उक्क० सगट्ठिदी । अज० ज० अंतोमु०, उक्क० तिण्णि पलिदो० देसूणाणि । बारसक०-णवणोक० जह० णत्थि अंतरं । अज० जहण्णु० अंतोमु० । एवं जाव० ।

❀ णाणाजीवेहि भंगविचओ दुविहो उक्कस्सपदभंगविचओ च जहण्णपदभंगविचओ च ।

§ ६७६. तत्थुक्कस्सपदभंगविचओ णाम उक्कस्सट्ठिदिसंकामयाणं पवाहवोच्छेदसंभवासंभवपरिक्खा । तहा जहण्णो वि वत्तव्वो । एदेसिं च दोण्णमट्ठपदं—जे उक्कस्सट्ठिदीए संकामया ते अणुक्कस्सट्ठिदीए असंकामया । जे अणुक्कस्सट्ठिदीए संकामया ते उक्कस्सियाए ट्ठिदीए असंकामया । एवं जहण्णयं पि वत्तव्वं । एदमट्ठपदं काऊण सेसपरूवणा कायव्वा त्ति जाणावणट्ठमुत्तरसुत्तमाह—

❀ तेसिमट्ठपदं काऊण उक्कस्सओ जहा उक्कस्सट्ठिदिउदीरणा तहा कायव्वा ।

अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है । अजघन्य स्थितिसंक्रामकका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्यप्रमाण है । बारह कषाय और नौ नोकषायोंके जघन्य स्थितिसंक्रामकका अन्तरकाल नहीं है तथा अजघन्य स्थितिसंक्रामकका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए ।

विशेषार्थ—मनुष्यत्रिककी उत्कृष्ट कायस्थिति पूर्वकोटिपृथक्त्व अधिक तीन पल्य है और इसके प्रारम्भमें तथा अन्तमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी सत्ता हो और मध्यमें न हो यह सम्भव है, इसलिए इन प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट अन्तरकाल उक्त कालप्रमाण कहा है । कोई मनुष्य कृतकृत्यवेदक या क्षायिकके सिवा अन्य सम्यक्त्वके साथ मरकर मनुष्योंमें नहीं उत्पन्न होता । वेदकसम्यग्दृष्टि या उपशमसम्यग्दृष्टि तिर्यञ्च भी मरकर मनुष्योंमें नहीं उत्पन्न होता, अतः मनुष्यत्रिकमें अनन्तानुबन्धीचतुष्कके अजघन्य स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट अन्तर कुछ कम तीन पल्य ही प्राप्त होता है, इसलिए इनमें यह उक्त कालप्रमाण कहा है । शेष कथन सुगम है ।

*** नाना जीवोंकी अपेक्षा भङ्गविचय दो प्रकारका है—उत्कृष्ट पदभंगविचय और जघन्य पदभंगविचय ।**

§ ६७६. यहाँ पर उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामकोंके प्रवाहका व्युच्छेद सम्भव है या असम्भव है इसकी परीक्षा करना उत्कृष्ट पदभंगविचय कहलाता है । उसी प्रकार जघन्यका भी कथन करना चाहिए । इन दोनोंका अर्थपद—जो उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक हैं वे अनुत्कृष्ट स्थितिके असंक्रामक होते हैं और जो अनुत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक हैं वे उत्कृष्ट स्थितिके असंक्रामक होते हैं । इसी प्रकार जघन्यके आश्रयसे भी कथन करना चाहिए । इसप्रकार अर्थपद करके शेष प्ररूपणा करनी चाहिए इस बातका ज्ञान करानेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

*** उनका अर्थपद करके जिस प्रकार उत्कृष्ट उदीरणाकी प्ररूपणा की गई है उस प्रकार उत्कृष्टपदभंगविचय करना चाहिए ।**

---

१. आ०प्रतौ ज० अंतोमु० इति पाठः ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ६७७. तेसिं दोण्हमणंतरपरूविदमट्ठपदं काऊण तदो उक्कस्सओ भंगविचओ पुव्वं कायव्वो, जहा उद्देसो तहा णिद्देसो त्ति णायादो। सो च कथं कायव्वो ? जहा उक्कस्सिया ट्ठिदिउदीरणा भंगविचयविसया[1] तहा कायव्वो, तत्तो एदस्स भेदाणुवलंभादो। संपहि एदेण समप्पिदत्थविवरणट्ठमुच्चारणं वत्तइस्सामो। तत्थ दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण सव्वपयडीणं उक्कस्सट्ठिदीए सिया सव्वे असंकामया। सिया एदे च संकामओ च। सिया एदे च संकामया च। एवं तिण्णि भंगा। अणुक्कस्ससंकामयाणं पि विवज्जासेण तिण्णि भंगा कायव्वा। एवं सव्वासु गईसु। णवरि मणुसअपज्ज० सव्वपयडीणमुक्क०-अणु०संका० अट्ठ भंगा०। एवं जाव०।

❀ एत्तो जहण्णपदभंगविचओ।

§ ६७८. उक्कस्सपदभंगविचयादो अणंतरं जहण्णपदभंगविचयो परूवणाजोग्गो त्ति अहियारसंभालणसुत्तमेदं। तण्णिद्देसकरणट्ठमुत्तरसुत्तावयारो—

❀ सव्वासिं पयडीणं जहण्णट्ठिदिसंकामयस्स सिया सव्वे जीवा असंकामया, सिया असंकामया च संकामओ च, सिया असंकामया च संकामया च।

§ ६७७. उन दोनोंका अनन्तर पूर्वकथित अर्थपद करके अनन्तर उत्कृष्ट भङ्गविचय पहिले करना चाहिए, क्योंकि उद्देशके अनुसार निर्देश किया जाता है ऐसा न्याय है।

शंका—वह किसप्रकार करना चाहिए ?

समाधान—जिस प्रकार भंगविचयविषयक उत्कृष्ट उदीरणा की गई है उस प्रकार करना चाहिए, क्योंकि उससे इसमें भेद नहीं उपलब्ध होता।

अब इससे प्राप्त हुए अर्थका विवरण करनेके लिए उच्चारणाको बतलाते हैं। प्रकृतमें निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। ओघसे सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट स्थितिके सब जीव कदाचित् असंक्रामक हैं। कदाचित् बहुत जीव असंक्रामक हैं और एक जीव संक्रामक है। कदाचित् बहुत जीव असंक्रामक है और बहुत जीव संक्रामक हैं। इस प्रकार तीन भंग होते हैं। अनुत्कृष्ट संक्रामकोंके भी उलटकर तीन भंग करने चाहिए। इसी प्रकार सब गतियोंमें जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्य अपर्याप्तकोंमें सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट और अनुत्कृष्ट संक्रामकोंके आठ भंग होते हैं। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

❀ इससे आगे जघन्यपदभंगविचयका प्रकरण है।

§ ६७८. उत्कृष्ट पदभंगविचयके बाद जघन्य पदभंगविचय प्ररूपणायोग्य है इस प्रकार अधिकारकी संम्हाल करनेवाला यह सूत्र है। अब इसका निर्देश करनेके लिए आगेके सूत्रका अवतार करते हैं—

❀ सब प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिसंक्रमके कदाचित् सब जीव असंक्रामक हैं। कदाचित् बहुत जीव असंक्रामक हैं और एक जीव संक्रामक है। कदाचित् बहुत जीव असंक्रामक हैं और बहुत जीव संक्रामक हैं।

१. ता० प्रतौ -विचयविचया इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ६७९. गयत्थमेदं सुत्तं ।

❀ सेसं विहत्तिभंगो ।

§ ६८०. एत्थ सुगमत्तादो सुत्तेणापरूविदाणं भागाभाग-परिमाण-खेत्त-पोसणाणं ट्ठिदिविहत्तिभंगो । णवरि जहण्णए परिमाणाणुगमे ओघेण मणुसगईए च सम्मामि० जह० ट्ठिदिसंका० केत्तिया ? संखेज्जा । खेत्तपरूवणाए णत्थि णाणत्तं । पोसणाणुगमे ओघेण मणुसगईए च सम्मामि० जहण्णट्ठिदिसंकामयाणं खेत्तभंगो कायव्वो ।

❀ णाणाजीवेहि कालो ।

§ ६८१. अहियारसंभालणसुत्तमेदं सुगमं ।

❀ सव्वासिं पयडीणमुक्कस्सट्ठिदिसंकमो केवचिरं कालादो होइ ? जहण्णेण एयसमओ ।

§ ६८२. एयसमयमुक्कस्सट्ठिदिं संकामेदूण विदियसमए अणुक्कस्सट्ठिदिं संकामेमाणएसु णाणाजीवेसु तदुवलंभादो ।

❀ उक्कस्सेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो ।

§ ६८३. एत्थ मिच्छ०-सोलसक०—भय-दुगुंछ०—णउंसयवेद-अरइ-सोगाणमुक्कस्सट्ठिदिबंधगद्धं ठविय आवलि० असंखेज्जभागमेत्ततदुवक्कमणवारसलागाहि गुणिदे उक्कस्सकालो होइ । हस्स-रइ-इत्थि-पुरिसवेदाणमावलियं ठविय तदसंखेज्जभागेण गुणिदे

---

§ ६७९. यह सूत्र गतार्थ है ।

*** शेष भंग स्थितिविभक्तिके समान है ।**

§ ६८०. यहाँपर सुगम होनेसे सूत्रद्वारा नहीं कहे गये भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र और स्पर्शनका भंग स्थितिविभक्तिके समान है । इतनी विशेषता है कि जघन्य परिमाणानुगममें ओघसे तथा मनुष्यगतिकी अपेक्षा सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिके संक्रामक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं । क्षेत्रप्ररूपणामें कोई विशेषता नहीं है । स्पर्शनानुगममें ओघसे और मनुष्यगतिकी अपेक्षा सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिके संक्रामकोंके स्पर्शनका भंग क्षेत्रके समान करना चाहिए ।

*** अब नाना जीवोंकी अपेक्षा कालका अधिकार है ।**

§ ६८१. अधिकारकी संम्हाल करनेवाला यह सूत्र सुगम है ।

*** सब प्रकृतियोंके उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय है ।**

§ ६८२. क्योंकि एक समय तक उत्कृष्ट स्थितिका संक्रम करके दूसरे समयमें अनुत्कृष्ट स्थितिका संक्रम करनेवाले नाना जीवोंके उक्त काल उपलब्ध होता है ।

*** उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है ।**

§ ६८३. यहाँ पर मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय, जुगुप्सा, नपुंसकवेद, अरति और शोककी उत्कृष्ट स्थितिके बन्धक कालको स्थापित कर उसको आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण उपक्रमण वारशलाकाओंसे गुणित करनेपर उत्कृष्ट काल प्राप्त होता है । हास्य, रति, स्त्रीवेद और पुरुषवेदके उत्कृष्ट संक्रमकाल एक आवलिको स्थापित कर उसके असंख्यातवें भागसे गुणित करने पर प्रकृत उत्कृष्ट

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पयदुक्कस्सकालसमुप्पत्ती वत्तव्वा। सव्वासिं पयडीणमिदि वयणेण सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं पि पलिदोवमासंखभागपमाणुक्कस्सट्ठिदिसंकमुक्कस्सकालाइप्पसंगे तप्पडिसेहमुहेण तत्थ विसेसं पदुप्पायणट्ठमिदमाह—

❀ णवरि सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमुक्कस्सट्ठिदिसंकमो केवचिरं कालादो होदि? जहण्णेण एयसमओ, उक्कस्सेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो।

§ ६८४. कथमेदस्सुप्पत्ती? वुच्चदे—एयवारमुवक्कंताणमेयसमओ चेव लब्भइ त्ति तमेयसमयं ठविय आवलि० असंखे०भागमेत्तुवक्कमणवारेहि णिरंतरमुवलब्भमाणसरूवेहि गुणिदे तदुवलंभो होइ। एवमोघेणुक्कस्सट्ठिदिसंकमकालो णाणाजीवविसेसिदो सव्वपयडीणं परूविदो। अणुक्कस्सट्ठिदिसंकमकालो पुण सव्वेसिं कम्माणं सव्वद्धा। आदेसपरूवणाए ट्ठिदिविहत्तिभंगो अणूणाहियो कायव्वो।

❀ एत्तो जहण्णयं।

§ ६८५. सुगमं।

❀ सव्वासिं पयडीणं जहण्णट्ठिदिसंकमो केवचिरं कालादो होदि? जहण्णेणेयसमओ, उक्कस्सेण संखेज्जा समया।

कालकी उत्पत्ति कहनी चाहिए। सूत्रमें 'सव्वासिं पयडीणं' यह वचन आया है सो इससे सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके भी उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमके उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण प्राप्त होने पर उसके प्रतिषेध द्वारा वहाँ विशेषका कथन करनेके लिए इस सूत्रको कहते हैं—

*** किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमका काल कितना है? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है।**

§ ६८४. इसकी उत्पत्ति कैसे होती है? कहते हैं—एकबार उपक्रम करनेवाले जीवोंके एक समयप्रमाण ही काल उपलब्ध होता है, इसलिए उस एक समयको स्थापितकर निरन्तर उपलब्ध होनेवाले आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण उपक्रमणवारोंसे गुणित करने पर उस कालकी प्राप्ति होती है। इस प्रकार ओघसे सब प्रकृतियोंका नाना जीवविषयक उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमकाल कहा। किन्तु सब कर्मोंका अनुत्कृष्ट स्थितिसंक्रमकाल सर्वदा है। तथा आदेशसे कथन करने पर न्यूनाधिकतासे रहित स्थितिविभक्तिके समान भंग करना चाहिये।

*** अब आगे जघन्यका प्रकरण है।**

§ ६८५. यह सूत्र सुगम है।

*** सब प्रकृतियोंका जघन्य स्थितिसंक्रमकाल कितना है? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है।**

---

१. ता० प्रतौ –बिसेसपरूवणट्ठमुवरिमं इति पाठः।

Jain Education International   For Private & Personal Use Only   www.jainelibrary.org

§ ६८६. खवणाए लद्धजहण्णभावाणं तदुवलंभादो। संपहि एदेण सामण्णवयणेण विसंजोयणचरिमफालीए लद्धजहण्णभावाणमणंताणुबंधीणं चरिमट्ठिदिखंडए लद्धजहण्ण-सामित्ताणमट्ठणोकसायाणं च जहाणिद्दिट्ठजहण्णुक्कस्सकालाइप्पसंगे तप्पडिसेहदुवारेण तत्थतणविसेसपदुप्पायणट्ठमुवरिमं सुत्तदयमाह—

❀ णवरि अणंताणुबंधीणं जहण्णट्ठिदिसंकमो केवचिरं कालादो होदि? जहण्णेण एयसमओ, उक्कस्सेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो।

§ ६८७. सुगमं।

❀ इत्थि-णवुंसयवेद-छण्णोकसायाणं जहण्णट्ठिदिसंकमो केवचिरं कालादो होदि? जहण्णुक्कस्सेणंतोमुहुत्तं।

§ ६८८. चरिमट्ठिदिखंडयम्मि लद्धजहण्णभावाणं तदुवलंभादो। णवरि जहण्ण-कालादो उक्कस्सकालस्स संखेज्जगुणत्तमेत्थ दट्ठव्वं, संखेज्जवारं तदणुसंधाणावलंबणे, तदविरोहादो। एवमोघेण जहण्णट्ठिदिसंकमकालो[1] परूविदो।

§ ६८९. सव्वासिमजहण्णट्ठिदिसंकमकालो सव्वद्धा। एवं मणुसतिए। णवरि अणंताणु०४ जहण्ण० जह० एयस०, उक्क० संखेज्जा समया। मणुस्सिणीसु पुरिसवेद०

§ ६८६. क्योंकि क्षपणामें जघन्यपनेको प्राप्त हुई उन प्रकृतियोंका उक्त काल प्राप्त होता है। अब इस सामान्य वचनके अनुसार विसंयोजनाकी अन्तिम फालिके पतनके समय जघन्यपनेको प्राप्त हुई अनन्तानुबन्धियोंके तथा अन्तिम स्थितिकाण्डकके पतनके समय जघन्य स्वामित्वको प्राप्त हुए आठ नोकषायोंके यथानिर्दिष्ट जघन्य और उत्कृष्ट कालका प्रसंग प्राप्त होने पर उसके प्रतिषेध द्वारा वहाँ पर विशेषताका कथन करनेके लिए आगेके दो सूत्र कहते हैं—

*** किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धियोंके जघन्य स्थितिसंक्रमका कितना काल है? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है।**

§ ६८७. यह सूत्र सुगम है।

*** स्त्रीवेद, नपुंसकवेद और छह नोकषायोंके जघन्य स्थितिसंक्रमका कितना काल है? जघन्य और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है**

§ ६८८. अन्तिम स्थितिकाण्डकके पतनके समय जघन्यपनेको प्राप्त हुए उक्त आठ नोकषायों-का उक्त काल प्राप्त होता है। किन्तु इतनी विशेषता है कि यहाँ पर जघन्य कालसे उत्कृष्ट काल संख्यातगुणा जानना चाहिए, क्योंकि संख्यातवार उनके कालका अविच्छिन्नभावसे अवलम्बन लेने पर जघन्य कालसे उत्कृष्ट कालके संख्यातगुणा होनेमें विरोध नहीं आता। इस प्रकार ओघसे जघन्यस्थितिसंक्रमका काल कहा।

§ ६८९. ओघसे सब प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिसंक्रमका काल सर्वदा है। इसी प्रकार मनुष्यत्रिकमें जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धीचतुष्कके जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। मनुष्यिनियोंमें

१. आ०प्रतौ -संकामयकालो इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

छण्णोक०भंगो । आदेसेण सव्वणेरइय-सव्वतिरिक्ख०-सव्वदेवा ट्ठिदिविहत्तिभंगो। मणुसअपज्ज० मिच्छ०-सोलसक०-भय-दुगुंछ० जह० ट्ठिदिसं० जह० एयस०, उक्क० आवलि० असंखे०भागो। अज० जह० आवलिया समयूणा, उक्क० पलिदो० असंखे०-भागो। सम्म०-सम्मामि०-सत्तणोक० ट्ठिदिविहत्तिभंगो। एवं जाव०।

§ ६९०. अंतरं दुविहं—जह० उक्क०। उक्क० ट्ठिदिविहत्तिभंगो। जहण्णए पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण दंसणतिय-णवकसाय-इत्थिवेद०-छण्णोक० जह० ट्ठिदिसंका० जह० एयसमओ, उक्क० छम्मासं। अणंताणु०४ जह० ट्ठिदिसंका० जह० एयसमओ, उक्क० चउवीसमहोरत्ते सादिरेये। पुरिसवेद-तिण्णिसंजल० जह० ट्ठिदिसं० जह० एयसमओ, उक्क० वासं सादिरेयं। णवुंस० जह० ट्ठिदिसं० जह० एयसमओ, उक्क० वासपुधत्तं। सव्वासिमजह० ट्ठिदिसंका० णत्थि अंतरं। एवं मणुसतिए। णवरि मणुसिणीसु खवयपयडीणं वासपुधत्तं। सेससव्वमग्गणासु विहत्तिभंगो।

पुरुषवेदका भंग छह नोकषायोंके समान है। आदेशसे सब नारकी, सब तिर्यञ्च और सब देवोंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है। मनुष्य अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय, भय और जुगुप्सा के जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। अजघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य काल एक समय कम एक आवलिप्रमाण है और उत्कृष्ट काल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है। सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सात नोकषायोंका भंग स्थितिविभक्तिके समान है। इस प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

§ ६९०. अन्तर दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका भंग स्थितिविभक्तिके समान है। जघन्यका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे तीन दर्शनमोहनीय, नौ कषाय, स्त्रीवेद और छह नोकषायोंके जघन्य स्थितिसंक्रामकका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है। अनन्तानुबन्धीचतुष्कके जघन्य स्थितिसंक्रामकका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक चौबीस दिन-रात है। पुरुषवेद और तीन संज्वलनके जघन्य स्थितिसंक्रामकका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्ष है। नपुंसकवेदके जघन्य स्थितिसंक्रामकका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है। सब प्रकृतियोंके अजघन्य स्थितिसंक्रामकका अन्तरकाल नहीं है। इसी प्रकार मनुष्यत्रिकमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि मनुष्यिनियोंमें क्षपक प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व है। शेष सब मार्गणाओंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है।

विशेषार्थ—क्षपकश्रेणिका और क्षायिक सम्यग्दर्शनकी प्राप्तिका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है। इसलिए यहाँ पर तीन दर्शनमोहनीय आदि १९ प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना कहा है। इन प्रकृतियोंमें स्त्रीवेदको गिनानेका कारण यह है कि इस प्रकृतिकी परोदय और स्वोदय दोनों प्रकारसे क्षपणा होने पर अन्तमें जघन्य स्थितिसंक्रम होता है। सम्यक्त्वकी प्राप्तिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक चौबीस दिन-रात है। तदनुसार यह अन्तर अनन्तानुबन्धी चतुष्ककी विसंयोजनाका भी जानना चाहिए। इसलिए यहाँ पर अनन्तानुन्धीचतुष्कके जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक चौबीस दिन-रात कहा है। क्रोधादि तीन संज्वलन और पुरुषवेदके उदयसे क्षपकश्रेणिपर चढ़नेका जघन्य अन्तर एक समय

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ॐ एत्थ सण्णियासो कायव्वो ।

§ ६९१. एत्थुद्देसे सण्णियासो कायव्वो त्ति चुण्णिसुत्तयारस्स अत्थसमप्पणा-वयणमेदं । संपहि एदेण समप्पिदत्थस्स फुडीकरणट्ठमुच्चारणं वत्तइस्सामो । तं जहा—सण्णियासो दुविहो—जह० उक्क० । उक्कस्सं उक्कस्सट्ठिदिविहत्तिभंगो । णवरि आणदादि सव्वट्ठसिद्धिं मोत्तूण जम्हि जम्हि सम्म०-सम्मामि० सण्णियासिज्जंति तम्हि तम्हि सिया अत्थि, सिया णत्थि । जदि अत्थि, सिया संकामओ सिया असंकामओ । जदि संकामओ, किमुक्क० अणुक्क० ? णियमा अणुक्क० अंतोमुहुत्तूणमादिं कादूण जाव चरिमेणुव्वेल्लण-कंडएणूणं ति । आणदादि णवगेवज्जा त्ति ट्ठिदिविहत्तिभंगो । णवरि जम्हि सम्म०-सम्मामि० तम्हि सिया अत्थि सिया णत्थि । जइ अत्थि, सिया संका० सिया असंका० । जदि संका० किमुक्क० अणुक्क० ? उक्कस्सा वा अणुक्कस्सा वा । उक्कस्सादो अणुक्कस्सं पलिदो० असंखे०भागूणमादिं कादूण जाव चरिमेणुव्वेल्लणकंडएणूणं ति । अणुद्दिसादि सव्वट्ठा त्ति ट्ठिदिविहत्तिभंगो ।

और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्ष होनेसे यहाँपर इन प्रकृतियोंके जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर साधिक एक वर्ष कहा है। इस सम्बन्धमें कुछ विशेष वक्तव्य है सो उसे स्थितिविभक्तिसे जान लेना चाहिए। नपुंसकवेदके साथ क्षपकश्रेणिपर चढ़नेका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व होनेसे यहाँ इसके जघन्य स्थितिसंक्रमका जघन्य अन्तर एक समय और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्व कहा है। शेष कथन सुगम है।

* यहाँपर सन्निकर्ष करना चाहिए ।

§ ६९१. इस स्थानपर सन्निकर्ष करना चाहिए इस प्रकार चूर्णिसूत्रकारका अर्थका प्रतिपादन करनेवाला यह वचन है। अब इस द्वारा कहे गये अर्थका स्पष्टीकरण करनेके लिए उच्चारणाको बतलाते हैं। यथा—सन्निकर्ष दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका भंग उत्कृष्ट स्थिति-विभक्तिके समान है। इतनी विशेषता है कि आनतसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंको छोड़कर जिन-जिन प्रकृतियोंके साथ सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका सन्निकर्ष करते हैं वहाँ-वहाँ कदाचित् ये दोनों प्रकृतियाँ हैं और कदाचित् नहीं हैं। यदि हैं तो कदाचित् संक्रामक होता है और कदाचित् असंक्रामक होता है। यदि संक्रामक होता है तो क्या उत्कृष्ट स्थितिका संक्रामक है या अनुत्कृष्ट स्थितिका संक्रामक है ? नियमसे अन्तर्मुहूर्त कम उत्कृष्ट स्थितिसे लेकर अन्तिम उद्वेलनाकाण्डकसे न्यून स्थितितक अनुत्कृष्ट स्थितिका संक्रामक होता है। आनतसे लेकर नौ ग्रैवेयक तक स्थितिविभक्तिके समान भंग है। इतनी विशेषता है कि जिसके साथ सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका सन्निकर्ष करते हैं वहाँ ये दोनों प्रकृतियाँ कदाचित् हैं और कदाचित् नहीं हैं। यदि हैं तो वह इनका कदाचित् संक्रामक है और कदाचित् असंक्रामक है। यदि संक्रामक है तो क्या उत्कृष्ट स्थितिका संक्रामक है या अनुत्कृष्ट स्थितिका संक्रामक है ? अपनी उत्कृष्ट स्थितिका भी संक्रामक है और अनुत्कृष्ट स्थितिका भी संक्रामक है। यदि अनुत्कृष्ट स्थितिका संक्रामक है तो वह उत्कृष्ट स्थितिकी अपेक्षा पल्यके असंख्यातवें भागसे न्यून अनुत्कृष्ट स्थितिसे लेकर अन्तिम उद्वेलना-काण्डकसे न्यून तककी स्थितिका संक्रामक है। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तक स्थितिविभक्तिके समान भंग है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ६९२. जहण्णए पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मिच्छ० जह० ट्ठिदिसंकामेंतो सम्म०-सम्मामि०-बारसक०-णवणोक० किं जह० अजह० ? णियमा अज० असंखे०गुणब्भहियं। सम्म० जह० ट्ठिदिसंका० २१पयडीणं णियमा अज० असंखे०गुणब्भहियं। सम्मामि० जह० ट्ठिदिसंका० सम्म०-बारसक०-णवणोक० णियमा अज० असंखे०गुणब्भहियं। अणंताणु०कोह० जह० ट्ठिदिसंका०२४पयडीणं णियमा अज० असंखेज्जगुणब्भहियं। तिण्हं कसायाणं णियमा जहण्णं। एवं तिण्हमणंताणु०कसायाणं। अपच्चक्खाणकोह० जह० ट्ठिदिसंका० ४ चदुसंज०-णवणोक० णियमा अज० असंखे०गुणब्भहियं। सत्तकसायाणं णियमा जहण्णं। एवं सत्तकसायाणं। णउंसयवे० जह०ट्ठिदिसंका० इत्थिवेद० णियमा जहण्णं। छण्णोक०-पुरिसवेद०-चदुसंज० णियमा अज० असंखे०गुणब्भ०। इत्थिवेद० जह० ट्ठिदिसंकामयस्स णवुंस० सिया अत्थि सिया णत्थि। जइ अत्थि णियमा जह०। सत्तणोक०-चदुसंज० णियमा अज० असंखे०गुणब्भहियं। हस्सस्स जह० ट्ठिदिसंका० पुरिसवे० तिण्हं संजलणाणं णिय० अज० संखे०गुणब्भहियं। लोहसंज० णिय० अज० असंखे० गुणब्भहियं। पंचणोक० णियमा जह०। एवं पंचणोक०। पुरिसवेद० जह० ट्ठिदिसंका०

§ ६९२. जघन्यका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। ओघसे मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका संक्रम करनेवाला जीव सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी क्या जघन्य स्थितिका संक्रामक होता है या अजघन्य स्थितिका संक्रामक होता है ? नियमसे असंख्यातगुणी अधिक अजघन्य स्थितिका संक्रामक होता है। सम्यक्त्वकी जघन्य स्थितिका संक्रामक जीव २१ प्रकृतियोंकी नियमसे असंख्यातगुणी अधिक अजघन्य स्थितिका संक्रामक होता है। सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका संक्रामक जीव सम्यक्त्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी नियमसे असंख्यातगुणी अधिक अजघन्य स्थितिका संक्रामक होता है। अनन्तानुबन्धी क्रोधकी जघन्य स्थितिका संक्रामक जीव २४ प्रकृतियोंकी नियमसे असंख्यातगुणी अधिक अजघन्य स्थितिका संक्रामक होता है। अनन्तानुबन्धी मान आदि तीन कषायोंकी नियमसे जघन्य स्थितिका संक्रामक होता है। इसी प्रकार मान आदि तीन अनन्तानुबन्धी कषायोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष होता है। अप्रत्याख्यानावरण क्रोधकी जघन्य स्थितिका संक्रामक जीव चार संज्वलन और नौ नोकषायोंकी नियमसे असंख्यातगुणी अजघन्य स्थितिका संक्रामक होता है। सात कषायोंकी नियमसे जघन्य स्थितिका संक्रामक होता है। इसी प्रकार सात कषायोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष होता है। नपुंसकवेदकी जघन्य स्थितिका संक्रामक जीव स्त्रीवेदकी नियमसे जघन्य स्थितिका संक्रामक होता है। छह नोकषाय, पुरुषवेद और चार संज्वलनकी नियमसे असंख्यातगुणी अधिक अजघन्य स्थितिका संक्रामक होता है। स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिके संक्रामक जीवके नपुंसकवेद कदाचित् है और कदाचित् नहीं है। यदि है तो वह नपुंसकवेदकी नियमसे जघन्य स्थितिका संक्रामक होता है। सात नोकषाय और चार संज्वलनकी नियमसे असंख्यातगुणी अधिक अजघन्य स्थितिका संक्रामक होता है। हास्यकी जघन्य स्थितिका संक्रामक जीव पुरुषवेद और तीन संज्वलनकी नियमसे संख्यातगुणी अधिक अजघन्य स्थितिका संक्रामक होता है। लोभसंज्वलनकी नियमसे असंख्यातगुणी अधिक अजघन्य स्थितिका संक्रामक होता है। तथा पाँच नोकषायोंकी नियमसे जघन्य स्थितिका संक्रामक होता है। इसी प्रकार पाँच नोकषायोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। पुरुषवेदकी जघन्य स्थितिका संक्रामक जीव

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तिण्हं संजल० णियमा अज० संखे०गुणब्भहियं। लोभसंजल० णिय० अज० असंखे०गुणब्भ०। कोहसंजल० जह० ट्ठिदिसंका० दोण्हं संजल० णियमा अज० संखे०गुणब्भ०। लोभसंज० णि० अज० असंखे०गुणब्भ०। माणसंज० जह० ट्ठिदिसंका० मायासंज० णिय० अज० संखे०गुणब्भ०। लोभसंज० णियमा अज० असंखे०गुणब्भहियं। मायासंज० जह० ट्ठिदिसंका० लोभसंज० णि० अज० असंखे०-गुणब्भ०। लोहसंज० जह० ट्ठिदिसंका० सव्वपयडीणमसंकामओ।

§ ६९३. आदेसेण णेरइय० मिच्छ० जह० ट्ठिदिसंका० सम्मत्तस्स सिया कम्मंसिओ सिया ण। जइ कम्मंसिओ संकामओ[1]। जइ संकामओ, किं जह० अज०? णियमा अज० असंखे०गुणब्भ०। सम्मामि० सिया कम्मंसिओ सिया ण। जइ कम्मंसिओ सिया संकामओ। जइ संका०, किं जह० अज०? तं तु चउट्ठाणपदिदं। सेसं ट्ठिदिविहत्ति-भंगो। सम्मत्त-सम्मामि०-अणंताणु०४ सण्णियासो वि ट्ठिदिविहत्तिभंगेण णेयव्वो। अपच्चक्खाणकोह० जह० ट्ठिदिसंका० सम्मत्त-सम्मामि० मिच्छत्तभंगो। सेसं ट्ठिदि-विहत्तिभंगो। एवमेक्कारसक०। णवणोकसायाणं ट्ठिदिविहत्तिभंगो। णवरि सम्मत्त-

तीन संज्वलनोंकी नियमसे संख्यातगुणी अधिक अजघन्य स्थितिका संक्रामक होता है। तथा लोभसंज्वलनकी नियमसे असंख्यातगुणी अधिक अजघन्य स्थितिका संक्रामक होता है। क्रोध-संज्वलनकी जघन्य स्थितिका संक्रामक जीव दो संज्वलनोंकी नियमसे संख्यातगुणी अधिक अजघन्य स्थितिका संक्रामक होता है। तथा लोभसंज्वलनकी नियमसे असंख्यातगुणी अधिक अजघन्य स्थितिका संक्रामक होता है। मानसंज्वलनकी जघन्य स्थितिका संक्रामक जीव मायासंज्वलनकी नियमसे संख्यातगुणी अधिक अजघन्य स्थितिका संक्रामक होता है। तथा लोभसंज्वलनकी नियमसे असंख्यातगुणी अधिक अजघन्य स्थितिका संक्रामक होता है। मायासंज्वलनकी जघन्य स्थितिका संक्रामक जीव लोभसंज्वलनकी नियमसे असंख्यातगुणी अधिक अजघन्य स्थितिका संक्रामक होता है। लोभसंज्वलनकी जघन्य स्थितिका संक्रामक जीव सब प्रकृतियोंका असंक्रामक होता है।

§ ६९३. आदेशसे नारकियोंमें मिथ्यात्वकी जघन्य स्थितिका संक्रामक जीव सम्यक्त्वका कदाचित् कर्मांशिक है और कदाचित् अकर्मांशिक है। यदि कर्मांशिक है तो कदाचित् संक्रामक है। यदि संक्रामक है तो क्या जघन्य स्थितिका संक्रामक है या अजघन्य स्थितिका संक्रामक है? नियमसे असंख्यातगुणी अधिक अजघन्य स्थितिका संक्रामक है। सम्यग्मिथ्यात्वका कदाचित् कर्मांशिक है और कदाचित् नहीं है। यदि कर्मांशिक है तो कदाचित् संक्रामक है। यदि संक्रामक है तो क्या जघन्य स्थितिका संक्रामक है या अजघन्य स्थितिका संक्रामक है? वह चतुःस्थानपतित है। शेष भङ्ग स्थितिविभक्तिके समान है। सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका सन्निकर्ष भी स्थितिविभक्तिके भंगके समान ले जाना चाहिए। अप्रत्याख्यानावरणक्रोधकी जघन्य स्थितिके संक्रामकके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग मिथ्यात्वके समान है। शेष भंग स्थितिविभक्तिके समान है। इसी प्रकार ग्यारह कषायोंकी मुख्यतासे सन्निकर्ष जानना चाहिए। नौ नोकषायोंका भंग स्थितिविभक्तिके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके

१. ता० -आ०प्रत्योः सिया कम्मंसिओ सिया च संकामओ इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्मामिच्छत्तेण सह जहा णीदाणि तहा णेदव्वाणि। एवं पढमाए पुढवीए। तिरिक्खेसु एवं चेव। णवरि बारसक० जह० ट्ठिदिसंका० भय-दुगुंछ० णियमा संका०। तं तु समयुत्तरमादिं कादूण जाव आवलियब्भहियं ति। भय-दुगुंछ० जह० ट्ठिदिसंका० मिच्छ०-बारसक०। तं तु अज० असंखे०भागब्भहियं। णत्थि अण्णो वियप्पो।

§ ६९४. बिदियादि जाव सत्तमा त्ति ट्ठिदिविहत्तिभंगो। णवरि अणंताणु०४ जह० ट्ठिदिसंका० मिच्छ०-बारसक०णवणोक० णियमा अज० संखेज्ज०भागब्भहियं। पंचिं०तिरिक्ख०तिय० पढमपुढविभंगो। णवरि भय-दुगुंछा० जह० ट्ठिदिसं० मिच्छ०-बारसक० तं तु अज० असंखे०भागब्भ० संखे०भागब्भ० णत्थि। जोणिणीसु सम्मत्त० सम्मामिच्छत्तभंगो। पंचिं०तिरिक्ख०अपज्ज० जोणिणीभंगो। णवरि अणंताणु०४ सह कसाएहि भणियव्वं। एवं मणुसअपज्ज०।

§ ६९५. मणुसतिए ओघं। णवरि मणुसिणीसु इत्थिवेद० जहण्णट्ठिदिसंका० णउंसय० णत्थि। णउंस० जह० ट्ठिदिसंका इत्थिवेद० णियमा अज० असंखे०गुणब्भ०। पुरिसवेदस्स छण्णोक०भंगो। देवाणं णारयभंगो। एवं भवण०-वाणवें०। णवरि

साथ जिस प्रकार ले गये हैं उस प्रकार ले जाना चाहिए। इसी प्रकार पहिली पृथिवीमें जानना चाहिए। तिर्यञ्चोंमें इसी प्रकार जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि बारह कषायोंकी जघन्य स्थितिका संक्रामक जीव भय और जुगुप्साका नियमसे संक्रामक है। किन्तु वह एक समय अधिकसे लेकर एक आवलि अधिक तक स्थितिका संक्रामक है। भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका संक्रामक जीव मिथ्यात्व और बारह कषायोंका नियमसे संक्रामक है। किन्तु वह असंख्यातवें भाग अधिक अजघन्य स्थितिका संक्रामक है। यहाँ अन्य विकल्प नहीं है।

§ ६९४. दूसरीसे सातवीं पृथिवी तकके नारकियोंमें स्थितिविभक्तिके समान भङ्ग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी जघन्य स्थितिका संक्रामक जीव मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी नियमसे असंख्यातवें भाग अधिक अजघन्य स्थितिका संक्रामक है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें प्रथम पृथिवीके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि भय और जुगुप्साकी जघन्य स्थितिका संक्रामक जीव मिथ्यात्व और बारह कषायोंकी जघन्य स्थितिका भी संक्रामक है और अजघन्य स्थितिका भी संक्रामक है। यदि अजघन्य स्थितिका संक्रामक है तो नियमसे असंख्यातवें भाग अधिक अजघन्य स्थितिका संक्रामक है। संख्यातवें भाग अधिक अजघन्य स्थितिका संक्रामक नहीं है। योनिनी तिर्यञ्चोंमें सम्यक्त्वका भंग सम्यग्मिथ्यात्वके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धीचतुष्कके साथ कषायोंको कहना चाहिए। इसी प्रकार मनुष्य अपर्याप्तकोंमें कहना चाहिए।

§ ६९५. मनुष्यत्रिकमें ओघके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्यिनियोंमें स्त्रीवेदकी जघन्य स्थितिके संक्रामक जीवके नपुंसकवेद नहीं है। नपुंसकवेदकी जघन्य स्थितिका संक्रामक जीव स्त्रीवेदकी नियमसे असंख्यातगुणी अधिक अजघन्य स्थितिका संक्रामक है। पुरुषवेदका भंग छह नोकषायोंके समान है। देवोंमें नारकियोंके समान भंग है। इसी प्रकार भवनवासी और व्यन्तर देवोंमें जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्वका भंग

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

सम्म० सम्मामि०भंगो। जोदिसि० विदियपुढविभंगो। सोहम्मादि जाव सव्वट्ठा त्ति ट्ठिदिविहत्तिभंगो। एवं जाव।

§ ६९६. भावो सव्वत्थ ओदइयो भावो।

❀ अप्पाबहुअं।

§ ६९७ ट्ठिदिसंकमस्स जहण्णुक्कस्सभेयभिण्णस्स अप्पाबहुअमिदाणिं वत्तइस्सामो त्ति पइज्जावक्कमेदमहियारसंभालणवयणं वा। तं पुण दुविहमप्पाबहुअं जहण्णुक्कस्सट्ठिदिसंकामयजीवविसयं जहण्णुक्कस्ससंकमट्ठिदिविसयं चेदि। तत्थ जीवप्पाबहुअपरूवणा सुगमा त्ति तमपरूविय ट्ठिदिअप्पाबहुअमेव परूवेमाणो सुत्तमुत्तरमाह—

❀ सव्वत्थोवो णवणोकसायाणमुक्कस्सट्ठिदिसंकमो।

§ ६९८. ट्ठिदिअप्पाबहुअं दुविहं जहण्णुक्कस्सट्ठिदिविसयभेदेण। तत्थुक्कस्से ताव पयदं। तस्स दुविहो णिद्देसो—ओघेणादेसेण य। तत्थोघेण णवणोकसायाणमुक्कस्सट्ठिदिसंकमो उवरि भण्णमाणासेसुक्कस्सट्ठिदिसंकमपडिबद्धपदेहिंतो थोवयरो त्ति उत्तं होइ। एदस्स पमाणं बंधसंकमणोदयावलियाहि परिहीणचालीससागरोवमकोडाकोडिमेत्तं।

❀ सोलसकसायाणमुक्कस्सट्ठिदिसंकमो विसेसाहिओ।

§ ६९९. कुदो? दोआवलिऊणचालीससागरोवमकोडाकोडिपमाणत्तादो।

सम्यग्मिथ्यात्वके समान है। ज्योतिषी देवोंमें दूसरी पृथिवीके समान भंग है। सौधर्म स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है।

§ ६९६. भाव सर्वत्र औदयिक भाव है।

* अल्पबहुत्वका प्रकरण है।

§ ६९७. जघन्य और उत्कृष्ट भेदरूप प्रकृत स्थितिसंक्रमके अल्पबहुत्वको इस समय बतलाते हैं इस प्रकार यह प्रतिज्ञा वाक्य है या अधिकारकी सम्हाल करनेवाला वचन है। वह अल्पबहुत्व दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिके संक्रामक जीवोंको विषय करनेवाला और जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमको विषय करनेवाला। उनमेंसे जीव अल्पबहुत्वका कथन सुगम है इसलिए उसका कथन न करके स्थिति अल्पबहुत्वका ही कथन करते हुए आगेके सूत्रको कहते हैं—

* नौ नोकषायोंका उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम सबसे स्तोक है।

§ ६९८. जघन्य और उत्कृष्ट स्थितिको विषय करनेवाला होनेसे स्थिति अल्पबहुत्व दो प्रकारका है। उनमेंसे सर्वप्रथम उत्कृष्टका प्रकरण है। उसका निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। उनमेंसे ओघसे नौ नोकषायोंका उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम आगे कहे जानेवाले उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमसे सम्बन्ध रखनेवाले पदोंकी अपेक्षा स्तोकतर है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। इसका प्रमाण बन्धावलि, संक्रमावलि और उदयावलिसे न्यून चालीस कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण है।

* उससे सोलह कषायोंका उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है।

§ ६९९. क्योंकि यह दो आवलिकम चालीस कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

❀ सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमुक्कस्सट्ठिदिसंकमो तुल्लो विसेसाहिओ।

§ ७००. एदेसिमुक्कस्सट्ठिदिसंकमो अंतोमुहुत्तूणसत्तरिसागरो०कोडाकोडीमेत्तो। एसो पुण कसायाणमुक्कस्सट्ठिदिसंकमादो विसेसाहिओ। केत्तियमेत्तेण ? अंतोमुहुत्तूण-तीससागरो०कोडाकोडीमेत्तेण।

❀ मिच्छत्तस्स उक्कस्सट्ठिदिसंकमो विसेसाहिओ।

§ ७०१. कुदो ? बंधोदयावलिऊणसत्तरिकोडाकोडीसागरोवमपमाणत्तादो। एत्थ विसेसपमाणमंतोमुहुत्तं।

एवमोघाणुगमो समत्तो।

❀ एवं सव्वासु गईसु।

§ ७०२. सव्वासु णिरयादिगदीसु एवं चेव उक्कस्सट्ठिदिसंकमप्पाबहुअपरूवणा कायव्वा, विसेसाभावादो त्ति उत्तं होइ। णवरि पंचिं०तिरि०अपज्ज०-मणुसअपज्ज० सोलसक०-णवणोक० उक्कस्सट्ठिदिसंकमो सरिसो थोवो। सम्म०-सम्मामि० उक्कस्स-ट्ठिदिसं० सरिसो विसे०। मिच्छ० उक्क०ट्ठिदिसं० विसेसाहिओ। आणदादि जाव सव्वट्ठ त्ति सोलसक०-णवणोक० उक्कस्सट्ठिदिसं० तुल्लो थोवो। मिच्छ०-सम्म०-सम्मामि० उक्क०

※ उससे सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम परस्पर तुल्य होकर विशेष अधिक है।

§ ७००. क्योंकि इनका उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम अन्तर्मुहूर्त कम सत्तर कोड़ाकोड़ीसागरप्रमाण है। यह कषायोंके उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमसे विशेष अधिक है। कितना अधिक है ? अन्तर्मुहूर्त कम तीस कोड़ाकोड़ी सागर अधिक है।

※ उससे मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है।

§ ७०१. क्योंकि यह बन्धावलि और उदयावलिसे न्यून सत्तर कोड़ाकोड़ीसागरप्रमाण है। यहाँपर विशेषका प्रमाण अन्तर्मुहूर्त है।

इस प्रकार ओघानुगम समाप्त हुआ।

※ इसी प्रकार सब गतियोंमें अल्पबहुत्व है।

§ ७०२. नरकादि सब गतियोंमें इसी प्रकार उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम अल्पबहुत्वकी प्ररूपणा करनी चाहिए, क्योंकि ओघसे इस प्ररूपणामें विशेषता नहीं है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। किन्तु इतनी विशेषता है कि पंचेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें सोलह कषाय और नौ नोकषायोंका उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम परस्पर सदृश होकर सबसे स्तोक है। उससे सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम परस्पर सदृश होकर विशेष अधिक है। उससे मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है। आनतसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें सोलह कषाय और नौ नोकषायोंका उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम परस्पर तुल्य होकर सबसे स्तोक है। उससे मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका उत्कृष्ट स्थितिसंक्रम परस्पर तुल्य होकर विशेष अधिक है। यह

Jain Education International　　For Private & Personal Use Only　　www.jainelibrary.org

ट्ठिदिसं० तुल्लो विसेसाहिओ। एसो च विसेसो सुगमो त्ति सुत्तयारेण ण परूविदो। एवं जाव०।

❀ एत्तो जहण्णयं।

§ ७०३. सुगमं।

❀ सव्वत्थोवा सम्मत्त-लोहसंजलणाणं जहण्णट्ठिदिसंकमो।

§ ७०४. एयट्ठिदिपमाणत्तादो।

❀ जट्ठिदिसंकमो असंखेज्जगुणो।

§ ७०५. समयाहियावलियपमाणत्तादो।

❀ मायाए जहण्णट्ठिदिसंकमो संखेज्जगुणो।

§ ७०६. आबाहापरिहीणद्धमासपमाणत्तादो।

❀ जट्ठिदिसंकमो विसेसाहिओ।

§ ७०७. केत्तियमेत्तेण ? समयूणदोआवलियपरिहीणाबाहामेत्तेण।

❀ माणसंजलणस्स जहण्णट्ठिदिसंकमो विसेसाहिओ।

§ ७०८. समयूणदोआवलियूणद्धमासादो अंतोमुहुत्तूणमासस्सेदस्स तदविरोहादो।

❀ जट्ठिदिसंकमो विसेसाहिओ।

विशेष सुगम है, इसलिए सूत्रकारने इसका कथन नहीं किया। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

* आगे जघन्यका प्रकरण है।

§ ७०३. यह सूत्र सुगम है।

* सम्यक्त्व और लोभसंज्वलनका जघन्य स्थितिसंक्रम सबसे स्तोक है।

§ ७०४. क्योंकि वह एक स्थितिप्रमाण है।

* उससे यत्स्थितिसंक्रम असंख्यातगुणा है।

§ ७०५. क्योंकि वह एक समय अधिक एक आवलिप्रमाण है।

* उससे मायाका जघन्य स्थितिसंक्रम असंख्यातगुणा है।

§ ७०६. क्योंकि वह आबाधासे हीन अर्धमास प्रमाण है।

* उससे यत्स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है।

§ ७०७. कितना अधिक है ? एक समय कम दो आवलिसे हीन आबाधाकाल प्रमाण अधिक है।

* उससे मानसंज्वलनका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है।

§ ७०८. क्योंकि एक समय कम दो आवलिसे हीन अर्धमाससे अन्तर्मुहूर्तकम एक माहके विशेष अधिक होनेमें विरोध नहीं आता।

* उससे यत्स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ७०९. समयूणदोआवलिपरिहीणाबाहापवेसादो ।

❀ कोहसंजलणस्स जहण्णट्ठिदिसंकमो विसेसाहिओ ।

§ ७१०. कुदो ? आबाहूणवे०मासपमाणत्तादो ।

❀ जट्ठिदिसंकमो विसेसाहिओ ।

§ ७११. एत्थ विसेसपमाणं समयूणदोआवलियपरिहीणाबाहामेत्तं ।

❀ पुरिसवेदस्स जहण्णट्ठिदिसंकमो संखेज्जगुणो ।

§ ७१२. किंचूणवेमासेहिंतो अंतोमुहुत्तूणट्ठवस्साणं तहाभावस्स णायोववण्णत्तादो ।

❀ जट्ठिदिसंकमो विसेसाहिओ ।

§ ७१३. सुगमं ।

❀ छण्णोकसायाणं जहण्णट्ठिदिसंकमो संखेज्जगुणो ।

§ ७१४. समयूणदोआवलियपरिहीणट्ठवस्सेहिंतो छण्णोकसायचरिमट्ठिदिखंडयस्स संखेज्जवस्ससहस्सपमाणस्स संखेज्जगुणत्ताविरोहादो ।

❀ इत्थि-णवुंसयवेदाणं जहण्णट्ठिदिसंकमो तुल्लो असंखेज्जगुणो ।

§ ७१५. कुदो ? पलिदोवमासंखभागपमाणत्तादो ।

❀ अट्ठण्हं कसायाणं जहण्णट्ठिदिसंकमो असंखेज्जगुणो ।

---

§ ७०९. क्योंकि इसमें एक समय कम दो आवलिसे हीन आबाधाकालका प्रवेश हो गया है।

* उससे क्रोधसंज्वलनका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है।

§ ७१०. क्योंकि यह आबाधासे हीन दो मासप्रमाण है।

* उससे यत्स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है।

§ ७११. यहाँ पर विशेषका प्रमाण एक समय कम दो आवलिसे हीन आबाधामात्र है।

* उससे पुरुषवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम संख्यातगुणा है।

§ ७१२. क्योंकि कुछ कम दो माहसे अन्तर्मुहूर्तकम आठ वर्षका उस प्रकारका होना न्यायसंगत है।

* उससे यत्स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है।

§ ७१३. यह-सूत्र सुगम है।

* उससे छह नोकषायोंका जघन्य स्थितिसंक्रम संख्यातगुणा है।

§ ७१४. क्योंकि एक समय कम दो आवलियोंसे हीन आठ वर्षोंसे संख्यात हजार वर्षप्रमाण छह नोकषायोंके अन्तिम स्थितिकाण्डकके संख्यातगुणे होनेमें कोई विरोध नहीं है।

* उससे स्त्रीवेद और नपुंसकवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम परस्पर तुल्य होकर भी असंख्यातगुणा है।

§ ७१५. क्योंकि यह पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है।

* उससे आठ कषायोंका जघन्य स्थितिसंक्रम असंख्यातगुणा है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ७१६. तं कथं ? इत्थि-णवुंसयवेदाणं चरिमट्ठिदिखंडयायामादो दुचरिमट्ठिदिखंडयायामो असंखे०गुणो। एवं दुचरिमादो तिचरिमट्ठिदिखंडयमसंखेज्जगुणं। तिचरिमादो चदुचरिममिदि एदेण कमेण संखेज्जट्ठिदिखंडयसहस्साणि हेट्ठा ओसरिय अंतरकरणप्पारंभादो पुव्वमेव अट्ठ कसाया खविदा। तेण कारणेणेदेसिं चरिमट्ठिदिखंडयचरिमफाली तत्तो असंखेज्जगुणा जादा।

❀ **सम्मामिच्छत्तस्स जहण्णट्ठिदिसंकमो असंखेज्जगुणो।**

§ ७१७. चारित्तमोहक्खवयपरिणामेहि घादिदावसेसो अट्ठकसायाणं जहण्णट्ठिदिसंकमो। एसो पुण तत्तो अणंतगुणहीणविसोहिदंसणमोहक्खवणपरिणामेहि घादिदावसेसो त्ति। तत्तो एदस्सासंखेज्जगुणमव्वामोहेण पडिवज्जेयव्वं।

❀ **मिच्छत्तस्स जहण्णट्ठिदिसंकमो असंखेज्जगुणो।**

§ ७१८. कुदो ? मिच्छत्तक्खवणादो अंतोमुहुत्तमुवरि गंतूण सम्मामिच्छत्तस्स जहण्णट्ठिदिसंकमुप्पत्तिदंसणादो।

❀ **अणंताणुबंधीणं जहण्णट्ठिदिसंकमो असंखेज्जगुणो।**

§ ७१९. कुदो ? विसंजोयणापरिणमेहिंतो दंसणमोहक्खवयपरिणामाणमणंतगुणत्तेण मिच्छत्तचरिमफालीदो अणंताणुबंधिचरिमफालीए असंखेज्जगुत्तविरोहाभावादो। एवं ताव ओघेण जहण्णट्ठिदिसंकमप्पाबहुअं परूविय एत्तो णिरयगइपडिबद्धजहण्णट्ठिदि-

---

§ ७१६. सो कैसे ? स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके अन्तिम स्थितिकाण्डक आयामसे द्विचरम स्थितिकाण्डक आयाम असंख्यातगुणा है। इसी प्रकार द्विचरमसे त्रिचरम स्थितिकाण्डक आयाम असंख्यातगुणा है। त्रिचरमसे चतुश्चरम इस प्रकार इस क्रमसे संख्यात हजार स्थितिकाण्डक नीचे जाकर अन्तरकरणके प्रारम्भसे पूर्व ही आठ कषाय क्षयको प्राप्त हुए है। इस कारणसे इनके अन्तिम काण्डकको अन्तिम फालि स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके जघन्य स्थितिसंक्रमसे विशेष अधिक हो जाती है।

* सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रम असंख्यातगुणा है।

§ ७१७. क्योंकि चरित्रमोहक्षपकके परिणामोंसे घात करनेसे शेष बचा हुआ आठ कषायोंका जघन्य स्थितिसंक्रम है और यह तो उनसे अनन्तगुणे हीन दर्शनमोहक्षपकके परिणामोंसे घात करनेसे शेष बचा हुआ जघन्य स्थितिसंक्रम है। इसलिए उससे इसे असंख्यातगुणा व्यामोहके बिना जानना चाहिए।

* उससे मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रम असंख्यातगुणा है।

§ ७१८. क्योंकि मिथ्यात्वका क्षपणासे अन्तर्मुहूर्त ऊपर जाकर सम्यग्मिथ्यात्वके जघन्य स्थितिसंक्रमकी उत्पत्ति देखी जाती है।

* उससे अनन्तानुबन्धियोंका जघन्य स्थितिसंक्रम असंख्यातगुणा है।

§ ७१९. क्योंकि विसंयोजनारूप परिणामोंसे दर्शनमोहक्षपकके परिणाम अनन्तगुणे होनेसे मिथ्यात्वकी अन्तिम फालिसे अनन्तानुबन्धीकी अन्तिम फालिके असंख्यातगुणे होनेमें कोई विरोध नहीं है। इस प्रकार सर्व प्रथम ओघसे जघन्य स्थितिसंक्रम अल्पबहुत्वका कथन करके आगे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संकमप्पाबहुअं परूवेदुमुवरिमसुत्तपबंधमाह—

❀ णिरयगईए सव्वत्थोवो सम्मत्तस्स जहण्णट्ठिदिसंकमो ।

§ ७२०. कदकरणिज्जोववादं पडुच्च एयट्ठिदिमेत्तो लब्भइ त्ति सव्वत्थोवत्तमेदस्स भणिदं ।

❀ जट्ठिदिसंकमो असंखेज्जगुणो ।

§ ७२१. सुगमं ।

❀ अणंताणुबंधीणं जहण्णट्ठिदिसंकमो असंखेज्जगुणो ।

§ ७२२. कुदो ? पलिदोवमासंखभागपमाणत्तादो ।

❀ सम्मामिच्छत्तस्स जहण्णट्ठिदिसंकमो असंखेज्जगुणो ।

§ ७२३. कुदो ? उव्वेल्लणाचरिमफालीए जहण्णभावोवलद्धीदो । एत्थतणी पलिदोवमासंखभागायामा चरिमफाली अणंताणुबंधिविसंजोयणाचरिमफालिआयामादो असंखेज्ज गुणा, तत्थ करणपरिणामेहि घादिदावसेसस्स एत्तो थोवत्तसिद्धीए णाइत्तादो ।

❀ पुरिसवेदस्स जहण्णट्ठिदिसंकमो असंखेज्जगुणो ।

§ ७२४. कुदो ? हदसमुप्पत्तिकम्मियासण्णिपच्छायदणेरइयम्मि अंतोमुहुत्त-तब्भवत्थम्मि पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागेणूणसागरोवमसहस्सचदुसत्तभागमेत्तपुरिसवेद-जहण्णट्ठिदिसंकमावलंबणादो ।

नरकगतिसे प्रतिबद्ध जघन्य स्थितिसंक्रम अल्पबहुत्वका कथन करनेके लिए आगेके सूत्रप्रबन्धको कहते हैं—

*** नरकगतिमें सम्यक्त्वका जघन्य स्थितिसंक्रम सबसे स्तोक है ।**

§ ७२०. कृतकृत्यके उपपादकी अपेक्षा एक स्थितिप्रमाण उपलब्ध होता है, इसलिए इसे सबसे स्तोक कहा है ।

*** उससे यत्स्थितिसंक्रम असंख्यातगुणा है ।**

§ ७२१. यह सूत्र सुगम है ।

*** उससे अनन्तानुबन्धियोंका जघन्य स्थितिसंक्रम असंख्यातगुणा है ।**

§ ७२२. क्योंकि यह पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है ।

*** उससे सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रम असंख्यातगुणा है ।**

§ ७२३. क्योंकि यहाँपर उद्वेलनाकी अन्तिम फालि जघन्यरूपसे उपलब्ध होती है । पल्यके असंख्यातवें भागरूप आयामवाली यह फालि अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजनासम्बन्धी अन्तिम फालिके आयामसे असंख्यातगुणी है, क्योंकि वहाँ पर करणपरिणामोंसे घात करनेसे शेष बचा जघन्य स्थितिसंक्रमका इससे स्तोक सिद्ध होना न्यायप्राप्त है ।

*** पुरुषवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम असंख्यातगुणा है ।**

§ ७२४. क्योंकि जो हतसमुत्पत्तिक कर्मवाला असंज्ञी जीव मरकर नारकी हुआ है उसके तद्भवस्थ होनेके अन्तर्मुहूर्त होने पर पल्यके संख्यातवें भागसे न्यून एक हजार सागरके सात भागोंमेंसे चार भागप्रमाण पुरुषवेदके जघन्य स्थितिसंक्रमका अवलम्बन लिया है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

✽ इत्थिवेदे जहण्णट्ठिदिसंकमो विसेसाहिओ ।

§ ७२५. एत्थ कारणपरूवणट्ठमिमा ताव बंधगद्धाणमप्पाबहुअविहासणा कीरदे । तं जहा— सव्वत्थोवा पुरिसवेदबंधगद्धा३ । इत्थिवेदबंधगद्धा संखेज्जगुणा९ । हस्स-रदि-बंधगद्धा विसेसाहिया ११ । णवुंसयवेदबंधगद्धा संखेज्जगुणा २२ । अरदि-सोगबंधगद्धा विसेसाहिया २३ । एदमप्पाबहुअं साहणं काऊण पुरिसवेदजहण्णट्ठिदिसंकमादो इत्थिवेद-जहण्णट्ठिदिसंकमस्स विसेसाहियत्तमेवमणुगंतव्वं । तं कथं ? पुरिसवेदस्स, इत्थि-णउंसय-वेदबंधगद्धासमासो संदिट्ठीए३१, एत्तियमेत्तो गालिदो । एत्तो पुण विसेसहीणो पुरिस-णउंसयवेदबंधगद्धासमासो संदिट्ठी० एसो २५ । इत्थिवेदस्स गालिदो एवंविहो त्ति पुरिसवेदबंधगद्धमित्थिवेदबंधगद्धाए सोहिय सुद्धसेसमेत्तेण विसेसाहियत्तमित्थिवेदजहण्ण-ट्ठिदिसंकमस्स दट्ठव्वं । संदिट्ठीए सुद्धसेसपमाणमेदं ६ । एत्थागालियपडिवक्खबंधगद्ध-णोकसायजहण्णट्ठिदिसंकमसंदिट्ठी एसा ९६ । एत्तो पडिवक्खबंधगद्धागालणेण पुरिसवेद-जहण्णट्ठिदिसंकमो एसो ६५ । एत्तो विसेसाहिओ इत्थिवेदस्स गालिदावसेसो एसो ७१ ।

✽ हस्स-रईणं जहण्णट्ठिदिसंकमो विसेसाहिओ ।

§ ७२६. केत्तियमेत्तेण ? इत्थिवेदबंधगद्धासंखेज्जदिभागं पुरिसवेदबंधगद्धाए सोहिय सुद्धसेसमेत्तेण । संदिट्ठीए तमेदं २ । तेणाहिओ हस्स-रइजहण्णट्ठिदिसंकमो एसो ७३ ।

✽ उससे स्त्रीवेदमें जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है ।

§ ७२५. यहाँपर कारणका कथन करनेके लिए बन्धककालके इस अल्पबहुत्वका खुलासा करते हैं । यथा—पुरुषवेदका बन्धककाल सबसे स्तोक है ३ । उससे स्त्रीवेदका बन्धककाल संख्यातगुणा है ९ । उससे हास्य-रतिका बन्धककाल विशेष अधिक है ११ । उससे नपुंसकवेदका बन्धककाल संख्यातगुणा है २२ । उससे अरति-शोकका बन्धककाल विशेष अधिक है २३ । इस अल्पबहुत्वको साधन करके पुरुषवेदके जघन्य स्थितिसंक्रमसे स्त्रीवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक ही जानना चाहिए ।

शंका—वह कैसे ?

समाधान—स्त्रीवेद और नपुंसकवेदके बन्धककालका जोड़ संदृष्टिसे ३१ है । पुरुषवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम लानेके लिए इतना गलाया है । परन्तु इससे विशेषहीन पुरुषवेद और नपुंसक-वेदके बन्धककालका जोड़ है जो संदृष्टिसे यह २५ है । स्त्रीवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम लानेके लिए जो गलाया गया वह इस प्रकार है, इसलिए पुरुषवेदके बन्धककालको स्त्रीवेदके बन्धककालमेंसे घटाकर जो शेष बचे उतना विशेष अधिक स्त्रीवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम जानना चाहिए । संदृष्टिसे घटाकर जो शेष बचा उसका प्रमाण यह ६ है । यहाँपर नहीं गलाये गये प्रतिपक्ष बन्धक कालके साथ नोकषायोंके जघन्य स्थितिसंक्रमकी संदृष्टि यह ९६ है । इसमेंसे प्रतिपक्ष बन्धककालके गलानेसे पुरुषवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम यह ६५ प्राप्त होता है । इससे विशेष अधिक गलाकर शेष बचा स्त्रीवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम यह ७१ है ।

✽ उससे हास्य-रतिका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है ।

§ ७२६. कितना अधिक है ? स्त्रीवेदके बन्धककालके संख्यातवें भागको पुरुषवेदके बन्धककालमेंसे घटाकर जो शेष बचे उतना अधिक है । संदृष्टिसे वह यह २ है । उतना विशेष अधिक हास्य-रतिका जघन्य स्थितिसंक्रम यह ७३ है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

❀ णवुंसयवेदजहण्णट्ठिदिसंकमो विसेसाहिओ ।

§ ७२७. किं कारणं ? हस्स-रईणमरइ-सोगबंधगद्धा गालिदा । णवुंसयवेदस्स पुण एत्तो संखेज्जगुणहीणो पुरिसित्थिवेदबंधगद्धासमासो गालिदो । तम्हा अरदि-सोगबंधगद्धाए संखेज्जेहि भागेहि णवुंसयवेदजहण्णट्ठिदिसंकमो तत्तो विसेसाहिओ जादो । संदिट्ठीए तस्स पमाणमेदं ८४ ।

❀ अरइ-सोगाणं जहण्णट्ठिदिसंकमो विसेसाहिओ ।

§ ७२८. कारणमरइ-सोगाणं हस्स-रदिबंधगद्धामेत्तं गलिदं । णवुंसयवेदस्स पुण एत्तो विसेसाहियं इत्थि-पुरिसवेदबंधगद्धासमासमेत्तं गलिदं । तदो इत्थि-पुरिसवेदबंधगद्धा-समासे हस्स-रइबंधगद्धं सोहिय सुद्धसेसमेत्तेण विसेसाहियत्तमेत्थ दट्ठव्वं । पयद-जहण्णट्ठिदिसंकमसंदिट्ठी एसा ८५ ।

❀ भय-दुगुंछाणं जहण्णट्ठिदिसंकमो विसेसाहिओ ।

§ ७२९. केत्तियमेत्तो एत्थतणो विसेसो ? हस्स-रइबंधगद्धामेत्तो । कुदो एवं ? धुवबंधित्तेण पडिवक्खबंधगद्धागालणेण विणा लद्धजहण्णभावत्तादो ।

❀ बारसकसायाणं जहण्णट्ठिदिसंकमो विसेसाहिओ ।

❋ उससे नपुंसकवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है ।

§ ७२७. कारण क्या है ? क्योंकि हास्य-रतिका जघन्य स्थितिसंक्रम लानेके लिए अरति-शोकका बन्धककाल गलाया गया है । परन्तु नपुंसकवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम लानेके लिए इससे संख्यातगुणा हीन पुरुषवेद-स्त्रीवेदके बन्धककालके जोड़ रूप कालको गलाया गया है, इसलिए नपुंसकवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम हास्य-रतिके जघन्य स्थितिसंक्रमसे विशेष अधिक हो गया है जो विशेष अधिकका प्रमाण अरति-शोकके संख्यात बहुभागरूप होता है । संदृष्टिसे नपुंसकवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम ८४ है ।

❋ उससे अरति-शोकका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है ।

§ ७२८. क्योंकि अरति-शोकका जघन्य स्थितिसंक्रम लानेके लिए हास्य-रतिबन्धककालमात्र गला है । परन्तु नपुंसकवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम लानेके लिए इससे विशेष अधिक गला है, क्योंकि वह स्त्री-पुरुषवेदके बन्धककालका जो जोड़ हो तत्प्रमाण गला है, इसलिए स्त्री-पुरुषवेदके बन्धककालके जोड़मेंसे हास्य-रतिबन्धककालको घटाकर जो शेष रहे उतना विशेष अधिक यहाँ पर जानना चाहिए । इस प्रकार प्रकृत जघन्य स्थितिसंक्रमकी संदृष्टि यह ८५ है ।

❋ उससे भय-जुगुप्साका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है ।

§ ७२९. ८६ । यहाँ पर विशेषका प्रमाण कितना है ? यहाँ पर विशेषका प्रमाण हास्य-रतिके बन्धककालप्रमाण है ।

शंका—ऐसा क्यों है ?

समाधान—क्योंकि भय जुगुप्सा ध्रुवबन्धिनी प्रकृतियाँ हैं, इसलिए प्रतिपक्ष बन्धककालको गलाये बिना यहाँ जघन्य स्थितिसंक्रमपना प्राप्त हो जाता है ।

❋ उससे बारह कषायोंका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ७३०. १०० । केत्तियमेत्तेण ? आवलियमेत्तेण । कुदो एवं ? बारसक० जह० ट्ठिदिसंकमं पडिच्छिय आवलियादीदस्स भय-दुगुंछाणं जहण्णसामित्तविहाणादो । तं जहा—असण्णिचरिमावत्थाए सगपाओग्गसव्वजहण्णहदसमुप्पत्तियट्ठिदिसंतकम्मेण समाणं बंधमाणस्स कसायट्ठिदिपमाणं संदिट्ठीए एत्तियमिदि घेत्तव्वं १०४ । संपहि एत्तियमेत्त-मसण्णिचरिमावलियाए विदियसमयम्मि बंधियूण बंधावलियादिक्कंतमेदं णेरइयविदियविग्गहे भय-दुगुंछासु पडिच्छदि त्ति तक्कालपडिच्छिदावलियूणकसायट्ठिदिसमाणमेत्तियं होइ १०० । पुणो एदं णेरइओ सरीरं घेत्तूणावलियमेत्तं गालिय भय-दुगुंछाणं जहण्णसामित्तं पडिवज्जदि त्ति तक्कालियजहण्णट्ठिदिसंकमो भय-दुगुंछाणमेत्तिओ होइ ९६ । कसायाणं पुण संतसमाणट्ठिदिबंधो असण्णिपच्छायदणेरइयविदियविग्गहविसओ एत्तियमेत्तो होइ[1] १०४ । पुणो गालिदावलिओ एत्तियमेत्तो होऊण १०० जहण्णसामित्तमणुहवदि त्ति सिद्धं पुव्विल्लादो एदस्सावलियब्भहियत्तं । एवमेसो चुण्णिसुत्ताहिप्पाओ परूविदो, तदहिप्पाएण असण्णिपच्छायदणेरइयस्स दुसमयाहियावलियब्भंतरे सव्वत्थेव बारसकसाय-भय-दुगुंछाणं जहण्णसामित्तावलंबणे विरोहाभावादो । उच्चारणाहिप्पाएण पुण बारस-

---

§ ७३०. १०० । कितना अधिक है ? आवलिमात्र अधिक है ।

शंका—ऐसा क्यों है ?

समाधान—क्योंकि भय-जुगुप्सामें बारह कषायोंका जघन्य स्थितिसंक्रम करके एक आवलिके बाद भय-जुगुप्साके जघन्य स्वामित्वके प्राप्त होनेका विधान है। यथा—असंज्ञीकी अन्तिम अवस्थामें अपने योग्य सबसे जघन्य हतसमुत्पत्तिक स्थितिसत्कर्मके समान बन्ध करनेवाले उसके जो कषायकी स्थितिका प्रमाण प्राप्त होता है वह संदृष्टिकी अपेक्षा इतना १०४ ग्रहण करना चाहिए। अब इतनीमात्र कषायकी स्थितिको असंज्ञीकी अन्तिम आवलिके दूसरे समयमें बाँधकर बन्धावलिसे रहित इसे नारकी जीवके दूसरे विग्रहमें भय-जुगुप्सामें संक्रमित करता है, इसलिए उस कालमें जो संक्रमित हुआ है वह एक आवलिकम कषायकी स्थितिके समान इतना १०० होता है। पुनः नारकी जीव शरीरको ग्रहण कर इसमेंसे आवलिमात्रको गलाकर भय-जुगुप्साके जघन्य स्वामित्वको प्राप्त होता है, इसलिए उस समयमें भय-जुगुप्साका जघन्य स्थितिसंक्रम इतना ९६ होता है। परन्तु असंज्ञी पर्यायसे आकर उक्त नारकी जीवके दूसरे विग्रहसे सम्बन्ध रखनेवाला सत्कर्मके समान कषायोंका जघन्य स्थितिबन्ध इतना १०४ होता है। पुनः एक आवलिके गलनेके बाद इतना १०० होकर जघन्य स्वामित्वको प्रात होता है, इसलिए भय-जुगुप्साके जघन्य स्थितिसंक्रमसे इसका एक आवलि अधिक जघन्य स्थितिसंक्रम सिद्ध हुआ। इस प्रकार यह चूर्णिसूत्रका अभिप्राय कहा, क्योंकि उसके अभिप्रायानुसार असंज्ञी पर्यायसे आकर नरकमें उत्पन्न हुए नारकी जीवके दो समय अधिक एक आवलिके भीतर सभी जगह बारह कषाय, भय और जुगुप्साके जघन्य स्वामित्वका अवलम्बन करने पर कोई विरोध नहीं आता। परन्तु उच्चारणाके अभिप्रायानुसार बारह कषाय, भय और जुगुप्साका जघन्य स्थितिसंक्रम नारकियोंमें

---

१. ता०प्रतौ –मेत्तोहिंतो (होइ), आ०प्रतौ –मेत्तोहिंतो इति पाठः

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कसाय-भय-दुगुंछाणं जहण्णट्ठिदिसंकमो णेरइएसु सरिसो चेव होइ, विदियविग्गहे गलिद-सेसजहण्णट्ठिदिसंतकम्मं कसाय-णोकसायाणं समाणभावेणावट्ठिदं घेत्तूण पुणो वि आवलियमेत्तकालं गालिय दुसमयाहियावलियणेरइयम्मि जहण्णसामित्तविहाणादो ।

❀ मिच्छत्तस्स जहण्णट्ठिदिसंकमो विसेसाहिओ ।

§ ७३१. कुदो ? पलिदोवमसंखेज्जभागूणसागरोवमसहस्सचदुसत्तभागमेत्तकसाय-जहण्णट्ठिदिसंकमादो किंचूणसागरोवमसहस्समेत्तमिच्छत्तजहण्णट्ठिदिसंकमस्स विसेसा-हियत्तदंसणादो । एवमेसो सुत्ताणुसारेण णिरओघो परूविदो । एत्तो उच्चारणाहिप्पाय-मस्सिऊण वत्तइस्सामो । तं जहा—

§ ७३२. णेरइएसु सव्वत्थोवो सम्मत्त० जह० ट्ठिसंक० । जट्ठिदिसं० असं०गुणो । अणंताणु०४ जह० ट्ठिदिसंक० असंखे०गुणो । सम्मामि० जह० असंखे०गुणो । पुरिसवेद० जह० ट्ठिदिसं० असंखे०गुणो । इत्थिवेद० जह० ट्ठिदिसं० विसेसाहिओ । हस्स-रइ० जह० ट्ठिदिसं० विसे० । अरदि-सोग० जह० विसेसा० । णवुंस० जह० विसे० । बारसक०-भय-दुगुंछाणं जह० ट्ठिदिसंक० विसे० । मिच्छ० जह० ट्ठिदिसं० विसेसाहिओ त्ति ।

§ ७३३. एत्थुवउज्जंतयमद्धप्पाबहुअं । तं जहा—सव्वत्थोवा पुरिसवेदबंधगद्धा २ । इत्थिवेदबंधगद्धा संखेज्जगुणा ४ । हस्स-रइबंधगद्धा संखेज्जगुणा १६ । अरदि-सोगबंधगद्धा

समान ही होता है, क्योंकि कषायों और नोकषायोंके गल कर शेष रहे जघन्य स्थितिसत्कर्मको समानरूपसे अवस्थित ग्रहण कर तथा फिर एक आवलि कालको गलाकर नारकीके दो समय अधिक एक आवलि कालके अन्तमें जघन्य स्वामित्वका विधान किया है ।

❀ उससे मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है ।

§ ७३१. क्योंकि एक हजार सागरके पल्यके संख्यातवें भाग कम चार भागप्रमाण कषायोंके जघन्य स्थितिसंक्रमसे मिथ्यात्वका कुछ कम एक हजार सागरप्रमाण जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक देखा जाता है । इस प्रकार यह सूत्रके अनुसार सामान्यसे नारकियोंमें जघन्य स्थिति-संक्रमके अल्पबहुत्वका कथन किया । अब उच्चारणाके अभिप्रायानुसार इसे बतलाते हैं । यथा—

§ ७३२. नारकियोंमें सम्यक्त्वका जघन्य स्थितिसंक्रम सबसे स्तोक है । उससे यत्स्थिति-संक्रम असंख्यातगुणा है । उससे अनन्तानुबन्धीचतुष्कका जघन्य स्थितिसंक्रम असंख्यातगुणा है । उससे सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रम असंख्यातगुणा है । उससे पुरुषवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम असंख्यातगुणा है । उससे स्त्रीवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है । उससे हास्य-रतिका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है । उससे अरति-शोकका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है । उससे नपुंसकवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है । उससे बारह कषाय, भय और जुगुप्साका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है । उससे मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है ।

§ ७३३. अब यहाँ उपयुक्त काल अल्पबहुत्वको बतलाते हैं । यथा—पुरुषवेदका बन्धककाल सबसे स्तोक है २ । उससे स्त्रीवेदका बन्धककाल संख्यातगुणा है ४ । उससे हास्य-रतिका बन्धककाल संख्यातगुणा है १६ । उससे अरति-शोकका बन्धककाल संख्यातगुणा है ४८ । उससे नपुंसकवेदका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संखेज्जगुणा ४८। णवुंसयवेदबंधगद्धा विसेसाहिया ५८। एदमप्पाबहुअं साहणं काऊणा-णंतरपरूविदमुच्चारणप्पाबहुअं सकारणमणुगंतव्वं। एवं णिरओघो समत्तो। एवं चेव पढमाए पुढवीए। एत्तो बिदियपुढवीए सेसपुढवीणं देसामासयभावेणप्पाबहुअपरूवणट्ठ-मुत्तरसुत्तकलावमाह—

❀ बिदियाए सव्वत्थोवो अणंताणुबंधीणं जहण्णट्ठिदिसंकमो।

§ ७३४. तत्थ विसंजोयणाचरिमफालीए करणपरिणामेहि लद्धघादावसेसिदाए सव्वत्थोवत्ताविरोहादो।

❀ सम्मत्तस्स जहण्णट्ठिदिसंकमो असंखेज्जगुणो।

§ ७३५. कुदो? उव्वेल्लणचरिमफालीए लद्धजहण्णभावत्तादो।

❀ सम्मामिच्छत्तस्स जहण्णट्ठिदिसंकमो विसेसाहिओ।

§ ७३६. दोण्हं पि उव्वेल्लणाचरिमफालीए जहण्णसामित्तं जादं। किंतु समत्त-चरिमुव्वेल्लणफालिं पेक्खिऊण सम्मामिच्छत्तुव्वेल्लणचरिमफाली विसेसाहिया। कारणं पढमदाए उव्वेल्लमाणो मिच्छाइट्ठी सव्वत्थ सम्मामिच्छत्तुव्वेल्लणकंडयादो सम्मत्तस्स विसेसाहियमेव ट्ठिदिखंडयघादं करेइ जाव सम्मत्तमुव्वेल्लिदं ति। पुणो सम्मामिच्छत्त-मुव्वेल्लेमाणो सम्मत्तचरिमफालीदो विसेसाहियकमेण ट्ठिदिखंडयमागाएदि जाव सगचरिमट्ठिदिखंडयादो त्ति। तदो एदमेत्थ विसेसाहियत्ते कारणं।

बन्धककाल विशेष अधिक है ५८। इस अल्पबहुत्वको साधन करके अनन्तर कहे गये उच्चारणा अल्पबहुत्वको सकारण जानना चाहिए। इस प्रकार सामान्य नारकियोंमें अल्पबहुत्व समाप्त हुआ। इसी प्रकार पहिली पृथिवीमें जानना चाहिए। आगे दूसरी पृथिवीमें शेष पृथिवियोंके देशामर्षकरूपसे अल्पबहुत्वका कथन करनेके लिए आगेके सूत्रकलापको कहते हैं—

※ दूसरी पृथिवीमें अनन्तानुबन्धियोंका जघन्य स्थितिसंक्रम सबसे स्तोक है।

§ ७३४. क्योंकि करणपरिणामोंके द्वारा घात होनेसे शेष बची हुई विसंयोजनासम्बन्धी अन्तिम फालिके सबसे स्तोक होनेमें कोई विरोध नहीं है।

※ उससे सम्यक्त्वका जघन्य स्थितिसंक्रम असंख्यातगुणा है।

§ ७३५. क्योंकि उद्वेलनाकी अन्तिम फालिमें इसका जघन्यपना प्राप्त होता है।

※ उससे सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है।

§ ७३६. क्योंकि यद्यपि दोनोंका ही उद्वेलनाकी अन्तिम फालिमें जघन्य स्वामित्व प्राप्त हुआ है फिर भी सम्यक्त्वकी अन्तिम उद्वेलनाफालिको देखते हुए सम्यग्मिथ्यात्वकी अन्तिम उद्वेलनाफालि विशेष अधिक है। कारण कि प्रथम अवस्थामें उद्वेलना करनेवाला मिथ्यादृष्टि जीव सम्यक्त्वकी उद्वेलना होने तक सर्वत्र सम्यग्मिथ्यात्वके उद्वेलनाकाण्डकसे सम्यक्त्वका स्थिति-काण्डकघात विशेष अधिक ही करता है। फिर सम्यग्मिथ्यात्वकी उद्वेलना करता हुआ अपने अन्तिम स्थितिकाण्डकके प्राप्त होने तक सम्यक्त्वकी अन्तिम फालिसे विशेष अधिकके क्रमसे स्थिति-काण्डकको ग्रहण करता है। इसलिए यह यहाँ पर विशेष अधिक होनेका कारण है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

*** बारसकसाय-णवणोकसायाणं जहण्णट्ठिदिसंकमो तुल्लो असंखेज्जगुणो।**

§ ७३७. कुदो ? अंतोकोडाकोडीपमाणत्तादो।

*** मिच्छत्तस्स जहण्णट्ठिदिसंकमो विसेसाहिओ।**

§ ७३८. जइ वि सामित्तभेदो णत्थि तो वि मिच्छत्तजहण्णट्ठिदिसंकमस्स कसाय-जहण्णट्ठिदिसंकमादो विसेसाहियत्तमेत्थ ण विरुद्धं, चालीस०पडिभागीयंतोकोडाकोडीदो सत्तरि०पडिभागीयंतोकोडाकोडीए तीहि सत्तभागेहिं अहियत्तदंसणादो। एवं सेसपुढवीसु। णवरि सत्तमाए सव्वत्थोवो अणंताणु०४ जहण्णट्ठिदिसंकमो। सम्म० जह०ट्ठिदिसंक० असंखे०गुणो। सम्मामि० जह०ट्ठिदिसं० विसे०। पुरिसवेद० जह०ट्ठिदिसं० असंखेज्ज-गुणो। इत्थिवेद० जह०ट्ठिदिसं० विसे०। हस्स-रइ० जह०ट्ठिदिसं० विसे०। णवुंसय-वेद० जह०ट्ठिदिसं० विसे०। अरदि-सोग० जह०ट्ठिदिसं० विसे०। उच्चारणाहिप्पाएण अरइ-सोगाणमुवरि णवुंस० जह०ट्ठिदिसं० विसेसाहिओ वत्तव्वं। तदो भय-दुगुंछ० जह०-ट्ठिदिसंक० विसे०। बारसक० जह०ट्ठिदिसं० विसे०। मिच्छ० जह०ट्ठिदिसं० विसे०।

§ ७३९. एत्तो सेसगईणमप्पाबहुअमुच्चारणाणुसारेण वत्तइस्सामो। तं जहा— तिरिक्खा० णारयभंगो। णवरि णवुंसयवेदस्सुवरि भय-दुगुंछ० विसे०। बारसक० विसे०।

*** उससे बारह कषाय और नौ नोकषायोंका जघन्य स्थितिसंक्रम परस्पर तुल्य होकर भी असंख्यातगुणा है।**

§ ७३७. क्योंकि यह अन्तःकोटाकोटिप्रमाण है।

*** उससे मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है।**

§ ७३८. यद्यपि स्वामित्वभेद नहीं है तो भी कषायोंके जघन्य स्थितिसंक्रमसे मिथ्यात्वके जघन्य स्थितिसंक्रमके यहाँपर विशेष अधिक होनेमें विरोध नहीं आता, क्योंकि चालीस कोड़ाकोड़ीके प्रतिभागरूपसे प्राप्त हुए अन्तःकोड़ाकोड़ीसे सत्तर कोड़ाकोड़ीके प्रतिभागरूपसे प्राप्त हुआ अन्तःकोड़ाकोड़ी तीन-सातभाग अधिक देखा जाता है। इसी प्रकार शेष पृथिवियोंमें जानना चाहिए। इतनी विशेषता है कि सातवीं पृथिवीमें अनन्तानुबन्धीचतुष्कका जघन्य स्थितिसंक्रम सबसे स्तोक है। उससे सम्यक्त्वका जघन्य स्थितिसंक्रम असंख्यातगुणा है। उससे सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है। उससे पुरुषवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम असंख्यातगुणा है। उससे स्त्रीवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है। उससे हास्य-रतिका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है। उससे नपुंसकवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है। उससे अरति-शोकका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है। उच्चारणाके अभिप्रायसे अरति-शोकके ऊपर नपुंसकवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है ऐसा कहना चाहिए। उससे भय-जुगुप्साका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है। उससे बारह कषायोंका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है। उससे मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है।

§ ७३९. आगे शेष गतियोंके अल्पबहुत्वको उच्चारणाके अनुसार बतलाते हैं। यथा— तिर्यञ्चोंका भङ्ग नारकियोंके समान है। इतनी विशेषता है कि नपुंसकवेदके ऊपर भय-जुगुप्साका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है। उससे बारह कषायोंका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिच्छ० विसे० । पंचिंदियतिरिक्ख-पंचिं०तिरि०पज्ज० णारयभंगो । पंचिंदियतिरिक्ख-जोणिणीसु सव्वत्थोवो अणंताणु०४ जह०ट्ठिदिसं० । सम्म० जह० ट्ठिदिसं० असंखे०-गुणो । सम्मामि० जह०ट्ठिदिसंक० विसेसा० । पुरिसवेद० जह० असंखे०गुणो । सेसं णारयभंगो । पंचिं०तिरि०अपज्ज०-मणुसअपज्ज० सव्वत्थोवो सम्मत्त० जह०ट्ठिदिसंक० । सम्मामि० जह०ट्ठिदिसं० विसे० । पुरिसवेद० जह०ट्ठिदिसं० असंखे०गुणो । इत्थि-वेद० जह०ट्ठिदिसं० विसेसा० । हस्स-रइ० विसे० । अरइ-सोग० विसे० । णवुंसय-वेद० जह०ट्ठिदिसं० विसे० । सोलसक०-भय-दुगुंछ० जह० विसे० । मिच्छ० जह०-ट्ठिदिसं० विसे० ।

§ ७४०. मणुस-मणुसपज्ज० ओघं । मणुसिणीसु सव्वत्थोवो सम्म०-लोह०-संज० जह०ट्ठिदिसं० । जट्ठिदिसंक० असंखे०गुणो । मायासंज० जह०ट्ठिदिसं० संखेज्जगुणो[1] । जट्ठिदिसं० विसे० । माणसंजल० जह०ट्ठिदिसंक० विसे० । जट्ठिदिसंक० विसे० । कोहसंज० जह०ट्ठिदिसंक० विसे० । जट्ठिदि० विसे० । पुरिसवेद-छण्णोकसा० जह०ट्ठिदिसंक० तुल्लो संखेज्जगुणो । इत्थिवेद० जह०ट्ठिदिसं० असंखे०गुणो । णउंसयवेद० जह०ट्ठिदिसं० असंखे०गुणो । अट्ठकसाय० जह०ट्ठिदिसंक० असंखे०गुणो । सम्मामि०

है । उससे मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है । पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्तकोंमें नारकियोंके समान भंग है । पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च योनिनियोंमें अनन्तानुबन्धीचतुष्कका जघन्य स्थितिसंक्रम सबसे स्तोक है । उससे सम्यक्त्वका जघन्य स्थितिसंक्रम असंख्यातगुणा है । उससे सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है । उससे पुरुषवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम असंख्यातगुणा है । शेष भंग नारकियोंके समान है । पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें सम्यक्त्वका जघन्य स्थितिसंक्रम सबसे स्तोक है । उससे सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है । उससे पुरुषवेदका जघन्य स्थितसंक्रम असंख्यातगुणा है । उससे स्त्रीवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है । उससे हास्य-रतिका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है । उससे अरति-शोकका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है । उससे नपुंसकवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है । उससे सोलह कषाय, भय और जुगुप्साका जघन्य स्थिति-संक्रम विशेष अधिक है । उससे मिथ्यात्वका जघन्य स्थित्तिसंक्रम विशेष अधिक है ।

§ ७४० मनुष्य और मनुष्य पर्याप्तकोंमें ओघके समान भंग है । मनुष्यिनियोंमें सम्यक्त्व और लोभसंज्वलनका जघन्य स्थितिसंक्रम सबसे स्तोक है । उससे यत्स्थितिसंक्रम असंख्यातगुणा है । उससे मायाका जघन्य स्थितिसंक्रम संख्यातगुणा है । उससे यत्स्थिति संक्रम विशेष अधिक है । उससे मानका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है । उससे यत्स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है । उससे क्रोधका जघन्य स्थितिसंक्रमविशेष अधिक है । उससे यत्स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है । उससे पुरुषवेद और छह नोकषायोंका जघन्य स्थितिसंक्रम परस्पर तुल्य होकर संख्यातगुणा है । उससे स्त्रीवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम असंख्यातगुणा है । उससे नपुंसकवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम असंख्यातगुणा है । उससे आठ कषायोंका जघन्य स्थितिसंक्रम असंख्यातगुणा है । उससे

१. आ०प्रतौ जह० ट्ठिदिसं० विसे० ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जह०ट्ठिदिसं० असंखे०गुणो। मिच्छ० जह० असंखे०गुणो। अणंताणु०४ जह०ट्ठिदिसं असंखे०गुणो।

§ ७४१. देवाणं णारयभंगो। भवण०-वाण० सव्वत्थोवो अणंताणु०४ जह०-ट्ठिदिसं०। सम्म० जह०ट्ठिदिसं० असंखे०गुणो। सम्मामि० जह०ट्ठिदिसं विसे०। पुरिसवेद० जह०ट्ठिदिसं० असंखे०गुणो। सेसं देवोघं। जोदिसि० विदियपुढवि-भंगो। सोहम्मादि जाव णवगेवज्जा त्ति सव्वत्थोवो सम्म० जह०ट्ठिदिसंक०। जट्ठिदिसं० असंखे०गुणो। अणंताणु०४ जह०ट्ठिदि०संक० असंखे०गुणो। सम्मामि० जह०ट्ठिदिसंक० असंखे०गुणो। बारसक०-णवणोक० जह०ट्ठिदिसं० असंखे०गुणो। मिच्छ० जह०ट्ठिदिसं० संखे०गुणो। अणुद्दिसादि सव्वट्ठे त्ति सव्वत्थोवो सम्म० जह०-ट्ठिदिसंक०। जट्ठिदिसंक० असंखे०गुणो। अणंताणु०४ जह०ट्ठिदिसंक० असंखे०गुणो। बारसक०-णवणोक० जह०ट्ठिदिसं० असंखे०गुणो। मिच्छ०-सम्मामि० जह०ट्ठिदिसं० सरिसो संखे०गुणो। एवं जाव०।

एवं चउवीसमणिओगद्दाराणि समत्ताणि।

❀ भुजगारसंकमस्स अट्ठपदं काऊण सामित्तं कायव्वं।

सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रम असंख्यातगुणा है। उससे मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रम असंख्यातगुणा है। उससे अनन्तानुबन्धीचतुष्कका जघन्य स्थितिसंक्रम असंख्यातगुणा है।

§ ७४१. देवोंमें नारकियोंके समान भंग है। भवनवासी और व्यन्तर देवोंमें अनन्तानुबन्धी-चतुष्कका जघन्य स्थितिसंक्रम सबसे स्तोक है। उससे सम्यक्त्वका जघन्य स्थितिसंक्रम असंख्यात-गुणा है। उससे सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रम विशेष अधिक है। उससे पुरुषवेदका जघन्य स्थितिसंक्रम असंख्यातगुणा है। शेष भंग सामान्य देवोंके समान है। ज्योतिषियोंमें दूसरी पृथिवीके समान भंग है। सौधर्म कल्पसे लेकर नौ ग्रैवेयकतकके देवोंमें सम्यक्त्वका जघन्य स्थितिसंक्रम सबसे स्तोक है। उससे यत्स्थितिसंक्रम असंख्यातगुणा है। उससे अनन्तानुबन्धी-चतुष्कका जघन्य स्थितिसंक्रम असंख्यातगुणा है। उससे सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रम असंख्यातगुणा है। उससे बारह कषायों और नौ नोकषायोंका जघन्य स्थितिसंक्रम असंख्यातगुणा है। उससे मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रम संख्यातगुणा है। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें सम्यक्त्वका जघन्य स्थितिसंक्रम सबसे स्तोक है। उससे यत्स्थितिसंक्रम असंख्यातगुणा है। उससे अनन्तानुबन्धीचतुष्कका जघन्य स्थितिसंक्रम असंख्यातगुणा है। उससे बारह कषायों और नौ नोकषायोंका जघन्य स्थितिसंक्रम असंख्यातगुणा है। उससे मिथ्यात्व और सम्यग्मिथ्यात्वका जघन्य स्थितिसंक्रम परस्पर सदृश होकर संख्यातगुणा है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

इस प्रकार चौबीस अनुयोगद्वार समाप्त हुए।

*** भुजगारसंक्रमका अर्थपद करके स्वामित्व करना चाहिए।**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ७४२. एत्तो भुजगारपरूवणा पत्तावसरो। तत्थ ताव अट्ठपदं कायव्वं, अण्णहा तस्सरूवविसयणिण्णयाणुप्पत्तीदो। किं तमट्ठपदं ? वुच्चदे—अणंतरोसक्काविदविदिक्कंतसमए अप्पदरसंकमादो एण्हिं बहुवयरं संकामेइ त्ति एसो भुजगारसंकमो। अणंतरुस्सक्काविदविदिक्कंतसमए बहुवयरसंकमादो एण्हिं थोवयराओ ठिदीओ संकामेइ त्ति एस अप्पयरसंकमो। तत्तियं तत्तियं चेव संकामेइ त्ति एसो अवट्ठिदसंकमो। अणंतरवदिक्कंतसमए असंकमादो संकामेदि त्ति एसो अवत्तव्वसंकमो। एदेणट्ठपदेण भुजगारअप्पदर-अवट्ठिदावत्तव्वसंकामयाणं परूवणा भुजगारसंकमो त्ति वुच्चइ। संपहि भुजगारपरूवणाए इमाणि तेरस अणियोगद्दाराणि समुक्कित्तणादीणि अप्पाबहुअपज्जंताणि। तत्थ समुक्कित्तणं काऊण पच्छा सामित्तं कायव्वमिदि सुत्ताहिप्पाओ, असमुक्कित्तिदाणं भुजगारादीणं सामित्तादिविहाणे असंबद्धत्तप्पसंगादो। सा च समुक्कित्तणा ओघादेसभेदेण दुविहा। ओघेण ताव मिच्छत्तस्स अत्थि भुजगार-अप्प०अवट्ठिदसंकामगा। सम्म०-सम्मामि०-सोलसक०-णवणोक० अत्थि भुज०-अप्प०-अवट्ठि०-अवत्त०संका०। एवं मणुसतिए। आदेसेण सव्वमग्गणासु ट्ठिदिविहत्तिभंगो। एवं समुक्कित्तिदाणं भुजगारादिपदाणं सामित्तपरूवणट्ठमुत्तरसुत्तावयारो—

※ मिच्छत्तस्स भुजगार०-अप्पदर-अवट्ठिसंकामओ को होदि? अण्णदरो।

---

§ ७४२. आगे भुजगारका कथन अवसर प्राप्त है। उसमें सर्वप्रथम अर्थपद करना चाहिए, अन्यथा उसका स्वरूपविषयक निर्णय नहीं बन सकता। वह अर्थपद क्या है ? कहते हैं—अनन्तर पूर्व अतीत समयमें हुए अल्पतर संक्रमसे वर्तमान समयमें बहुतरका संक्रम करता है यह भुजगारसंक्रम है। अनन्तर पूर्व अतीत समयमें हुए बहुतर संक्रमसे वर्तमान समयमें स्तोकतर स्थितियोंका संक्रम करता है यह अल्पतर संक्रम है। उतनी ही उतनी ही स्थितियोंका संक्रम करता है यह अवस्थितसंक्रम है तथा अनन्तर अतीत समयमें हुए असंक्रमसे वर्तमान समयमें संक्रम करता है यह अवक्तव्यसंक्रम है। इस अर्थपदके अनुसार भुजगार, अल्पतर, अवस्थित और अवक्तव्यसंक्रामकोंकी प्ररूपणा भुजगारसंक्रम कही जाती है। अब भुजगारसंक्रममें समुत्कर्तनासे लेकर अल्पबहुत्व तक ये तेरह अनुयोगद्वार होते हैं। उनमेंसे समुत्कीर्तनाको करके बादमें स्वामित्व करना चाहिए यह इस सूत्रका अभिप्राय है, क्योंकि समुत्कीर्तना किये बिना भुजगार आदिकके स्वामित्वका विधान करने पर असम्बद्धपनेका प्रसंग आता है। वह समत्कीर्तना ओघ और आदेशके भेदसे दो प्रकारकी है। ओघसे मिथ्यात्वके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदके संक्रामक जीव हैं। सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंके भुजगार, अल्पतर, अवस्थित और अवक्तव्यपदके संक्रामक जीव हैं। इसी प्रकार मनुष्यत्रिकमें जानना चाहिए। आदेशसे सब मार्गणाओंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है। इस प्रकार जिनकी समुत्कीर्तना की है ऐसे भुजगार आदि पदोंके स्वामित्वका कथन करनेके लिए आगेके सूत्रका अवतार करते हैं—

※ मिथ्यात्वके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितपदका संक्रामक कौन जीव है ? अन्यतर जीव है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ७४३. एत्थण्णदरणिद्देसेण णेरइओ तिरिक्खो मणुस्सो देवो वा त्ति गहियव्वं, सव्वत्थ सामित्तस्साविरोहादो। ओगाहणादिविसेसपडिसेहट्ठं च अण्णदरणिद्देसो। एत्थ भुजगारावट्ठिदसंकामगो मिच्छाइट्ठी चेव अप्पदरसंकामगो पुण अण्णदरो मिच्छाइट्ठी सम्माइट्ठी वा होइ त्ति घेत्तव्वं।

❀ अवत्तव्वसंकामओ णत्थि।

§ ७४४. असंकमादो संकमो अवत्तव्वसंकमो णाम। ण च मिच्छत्तस्स तारिससंकमसंभवो, उवसंतकसायस्स वि तस्सोकड्डणापरपयडिसंकमाणमत्थित्तदंसणादो।

❀ एवं सेसाणं पयडीणं णवरि अवत्तव्वया अत्थि।

§ ७४५. एवं सेसाणं पि सम्मत्तादिपयडीणं भुजगारादिविसयं सामित्तमणुगंतव्वं, अण्णदरसामिसंबंधं पडि मिच्छत्तपरूवणादो विसेसाभावादो। णवरि सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं भुजगारस्स अण्णदरो सम्माइट्ठी, अप्पदरस्स मिच्छाइट्ठी सम्माइट्ठी वा, अवट्ठिदस्स पुव्वुप्पणादो सम्मत्तादो समयुत्तरमिच्छत्तसंतकम्मियविदियसमयसम्माइट्ठी सामी होइ त्ति विसेसो जाणियव्वो। अण्णं च अवत्तव्वया अत्थि, सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमणादियमिच्छाइट्ठिणा उव्वेल्लिदतदुभयसंतकम्मिएण वा सम्मत्ते पडिवण्णे

---

§ ७४३. यहाँ सूत्रमें 'अन्यतर' पदके निर्देश द्वारा नारकी, तिर्यञ्च, मनुष्य अथवा देव मिथ्यात्वके उक्त पदोंका संक्रामक है ऐसा ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि सर्वत्र स्वामित्वके प्राप्त होनेमें विरोधका अभाव है। अवगाहना आदि विशेषका निषेध करनेके लिए 'अन्यतर' पदका निर्देश किया है। यहाँ पर भुजगार और अवस्थितपदका संक्रामक मिथ्यादृष्टि ही होता है। परन्तु अल्पतरपदका संक्रामक मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि दोनों होते हैं ऐसा ग्रहण करना चाहिए।

* मिथ्यात्वके अवक्तव्यपदका संक्रामक नहीं है।

§ ७४४. असंक्रमसे संक्रम होना अवक्तव्यसंक्रम है। परन्तु मिथ्यात्वका इस प्रकारका संक्रम सम्भव नहीं है, क्योंकि उपशान्तकषाय जीवके भी मिथ्यात्वके अपकर्षण और परप्रकृति संक्रमका अस्तित्व देखा जाता है।

* इसी प्रकार शेष प्रकृतियोंका स्वामित्व है। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके अवक्तव्यसंक्रमवाले जीव हैं।

§ ७४५. इसी प्रकार शेष सम्यक्त्व आदि प्रकृतियोंका भी भुजगार आदि पदविषयक स्वामित्व जानना चाहिए, क्योंकि अन्यतर जीव स्वामी है इस अपेक्षासे मिथ्यात्वकी प्ररूपणासे इस प्ररूपणामें कोई भेद नहीं है। इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके भुजगारपदका अन्यतर सम्यग्दृष्टि जीव स्वामी है। अल्पतरपदका मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टि जीव स्वामी है। तथा अवस्थितपदका पूर्वमें उत्पन्न हुए सम्यक्त्वसे एक समय अधिक मिथ्यात्वका सत्कर्मवाला द्वितीय समयमें स्थित सम्यग्दृष्टि जीव स्वामी है इतना विशेष यहाँ जानना चाहिए। इतना और है कि इनके अवक्तव्य पदवाले जीव हैं, क्योंकि अनादि मिथ्यादृष्टि जीवोंके अथवा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्व इन दोनों प्रकृतियोंके सत्कर्मकी उद्वेलना कर चुके जीवोंके सम्यक्त्वको प्राप्त होनेपर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बिदियसमयम्मि तदुवलंभादो। अणंताणुबंधीणं पि विसंजोयणापुव्वसंजोगे अवसेसाणं च सव्वोवसामणादो परिवदमाणगस्स देवस्स वा पढमसमयसंकामगस्स अवत्तव्वसंकम-संभवादो। एवमोघेण सामित्तपरूवणा कया।

§ ७४६. आदेसेण मणुसतिए ओघभंगो। णवरि बारसक०-णवणोकसाय-अवत्तव्वपढमसमयदेवालावो ण कायव्वो। सेससव्वमग्गणासु ट्ठिदिविहत्तिभंगो।

❀ कालो।

§ ७४७. अहियारसंभालणसुत्तमेदं।

❀ मिच्छत्तस्स भुजगारसंकामगो केवचिरं कालादो होदि?

§ ७४८. सुगमं।

❀ जहण्णेण एयसमओ, उक्कस्सेण चत्तारि समया।

§ ७४९. एत्थ ताव जहण्णकालपरूवणा कीरदे—एगो ट्ठिदिसंतकम्मस्सुवरि एयसमयं बंधवुड्ढीए परिणदो विदियादिसमएसु अवट्ठिदमप्पयरं वा बंधिय बंधावलियादीदं संकामिय तदणंतरसमए अवट्ठिदमप्पदरं वा पडिवण्णो लद्धो मिच्छत्तट्ठिदीए भुजगार-संकामयस्स जहण्णेणेयसमओ, उक्क० चदुसमयपरूवणा। तं जहा—एइंदिओ अद्धाखय[1]संकिलेसक्खएहिं दोसु समएसु भुजगारबंधं कादूण तदो से काले सण्णि-

दूसरे समयमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका अवक्तव्यसंक्रम देखा जाता है। अनन्तानुबन्धियोंका भी विसंयोजनापूर्वक संयोग होने पर तथा अवशेष प्रकृतियोंका सर्वोपशामनासे गिरनेवाले जीवके या प्रथम समयमें संक्रम करनेवाले देवके अवक्तव्यसंक्रम सम्भव है। इस प्रकार ओघसे स्वामित्वकी प्ररूपणा की।

§ ७४६. आदेशसे मनुष्यत्रिकमें ओघके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें बारह कषाय और नौ नोकषायोंका अवक्तव्यपद प्रथम समयवर्ती देवके होता है यह आलाप नहीं करना चाहिये। शेष सब मार्गणाओंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है।

✻ कालका अधिकार है।

§ ७४७. अधिकारकी सम्हाल करनेवाला यह सूत्र है।

✻ मिथ्यात्वके भुजगारसंक्रामकका कितना काल है।

§ ७४८. यह सूत्र सुगम है।

✻ जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल चार समय है।

§ ७४९. यहाँ सर्वप्रथम जघन्य कालकी प्ररूपणा करते हैं—कोई एक जीव स्थितिसत्कर्मके ऊपर एक समय तक बन्धकी वृद्धिसे परिणत हुआ तथा द्वितीयादि समयोंमें अवस्थित या अल्पतर बन्ध करके बन्धावलिके बाद भुजगारसंक्रम करके तदनन्तर समयमें अवस्थित या अल्पतरसंक्रमको प्राप्त हुआ। इस प्रकार मिथ्यात्वकी स्थितिके भुजगारसंक्रामकका जघन्य काल एक समय प्राप्त हुआ। अब उत्कृष्ट काल चार समयकी प्ररूपणा करते हैं। यथा—किसी एकेन्द्रिय जीवने अद्धाक्षय और संक्लेशक्षयसे दो समय तक भुजगारबन्ध किया। तदनन्तर अगले समयमें संज्ञी पञ्चेन्द्रियोंमें

१. ता०प्रतौ अद्धाख [व] य- आ०प्रतौ अद्धाखवय- इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पंचिंदिएसुप्पज्जमाणो विग्गहगदीए एगसमयअसण्णिट्ठिदिं बंधिऊण तदणंतरसमए सरीरं घेत्तूण सण्णिट्ठिदिं पबद्धो। एवं चदुसु समएसु णिरंतरं भुजगारबंधं कादूण पुणो तेणेव कमेण बंधावलियादिक्कंतं संकामेमाणस्स लद्धा मिच्छत्तभुजगारसंकमस्स उक्कस्सेण चत्तारि समया।

❀ अप्पदरसंकामगो केवचिरं कालादो होदि ?

§ ७५०. सुगमं।

❀ जहण्णेणेयसमओ, उक्कस्सेण तेवट्ठिसागरोवमसदं सादिरेयं।

§ ७५१. एत्थ ताव एयसमओ उच्चदे। तं कथं ? भुजगारमवट्ठिदं वा बंधमाणस्स एयसमयमप्पदरं बंधिय विदियसमए भुजगारावट्ठिदाणमण्णदरबंधेण परिणमिय बंधावलियवदिक्कमे बंधाणुसारणेव संकमेमाणयस्स अप्पदरकालो जहण्णेणेयसमयमेत्तो होइ। सादिरेयतेवट्ठिसागरोवमसदमेत्तुकस्सकालाणुगममिदाणिं कस्सामो। तं जहा—एक्को तिरिक्खो मणुस्सो वा मिच्छाइट्ठी संतकम्मस्स हेट्ठदो बंधमाणो सव्वुक्कस्संतोमुहुत्तमेत्तकालमप्पदरसंकमं काऊण पुणो तिपलिदोवमिएसुववण्णो। तत्थ वि अप्पदरमेव मिच्छत्तसंकममणुपालिय अंतोमुहुत्तावसेसे सगाउए पढमसम्मत्तं पडिवण्णो अंतोमुहुत्तमप्पदरमेव संकामेदि। कधमुवसमसम्मत्तं पडिवण्णस्स अप्पदरसंकमो, तक्कालब्भंतरे सव्वत्थेवावट्ठिदसरूवेण मिच्छत्तणिसेयट्ठिदीणं संकमोवलंभादो त्ति? सच्चमेदं, णिसेयपहाणत्ते समवलंबिए

उत्पन्न होकर विग्रहगतिमें एक समय तक असंज्ञीकी स्थितिका बन्ध किया। पुनः तदनन्तर समयमें शरीरको ग्रहणकर संज्ञीकी स्थितिका बन्ध किया। इस प्रकार चार समय तक निरन्तर भुजगार बन्ध करके पुनः उसी क्रमसे बन्धावलिके बाद संक्रम करनेवाले उसी जीवके मिथ्यात्वके भुजगारसंक्रमके उत्कृष्ट चार समय प्राप्त हुए।

*** अल्पतरसंक्रामकका कितना काल है ?**

§ ७५०. यह सूत्र सुगम है।

*** जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक एक सौ त्रेसठ सागर है।**

§ ७५१. यहाँ सर्वप्रथम एक समयका कथन करते हैं। वह कैसे ? भुजगार या अवस्थित पदका बन्ध करनेके बाद एक समय तक अल्पतरपदका बन्ध करके तथा दूसरे समयमें भुजगार या अवस्थितपदके बन्धरूपसे परिणमन करके बन्धावलिके व्यतीत होने पर बन्धके अनुसार ही संक्रम करनेवाले जीवके अल्पतरपदका जघन्य काल एक समय प्राप्त होता है। अब साधिक एक सौ त्रेसठ सागरप्रमाण उत्कृष्ट कालका अनुगम करते हैं। यथा—सत्कर्मसे कम स्थितिका बन्ध करनेवाला कोई एक तिर्यञ्च या मनुष्य मिथ्यादृष्टि जीव सर्वोत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त कालतक अल्पतर संक्रम करके पुनः तीन पल्यकी आयुवाले जीवोंमें उत्पन्न हुआ। वहाँ पर भी मिथ्यात्वके अल्पतरसंक्रमका ही पालन करके अपनी आयुमें अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहने पर प्रथम सम्यक्त्वको प्राप्त होकर अन्तर्मुहूर्त काल तक अल्पतरपदका ही संक्रम करता है।

शंका—उपशम सम्यक्त्वको प्राप्त हुए जीवके अल्पतरसंक्रम कैसे हो सकता है, क्योंकि उस कालके भीतर सर्वत्र ही मिथ्यात्वकी निषेकस्थितियोंका अवस्थितरूपसे ही संक्रम उपलब्ध होता है ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एदमेवं होज्ज ति ण पुण एवमेत्थ विवक्खा कया। किंतु कालपहाणत्तं विवक्खियं। तं कधं णव्वदे ? सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमवट्ठिदसंकमस्स जहण्णुक्कस्सेणेयसमयोवएसादो। पुणो वेदयसम्मत्तं पडिवण्णो पढमछावट्ठिं सव्वमप्पदरसंकमेणाणुपालिय तदो अंतोमुहुत्तावसेसे पढमछावट्ठिकाले अप्पदरकालाविरोहेणंतोमुहुत्तं मिच्छत्तेणंतरिय सम्मत्तं पडिवण्णो विदियछावट्ठिं परिभमिय तदवसाणे परिणामपच्चएण पुणो वि मिच्छत्तमुवगओ दव्वलिंगमाहप्पेणेक्कत्तीससागरोवमिएसु देवेसुववण्णो। तत्थ वि सुक्कलेस्सापाहम्मेण संतकम्मादो हेट्ठा चेव बंधमाणस्स अप्पयरसंकमो चेय। तत्तो चुदो वि संतो मणुसेसुववज्जिय अंतोमुहुत्तमप्पयरं चेव संकामिय तदो भुजगारमवट्ठिदं वा पडिवण्णो तस्स लद्धो पयदुक्कस्सकालो दोअंतोमुहुत्तब्भहियतिपलिदोवमेहि सादिरेयतेवट्ठिसागरोवममेत्तो। एत्थ पढमछावट्ठिं भमाविय अंतोमुहुत्तावसेसे सम्मामिच्छत्तेण किण्णांतराविज्जदे ? ण, तहा सम्मत्तं पडिवज्जमाणस्स भुजगारप्पसंगादो। तं कधं ? सम्मामिच्छत्तं पडिवण्णस्स

समाधान—यह सत्य है, क्योंकि निषेकोंकी प्रधानता स्वीकार करने पर यह इसी प्रकार होता है। परन्तु यहाँपर इस प्रकारकी विवक्षा नहीं की है, किन्तु कालकी प्रधानता विवक्षित है।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है ?

समाधान—क्योंकि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके अवस्थितसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है ऐसा उपदेश पाया जाता है। इससे ज्ञात होता है कि यहाँ पर निषेकोंकी प्रधानता न होकर कालकी प्रधानता है।

पुनः वह उपशमसम्यग्दृष्टि जीव वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। तथा पूरे प्रथम छयासठ सागर काल तक अल्पतरसंक्रमका पालन कर उस प्रथम छयासठ सागरमें अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहने पर अल्पतरपदके कालमें विरोध न पड़ते हुए अन्तर्मुहूर्तकालतक मिथ्यात्वके द्वारा वेदकसम्यक्त्वको अन्तरित करके सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। तथा द्वितीय छयासठ सागर कालतक परिभ्रमण करके उसके अन्तमें परिणामवश फिर भी मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ और द्रव्यलिंगके माहात्म्यसे इकतीस सागरकी आयुवाले देवोंमें उत्पन्न हुआ। तथा वहाँ भी शुक्ललेश्याके माहात्म्यसे सत्कर्मसे कम स्थितिका ही बन्ध करनेवाले उसके अल्पतरसंक्रम ही होता रहा। फिर वहाँसे च्युत होकर भी मनुष्योंमें उत्पन्न होकर अन्तर्मुहूर्त कालतक अल्पतरपदका ही संक्रम करके अनन्तर भुजगार या अवस्थितसंक्रमको प्राप्त हुआ। इसप्रकार अल्पतर संक्रमका दो अन्तर्मुहूर्त और तीन पल्य अधिक एक सौ त्रेसठ सागरप्रमाण प्रकृत उत्कृष्ट काल प्राप्त हुआ।

शंका—यहाँ पर प्रथम छयासठ सागर कालतक भ्रमण कराके उसमें अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहनेपर सम्यग्मिथ्यात्व गुणस्थानके द्वारा अन्तर क्यों नहीं कराया ?

समाधान—नहीं, क्योंकि उस प्रकार सम्यक्त्वको प्राप्त करनेवाले जीवके भुजगारसंक्रमके प्राप्त होनेका प्रसंग आता है।

शंका—वह कैसे ?

समाधान—सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त होनेवाले जीवके मिथ्यात्वका परप्रकृतिसंक्रम नहीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ताव मिच्छत्तस्स परपयडिसंकमो णत्थि, किंतु ओकड्डणासंकमो चेय। सो च उदयप्पहुडि आवलियासंखेज्जभागब्भहियदोआवलियमेत्तमिच्छत्तट्ठिदीणं णत्थि। किं कारणं? जासिं पयडीणमुदयसंभवो अत्थि तासिं चेव उदयावलियबाहिरट्ठिदीओ सव्वाओ ओकड्डिज्जंति, उदयावलियब्भंतरे णिक्खेवसंभवादो। जासिं पुण उदयो णत्थि तासिमुदयावलियबाहिरे आवलियासंखेज्जभागब्भहियआवलियमेत्तीणं ट्ठिदीणमोकड्डणा ण संभवइ, उदयावलियब्भंतरे णिक्खेवसंभवाणुवलंभादो। तदो तत्थ बाहिरआवलियासंखेज्जभागब्भहियदोआवलियवज्जाणमुवरिमासेसट्ठिदीणमोकड्डणासंकमो त्ति घेत्तव्वं, आवलियमेत्तमइच्छाविय तदसंखेज्जदिभागे तत्थ णिक्खेवणियमदंसणादो। एवं च संते सम्मामिच्छत्तद्धं सव्वमधट्ठिदिगलणेणप्पयरसंकमं काऊण जाधे सम्मत्तं पडिवण्णो ताधे सम्मामिच्छाइट्ठी चरिमसमयओकड्डणासंकमादो सम्माइट्ठिपढमसमयपरपयडिसंकमो आवलि० असंखे०-भागब्भहियआवलियमेत्तणिसेगेहि समहिओ होइ, परपयडिसंकमस्सुदयावलियबहिब्भूदसव्वणिसेएसु णिसेयाभावादो। तहा च सो भुजगारसंकमो पढमसमयसम्माइट्ठिपडिबद्धो अप्पदरविरोहिओ जायदि त्ति सम्मामिच्छत्तमेसो णेदुं ण सक्को त्ति।

§ ७५२. अथवा णिसेयपरिहाणीए अप्पदरसंकमो एत्थ ण विवक्खिओ, किंतु कालपरिहाणीए। अत्थि च कालपरिहाणी, सम्मामिच्छाइट्ठिचरिमसमयमिच्छत्तट्ठिदि-

होता। किन्तु अपकर्षणसंक्रम ही होता है। वह भी उदय समयसे लेकर आवलिका असंख्यातवाँ भाग अधिक दो आवलिप्रमाण मिथ्यात्वकी स्थितियोंका नहीं होता, क्योंकि जिन प्रकृतियोंका उदय सम्भव है उन्हीं प्रकृतियोंकी उदयवलिके बाहरकी सभी स्थितियाँ संक्रमित होती हैं, क्योंकि उनका उदयावलिके भीतर निक्षेप सम्भव है। परन्तु जिन प्रकृतियोंका उदय नहीं है उनकी उदयावलिके बाहर आवलिके असंख्यातवें भाग अधिक एक आवलिप्रमाण स्थितियोंका अपकर्षण सम्भव नहीं है, क्योंकि उनकी उदयावलिके भीतर निक्षेपकी सम्भावना उपलब्ध नहीं होती। इसलिए वहाँपर आवलिके असंख्यातवें भाग अधिक दो आवलिप्रमाण स्थितियोंके सिवा ऊपरकी सब स्थितियोंका अपकर्षणसंक्रम ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि वहाँ पर एक आवलिप्रमाण स्थितियोंको अतिस्थापनारूपसे स्थापित करके उसके असंख्यातवें भागप्रमाण स्थितियोंमें निक्षेपका नियम देखा जाता है। और ऐसा होने पर सम्यग्मिथ्यात्वके सब कालतक अधःस्थितिगलनाके साथ अल्पतरसंक्रम करके जब सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ तब सम्यग्मिथ्यादृष्टिके अन्तिम समयमें होनेवाला परप्रकृतिसंक्रम एक आवलिके असंख्यातवें भागसे अधिक एक आवलिमें प्राप्त हुए निषेकोंसे अधिक होता है, क्योंकि परप्रकृतिसंक्रमका उदयावलिके बाहर स्थित सब निषेकोंमें होनेका निषेध नहीं है। और सम्यग्मिथ्यात्वमें ले जाने पर सम्यग्दृष्टिके प्रथम समयसे सम्बन्ध रखनेवाला वह भुजगारसंक्रम अल्पतरसंक्रमका विरोधी हो जाता है, इसलिए ऐसे जीवको सम्यग्मिथ्यात्वमें ले जाना शक्य नहीं है।

§ ७५२. अथवा यहाँ पर निषेकोंका परिहानिरूप अल्पतरसंक्रम विवक्षित नहीं है। किन्तु कालपरिहानिरूप अल्पतरसंक्रम यहाँपर विवक्षित है और यहाँ कालकी परिहानि है ही, क्योंकि सम्यग्मिथ्यादृष्टिके अन्तिम समयमें प्राप्त हुई मिथ्यात्वकी स्थितिके प्रमाणसे प्रथम समयवर्ती

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पमाणादो पढमसमयसम्माइट्ठिम्मि तट्ठिदीणमधट्ठिदिगलणेण समयूणत्तदंसणादो। तदो तत्थ णिसेयसंकमवुड्ढीए वि कालपरिहाणिलक्खणो संकमस्स अप्पयरभावो चेवे त्ति। ण च एवंविहा विवक्खा सुत्ते ण दीसइ त्ति संकणिज्जं; उवसमसम्माइट्ठिम्मि णिसेयावेक्खाए अवट्ठियसंकममपरूविय कालपरिहाणिवसेणप्पयरसंकमपरूवयम्मि सुत्तम्मि तदुवलंभादो। तदो सम्मामिच्छत्ते पडिवज्जाविदे वि ण दोसो त्ति सिद्धं।

❀ अवट्ठिदसंकामओ केवचिरं कालादो होदि ?

§ ७५३. सुगमं।

❀ जहण्णेणेयसमओ, उक्कस्सेणंतोमुहुत्तं।

§ ७५४. कुदो ? एयट्ठिदिबंधावट्ठाणकालस्स जहण्णुक्कस्सेणेयसमयमंतोमुहुत्त-मेत्तपमाणोवलंभादो।

❀ सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं भुजगार-अवट्ठिद-अवत्तव्वसंकामया केवचिरं कालादो होंति ?

§ ७५५. सुगममेदं पुच्छासुत्तं।

❀ जहण्णुक्कस्सेणेयसमओ।

§ ७५६. भुजगारसंकमस्स ताव उच्चदे—तप्पाओग्गसम्मत्त-सम्मामिच्छत्तट्ठिदि-संतकम्मियमिच्छाइट्ठिणा तत्तो दुसमउत्तरादिमिच्छत्तट्ठिदिसंतकम्मिएण सम्मत्ते पडिवण्णे

सम्यग्दृष्टिके उसकी स्थितियोंमें अधःस्थितिगलनाके आलम्बनसे एक समय कमपना देखा जाता है, इसलिए वहाँ निषेकसंक्रममें वृद्धि होने पर भी संक्रमका कालपरिहानिलक्षण अल्पतरपना ही है। सूत्रमें इसप्रकारकी विवक्षा नहीं दिखलाई देती ऐसी आशंका करना भी ठीक नहीं है, क्योंकि उपशम सम्यग्दृष्टिके निषेकोंकी अपेक्षा अवस्थितसंक्रमका कथन न करके कालपरिहानिके आलम्बन द्वारा अल्पतरसंक्रमका कथन करनेवाले सूत्रमें उक्त विवक्षा उपलब्ध होती है, इसलिए सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त कराने पर भी दोष नहीं है यह सिद्ध हुआ।

*** अवस्थितसंक्रामकका कितना काल है ?**

§ ७५३. यह सूत्र सुगम है।

*** जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है।**

§ ७५४. क्योंकि एक समान स्थितिके बन्धका अवस्थान काल जघन्यसे एक समय और उत्कृष्टसे अन्तर्मुहूर्तप्रमाण उपलब्ध होता है।

*** सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके भुजगार, अवस्थित और अवक्तव्यपदके संक्रामकोंका कितना काल है ?**

§ ७५५. यह पृच्छासूत्र सुगम है।

*** जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है।**

§ ७५६. भुजगारसंक्रमका पहिले कहते हैं—जो तत्प्रायोग्य सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके स्थितिसत्कर्मसे युक्त है और जो उनकी स्थितिसे मिथ्यात्वकी दो समय अधिक आदि स्थितिसे युक्त है ऐसे मिथ्यादृष्टि जीवके सम्यक्त्वको प्राप्त होने पर दूसरे समयमें भुजगारसंक्रम होकर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विदियसमयम्मि भुजगारसंकमो होदूण तदणंतरसमए अप्पदरसंकमो जादो। लद्धो जहण्णुक्कस्सेणेगसमयमेत्तो भुजगारसंकामयकालो। एवमवट्ठिदसंकमस्स वि। णवरि समयुत्तरमिच्छत्तट्ठिदिसंतकम्मिएण वेदगसम्मत्ते पडिवण्णे विदियसमयम्मि तदुवलंभो वत्तव्वो। एवमवत्तव्वसंकमस्स वि वत्तव्वं। णवरि णिस्संतकम्मियमिच्छाइट्ठिणा उवसमसम्मत्ते गहिदे विदियसमयम्मि तदुवलद्धी होदि।

❀ अप्पदरसंकामओ केवचिरं कालादो होदि ?

§ ७५७. सुगमं।

❀ जहण्णेणंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण वेछावट्ठिसागरोवमाणि सादिरेयाणि।

§ ७५८. एत्थ ताव जहण्णकालपरूवणा कीरदे—एगो मिच्छाइट्ठी पुव्वुत्तेहिं तीहिं पयारेहिं सम्मत्तं घेत्तूण विदियसमए भुजगारावट्ठिदावत्तव्वाणमण्णदरसंकमपज्जाएण परिणमिय तदियसमए अप्पयरसंकामयत्तमुवगओ, सव्वजहण्णेण कालेण मिच्छत्तं गओ, जहण्णकालाविरोहेण संकिलिट्ठो सम्मत्तट्ठिदीए उवरि मिच्छत्तट्ठिदिं तप्पाओग्गवड्ढीए वड्ढाविय सव्वलहुं सम्मत्तं पडिवण्णो, भुजगारसंकमेण अवट्ठिदसंकमेण वा परिणदो त्ति तस्स अंतोमुहुत्तमेत्तो सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमप्पदरसं० जहण्णकालो होइ। अहवा सम्मत्तं पडिवज्जिय अंतोमुहुत्तमप्पदरसरूवेण सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं ट्ठिदिसंकममणु-

---

तदनन्तर समयमें अल्पतरसंक्रम होता है। इसी प्रकार इनके भुजगारसंक्रमका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय प्राप्त हुआ। इसी प्रकार एक समय अवस्थितसंक्रमका भी प्राप्त होता है। किन्तु इतनी विशेषता है कि एक समय अधिक मिथ्यात्वके स्थितिसत्कर्मवाले जीवके द्वारा वेदकसम्यक्त्वके प्राप्त करने पर दूसरे समयमें उसकी प्राप्ति कहनी चाहिए। इसीप्रकार अवक्तव्य-संक्रमका भी कहना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि उक्त दोनों प्रकृतियोंके सत्कर्मसे रहित मिथ्यादृष्टि जीवके द्वारा उपशमसम्यक्त्वके ग्रहण करने पर दूसरे समयमें उसकी उपलब्धि होती है।

*** अल्पतरसंक्रामकका कितना काल है ?**

§ ७५७. यह सूत्र सुगम है।

*** जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल साधिक दो छयासठ सागरप्रमाण है।**

§ ७५८. यहाँ पर सर्वप्रथम जघन्य कालका कथन करते हैं—कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव पूर्वोक्त तीन प्रकारसे सम्यक्त्वको ग्रहण कर दूसरे समयमें भुजगार, अवस्थित और अवक्तव्य इनमेंसे किसी एक पर्यायरूपसे परिणत होकर तीसरे समयमें अल्पतरसंक्रमपनेको प्राप्त हुआ। पुनः सबसे जघन्य काल द्वारा मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। फिर जघन्य कालमें विरोध न पड़े इस विधिसे संक्लिष्ट होकर सम्यक्त्वकी स्थितिके ऊपर मिथ्यात्वकी स्थितिको बढ़ाकर अतिशीघ्र सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ। फिर भुजगारसंक्रमरूपसे या अवस्थितसंक्रमरूपसे परिणत हुआ। इस प्रकार उसके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके अल्पतरसंक्रमका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण प्राप्त हुआ। अथवा सम्यक्त्वको प्राप्त करके अन्तर्मुहूर्त काल तक सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका अल्पतररूपसे स्थितिसंक्रमका पालन करके अतिशीघ्र दर्शनमोहनीयकी क्षपणामें व्याप्टत हुए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पालिय सव्वलहुं दंसणमोहक्खवणाए वावदस्स पयदजहण्णकालो परूवेयव्वो। उक्कस्सेण सादिरेयवेछावट्ठिसागरोवमकालपरूवणा एवं कायव्वा। तं जहा—एक्को मिच्छाइट्ठी सम्मत्तं घेत्तूण सव्वमहंत[1]मुवसमसम्मत्तद्धमप्पदरसंकममणुपालिय वेदयसम्मत्तेण पढम-छावट्ठिमणुपालिय अंतोमुहुत्तावसेसे तम्मि अप्पयरसंकमाविरोहेण मिच्छत्तं सम्मामिच्छत्तं वा पडिवण्णो तदो अंतोमुहुत्तेण वेदयसम्मत्तं पडिवज्जिय विदियछावट्ठिमप्पयरसंकमेणाणु-पालिय तदवसाणे अंतोमुहुत्तावसेसे मिच्छत्तं गदो पलिदोवमासंखेज्जभागमेत्तकालमुव्वेल्लणा-वावारेणच्छिय सम्मत्तचरिमुव्वेल्लणफालीए तदप्पयरसंकमं समाणिय पुणो वि तप्पाओग्गेण कालेण सम्मामिच्छत्तचरिमफालिमुव्वेल्लिय तदप्पयरकालं समाणेदि। एवं पलिदोवमासंखेज्जभागब्भहियवेछावट्ठिसागरोवमाणि दोण्हमेदेसिं कम्माणमुक्कस्स-पयदट्ठिदिसंकमकालो होइ।

❀ सेसाणं कम्माणं भुजगारसंकामओ केवचिरं कालादो होदि ?

§ ७५९. सुगमं।

❀ जहण्णेणेयसमओ, उक्कस्सेण एगूणवीससमया।

§ ७६०. एत्थ ताव मिच्छत्तस्सेव भुजगारकालो जहण्णेणेयसमयमेत्तो वत्तव्वो। उक्कस्सेणेगूणवीससमयाणमुप्पत्तिं वत्तइस्सामो—अणंताणु०कोहस्स ताव एक्को एइंदिओ

जीवके प्रकृत जघन्य काल कहना चाहिए। उत्कृष्टरूपसे साधिक दो छयासठ सागरप्रमाण कालकी प्ररूपणा इस प्रकार करनी चाहिए। यथा—कोई एक मिथ्यादृष्टि जीव प्रथम सम्यक्त्वको ग्रहण कर सबसे अधिक उपशमसम्यक्त्वके काल तक अल्पतरसंक्रमका पालन कर तथा वेदकसम्यक्त्वके साथ प्रथम छयासठ सागर कालका पालन कर उसमें अन्तमुहूर्तकाल शेष रहने पर अल्पतरसंक्रमके अविरोध पूर्वक मिथ्यात्व या सम्यग्मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। फिर अन्तर्मुहूर्तमें वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त कर द्वितीय छयासठ सागर काल तक अल्पतरसंक्रमके साथ रहा। फिर उसके अन्तमें अन्तर्मुहूर्त काल शेष रहने पर मिथ्यात्वको प्राप्त हुआ। फिर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण कालतक उद्वेलनाके व्यापारके साथ रह कर सम्यक्त्वकी अन्तिम उद्वेलनाफालिके द्वारा उसके अल्पतर संक्रमको समाप्त कर तथा फिर भी तत्प्रायोग्य कालके द्वारा सम्यग्मिथ्यात्वकी अन्तिम फालिकी उद्वेलना कर उसके अल्पतरकालको समाप्त करता है। इस प्रकार इन दोनों कर्मोंके अल्पतर स्थितिसंक्रमका उत्कृष्ट काल पल्यका असंख्यतवां भाग अधिक दो छयासठ सागरप्रमाण होता है।

शेष कर्मोंके भुजगारसंक्रामकका कितना काल है ?

§ ७५९. यह सूत्र सुगम है।

❀ जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल उन्नीस समय है।

§ ७६०. यहाँ पर मिथ्यात्वके समान भुजगारसंक्रमका जघन्य काल एक समय कहना चाहिए। उत्कृष्ट काल उन्नीस समयोंकी उत्पत्तिको बतलाते हैं। उसमें सर्व प्रथम अनन्तानुबन्धी क्रोधका बतलाते हैं—कोई एक एकेन्द्रिय जीव अपने जीवनकालकी अन्तिम आवलिके ऊपर

---

१. ता० प्रतौ सम्म (व्व) महंत– आ०प्रतौ सव्वमहंत– इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सगजीविदद्धाचरिमावलियाए उवरि सत्तारस समया अहिया अत्थि त्ति अद्धाक्खएण माणादीणं परिवाडीए पण्णारससु समएसु भुजगारेण बंधवुड्ढिं काऊण जहाकममेव बंधावलियादीदं कोहे पडिच्छिय पुणो चरिम-दुचरिमसमएसु विवक्खियकोहस्स अद्धा-संकिलेसक्खएहि भुजगारबंधमणुपालिय तदो भवक्खएण सण्णिपंचिंदिएसु विग्गहं काऊणेयसमयमसण्णिसमाणट्ठिदिं बंधिऊण सरीरं गहिऊण सण्णिट्ठिदिबंधेण परिणदो। तदो आवलियादीदं जहाकमं संकामेमाणस्स एगूणवीसभुजगारसमया लद्धा होंति। एवं सेसकसाय-णोकसायाणं। णवरि णोकसायाणं भण्णमाणे पुव्वुत्तसत्तारससमयाहियचरिमा-वलियाए आदीदो पहुडि सोलससमएसु कसायाणमद्धाक्खएण परिवाडीए ट्ठिदिबंधमण्णो-ण्णादिरित्तं वड्ढाविय पुणो सत्तारससमए संकिलेसक्खएण सव्वेसिमेव समगं भुजगारबंधं कादूण तेणेव कमेण बंधावलियादीदं णोकसाएसु पडिच्छिय तदो कालं कादूण पुव्वं व असण्णि-सण्णिट्ठिदिं बंधिय बंधसंकमणावलियवदिक्कमे ताए चेव परिवाडीए संकामेमाणस्स तेसिं पयदुक्कस्सकालसमुप्पत्ती वत्तव्वा।

❀ सेसपदाणि मिच्छत्तभंगो।

§ ७६१. अप्पयरसंकामयस्स जहण्णेणेयसमओ, उक्क० तेवट्ठिसागरोवमसदं सादिरेयं। अवट्ठिदपदस्स वि जहण्णकालो एगसमयमेत्तो, उक्कस्सो अंतोमुहुत्तपमाणो त्ति एवमेदेण भेदाभावादो।

सत्रह समय अधिक रहने पर अद्धाक्षयसे मानादिककी परिपाटीक्रमसे पन्द्रह समय तक भुजगार-रूपसे बन्धवृद्धि करके यथाक्रमसे ही बन्धावलिके बाद क्रोधमें संक्रमित करके पुनः अन्तिम समयमें और उपान्त्य समयमें विवक्षित क्रोधका अद्धाक्षय और संक्लेशक्षयसे भुजगारबन्धका पालन कर अनन्तर भवक्षयसे संज्ञी पञ्चेन्द्रियोंमें विग्रह करके एक समय तक असंज्ञीके समान स्थितिका बन्ध करके तथा शरीरको ग्रहण कर संज्ञीके योग्य स्थितिबन्धरूपसे परिणत हुआ। फिर एक आवलिके बाद क्रमसे संक्रम करनेवाले जीवके भुजगारसंक्रमके उन्नीस समय प्राप्त होते हैं। इसी प्रकार शेष कषायों और नोकषायोंके भुजगारसंक्रमके उन्नीस समय होते हैं। किन्तु इतनी विशेषता है कि नोकषायोंका उक्त काल कहने पर पूर्वोक्त सत्रह समय अधिक अन्तिम आवलिके प्रारम्भसे लेकर सोलह समयोंमें कषायोंके अद्धाक्षयसे क्रमसे स्थितिबन्धको परस्पर अधिक अधिक बढ़ाकर पुनः सत्रहवें समयमें संक्लेशक्षयसे सभीका समान भुजगारबन्ध करके उसी क्रमसे बन्धावलिके बाद नोकषायोंमें संक्रमित करके अनन्तर मरकर पहिलेके समान असंज्ञी और संज्ञीके योग्य स्थितिको बाँधकर बन्धावलि और संक्रमावलिके व्यतीत होने पर उसी क्रमसे संक्रम करनेवाले जीवके नौ नोकषायोंकी प्रकृत उत्कृष्ट कालकी उत्पत्ति कहनी चाहिए।

❀ शेष पदोंका भंग मिथ्यात्वके समान है।

§ ७६१. क्योंकि अल्पतरसंक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल साधिक एक सौ त्रेसठ सागर है। अवस्थितपदका भी जघन्य काल एक समयमात्र है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है, इसप्रकार इस कालसे प्रकृतमें कोई भेद नहीं है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

✻ णवरि अवत्तव्वसंकामया जहण्णुक्कस्सेण एयसमओ ।

§ ७६२. मिच्छत्तस्स अवत्तव्वसंका० णत्थि त्ति उत्तं । एदेसिं पुण विसंजोयणादो सव्वोवसामणादो च परिवदंतं पडुच्च अत्थि अवत्तव्वसंकमो । सो च जहण्णुक्कस्सेणेय-समयमेत्तकालभाविओ त्ति एत्तिओ चेव विसेसो, णाण्णो त्ति वुत्तं होइ । एवमेयजीवेण कालो ओघेण परूविदो ।

§ ७६३. एत्तो आदेसपरूवणट्ठं सुत्तसूचिदमुच्चारणं वत्तइस्सामो । तं जहा—आदेसेण णेरइय० मिच्छ०-बारसक०-णवणोक० भुज०संका० केवचिरं० ? जह० एयसमओ, उक्क० मिच्छत्तस्स तिण्णि समया, सेसाणमट्ठारस समया । णवरि इत्थि-पुरिस०-हस्स-रईणं भुज० जह० एयसमओ, उक्क० सत्तारस समया । अप्पदर० जह० एयसमओ, उक्क० तेत्तीसं सागरो० देसूणाणि । अवट्ठिद० ओघभंगो । एवमणंताणु०४ । णवरि अवत्त० जहण्णु० एयसमओ । सम्मत्त-सम्मामि० भुज०-अवट्ठि०-अवत्त० ओघं । अप्पदर० मिच्छत्तभंगो । एवं पढमाए । णवरि सव्वेसिमप्पदर० सगट्ठिदी देसूणा । विदियादि जाव सत्तमि त्ति एवं चेव । णवरि मिच्छ० भुज० उक्क० वेसमया, कसाय-णोक० सत्तारस समया ।

✻ किन्तु इतनी विशेषता है कि अवक्तव्यसंक्रामकोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है ।

§ ७६२. मिथ्यात्वके अवक्तव्य संक्रामक जीव नहीं हैं यह कह आये हैं। किन्तु इन कर्मोंका विसंयोजनासे और सर्वोपशामनासे गिरते हुए जीवकी अपेक्षा अवक्तव्यसंक्रम है और वह जघन्य तथा उत्कृष्टरूपसे एक समयभावी है। इसप्रकार इतना ही विशेष है, अन्य विशेष नहीं है यह उक्त कथनका तात्पर्य है। इस प्रकार ओघसे एक जीवकी अपेक्षा कालका कथन किया ।

§ ७६३. आगे आदेशका कथन करनेके लिए सूत्रसे सूचित हुए उच्चारणाको बतलाते हैं। यथा—आदेशसे नारकियोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंके भुजगारसंक्रामकका कितना काल है ? जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल मिथ्यात्वका तीन समय है तथा शेषका अठारह समय है। किन्तु इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य और रतिके भुजगारसंक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सत्रह समय है। अल्पतर-संक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल कुछ कम तेतीस सागर है। अवस्थित संक्रामकका भंग ओघके समान है। इसीप्रकार अनन्तानुबन्धीचतुष्कका जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि अवक्तव्यसंक्रामकका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके भुजगार, अवस्थित और अवक्तव्यसंक्रामकका भंग ओघके समान है। अल्पतर-संक्रामकका भंग मिथ्यात्वके समान है। इसीप्रकार पहिली पृथिवीमें जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि सब प्रकृतियोंके अल्पतरसंक्रामकका उत्कृष्ट काल कुछ कम अपनी स्थितिप्रमाण है। दूसरी पृथिवीसे लेकर सातवीं पृथिवीतक इसीप्रकार भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्वके भुजगारसंक्रामकका उत्कृष्ट काल दो समय है। तथा कषायों और नोकषायोंका सत्रह समय है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ७६४. तिरिक्ख-पंचिं०तिरिक्खतिय० ३ मिच्छ०बारसक०--णवणोक० भुज० जह० एयसमओ, उक्क० चत्तारि समया एगूणवीससमया। अप्प०-अवट्ठि० विहत्तिभंगो। एवमणंताणु०४। णवरि अवत्त० जहण्णु० एयसमओ। सम्म०-सम्मामि० विहत्तिभंगो। णवरि पंचिं०तिरि०पज्ज० इत्थिवेद० भुज० जह० एयसमओ, उक्क० सत्तारस समया। जोणिणीसु पुरिस-णवुंसयवेद० भुज० जह० एगसमओ, उक्क० सत्तारस समया। पंचिं०-तिरि०अपज्ज०-मणुसअपज्ज० मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक० भुज० जह० एगसमओ, उक्क० चत्तारि समया एगूणवीसं समया। अप्पदर०-अवट्ठि० जह० एयस०, उक्क० अंतो०। सम्म०-सम्मामि० अप्प० जह० एयस०, उक्क० अंतो०। णवरि इत्थिवे०-पुरिसवे० भुज०

विशेषार्थ—जो असंज्ञी जीव दो विग्रहसे नरकमें उत्पन्न होता है उसके दूसरे समयमें अद्धाक्षयसे एक भुजगार समय सम्भव है तीसरे समयमें संज्ञी होनेसे भुजगार समय प्राप्त होता है और चौथे समयमें संक्लेशक्षयसे भुजगारसमय सम्भव है। इस प्रकार नरकमें लगातार तीन समय तक भुजगारबन्ध होनेसे एक आवलिके बाद लगातार वहाँ पर तीन समय तक भुजगार संक्रम भी सम्भव है, इसलिए सामान्यसे नरकमें मिथ्यात्वके भुजगारसंक्रमका उत्कृष्ट काल तीन समय कहा है। यतः असंज्ञी जीव प्रथम नरकमें ही उत्पन्न होता है, अतः वहाँ भी यह काल इसीप्रकार घटित कर लेना चाहिए। मात्र द्वितीयादि पृथिवियोंमें असंज्ञी जीव मरकर नहीं उत्पन्न होता अतः वहाँ यह काल अद्धाक्षय और संक्लेशक्षयसे दो समय ही जानना चाहिए। स्थितिविभक्तिके भुजगार अनुयोगद्वारमें नरकमें बारह कषायों और नौ नोकषायोंके भुजगारका उत्कृष्ट काल सत्रह समय ही बतलाया है। वहाँ अठारह समयका निषेध किया है। किन्तु यहाँ पर भुजगारसंक्रमका उत्कृष्ट काल अठारह समय कहा है सो इसे प्राप्त करते समय नरकमें शरीर ग्रहणके पूर्वतक सोलह भुजगार समय प्राप्त करनेसे, सत्रहवें समयमें संज्ञीके योग्य स्थितिबन्ध करानेसे और अठारहवें समयमें संक्लेशक्षयसे भुजगारबन्ध करानेसे प्राप्त करना चाहिए। यहाँ ये १८ समय जो भुजगारके प्राप्त हुए उनका उसी क्रमसे एक आवलिके बाद संक्रम करानेसे उक्त बारह कषायोंमेंसे प्रत्येक कषायके तथा पाँच नोकषायोंके भुजगार संक्रमका उत्कृष्ट काल अठारह समय आ जाता है। मात्र स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य और रतिके इस कालमें कुछ विशेषता है सो उसे जानकर घटित कर लेना चाहिए। शेष कथन सुगम है।

§ ७६४. तिर्यञ्च और पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंके भुजगारसंक्रामकका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल मिथ्यात्वका चार समय तथा शेषका उन्नीस समय है। अल्पतर और अवस्थितपदका भंग स्थितिविभक्तिके समान है। इसीप्रकार अनन्तानुबन्धीचतुष्कके उक्त पदोंका काल जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके अवक्तव्यपदका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भङ्ग स्थितिविभक्तिके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्तकोंमें स्त्रीवेदके भुजगारसंक्रमका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सत्रह समय है। तिर्यञ्च योनिनियोंमें पुरुषवेद और नपुंसकवेदके भुजगारसंक्रमका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सत्रह समय है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषायों और नौ नोकषायोंके भुजगारसंक्रमका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल मिथ्यात्वका चार समय तथा शेषका उन्नीस समय है। अल्पतर और अवस्थितपदका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके अल्पतरपदका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। किन्तु इतनी विशेषता है कि स्त्रीवेद

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जह० एयस०, उक्क० सत्तारस समया। मणुस०३ पंचिंदियतिरिक्खतियभंगो। णवरि पयडीणमवत्त० अत्थि तासिमेयसमओ।

§ ७६५. देवेसु मिच्छ०-बारसक-णवणोकसाय० भुज० जह० एयसमओ, उक्क० तिण्णि समया अट्ठारस समया। अप्पद०-अवट्ठि० विहत्तिभंगो। णवरि णवुंसयवेद० भुज० जह० एयसमओ, उक्क० सत्तारस समया। अणंताणु०४ अपच्चक्खाणभंगो। णवरि अवत्त० जहण्णु० एयसमओ। सम्म०-सम्मामि० विहत्तिभंगो। एवं भवण०-वाणवेंतर०। णवरि सगट्ठिदी। जोदिसियादि जाव सहस्सार त्ति विदियपुढविभंगो। णवरि सगट्ठिदी। आणदादि सव्वट्ठा त्ति विहत्तिभंगो। एवं जाव०।

❀ एत्तो अंतरं।

§ ७६६. एत्तो उवरि अंतरं वत्तइस्सामो त्ति पइज्जासुत्तमेदं। तस्स दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। तत्थोघपरूवणट्ठमुत्तरसुत्तणिद्देसो।

और पुरुषवेदके भुजगारसंक्रमका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सत्रह समय है। मनुष्यत्रिकमें पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें जिन प्रकृतियोंका अवक्तव्यपद है उनका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है।

विशेषार्थ—ऐसा नियम है कि मिथ्यादृष्टि जीव मरकर जिन वेदवालोंमें उत्पन्न होता है उसके उसी वेदका बन्ध होता है। इसलिए यहाँ पर पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च पर्याप्तकोंमें स्त्रीवेदके भुजगारके सत्रह समय तथा तिर्यञ्च योनिनियोंमें पुरुषवेद और नपुंसकवेदके भुजगारके सत्रह समय कहे हैं। मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें भी इसीप्रकार जान लेना चाहिए। शेष कथन सुगम है।

§ ७६५. देवोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंके भुजगारसंक्रमका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल मिथ्यात्वका तीन समय तथा शेषका अठारह समय है। अल्पतर और अवस्थितपदका भङ्ग स्थितिविभक्तिके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि नपुंसकवेदके भुजगारपदका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल सत्रह समय है। अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भंग अप्रत्याख्यानावरणके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके अवक्तव्यपदका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग स्थितिविभक्तिके समान है। इसी प्रकार भवनवासी और व्यन्तर देवोंमें जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि अपनी अपनी स्थिति कहनी चाहिए। ज्योतिषियोंसे लेकर सहस्रार कल्पतकके देवोंमें दूसरी पृथिवीके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि अपनी अपनी स्थिति कहनी चाहिए। आनत कल्पसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिए।

❀ आगे अन्तरकालका अधिकार है।

§ ७६६. इससे आगे अन्तरको बतलाते हैं इस प्रकार यह प्रतिज्ञासूत्र है। उसका निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। उनमेंसे ओघका कथन करनेके लिए आगेके सूत्रका निर्देश करते हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

❀ मिच्छत्तस्स भुजगार-अवट्ठिदसंकामयंतरं केवचिरं कालादो होदि ? जहण्णेण एयसमओ। उक्कस्सेण तेवट्ठिसागरोवमसदं सादिरेयं।

§ ७६७. एत्थ जहण्णंतरं भुजगारावट्ठिदसंकमेहिंतो एयसमयमप्पयरे पडिय विदियसमए पुणो वि अप्पिदपदं गयस्स वत्तव्वं। उक्कस्संतरं पि अप्पयरुक्कस्सकालो वत्तव्वो। णवरि भुजगारंतरे विवक्खिए अवट्ठिदकालेण सह वत्तव्वं। अवट्ठिदंतरं च भुजगारकालेण सह वत्तव्वं।

❀ अप्पयरसंकामयंतरं केवचिरं कालादो होदि ? जहण्णेणेयसमओ, उक्कस्सेण अंतोमुहुत्तं।

§ ७६८. अप्पदरादो भुजगारावट्ठिदाणमण्णदरत्थ एयसमयमंतरिय पडिणियत्तस्स जहण्णमंतरं, तदुभयकालकलावे अंतोमुहुत्तमेत्तावट्ठिदकालपहाणे उक्कस्संतरमिह गहेयव्वं।

❀ एवं सेसाणं कम्माणं सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तवज्जाणं।

§ ७६९. जहा मिच्छत्तस्स भुजगारादिपदाणमंतरपरूवणं कयं तहा सेसाणं पि कम्माणं सम्मत्त-सम्मामि०वज्जाणं कायव्वं, विसेसाभावादो। एत्थतणविसेसपदुप्पायणट्ठमुत्तरसुत्तमाह—

*** मिथ्यात्वके भुजगार और अवस्थितसंक्रामकका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य एक समय है और उत्कृष्ट साधिक एक सौ त्रेसठ सागर है।**

§ ७६७. यहाँपर भुजगार और अवस्थितसंक्रमसे एक समयके लिए अल्पसंक्रममें जाकर दूसरे समयमें पुनः विवक्षितपदको प्राप्त हुए जीवके जघन्य अन्तर कहना चाहिए। उत्कृष्ट अन्तर भी अल्पतरके उत्कृष्ट कालप्रमाण कहना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि भुजगारपदका अन्तर विवक्षित होने पर अवस्थितके कालको अल्पतरके कालमें मिलाकर कहना चाहिए। तथा अवस्थितकालका अन्तर भुजगारकालको अल्पतरके कालमें मिलाकर कहना चाहिए।

*** अल्पतरसंक्रामकका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर्मुहूर्त है।**

§ ७६८. अल्पतरसे भुजगार और अवस्थित इनमेंसे किसी एकमें ले जाकर एक समयके लिए अन्तरित कर पुनः लौटे हुए जीवके जघन्य अन्तर होता है। तथा अन्तर्मुहूर्तमात्र अवस्थितकालप्रधान उन दोनोंके कालकलापप्रमाण यहाँ उत्कृष्ट अन्तर ग्रहण करना चाहिए।

*** इसी प्रकार सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके सिवा शेष कर्मोंका अन्तरकाल जानना चाहिए।**

§ ७६९. जिसप्रकार मिथ्यात्वके भुजगार आदि पदोंके अन्तरकालका कथन किया उसी प्रकार सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वको छोड़कर शेष कर्मोंके भी अन्तरकालका कथन करना चाहिए, क्योंकि मिथ्यात्वके कथनसे इनके कथनमें कोई विशेषता नहीं है। अब यहाँपर विशेषताका कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

❀ णवरि अणंताणुबंधीणमप्पयरसंकामयंतरं जहण्णेणेयसमओ उक्कस्सेण बेछावट्ठिसागरोवमाणि सादिरेयाणि ।

§ ७७०. मिच्छत्तस्स अप्पयरसंकामयंतरं उक्कस्सेणंतोमुहुत्तमेव, इह पुण सादिरेय-बेछावट्ठिसागरोवममेत्तमुवलब्भदि त्ति एसो विसेसो। सव्वेसिमवत्तव्वपदगओ अण्णो वि विसेसो संभवइ त्ति पदुप्पायणट्ठमिदमाह ।

❀ सव्वेसिमवत्तव्वसंकामयंतरं केवचिरं कालादो होदि ? जहण्णेणंतोमुहुत्तं, उक्कस्सेण अद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं ।

§ ७७१. अणंताणुबंधीणं विसंजोयणापुव्वसंजोगे सेसकसाय-णोकसायाणं च सव्वोवसामणापडिवादे अवत्तव्वसंकमस्सादिं करिय अंतरिदस्स पुणो जहण्णुक्कस्सेणंतो-मुहुत्तद्धपोग्गलपरियट्टमेत्तमंतरिय पडिवण्णतब्भावम्मि तदुभयसंभवदंसणादो। एवमेदेसि-मंतरगयं विसेसं जाणाविय संपहि सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तभुजगारादिपदाणमंतरपमाण-परिच्छेदकरणट्ठमिदं सुत्तमाह—

❀ सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं भुजगार-अवट्ठिदसंकामयंतरं केवचिरं कालादो होदि ? जहण्णेणंतोमुहुत्तं ।

§ ७७२. पुव्वुप्पण्णसम्मत्तादो परिवदिय मिच्छत्तट्ठिदिसंतवुड्ढीए सह पुणो वि सम्मत्तं पडिवज्जिय समयाविरोहेण भुजगारमवट्ठिदं च एयसमयं कादूणप्पदरेणंतरिय

*** किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धीचतुष्कके अल्पतरसंक्रामकका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक दो छयासठ सागर है ।**

§ ७७०. मिथ्यात्वके अल्पतरसंक्रामकका उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त ही है। किन्तु यहाँ पर साधिक दो छयासठ सागरप्रमाण उपलब्ध होता है इसप्रकार इतनी विशेषता है। इसी प्रकार सब प्रकृतियोंकी अवक्तव्यपदगत अन्य विशेषता भी सम्भव है, इसलिए उसे कहनेके लिए इस सूत्रको कहते हैं—

*** सब प्रकृतियोंके अवक्तव्यसंक्रामकका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है ।**

§ ७७१. अनन्तानुबन्धियोंके विसंयोजनापूर्वक संयोगके समय तथा शेष कषायों और नोकषायोंके सर्वोपशामनासे गिरते समय अवक्तव्यसंक्रमका आदि करा कर तथा दूसरे समयमें अन्तरको प्राप्त हुए जीवके पुनः जघन्य अन्तर्मुहूर्त और उत्कृष्ट कुछ कम अर्धपुद्गलपरिवर्तनकालका अन्तर देकर अवक्तव्यपदके प्राप्त होनेपर उक्त दोनों अन्तरकाल सम्भव दिखलाई देते हैं। इसप्रकार इन कर्मोंकी अन्तरगत विशेषताको जताकर अब सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके भुजगार आदि पदोंके अन्तरके प्रमाणका ज्ञान करानेके लिए इस सूत्रको कहते हैं—

*** सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके भुजगार और अवस्थितसंक्रामकका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तरकाल अन्तर्मुहूर्त है ।**

§ ७७२. पूर्वमें उत्पन्न हुए सम्यक्त्वसे गिरकर मिथ्यात्वके स्थितिसत्कर्मकी वृद्धिके समय फिर भी सम्यक्त्वको प्राप्त होकर यथाविधि भुजगार और अवस्थितपदको एक समय करके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सव्वलहुं मिच्छत्तं गंतूण तेणेव कमेण पडिणियत्तिय भुजगारावट्ठिदसंकामयपज्जाएग परिणदम्मि तदुवलंभादो। एदेसिमुक्कस्संतरं उवरि भणामि त्ति थप्पं काऊणप्पयरजहण्णंतरं ताव परूवेदुकामो सुत्तमुत्तरमाह—

❀ अप्पयरसंकामयंतरं जहण्णेणेगसमयो।

§ ७७३. भुजगारावट्ठिदाणमण्णदरेणंतरिदस्स तदुवलद्धीदो। एदस्स वि उक्कस्संतमेरबं चेव ठविय अवत्तव्वसंकामयजहण्णंतरपरूवट्ठमिदमाह—

❀ अवत्तव्वसंकामयंतरं जहण्णेण पलिदोवमस्स असंखेज्जदिभागो।

§ ७७४. पढमसम्मत्तुप्पत्तिविदियसमए अवत्तव्वसंकमस्सादिं कादूणंतरिदस्स सव्वलहुं मिच्छत्तं गंतूण जहण्णुव्वेल्लणकालब्भंतरे तदुभयमुव्वेल्लिय चरिमफालिपदणाणंतरसमए सम्मत्तं पडिवण्णस्स विदियसमयम्मि तदंतरपरिसमत्तिदंसणादो। एवं जहण्णंतराणि परूविय सव्वेसिमुक्कस्संतरमिदाणिं परूवेमाणो सुत्तमुत्तरमाह—

❀ उक्कस्सेण सव्वेसिमद्धपोग्गलपरियट्टं देसूणं।

§ ७७५. अद्धपोग्गलपरियट्टादिसमए पढमसम्मत्तमुप्पाइय विदियसमए अवत्तव्वस्स संकमस्सादिं करिय तदणंतरसमए तदणंतरमुप्पादिय अंतोमुहुत्तेण भुजगारावट्ठिदाणं पि समयाविरोहेणंतरस्सादिं काऊण सव्वलहुअकालपडिबद्धुव्वेल्लणावावारेण चरिम-

---

फिर अल्पतरपदसे अन्तरित करके अतिशीघ्र मिथ्यात्वमें जाकर उसी क्रमसे निवृत्त होकर भुजगार और अवस्थितसंक्रमपर्यायसे परिणत होनेपर उक्त अन्तरकाल उपलब्ध होता है। इनका उत्कृष्ट अन्तर आगे कहेंगे इसलिए स्थगित करके सर्वप्रथम अल्पतरपदके जघन्य अन्तरको कहनेकी इच्छासे आगेका सूत्र कहते हैं—

*** अल्पतरसंक्रामकका जघन्य अन्तरकाल एक समय है।**

§ ७७३ भुजगार और अवस्थित इनमेंसे किसी एकके द्वारा अन्तरको प्राप्त हुए उसका उक्त अन्तरकाल प्राप्त होता है। इसके भी उत्कृष्ट अन्तरकालको उसीप्रकार स्थगित करके अवक्तव्यसंक्रामकके जघन्य अन्तरका कथन करनेके लिए इस सूत्रको कहते हैं—

*** अवक्तव्यसंक्रामकका जघन्य अन्तर पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है।**

§ ७७४. प्रथम सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके दूसरे समयमें अवक्तव्यसंक्रमका प्रारम्भ करनेके बाद अन्तरको प्राप्त हुए जीवके अतिशीघ्र मिथ्यात्वमें जाकर जघन्य उद्वेलनाकालके भीतर उक्त दोनों प्रकृतियोंकी उद्वेलना करके अन्तिम फालिके पतनके अनन्तर समयमें सम्यक्त्वको प्राप्त होनेके द्वितीय समयमें उसके अन्तरकी समाप्ति देखी जाती है। इसप्रकार जघन्य अन्तरोंका कथन करके इस समय सब पदोंके उत्कृष्ट अन्तरका कथन करते हुए आगेके सूत्रको कहते हैं—

*** सब पदोंका उत्कृष्ट अन्तर अर्धपुद्गल परिवर्तनप्रमाण है।**

§ ७७५. अर्धपुद्गलपरिवर्तनके प्रथम समयमें प्रथम सम्यक्त्वको उत्पन्न करके दूसरे समयमें अवक्तव्यसंक्रमका प्रारम्भ करके तथा उसके अगले समयमें उसका अन्तर उत्पन्न करके, अन्तर्मुहूर्त बाद भुजगार और अवस्थितपदोंके अन्तरका भी यथाविधि प्रारम्भ करके अतिलघुकालसे प्रतिबद्ध उद्वेलनाके व्यापार द्वारा अन्तिम फालिके पतनके बाद अल्पतरसंक्रमका भी अन्तर कराकर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

फालिपादणाणंतरमप्पयरसंकममंतराविय देसूणमद्धपोग्गलपरियट्टं परिभमिय थोवावसेसए सिज्झिदव्वए सम्मत्तं पडिवण्णस्स तदंतरसमाणाणुवलंभादो। णवरि पुणो सम्मत्तं पडिवत्तिविदियसमए अवत्तव्वसंकामयंतरं परिसमाणेयव्वं। तदणंतरसमए च अप्पयर-संकमंतरववच्छेओ कायव्वो, अंतोमुहुत्तपडिवादपडिवत्तीहि भुजगारावट्ठिदाणमंतरपरिसमत्ती कायव्वा। एवमोघेणंतरपरूवणा गया।

§ ७७६. संपहि एदेण देसामासयसुत्तेण सूचिदमादेसपरूवणं वत्तइस्सामो। तं जहा—आदेसेण सव्वणेरइय-सव्वतिरिक्ख-सव्वमणुस्स-सव्वदेवा त्ति ट्ठिदिविहत्तिभंगो। णवरि मणुसतिय० ३ बारसक०-णवणोक० अवत्त० जह० अंतोमु०। उक्क० पुव्वकोडि-पुधत्तं। एवं जाव०।

❀ णाणाजीवेहि भंगविचओ।

§ ७७७. सुगममेदं सुत्तं, अहियारसंभालणमेत्तफलत्तादो।

❀ मिच्छत्तस्स सव्वजीवा भुजगारसंकामगा च अप्पयरसंकामया च अवट्ठिदसंकामया च।

§ ७७८. मिच्छत्तस्स भुजगारादिसंकामया णाणाजीवा णियमा अत्थि त्ति एत्थाहियारसंबंधो कायव्वो। कुदो एदेसिं णियमा अत्थित्तं ? ण, मिच्छत्तभुजगारादि-

---

कुछ कम अर्धपुद्गल परिवर्तन काल तक परिभ्रमण करके सिद्ध होनेके लिए थोड़ा काल शेष रहने पर सम्यक्त्वको प्राप्त हुए जीवके उनके अन्तरोंकी समाप्ति उपलब्ध होती है। किन्तु इतनी विशेषता है कि पुनः सम्यक्त्वको प्राप्त होनेके दूसरे समयमें अवक्तव्यसंक्रमका अन्तर समाप्त करना चाहिए। और तदनन्तर समयमें अल्पतरसंक्रमके अन्तरका विच्छेद करना चाहिए तथा अन्तर्मुहूर्तके भीतर सम्यक्त्वसे च्युत होकर पुनः प्राप्त करनेरूप क्रियाके द्वारा भुजगार और अवस्थितपदके अन्तरकी समाप्ति करनी चाहिए। इस प्रकार ओघसे अन्तरकालकी प्ररूपणा समाप्त हुई।

§ ७७६. अब इस देशामर्षक सूत्रसे सूचित हुए आदेशका कथन करते हैं। यथा—आदेशसे सब नारकी, सब तिर्यञ्च, सब मनुष्य और सब देवोंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्यत्रिकमें बारह कषाय और नौ नोकषायोंके अवक्तव्यसंकामकका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्वप्रमाण है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

*** अब नाना जीवोंकी अपेक्षा भंगविचयकका अधिकार है।**

§ ७७७. यह सूत्र सुगम है, क्योंकि इसका प्रयोजन अधिकारकी सम्हालमात्र करना है।

*** मिथ्यात्वके सब (नाना) जीव भुजगारसंक्रामक हैं, अल्पतरसंक्रामक हैं और अवस्थितसंक्रामक हैं।**

§ ७७८. मिथ्यात्वके भुजगार आदि पदोंके संक्रामक नाना जीव नियमसे हैं इसप्रकार यहाँ पर अधिकारका सम्बन्ध करना चाहिए।

शंका—इनका नियमसे अस्तित्व क्यों है ?

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संकामयाणमणंतजीवाणं सव्वद्धमविच्छिण्णपवाहसरूवेणावट्ठाणदंसणादो ।

❀ **सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं सत्तावीस भंगा ।**

§ ७७९. कुदो, भुजगारावट्ठिदावत्तव्वसंकामयाणं भयणिज्जत्तेणाप्पयरसंकामयाणं धुवत्तदंसणादो । तदो भयणिज्जपदाणि विरलिय तिगुणिय अण्णोण्णब्भासे कए धुवसहिया सत्तावीस भंगा उप्पज्जंति ।

❀ **सेसाणं मिच्छत्तभंगो ।**

§ ७८०. सोलसकसाय-णवणोकसायाणमिह सेसत्तेण गहणं, तेसिं च पयद-परूवणाए मिच्छत्तभंगो कायव्वो, भुजगारादिपदसंकामयाणं णियमा अत्थित्तेण तत्तो विसेसाभावादो । अवत्तव्वपयगदो दु थोवयरो विसेसो एत्थत्थि त्ति तण्णिद्धारणट्ठमुत्तर-सुत्तमाह—

❀ **णवरि अवत्तव्वसंकामया भजियव्वा ।**

§ ७८१. मिच्छत्तस्सावत्तव्वसंकामया णत्थि । एदेसिं पुण अवत्तव्वसंकामया अत्थि ते च भजियव्वा त्ति उत्तं होइ । संपहि एदस्सेव भंगविचयस्स सुत्तणिद्दिट्ठस्स फुडीकरणट्ठमुच्चारणं वत्तइस्सामो । तं जहा—णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण सम्म०-सम्मामि०-मिच्छ० विहत्तिभंगो । सोलसक०-णवणोक० भुज०-अप्पद०-अवट्ठि० णियमा अत्थि । सिया एदे च अवत्तव्व-

---

समाधान—नहीं, क्योंकि मिथ्यात्वके भुजगारादिपदोंके संक्रामक अनन्त जीवोंका सर्वदा प्रवाहका विच्छेद हुए बिना अवस्थान देखा जाता है ।

※ **सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके सत्ताईस भंग होते हैं ।**

§ ७७९. क्योंकि भुजगार, अवस्थित और अवक्तव्यसंक्रामकोंके भजनीयपनेके साथ अल्पतरसंक्रामक ध्रुवरूप देखे जाते हैं, इसलिए भजनीय पदोंका विरलन कर तथा उन्हें तिगुणाकर परस्पर गुणा करने पर ध्रुव भंगके साथ सत्ताईस भंग उत्पन्न होते हैं ।

उदाहरण—$\frac{३}{१} \times \frac{३}{१} \times \frac{३}{१} = २७$ भंग । इन सत्ताइस भंगोंमें ध्रुव भंग सम्मिलित है ।

※ **शेष प्रकृतियोंका भंग मिथ्यात्वके समान है ।**

§ ७८०. सोलह कषायों और नौ नोकषायोंका यहाँ पर शेष पदद्वारा ग्रहण किया है । उनका प्रकृत प्ररूपणामें मिथ्यात्वके समान भंग करना चाहिए, क्योंकि इनके भुजगार आदि पदोंका नियमसे अस्तित्व है, अतः उसके कथनसे इनके कथनमें कोई विशेषता नहीं है । मात्र अवक्तव्य-पदगत यहाँपर थोड़ीसी विशेषता है, इसलिए उसका निर्धारण करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

※ **किन्तु उनके अवक्तव्यसंक्रामक जीव भजनीय हैं ।**

७८१. मिथ्यात्वके अवक्तव्यसंक्रामक जीव नहीं हैं । परन्तु इनके अवक्तव्यसंक्रामक जीव हैं और वे भजनीय हैं यह उक्त कथनका तात्पर्य है । अब सूत्रनिर्दिष्ट इसी भंगविचयका स्पष्टीकरण करनेके लिए उच्चारणाको बतलाते हैं । यथा—नानाजीवोंकी अपेक्षा भंगविचयानुगमसे निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और मिथ्यात्वका भंग स्थितिविभक्तिके समान है । सोलह कषायों और नोकषायोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संकामओ च। सिया एदे च अवत्तव्वसंकामया च। आदेसेण सव्वणेरइय०-सव्व-तिरिक्ख-मणुणअपज्ज०-सव्वदेवा विहत्तिभंगो। मणुसतिय०३ मिच्छ०-सम्म०-सम्मामि० विहत्तिभंगो। सोलसक०-णवणोक० अप्पद०-अवट्ठि० णियमा अत्थि। सेसपदाणि भयणिज्जाणि। भंगा णव ९। एवं जाव अणाहारि त्ति।

§ ७८२. एत्थ सुगमत्तादो सुत्तेणापरूविदाणं भागाभाग-परिमाण-खेत्त-फोसणाणं किं चि समासपरूवणट्ठमुच्चारणावलंबणं कस्सामो। तं जहा—भागाभागाणु० दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण विहत्तिभंगो। णवरि बारसक०-णवणोक० अवत्त० अणंतिमभागो। आदेसेण सव्वणेरइय-सव्वतिरिक्ख-मणुसअपज्ज०-सव्वदेवा त्ति विहत्तिभंगो। मणुसा० विहत्तिभंगो। णवरि बारसक०-णवणोक० अवत्त० असंखे०भागो। मणुसपज्ज०-मणुसिणी० विहत्तिभंगो। णवरि बारसक०-णवणोक० अवत्त० संखे०भागो। एवं जाव०।

§ ७८३. परिमाणाणु० दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण विहत्ति-भंगो। णवरि बारसक०-णवणोक० अवत्त०संका० केत्तिया? संखेज्जा। एवं मणुस०३। सेसमग्गणासु विहत्तिभंगो।

§ ७८४. खेत्तं पोसणं च विहत्तिभंगो। णवरि ओघे मणुसतिए च बारसक०-

---

संक्रामक जीव नियमसे हैं। कदाचित् ये जीव हैं और अवक्तव्यसंक्रामक एक जीव है। कदाचित् ये जीव हैं और अवक्तव्यसंक्रामक नाना जीव हैं। आदेशसे सब नारकी, सब तिर्यञ्च, मनुष्य अपर्याप्त और सब देवोंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है। मनुष्यत्रिकमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग स्थितिविभक्तिके समान है। सोलह कषायों और नौ नोकषायोंके अल्पतर और अवस्थित पदके संक्रामक जीव नियमसे हैं। शेष पद भजनीय हैं। भंग ९ हैं। इसीप्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

§ ७८२. यहाँ पर सुगम होनेसे सूत्र द्वारा नहीं कहे गये भागाभाग, परिमाण, क्षेत्र और स्पर्शनका कुछ संक्षेपमें कथन करनेके लिए उच्चारणाका अवलम्बन करते हैं। यथा—भागाभागानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे स्थितिविभक्तिके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि बारह कषायों और नौ नोकषायोंके अवक्तव्यसंक्रामक जीव अनन्तवें भागप्रमाण हैं। आदेशसे सब नारकी, सब तिर्यञ्च, मनुष्य अपर्याप्त और सब देवोंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है। मनुष्योंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है। इतनी विशेषता है कि बारह कषायों और नौ नोकषायोंके अवक्तव्यसंक्रामक जीव असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। मनुष्यपर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि बारह कषायों और नौ नोकषायोंके अवक्तव्यसंक्रामक जीव संख्यातवें भागप्रमाण हैं। इसीप्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

§ ७८३. परिमाणानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे स्थितिविभक्तिके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि बारह कषायों और नौ नोकषायोंके अवक्तव्यसंक्रामक जीव कितने हैं? संख्यात हैं। इसी प्रकार मनुष्यत्रिकमें जानना चाहिए। शेष मार्गणाओंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है।

§ ७८४. क्षेत्र और स्पर्शनका भङ्ग स्थितिविभक्तिके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि ओघमें और मनुष्यत्रिकमें बारह कषायों और नौ नोकषायोंके अवक्तव्यसंक्रामकोंका क्षेत्र और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णवणोक० अवत्त० लोगस्स असंखे०भागे खेत्तं पोसणं च कायव्वं। एवमेदेसिमप्प-वण्णणिज्जाणं थोवयरविसेससंभवपदुप्पायणट्ठमणुवादं काऊण संपहि णाणाजीवसंबंधि-कालपरूवणट्ठमुवरिमं सुत्तपबंधमणुसरामो—

❀ णाणाजीवेहि कालो।

§ ७८५. सुगममेदं सुत्तं, अहियारसंभालणमेत्तवावदत्तादो।

❀ मिच्छत्तस्स भुजगार-अप्पदर-अवट्ठिदसंकामया केवचिरं कालादो होंति ? सव्वद्धा।

§ ७८६. कुदो ? तिसु वि कालेसु एदेसिं विरहाणुवलंभादो।

❀ सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं भुजगार-अवट्ठिद-अवत्तव्वसंकामया केवचिरं कालादो होंति ?

§ ७८७. सुबोहमेदं पुच्छासुत्तं।

❀ जहण्णेणेयसमओ।

§ ७८८. दोण्हमेदेसिं कम्माणमेयसमयं भुजगारादिसंकामयत्तेण परिणदणाणा-जीवाणं विदियसमए सव्वेसिमेव अप्पदरसंकामयपज्जायपरिणामे तदुवलद्धीदो।

❀ उक्कस्सेण आवलियाए असंखेज्जदिभागो।

§ ७८९. कुदो ? णाणाजीवाणुसंधाणेण तेसिमेत्तियमेत्तकालावट्ठाणोवलंभादो।

स्पर्शन लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण करना चाहिए। इस प्रकार अल्पवर्णनीय इन अनुयोगद्वारोंकी थोड़ीसी सम्भव विशेषताका कथन करनेके लिए उल्लेख करके अब नाना जीवसम्बन्धी कालका कथन करनेके लिए आगेके सूत्रप्रबन्धका अनुसरण करते हैं—

*** नाना जीवोंकी अपेक्षा कालका अधिकार है।**

§ ७८५. यह सूत्र सुगम है, क्योंकि अधिकारकी सम्हाल करनेमात्रमें इसका व्यापार है।

*** मिथ्यात्वके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितसंक्रामकोंका कितना काल है ? सर्वदा है।**

§ ७८६. क्योंकि तीनों ही कालोंमें इन पदोंका विरह नहीं उपलब्ध होता।

*** सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके भुजगार, अवस्थित और अवक्तव्यसंक्रामकोंका कितना काल है ?**

§ ७८७. यह पृच्छासूत्र सुबोध है।

*** जघन्य काल एक समय है।**

§ ७८८. इन दोनों कर्मोंके एक समय तक भुजगारादिसंक्रमरूपसे परिणत हुए नाना जीवोंके दूसरे समयमें सभीके अल्पतरसंक्रमरूप पर्यायसे परिणत होने पर उक्त काल उपलब्ध होता है।

*** उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भाग प्रमाण है।**

§ ७८९. क्योंकि नाना जीवोंका सन्ततिका विच्छेद न होकर निरन्तररूपसे उन पदोंका इतने कालतक ही अवस्थान उपलब्ध होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

❀ अप्पदरसंकामया सव्वद्धा ।

§ ७९०. कुदो ? मिच्छाइट्ठि-सम्माइट्ठीणं पवाहस्स तदप्पयरसंकामयस्स तिसु वि कालेसु णिरंतरमवट्ठाणोवलंभादो ।

❀ सेसाणं कम्माणं भुजगार-अप्पयर-अवट्ठिदसंकामया केवचिरं कालादो होंति ?

§ ७९१. सुगमं ।

❀ सव्वद्धा ।

§ ७९२. सव्वकालमविच्छिण्णसरूवेणेदेसिं संताणस्स समवट्ठाणादो ।

❀ अवत्तव्वसंकामया केवचिरं कालादो होंति ।

§ ७९३. सुगमं ।

❀ जहण्णेणेयसमओ, उक्कस्सेण संखेज्जा समया ।

§ ७९४. उवसामणादो परिवदिदाणमणुसंधिदसंताणाणमेत्थ जहण्णकालसंभवो, तेसिं चेव संखेज्जवारमणुसंधिदसंताणाणमवट्ठाणकालो उक्क० संखेज्जसमयमेत्तो घेत्तव्वो । एदेण सुत्तेणाणंताणुबंधीणं पि अवत्तव्वसंकामयाणमुक्कस्सकाले संखेज्जसमयमेत्ते अइप्पसत्ते तत्थ विसेससंभवमाह—

❀ णवरि अणंताणुबंधीणमवत्तव्वसंकामयाणं सम्मत्तभंगो ।

✻ अल्पतरसंक्रामकोंका काल सर्वदा है ।

§ ७९०. क्योंकि मिथ्यादृष्टि और सम्यग्दृष्टियोंमें इन कर्मोंके अल्पतरसंक्रामकोंका प्रवाह तीनों ही कालोंमें निरन्तर पाया जाता है ।

✻ शेष कर्मोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितसंक्रामकोंका कितना काल है ?

§ ७९१. यह सूत्र सुगम है ।

✻ सर्वदा है ।

§ ७९२. क्योंकि सर्वदा अविच्छिन्नरूपसे इनकी सन्तान उपलब्ध होती है ।

✻ अवक्तव्यसंक्रामकोंका कितना काल है ?

§ ७९३. यह सूत्र सुगम है ।

✻ जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है ।

§ ७९४. क्योंकि जिनकी सन्तान विच्छिन्न हो गई है ऐसे उपशमश्रेणिसे गिरे हुए जीवोंका यहाँ पर जघन्य काल सम्भव है । तथा संख्यात बार मिली हुई सन्तानवाले उन्हीं जीवोंका संख्यात समयमात्र उत्कृष्ट अवस्थानकाल यहाँ पर ग्रहण करना चाहिए । इस सूत्रसे अनन्तानुबन्धियोंके भी अवक्तव्यसंक्रामकोंका उत्कृष्ट काल संख्यात समयमात्र प्राप्त होने पर वहाँ पर जो विशेषता सम्भव है उसका निर्देश करते हैं—

✻ किन्तु इतनी विशेषता है कि अनन्तानुबन्धियोंके अवक्तव्यसंक्रामकोंका भंग सम्यक्त्वके समान है ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ७९५. जहण्णेणेयसमओ, उक्कस्सेणावलियाए असंखे०भागो इच्चेदेण भेदाभावादो। एवमोघपरूवणा सुत्तणिबद्धा गया।

§ ७९६. एत्तो देसामासयभावेणेदेण सुत्तपबंधेण सूचिदादेसपरूवणाए विहित्तिभंगो। णवरि मणुसतिए बारसक०-णवणोक० अवत्त० जह० एयस०, उक्क० संखेज्जा समया।

❀ णाणाजीवेहि अंतरं।

§ ७९७. णाणाजीवसंबंधिकालणिद्देसाणंतरं तदंतरमणुवण्णइस्सामो त्ति पइज्जाणिद्देसमेदेण सुत्तेण काऊण तव्विहासणट्ठमुत्तरसुत्तं भणइ—

❀ **मिच्छत्तस्स भुजगार-अप्पदर-अवट्ठिदसंकामयंतरं केवचिरं कालादो होदि?**

§ ७९८. सुगमं।

❀ **णत्थि अंतरं।**

§ ७९९. सुगमं।

❀ **सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं भुजगार-अवत्तव्वसंकामयंतरं केवचिरं कालादो होदि?**

§ ८००. सुगमं।

❀ **जहण्णेणेयसमओ।**

---

§ ७९५. क्योंकि जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है इससे यहाँ कोई भेद नहीं है। इस प्रकार सूत्रमें निबद्ध ओघप्ररूपणा समाप्त हुई।

§ ७९६. आगे देशामर्षकरूपसे इस सूत्रप्रबन्ध द्वारा सूचित आदेशकी प्ररूपणा करने पर स्थितिविभक्तिके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्यत्रिकमें बारह कषायों और नौ नौकषायोंके अवक्तव्यसंक्रामकोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है।

** अब नाना जीवोंकी अपेक्षा अन्तरका अधिकार है।**

§ ७९७. नाना जीवसम्बन्धी कालका निर्देश करनेके बाद उसके अन्तरको बतलाते हैं इस प्रकार इस सूत्र द्वारा प्रतिज्ञाका निर्देश करके उस अन्तरका व्याख्यान करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

** मिथ्यात्वके भुजगार, अल्पतर और अवस्थितसंक्रामकोंका अन्तरकाल कितना है?**

§ ७९८. यह सूत्र सुगम है।

** अन्तरकाल नहीं है।**

§ ७९९. यह सूत्र सुगम है।

** सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके भुजगार और अवक्तव्य संक्रामकोंका अन्तरकाल कितना है?**

§ ८००. यह सूत्र सुगम है।

** जघन्य अन्तरकाल एक समय है।**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ८०१. सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं भुजगारमवत्तव्वयं वा काऊण ट्ठिदणाणाजीवाण-मेयसमयमंतरिय तदणंतरसमए पुणो वि केत्तियाणं पि तब्भावेण पादुब्भावविरोहाभावादो।

❀ उक्कस्सेण चउवीसमहोरत्ते सादिरेये।

§ ८०२. कुदो ? एत्तिएणुक्कस्संतरेण विणा पयदभुजगारावत्तव्वसंकामयाणं पुणरुब्भवाभावादो।

❀ अप्पयरसंकामयंतरं केवचिरं कालादो होदि ? णत्थि अंतरं।

§ ८०३. अप्पयरसंकामयंतरं केवचिरं होइ त्ति आसंकिय णत्थि अंतरमिदि तप्पडिसेहो कीरदे। कुदो पुण तदभावो ? तिसु वि कालेसु वोच्छेदेण विणा णिरंतरमेदेसिं पवाहस्स पवुत्तिदंसणादो।

❀ अवट्ठिदसंकामयंतरं केवचिरं कालादो होदि ? जहण्णेणेयसमओ।

§ ८०४. सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तट्ठिदिसंतकम्मादो समयुत्तरमिच्छत्तट्ठिदिसंत-कम्मियाणं केत्तियाणं पि जीवाणं वेदयसम्मत्तुप्पत्तिविदियसमए विवक्खियसंकमपज्जाएण परिणमिय तदणंतरसमए अंतरिदाणं पुणो अण्णजीवेहि तदणंतरोवरिमसमए अवट्ठिद-पज्जायपरिणदेहि अंतरवोच्छेदे कदे तदुवलंभादो।

❀ उक्कस्सेण अंगुलस्स असंखेज्जदिभागो।

---

§ ८०१. क्योंकि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके भुजगार या अवक्तव्यपदको करके स्थित हुए नाना जीवोंके एक समयका अन्तर देकर तदनन्तर समयमें फिरसे कितने ही जीवोंके उन दोनों पदों रूपसे परिणत होनेमें कोई विरोध नहीं आता।

* उत्कृष्ट अन्तर काल साधिक चौबीस दिन-रात है।

§ ८०२. क्योंकि इतना उत्कृष्ट अन्तर हुए बिना प्रकृत भुजगार और अवक्तव्यसंक्रामकोंकी फिरसे उत्पत्ति नहीं होती।

* अल्पतरसंक्रामकोंका अन्तरकाल कितना है ? अन्तरकाल नहीं है।

§ ८०३. अल्पतरसंक्रामकोंका अन्तरकाल कितना है ऐसी आशंका करके अन्तरकाल नहीं है इस प्रकार उसका निषेध किया।

शंका—इनके अन्तरकालका अभाव क्यों है ?

समाधान—क्योंकि तीनों ही कालोंमें विच्छेदके बिना निरन्तर इनके प्रवाहकी प्रवृत्ति देखी जाती है।

* अवस्थितसंक्रामकोंका अन्तरकाल कितना है ? जघन्य अन्तर एक समय है।

§ ८०४. क्योंकि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके स्थितिसत्कर्मसे एक समय अधिक मिथ्यात्वके स्थितिसत्कर्मवाले कितने ही जीवोंके वेदकसम्यक्त्वकी उत्पत्तिके दूसरे समयमें विवक्षित संक्रमपर्यायसे परिणम कर तदनन्तर समयमें अन्तरको प्राप्त होने पर पुनः अन्य जीवोंके तदनन्तर उपरिम समयमें अवस्थितसंक्रम पर्यायसे परिणत होकर अन्तरका विच्छेद करने पर उक्त अन्तरकाल उपलब्ध होता है।

* उत्कृष्ट अन्तर अंगुलके असंख्यातवें भागप्रमाण है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ८०५. एत्तिएणुक्कस्संतरेण विणा समयुत्तरमिच्छत्तट्ठिदिसंतकम्मेण सम्मत्तपडिलंभस्स दुल्लहत्तादो । कुदो एवं ? दुसमयुत्तरादिमिच्छत्तट्ठिदिवियप्पाणं संखेज्जसागरोवमकोडाकोडिपमाणाणं सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तभुजगारसंकमहेऊणं बहुलं संभवेण तत्थेव णाणाजीवाणं पाएण संचरणोवलंभादो । तदो तेहिं ट्ठिदिवियप्पेहि भूयो भूयो सम्मत्तं पडिवज्जमाणणाणाजीवाणमेसो उक्कस्संतरसंभवो दट्ठव्वो ।

⊛ अणंताणुबंधीणमवत्तव्वसंकामयंतरं जहण्णेणेयसमओ, उक्कस्सेण चउवीसमहोरत्ते सादिरेये ।

§ ८०६. एदाणि दो वि अणंताणुबंधीणमवत्तव्वसंकामयजहण्णुक्कस्संतरपडिबद्धाणि सुत्ताणि सुगमाणि ।

⊛ सेसाणं कम्माणमवत्तव्वसंकामयंतरं जहण्णेणेयसमओ, उक्कस्सेण संखेज्जाणि वस्ससहस्साणि ।

§ ८०७. एदाणि वि बारसक०-णवणोकसायाणमवत्तव्वसंकामयजहण्णुक्कस्संतरणिबद्धाणि सुत्ताणि सुबोहाणि । एवमेदेसिमवत्तव्वसंकामयाणमंतरं पदुप्पाइय सेसपदसंकामयाणमंतरसंभवासंकामयाणमंतरसंभवासंकाणिरायरणट्ठमुत्तरसुत्तमाह—

---

§ ८०५. क्योंकि इतने उत्कृष्ट अन्तरके बिना मिथ्यात्वसम्बन्धी एक समय अधिक स्थितिसत्कर्मके साथ सम्यक्त्वकी प्राप्ति दुर्लभ है ।

शंका—ऐसा क्यों है ?

समाधान—क्योंकि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके भुजगार संक्रमके हेतुभूत मिथ्यात्वके दो समय अधिकसे लेकर संख्यात कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण स्थितिविकल्पोंके बहुलतासे सम्भव होनेके कारण उन्हींमें प्रायः नाना जीवोंका संचार उपलब्ध होता है, इसलिए इन स्थितिविकल्पोंके साथ पुनः पुनः सम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाले नाना जीवोंके यह उत्कृष्ट अन्तर सम्भव दिखलाई देता है ।

※ अनन्तानुबन्धियोंके अवक्तव्यसंक्रामकोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर साधिक चौबीस दिन-रात है ।

§ ८०६. अनन्तानुबन्धियोंके जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरसे प्रतिबद्ध ये दोनों ही सूत्र सुगम हैं ।

※ शेष कर्मोंके अवक्तव्यसंक्रामकोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर संख्यात हजार वर्षप्रमाण है ।

§ ८०७. बारह कषायों और नौ नोकषायोंके अवक्तव्यसंक्रामकोंके जघन्य और उत्कृष्ट अन्तरसे प्रतिबद्ध ये भी दोनों सूत्र सुबोध हैं । इसप्रकार इनके अवक्तव्यसंक्रामकोंके अन्तरका कथन करके शेष पदोंके संक्रामकोंके अन्तरमें सम्भव और असंक्रामकोंके अन्तरमें सम्भव शंकाके निराकरण करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

❀ सोलसकसायणवणोकसायाणं भुजगार-अप्पदर-अवट्ठिदसंकामयाणं णत्थि अंतरं।

§ ८०८. कुदो ? सव्वद्धमेदेसु अणंतस्स जीवरासिस्स जहापविभागमवट्ठाण-दंसणादो। एवमोघेण णाणाजीवसंबंधिणी अंतरपरूवणा गया।

§ ८०९. एत्तो आदेसपरूवणाए विहत्तिभंगो। णवरि मणुसतिए बारसक०-णवणोक० अवत्तव्वसंकामयंतरं जह० एयस०, उक्क० वासपुधत्तं।

§ ८१०. भावो सव्वत्थ ओदइओ भावो।

❀ अप्पाबहुअं।

§ ८११. मिच्छत्तादिपयडिपडिबद्धभुजगारादिसंकामयाणमप्पाबहुअं वण्णइस्सामो त्ति पइज्जावयणमेदमहियारसंभालणवक्कं वा।

❀ सव्वत्थोवा मिच्छत्तभुजगारसंकामया।

§ ८१२. दुसमयसंचिदत्तादो।

❀ अवट्ठिदसंकामया असंखेज्जगुणा।

§ ८१३. कुदो ? अंतोमुहुत्तसंचियत्तादो।

❀ अप्पयरसंकामया संखेज्जगुणा।

---

* सोलह कषायों और नौ नोकषायोंके भुजगार, अल्पतर और अवस्थित-संक्रामकोंका अन्तरकाल नहीं है।

§ ८०८. क्योंकि इन पदोंमें अनन्त जीवराशिका अपने-अपने प्रतिभागके अनुसार सर्वदा अवस्थान देखा जाता है। इस प्रकार ओघसे नाना जीवोंसे सम्बन्ध रखनेवाली अन्तरप्ररूपणा समाप्त हुई।

§ ८०९. आगे आदेशकी प्ररूपणा करने पर उसका भंग स्थितिविभक्तिके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि मनुष्यत्रिकमें बारह कषायों और नौ नोकषायोंके अवक्तव्यसंकामकोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण है।

§ ८१०. भाव सर्वत्र औदयिक है।

* अल्पबहुत्वका अधिकार है।

§ ८११. मिथ्यात्व आदि प्रकृतियोंसे सम्बन्ध रखनेवाले भुजगार आदि पदोंके संक्रामकोंके अल्पबहुत्वको बतलाते हैं इस प्रकार यह प्रतिज्ञावाक्य है या अधिकारकी सम्हाल करनेवाला वाक्य है

* मिथ्यात्वके भुजगारसंक्रामक जीव सबसे स्तोक हैं।

§ ८१२. क्योंकि इनका सञ्चय दो समयमें हुआ है

* उनसे अवस्थितसंक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं।

§ ८१३. क्योंकि इनका सञ्चय अन्तर्मुहूर्तमें हुआ है।

* उनसे अल्पतरसंक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ८१४. जइ वि अप्पयरसंकमकालो वि अंतोमुहुत्तमेत्तो चेव तो वि तक्कालसंचिद-जीवरासिस्स पुव्विल्लसंचयादो संखेज्जगुणत्तं ण विरुज्झदे, संतस्स हेट्ठा संखेज्जवार-मवट्ठिदट्ठिदिबंधेसु पादेक्कमंतोमुहुत्तकालपडिबद्धेसु परिणमिय सइं संतसमाणबंधेण सव्वेसिं जीवाणं परिणमणदंसणादो।

❀ सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं सव्वत्थोवा अवट्ठिदसंकामया।

§ ८१५. कुदो? समयुत्तरमिच्छत्तट्ठिदिसंतकम्मेण वेदयसम्मत्तं पाडिवज्जमाण-जीवाणमइदुल्लहत्तादो।

❀ भुजगारसंकामया असंखेज्जगुणा।

§ ८१६. को गुणगारो? आवलि० असंखे०भागो। दोण्हमेदेसिमेयसमय-संचिदत्तेण संते कुदो एस विसरिसभावो त्ति णासंकणिज्जं, तत्तो एदस्स विसयबहुत्तोव-लंभादो। तं कधं? अवट्ठिदसंकमविसओ णिरुद्धेयट्ठिदिमेत्तो, समयुत्तरमिच्छत्तट्ठिदिसंत-कम्मादो अण्णत्थ तदभावणिण्णयादो। भुजगारसंकमो पुण दुसमयुत्तरादिट्ठिदिवियप्पेसु संखेज्जसागरोवमपमाणावच्छिण्णेसु अप्पडिहयपसरो। तदो तेसु ठाइदूण वेदयसम्मत्त-मुवसमसम्मत्तं च पडिवज्जमाणो जीवरासी असंखेज्जगुणो त्ति णिप्पडिबंधमेदं।

§ ८१४. यद्यपि अल्पतरसंक्रामकोंका काल भी अन्तर्मुहूर्तप्रमाण है तो भी उतने कालमें सञ्चित हुई जीवराशि पूर्वोक्त सञ्चयसे संख्यातगुणी है इसमें कोई विरोध नहीं आता, क्योंकि प्रत्येक बार अन्तर्मुहूर्त काल तक सत्कर्मसे कम अवस्थित स्थितिबन्धरूपसे परिणमन कर एक बार सब जीवोंका सत्कर्मके समान बन्धरूप परिणाम देखा जाता है।

* सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके अवस्थितसंक्रामक जीव सबसे स्तोक हैं।

§ ८१५. क्योंकि मिथ्यात्वके एक समय अधिक स्थितिसत्कर्मके साथ वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाले जीव अतिदुर्लभ हैं।

* उनसे भुजगारसंक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं।

§ ८१६. गुणकार क्या है? आवलिका असंख्यातवाँ भाग गुणकार है।

शंका—उक्त प्रकृतियोंके अवस्थित और भुजगार इन दोनों पदोंका सञ्चय एक समयमें होने पर यह विसदृशता क्यों प्राप्त होती है?

समाधान—ऐसी आशंका करना ठीक नहीं है, क्योंकि अवस्थितपदसे भुजगारपदका विषयबहुत्व उपलब्ध होता है।

शंका—वह कैसे?

समाधान—क्योंकि अवस्थितसंक्रमका विषय विवक्षित एक स्थितिमात्र है, क्योंकि मिथ्यात्वके एक समय अधिक स्थितिसत्कर्मसे अन्यत्र उसके अभावका निर्णय है। परन्तु भुजगारसंक्रम दो समय अधिक स्थितिविकल्पसे लेकर संख्यात सागर प्रमाण अधिक स्थिति-विकल्पोंके प्राप्त होने तक अप्रतिहत प्रसारवाला है, इसलिए उन स्थितिविकल्पोंमें स्थापित कर वेदकसम्यक्त्व और उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाली जीवराशि असंख्यातगुणी है यह निर्विवाद है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

❀ अवत्तव्वसंकामया असंखेज्जगुणा ।

§ ८१७. एत्थ वि गुणगारो आवलि० असंखे०भागमेत्तो । कुदो ? पलिदोवमासंखेज्जभागमेत्तवेदग-उवसमपाओग्गुव्वेल्लणकालब्भंतरसंचयणिबंधणादो भुजगारसंकामयरासीदो अद्धपोग्गलपरियट्टकालब्भंतरसंचिदणिस्संतकम्मियरासिणिस्संदस्सावत्तव्वसंकामयरासिस्स असंखेज्जगुणत्ते विसंवादाभावादो ।

❀ अप्पयरसंकामया असंखेज्जगुणा ।

§ ८१८. अवत्तव्वसंकामयरासी उवसमसम्माइट्ठीणमसंखे०भागो । एसो पुण उवसम-वेदगसम्माइट्ठिरासी सव्वो उव्वेल्लमाणमिच्छाइट्ठिरासी च तदो असंखेज्जगुणो जादो ।

❀ अणंताणुबंधीणं सव्वत्थोवा अवत्तव्वसंकामया ।

§ ८१९. कुदो ? पलिदोवमासंखेज्जभागपमाणत्तादो ।

❀ भुजगारसंकामया अणंतगुणा ।

§ ८२०. कुदो ? सव्वजीवरासिस्स असंखेज्जभागपमाणत्तादो ।

❀ अवट्ठिदसंकामया असंखेज्जगुणा ।

§ ८२१. कुदो ? सव्वजीवरासिस्स संखेज्जभागपमाणत्तादो ।

❀ अप्पयरसंकामया संखेज्जगुणा ।

---

* उनसे अवक्तव्यसंक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं ।

§ ८१७. यहाँ पर भी गुणाकार आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है, क्योंकि वेदक और उपशमसम्यक्त्वके योग्य पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण उद्वेलनकालके भीतर सञ्चित हुई भुजगारसंक्रामक जीवराशिसे अर्धपुद्गलपरिवर्तन कालके भीतर सञ्चित हुई उक्त प्रकृतियोंके सत्कर्मसे रहित जीवराशिमेंसे प्राप्त हुई अवक्तव्यसंक्रामक जीवराशिके असंख्यातगुणे होनेमें कोई विसंवाद नहीं है ।

* उनसे अल्पतरसंक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं ।

§ ८१८. क्योंकि अवक्तव्यसंक्रामक जीवराशि उपशमसम्यग्दृष्टियोंके असंख्यातवें भागप्रमाण है । परन्तु यह जीवराशि उपशम और वेदकसम्यग्दृष्टि तथा उद्वेलना करनेवाली समस्त मिथ्यादृष्टि राशिप्रमाण है, अतः पूर्वोक्त राशिसे यह राशि असंख्यातगुणी हो गई है ।

* अनन्तानुबन्धियोंके अवक्तव्यसंक्रामक जीव सबसे स्तोक हैं ।

§ ८१९. क्योंकि ये पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं ।

* उनसे भुजगारसंक्रामक जीव अनन्तगुणे हैं ।

८२०. क्योंकि ये सब जीवराशिके संख्यातवें भागप्रमाण हैं ।

* उनसे अवस्थितसंक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं ।

§ ८२१. क्योंकि ये सब जीवराशिके संख्यातवें भागप्रमाण हैं ।

* उनसे अल्पतरसंक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ८२२. अवट्ठिदसंकमावट्ठाणकालादो अप्पयरसंकमपरिणामकालस्स संखेज्ज-गुणत्तादो ।

❀ एवं सेसाणं कम्माणं ।

§ ८२३. जहाणंताणुबंधीणं पयदप्पाबहुअपरूवणा कया एवं चेव सेसकसाय-णोकसायाणं पि कायव्वं, विसेसाभावादो । एवमोघपरूवणा सुत्तणिबद्धा कया ।

§ ८२४. एत्तो एदस्स फुडीकरणट्ठमादेसपरूवणट्ठं च तदुच्चारणाणुगमं कस्सामो । तं जहा—अप्पाबहुआणु० दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छ०-सम्म०-सम्मामि० विहत्तिभंगो । सोलसक०-णवणोक० सव्वत्थोवा अवत्त०-संका० । भुज०संका० अणंतगुणा । अवट्ठि०संका० असंखे०गुणा० । अप्पद०संका० संखे०गुणा । मणुसेसु सम्म०-सम्मामि०-मिच्छ० विहत्तिभंगो । सोलसक०-णवणोक० सव्वत्थोवा अवत्त०संका० । भुज०संका० असंखेज्जगुणा । अवट्ठि०संका० असंखे०गुणा । अप्पयर०संका० संखे०गुणा । एवं मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु । णवरि सव्वत्थ संखेज्जगुणं कायव्वं । सेसगइमग्गणाभेदेसु विहत्तिभंगो । एवं जाव० ।

एवमुत्तरपयडिट्ठिदिसंकमस्स भुजगारो समत्तो ।

---

§ ८२२. क्योंकि अवस्थितसंक्रामकोंके अवस्थानकालसे अल्पतरसंक्रामकोंका परिणामकाल संख्यातगुणा है ।

* इसीप्रकार शेष कर्मोंका प्रकृत अल्पबहुत्व है ।

§ ८२३. जिस प्रकार अनन्तानुबन्धियोंके प्रकृत अल्पबहुत्वका कथन किया है इसीप्रकार शेष कषायों और नोकषायोंके अल्पबहुत्वका भी कथन करना चाहिए, क्योंकि उससे इसमें कोई विशेषता नहीं है । इसप्रकार सूत्रोंमें निबद्ध ओघप्ररूपणा की ।

§ ८२४. आगे इसे स्पष्ट करनेके लिए और आदेशप्ररूपणा करनेके लिए उसकी उच्चारणाका अनुगम करते हैं । यथा—अल्पबहुत्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे मिथ्यात्व, सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग स्थितिविभक्तिके समान है । सोलह कषायों और नौ नोकषायोंके अवक्तव्यसंक्रामक जीव सबसे स्तोक हैं । उनसे भुजगार-संक्रामक जीव अनन्तगुणे हैं । उनसे अवस्थितसंक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे अल्पतरसंक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं । मनुष्योंमें सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व और मिथ्यात्वका भंग स्थितिविभक्तिके समान है । सोलह कषायों और नौ नोकषायोंके अवक्तव्यसंक्रामक जीव सबसे स्तोक हैं । उनसे भुजगारसंक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे अवस्थितसंक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं । उनसे अल्पतरसंक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं । इसीप्रकार मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें जानना चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है कि संख्यातगुणा करना चाहिए । गतिमार्गणाके शेष भेदोंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है । इसीप्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए ।

इसप्रकार उत्तरप्रकृतिस्थितिसंक्रमका भुजगार समाप्त हुआ ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

❀ पदणिक्खेवे तत्थ इमाणि तिण्णि अणियोगद्दाराणि—समुक्कित्तणा सामित्तमप्पाबहुअं च ।

§ ८२५. एदेण सुत्तेण पदणिक्खेवे तिण्हमणिओगद्दाराणं संभवो तण्णामणिद्देसो च कओ । एवमेदेहि तीहि अणिओगद्दारेहि पदणिक्खेवं परूवेमाणो जहा उद्देसो तहा णिद्देसो त्ति णायमवलंबिय समुक्कित्तणमेव ताव परूवेदुमुत्तरसुत्तमाह—

❀ तत्थ समुक्कित्तणा सव्वासिं पयडीणमुक्कस्सिया वड्ढी हाणी अवट्ठाणं च अत्थि ।

§ ८२६. तत्थ तेसु तिसु अणियोगद्दारेसु समुक्कित्तणा ताव उच्चदे—तत्थ दुविहो णिद्देसो ओघादेसभेदेण । ओघेण ताव सव्वासिं मोहपयडीणमत्थि उक्कस्सिया वड्ढी हाणी अवट्ठाणं च । ट्ठिदिसंकमस्से त्ति एत्थाहियारसंबंधो कायव्वो ।

❀ एवं जहण्णयस्स वि णेदव्वं ।

§ ८२७. जहा सव्वासिं पयडीणमुक्कस्सवड्ढि-हाणि-अवट्ठाणसंकमो समुक्कित्तिदो एवं जहण्णयस्स वि वड्ढि-हाणि-अवट्ठाणसंकमस्स समुक्कित्तणं णेदव्वं । तं कधं ? 'सव्वासिं पयडीणमत्थि जहण्णिया वड्ढी हाणी अवट्ठाणं च ।

एवमोघसमुक्कित्तणा गया ।

आदेसेण सव्वमग्गणासु विहत्तिभंगो ।

*** पदनिक्षेपका अधिकार है । उसमें ये तीन अनुयोगद्वार हैं—समुत्कीर्तना, स्वामित्व और अल्पबहुत्व ।**

§ ८२५. इस सूत्र द्वारा पदनिक्षेपमें तीन अनुयोगद्वारोंकी सम्भावनाके साथ उनके नामोंका निर्देश किया है । इसप्रकार इन तीन अनुयोगद्वारोंके द्वारा पदनिक्षेपका कथन करते हुए उद्देशके अनुसार निर्देश किया जाता है इस न्यायका अवलम्बन लेकर सर्वप्रथम समुत्कीर्तनका ही कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

*** प्रकृतमें समुत्कीर्तना इसप्रकार है—सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट वृद्धि, हानि और अवस्थान है ।**

§ ८२६. उन तीन अनुयोगद्वारोंमें सर्वप्रथम समुत्कीर्तना कथन करते हैं । उसकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे मोहनीयकी सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट वृद्धि, हानि और अवस्थान है । 'स्थितिसंक्रमका' इसप्रकार यहाँ पर अधिकारका सम्बन्ध कर लेना चाहिए ।

*** इसीप्रकार जघन्य वृद्धि, हानि और अवस्थान भी जानना चाहिए ।**

§ ८२७. जिस प्रकार सब प्रकृतियोंकी उत्कृष्ट वृद्धि, हानि और अवस्थानसंक्रमकी समुत्कीर्तना की उसी प्रकार जघन्य वृद्धि, हानि और अवस्थानसंक्रमकी भी समुत्कीर्तना जाननी चाहिए ।

शंका—वह कैसे ?

समाधान—सब प्रकृतियोंकी जघन्य वृद्धि, हानि और अवस्थान है ।

इस प्रकार ओघसमुत्कीर्तना समाप्त हुई ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

❀ सामित्तं।

§ ८२८. समुक्कित्तणाणंतरं सामित्तमवसरपत्तं कायव्वमिदि अहियारसंभालण-वयणमेदं।

❀ मिच्छत्त-सोलसकसायाणमुक्कस्सिया वड्ढी कस्स ?

§ ८२९. मिच्छत्तादीणमुक्कस्सट्ठिदिसंकमवुड्ढीए को सामिओ त्ति पुच्छिदं होइ।

❀ जो चउट्ठाणियजवमज्झस्स उवरि अंतोकोडाकोडिट्ठिदिमंतोमुहुत्त-संकामेमाणो सो सव्वमहंतं दाहं गदो तदो उक्कस्सट्ठिदिं पबद्धो तस्सा-वलियादीदस्स तस्स उक्कस्सिया वड्ढी।

§ ८३०. जा अंतोकोडाकोडिट्ठिदिमंतोमुहुत्तं संकामेमाणो अच्छिदो उक्कस्स-दाहवसेणुक्कस्सट्ठिदिं पबद्धो तस्सावलियादीदस्स विवक्खियकम्माणमुक्कस्सियट्ठिदिसंकम-वुड्ढी होइ त्ति सुत्तत्थसंबंधो। सा पुण अंतोकोडाकोडी अणेयवियप्पा, धुवट्ठिदीदो प्पहुडि समयुत्तरादिकमेण तत्तो संखेज्जगुणाओ ठिदीओ उल्लंघिय तदुक्कस्सवियप्पावट्ठाणादो। तत्थ किमुक्कस्संतोकोडाकोडीए समयूणसागरोवमकोडाकोडिपमाणाए इह ग्गहणं, आहो जहण्णाए धुवट्ठिदिपमाणावच्छिण्णाए, उदाहो तप्पाओग्गाए अजहण्णाणुक्कस्सवियप्प-पडिबद्धाए त्ति एत्थ णिण्णयकरणट्ठमिदं विसेसणं चउट्ठाणियजवमज्झस्स उवरि त्ति। तं च

---

* स्वामित्वका अधिकार है।

§ ८२८. समुत्कीर्तनाके बाद अवसर प्राप्त स्वामित्व करना चाहिए इसप्रकार अधिकारकी सम्हाल करनेवाला यह वचन है।

* मिथ्यात्व और सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट वृद्धि किसके होती है।

§ ८२९. मिथ्यात्व आदिकी उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमवृद्धिका स्वामी कौन है यह पृच्छा की गई है।

* जो चतुःस्थानिक यवमध्यके ऊपर अन्तःकोड़ाकोड़ीप्रमाण स्थितिका अन्तर्मुहूर्तकाल तक संक्रमण कर रहा है उसने अत्यन्त उत्कृष्ट दाहको प्राप्त होकर उससे उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया उसके एक आवलिके बाद उत्कृष्ट वृद्धि होती है।

§ ८३०. जो अन्तःकोड़ाकोड़ीप्रमाण स्थितिका अन्तर्मुहूर्त काल तक संक्रमण करता हुआ स्थित है, उसने उत्कृष्ट दाहवश उत्कृष्ट स्थितिबन्ध किया उसके एक आवलिके बाद विवक्षित कर्मोंकी उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमवृद्धि होती है ऐसा इस सूत्रका अर्थसम्बन्ध है। परन्तु वह अन्तःकोड़ा-कोड़ी ध्रुवस्थितिसे लेकर एक समय अधिक आदिके क्रमसे अनेक प्रकारकी है, क्योंकि ध्रुवस्थितिसे संख्यातगुणी स्थितिको उल्लंघन कर उसके उत्कृष्ट विकल्पका अवस्थान है। उसमेंसे एक समय कम कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण उत्कृष्ट अन्तःकोड़ाकोड़ीका यहाँ पर ग्रहण किया है या ध्रुवस्थिति-प्रमाण जघन्य अन्तःकोड़ाकोड़ीका ग्रहण किया है या अजघन्योत्कृष्ट विकल्पवाली अन्तःकोड़ा-कोड़ीका ग्रहण किया है इसप्रकार यहाँ पर निर्णय करनेके लिए 'चतुःस्थानिक यवमध्यके ऊपर' यह विशेषण दिया है। वह चतुःस्थानिक यवमध्य दो प्रकारका है—सातप्रायोग्य और असात-

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

चउट्ठाणियजवमज्झं दुविहं—सादपाओग्गमसादपाओग्गं च। तत्थ पयरणवसेणासादपाओग्गस्स गहणमिह विण्णेयं, अण्णहा सव्वुकस्सट्ठिदिबंधहेदुतिव्वयरदाहपरिणामाणुववत्तीदो। सव्वुक्कस्सविसोहिणिबंधणस्स सादचउट्ठाणजवमज्झस्स सव्वमहंतदाहहेउत्तविरोहादो च। तदो असादचउट्ठाणियाणुभागबंधपाओग्गजवमज्झस्स उवरि जा अंतोकोडाकोडी णिव्वियप्पंतोकोडाकोडीदो संखेज्जगुणहीणा दाहट्ठिदिसण्णिदा सेह गहेयव्वा, हेट्ठिमासेसट्ठिदिसंकमवियप्पाणमुक्कस्सदाहविरुद्धसहावत्तादो। ण च सव्वमहंतेण दाहेण विणा उक्कस्सओ ट्ठिदिबंधो होइ, विप्पडिसेहादो। तम्हा चउट्ठाणियजवमज्झस्सुवरि जो एवंविहमंतोकोडाकोडिट्ठिदिसंकममाणो समवट्ठिदो सव्वमहंतेण दाहेण परिणदो संतो उक्कस्सट्ठिदिं पबंधदि तस्स आवलियादीदं संकामेमाणयस्स पयदकम्माणमुक्कस्सिया वड्ढी ट्ठिदिसंकमविसया होदि त्ति सिद्धं। एत्थ वड्ढिपमाणं दाहट्ठिदिपरिहीणसत्तरि-चालीससागरोवमकोडाकोडिमेत्तअणंतरहेट्ठिमसमयसंकमादो सामित्तसमए ट्ठिदिसंकमस्स तेत्तियमेत्तेण वुड्ढिदंसणादो। एवमेदेसिं कम्माणमुक्कस्सवड्ढीए सामित्तं परूविय तस्सेवावट्ठाणसामित्तं पि उक्कस्सयं विदियसमए होइ त्ति जाणावणट्ठं सुत्तमुत्तरं भणइ—

❀ तस्सेव से काले उक्कस्सयमवट्ठाणं।

§ ८३१. तस्सेव उक्कस्सवुड्ढिसंकमसामित्तमुवगयस्स से काले तत्तियमेव संकामेमाणयस्स उक्कस्समवट्ठाणं होदि। कुदो? उक्कस्सवुड्ढीए अविणट्ठसरूवेण तत्थावट्ठाणदंसणादो।

प्रायोग्य। उनमेंसे प्रकरणवश असातप्रायोग्य यवमध्यका यहाँ पर ग्रहण जानना चाहिए, अन्यथा सर्वोत्कृष्ट स्थितिबन्धका हेतुभूत तीव्रतर दाहपरिणामकी उत्पत्ति नहीं बन सकती तथा सबसे उत्कृष्ट विशुद्धिकारणक सातचतुःस्थान यवमध्यके सर्वोत्कृष्ट दाहहेतुक होनेमें विरोध आता है। इसलिए असातचतुःस्थानीय अनुभागबन्धके योग्य यवमध्यके ऊपर निर्विकल्प अन्तःकोड़ाकोड़ीसे संख्यातगुणी हीन जो दाहसंज्ञावाली अन्तःकोड़ाकोड़ी स्थिति है उसे यहाँ ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि अधस्तन समस्त संक्रमविकल्प उत्कृष्ट दाहके विरुद्ध स्वभाववाले हैं। और सर्वोत्कृष्ट दाहके बिना उत्कृष्ट स्थितिबन्ध नहीं होता, क्योंकि ऐसा होनेका निषेध है। इसलिए चतुःस्थानिक यवमध्यके ऊपर जो इस प्रकारकी अन्तःकोड़ाकोड़ीप्रमाण स्थितिका संक्रम करता हुआ स्थित है वह सर्वोत्कृष्ट दाहसे परिणत होकर उत्कृष्ट स्थितिको बाँधता है उसके एक आवलिके बाद संक्रमण करते हुए प्रकृत कर्मोंकी स्थितिसंक्रमविषयक उत्कृष्ट वृद्धि होती है यह सिद्ध हुआ। यहाँ पर वृद्धिका प्रमाण दाहस्थितिसे हीन सत्तर और चालीस कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण स्थिति है, क्योंकि अनन्तर पूर्व समयमें हुए संक्रमसे स्वामित्वके समयमें स्थितिसंक्रमसे तत्प्रमाण वृद्धि देखी जाती है। इसप्रकार इन कर्मोंकी उत्कृष्ट वृद्धिके स्वामित्वका कथन करके उसीके उत्कृष्ट अवस्थान स्वामित्व दूसरे समयमें होता है यह जतानेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

*** उसीके अनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है।**

§ ८३१. उत्कृष्ट वृद्धिसंक्रमके स्वामित्वको प्राप्त हुए उसी जीवके अनन्तर समयमें उतना ही संक्रम करते हुए उत्कृष्ट अवस्थान होता है, क्योंकि उत्कृष्ट वृद्धिका विनाश हुए बिना वहाँ पर

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवमुक्कस्सवड्ढिपुव्वमवट्ठाणसामित्तं परूविय संपहि पयदकम्माणमुक्कस्सहाणीए सामित्त-विहाणट्ठमुत्तरसुत्तं भणइ—

❀ उक्कस्सिया हाणी कस्स ?

§ ८३२. सुगमं।

❀ जेण उक्कस्सट्ठिदिखंडयं घादिदं तस्स उक्कस्सिया हाणी।

§ ८३३. जेणुक्कस्सट्ठिदिसंकमादो अंतोमुहुत्तपडिभागेणुक्कस्सयं ट्ठिदिखंडयं घादिदं तस्सुक्कस्सिया हाणी होइ, तत्थुक्कस्सट्ठिदिखंडयमेत्तस्स ट्ठिदिसंकमस्स एक्कसराहेण परिहाणिदंसणादो। केत्तियमेत्तं च तमुक्कस्सट्ठिदिखंडयं ? अंतोकोडाकोडिपरिहीण कम्मट्ठिदिमेत्तं, उक्कस्सवुड्ढीदो किंचूणपमाणत्तादो। एदस्सेव पमाणपरिच्छेदस्स साहणट्ठ-मिदमाह—

❀ जं उक्कस्सट्ठिदिखंडयं तं थोवं। जं सव्वमहंतं दाहं गदो त्ति भणिदं तं विसेसाहियं।

§ ८३४. जमुक्कस्सट्ठिदिखंडयमुक्कस्सहाणीए विसईकयं तं थोवं। जं पुण उक्कस्स-वड्ढिपरूवणाए सव्वमहंतं दाहं गदो त्ति भणिदं तं विसेसाहियं। एत्थ कज्जे कारणोव यारेण सव्वमहंतदाहजणिदा वुड्ढी चेव सव्वमहंतदाहसद्देण णिद्दिट्ठा। तदो उक्कस्स-हाणीदो उक्कस्सट्ठिदिखंडयसरूवादो उक्कस्सिया वड्ढी विसेसाहिया त्ति वुत्तं होइ।

अवस्थान देखा जाता है। इस प्रकार उत्कृष्ट वृद्धिपूर्वक अवस्थानके स्वामित्वका कथन करके अब प्रकृत कर्मोंकी उत्कृष्ट हानिके स्वामित्वका विधान करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

* उत्कृष्ट हानि किसके होती है ?

§ ८३२. यह सूत्र सुगम है।

*** जिसने उत्कृष्ट स्थितिकाण्डकका घात किया है उसके उत्कृष्ट हानि होती है।**

§ ८३३. जिसने उत्कृष्ट स्थितिसंक्रमसे अन्तर्मुहूर्त कालमें प्रतिभग्न होकर उत्कृष्ट स्थितिकाण्डकका घात किया है उसके उत्कृष्ट हानि होती है, क्योंकि वहाँ पर उत्कृष्ट स्थितिकाण्डक-प्रमाण स्थितिसंक्रमकी एक बारमें हानि देखी जाती है।

शंका—वह उत्कृष्ट स्थितिकाण्डक कितना है ?

समाधान—अन्तःकोड़ाकोड़ी कम कर्मस्थितिप्रमाण है, क्योंकि वह उत्कृष्ट वृद्धिसे कुछ न्यून प्रमाण है।

इसीके प्रमाणका परिच्छेद साधनेके लिए यह आगेका सूत्र कहते हैं—

*** जो उत्कृष्ट स्थितिकाण्डक है वह स्तोक है। जो सर्वोत्कृष्ट दाहको प्राप्त हुआ है ऐसा कहा है वह विशेष अधिक है।**

§ ८३४. उत्कृष्ट हानिका विषयीकृत जो उत्कृष्ट स्थितिकाण्डक है वह स्तोक है। तथा उत्कृष्ट वृद्धिकी प्ररूपणामें सर्वोत्कृष्ट दाहको प्राप्त हुआ ऐसा कहा है वह विशेष अधिक है। यहाँ पर कार्यमें कारणका उपचार करनेसे सर्वोत्कृष्ट दाहजनित वृद्धि ही सर्वोत्कृष्ट दाह शब्द द्वारा निर्दिष्ट की गई है। इसलिए उत्कृष्ट स्थितिकाण्डकस्वरूप उत्कृष्ट हानिसे उत्कृष्ट वृद्धि विशेष अधिक है यह

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

केत्तियमेत्तो विसेसो ? अंतोकोडाकोडिमेत्तो। किमट्ठमेदं थोवं बहुत्तमणवसरपत्तमेव सामित्तपरूवणाए वुत्तमिदि सयमेवासंकिय तत्थुत्तरमाह—

※ एदमप्पाबहुअस्स साहणं।

§ ८३५. एदमणंतरपरूविदं ट्ठिदिखंडयस्स सव्वमहंतं दाहजणिदट्ठिदिबंधपसरस्स च जं थोवबहुत्तं तमुक्कस्सवड्ढि-हाणीणमुवरि भणिस्समाणथोवबहुत्तस्स साहणमिदि कट्टु सिस्सहिदट्ठमिह परूविदं, तम्हा णेदमसंबद्धमिदि। एवं ताव मिच्छत्त-सोलसकसायाण-मुक्कस्सवड्ढि-हाणि-अवट्ठाणसामित्तं परूविय णोकसायाणं पि सामित्ताणुगमे एसो चेव कमो त्ति पदुप्पायणट्ठमुत्तरसुत्तमाह—

※ एवं णवणोकसायाणं।

§ ८३६. जहा मिच्छत्तादीणमुक्कस्सवड्ढि-हाणि-अवट्ठाणसामित्तपरिक्खा कया तहा णवणोकसायाणं पि कायव्वा, पाएण साहम्मदंसणादो। विसेसो दु वड्ढि-अवट्ठाण-सामित्ते थोवयरो अत्थि त्ति जाणावणट्ठमुत्तरं सुत्तद्दयमाह—

※ णवरि कसायाणमावलियूणमुक्कस्सट्ठिदिपडिच्छिदूणावलिया-दीदस्स तस्स उक्कस्सिया वड्ढी। से काले उक्कस्सयमवट्ठाणं।

उक्त कथनका तात्पर्य है। विशेषका प्रमाण कितना है ? अन्तःकोड़ाकोड़ीप्रमाण है। यह अनवसर प्राप्त अल्पबहुत्व स्वामित्व प्ररूपणामें किसलिए कहा है इस प्रकार स्वयं ही आशंका कर इस विषयमें उत्तर देते हैं—

यह अल्पबहुत्वका साधन है।

§ ८३५. यह पहले जो स्थितिकाण्डकका और सर्वोत्कृष्ट दाहजनित स्थितिबन्धप्रसरका अल्पबहुत्व कहा है वह आगे कहे जानेवाले उत्कृष्ट वृद्धि-हानिसम्बन्धी अल्पबहुत्वका साधन है ऐसा समझकर शिष्योंके हृदयमें स्थित उक्त अल्पबहुत्वका यहाँ पर कथन किया है, इसलिए यह प्रकृतमें असंगत नहीं है। इसप्रकार मिथ्यात्व और सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट वृद्धि, हानि और अवस्थानके स्वामित्वका कथन करके नोकषायोंके भी स्वामित्वका अनुगम करनेमें यही क्रम है ऐसा कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

इसी प्रकार नौ नोकषायोंको उत्कृष्ट वृद्धि, हानि और अवस्थानका स्वामी जानना चाहिए।

§ ८३६. जिसप्रकार मिथ्यात्व आदिकी उत्कृष्ट वृद्धि, हानि और अवस्थानके स्वामित्वकी परीक्षा की उसीप्रकार नौ नोकषायोंकी भी करनी चाहिए, क्योंकि इन सबके स्वामित्वमें प्रायः कर साधर्म्य देखा जाता है। परन्तु वृद्धि और अवस्थानके स्वामित्वमें थोड़ीसी विशेषता है, इसलिए उसे जतानेके लिए आगेके दो सूत्र कहते हैं—

※ किन्तु इतनी विशेषता है कि कषायोंकी एक आवलिकम उत्कृष्ट स्थितिका नौ नोकषायोंमें संक्रम करके एक आवलिके बाद उसकी उत्कृष्ट वृद्धि होती है। तथा तदनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ८३७. कुदो एवं कीरदे चे ? ण, समुहेणेदेसिं चालीससागरोवमकोडाकोडीणं बंधाभावेण कसायुक्कस्सट्ठिदिपडिग्गहमुहेण तहा सामित्तविहाणादो। तदो बंधावलियूणं कसायट्ठिदिमुक्कस्सियं सगपाओग्गंतोकोडाकोडिट्ठिदिसंकमे पडिच्छियूण संकमणावलियादिक्कंतस्स पयदसामित्तमिदि सुसंबद्धमेदं। हाणीए णत्थि विसेसो, उक्कस्सट्ठिदिघादविसए तस्सामित्तपडिलंभस्स सव्वत्थ णाणत्ताभावादो। एत्थ पमाणाणुगमे कसायभंगो। णवरि णवुंसयवेदारइ-सोग-भय-दुगुंछाणमुक्कस्सट्ठिदिवुड्ढी अवट्ठाणं च वीससागरोवमकोडाकोडीओ पलिदोवमासंखेज्जभागब्भहियाओ। कुदो ? कसायाणमुक्कस्सट्ठिदिबंधकाले तेसिं पि रूवूणाबाहाकंडएणूणवीससागरोवमकोडाकोडिमेत्तट्ठिदिबंधस्स दुप्पडिसेहत्तादो। एवमेदं परूविय संपहि सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं पयदसामित्तविहाणट्ठमुवरिमो सुत्तपबंधो—

❀ सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमुक्कस्सिया वड्ढी कस्स ?

§ ८३८. सुगमं।

❀ वेदगसम्मत्तपाओग्गजहण्णट्ठिदिसंतकम्मियो मिच्छत्तस्स उक्कस्सट्ठिदिं बंधियूण ट्ठिदिघादमकाऊण अंतोमुहुत्तेण सम्मत्तं पडिवण्णो तस्स बिदियसमयसम्माइट्ठिस्स उक्कस्सिया वड्ढी।

---

§ ८३७. शंका—ऐसा क्यों किया जाता है ?

समाधान—नहीं, क्योंकि स्वमुखसे इनका चालीस कोड़ाकोड़ीसागरप्रमाण बन्ध नहीं होनेसे कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका प्रतिग्रह होनेके बाद उसके द्वारा उस प्रकारके स्वामित्वका विधान किया है। इसलिए कषायोंकी बन्धावलिसे न्यून उत्कृष्ट स्थितिको अपने योग्य अन्तःकोड़ाकोड़िप्रमाण स्थितिमें संक्रमित करके संक्रमावलिके बाद उसका प्रकृत स्वामित्व प्राप्त होता है यह सुसम्बद्ध है।

हानिमें कोई विशेषता नहीं है, क्योंकि उत्कृष्ट स्थितिघातको विषयकर उत्कृष्ट हानिके स्वामित्वकी प्राप्ति सर्वत्र भेदरहित है। यहाँ पर प्रमाणका अनुगम करने पर कषायोंके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय और जुगुप्साकी उत्कृष्ट स्थितिवृद्धि और अवस्थान पल्यका असंख्यातवाँ भाग अधिक बीस कोड़ाकोड़ी सागर है, क्योंकि कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिके बन्धकालमें उनका भी एक कम आबाधाकाण्डकसे न्यून बीस कोड़ाकोड़ीसागरप्रमाण स्थितिबन्ध प्रतिषेध करनेके लिए अशक्य है। इस प्रकार इसका यहाँ पर कथन करके अब सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके प्रकृत स्वामित्वका विधान करनेके लिए आगेका सूत्रप्रबन्ध कहते हैं—

*** सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट वृद्धि किसके होती है ?**

§ ८३८. यह सूत्र सुगम है।

*** वेदकसम्यक्त्वके योग्य जघन्य स्थितिसत्कर्मवाला जो जीव मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कर स्थितिघात किये बिना अन्तर्मुहूर्तमें सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ, द्वितीय समयवर्ती उस सम्यग्दृष्टिके उत्कृष्ट वृद्धि होती है।**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ८३९. एत्थ वेदयपाओग्गजहण्णट्ठिदिसंतकम्मिओ णाम दुविहो—किंचूणसागरोवमट्ठिदिसंतकम्मिओ तप्पुधत्तमेत्तट्ठिदिसंतकम्मिओ च । एत्थ पुण सागरोवममेत्तट्ठिदिसंतकम्मिओ एइंदियपच्छायदो घेत्तव्वो, उक्कस्सवड्ढीए पयदत्तादो । तदो एवंविहेण ट्ठिदिसंतकम्मेणुवलक्खिओ जो मिच्छाइट्ठी मिच्छत्तस्स उक्कस्सट्ठिदिं बंधियूणंतोमुहुत्तपडिभग्गो तप्पाओग्गविसुद्धीए मिच्छत्तस्स ट्ठिदिघादमकाऊण वेदयसम्मत्तं पडिवण्णो, तम्मि चेव समए मिच्छत्तट्ठिदिमंतोमुहुत्तूणसत्तरिसागरोवममेत्तं विवक्खिय कम्मेसु संकामिय विदियसमयमुवगओ तस्स विदियसमयसम्माइट्ठिस्स पयदुक्कस्ससामित्तं होइ, तत्थ थोवूणसागरोवमसंकमादो हेट्ठिमसमयपडिबद्धादो तदूणसत्तरिसागरोवममेत्तट्ठिदिसंकमस्स वुड्ढिदंसणादो ।

❀ हाणी मिच्छत्तभंगो ।

§ ८४०. जहावुत्तकमेण वुड्ढिसंकमं काऊण तदो अंतोमुहुत्तेण सव्वुक्कस्सट्ठिदिखंडए घादिदे तत्थ तदुक्कस्ससामित्तं पडि भेदाभावादो ।

❀ उक्कस्सयमवट्ठाणं कस्स ?

§ ८४१. सुगमं।

❀ पुव्वुप्पण्णादो सम्मत्तादो समयुत्तरमिच्छत्तट्ठिदिसंतकम्मिओ सम्मत्तं पडिवण्णो तस्स विदियसमयसम्माइट्ठिस्स उक्कस्सयमवट्ठाणं ।

---

§ ८३९. यहाँ पर वेदकसम्यक्त्वके योग्य जघन्य स्थितिसत्कर्मवाला जीव दो प्रकारका है—कुछ कम एक सागर स्थितिसत्कर्मवाला और सागरपृथक्त्वप्रमाण स्थितिसत्कर्मवाला। परन्तु यहाँ पर एकेन्द्रियोंमेंसे लौटकर आया हुआ एक सागर स्थितिसत्कर्मवाला जीव लेना चाहिए, क्योंकि उत्कृष्ट वृद्धिका प्रकरण है। इसलिए इसप्रकारके स्थितिसत्कर्मसे उपलक्षित जो मिथ्यादृष्टि जीव मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कर अन्तर्मुहूर्तमें प्रतिभग्न होकर तत्प्रायोग्य विशुद्धिसे मिथ्यात्वका स्थितिघात किये बिना वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त हुआ और उसी समय मिथ्यात्वकी अन्तर्मुहूर्तकम सत्तर कोड़ाकोड़ीसागरप्रमाण स्थितिको विवक्षित कर्मोंमें संक्रमित कर दूसरे समयको प्राप्त हुआ उस द्वितीय समयवर्ती सम्यग्दृष्टिके प्रकृत उत्कृष्ट स्वामित्व होता है, क्योंकि वहाँ पर पिछले समयमें होनेवाले कुछ कम एक सागरप्रमाण स्थितिसंक्रमसे किञ्चित् न्यून एक सागर कम सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण स्थितिसंक्रमकी वृद्धि देखी जाती है।

* हानिका भंग मिथ्यात्वके समान है।

§ ८४०. पूर्वोक्त क्रमसे वृद्धिसंक्रमको करके तदनन्तर अन्तर्मुहूर्तमें सबसे उत्कृष्ट स्थितिकाण्डकका घात करने पर वहाँ मिथ्यात्वके उत्कृष्ट स्वामित्वसे इनके उत्कृष्ट स्वामित्वमें कोई भेद नहीं है।

* उत्कृष्ट अवस्थान किसके होता है।

§ ८४१. यह सूत्र सुगम है।

* जो जीव पूर्वमें उत्पन्न हुए सम्यक्त्वसे मिथ्यात्वमें जाकर एक समय अधिक मिथ्यात्वके स्थितिसत्कर्मके साथ सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ उस द्वितीय समयवर्ती सम्यग्दृष्टिके उत्कृष्ट अवस्थान होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ८४२. जो पुव्वुप्पण्णादो सम्मत्तादो मिच्छत्तं गंतूण सम्मत्तट्ठिदिसंतादो समउत्तरं मिच्छत्तट्ठिदिं बंधिऊण सम्मत्तं पडिवण्णो तस्स विदियसमयसम्माइट्ठिस्स दोण्हं कम्माणमुक्कस्समवट्ठाणं होइ, तत्थ पढमसमयसंकंतमिच्छत्तट्ठिदिसंतकम्मस्स विदियसमए गलिदावसिट्ठस्स पढमसमयसम्मत्त-सम्मामिच्छत्तट्ठिदिसंकमपमाणेणावट्ठाणदंसणादो। एवमोघेण सव्वकम्माणमुक्कस्सवड्ढि-हाणि-अवट्ठाणसामित्तपरूवणा गया।

❀ एत्तो जहण्णयाए।

§ ८४३. एत्तो उवरि सव्वेसिं कम्माणं जहण्णवड्ढि-हाणि-अवट्ठाणसामित्तपरूवणा कायव्वा त्ति भणिदं होइ।

❀ **सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तवज्जाणं जहण्णिया वड्ढी कस्स ?**

§ ८४४. सुगमं।

❀ **अप्पप्पणो समयूणादो उक्कस्सट्ठिदिसंकमादो उक्कस्सट्ठिदिसंकमेमाणस्स तस्स जहण्णिया वड्ढी।**

§ ८४५. तं कधं ? समयूणुक्कस्सट्ठिदिं बंधियूण तदणंतरसमए उक्कस्सट्ठिदिं बंधिय बंधावलियवदिक्कंतं संकामेंतो हेट्ठिमसमए समयूणट्ठिदिसंकमादो समयुत्तरं संकामेदि। तदो

---

§ ८४२. जो पूर्वमें उत्पन्न हुए सम्यक्त्वसे मिथ्यात्वमें जाकर सम्यक्त्वके स्थितिसत्त्वसे मिथ्यात्वकी एक समय अधिक स्थितिको बाँधकर सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ उस द्वितीय समयवर्ती सम्यग्दृष्टिके दोनों कर्मोंका उत्कृष्ट अवस्थान होता है, क्योंकि वहाँ पर प्रथम समयमें संक्रान्त हुए तथा दूसरे समयमें गलकर अवशिष्ट रहे मिथ्यात्वके स्थितिसत्कर्मका प्रथम समयमें प्राप्त हुए सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके स्थितिसंक्रमके प्रमाणरूपसे अवस्थान देखा जाता है। इसप्रकार ओघसे सब कर्मोंकी उत्कृष्ट वृद्धि, हानि और अवस्थानके स्वामित्वकी प्ररूपणा की।

※ आगे जघन्यका अधिकार है।

§ ८४३. इससे आगे सब कर्मोंकी जघन्य वृद्धि, हानि और अवस्थानके स्वामित्वका कथन करना चाहिए यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

※ **सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके सिवा शेष कर्मोंकी जघन्य वृद्धि किसके होती है ?**

§ ८४४. यह सूत्र सुगम है।

※ **जो अपने अपने एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिसत्कर्मसे उत्कृष्ट स्थितिका संक्रम करता है उसके जघन्य वृद्धि होती है।**

§ ८४५. शंका—वह कैसे ?

समाधान—क्योंकि एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कर पुनः तदनन्तर समयमें उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध कर बन्धावलिके बाद संक्रम करता हुआ पिछले समयमें हुए एक समय कम स्थितिसंक्रमसे एक समय अधिकका संक्रम करता है, इसलिए उसके जघन्य वृद्धि होती है।

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

तस्स जहण्णिया वड्ढी होदि, एयट्ठिदिमेत्तस्सेव तत्थ वुड्ढिदंसणादो। उदाहरणपदंसणट्ठमेदं परूविदं। तदो सव्वासु चेव ट्ठिदीसु समयुत्तरबंधवसेण जहण्णिया वड्ढी अविरुद्धा परूवेयव्वा।

❀ जहण्णिया हाणी कस्स ?

§ ८४६. सम्मत्त-सम्मामिच्छत्तवज्जाणं सव्वकम्माणमिदि अणुवट्टदे। सुगममन्यत्।

❀ तप्पाओग्गसमयुत्तरजहण्णट्ठिदिसंकमादो तप्पाओग्गजहण्णट्ठिदिं संकामेमाणयस्स तस्स जहण्णिया हाणी ?

§ ८४७. समयुत्तरधुवट्ठिदिं संकामेमाणओ अधट्ठिदिगलणेण धुवट्ठिदिं संकामेदुमाढत्तो तस्स जहण्णिया हाणी, एयट्ठिदिमेत्तस्सेव तत्थ हाणिदंसणादो। एवं सव्वाओ ट्ठिदीओ णिरुंभिऊण जहण्णहाणी परूवेयव्वा।

❀ एयदरत्थमवट्ठाणं।

§ ८४८. कथं ताव वड्ढीए अवट्ठाणसंभवो ? वुच्चदे—समयूणुक्कस्सट्ठिदिसंकमादो उक्कस्सट्ठिदिसंकमेण वड्ढिदस्स अंतोमुहुत्तमवट्ठिदट्ठिदिबंधवसेण तत्थेवावट्ठाणे णत्थि विरोहो। एवं जहण्णहाणीए वि अवट्ठाणसंभवो दट्ठव्वो। एदाणि जहण्णवड्ढि-हाणि-अवट्ठाणाणि एयट्ठिदिमेत्ताणि। संपहि सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं जहण्णवड्ढिसामित्त-परूवणट्ठमुत्तरसुत्तं भणइ—

क्योंकि वहाँ पर एक समयमात्र स्थितिसंक्रमकी वृद्धि देखी जाती है। उदाहरण दिखलानेके लिए यह कहा है, इसलिए सभी स्थितियोंमें एक समय अधिक बन्ध होनेसे जघन्य वृद्धि बिना विरोधके बन जाती है ऐसा कथन करना चाहिए।

*** जघन्य हानि किसके होती है ?**

§ ८४६. यहाँ इस सूत्रमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वको छोड़कर शेष सब कर्मोंकी इतने वाक्यकी पूर्व सूत्रसे अनुवृत्ति होती है। शेष कथन सुगम है।

*** तत्प्रायोग्य एक समय अधिक जघन्य स्थितिके संक्रमके बाद तत्प्रायोग्य जघन्य स्थितिका संक्रम करनेवाले जीवके जघन्य हानि होती है।**

§ ८४७. एक समय अधिक ध्रुवस्थितिका संक्रम करनेवाला जो जीव ध्रुवस्थितिका संक्रम करता है उसके जघन्य हानि होती है, क्योंकि वहाँ पर एक स्थितिमात्रकी हानि देखी जाती है। इस प्रकार सब स्थितियोंको विवक्षित कर जघन्य हानिका कथन करना चाहिए।

*** किसी एक स्थानमें जघन्य अवस्थान होता है।**

§ ८४८. **शंका**—वृद्धिके बाद अवस्थान कैसे सम्भव है ?

समाधान—कहते हैं—एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिके संक्रमके बाद उत्कृष्ट स्थितिका संक्रम करनेसे वृद्धिको प्राप्त हुए जीवके अन्तर्मुहूर्त कालतक अवस्थित स्थितिके बन्धके कारण उसीमें अवस्थान होनेपर वृद्धिके बाद अवस्थान होनेमें विरोध नहीं है।

इसी प्रकार जघन्य हानिके बाद भी अवस्थानका सम्भव जान लेना चाहिए। ये जघन्य वृद्धि, हानि और अवस्थान एक स्थितिप्रमाण हैं। अब सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके जघन्य वृद्धिके स्वामित्वका कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

ॐ सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं जहण्णिया वड्ढी कस्स ?

§ ८४९. सुगमं।

ॐ पुव्वुप्पण्णसम्मत्तादो दुसमयुत्तरमिच्छत्तसंतकम्मिओ सम्मत्तं पडिवण्णो तस्स विदियसमयसम्माइट्ठिस्स जहण्णिया वड्ढी।

§ ८५०. कुदो ? वेदगसम्मत्तग्गहणपढमसमए दुसमयुत्तरमिच्छत्तट्ठिदिं पडिच्छिय तत्थेवाधट्ठिदीए णिसेयमेयं गालिय विदियसमए पढमसमयसंकमादो समयुत्तरं संकामेमाणयम्मि जहण्णवुड्ढीए एयसमयमेत्तीए परिप्फुडमुवलंभादो।

ॐ हाणी सेसकम्मभंगो।

§ ८५१. सुगमं, अधट्ठिदिगलणेणेयसमयहाणीए सव्वत्थ पडिसेहाभावादो।

ॐ अवट्ठाणमुक्कस्सभंगो।

§ ८५२. एदं पि सुगमं, पयारंतासंभवादो। एवमोघेण जहण्णुक्कस्सवड्ढि-हाणि-अवट्ठाणाणं सामित्तविणिण्णओ कओ।

§ ८५३. एत्तो आदेसपरूवणट्ठं उच्चारणं वत्तइस्सामो। तं जहा—सामित्तं दुविहं—जह० उक्क०। उक्कस्से पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मिच्छत्त-सोलसक० उक्क० ट्ठिदिसं०वड्ढी कस्स ? जो चउट्ठाणजवमज्झस्सुवरि अंतोकोडाकोडिट्ठिदिं

ॐ सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य वृद्धि किसके होती है ?

§ ८४९. यह सूत्र सुगम है।

ॐ जो पहले उत्पन्न हुए सम्यक्त्वसे मिथ्यात्वमें जाकर तथा मिथ्यात्वके दो समय अधिक सत्कर्मवाला होकर सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ उस द्वितीय समयवर्ती सम्यग्दृष्टिके जघन्य वृद्धि होती है।

§ ८५०. क्योंकि वेदकसम्यक्त्वको ग्रहण करनेके प्रथम समयमें मिथ्यात्वकी दो समय अधिक स्थितिको संक्रमित करके तथा वहीं अधःस्थितिके एक निषेकको गलाकर दूसरे समयमें प्रथम समयमें हुए संक्रमसे एक समय अधिकका संक्रम करनेपर स्पष्टरूपसे एक समयमात्र जघन्य वृद्धि उपलब्ध होती है।

ॐ हानिका भंग शेष कर्मोंके समान है।

§ ८५१. यह सूत्र सुगम है, क्योंकि अधःस्थितिकी गलना होनेसे एक समयमात्र हानिका सर्वत्र कोई प्रतिषेध नहीं है।

ॐ अवस्थानका भंग उत्कृष्टके समान है।

§ ८५२. यह सूत्र भी सुगम है; क्योंकि प्रकारान्तरका प्राप्त होना असम्भव है। इस प्रकार ओघसे जघन्य और उत्कृष्ट वृद्धि, हानि और अवस्थानके स्वामित्वका निर्णय किया।

§ ८५३. आगे आदेशका कथन करनेके लिए उच्चारणाको बतलाते हैं। यथा—स्वामित्व दो प्रकारका है—जघन्य और उत्कृष्ट। उत्कृष्टका प्रकरण है। निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे मिथ्यात्व और सोलह कषायोंके स्थितिसंक्रमकी उत्कृष्ट वृद्धि किसके होती है ? चतुःस्थान यवमध्यके ऊपर अन्तःकोड़ाकोड़ीप्रमाण स्थितिका संक्रम करनेवाले जिस जीवने

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संकामेमाणो तदो उक्कस्सं दाहं गंतूण उक्कस्सट्ठिदिं पबद्धो तस्स आवलियादीदस्स तस्स उक्क० वड्ढी। तस्सेव से काले उक्क० अवट्ठाणं। उक्क० हाणी कस्स? अण्णदर० जो उक्कस्सट्ठिदिं संकामेमाणो उक्कस्सट्ठिदिखंडयं हणइ तस्स उक्क० हाणी। एवं णवण्हं णोकसायाणं। णवरि उक्क० वड्ढी कस्स? सोलसक० उक्क०ट्ठिदिं पडिच्छिदूणावलिया-दीदस्स तस्स उक्क० वड्ढी। तस्सेव से काले उक्क० अवट्ठाणं। सम्मत्त-सम्मामि० उक्क० वड्ढी कस्स? अण्णद० जो तप्पाओग्गजहण्णट्ठिदिं संका० मिच्छ० उक्क०ट्ठिदिं बंधिदूण ट्ठिदिघादमकादूणंतोमुहुत्तं सम्मत्तं पडिवज्जिय तस्स विदियसमयवेदयसम्माइट्ठिस्स तस्स उक्कस्सिया वड्ढी। उक्कस्समवट्ठाणं कस्स? अण्णद० जो पुव्वुप्पण्णादो सम्मत्तादो मिच्छत्तस्स समयुत्तरट्ठिदिं बंधिय सम्म० पडिव० तस्स उक्क० अवट्ठाणं। उक्क० हाणी कस्स? अण्णद० जो उक्क० ट्ठिदिं संका० उक्क० ट्ठिदिखंडयं हणइ तस्स उक्क० हाणी। एवं चदुसु गदीसु। णवरि पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज०-मणुसअपज्ज० मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक० उक्क० वड्ढी कस्स? अण्णद० जो तप्पाओग्गजहण्णट्ठिदिं संका० तप्पाओग्ग-उक्क०ट्ठिदिं पबद्धो तस्स आवलियादीदस्स उक्क० वड्ढी। तस्सेव से काले उक्क० अवट्ठा०। उक्क० हाणी विहत्तिभंगो। सम्म०-सम्मामि० उक्क० हाणी विहत्तिभंगो। आणदादि णवगेवज्जा त्ति मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक० उक्क० हाणी विहत्तिभंगो। सम्म०-

उत्कृष्ट दाहको प्राप्त होकर उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया, उस जीवके एक आवलिके बाद स्थितिसंक्रम की उत्कृष्ट वृद्धि होती है। उसी जीवके अनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है। उत्कृष्ट हानि किसके होती है? उत्कृष्ट स्थितिका संक्रम करनेवाला जो जीव उत्कृष्ट स्थितिकाण्डकका घात करता है उसके उत्कृष्ट हानि होती है। इसी प्रकार नौ नोकषायोंका स्वामित्व है। किन्तु इतनी विशेषता है कि उत्कृष्ट वृद्धि किसके होती है? सोलह कषायोंकी उत्कृष्ट स्थितिका संक्रम करके जिसका एक आवलि काल गया है उसके उत्कृष्ट वृद्धि होती है। तथा उसीके अनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट वृद्धि किसके होती है? तत्प्रायोग्य जघन्य स्थितिका संक्रम करनेवाले जिस जीवने मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट स्थितिका बन्धकर स्थितिघात किये बिना अन्त-र्मुहूर्तमें सम्यक्त्वको प्राप्त किया है द्वितीय समयवर्ती उस वेदकसम्यग्दृष्टि जीवके उत्कृष्ट वृद्धि होती है। उत्कृष्ट अवस्थान किसके होता है? जो पहले उत्पन्न हुए सम्यक्त्वसे मिथ्यात्वमें जाकर मिथ्यात्वकी एक समय अधिक स्थितिका बन्धकर सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ है उसके उत्कृष्ट अवस्थान होता है। उत्कृष्ट हानि किसके होती है? उत्कृष्ट स्थितिका संक्रम करनेवाला जो जीव उत्कृष्ट स्थितिकाण्डकका घात करता है उसके उत्कृष्ट हानि होती है। इसीप्रकार चारों गतियोंमें जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषायों और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट वृद्धि किसके होती है? तत्प्रायोग्य जघन्य स्थितिका संक्रम करनेवाले जिस जीवने तत्प्रायोग्य उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया है उसके एक आवलिके बाद उत्कृष्ट वृद्धि होती है। उसीके तदनन्तर समयमें उत्कृष्ट अवस्थान होता है। उत्कृष्ट हानिका भंग स्थितिविभक्तिके समान है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट हानिका भंग स्थितिविभक्तिके समान है। आनत कल्पसे लेकर नौ ग्रैवेयक तकके देवोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषायों और नौ नोकषायोंकी उत्कृष्ट हानिका भंग स्थितिविभक्तिके समान है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी उत्कृष्ट वृद्धि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्मामि० उक्क० बड्ढी कस्स ? जो वेदगपाओग्गसम्मत्तजहण्णट्ठिदिसंकामओ मिच्छाइट्ठी सम्मत्तं पडि० तस्स विदियसमयवेदयसम्माइट्ठिस्स उक्क० वड्ढी। हाणी विहत्तिभंगो[1]। अणुद्दिसादि सव्वट्ठा त्ति २८ पयडीणं हाणी विहत्तिभंगो। एवं जाव०।

§ ८५४. जहण्णए पयदं। दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक० जह० वड्ढी कस्स? अण्णद० जो समयूणुक्क०ट्ठिदि-संकमादो तदो उक्क० ट्ठिदिं पबद्धो तस्स आवलियादीदस्स तस्स जह० वड्ढी। जह० हाणी कस्स०? अण्णद० उक्क०ट्ठिदिसंकमादो समयूण०ट्ठिदिं संकामयस्स तस्स जहण्णिया हाणी? एयदरत्थमवट्ठाणं। सम्म०-सम्मामि० जह० वड्ढी कस्स? अण्णद० जो पुव्वुप्पण्णादो सम्मत्तादो मिच्छत्तस्स विदियसमयुत्तरं ट्ठिदिं बंधिगूण सम्मत्तं पडिवण्णो तस्स विदियसमयसम्माइट्ठि० तस्स जह० वड्ढी। जह०मवट्ठाणमुक्कस्सभंगो। हाणी अधट्ठिदिं गालेमाणस्स। एवं चदुगदीसु। णवरि पंचिं०तिरिक्खअपज्ज०-मणुसअपज्ज० सम्म०-सम्मामिच्छत्त० अवट्ठाणं वड्ढी च णत्थि। आणदादि णवगेवज्जा त्ति २६ पयडीणं जह० हाणी अधट्ठिदिं गालयमाणयस्स। सम्म०-सम्मामि० जह० वड्ढी कस्स? अण्णद० जो सम्माइट्ठी मिच्छत्तं गंतूण एयं ट्ठिदिखंडयमुव्वेल्लेयूण सम्मत्तं पडिवण्णो

किसके होती है? वेदकसम्यक्त्वके योग्य जघन्य स्थितिका संक्रम करनेवाला जो मिथ्यादृष्टि जीव सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ द्वितीय समयवर्ती उस वेदकसम्यग्दृष्टि जीवके उत्कृष्ट वृद्धि होती है। उत्कृष्ट हानिका भंग स्थितिविभक्तिके समान है। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें २८ प्रकृतियोंकी हानिका भंग स्थितिविभक्तिके समान है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

§ ८५४. जघन्यका प्रकरण है। दो प्रकारका निर्देश है—ओघ और आदेश। ओघसे मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी जघन्य वृद्धि किसके होती है? एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिका संक्रम करनेवाले अन्यतर जिस जीवने उत्कृष्ट स्थितिका बन्ध किया, एक आवलिके बाद उस जीवके उत्कृष्ट वृद्धि होती है। जघन्य हानि किसके होती है? जिस अन्यतर जीवने उत्कृष्ट स्थितिका संक्रम करके एक समय कम उत्कृष्ट स्थितिका संक्रम किया उसके जघन्य हानि होती है। तथा इनमेंसे किसी एक जगह जघन्य अवस्थान होता है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य वृद्धि किसके होती है? जो अन्यतर जीव पहले उत्पन्न हुए सम्यक्त्वसे मिथ्यात्वमें जाकर मिथ्यात्वकी दो समय अधिक स्थितिका बन्ध कर सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ उस द्वितीय समयवर्ती सम्यग्दृष्टिके जघन्य वृद्धि होती है। जघन्य अवस्थानका भंग उत्कृष्टके समान है। हानि अधःस्थितिको गलानेवालेके होती है। इसी प्रकार चारों गतियोंमें जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्त जीवोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका अवस्थान और वृद्धि नहीं है। आनत कल्पसे लेकर नौ ग्रैवेयक तकके देवोंमें २६ प्रकृतियों जघन्य हानि अधःस्थितिको गलानेवालेके होती है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी जघन्य वृद्धि किसके होती है? जो अन्यतर सम्यग्दृष्टि जीव मिथ्यात्वमें जाकर एक स्थितिकाण्डककी उद्वेलना करके सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ, द्वितीय समयवर्ती उस जीवके जघन्य

१. ता०प्रतौ उक्क० हाणी (वड्ढी) वड्ढी (हाणी) विहत्तिभंगो इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

तस्स विदियसमयसम्माइट्ठिस्स जह० वड्डी। हाणी अधट्ठिदिं गालयमाणयस्स। अणुदिसादि सव्वट्ठा त्ति २८ पय० जह० हाणी अधट्ठिदिं गालयमाण०। एवं जाव०।

❀ अप्पाबहुअं।

§ ८५५. जहण्णुक्कस्सवड्डि-हाणि-अवट्ठाणाणं पमाणविसयणिण्णयकरणट्ठमप्पाबहुअमिदाणिं कायव्वमिदि भणिदं होइ।

❀ **मिच्छत्त-सोलसकसाय-इत्थि-पुरिसवेद-हस्स-रदीणं सव्वत्थोवा उक्कस्सिया हाणी।**

§ ८५६. कुदो? अंतोकोडाकोडिपरिहीणसत्तरि-चत्तालीससागरोवमकोडाकोडिपमाणत्तादो।

❀ **वड्डी अवट्ठाणं च दो वि तुल्लाणि विसेसाहियाणि।**

§ ८५७. केत्तियमेत्तो विसेसो? अंतोकोडाकोडिमेत्तो। एत्थ कारणं पुव्वमेव परूविदं।

❀ **सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं सव्वत्थोवो अवट्ठाणसंकमो।**

§ ७५८. एयणिसेयपमाणत्तादो।

❀ **हाणिसंकमो असंखेज्जगुणो।**

§ ८५९. उक्कस्सट्ठिदिखंडयपमाणत्तादो।

वृद्धि होती है। हानि अधःस्थितिको गलानेवालेके होती है। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें २८ प्रकृतियोंकी जघन्य हानि अधःस्थितिको गलानेवालेके होती है। इसीप्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

※ अल्पबहुत्वका अधिकार है।

§ ८५५. जघन्य और उत्कृष्ट वृद्धि, हानि और अवस्थानका प्रमाणविषयक निर्णय करनेके लिए इस समय अल्पबहुत्व करना चाहिए यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

※ मिथ्यात्व, सोलह कषाय, स्त्रीवेद, पुरुषवेद, हास्य और रतिकी उत्कृष्ट हानि सबसे स्तोक है।

§ ८५६. क्योंकि वह अन्तःकोड़ाकोड़ी हीन सत्तर और चालीस कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण है।

※ उससे वृद्धि और अवस्थान दोनों ही तुल्य होकर विशेष अधिक हैं।

§ ८५७. विशेषका प्रमाण कितना है? अन्तःकोड़ाकोड़ीमात्र है। यहाँ पर कारणका कथन पहले ही कर आये हैं।

※ सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका अवस्थानसंक्रम सबसे स्तोक है।

§ ८५८. क्योंकि वह एक निषेकप्रमाण है।

※ उससे हानिसंक्रम असंख्यातगुणा है।

§ ८५९. क्योंकि वह उत्कृष्ट स्थितिकाण्डकप्रमाण है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

❀ वड्ढिसंकमो विसेसाहिओ ।

§ ८६०. केत्तियमेत्तेण ? अंतोकोडाकोडिमेत्तेण ।

❀ णवुंसयवेद-अरइ-सोग-भय-दुगुंछाणं सव्वत्थोवा उक्कस्सिया वड्ढी अवट्ठाणं च ।

§ ८६१. कुदो ? एदेसिमुक्कस्सवड्ढीए अवट्ठाणस्स च पलिदोवमासंखेज्जभागब्भहियवीससागरोवमकोडाकोडिपमाणत्तदंसणादो ।

❀ हाणिसंकमो विसेसाहिओ ।

§ ८६२. केत्तियमेत्तेण ? अंतोकोडाकोडिपरिहीणवीससागरो०कोडाकोडिमेत्तेण ।

❀ एत्तो जहण्णयं ।

§ ८६३. सुगमं ।

❀ सव्वासिं पयडीणं जहण्णिया वड्ढी हाणी अवट्ठाणं ट्ठिदिसंकमो तुल्लो ।

§ ८६४. कुदो ? सव्वपयडीणं जहण्णवड्ढि-हाणि-अवट्ठाणाणमेयट्ठिदिपमाणत्तादो । आदेसेण सव्वमग्गणासु जहण्णुक्कस्सप्पाबहुअं ट्ठिदिविहत्तिभंगो ।

एवं पदणिक्खेवो समत्तो ।

❀ वड्ढीए तिण्णि अणिओगद्दाराणि ।

---

* उससे वृद्धिसंक्रम विशेष अधिक है ।

§ ८६०. कितना अधिक है ? अन्तःकोड़ाकोड़ीप्रमाण अधिक है ।

* नपुंसकवेद, अरति, शोक, भय और जुगुप्साकी उत्कृष्ट वृद्धि और अवस्थान सबसे स्तोक है ।

§ ८६१. क्योंकि इनकी उत्कृष्ट वृद्धि और अवस्थान पल्यका असंख्यातवाँ भाग अधिक बीस कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण देखा जाता है ।

* उनसे हानिसंक्रम विशेष अधिक है ?

८६२. कितना अधिक है ? अन्तःकोड़ाकोड़ी हीन बीस कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण अधिक है ।

* आगे जघन्यका प्रकरण है ।

§ ८६३. यह सूत्र सुगम है ।

* सब प्रकृतियोंकी जघन्य वृद्धि, हानि और अवस्थान स्थितिसंक्रम तुल्य है ।

§ ८६४. क्योंकि सब प्रकृतियोंकी जघन्य वृद्धि, हानि और अवस्थान एक स्थितिप्रमाण है आदेशसे सब मार्गणाओंमें जघन्य और उत्कृष्ट अल्पबहुत्वका भंग स्थितिविभक्तिके समान है ।

* वृद्धिका अधिकार है । उसमें तीन अनुयोगद्वार हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ८६५. का वड्ढी णाम ? पदणिक्खेवविसेसो वड्ढी। तत्थ तिण्णि अणियोगद्दाराणि भवंति त्ति पइण्णं काऊण तण्णामणिद्देसकरणट्ठमुवरिमसुत्तमाह—

❀ समुक्कित्तणा परूवणा अप्पाबहुए त्ति ।

§ ८६६. तत्थ समुक्कित्तणा णाम सव्वकम्माणं एत्तियाओ वड्ढीओ एत्तियाओ च हाणीओ अवट्ठाणमवत्तव्वयं च अत्थि णत्थि त्ति संभवासंभवमेत्तपरूवणा। एवं च सामण्णेण समुक्कित्तिदाणं वड्ढि-हाणिविसेसाणं विसयविभागपरिक्खा परूवणा त्ति भण्णइ। वड्ढि-हाणिविसेसावट्ठाणावत्तव्वसंकामयाणं जीवाणमोघादेसेहिं थोवबहुत्तपरूवणा अप्पाबहुअं णाम। एदाणि तिण्णि चेव अणियोगद्दाराणि सामित्तादीणमेत्थेव अंतब्भावदंसणादो। तदो समुक्कित्तणादीणि तेरस अणियोगद्दाराणि उच्चारणासिद्धाणि ण सुत्तबहिब्भूदाणि त्ति घेत्तव्वं।

❀ तत्थ समुक्कित्तणा ।

§ ८६७. तेसु अणंतरणिद्दिट्ठाणिओगद्दारेसु समुक्कित्तणा ताव विहासियव्वा त्ति भणिदं होइ।

❀ तं जहा—

§ ८६८. सुगममेदं पुच्छावक्कं।

---

§ ८६५ शंका—वृद्धि किसे कहते हैं ?

समाधान—पदनिक्षेपविशेषको वृद्धि कहते हैं।

उसमें तीन अनुयोगद्वार हैं इस प्रकार प्रतिज्ञा करके उसका नामनिर्देश करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

*** समुत्कीर्तना, प्ररूपणा और अल्पबहुत्व ।**

§ ८६६. सब कर्मोंकी इतनी वृद्धि, इतनी हानि, अवस्थान और अवक्तव्य है या नहीं है इसप्रकार इनमेंसे कौन सम्भव है और कौन सम्भव नहीं है इसकी प्ररूपणा करनेको समुत्कीर्तना कहते हैं। इस प्रकार जिनकी सामान्यसे समुत्कीर्तना की है उनकी वृद्धिविशेष और हानिविशेषकी विषयविभागसे परीक्षा करना प्ररूपणा कहलाती है। तथा वृद्धिविशेष, हानिविशेष, अवस्थान और अवक्तव्यपदके संक्रामक जीवोंके ओघ और आदेशसे अल्पबहुत्वकी प्ररूपणा करना अल्पबहुत्व है। इसप्रकार ये तीन ही अधिकार हैं, क्योंकि स्वामित्व आदिकका इन्हींमें अन्तर्भाव देखा जाता है। इसलिए उच्चारणामें प्रसिद्ध समुत्कीर्तना आदिक तेरह अनुयोगद्वार सूत्रसे बहिर्भूत नहीं हैं ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए।

*** प्रकृतमें समुत्कीर्तनाका अधिकार है ।**

§ ८६७. उन अनन्तर निर्दिष्ट अनुयोगद्वारोंमें सर्वप्रथम समुत्कीर्तनाका व्याख्यान करना चाहिए यह उक्त कथनका तात्पर्य है।

*** यथा—**

§ ८६८. यह पृच्छासूत्र सुगम है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

❀ मिच्छत्तस्स असंखेज्जभागवड्डि-हाणी संखेज्जभागवड्डि-हाणी संखेज्जगुणवड्डि-हाणी असंखेज्जगुणहाणी अवट्ठाणं च।

§ ८६९. कथमेदेसिं तिण्हं वड्ढीणं चउण्हं हाणीणं च मिच्छत्तट्ठिदिसंकमविसए संभवो ? उच्चदे—मिच्छत्तधुवट्ठिदिसंकमादो अंतोकोडाकोडिपमाणादो समयुत्तरादिकमेण वड्ढमाणस्स असंखेज्जभागवड्ढी चेव होऊण गच्छइ जाव धुवट्ठिदीए उवरि धुवट्ठिदिं जहण्णपरित्तासंखेज्जेण खंडिय तत्थेयखंडमेत्तेण धुवट्ठिदिसंकमो अहिओ जादो त्ति। एत्तो उवरि वि असंखे०भागवड्ढिविसओ चेव जाव हेट्ठिमवियप्पाणमुक्कस्ससंखेजपडिभागियमेगभागं रूवूणमेत्तं वड्ढिदं ति। तदो संखेज्जभागवड्ढी पारभदि, तत्थ धुवट्ठिदीए उवरि धुवट्ठिदिमुक्कस्ससंखेज्जेण खंडिय तत्थेयखंडयमेत्तट्ठिदिसंकमवुड्ढीए दंसणादो। एत्तो संखेज्जभागवड्ढिविसओ ताव गच्छइ जाव धुवट्ठिदीए उवरि रूवूणधुवट्ठिदिमेत्तं वड्ढिदं ति। पुणो धुवट्ठिदीए उवरि धुवट्ठिदिमेत्तं चेव वड्ढियूण संकामेमाणस्स संखेज्जगुणवड्ढिपारंभो होऊण ताव गच्छइ जाव धुवट्ठिदिपाओग्गउक्कस्सट्ठिदिसंकमो जादो त्ति। एवं धुवट्ठिदिसंकमं णिरुद्धं कादूण तिण्हं वड्ढीणं संभवो परूविदो। समयुत्तरादिधुवट्ठिदीणं पि पुध पुध णिरुंभणं काऊण जहासंभवमेवं चेव तिविहवड्ढिसंभवगवेसणा कायव्वा। एवं सण्णिपंचिंदियपज्जत्तस्स सत्थाणेण तिविहवड्ढिसंभवो परूविदो। तदपज्जत्तस्स वि

❀ मिथ्यात्वकी असंख्यातभागवृद्धि-हानि, संख्याभागवृद्धि-हानि, संख्यातगुणवृद्धि-हानि, असंख्यातगुणहानि और अवस्थान है।

§ ८६९. **शंका**—मिथ्यात्वके स्थितिसंक्रमके विषयमें इन तीन वृद्धियों और चार हानियोंकी कैसे सम्भावना है ?

समाधान—कहते हैं—मिथ्यात्वके अन्तःकोड़ाकोड़ीप्रमाण ध्रुवस्थितिसंक्रमसे एक समय अधिक आदिके क्रमसे वृद्धिको प्राप्त होनेवाले जीवके ध्रुवस्थितिमें जघन्य परीतासंख्यातका भाग देकर वहाँपर लब्ध आये एक भागसे ध्रुवस्थितिमें ध्रुवस्थितिसंक्रमके अधिक होने तक असंख्यातभागवृद्धिका प्रवाह ही चालू रहता है। तथा आगे भी, नीचेके विकल्पोंमें उत्कृष्ट असंख्यातका भाग देकर जो एक भाग लब्ध आवे उसमेंसे एक कम विकल्पोंकी वृद्धि होने तक असंख्यातभागवृद्धिका ही विषय है। इसके आगे संख्यातभागवृद्धि प्रारम्भ होती है, क्योंकि वहाँ पर ध्रुवस्थितिके ऊपर ध्रुवस्थितिको उत्कृष्ट संख्यातसे भाजित कर वहाँ जो एक भाग लब्ध आवे तत्प्रमाण स्थितिसंक्रमकी वृद्धि देखी जाती है। इससे आगे संख्यातभागवृद्धिका विषय तब तक बना रहता है जब तक एक कम ध्रुवस्थितिमात्र वृद्धि ध्रुवस्थितिमें होती है। पुनः ध्रुवस्थितिमें ध्रुवस्थितिमात्र बढ़ाकर संक्रम करनेवाले जीवके संख्यातगुणवृद्धिका प्रारम्भ होकर तब तक जाता है जब तक ध्रुवस्थितिके योग्य उत्कृष्ट संक्रम होता है। इस प्रकार ध्रुवस्थितिसंक्रमको विवक्षित कर तीन वृद्धियोंकी सम्भावना कही। एक समय अधिक आदि ध्रुवस्थितियोंको भी पृथक् पृथक् विवक्षित कर इसीप्रकार तीन वृद्धियाँ सम्भव हैं इसका विचार कर लेना चाहिए। इस प्रकार संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त जीवके स्वस्थानकी अपेक्षा तीन प्रकारकी वृद्धि सम्भव है इसकी प्ररूपणा की। संज्ञी पञ्चेन्द्रिय अपर्याप्त जीवोंके भी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एवं चेव तिण्हं वड्ढीणं सत्थाणेण संभवो वत्तव्वो, तत्थ वि तप्पाओग्गधुवट्ठिदीदो संखेज्जगुणं अंतोकोडाकोडिमेत्तट्ठिदिसंकमवुड्ढीए विरोहाभावादो। एवं सेसजीवसमासेसु वि सत्थाणवुड्ढी अणुमग्गियव्वो। णवरि बीइंदिय-तीइंदिय-चउरिंदियासण्णिपंचिंदिय-पज्जत्तापज्जत्तएसु सगसगधुवट्ठिदिसंकमादो उवरि वड्ढमाणेसु असंखेज्जभागवड्ढि-संखेज्जभाग-वुड्ढिसण्णिदाओ दो चेव वड्ढीओ संभवंति, पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागमेत्तेसु तव्वीचार-ट्ठाणेसु संखेज्जगुणवड्ढीए णिव्विसयत्तादो। बादर-सुहुमेइंदियपज्जत्तापज्जत्तएसु पुण असंखे०भागवड्ढी एक्का चेव, तव्वीचारट्ठाणाणं पलिदोवमासंखेज्जभागणियमदंसणादो। एत्थ परत्थाणेण वि तिविहवुड्ढिसंभवो विहत्तिभंगेणाणुगंतव्वो।

§ ८७०. संपहि चउण्हं हाणीणं विसओ उच्चदे। तं जहा—अधट्ठिदिगलणेण ट्ठिदिसंकमस्सासंखेज्जभागहाणी चेव, पयारंतरासंभवादो। ट्ठिदिखंडयघादेण चउव्विहा वि हाणी होइ, कत्थ वि ट्ठिदिसंतकम्मादो असंखेज्जभागस्स कत्थ वि संखेज्जभागस्स कत्थ वि संखेज्जाणं भागाणं कत्थ वि असंखेज्जाणं च भागाणं घादसंभवादो। सेसपरूवणाए ट्ठिदिविहत्तिभंगो। संपहि अवट्ठाणविसओ उच्चदे—तिण्हमण्णदरवुड्ढीए असंखेज्जभाग-हाणीए च अवट्ठाणं दट्ठव्वं, तप्परिणामेणेयसमयमवट्ठिदस्स विदियसमए तेत्तियमेत्तावट्ठाणे विरोहाभावादो। सेसहाणीसु ण संभवइ, तत्थ विदियसमए असंखेज्जभागहाणिणियम-

---

स्वस्थानकी अपेक्षा इसी प्रकार तीन वृद्धियाँ सम्भव हैं यह कहना चाहिए, क्योंकि उन जीवोंमें भी ध्रुवस्थितिसे संख्यातगुणी अन्तःकोड़ाकोड़ीप्रमाण संक्रमवृद्धिके होनेमें विरोध नहीं है। इसीप्रकार शेष जीवसमासोंमें भी स्वस्थानवृद्धिका विचार कर लेना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त तथा अपर्याप्त जीवसमासोंमें अपने अपने ध्रुवस्थितिसंक्रमसे आगे वृद्धि होनेपर असंख्यातभागवृद्धि और संख्यातभाग-वृद्धि नामवाली दो वृद्धियाँ ही सम्भव हैं, क्योंकि उनके पल्यके संख्यातवें भागप्रमाण वीचारस्थानोंमें संख्यातगुणवृद्धिका कोई विषय उपलब्ध नहीं होता। परन्तु बादर एकेन्द्रिय और सूक्ष्म एकेन्द्रिय पर्याप्त तथा अपर्याप्त जीवोंमें एक असंख्यातभागवृद्धि ही पाई जाती है, क्योंकि उनके वीचारस्थानोंका पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण होनेका नियम देखा जाता है। यहाँ पर परस्थानकी अपेक्षा तीन प्रकारकी वृद्धि सम्भव है यह बात स्थितिविभक्तिके समान जान लेनी चाहिए।

§ ८७०. अब चार हानियोंका विषय कहते हैं। यथा—अधःस्थितिगलनाके द्वारा स्थिति-संक्रमकी असंख्यातभागहानि ही होती है, यहाँ पर अन्य कोई प्रकार सम्भव नहीं है। परन्तु स्थितिकाण्डकघातसे चारों प्रकारकी हानि होती है, क्योंकि कहीं पर स्थितिसत्कर्मसे उसके असंख्यातवें भागका, कहींपर संख्यातवें भागका, कहीं पर संख्यात बहुभागका और कहीं पर असंख्यात बहुभागका घात सम्भव है। शेष प्ररूपणा स्थितिविभक्तिके समान है। अब अवस्थानके विषयको बतलाते हैं—तीन वृद्धियोंमेंसे किसी एक वृद्धिके तथा असंख्यातभागहानिके होने पर अवस्थान जानना चाहिए, क्योंकि उक्त प्रकारके परिणामसे एक समय तक अवस्थित हुए जीवके दूसरे समयमें उतना ही अवस्थान होनेमें विरोध नहीं है। परन्तु शेष हानियोंमें अवस्थान सम्भव नहीं है, क्योंकि वहाँ पर दूसरे समयमें असंख्यातभागहानिका नियम देखा जाता है। इस प्रकार

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

दंसणादो। एवमेदेसिं वड्ढि-हाणि-अवट्ठाणाणं मिच्छत्तविसयाणं समुक्कित्तणं काऊण तत्थावत्तव्वसंकमाभावं परूवेदुमुत्तरसुत्तमाह—

❀ **अवत्तव्वं णत्थि।**

§ ८७१. कुदो? असंकमादो तस्स संकमपवुत्तीए सव्वद्धमणुवलंभादो।

❀ **सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं चउव्विहा वड्ढी चउव्विहा हाणी अवट्ठाणमवत्तव्वयं च।**

§ ८७२. तं जहा—तत्थ ताव असंखेज्जभागवड्ढिविसयपरूवणा कीरदे—एक्को मिच्छत्तधुवट्ठिदिमेत्तसम्मत्त-सम्मामिच्छत्तट्ठिदीए उवरि दुसमयुत्तरमिच्छत्तट्ठिदिसंतकम्मिओ सम्मत्तं पडिवण्णो। तत्थासंखेज्जभागवड्ढीए पढमवियप्पो होइ। संपहि पढमवारणिरुद्ध-सम्मत्तट्ठिदिसंकमादो तिसमयुत्तरादिकमेण मिच्छत्तधुवट्ठिदिं वड्ढाविय तेणेव णिरुद्धट्ठिदि-संतकम्मेण सम्मत्तं गेण्हमाणस्स सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं असंखेज्जभागवड्ढी ताव दट्ठव्वा जाव णिरुद्धसम्मत्तट्ठिदिमुक्कस्ससंखेज्जेण खंडिय तत्थ रूवूणेयखंडमेत्ते वड्ढिवियप्पे लद्धूणा-संखेज्जभागवड्ढी पज्जवसिदा त्ति। पुणो एदम्हादो पढमवारणिरुद्धसम्मत्तट्ठिदिसंकमादो समयुत्तर-दुसमयुत्तरादिसम्मत्तट्ठिदीणं पादेक्कं णिरुंभणं काऊण तत्तो दुसमयुत्तरादिकमेण मिच्छत्तट्ठिदिं वड्ढाविय सम्मत्तं गेण्हमाणाणमसंखेज्जभागवड्ढिवियप्पा वत्तव्वा जाव तप्पाओग्गंतोमुहुत्तूणसत्तरिसागरोवमकोडाकोडिमेत्तसम्मत्तट्ठिदि त्ति। णवरि मिच्छत्तधुव-

मिथ्यात्वविषयक इन वृद्धि, हानि और अवस्थानकी समुत्कीर्तना करके वहाँ पर अवक्तव्यसंक्रमका अभाव है यह कथन करनेके लिए आगेका सूत्र कहते हैं—

* **अवक्तव्य नहीं है।**

§ ८७१. क्योंकि उसकी असंक्रमसे संक्रमकी प्रवृत्ति कहीं भी उपलब्ध नहीं होती।

* **सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी चार प्रकारकी वृद्धि, चार प्रकारकी हानि, अवस्थान और अवक्तव्य है।**

§ ८७२. यथा—उसमें सर्वप्रथम असंख्यातभागवृद्धिका विषय कहते हैं—जिसकी सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी स्थिति मिथ्यात्वकी ध्रुवस्थितिके बराबर है ऐसा कोई एक जीव मिथ्यात्वके दो समय अधिक स्थितिसत्कर्मके साथ सम्यक्त्वको प्राप्त हुआ उसके असंख्यातभागवृद्धिका प्रथम विकल्प होता है। अब पहली बार सम्यक्त्वके विवक्षित स्थितिसंक्रमसे मिथ्यात्वकी ध्रुवस्थितिको तीन समय अधिक आदिके क्रमसे बढ़ाकर उसी विवक्षित स्थितिसत्कर्मके साथ सम्यक्त्वको ग्रहण करनेवाले जीवके सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातभागवृद्धि तब तक जाननी चाहिए जब जाकर सम्यक्त्वकी विवक्षित स्थितिमें उत्कृष्ट संख्यातका भाग देकर जो एक भाग लब्ध आवे उससे एक कम वृद्धिविकल्पोंके आश्रयसे असंख्यातभागवृद्धि अन्तको प्राप्त हो जाती है। फिर प्रथमबार विवक्षित सम्यक्त्वके इस स्थितिसंक्रमसे एक समय अधिक, दो समय अधिक आदिके क्रमसे सम्यक्त्वकी स्थितियोंको पृथक् पृथक् विवक्षित कर उनमेंसे प्रत्येक स्थितिविकल्पके साथ दो समय अधिक आदिके क्रमसे मिथ्यात्वकी स्थितिको बढ़ाकर सम्यक्त्वको ग्रहण करनेवाले जीवोंके असंख्यातभागवृद्धिके विकल्प तत्प्रायोग्य अन्तर्मुहूर्त कम सत्तर कोड़ाकोड़ीसागरप्रमाण सम्यक्त्वकी स्थितिके प्राप्त होने तक कहने चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्वकी

Jain Education International　For Private & Personal Use Only　www.jainelibrary.org

ट्ठिदीदो हेट्ठा वि पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागमेत्तसम्मत्त-सम्मामिच्छत्तट्ठिदीणमसंखेज्जभाग-वड्ढिवियप्पा लब्भंति । ते जाणिय वत्तव्वा ।

§ ८७३. संपहि संखेज्जभागवड्ढीए विसयगवेसणं कस्सामो । तं जहा—मिच्छत्त-धुवट्ठिदिमुक्कस्ससंखेज्जेण खंडिय तत्थेयखंडमेत्तेण तत्तो अब्भहियमिच्छत्तट्ठिदिसंतकम्मिएण मिच्छाइट्ठिणा मिच्छत्तधुवट्ठिदिपमाणसम्मत्त-सम्मामिच्छत्तट्ठिदिसंतकम्मेण सह वेदयसम्मत्ते पडिवण्णे पढमो संखेज्जभागवड्ढिवियप्पो होइ । एत्तो समयुत्तरादिकमेण मिच्छत्तट्ठिदि-मणंतरपरूविदपमाणादो वड्ढाविय णिरुद्धसम्मत्तट्ठिदीए सह सम्मत्तं गेण्हाविय संखेज्जभाग-वड्ढिविसयो ताव परूवेयव्वो जाव रूवूणधुवट्ठिदिसमब्भहियमिच्छत्तट्ठिदिसंतकम्मियं पत्तो त्ति । एवं चेव समयुत्तरादिसम्मत्तट्ठिदिविसेसाणं पि पुध पुध णिरुंभणं काऊण पयदवड्ढिविसओ समयाविरोहेण परूवेयव्वो जाव तप्पाओग्गपलिदोवमसंखेज्जभागपरिहीण-सत्तरिसागरोवमकोडाकोडिमेत्तसम्मत्तट्ठिदि त्ति । ताधे तेत्तिमेत्तेण सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त-ट्ठिदिसंतकम्मेण मिच्छत्तुक्कस्सट्ठिदीए च किंचूणाए सम्मत्तं पडिवज्जमाणस्स तदपच्छिम-वियप्पसमुप्पत्ती होइ । मिच्छत्तधुवट्ठिदीदो हेट्ठा वि संखेज्जभागवड्ढिविसओ जहासंभवं विहासेयव्वो ।

§ ८७४. एत्तो संखेज्जगुणवड्ढिविसयपरूवणा कीरदे । तं जहा—पलिदोवमस्स संखेज्जभागमेत्तसम्मत्तट्ठिदिसंतकम्मियमिच्छाइट्ठिणा मिच्छत्तस्स तप्पाओग्गंतोकोडाकोडि-

ध्रुवस्थितिके नीचे भी सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी पल्यके संख्यातवें भागप्रमाण स्थितियोंके असंख्यातभागवृद्धिसम्बन्धी विकल्प प्राप्त होते हैं सो उन्हें जान कर कहना चाहिए ।

§ ८७३. अब संख्यातभागवृद्धिके विषयका अनुसन्धान करते हैं। यथा—मिथ्यात्वकी ध्रुवस्थितिमें उत्कृष्ट संख्यातका भाग देनेपर प्राप्त हुए एक भागसे अधिक मिथ्यात्वके स्थितिसत्कर्मवाले जीवके मिथ्यात्वकी ध्रुवस्थितिके बराबर सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके स्थितिसत्कर्मके साथ वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त होनेपर संख्यातभागवृद्धिका प्रथम विकल्प होता है। आगे पहले कहे हुए प्रमाणसे मिथ्यात्वकी स्थितिको एक समय अधिक आदिके क्रमसे बढ़ाकर सम्यक्त्वकी विवक्षित स्थितिके साथ सम्यक्त्वको ग्रहण कराकर एक कम ध्रुवस्थितिसे अधिक मिथ्यात्वके स्थितिसत्कर्मके प्राप्त होने तक संख्यातभागवृद्धिका विषय कहना चाहिए। तथा इसी प्रकार सम्यक्त्वके एक समय अधिक आदि स्थितिविशेषोंको पृथक्-पृथक् विवक्षित कर प्रकृत वृद्धिका विषय समयके अविरोध पूर्वक तत्प्रायोग्य पल्यका संख्यतवाँ भागकम सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण सम्यक्त्वकी स्थितिके प्राप्त होनेतक कहना चाहिए। तब तत्प्रमाण सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके स्थितिसत्कर्मके साथ मिथ्यात्वकी कुछकम उत्कृष्ट स्थितिके सद्भावमें सम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाले जीवके संख्यातभागवृद्धिके अन्तिम विकल्पकी उत्पत्ति होती है। इसी प्रकार मिथ्यात्वकी ध्रुवस्थितिके नीचे भी संख्यातभागवृद्धिके विषयका यथासम्भव व्याख्यान करना चाहिए।

§ ८७४. आगे संख्यातगुणवृद्धिके विषयका व्याख्यान करते हैं। यथा—सम्यक्त्वके पल्यके संख्यातवें भागप्रमाण स्थितिसत्कर्मवाले मिथ्यादृष्टि जीवके उपशमसम्यक्त्वके ग्रहणके योग्य मिथ्यात्वके अन्तःकोड़ाकोड़ीप्रमाण स्थितिसत्कर्मके साथ उपशमसम्यक्त्वको उत्पन्न

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मेत्तउवसमसम्मत्तग्गहणपाओग्गट्ठिदिसंतकम्मिएण उवसमसम्मत्ते समुप्पाइदे तव्विदिय-समए संखेज्जगुणवड्ढी होइ। एत्तो समयुत्तर-दुसमयुत्तरादिट्ठिदिवियप्पेहिं मि उवसमसम्मत्तं पडिवज्जमाणाणं संखेज्जगुणवड्ढी चेव होऊण गच्छइ जाव सागरोवमपुधत्तमेत्तट्ठिदिसंतकम्मं पत्तमिदि। संपहि वेदगसम्मत्तग्गहणपाओग्गसव्वजहण्णसम्मत्तट्ठिदिं धुवं काऊण मिच्छत्त-धुवट्ठिदिप्पहुडि समयुत्तरादिकमेण वड्ढाविय संखेज्जगुणवड्ढिविसयो परूवेयव्वो जाव अंतोमुहुत्तूणसत्तरिसागरोवमकोडाकोडिमेत्तमिच्छत्तट्ठिदीए सह सम्मत्तं पडिवण्णस्स सव्वुक्कस्सो संखेज्जगुणवड्ढिवियप्पो जादो त्ति। एवं चेव पुव्वणिरुद्धसम्मत्तट्ठिदीदो समयुत्तरादिसम्मत्तट्ठिदीणं च पादेक्कं णिरुंभणं काऊण संखेज्जगुणवड्ढिवियप्पा परूवेयव्वा जाव सम्मत्तट्ठिदिसंतकम्मं मिच्छत्तधुवट्ठिदीए अद्धमेत्तं जादं ति। एत्तो उवरि णिरुद्ध-सम्मत्तट्ठिदीदो दुगुणमिच्छत्तट्ठिदिसंतकम्मियमादिं कादूण सम्मत्तं पडिवज्जाविय णेदव्वं जाव सत्तरिसागरोवमकोडाकोडीणमंतोमुहुत्तूणाणमद्धमेत्तसम्मत्तट्ठिदिसंतकम्मं पत्तं ति।

§ ८७५. संपहि सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणमसंखेज्जगुणवड्ढिविसओ परूविज्जदे। तं जहा—सव्वजहण्णचरिमुव्वेल्लणकंडयचरिमफालिमेत्ततदुभयसंतकम्मियमिच्छाइट्ठिणा उवसमसम्मत्ते गहिदे पढममसंखेज्जगुणवड्ढिट्ठाणमुप्पज्जइ। एवमुवरिमट्ठिदिवियप्पेहिं मि सम्मत्तं पडिवज्जाविय णिरुद्धवड्ढिविसयो परूवेयव्वो जाव चरिमवियप्पो त्ति। तत्थ चरिमवियप्पो वुच्चदे। तं जहा—उवसमसम्मत्तपाओग्गसव्वजहण्णमिच्छत्तट्ठिदिं जहण्ण-

करनेपर उसके दूसरे समयमें संख्यातगुणवृद्धि होती है। इससे आगे एक समय अधिक और दो समय अधिक आदि स्थितिविकल्पोंके साथ भी उपशमसम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाले जीवोंके सागरपृथक्त्वप्रमाण स्थितिसत्कर्मके प्राप्त होने तक संख्यातगुणवृद्धि ही होती रहती है। अब वेदकसम्यक्त्वके ग्रहणके योग्य सबसे जघन्य सम्यक्त्वकी स्थितिको ध्रुव करके मिथ्यात्वकी ध्रुवस्थितिसे लेकर एक समय अधिक आदिके क्रमसे उसे बढ़ाते हुए अन्तर्मुहूर्त कम सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण मिथ्यात्वकी स्थितिके साथ सम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाले जीवके संख्यातगुण-वृद्धिका सर्वोत्कृष्ट विकल्प प्राप्त होनेतक संख्यातगुणवृद्धिका विषय कहना चाहिए। तथा इसीप्रकार पूर्वमें विवक्षित सम्यक्त्वकी स्थितिसे एक समय अधिक आदि सम्यक्त्वकी स्थितियोंको पृथक्-पृथक् विवक्षित कर, सम्यक्त्वके स्थितिसत्कर्मके मिथ्यात्वकी ध्रुवस्थितिके अर्धभागप्रमाण होनेतक, संख्यातगुणवृद्धिके विकल्प कहने चाहिए। इससे आगे सम्यक्त्वकी विवक्षित स्थितिसे दूने मिथ्यात्वके स्थितिसत्कर्मसे लेकर सम्यक्त्वको प्राप्त कराकर सत्तर कोड़ाकोड़ीके अन्तर्मुहूर्तकम अर्धभागप्रमाण सम्यक्त्वके स्थितिसत्कर्मके प्राप्त होने तक संख्यातगुणवृद्धिके विकल्प जानने चाहिए।

§ ८७५. अब सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातगुणवृद्धिके विषयको कहते हैं। यथा—उक्त दोनों कर्मोंके सबसे जघन्य अन्तिम उद्वेलनाकाण्डककी अन्तिम फालिप्रमाण सत्कर्मवाले मिथ्यादृष्टि जीवके उपशमसम्यक्त्वको ग्रहण करनेपर प्रथम असंख्यातगुणवृद्धिस्थान उत्पन्न होता है। इसी प्रकार उपरिम स्थिति विकल्पोंके साथ भी सम्यक्त्वको प्राप्त कराकर विवक्षित वृद्धिके अन्तिम विकल्पके प्राप्त होने तक उसके विषयका कथन करना चाहिए। प्रकृतमें अन्तिम विकल्पको कहते हैं। यथा—उपशमसम्यक्त्वके योग्य सबसे जघन्य मिथ्यात्वकी स्थितिको

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

परित्तासंखेज्जेण खंडिय तत्थेयखंडयमेत्तसम्मत्त-सम्मामिच्छत्तट्ठिदिसंतकम्मिएण मिच्छाइट्ठिणा मिच्छत्तस्स तप्पाओग्गजहण्णंतोकोडाकोडिमेत्तट्ठिदीए सह उवसमसम्मत्ते पडिवण्णे उवसमसम्मत्तपाओग्गमिच्छत्तधुवट्ठिदिणिबंधणाणमसंखेज्जगुणवड्ढिवियप्पाणमपच्छिमो वियप्पो होइ। एवमुवसमसम्मत्तपाओग्गमिच्छत्तट्ठिदीणं पत्तेयणिरोहं काऊण असंखेज्जगुणवड्ढिविसयो अणुमग्गियव्वो जाव तत्तो संखेज्जगुणमेत्तंतोकोडाकोडिपमाणं पत्तो त्ति। एवं चउण्हं वड्ढीणं विसयविभागो परूविदो।

§ ८७६. संपहि हाणिचउक्कस्स विसओ मिच्छत्तस्सेवाणुगंतव्वो। संपहि अवट्ठाणविसयपरूवणा कीरदे। तप्पाओग्गजहण्णंतोकोडाकोडिमेत्तसम्मत्त-सम्मामिच्छत्तट्ठिदिसंतकम्मादो समयुत्तरमिच्छत्तट्ठिदिसंतकम्मिएण सम्मत्ते गहिदे पयदकम्माणमवट्ठिदो ट्ठिदिसंकमो होइ। एत्तो उवरिमट्ठिदिवियप्पेहिं मि समयुत्तरमिच्छत्तट्ठिदिपडिग्गहवसेणावट्ठाणसंकमो वत्तव्वो जाव अंतोमुहुत्तूणसत्तरिसागरोवमकोडाकोडि त्ति। णिस्संतकम्मियमिच्छाइट्ठिणा उवसमसम्मत्ते पडिवण्णे तव्विदियसमए अवत्तव्वसंकमो होइ। तम्हा चउव्विहा वड्ढी हाणी अवट्ठाणमवत्तव्वं च पयदकम्माणमत्थि त्ति सिद्धं।

❀ सेसकम्माणं मिच्छत्तभंगो।

§ ८७७. एत्थ सेसग्गहणेण सोलसकसाय-णवणोकसायाणं गहणं कायव्वं। तेसिं मिच्छत्तभंगो, तिण्हं वड्ढीणं चउण्हं हाणीणमवट्ठाणस्स च संभवं पडि तत्तो विसेसा-

जघन्य परीतासंख्यातसे भाजित कर वहाँ पर एक भागप्रमाण सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके स्थितिसत्कर्मवाले मिथ्यादृष्टि जीवके मिथ्यात्वकी तत्प्रायोग्य अन्तःकोड़ाकोड़ीप्रमाण जघन्य स्थितिके साथ उपशमसम्यक्त्वके प्राप्त होने पर उपशमसम्यक्त्वके योग्य मिथ्यात्वकी ध्रुवस्थितिको निमित्तकर असंख्यातगुणवृद्धिके प्राप्त होनेवाले विकल्पोंमें अन्तिम विकल्प होता है। इस प्रकार उपशमसम्यक्त्वके योग्य मिथ्यात्वकी स्थितियोंमेंसे प्रत्येकको विवक्षित कर असंख्यातगुणवृद्धिका विषय तब तक जानना चाहिए जब जाकर सम्यक्त्वकी पूर्वोक्त स्थितिसे संख्यातगुणा अन्तःकोड़ाकोड़ीका प्रमाण प्राप्त होता है। इस प्रकार चार वृद्धियोंके विषयविभागका कथन किया।

§ ८७६. हानिचतुष्कका विषय मिथ्यात्वके समान ही जानना चाहिए। अब अवस्थानके विषयका कथन करते हैं—सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके तत्प्रायोग्य अन्तःकोड़ाकोड़ीप्रमाण स्थितिसत्कर्मसे मिथ्यात्वके एक समय अधिक स्थितिसत्कर्मवाले जीवके द्वारा सम्यक्त्वके ग्रहण करनेपर प्रकृत कर्मोंका अवस्थित स्थितिसत्कर्म होता है। इससे आगे उपरिम स्थितिविकल्पोंके साथ भी मिथ्यात्वके एक समय अधिक स्थितिके प्रतिग्रह वश अवस्थानविकल्प अन्तर्मुहूर्त कम सत्तर कोड़ाकोड़ी सागरप्रमाण स्थितिके प्राप्त होनेतक कहने चाहिए। तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके सत्कर्मसे रहित मिथ्यादृष्टिके द्वारा उपशमसम्यक्त्वके प्राप्त होने पर उसके दूसरे समयमें अवक्तव्यसंक्रम होता है, इसलिए चार प्रकारकी वृद्धि, चार प्रकारकी हानि, अवस्थान और अवक्तव्य प्रकृत कर्मोंका है यह सिद्ध हुआ।

❀ शेष कर्मोंका भंग मिथ्यात्वके समान है।

§ ८७७. यहाँपर शेष पदके ग्रहण करनेसे सोलह कषाय और नौ नोकषायोंका ग्रहण करना चाहिए। उनका भंग मिथ्यात्वके समान है, क्योंकि तीन वृद्धि, चार हानि और अवस्थानके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भावादो। संपहि एत्थतणविसेसपदुप्पायणट्ठमिदमाह—

❀ णवरि अवत्तव्वयमत्थि।

§ ८७८. मिच्छत्तस्सावत्तव्वयं णत्थि त्ति वुत्तं। एत्थ वुण विसंजोयणापुव्वसंजोगे सव्वोवसामणापडिवादे च तस्संभवो अत्थि त्ति एसो विसेसो। अण्णं च पुरिसवेद० तिण्हं संजलणाणमसंखेज्जगुणवड्ढिसंभवो वि अत्थि, उवसमसेढीए अप्पप्पणो णवकबंध-संकमणावत्थाए कालं काऊण देवेसुववण्णयम्मि तदुवलद्धीदो। ण चायं विसेसो सुत्ते णत्थि त्ति संकणिज्जं, अवत्तव्वसंकामयसंभववयणेणेव देसामासयभावेण संगहियत्तादो मरणसण्णिदवाघादेण विणा सत्थाणे चेव समुक्कित्तणाए सुत्तयारेणाहिप्पेयत्तादो वा[1]।

एवमोघसमुक्कित्तणा गया।

§ ८७९. संपहि आदेसपरूवणट्ठमुच्चारणं वत्तइस्सामो। तं जहा—समुक्कित्तणाणु-गमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मिच्छ० अत्थि तिण्णि वड्ढी चत्तारि हाणी अवट्ठिदं च। एवं तेरसक०-अट्ठणोकसा०। णवरि अवत्त० अत्थि। सम्म०-सम्मामि०-तिण्णिसंज०-पुरिसवे० अत्थि चत्तारि वड्ढी हाणी अवट्ठि० अवत्त०। आदेसेण णेरइय० छव्वीसं पयडीणं विहत्तिभंगो। सम्म०-सम्मामि० विहत्तिभंगो। णवरि

यहाँ पर भी सम्भव होनेके प्रति मिथ्यात्वसे इनमें कोई विशेषता नहीं है। अब यहाँ पर जो विशेषता है उसका कथन करनेके लिए यह आगेका सूत्र कहते हैं—

* किन्तु इतनी विशेषता है कि इनका अवक्तव्यपद भी है।

§ ८७८. मिथ्यात्वका अवक्तव्यपद नहीं है यह कह आये हैं। परन्तु यहाँ पर विसंयोजना-पूर्वक संयोग होने पर और सर्वोपशामनासे प्रतिपात होने पर वह सम्भव है इसप्रकार यह विशेष है। साथ ही इतनी विशेषता और है कि पुरुषवेद और तीन संज्वलनोंकी असंख्यातगुणवृद्धि भी सम्भव है, क्योंकि उपशामश्रेणिमें अपने अपने नवकबन्धकी संक्रमावस्थामें मरकर देवोंमें उत्पन्न होने पर उक्त पदकी उपलब्धि होती है। यह विशेषता सूत्रमें नहीं कही ऐसी आशंका नहीं करनी चाहिए, क्योंकि इन प्रकृतियोंके संक्रामक जीव सम्भव हैं यह वचन देशामर्षक है, इसलिए इसी वचनसे उक्त विशेषताका संग्रह हो जाता है। अथवा मरण संज्ञावाले व्याघातके बिना स्वस्थानमें ही सूत्रकारको समुत्कीर्तना अभिप्रेत रही है। यही कारण है कि सूत्रकारने उक्त प्रकृतियोंकी असंख्यातगुणवृद्धिका सूत्रमें संकेत नहीं किया है।

इस प्रकार ओघसे समुत्कीर्तना समाप्त हुई।

§ ८७९. अब आदेशका कथन करनेके लिए उच्चारणाको बतलाते हैं। यथा—समुत्कीर्तना की अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे मिथ्यात्वकी तीन वृद्धि, चार हानि और अवस्थित पद हैं। इसी प्रकार तेरह कषायों और आठ नोकषायोंका जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनका अवक्तव्यपद भी है। सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, तीन संज्वलन और पुरुषवेदकी चार वृद्धि, चार हानि, अवस्थित और अवक्तव्यपद हैं। आदेशसे नारकियोंमें छब्बीस प्रकृतियोंका भङ्ग स्थितिविभक्तिके समान है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भङ्ग

---

१. ता०प्रतौ –यारे (रा) [णा] हिप्पायत्तादो वा इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

असंखेज्जगुणहाणी णत्थि । एवं सव्वणेरइय०-तिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्ख०३–देवगदिदेवा भवणादि जाव सहस्सार त्ति पंचि०तिरिक्खअपज्ज०-मणुसअपज्ज० विहत्तिभंगो । णवरि सम्म०-सम्मामि० असंखेज्जगुणहाणी णत्थि । मणुसतिए ओघं । णवरि तिण्णिसंजल०-पुरिसवेद० असंखे०गुणवड्ढी णत्थि । आणदादि जाव णवगेवज्जा त्ति २६ पयडीणं विहत्तिभंगो । सम्म०-सम्मामि० अत्थि चत्तारि वड्ढी दो हाणी अवत्त० । अणुद्दिसादि सव्वट्ठा त्ति मिच्छ०-सम्म०-सम्मामि०-बारसक०-णवणोक० अत्थि असंखेज्जभागहाणी संखेज्जभागहाणी । अणंताणु०४ अत्थि चत्तारि हाणी । एवं जाव० ।

§ ८८०. संपहि समुक्कित्तणाणंतरं परूवणाणियोगद्दारपदुप्पायणट्ठमिदमाह—

❀ परूवणा । एदासिं विधिं पुध पुध उवसंदरिसणा परूवणा णाम ।

§ ८८१. एदासिमणंतरसमुक्कित्तिदाणं वड्ढि-हाणीणमवट्ठाणावत्तव्वाणुगयाणं पुध पुध णिरुंभणं कादूण विसयविभागपदंसणं परूवणा णाम भवदि त्ति सुत्तत्थसंबंधो । सा च विसयविभागपरूवणा सामण्णसमुक्कित्तणाए चेव किं चि सूचिदा त्ति ण पुणो पवंचिज्जदे । अथवा स्वामित्वादिमुखेनैव तासां विभागशः कथनं प्ररूपणेति व्याचक्ष्महे,

स्थितिविभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि असंख्यातगुणहानि नहीं है । इसीप्रकार सब नारकी, तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिक, देवगतिमें सामान्य देव और भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार कल्पतकके देवोंमें जानना चाहिए । पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातगुणहानि नहीं है । मनुष्यत्रिकमें ओघके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि तीन संज्वलन और पुरुषवेदकी असंख्यातगुणवृद्धि नहीं है । आनत कल्पसे लेकर नौ ग्रैवेयक तकके देवोंमें २६ प्रकृतियोंका भंग स्थितिविभक्तिके समान है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी चार वृद्धि, दो हानि और अवक्तव्यपद हैं । अनुदिशसे लेकर सर्वार्थ सिद्धितकके देवोंमें मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी असंख्यातभागहानि और संख्यातभागहानि है । अनन्तानुबन्धीचतुष्ककी चार हानियाँ हैं । इसी प्रकार अनाहारक मार्गणातक जानना चाहिए ।

§ ८८०. अब समुत्कीर्तनाके बाद प्ररूपणा अनुयोगद्वारका कथन करनेके लिए इस सूत्रको कहते हैं—

*** प्ररूपणाका अधिकार है । इनकी विधिको पृथक् पृथक् दिखलाना प्ररूपणा है ।**

§ ८८१. जिनकी पूर्वमें समुत्कीर्तना कर आये हैं तथा जो अवस्थान और अवक्तव्यपदसे अनुगत हैं ऐसी इन वृद्धियों और हानियोंको पृथक् पृथक् विवक्षित कर विषयविभागका दिखलाना प्ररूपणा है ऐसा यहाँ सूत्रका अर्थके साथ सम्बन्ध है और वह विषयविभागकी प्ररूपणा किञ्चित् सामान्यसे समुत्कीर्तनामें ही सूचित हो जाती है, इसलिए अलगसे विस्तार नहीं करते हैं । अथवा स्वामित्व आदिके द्वारा ही उनका विषयविभागके अनुसार कथन करना प्ररूपणा है ऐसा आगे कहेंगे, क्योंकि स्वामित्व आदिका कथन किये बिना उनके विशेषका निर्णय नहीं बन

Jain Education International	For Private & Personal Use Only	www.jainelibrary.org

स्वामित्वादिप्ररूपणामंतरेण तद्विशेषनिर्णयानुपपत्तेः । तंजथा—सामित्ताणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । तत्थोघेण मिच्छ० विहत्तिभंगो । एवं बारसक०-णवणोक० । णवरि अवत्त० भुजगारभंगो । तिण्णिसंज०-पुरिसवेद० असंखे०गुणवड्ढी कस्स? अण्णदरस्स उवसामयस्स जो चरिमट्ठिदिबंधं संकामेमाणो देवेसुववण्णो तस्स पढमसमय-देवस्स असंखे०गुणवड्ढी । अणंताणु०४ विहत्तिभंगो । सम्म०-सम्मामि० विहत्तिभंगो । णवरि असंखेज्जगुणहाणी कस्स ? अण्णद० सम्माइट्ठिस्स दंसणमोहक्खवयस्स ।

§ ८८२. आदेसेण सव्वणेरइय-तिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खतिय०३-देवा जाव सहस्सारे त्ति विहत्तिभंगो । णवरि सम्म०-सम्मामि० असंखे०गुणहाणी णत्थि । पंचिं०-तिरिक्खअपज्ज०-मणुसअपज्ज०-अणुद्दिसादि जाव सव्वट्ठा त्ति सव्वपयडीणं सव्वपदाणि कस्स ? अण्णद० । मणुसतिए३ ओघं । णवरि बारसक०-णवणोक० अवत्त० भुजगार-भंगो । तिण्णिसंजल०-पुरिसवेद० असंखे०गुणवड्ढी णत्थि । आणदादि णवगेवज्जा त्ति छव्वीसं पयडीणं विहत्तिभंगो । सम्म०-सम्मामि० विहत्तिभंगो । णवरि संखे०गुणहाणी असंखे०गुणहाणी णत्थि । एवं जाव० ।

§ ८८३. कालाणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण मिच्छ०

सकता । यथा—स्वामित्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । उनमेंसे ओघकी अपेक्षा मिथ्यात्वका भंग स्थितिविभक्तिके समान है । इसीप्रकार बारह कषायों और नौ नोकषायोंका जानना चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके अवक्तव्यपदका भंग भुजगारके समान है । तीन संज्वलन और पुरुषवेदकी असंख्यातगुणवृद्धि किसके होती है ? जो अन्यतर उपशामक जीव अन्तिम स्थितिबन्धका संक्रम करता हुआ मरकर देवोंमें उत्पन्न हुआ है उस प्रथम समयवर्ती देवके असंख्यातगुणवृद्धि होती है । अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भंग स्थितिविभक्तिके समान है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग स्थितिविभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि असंख्यातगुणहानि किसके होती है ? दर्शनमोहनीयकी क्षपणा करनेवाले अन्यतर सम्यग्दृष्टिके होती है ।

§ ८८२. आदेशसे सब नारकी, सामान्य तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिक, सामान्य देव और सहस्रार कल्प तकके देवोंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातगुणहानि नहीं है । पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त, मनुष्य अपर्याप्त और अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें सब प्रकृतियोंके सब पद किसके होते है ? अन्यतरके होते हैं । मनुष्यत्रिकमें ओघके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि बारह कषायों और नौ नोकषायोंके अवक्तव्यपदका भंग भुजगारके समान है । तीन संज्वलन और पुरुषवेदकी असंख्यातगुणवृद्धि नहीं है । आनतसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें छब्बीस प्रकृतियोंका भंग स्थितिविभक्तिके समान है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग स्थितिविभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनकी संख्यातगुणहानि और असंख्यात-गुणहानि नहीं है । इसीप्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए ।

§ ८८३. कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश । ओघसे

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विहत्तिभंगो । णवरि संखेज्जभागहाणी० जह० उक्क० एयसमओ । सोलसक०-णवणोक० विहत्तिभंगो । णवरि संखे०भागहाणि-अवत्त० जह० उक्क० एयसमओ । तिण्णिसंजल०-पुरिसवेद० असंखे०गुणवड्ढी० जह० उक्क० एयसमओ। सम्म०-सम्मामि० विहत्तिभंगो। णवरि संखे०भागहाणि-अवत्त० जह० उक्क० एयसमओ ।

§ ८८४. आदेसेण णेरइय० मिच्छ०-बारसक०-णवणोक० विहत्तिभंगो । सम्म०-सम्मामि० विहत्तिभंगो । णवरि संखे०भागहाणी० जह० उक्क० एयसमओ । असंखे०-गुणहाणी णत्थि । अणंताणु०४ विहत्तिभंगो । णवरि संखे०भागहा० जह० उक्क० एयस० । एवं सव्वणेरइय० । णवरि सगट्ठिदी ।

§ ८८५. तिरिक्खेसु मिच्छ०-बारसक०-णवणोक० विहत्तिभंगो । सम्म०-सम्मामि० विहत्तिभंगो । णवरि संखे०भागहाणी० जह० उक्क० एयसमओ । असंखे०-गुणहाणी णत्थि । अणंताणु०४ विहत्तिभंगो । णवरि संखे०भागहाणी० जह० उक्क० एयसमओ । पंचिं०तिरिक्खतिए३ एवं चेव । णवरि मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक० संखे०भागवड्ढी० जह० उक्क० एयसमओ । पंचिं०तिरिक्खअपज्ज०-मणुसअपज्ज० मिच्छ०-सोलसक०-णवणोक० असंखे०भागवड्ढी० जह० एगस०, उक्क० वे समया सत्तारस

मिथ्यात्वका भंग स्थितिविभक्तिके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि संख्यातभागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। सोलह कषाय और नौ नोकषायोंका भंग स्थितिविभक्तिके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि संख्यातभागहानि और अवक्तव्यका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। तीन संज्वलन और पुरुषवेदकी असंख्यातगुणवृद्धिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग स्थितिविभक्तिके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि संख्यातभागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है।

§ ८८४. आदेशसे नारकियोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंका भंग स्थितिविभक्तिके समान है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग स्थितिविभक्तिके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि संख्यातभागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। असंख्यातगुणहानि नहीं है। अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भंग स्थितिविभक्तिके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि संख्यातभागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। इसी प्रकार सब नारकियोंमें जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि अपनी-अपनी स्थिति कहनी चाहिए।

§ ८८५. तिर्यञ्चोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंका भंग स्थितिविभक्तिके समान है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग स्थितिविभक्तिके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि संख्यातभागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। असंख्यातगुणहानि नहीं है। अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भंग स्थितिविभक्तिके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि संख्यातभागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें इसी प्रकार भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी संख्यातभागवृद्धिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें मिथ्यात्व, सोलह कषाय और नौ नोकषायोंकी असंख्यातभागवृद्धिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय अथवा सत्रह समय है। असंख्यातभागहानि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समया वा। असंखे०भागहाणि-अवट्ठि० जह० एगसमओ, उक्क० अंतोमुहुत्तं। संखेज्जभाग-वड्डि-दोहाणी० जह० उक्क० एयस०। संखे०गुणवड्डी० जह० एयस०, उक्क० वे समया। सम्म०-सम्मामि० असंखे०भागहाणी० जह० एगस०, उक्क०अंतोमु०। दोहाणी० जह० उक्क० एयस०।

§ ८८६. मणुस०३ मिच्छ०-बारसक०-णवणोक० पंचिं०तिरिक्खभंगो। णवरि असंखे०गुणहाणी० जह० उक्क० एयस०। बारसक०-णवणोक० अवत्त० जह० उक्क० एयस०। अणंताणु०४ पंचिं०तिरिक्खभंगो। सम्म०-सम्मामि० पंचिं०तिरि०भंगो। णवरि असंखे०गुणहाणी० जह० उक्क० एयस०।

§ ८८७. देवाणं णारयभंगो। णवरि असंखे०भागहाणी० जह० एयसमओ, उक्क० तेत्तीसं सागरोवमाणि। भवणादि जाव सहस्सार त्ति एवं चेव। णवरि सगट्ठिदी। आणदादि जाव णवगेवज्जा त्ति मिच्छ०-बारसक०-णवणोक० विहत्तिभंगो। सम्म०-सम्मामि० चत्तारिवड्डि-संखे०भागहाणि-अवत्त० जह० उक्क० एयसमओ। असंखे०भाग-हाणी० जह० एयसमओ, उक्क० सगट्ठिदी। अणंताणु०४ विहत्तिभंगो। णवरि संखे०-भागहाणी० जह० उक्क० एयसमओ। अणुद्दिसादि सव्वट्ठा त्ति मिच्छ०-सम्म०-

और अवस्थितपदका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। संख्यातभागवृद्धि और दो हानियोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। संख्यातगुणवृद्धिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल दो समय है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यात-भागहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अन्तर्मुहूर्त है। दो हानियोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है।

§ ८८६. मनुष्यत्रिकमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंका भंग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि असंख्यातगुणहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। बारह कषाय और नौ नोकषायोंके अवक्तव्यपदका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भंग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि असंख्यात-गुणहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है।

§ ८८७. देवोंमें नारकियोंके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि असंख्यात-भागहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल तेतीस सागर है। भवनवासियोंसे लेकर सहस्रार कल्प तकके देवोंमें इसी प्रकार भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि अपनी अपनी स्थिति कहनी चाहिए। आनतसे लेकर नौ ग्रैवेयक तकके देवोंमें मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंका भंग स्थितिविभक्तिके समान है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी चार वृद्धि, संख्यातभागहानि और अवक्तव्यपदका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। असंख्यातभागहानिका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है। अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भंग स्थितिविभक्तिके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि संख्यातभाग-हानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धितकके देवोंमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सम्मामि०-बारसक०-णवणोक० असंखे०भागहाणी० जह० अंतोमु०, सम्म० एयस०, उक्क० सगट्ठिदी। संखे०भागहाणी० जह० उक्क० एयसमओ। अणंताणु०४ असंखे०भागहाणी० जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० सगट्ठिदी। तिण्णिहाणी० जह० उक्क० एयस०। एवं जाव०।

§ ८८८. अंतराणुग० दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मिच्छ० विहत्तिभंगो। एवं बारसक०-णवणोक०। णवरि अवत्त० जह० अंतोमु०, उक्क० उवड्ढ-पोग्गलपरियट्टं। तिण्णिसंजल०-पुरिसवेद० असंखे०गुणवड्ढी० णत्थि अंतरं। असंखे०-गुणहाणी० जह० अंतोमु०, उक्क० उवड्ढपो०परियट्टं। अणंताणु०४ विहत्तिभंगो। सम्म०-सम्मामि० विहत्तिभंगो। णवरि असंखे०गुणहाणी० जह० उक्क० अंतोमु०।

§ ८८९. आदेसेण सव्वणेरइय-तिरिक्ख०-देवा जाव सहस्सार त्ति विहत्तिभंगो। णवरि सम्म०-सम्मामि० असंखे०गुणहाणी णत्थि। पंचिंदियतिरिक्खतिए३ छव्वीसं पयडीणं विहत्तिभंगो। णवरि संखे०गुणवड्ढी० जह० एयस०, उक्क० पुव्वकोडिपुधत्तं। सम्म०-सम्मामि० विहत्तिभंगो। णवरि असंखे०गुणहाणी णत्थि। पंचिं०तिरिक्ख-अपज्ज०-मणुसअपज्ज० छव्वीसं पयडीणं विहत्तिभंगो। णवरि संखे०गुणवड्ढी० जह०

मिथ्यात्व, सम्यक्त्व, सम्यग्मिथ्यात्व, बारह कषाय और नौ नोकषायोंकी असंख्यातभागहानिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है, सम्यक्त्वका एक समय है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है। संख्यातभागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। अनन्तानुबन्धी-चतुष्ककी असंख्यातभागहानिका जघन्य काल अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट काल अपनी अपनी स्थितिप्रमाण है। तीन हानियोंका जघन्य और उत्कृष्ट काल एक समय है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

§ ८८८. अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे मिथ्यात्वका भंग स्थितिविभक्तिके समान है। इसीप्रकार बारह कषाय और नौ नोकषायोंके विषयमें जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके अवक्तव्यपदका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर उपार्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है। तीन संज्वलन और पुरुषवेदकी असंख्यातगुणवृद्धिका अन्तर नहीं है। असंख्यातगुणहानिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर उपार्धपुद्गलपरिवर्तनप्रमाण है। अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भंग स्थितिविभक्तिके समान है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग स्थितिविभक्तिके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि असंख्यातगुणहानिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है।

§ ८८९. आदेशसे सब नारकी, सामान्य तिर्यञ्च, समान्य देव और सहस्रार कल्पतकके देवोंमें भंग स्थितिविभक्तिके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातगुणहानि नहीं है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिकमें छब्बीस प्रकृतियोंका भंग स्थितिविभक्तिके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि संख्यातगुणवृद्धिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्वप्रमाण है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग स्थितिविभक्तिके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि असंख्यातगुणहानि नहीं है। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें छब्बीस प्रकृतियोंका भंग स्थितिविभक्तिके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

एयस०, उक्क० अंतोमु० । सम्म०-सम्मामि० असंखे०भागहाणी० जह० उक्क० एयसमओ । दोण्णिहाणी० णत्थि अंतरं । मणुस३ मिच्छ० पंचिंदियतिरिक्खभंगो । णवरि असंखे०गुणहाणी० जह० उक्क० अंतोमुहुत्तं । एवं बारसक०-णवणोक० । णवरि अवत्त० तिण्णिसंजल०-पुरिसवेद० असंखे०गुणहाणी० जह० अंतोमुहुत्तं, उक्क० पुव्वकोडिपुधत्तं । अणंताणु०४ पंचिंदियतिरिक्खभंगो । सम्म०-सम्मामि० पंचि०-तिरिक्खभंगो । णवरि असं०गुणहाणी ओघं । आणदादि णवगेवेज्जा त्ति छव्वीसं पय० विहत्तिभंगो । सम्म०-सम्मामि० विहत्तिभंगो । णवरि संखे०गुणहाणी असंखे०गुणहाणी णत्थि । अणुद्दिसादि सव्वट्ठे त्ति विहत्तिभंगो । णवरि सम्म० संखे०गुणहाणी णत्थि । एवं जाव० ।

§ ८९०. णाणाजीवेहि भंगविचयाणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य । ओघेण छव्वीसं पयडीणं असंखे०भागवड्ढि–हाणि–अवट्ठि० णियमा अत्थि । सेसपदाणि भयणिज्जाणि । सम्म०-सम्मामि० विहत्तिभंगो । सव्वणेरइय-सव्वतिरिक्ख-मणुसअपज्ज०-देवा जाव सहस्सार त्ति विहत्तिभंगो । णवरि सम्म०-सम्मामि० असंखे०-गुणहाणी णत्थि । मणुसतिए३ छव्वीसं पयडीणं असंखे०भागहाणि-अवट्ठि० णियमा

समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि संख्यातगुणवृद्धिका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातभागहानिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर एक समय है । दो हानियोंका अन्तरकाल नहीं है । मनुष्यत्रिकमें मिथ्यात्वका भंग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि असंख्यातगुणहानिका जघन्य और उत्कृष्ट अन्तर अन्तर्मुहूर्त है । इसी प्रकार बारह कषायों और नौ नोकषायोंके विषयमें जानना चाहिए । किन्तु इतनी विशेषता है कि इनके अवक्तव्यपदका तथा तीन संज्वलन और पुरुषवेदकी असंख्यातगुणहानिका जघन्य अन्तर अन्तर्मुहूर्त है और उत्कृष्ट अन्तर पूर्वकोटिपृथक्त्वप्रमाण है । अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भंग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चोंके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि असंख्यातगुणहानिका भंग ओघके समान है । आनत कल्पसे लेकर नौ ग्रैवेयक तकके देवोंमें छब्बीस प्रकृतियोंका भंग स्थितिविभक्तिके समान है । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग स्थितिविभक्तिके समान है । किन्तु इतनी विशेषता है कि संख्यातगुणहानि और असंख्यातगुणहानि नहीं है । अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्वकी संख्यातगुणहानि नहीं है । इसीप्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए ।

§ ८९०. नाना जीवोंका अवलम्बन लेकर भंगविचयानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश । ओघसे छब्बीस प्रकृतियोंकी असंख्यातभागवृद्धि, असंख्यात-भागहानि और अवस्थित पदवाले जीव नियमसे हैं । शेष पद भजनीय हैं । सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग स्थितिविभक्तिके समान है । सब नारकी, सब तिर्यञ्च, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देव और सहस्रार कल्प तकके देवोंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग हैं । किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातगुणहानि नहीं है । मनुष्यत्रिकमें छब्बीस प्रकृतियोंकी असंख्यातभागहानि और अवस्थित पदवाले जीव नियमसे हैं । शेष पद भजनीय हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत्थि। सेसपदाणि भयणिज्जाणि। सम्म०-सम्मामि० विहत्तिभंगो। आणदादि णवगेवज्जा त्ति विहत्तिभंगो। णवरि सम्म०-सम्मामि० संखे०गुण० असंखे०गुणहाणी णत्थि। अणुद्दिसादि सव्वट्ठा त्ति विहत्तिभंगो। णवरि सम्म० संखे०गुणहाणी[1] णत्थि। एवं जाव०।

§ ८९१. भागाभागाणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण छव्वीसं पयडीणं असंखे०भागवड्ढी असंखे०भागो। अवट्ठि० संखे०भागो। असंखे०-भागहाणी संखे०भागा। सेसपदाणि अणंतिमभागो। सम्म०-सम्मामि० विहत्तिभंगो। सव्वणेरइय०-सव्वतिरिक्ख०-मणुसअपज्ज०-देवा जाव सहस्सार त्ति विहत्तिभंगो। णवरि सम्म०-सम्मामि० असंखे०गुणहाणी णत्थि। मणुसा० विहत्तिभंगो। णवरि बारसक०-णवणोक० अवत्त०संका० असंखे०भागो। एवं मणुसपज्ज०-मणुसिणी०। णवरि संखे०-पडिभागो कायव्वो। आणदादि णवगेवज्जा त्ति विहत्तिभंगो। णवरि सम्म०-सम्मामि० संखे०गुणहाणी असंखे०गुणहाणी च णत्थि। अणुद्दिसादि सव्वट्ठा त्ति विहत्तिभंगो। णवरि सम्म० संखे०गुणहाणी णत्थि। एवं जाव०।

§ ८९२. परिमाणाणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघो

सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग स्थितिविभक्तिके समान है। आनतसे लेकर नौ ग्रैवेयक तकके देवोंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी संख्यातगुणहानि और असंख्यातगुणहानि नहीं है। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि-तकके देवोंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी संख्यातगुणहानि नहीं है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये।

§ ८९१. भागाभागानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेश-निर्देश। ओघसे छब्बीस प्रकृतियोंकी असंख्यातभागवृद्धिवाले जीव असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। अवस्थितपदवाले जीव संख्यातवें भागप्रमाण हैं। असंख्यातभागहानिवाले जीव संख्यात बहु-भागप्रमाण हैं। तथा शेष पदवाले जीव अनन्तवें भागप्रमाण हैं। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग स्थितिविभक्तिके समान है। सब नारकी, सब तिर्यञ्च, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देव और सहस्रार कल्प तकके देवोंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातगुणहानि नहीं है। मनुष्योंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि बारह कषाय और नौ नोकषायोंके अवक्तव्य पदके संक्रामक जीव असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। इसी प्रकार मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें प्रतिभागका प्रमाण संख्यात करना चाहिए। आनतसे लेकर नौ ग्रैवेयक तकके देवोंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी संख्यातगुणहानि और असंख्यातगुणहानि नहीं है। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्वकी संख्यातगुणहानि नहीं है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

§ ८९२. परिमाणानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेश-

---

१. ता० प्रतौ सम्म० सम्मामि संखे०गुणहाणी इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विहत्तिभंगो। णवरि बारसक०-णवणोक० अवत्त० तिण्णिसंज०-पुरिसवेद० असंखे०-गुणवड्ढी सम्म०-सम्मामि० असंखे०गुणहाणिसंका० केत्तिया० ? संखेज्जा। सव्वणेरइय-सव्वतिरिक्ख०-मणुसअपज्ज०-देवा जाव सहस्सारे त्ति विहत्तिभंगो। णवरि सम्म०-सम्मामि० असंखे०गुणहाणी णत्थि। मणुसा० विहत्तिभंगो। णवरि बारसक०-णवणोक० अवत्त० सम्म०-सम्मामि० असंखे०गुणहाणिसंका० केत्तिया ? संखेज्जा। मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु सव्वपदसंका० संखेज्जा। आणदादि जाव णवगेवज्जा त्ति विहत्तिभंगो। णवरि सम्म०-सम्मामि० असंखे०गुणहाणी संखे०गुणहाणी णत्थि। अणुद्दिसादि सव्वट्ठा त्ति विहत्तिभंगो। णवरि सम्म० संखे०गुणहा० णत्थि। एवं जाव०।

§ ८९३. खेत्ताणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघो विहत्तिभंगो। णवरि बारसक०-णवणोक० अवत्त० तिण्हं संजल० पुरिसवेद० असंखे०गुणवड्ढी केवडि खेत्ते ? लोगस्स असंखे०भागे। सव्वगइमग्गणासु सव्वपदाणि लोग० असंखे०भागे। तिरिक्खाणं तु विहत्तिभंगो। णवरि सम्म०-सम्मामि० असंखे०गुणहाणी णत्थि। एवं जाव०।

निर्देश। ओघका भंग स्थितिविभक्तिके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि बारह कषाय और नौ नोकषायोंके अवक्तव्य पदके संक्रामक जीव, तीन संज्वलन और पुरुषवेदके असंख्यातगुणवृद्धिके संक्रामक जीव तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके असंख्यातगुणहानिके संक्रामक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। सब नारकी, सब तिर्यञ्च, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देव और सहस्रार कल्प तकके देवोंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातगुणहानि नहीं है। मनुष्योंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि बारह कषाय और नौ नोकषायोंके अवक्तव्यपदके संक्रामक जीव तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातगुणहानिके संक्रामक जीव कितने हैं ? संख्यात हैं। मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें सब पदोंके संक्रामक जीव संख्यात हैं। आनत कल्पसे लेकर नौ ग्रैवेयक तकके देवोंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातगुणहानि और संख्यातगुणहानि नहीं है। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्वकी संख्यातगुणहानि नहीं है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये।

§ ८९३. क्षेत्रानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। ओघका भंग स्थितिविभक्तिके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि बारह कषाय और नौ नोकषायोंके अवक्तव्यपदके संक्रामकोंका तथा तीन संज्वलन और पुरुषवेदकी असंख्यातगुणवृद्धिके संक्रामकोंका कितना क्षेत्र है ? लोकका असंख्यातवाँ भागप्रमाण क्षेत्र है। सब गति मार्गणाओंमें सब पदोंके संक्रामकोंका क्षेत्र लोकके असंख्यातवें भागप्रमाण है। मात्र तिर्यञ्चोंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातगुणहानि नहीं है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§८९४. पोसणाणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघो विहत्तिभंगो। णवरि बारसक०-णवणोक० अवत्त० तिण्हं संजल० पुरिसवेद० असंखे०गुणवड्ढी सम्म०-सम्मामि० असंखे०गुणहाणी खेत्तं। सव्वणेरइय०-सव्वतिरिक्ख०-मणुसअपज्ज०-देवा जाव सहस्सार त्ति ट्ठिदिविहत्तिभंगो। णवरि सम्म०-सम्मामि० असंखे०गुणहाणी णत्थि। अण्णं च पंचिंदियतिरिक्खअपज्ज०-मणुसअपज्ज० सम्म०-सम्मामि० संखे०-भागहाणी संखे०गुणहाणी खेत्तभंगो। मणुस०३ विहत्तिभंगो। आणदादि अच्चुदा त्ति विहत्तिभंगो। णवरि सम्म०-सम्मामि० संखे०गुणहाणी असंखे०गुणहाणी णत्थि। उवरि खेत्तभंगो। एवं जाव०।

§ ८९५. कालाणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघो विहत्ति-भंगो। णवरि बारसक०-णवणोक० अवत्त० तिण्हं संजल० पुरिसवेद० असंखे०-गुणवड्ढी० सम्म०-सम्मामि० असंखे०गुणहाणी० जह० एयसमओ, उक्क० संखेज्जा समया। सव्वणेरइय-सव्वतिरिक्ख-मणुसअपज्ज०—देवा जाव सहस्सार त्ति विहत्तिभंगो। णवरि सम्म०-सम्मामि० असंखे०गुणहाणी णत्थि। मणुसा० विहत्तिभंगो। णवरि बारसक०-णवणोक० अवत्त० सम्म०-सम्मामि० असंखे०गुणहा० जह० एयसमओ, उक्क० संखेज्जा

§ ८९४. स्पर्शनानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। ओघका भंग स्थितिविभक्तिके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि बारह कषाय और नौ नोकषायोंके अवक्तव्यपदके संक्रामक जीवोंका, तीन संज्वलन और पुरुषवेदकी असंख्यातगुणवृद्धिके संक्रामक जीवोंका तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातगुणहानिके संक्रामक जीवोंका स्पर्शन क्षेत्रके समान है। सब नारकी, सब तिर्यञ्च, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देव और सहस्रार कल्प तकके देवोंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातगुणहानि नहीं है। इतनी और विशेषता है कि पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्तकोंमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी संख्यातभागहानि और संख्यातगुणहानिका भंग क्षेत्रके समान है। मनुष्यत्रिकमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है। आनतसे लेकर अच्युत कल्प तकके देवोंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी संख्यातगुणहानि और असंख्यातगुणहानि नहीं है। ऊपर क्षेत्रके समान भंग है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये।

§ ८९५. कालानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। ओघका भंग स्थितिविभक्तिके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि बारह कषाय और नौ नोकषायोंके अवक्तव्यपदके संक्रामकोंका, तीन संज्वलन और पुरुषवेदकी असंख्यातगुणवृद्धिके संक्रामकोंका तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातगुणहानिके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। सब नारकी, सब तिर्यञ्च, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देव और सहस्रार कल्प तकके देवोंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातगुणहानि नहीं है। मनुष्योंमें स्थिति-विभक्तिके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि बारह कषाय और नौ नोकषायोंके अवक्तव्य पदके संक्रामकोंका तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातगुणहानिके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

समया। मणुसपज्ज०-मणुसिणीसु छव्वीसं पयडीणं असंखे०भागहाणि-अवट्ठि० सम्म०-सम्मामि० असंखे०भागहाणी सव्वद्धा। सेसपदसंका० जह० एयस०, उक्क० संखेज्जा समया। आणदादि जाव णवगेवज्जा त्ति विहत्तिभंगो। णवरि सम्म०-सम्मामि० संखेज्जगुणहाणी असंखे०गुणहाणी च णत्थि। अणुद्दिसादि अवराजिदा त्ति अट्ठावीसं पयडीणं असंखे०भागहाणी सव्वद्धा। सेसपदाणि जह० एयस०, उक्क० आवलियाए असंखे०भागो। सव्वट्ठे अट्ठावीसं पयडीणं असंखे०भागहाणी सव्वद्धा। सेसपदा० जह० एयसमओ, उक्क० संखेज्जा समया। एवं जाव०।

§ ८९६. अंतराणुग० दुविहो णिद्द सो—ओघादेस०। ओघो विहत्तिभंगो। णवरि बारसक०-णवणोक० अवत्तव्व० तिण्हं संजल० पुरिसवेद० असंखे०गुणवड्ढी० जह० एयस०, उक्क० वासपुधत्तं। सम्म०-सम्मामि० असंखे०गुणहाणी० जह० एयसमओ, उक्क० छम्मासा। सव्वणेरइय-सव्वतिरिक्ख-मणुसअपज्ज०-देवा जाव सहस्सारे त्ति विहत्तिभंगो। णवरि सम्म०-सम्मामि० असंखे०गुणहाणी णत्थि। मणुस०२ विहत्तिभंगो। णवरि बारसक०-णवणोक० अवत्त० सम्म०-सम्मामि० असंखे०गुणहाणी ओघं। एवं मणुसिणीसु। णवरि खवयपयडीणं वासपुधत्तं। आणदादि णवगेवज्जा त्ति विहत्तिभंगो।

छब्बीस प्रकृतियोंकी असंख्यातभागहानि और अवस्थितपदके संक्रामकोंका तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातभागहानिके संक्रामकोंका काल सर्वदा है। शेष पदोंके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। आनतसे लेकर नौ ग्रैवेयक तकके देवोंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी संख्यातगुणहानि और असंख्यातगुणहानि नहीं है। अनुदिशसे लेकर अपराजित तकके देवों अट्ठाईस प्रकृतियोंकी असंख्यातभागहानिके संक्रामकोंका काल सर्वदा है। शेष पदोंके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल आवलिके असंख्यातवें भागप्रमाण है। सर्वार्थसिद्धिमें अट्ठाईस प्रकृतियोंकी असंख्यातभागहानिके संक्रामकोंका काल सर्वदा है। शेष पदोंके संक्रामकोंका जघन्य काल एक समय है और उत्कृष्ट काल संख्यात समय है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिये।

§ ८९६. अन्तरानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघनिर्देश और आदेशनिर्देश। ओघका भंग स्थितिविभक्तिके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि बारह कषाय और नौ नोकषायोंके अवक्तव्यपदके संक्रामकोंका तथा तीन संज्वलन और पुरुषवेदकी असंख्यातगुणवृद्धिके संक्रामकोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातगुणहानिके संक्रामकोंका जघन्य अन्तर एक समय है और उत्कृष्ट अन्तर छह महीना है। सब नारकी, सब तिर्यञ्च, मनुष्य अपर्याप्त, सामान्य देव और सहस्रार कल्प तकके देवोंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातगुणहानि नहीं है। मनुष्यद्विकमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि बारह कषाय और नौ नोकषायोंके अवक्तव्यपदके संक्रामकोंका तथा सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातगुणहानिके संक्रामकोंका अन्तरकाल ओघके समान है। इसी प्रकार मनुष्यिनियोंमें जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि क्षपक प्रकृतियोंका उत्कृष्ट अन्तर वर्षपृथक्त्वप्रमाण है। आनतसे लेकर नौ ग्रैवेयक तकके देवोंमें

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

णवरि सम्म०-सम्मामि० असंखे०गुणहाणी संखे०गुणहाणी च णत्थि। अणुद्दिसादि सव्वट्ठा त्ति विहत्तिभंगो। णवरि सम्म० संखेज्जगुणहाणी णत्थि। एवं जाव०।

§ ८९७. भावो सव्वत्थ ओदइओ भावो।

❀ अप्पाबहुअं।

§ ८९८. सुगममेदमहियारपरामरसवक्कं।

❀ सव्वत्थोवा मिच्छत्तस्स असंखेज्जगुणहाणिसंकामया।

§ ८९९. कुदो ? दंसणमोहक्खवयजीवे मोत्तूण एत्थ तदसंभवादो।

❀ संखेज्जगुणहाणिसंकामया असंखेज्जगुणा।

§ ९००. कुदो ? सण्णिपंचिंदियरासिस्स असंखे०भागपमाणत्तादो। तस्स पडिभागो अंतोमुहुत्तमिदि घेत्तव्वं।

❀ संखेज्जभागहाणिसंकामया संखेज्जगुणा।

§ ९०१. कुदो ? संखेज्जगुणहाणिपरिणमणवारेहिंतो संखेज्जभागहाणिपरिणमणवाराणं संखेज्जगुणत्तुवलंभादो। ण चेदमसिद्धं, तिव्वविसोहिंतो मंदविसोहीणं पाएण संभवदंसणादो।

❀ संखेज्जगुणवड्ढिसंकामया असंखेज्जगुणा।

स्थितिविभक्तिके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातगुणहानि और संख्यातगुणहानि नहीं है। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि सम्यक्त्वकी संख्यातगुणहानि नहीं है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

§ ८९७. भाव सर्वत्र औदायिक है।

*** अल्पबहुत्वका अधिकार है।**

§ ८९८. अधिकारका परामर्श करानेवाला यह वाक्य सुगम है।

*** मिथ्यात्वकी असंख्यातगुणहानिके संक्रामक जीव सबसे थोड़े हैं।**

§ ८९९. क्योंकि दर्शनमोहनीयके क्षपक जीवोंको छोड़कर अन्यत्र असंख्यातगुणहानिका संक्रम सम्भव नहीं है।

*** उनसे संख्यातगुणहानिके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं।**

§ ९००. क्योंकि उक्त जीव संज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीवराशिके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। उसका प्रतिभाग अन्तर्मुहूर्त है ऐसा यहाँ ग्रहण करना चाहिए।

*** उनसे संख्यातभागहानिके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं।**

§ ९०१. क्योंकि संख्यातगुणहानिके परिणमनके वारोंसे संख्यातभागहानिके परिणमनवार संख्यातगुणे उपलब्ध होते हैं। और यह असिद्ध भी नहीं है, क्योंकि तीव्र विशुद्धिसे मन्दविशुद्धियोंकी प्रायःकर सम्भावना देखी जाती है।

*** उनसे संख्यातगुणवृद्धिके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं।**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ९०२. एत्थ कारणं संखे०भागहाणीए सण्णिपंचिंदियरासी पहाणो, सेसजीवसमासेसु संखेज्जभागहाणिं कुणंताणं बहुवाणमसंभवादो। संखेज्जगुणवड्ढी पुण परत्थाणादो आगंतूण सण्णिपंचिंदिएसुप्पज्जमाणाणं सव्वेसिमेव लब्भदे, तहा एइंदिय-वियलिंदियाणमसण्णिपंचिंदिएसुववज्जमाणाणं संखेज्जगुणवड्ढी चेव होइ। एवमेइंदिय-बीइंदियाणं चउरिंदियएसु वेइंदिय-तेइंदिएसु च समुप्पज्जमाणाणमेइंदियाणं संखेज्जगुणवड्ढिणियमो वत्तव्वो। एवमुप्पज्जमाणासेसजीवरासिपमाणं तसरासिस्स असंखे०भागो, तसरासिं सग-उवक्कमणकालेण खंडिदेयखंडमेत्ताणं चेव परत्थाणादो आगंतूण तत्थुप्पज्जमाणाणमुवलंभादो। तदो परत्थाणरासिपाहम्मेण सिद्धमेदेसिं असंखेज्जगुणत्तं।

* संखेज्जभागवड्ढिसंकामया संखेज्जगुणा।

§ ९०३. एत्थ वि तसरासी चेव परत्थाणादो पविसंतओ पहाणं, सत्थाणे संखे०भागवड्ढिसंकामयाणं संखेज्जभागहाणिसंकामएहि सरिसाणमप्पहाणत्तादो। किंतु परत्थाणादो संखे०गुणवड्ढिपवेसएहिंतो संखे०भागवड्ढिपवेसया बहुआ, संखेज्जगुणहीणट्ठिदिसंतकम्मेण[2] सह एइंदियादिहिंतो णिप्पिदमाणाणं संखे०भागहाणिट्ठिदिसंतकम्मेण सह तत्तो णिप्पिदमाणे पेक्खिऊण संखेज्जगुणहीणत्तादो। कथमेदं परिछिज्जदे? एदम्हादो चेव

§ ९०२. यहाँ कारण यह है कि संख्यातभागहानि करनेवाले जीवोंमें संज्ञी पञ्चेन्द्रिय जीवराशि प्रधान है, क्योंकि शेष जीवसमासोंमें संख्यातभागहानि करनेवाले बहुत जीव असम्भव हैं। परन्तु संख्यातगुणवृद्धि तो परस्थानसे आकर संज्ञी पञ्चेन्द्रियोंमें उत्पन्न होनेवाले सभी जीवोंके उपलब्ध होती है तथा जो एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय जीव असंज्ञी पञ्चेन्द्रियोंमें उत्पन्न होते हैं उनके संख्यातगुणवृद्धि ही होती है। इसीप्रकार जो एकेन्द्रिय और द्वीन्द्रिय जीव चतुरिन्द्रिय जीवोंमें तथा जो एकेन्द्रिय जीव द्वीन्द्रिय और त्रीन्द्रियोंमें उत्पन्न होते हैं उनके संख्यातगुणवृद्धिका नियम कहना चाहिए। इस प्रकार उत्पन्न होनेवाली समस्त जीवराशिका प्रमाण त्रसराशिके असंख्यातवें भागप्रमाण है, क्योंकि त्रसराशिको अपने उपक्रमणकालसे भाजित कर जो एक भाग प्राप्त हो तत्प्रमाण जीव ही परस्थानसे आकर वहाँ उत्पन्न होते हुए उपलब्ध होते हैं। इसलिए परस्थानराशिकी प्रधानतासे संख्यातगुणवृद्धि करनेवाले जीव असंख्यातगुणे होते हैं यह बात सिद्ध है।

* उनसे संख्यातभागवृद्धिके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं।

§ ९०३. यहाँ पर भी परस्थानसे प्रवेश करनेवाली त्रसराशि ही प्रधान है, क्योंकि स्वस्थानमें संख्यातभागवृद्धिके संक्रामक जीव संख्यातभागहानिके संक्रामक जीवोंके समान होते हैं, इसलिए उनकी प्रधानता नहीं है। किन्तु परस्थानके आश्रयसे संख्यातगुणवृद्धिके प्रवेश करनेवाले जीवोंसे संख्यातभागवृद्धिके प्रवेश करनेवाले जीव बहुत हैं, क्योंकि संख्यातगुणे हीन स्थितिसत्कर्मके साथ एकेन्द्रिय आदिमेंसे निकलनेवाले जीव संख्यातभागहीन स्थितिसत्कर्मके साथ एकेन्द्रिय आदिमेंसे निकलनेवाले जीवोंको देखते हुए संख्यातगुणे हीन होते हैं।

शंका—यह किस प्रमाणसे जाना जाता है?

समाधान—इसी सूत्रसे जाना जाता है।

१. ता०प्रतौ बहु [आ-], आ०प्रतौ बहुअ- इति पाठः। २ ता०प्रतौ -कम्मे [हिं] इति पाठः।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सुत्तादो । तदो संखेज्जगुणत्तमेदेसिं ण विरुज्झदे ।

❀ असंखेज्जभागवड्ढिसंकामया अणंतगुणा ।

§ ९०४. कुदो ? एइंदियरासिस्सासंखेज्जभागपमाणत्तादो । दुसमयाहियावट्ठिदासंखेज्जभागहाणिकालसमासेणंतोमुहुत्तपमाणेणेइंदियरासिमोवट्टिय दुगुणिदे पयदवड्ढिसंकामया होंति त्ति सिद्धमेदेसिमणंतगुणत्तं ।

❀ अवट्ठिदसंकामया असंखेज्जगुणा ।

§ ९०५. कुदो ? एइंदियरासिस्स संखे०भागपमाणत्तादो ।

❀ असंखेज्जभागहाणिसंकामया संखेज्जगुणा ।

§ ९०६. कुदो ? अवट्ठाणकालादो अप्पयरकालस्स संखेज्जगुणत्तादो ?

❀ सम्मत्त-सम्मामिच्छत्ताणं सव्वत्थोवा असंखेज्जगुणहाणिसंकामया ।

§ ९०७. कुदो ? दंसणमोहक्खवयसंखेज्जजीवे मोत्तूणण्णत्थ तदसंभवादो ।

❀ अवट्ठिदसंकामया असंखेज्जगुणा ।

§ ९०८. कुदो ? पलिदोवमासंखेज्जभागपमाणत्तादो । ण चेदमासिद्धं, अवट्ठिदपाओग्गसमयुत्तरमिच्छत्तट्ठिदिवियप्पेसु तेत्तियमेत्तजीवाणं संभवदंसणादो ।

इसलिए ये जीव संख्यातगुणे होते हैं यह बात विरोधको प्राप्त नहीं होती ।

* उनसे असंख्यातभागवृद्धिके संक्रामक जीव अनन्तगुणे हैं ।

§ ९०४. क्योंकि ये जीव एकेन्द्रियराशिके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । दो समय अधिक अवस्थित और असंख्यातभागहानिके कालके जोड़रूप अन्तर्मुहूर्तप्रमाणसे एकेन्द्रिय जीवराशिको भाजित कर जो लब्ध आवे उसे दूना करने पर प्रकृत वृद्धिके संक्रामक जीव होते हैं, इसलिए ये अनन्तगुणे हैं यह बात सिद्ध हुई ।

* उनसे अवस्थितपदके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं ।

§ ९०५. क्योंकि ये एकेन्द्रियराशिके संख्यातवें भागप्रमाण हैं ।

* उनसे असंख्यातभागहानिके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं ।

§ ९०६. क्योंकि अवस्थानकालसे अल्पतरकाल संख्यातगुणा है ।

* सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातगुणहानिके संक्रामक जीव सबसे थोड़े हैं ।

९०७. क्योंकि दर्शनमोहनीयकी क्षपणा करनेवाले संख्यात जीवोंको छोड़कर अन्यत्र असंख्यातगुणहानिका होना असम्भव है ।

* उनसे अवस्थितपदके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं ।

§ ९०८. क्योंकि ये पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं । और यह असिद्ध भी नहीं है, क्योंकि अवस्थित पदके योग्य मिथ्यात्वके एक समय अधिक स्थितिविकल्पोंमें तत्प्रमाण जीव सम्भव देखे जाते हैं ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

* असंखेज्जभागवड्डिसंकामया असंखेज्जगुणा।

§ ९०९. तं जहा—अवट्ठिदसंकमपाओग्गविसयादो असंखेज्जभागवड्डिपाओग्गविसओ असंखेज्जगुणो। अवट्ठिदपाओग्गट्ठिदिविसेसेसु पादेक्कं पलिदोवमस्स संखेज्जदिभागमेत्ताणमसंखे०भागवड्डिवियप्पाणमुप्पत्तिदंसणादो। तदो विसयबहुत्तादो सिद्धमेदेसिमसंखेज्जगुणत्तं।

* असंखेज्जगुणवड्डिसंकामया असंखेज्जगुणा।

§ ९१०. एत्थ संचयकालबहुत्तं कारणं। तं जहा—मिच्छत्तधुवट्ठिदिं जहण्णपरित्तासंखेज्जेण खंडिय तत्थेयखंडमेत्तट्ठिदिसंतकम्मादो हेट्ठा चरिमुव्वेल्लणकंडयपज्जवसाणो असंखेज्जगुणवड्डिविसयो, एदेहि ट्ठिदिवियप्पेहि सम्मत्तं पडिवज्जमाणाणं पयारंतरासंभवादो। एदस्स उव्वेल्लणकालो पलिदोवमस्सासंखेज्जदिभागमेत्तो। एदेण कालेण संचिदजीवा च पलिदोवमासंखेज्जभागमेत्ता। एदे पुण अंतोमुहुत्तकालसंचिदासंखेज्जभागवड्डिपाओग्गजीवेहिंतो असंखे०गुणा, कालाणुसारेण गुणयारपवुत्तीए णिव्वाहमुवलंभादो। ण च तेसिमंतोमुहुत्तसंचिदत्तमसिद्धं, मिच्छत्तं गंतूणंतोमुहुत्तादो उवरि तत्थच्छमाणाणं संखेज्जभागवड्डि-संखे०गुणवड्डिसंकमाणं पाओग्गभावदंसणादो। तम्हा संचयकालमाहप्पेणेदेसिमसंखेज्जगुणत्तमिदि सिद्धं।

* संखेज्जभागवड्डिसंकामया असंखेज्जगुणा।

---

* उनसे असंख्यातभागवृद्धिके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं।

§ ९०९. यथा—अवस्थितपदके संक्रमके योग्य विषयसे असंख्यातभागवृद्धिप्रायोग्य विषय असंख्यातगुणा है, क्योंकि अवस्थितपदके योग्य स्थितिविशेषोंमें अलग अलग पल्यके संख्यातवें भागप्रमाण असंख्यातभागवृद्धिरूप विकल्पोंकी उत्पत्ति देखी जाती है। इसलिए विषयका बहुत्व होनेके कारण ये असंख्यातगुणे हैं यह सिद्ध होता है।

* उनसे असंख्यातगुणवृद्धिके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं।

§ ९१०. यहाँ पर सञ्चयकालका बहुतपना कारण है। यथा—मिथ्यात्वकी ध्रुवस्थितिको जघन्य परीतासंख्यातसे भाजित कर वहाँ प्राप्त हुए एक खण्डमात्र स्थितिसत्कर्मसे नीचे अन्तिम उद्वेलनकाण्डक तक असंख्यातगुणवृद्धिका विषय है, क्योंकि इन स्थितिविकल्पोंके साथ सम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाले जीवोंके अन्य प्रकार सम्भव नहीं है। इसका उद्वेलनाकाल पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण है और इस कालके भीतर सञ्चित हुए जीव पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण हैं। परन्तु ये जीव अन्तर्मुहूर्त कालके भीतर सञ्चित हुए असंख्यातभागवृद्धिके योग्य जीवोंसे असंख्यातगुणे हैं, क्योंकि कालके अनुसार गुणकारकी प्रवृत्ति निर्बाधरूपसे उपलब्ध होती है। ये जीव अन्तर्मुहूर्तके भीतर सञ्चित होते हैं यह बात असिद्ध भी नहीं है, क्योंकि मिथ्यात्वमें जाकर अन्तर्मुहूर्तके ऊपर वहाँ रहनेवाले जीवोंके संख्यातभागवृद्धिसंक्रम और संख्यातगुणवृद्धिसंक्रमकी योग्यता देखी जाती है। इसलिए सञ्चयकालके माहात्म्यसे ये असंख्यातगुणे हैं यह सिद्ध होता है।

* उनसे संख्यातभागवृद्धिके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ९११. किं कारणं ? पुव्विल्लविसयादो एदेसिं विसयस्स असंखेज्जगुणत्तोवलंभादो । तं कधं ? धुवट्ठिदीए णिरुद्धाए किंचूणतदद्धमेत्तो संखेज्जभागवड्ढिविसयो होइ । एवं समयुत्तरादिधुवट्ठिदीणं पि पुध पुध णिरुंभणं कादूण संखेज्जभागवड्ढिविसयो अणुगंतव्वो जाव अंतोमुहुत्तूणसत्तरि त्ति । एवं कादूण जोइदे ट्ठिदिं पडि णिरुद्धट्ठिदीए किंचूणद्धमेत्ता चेव संखेज्जभागवड्ढिवियप्पा लद्धा हवंति । एसो च सव्वो विसओ संपिंडिदो पुव्विल्लविसयादो असंखेज्जगुणो त्ति णत्थि संदेहो । तम्हा सिद्धमेदेसिमसंखेज्जगुणत्तं, अविप्पडिवत्तीए ।

❀ संखेज्जगुणवड्ढिसंकामया संखेज्जगुणा ।

§ ९१२. कारणं दोण्हमेदेसिं वेदगसम्मत्तं पडिवज्जमाणरासी पहाणो । किंतु संखेज्जभागवड्ढिविसयादो वेदगसम्मत्तं पडिवज्जमाणजीवेहिंतो संखेज्जगुणवड्ढिविसयादो वेदगसम्मत्तं पडिवज्जमाणजीवा संचयकालमाहप्पेण संखेज्जगुणा जादा । तं कधं ? मिच्छत्तं गंतूण थोवयरकालं चेव अच्छमाणो संखेज्जभागवड्ढिपाओग्गो होइ । तत्तो बहुवयरं कालमच्छमाणो पुण णिच्छएण संखेज्जगुणवड्ढिपाओग्गो होदि त्ति एदेण कारणेण सिद्धमेदेसिं संखेज्जगुणत्तं ।

❀ संखेज्जगुणहाणिसंकामया संखेज्जगुणा ।

---

§ ९११. क्योंकि पूर्वके विषयसे इनका विषय असंख्यातगुणा उपलब्ध होता है ।

शंका—वह कैसे ?

समाधान—क्योंकि ध्रुवस्थिति विवक्षित होने पर कुछ कम उससे आधा संख्यातभागवृद्धिका विषय है । इसी प्रकार एक समय अधिक आदि ध्रुवस्थितियोंको भी पृथक्-पृथक् विवक्षित करके अन्तर्मुहूर्त कम सत्तर कोड़ाकोड़ीसागरप्रमाण स्थितिके प्राप्त होने तक संख्यातभागवृद्धिका विषय ले आना चाहिए । इस प्रकार करके योगफल लाने पर प्रत्येक स्थितिके प्रति विवक्षित स्थितिके कुछ कम आधे संख्यातभागवृद्धिके विकल्प प्राप्त होते हैं । और इस सब विषयको मिलाने पर वह पूर्वके विषयसे असंख्यातगुणा है इसमें सन्देह नहीं । इसलिए विप्रतिपत्तिके बिना ये असंख्यातगुणे हैं यह सिद्ध होता है ।

*** उनसे संख्यातगुणवृद्धिके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं ।**

§ ९१२. क्योंकि इन दोनोंमें वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाली राशि प्रधान है । किन्तु संख्यातभागवृद्धिके साथ वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाले जीवोंसे संख्यातगुणवृद्धिके साथ वेदकसम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाले जीव संञ्चयकालके माहात्म्यवश संख्यातगुणे हो जाते हैं ।

शंका—वह कैसे ?

समाधान—क्योंकि मिथ्यात्वमें जाकर थोड़े काल तक रहनेवाला जीव ही संख्यातभागवृद्धिके योग्य होता है । परन्तु उससे बहुत काल तक रहनेवाला जीव नियमसे संख्यातगुणवृद्धिके योग्य होता है, इसलिए इस कारणसे ये जीव संख्यातगुणे होते हैं यह सिद्ध हुआ ।

*** उनसे संख्यातगुणहानिके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं ।**

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

§ ९१३. कुदो ? तिण्णिवड्ढि-अवट्ठाणेहिं गहियसम्मत्ताणमंतोमुहुत्तसंचिदाणं संखेज्जगुणहाणीए पाओग्गत्तदंसणादो ।

❀ संखेज्जभागहाणिसंकामया संखेज्जगुणा ।

§ ९१४. कारणमेत्थ सुगमं, मिच्छत्तप्पाबहुअसुत्ते परूविदत्तादो । अथवा संखे०भागहाणी संखे०गुणा । असंखे०गुणा त्ति पाढंतरं । एदस्साहिप्पायो सत्थाणे संखे०गुणहाणिसंकामएहिंतो संखेज्जभागहाणिसंकामया संखेज्जगुणा चेव । किंतु ण तेसि मेत्थ पहाणत्तं, अणंताणुबंधिं विसंजोएंतसम्माइट्ठिरासिपहाणभावदंसणादो । सो च सम्माइट्ठिरासिपाहम्मेणासंखेज्जगुणो त्ति । एदं च पाढंतरमेत्थ पहाणभावेणावलंबेयव्वो ।

❀ अवत्तव्वसंकामया असंखेज्जगुणा ।

§ ९१५. कुदो ? अद्धपोग्गलपरियट्टं संचयादो पडिणियत्तिय णिस्संतकम्मिय-भावेण सम्मत्तं पडिवज्जमाणाणमिह गहणादो ।

❀ असंखेज्जभागहाणिसंकामया असंखेज्जगुणा ।

§ ९१६. एत्थ कारणं वुच्चदे—पुव्विल्लासेससंकामया सम्मत्त-सम्मामिच्छत्त-संतकम्मियाणमसंखे०भागो चेव, सव्वेसिमेयसमयसंचिदत्तब्भुवगमादो । एदे वुण तेसिमसंखेज्जभागा, वेसागरोवमकालब्भंतरे वेदयसम्माइट्ठिरासिसंचयस्स दोहुव्वेल्लण-

---

§ ९१३. क्योंकि तीन वृद्धि और अवस्थानपदके साथ सम्यक्त्वको ग्रहण करनेवाले तथा अन्तर्मुहूर्त कालके भीतर संचित हुए जीव संख्यातगुणहानिके योग्य देखे जाते हैं ।

❀ उनसे संख्यातभागहानिके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं ।

§ ९१४. यहाँ कारण सुगम है, क्योंकि मिथ्यात्वसम्बन्धी अल्पबहुत्वका कथन करनेवाले सूत्रमें उसका कथन कर आये हैं । अथवा संख्यातभागहानिके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं यह पाठान्तर उपलब्ध होता है । इसका अभिप्राय यह है कि स्वस्थानमें संख्यातगुणहानिके संक्रामक जीवोंसे संख्यातभागहानिके संक्रामक जीव सख्यातगुणे ही हैं । किन्तु उनकी यहाँ पर प्रधानता नहीं है, क्योंकि यहाँ पर अनन्तानुबन्धीकी विसंयोजना करनेवाली राशिकी प्रधानता देखी जाती है और वह सम्यग्दृष्टि राशिकी प्रधानतावश असंख्यातगुणी है । इस प्रकार पाठान्तरको यहाँ पर प्रधानरूपसे ग्रहण करना चाहिए ।

❀ उनसे अवक्तव्यपदके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं ।

§ ९१५. क्योंकि अर्धपुद्गल परिवर्तनकालके सञ्चयसे लौटकर सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका अभाव कर सम्यक्त्वको प्राप्त होनेवाले जीवोंका यहाँ ग्रहण किया है ।

❀ उनसे असंख्यातभागहानिके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं ।

§ ९१६. यहाँ पर कारणका कथन करते हैं—पहले सब संक्रामक जीव सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके सत्कर्मवाले जीवोंके असंख्यातवें भागप्रमाण ही हैं, क्योंकि उनका एक समयमें होनेवाला सञ्चय स्वीकार किया गया है । परन्तु ये जीव सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वके सत्कर्मवाले जीवोंके बहुभागप्रमाण हैं, क्योंकि दो सागर कालके भीतर वेदकसम्यग्दृष्टिराशिके प्राप्त हुए

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

कालब्भंतरमिच्छाइट्ठिसंचयसहिदस्स पहाणत्तावलंबणादो। तदो असंखेज्जगुणा जादा।

❀ सेसाणं कम्माणं सव्वत्थोवा अवत्तव्वसंकामया।

§ ९१७. अणंताणुबंधीणं ताव पलिदोवमस्सासंखेज्जभागमेत्ता उक्कस्सेणेयसमयम्मि अवत्तव्वसंकमं कुणंति। बारसकसाय-णवणोकसायाणं पुण संखेज्जा चेव उवसामया सव्वोवसामणादो परिवदिय अवत्तव्वसंकमं कुणमाणा लब्भंति त्ति सव्वत्थोवत्तमेदेसिं जादं।

❀ असंखेज्जगुणहाणिसंकामया संखेज्जगुणा।

§ ९१८. अणंताणुबंधिविसंजोयणाए चरित्तमोहक्खवणाए च दूरावकिट्टिप्पहुडि संखेज्जसहस्सट्ठिदिखंडयचरिमफालीसु वट्टमाणजीवाणमेयवियप्पपडिबद्धावत्तव्वसंकामएहिंतो तहाभावसिद्धीए णाइयत्तादो।

❀ सेससंकामया मिच्छत्तभंगो।

§ ९१९. सुगममेदमप्पणासुत्तं।

एवमोघप्पाबहुअं समत्तं।

§ ९२०. एदस्सेव फुडीकरणट्ठमादेसपरूवणट्ठं च उच्चारणाणुगममेत्थ कस्सामो। तं जहा—अप्पाबहुआणुगमेण दुविहो णिद्देसो—ओघेण आदेसेण य। ओघेण मिच्छ०-अणंताणु०चउक्क० विहत्तिभंगो। बारसक०-णवणोक० अणंताणु०चउक्कभंगो। णवरि

सञ्चयका दीर्घ उद्वेलनकालके भीतर मिथ्यादृष्टि राशिके प्राप्त हुए सञ्चयके साथ प्रधानरूपसे अवलम्बन लिया गया है। इसलिए यह राशि असंख्यातगुणी हो जाती है।

* शेष कर्मोंके अवक्तव्यपदके संक्रामक जीव सबसे स्तोक हैं।

§ ९१७. उत्कृष्टरूपसे पल्यके असंख्यातवें भागप्रमाण जीव अनन्तानुबन्धियोंका एक समयमें अवक्तव्यसंक्रम करते हैं। परन्तु बारह कषाय और नौ नोकषायोंका संख्यात उपशामक जीव ही सर्वोपशामनासे गिर कर अवक्तव्यसंक्रम करते हुए उपलब्ध होते हैं, इसलिए इनका सबसे स्तोकपना बन जाता है।

* उनसे असंख्यातगुणहानिके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं।

§ ९१८. अनन्तानुबन्धियोंकी विसंयोजनामें और चारित्रमोहनीयकी क्षपणामें दूरापकृष्टिसे लेकर संख्यात हजार स्थितिकाण्डकोंकी अन्तिम फालियोंमें विद्यमान जीव एक विकल्पसे सम्बन्ध रखनेवाले अवक्तव्यसंक्रामकोंसे संख्यातगुणे सिद्ध होते हैं यह बात न्याय प्राप्त है।

* उनसे शेष पदोंके संक्रामक जीवोंका भंग मिथ्यात्वके समान है।

§ ९१९. यह अर्पणासूत्र सुगम है।

इस प्रकार ओघअल्पबहुत्व समाप्त हुआ।

§ ९२०. अब इसीको स्पष्ट करनेके लिए और आदेशका कथन करनेके लिए यहाँ पर उच्चारणाका अनुगम करते हैं। यथा—अल्पबहुत्वानुगमकी अपेक्षा निर्देश दो प्रकारका है—ओघ और आदेश। ओघसे मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भंग स्थितिविभक्तिके समान है। बारह कषाय और नौ नोकषायोंका भंग अनन्तानुबन्धीचतुष्कके समान है। किन्तु इतनी

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

संजलणतिय-पुरिसवेद० सव्वत्थोवा असंखेज्जगुणवड्ढिसंका० । अवत्त०संका० संखेज्ज-गुणा । सेसं तं चेव । सम्म०-सम्मामि० सव्वत्थोवा असंखे०गुणहाणिसं० । अवट्ठि० असंखे०गुणा । असंखे०भागवड्ढिसंका० असंखे०गुणा । असंखे०गुणवड्ढिसं० असंखे०-गुणा । संखे०भागवड्ढि असंखे०गुणा । संखे०गुणव० संखे०गुणा । संखे०-गुणहाणि० संखे०गुणा । संखे०भागहाणि० असंखे०गुणा । अवत्त० असंखे०-गुणा । असंखे०भागहाणि० असंखे०गुणा ।

§ ९२१. आदेसेण सव्वणेरइय-तिरिक्ख-पंचिंदियतिरिक्खतिय-देवा जाव सहस्सार त्ति छव्वीसं पय० विहत्तिभंगो । सम्म०-सम्मामि० ओघभंगो । णवरि असंखे०-गुणहाणिसंका० णत्थि । पंचिं०तिरिक्खअपज्ज०-मणुसअपज्ज० विहत्तिभंगो । णवरि सम्म०-सम्मामि० असंखे०-गुणहाणी णत्थि । मणुसेसु मिच्छ०-अणंताणु०चउक्क० विहत्तिभंगो । बारसक०-णवणोक० अणंताणु०चउक्क०भंगो । सम्म०-सम्मामि० सव्वत्थोवा असंखे०गुणहाणिसंका० । अवट्ठिदसंका० संखे०गुणा । असंखे०-भागवड्ढिसंका० संखे०गुणा । असंखे०गुणवड्ढिसं० संखे०गुणा । संखे०भागवड्ढिसं० संखे०गुणा । संखे०गुणवड्ढिसं० संखे०गुणा । अवत्तव्वसं० संखे०गुणा । संखे०

विशेषता है कि संज्वलनत्रिक और पुरुषवेदकी असंख्यातगुणवृद्धिके संक्रामक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे अवक्तव्यपदके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं। शेष भंग उसी प्रकार है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातगुणहानिके संक्रामक जीव सबसे स्तोक हैं। उनसे अवस्थितपदके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे असंख्यातभागवृद्धिके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे असंख्यातगुणवृद्धिके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे संख्यातभागवृद्धिके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे संख्यातगुणवृद्धिके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं। उनसे संख्यातगुणहानिके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं। उनसे संख्यातभागहानिके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे अवक्तव्यपदके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे असंख्यातभागहानिके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं।

§ ९२१. आदेशसे सब नारकी, सामान्य तिर्यञ्च, पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्चत्रिक, सामान्य देव और सहस्रार कल्प तकके देवोंमें छब्बीस प्रकृतियोंका भंग स्थितिविभक्तिके समान है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका भंग ओघके समान है। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें असंख्यातगुणहानिके संक्रामक जीव नहीं हैं। पञ्चेन्द्रिय तिर्यञ्च अपर्याप्त और मनुष्य अपर्याप्तकोंमें स्थितिविभक्तिके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है कि इनमें सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वका असंख्यात-गुणहानिसंक्रम नहीं है। मनुष्योंमें मिथ्यात्व और अनन्तानुबन्धीचतुष्कका भंग स्थितिविभक्तिके समान है। बारह कषाय और नौ नोकषायोंका भंग अनन्तानुबन्धीचतुष्कके समान है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातगुणहानिके संक्रामक जीव सबसे थोड़े हैं। उनसे अवस्थितपदके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं। उनसे असंख्यातभागवृद्धिके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं। उनसे असंख्यातगुणवृद्धिके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं। उनसे संख्यातभागवृद्धिके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं। उनसे संख्यातगुणवृद्धिके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं। उनसे अवक्तव्यपदके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

गुणहाणि० असंखे०गुणा। संखे०भागहाणि० असंखे०गुणा। असंखे०भागहाणि० असंखे०गुणा। एवं मणुसपज्जत्त-मणुसिणीसु। णवरि जम्हि असंखे०गुणं तम्हि संखेज्जगुणं कायव्वं। आणदादि णवगेवज्जा त्ति छव्वीसं पयडीणं विहत्तिभंगो। सम्म०-सम्मामि० सव्वत्थोवा असंखे०भागवड्ढि०। असंखे०गुणवड्ढि० असंखे०-गुणा। संखे०भागवड्ढि० असंखे०गुणा। संखे०गुणवड्ढि० संखे०गुणा। संखे०भागहाणि० असंखे०गुणा। अवत्त० असंखे०गुणा। असंखे०भागहाणि० असंखेज्ज-गुणा। अणुद्दिसादि सव्वट्ठे त्ति विहत्तिभंगो। णवरि सम्म० संखेज्जगुणहाणी० णत्थि। एवं जाव०।

एव वड्ढिसंकमो समत्तो।

एत्थ भवसिद्धिएदरपाओग्गट्ठिदिसंकमट्ठाणाणि विहत्तिभंगादो थोवविसेसाणु-बिद्धाणि सव्वकम्माणमणुगंतव्वाणि।

एव ट्ठिदिसंकमो समत्तो।

संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं। उनसे संख्यातगुणहानिके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे संख्यातभागहानिके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे असंख्यातभागहानिके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं। इसीप्रकार मनुष्य पर्याप्त और मनुष्यिनियोंमें जानना चाहिए। किन्तु इतनी विशेषता है कि जहाँ असंख्यातगुणा है वहाँ संख्यातगुणा करना चाहिए। आनत कल्पसे लेकर नौ ग्रैवेयक तकके देवोंमें छब्बीस प्रकृतियोंका भंग स्थितिविभक्तिके समान है। सम्यक्त्व और सम्यग्मिथ्यात्वकी असंख्यातभागवृद्धिके संक्रामक जीव सबसे थोड़े हैं। उनसे असंख्यातगुणवृद्धिके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे संख्यातभागवृद्धिके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे संख्यातगुणवृद्धिके संक्रामक जीव संख्यातगुणे हैं। उनसे संख्यातभागहानिके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे अवक्तव्यपदके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं। उनसे असंख्यातभाग-हानिके संक्रामक जीव असंख्यातगुणे हैं। अनुदिशसे लेकर सर्वार्थसिद्धि तकके देवोंमें स्थिति-विभक्तिके समान भंग है। किन्तु इतनी विशेषता है किन्तु इनमें सम्यक्त्वकी संख्यातगुणहानि नहीं है। इसी प्रकार अनाहारक मार्गणा तक जानना चाहिए।

इस प्रकार वृद्धिसंक्रम समाप्त हुआ।

यहाँ पर सब कर्मोंके भवसिद्ध और इतर जीवोंके योग्य स्थितिसंक्रमस्थान स्थितिविभक्तिसे थोड़ीसी विशेषताको लिए हुए जानना चाहिए।

इस प्रकार स्थितिसंक्रम समाप्त हुआ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

भा० दि० जैन संघ के स्वाध्यायोपयोगी प्रकाशन

१ कसायपाहुड (भाग १)	समाप्त	
२ कसायपाहुड (भाग २)	शास्त्राकार १३), पुस्तकाकार	१२)
३ कसायपाहुड (भाग ३)	"	१२)
४ कसायपाहुड (भाग ४)	"	१२)
५ कसायपाहुड (भाग ५)	"	१२)
६ कसायपाहुड (भाग ६)	"	१२)
७ कसायपाहुड (भाग ७)	"	१२)
८ कसायपाहुड (भाग ८)	"	१२)
९ मोक्षमार्गप्रकाश	आधुनिक हिन्दीमें	८)
१० वरांगचरित	प्राचीन चरित ग्रन्थका प्रथमबार हिन्दीमें अनुवाद	७)
११ वृहत् कथाकोश दो भाग	प्रत्येक भागका मूल्य	२॥)
१२ जैनधर्म	पं० कैलाश चन्द्र जी लिखित	४)
१३ तत्त्वार्थसूत्र	"	२॥)
१४ नमस्कार मंन्त्र	"	॥≈)॥
१५ भगवान ऋषभदेव	"	१)
१६ ईश्वरमीमांसा	स्वर्गीय स्वामी कर्मानन्द लिखित	६)
१७ छहढाला	विस्तृत टीका	२)
१८ द्रव्यसंग्रह	"	१॥)

प्राप्ति स्थान

मैनेजर भा० दि० जैन संघ

चौरासी, मथुरा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org